हिन्दी व्याकरण

लेखक

सैमुएल हेनरी केलाग

⊙

अनुवादक

डॉ० श्रीराम शर्मा

शक १९०१ : सन् १९८०

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

प्रकाशक
जगदीश स्वरूप
आदाता
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

संस्करण प्रथम
प्रतियाँ ११००
मूल्य साठ रुपए
प्रकाशन वर्ष १९८० ई०

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

प्रकाशकीय

हिन्दी व्याकरण के मानकीकरण का भी एक इतिहास है। अभी तक स्वर्गीय पण्डित कामताप्रसाद गुरु का हिन्दी व्याकरण ही हिन्दी-जगत् मे मान्य है। हिन्दी का मानक रूप प्राय: स्थिर हो चुका है किन्तु प्रयोगक्षम लेखको और रचनाकारो के गतिशील लेखन के कारण व्याकरण की अनेक जटिलताएँ समय-समय पर उद्घाटिन होती रहती है। भाषाशास्त्री और वैयाकरण व्याकरणिक विसगतियो के निराकरण मे संलग्न है। यह प्रसन्नता का विषय है कि गत कुछ वर्षो मे हिन्दी व्याकरण के मानकीकरण के प्रयास हुए है और कुछ अच्छे व्याकरण ग्रथ प्रकाश मे आये है। व्याकरण के कई विषयो के सबध मे विद्वानों मे मत-भिन्नता भी है। विश्वास है कि हिन्दी व्याकरण की सपूर्णता की दिशा मे होने वाले अनेकविध प्रयासो से हिन्दी के प्रशस्त एव प्रामाणिक व्याकरण-रचना का पथ प्रशस्त होगा।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दी व्याकरण-लेखन-परपरा की एक महत्त्वपूर्ण कडी के रूप मे श्री सैमुएल हेनरी केलाग के हिन्दी व्याकरण का यह अनुवाद विद्वानो के समक्ष प्रस्तुत कर रहा है। यह व्याकरण एक ईसाई मिशनरी के सतत अनुभवो का प्रतिफलन है। इसकी पूरी निर्माण-गाथा रोमाचक ही नही विस्मयकारी भी है। व्याकरण-रचना के उद्देश्यो पर प्रकाश डालने वाली लेखक की भूमिका प्राय: एक शती पूर्व की हिन्दी की स्थिति के सबध मे सम्यक् प्रकाश डालती है। इस स्वप्नद्रष्टा वैयाकरण ने किस प्रकार हिन्दी की क्षमता का अनुभव किया था, इसका वृत्तान्त प्रेरणा देने वाला ही नही वरन् हिन्दी के शक्ति-स्रोतो को प्रकट करनेवाला भी है।

केलाग के हिन्दी व्याकरण के ऐतिहासिक महत्त्व को अगीकार करके हिन्दी के सुलेखक और विद्वान् डॉ० श्रीराम शर्मा जी ने प्राय: दो दशक पूर्व ही इसका अनुवाद-कार्य सम्पन्न कर लिया था। पुस्तक का अनुवाद जिस रूप मे डॉ० शर्मा जी ने किया है उससे इसकी उपयोगिता मौलिक ग्रथ के रूप मे भी आँकी जा सकती है। केलाग के हिन्दी व्याकरण को प्रथम बार इस रूप मे प्रस्तुत करने का सारा श्रेय डॉ० श्रीराम शर्मा जी को है; जिन्होने न केवल अनुवाद का दुष्कर कार्य सफल साधक की भाँति सम्पन्न किया है वरन् इस व्याकरण ग्रथ को सर्वतोभावेन प्रामाणिक बनाने की दिशा मे भी सतत् जागरूकता का परिचय दिया है। उन्होने विनम्रतापूर्वक सम्मेलन को जिस प्रकार सहयोग प्रदान किया है उसके लिए वे सर्वथा प्रशंसा के पात्र हैं। उनका उदार सहयोग न मिलता तो यह व्याकरण ग्रंथ इस रूप मे प्रकाशित न हो पाता।

पुस्तक प्रकाशन की अतिम स्थिति मे यह भी अनुभव किया गया कि इसमे मूल लेखक का चित्र और परिचय भी दिया जाय। इस प्रसग मे डॉ० मैथ्यु वेच्चुर जी से सादर सहयोग माँगा गया। उनकी कृपा से डॉ० केलाग के पौत्र डॉ० राल्फ केलाग (सैनफ्रान्सिस्को, अमेरिका) से सपर्क करके पुस्तक के लिए कुछ प्रामाणिक चित्र और सामग्री प्राप्त हुई है। इस सहयोग के लिए सम्मेलन उनके प्रति भी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता है। डॉ० मैथ्यु वेच्चुर जी ने मिशनरी भाव से श्री सैमुएल हेनरी केलाग का परिचय प्रस्तुत किया है। सम्मेलन उनके सहयोग के लिये भी आभार व्यक्त करता है।

विश्वास है, केलाग के हिन्दी व्याकरण का हिन्दी जगत् मे सम्मान होगा और इससे हिन्दी मे प्रामाणिक व्याकरण तैयार करने का पथ प्रशस्त होगा।

बसतपचमी
२०३६ वि०

जगदीश स्वरूप
आदाता

अनुक्रम

⊙ प्रकाशकीय — जगदीश स्वरूप ५
⊙ अनुवाद की भूमिका—डॉ० श्रीराम शर्मा ९
⊙ सैमुएल हेनरी केलाग—डॉ० मथ्यु वेच्चुर १५

हिन्दी व्याकरण--डॉ० सैमुएल हेनरी केलाग

⊙ मूल पुस्तक के दूसरे सस्करण की भूमिका २१
⊙ मूल पुस्तक के प्रथम सस्करण की भूमिका २३

अनुवाद की भूमिका

सैमुएल हेनरी केलाग (१८३९-१८९९) के अंग्रेजी में लिखे "ए ग्रामर आफ़ द हिन्दी लैंग्वेज़" नामक हिन्दी व्याकरण का पहला संस्करण १८७५ में प्रकाशित हुआ था। सौ वर्ष बीतने पर भी इसका महत्त्व कम नहीं हुआ है। केलाग ने जिन दिनों इस ग्रंथ के लिए सामग्री जुटाई थी, हिन्दी में अधिक पुस्तकें प्रकाशित नहीं हुई थीं। गिनती की पुस्तकें थीं। अधिकांश लेखकों की भाषा क्षेत्रीय प्रभावों के कारण परिनिष्ठित रूप के बारे में भ्रम उत्पन्न करती थी। केलाग ने प्रथम संस्करण के समय अपने व्याकरण के लिए लल्लूलाल के प्रेमसागर से उदाहरण लिये थे। लेखक को शीघ्र ही पता चल गया कि प्रेमसागर की भाषा स्तरीय नहीं है। उस पर ब्रज का बहुत प्रभाव है।

केलाग को जब अपने व्याकरण का दूसरा संस्करण निकालना पड़ा तो उन्होंने प्रेमसागर की जगह राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा प्रस्तुत "अभिज्ञान शाकुंतलम्" के हिन्दी अनुवाद से सहायता ली। स्तरीय हिन्दी की दृष्टि से यह अनुवाद बहुत महत्त्वपूर्ण है।

केलाग जिस समय हिन्दी का व्याकरण लिख रहे थे, यूरोप के कुछ विद्वान् भारत में बोली जानेवाली आर्य-परिवार की भाषाओं का अध्ययन कर चुके थे। केलाग ने अपने पूर्ववर्त्ती तथा समकालीन विद्वानों के विचारों से लाभ उठाया। बीम्स, हार्नली, पिनकाट, प्लेट्स और ग्रिअर्सन के ग्रंथों को लेखक ने अच्छी तरह पढ़ा था। सहायक पुस्तकों की सूची में उन ग्रंथों का उल्लेख हुआ है।

केलाग ईसाई धर्म के प्रचार के लिए भारत में आये थे। उनका बहुत-सा समय प्रयाग में बीता था। उनके भारत-आगमन से कुछ पहले देश के बड़े भाग में राजभाषा के रूप में फारसी का उपयोग होता था। फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता के प्रबंधकों के कारण हिन्दी और उर्दू दो पृथक् भाषाएँ मान ली गई थीं। राजनीतिक और ऐतिहासिक कारणों से हिन्दी का विकास रुका हुआ था। कुछ रियासतों को छोड़ कर पूरे हिन्दी भाषी क्षेत्र में उर्दू राजकाज और प्राथमिक शिक्षा का माध्यम बनी हुई थी। इस स्थिति में भी केलाग स्तरीय हिन्दी के महत्त्व और उज्ज्वल भविष्य के संबंध में विश्वास के साथ लिख रहे थे-

"ऊपर हिन्दी से संबंधित केवल एक बोली का उल्लेख नहीं किया गया। काल की दृष्टि से इस बोली की गिनती सब बोलियों के पश्चात् होती है, किन्तु यह शीघ्र इतनी व्यापक हो गई कि इस समय समूचे हिन्दी भाषी क्षेत्र में समझी जाती है। इस बोली की विशेषता यह है कि इसका अपना कोई क्षेत्र नहीं है। जर्मन भाषा के सादृश्य पर इस बोली का नाम स्तरीय हिन्दी (हाई हिन्दी) रखा गया है। हिन्दी से संबंधित बोलचाल की दो भाषाओं से इसका संबंध है—वे हैं ब्रज और कन्नौजी। इन दोनों बोलियों की अपेक्षा मुसलमानों की भाषा उर्दू से इसका अधिक संबंध है। उर्दू की विभक्तियाँ, संज्ञाएँ और क्रिया-रूप आदि स्तरीय हिन्दी से लिये गये हैं। उर्दू और हिन्दी का मुख्य अन्तर यह है कि उर्दू में अरबी-फारसी के शब्द बड़ी संख्या में प्रयुक्त होते हैं।

उर्दू में अरबी-फारसी के शब्दो का अधिक प्रयोग क्यो होता है? उर्दू को इतना महत्त्व क्यो प्राप्त हुआ? भारत मे अंग्रेजी शासन के राजनीतिक प्रभाव और इस शताब्दी मे ईसाई धर्मप्रचारको की गतिविधियो से यह संभव हुआ। उर्दू वह भाषा है, जिसमे शासन ही नही, अधिकाश अंग्रेज तथा अमेरिकी धर्मप्रचारको ने पुस्तके लिखी है। हिन्दी भाषी जनता के साथ पत्राचार भी उर्दू मे किया जाता है। अधिकाश हिन्दी-भाषी उर्दू समझ लेते है, किन्तु यह भी सत्य है कि हिन्दुओ के घरो मे कही भी उर्दू का प्रयोग नही होता।

अग्रेजों की प्रेरणा से अब हिन्दी मे साहित्य रचा जाने लगा है। यदि कोई भविष्य बताने का साहस करे तो वह कह सकता है कि भविष्य मे जो भाषा उत्तर भारत की राजकाज और साहित्य की भाषा बनेगी वह ऐसी भाषा होगी जिसमे उर्दू की तरह अरबी-फारसी के अधिक शब्द नही होगे। साथ ही उसमे वर्तमान हिन्दी की अपेक्षा सस्कृत और प्राकृत की सज्ञाएँ भी अधिक नही रहेगी।" (देखिये, पृष्ठ ५३)।

केलाग ने अग्रेजो को ध्यान मे रख कर इस व्याकरण की रचना की थी किंतु वह लेखन-काल से लेकर आज तक देश के हिन्दी और हिन्दीतर भाषियो के लिए कम उपयोगी नही रही। परिनिष्ठित हिन्दी के अतिरिक्त केलाग ने हिन्दी-क्षेत्र की प्रमुख बोलियो के बारे मे भी उपयुक्त जानकारी दी है। इन बोलियो मे से कुछ तो साहित्यिक भाषाएँ रही है। भविष्य मे उनकी सृजनशीलता को अस्वीकार नही किया जा सकता। पहले सस्करण मे स्तरीय हिन्दी के साथ तुलनात्मक रूप से कन्नौजी, ब्रज, मारवाडी, मेवाड़ी, गढवाली, कुमाऊनी, पुरानी बैंसवाड़ी, अवधी, रिवाई और भोजपुरी का व्याकरण प्रस्तुत किया गया था। दूसरे संस्करण मे मागधी, मैथिली और नेपाली भी सम्मिलित की गईं।

परिनिष्ठित हिन्दी के बारे मे ही लेखक को पर्याप्त पुस्तके नही मिली थी। इस बात की कल्पना की जा सकती है कि बोलियो के बारे मे सामग्री प्राप्त करते समय लेखक को कितनी कठिनाई हुई होगी। तुलसीदास के 'रामचरित मानस' मे प्रयुक्त भाषा पर लेखक ने विशेष ध्यान दिया। कबीर और सूर की रचनाओ से भी उन्होने लाभ उठाया। बुदेलखंडी और नेपाली मे प्रकाशित बाइबिल के अनुवाद से लाभान्वित हुए। राजस्थानी के दो-तीन नाटको से सामग्री एकत्र की। बोलियो के सबध मे जानकारी पाने के लिए उन्होने कुछ लोगो को प्रश्नावली भेजी थी। किसी ने उत्तर भेजा, कोई मौन बना रहा। जो जानकारी मिली उसकी जाँच का कोई उपाय नही था।

जहाँ तक साहित्य का प्रश्न है, आरभ से ही हिन्दी-साहित्य के इतिहास लेखकों और आलोचको ने राजस्थानी, मैथिली, अवधी, और ब्रज के साहित्य को हिन्दी वाङमय का अभिन्न अग माना है। हिन्दी साहित्य मे कुछ अन्य बोलियों के साहित्य का भी समावेश होना चाहिए। जिस तरह मिश्रबधु और रामचद्र शुक्ल ने स्तरीय हिन्दी के साहित्य को राजस्थानी, अवधी आदि का उत्तराधिकारी माना उसी तरह केलाग ने सिद्ध किया कि स्तरीय हिन्दी और हिन्दी-क्षेत्र की बोलियो मे घनिष्ठ सबंध है। साहित्य के आलोचको की अपेक्षा केलाग का कार्यक्षेत्र अधिक व्यापक था।

इस समय हिन्दी-क्षेत्र की कुछ बोलियों को साहित्यिक भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित किया जा रहा है। इन दिनो कुछ बोलियो के पक्षधर सिद्ध करना चाहते है परिनिष्ठित हिन्दी के कारण उनकी बोलियो को हानि पहुँची है। ये लोग उन प्रयासो पर ध्यान नही देना चाहते जिनके कारण पिछली तीन शताब्दियो के अथक प्रयासो के फलस्वरूप बहुत बडा क्षेत्र एक परिनिष्ठित भाषा के कारण संगठित हुआ है।

केलाग ने अपने व्याकरण मे जो जानकारी दी है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि ये बोलियाँ सभी बातो मे बहुत साम्य रखती हैं। रूपो के अंतर को अधिक-से-अधिक वैकल्पिक माना जा सकता है। संज्ञा, सर्वनाम और क्रिया के रूपो की तालिकाओ पर दृष्टि डालते ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सभी बोलियाँ एक-दूसरे से संबधित है। इन तालिकाओ को देखने से यह भी पता चलता है कि रूपों का अंतर केवल बोलियो और स्तरीय हिन्दी मे ही नही है, अपितु एक बोली मे ही अनेक वैकल्पिक रूप विद्यमान है। पूरब की बोलियो मे, विशेषकर मैथिली मे वैकल्पिक रूपों की गिनती करना असंभव है। इस स्थिति मे जब भोजपुरी और राजस्थानी या अन्य किसी बोली में साहित्य रचने का प्रयास किया जाता है तो सोचना होगा कि उस बोली के लिए ही किस रूप को स्वीकार किया जाए। मध्य काल मे "बेलि किरसन रुक्मणी री" जैसी कृतियों के लिए जो साहित्य-भाषा स्वीकार की गई वह नितांत कृत्रिम भाषा थी। इस तरह के प्रयासो ने राजस्थानी को अपभ्रंश के निकट पहुँचा दिया था। राजस्थानी में जो साहित्य लिखा गया उनमे तीन-चार भाषा-शैलियाँ देखी जा सकती है। देखना होगा कि ये शैलियाँ बोलचाल की भाषा के कितने निकट है। इन दिनो बोलियों मे जो कुछ लिखा जा रहा है, उस सबका अध्ययन इस दृष्टि से होना चाहिए कि वे वाक्य-विन्यास, मुहावरा आदि की दृष्टि से स्तरीय हिन्दी के अधिक निकट हैं अथवा अपनी बोली की प्रकृति से मेल खाती है।

केलाग का व्याकरण जहाँ इस बात के लिए प्रचुर सामग्री प्रस्तुत करता है कि हम बोलियों और स्तरीय हिन्दी की एकता को हृदयंगम कर सके, वहाँ उससे यह प्रेरणा भी मिलती है कि परिनिष्ठित हिन्दी के अध्ययन के लिए बोलियो का अध्ययन भी आवश्यक है। परिनिष्ठित हिन्दी का टकसालीपन, प्रवाह और सामर्थ्य का मूल स्रोत बोलियाँ ही है। बोलियो से सबध-विच्छेद करके स्तरीय हिन्दी जीवन-शक्ति से वंचित हो जाएगी।

स्वर्गीय कामताप्रसाद गुरु ने हिन्दी का व्याकरण प्रस्तुत करते समय केलाग के ग्रंथ से पूरा-पूरा लाभ उठाया था। कुछ लोगों ने यह बताने का प्रयास किया है कि गुरु ने अमुक अश अमुक पुस्तक से लिया है। शब्दकोश और व्याकरण का रचयिता कहानी और काव्य जैसी मौलिकता का दावा नहीं कर सकता। शब्दकोश और व्याकरण मे महत्त्व इस बात का होता है कि लेखक ने उपलब्ध सामग्री का उपयोग किया या नही। यदि वह अपनी बात को इस रूप मे रख देता है कि पढ़नेवाला उसे आसानी से समझ जाए तो प्रयास सफल मानना चाहिए। अधिक-से-अधिक यह देखा जा सकता है कि पूर्ववर्त्ती लेखको से जो गुत्थियाँ नही सुलझी थी उन्हे सुलझाने का प्रयास कहाँ तक किया गया है। शब्दकोश और व्याकरण-लेखन काल के समानातर सतत रूप से चलनेवाली प्रक्रिया हैं।

केलाग ही नही, कामताप्रसाद गुरु के व्याकरण को भी प्रकाशित हुए बहुत समय हो चुका है। इस अवधि मे परिनिष्ठित हिन्दी ने आश्चर्यजनक विस्तार पाया है। उस पर विदेशी भाषाओ के अतिरिक्त अपने ही देश की अनेक भाषाओं का प्रभाव पड़ रहा है। मुहावरे तथा विन्यास मे भी परिवर्तन हुआ है। १८७५ अथवा १९२० मे वैयाकरण से जो अपेक्षा की जाती थी आज की अपेक्षाएँ उससे बहुत भिन्न है। भाषिकी के विकास ने भी व्याकरण का दिशा-निर्देश किया है। हिन्दी से संबधित बहुत-सी बोलियो का वैज्ञानिक अध्ययन हो चुका है। इन सब जानकारियो का उपयोग करते हुए हिन्दी का अद्यतन व्याकरण लिखा जाना चाहिए। हिन्दी अब ऐसी भाषा नही रह गई है कि बोलचाल से ही जिसका सम्यक् ज्ञान हो सके।

एक महान् भाषा के नाते हिन्दी में शीघ्र ही ऐतिहासिक शब्द-कोश का निर्माण होगा ही। इसी तरह ऐतिहासिक और तुलनात्मक व्याकरण भी विद्वानो की प्रतीक्षा कर रहा है। केलाग का व्याकरण हिन्दी के ऐतिहासिक व्याकरण का आधार बनेगा।

जो साधन इस व्याकरण के लिखते समय उपलब्ध थे, उनके आधार पर बहुत-सी जानकारी इसमे नही दी जा सकी। केलाग ने स्वयं बहुत-सी त्रुटियो का परिमार्जन दूसरे संस्करण मे किया।

यह अनुवाद हिन्दी के महान् वैयाकरण स्वर्गीय कामताप्रसाद गुरु की जन्मशती पर प्रकाशित होनेवाला था किंतु अनेक कठिनाइयो के कारण ऐसा नही हो सका।

अनुवादक हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आभारी है कि उसके कारण इतने बडे ग्रंथ का प्रकाशन सभव हो सका। सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान मत्री श्री प्रभात शास्त्री, वर्तमान सहायक मत्री श्री श्यामकृष्ण पाण्डेय और साहित्य विभाग के श्री हरिमोहन मालवीय ने इस पुस्तक के प्रकाशन मे बहुत रुचि ली। लेखक इन तीनो के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता है।

सम्मेलन मुद्रणालय के लिए इस तरह की पुस्तक का प्रकाशन सरल नहीं था। सबसे बडी कठिनाई यह थी कि अनुवादक प्रूफ देखने के लिए प्रयाग मे उपस्थित नही था। प्रूफ के हैदराबाद आने और वहाँ से उसके प्रयाग लौटने मे बहुत समय लगा। पुस्तक के प्रकाशन मे विलब इसी कारण से हुआ।

अनुवादक चाहता था कि हिन्दी की बोलियो मे प्रयुक्त ह्रस्व 'ए' तथा 'ओ', अतिम अ तथा अन्य ध्वनियो को भी अकित किया जाये। एक तो इसके लिए कुछ अक्षरो और चिह्नो को ढालना पडता, दूसरे उन अक्षरो के कारण कपोज करनेवालों को भी कठिनाई होती, इसीलिए बोलियो के अनेक शब्दो को ठीक ढग से छापा नही जा सका। कुछ स्थलो पर उर्दू लिपि का उपयोग होता तो अध्येता को सहायता मिलती। पुस्तक के प्रकाशन मे इससे बहुत विलब होता, अतः यह विचार भी छोड़ना पड़ा।

पुस्तक को इतने अच्छे रूप मे प्रकाशित करने के लिए अनुवादक सम्मेलन मुद्रणालय के कार्यकर्ताओ को धन्यवाद देता है।

—श्रीराम शर्मा

घर न० २१–७–६२
गांधी बाजार,
हैदराबाद–५००००२

जन्मशती के अवसर पर
हिन्दी के महान् वैयाकरण
कामताप्रसाद गुरु की स्मृति को
समर्पित

डॉ० सैमुएल हेनरी केलाग

सैमुएल हेनरी केलाग

(सन् १८३९-१८९९)

विदेशो से भारत आये हिन्दी प्रेमियो मे डॉ० सैमुएल हेनरी केलाग का नाम विशेष आदर से लिया जाता है। यद्यपि उनका भारत मे निवास-समय बहुत ही सीमित था, तथापि उन्होने जो काम किया वह प्रसिद्ध है। एक शताब्दी के बाद भी उनकी रचना 'हिन्दी व्याकरण' का प्रकाशन इसका द्योतक है कि वह अमर रहेगा। यह व्याकरण प्रथम बार इलाहाबाद से सन् १८७६ मे प्रकाशित हुआ था। इसके बाद इस व्याकरण के पाँच और संस्करण हुए और अब इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो रहा है। यहाँ यह स्मरणीय है कि 'हिन्दी व्याकरण' उनकी हिन्दी-सबधी एकमात्र कृति है जबकि उनकी अन्य रचनाएँ धर्म सबंधी है।

सैमुएल का जन्म सयुक्त राष्ट्र अमेरिका के न्यूयार्क के लॉंग आइलैण्ड मे क्योक् नामक स्थान मे एक गिरजा-भवन (पुरोहिताश्रम) मे ६ सितबर, सन् १८३९ मे हुआ। उनके पिता का नाम पादरी सैमुएल तथा माता का नाम मेरी पी० हेनरी था।

जन्म तथा बाल्यकाल मे सैमएल हेनरी बडे ही निर्बल तथा नाजुक थे। लेकिन उस समय भी उनमे प्रतिभा झलक रही थी। कमजोर होने के कारण वह स्कूल मे नही भेजे गये, बल्कि उनकी शिक्षा घर पर ही हुई और उनकी माँ उन्हे सिखाती थी। अपने पाठ पढने मे वह बहुत ही होशियार निकले, कभी-कभार खेल-कूद मे भी बाजी मार लेते थे।

लॉग आइलैण्ड के विलियम्स कॉलेज से उन्होने मैट्रिक पास किया और कालेज मे भरती हो गये; लेकिन फिर स्वास्थ्य बिगड जाने के कारण कॉलेज छोडना पडा और घर मे पढ़ते रहे। दो वर्ष के बाद जब उनका स्वास्थ्य सुधर गया तब उन्होने प्रिसटन नामक कॉलेज मे प्रवेश लिया और तीन वर्ष के बाद उसी कालेज से बी० ए० की परीक्षा उच्च श्रेणी मे पास की। कक्षा मे वह प्रथम रहे।

यहाँ से वह प्रिसटन सेमिनरी मे भर्ती हो गये और वही उन्होने पादरी की दीक्षा प्राप्त की। सन् १८६४ के अप्रैल मे अमेरिकन प्रेसबिटेरियन मिशन के पादरी अभिषिक्त हुए। उसी वर्ष के मई महीने मे मेरी अन्टोनिएट नामक महिला से उनका विवाह सम्पन्न हुआ।

विवाह के बाद दोनो भारत आने के लिए तैयार हो गये और सन् १८६४ के दिसबर महीने मे बोस्टन से एक माल-जहाज़ पर दोनो ने यात्रा आरभ की। उनकी गणना के अनुसार करीब तीन महीने मे उनको भारत पहुँचना था। लेकिन यह एक साहसिक यात्रा सिद्ध हुई। यात्रा के तीसरे दिन अचानक तूफान उठा और नाव का कप्तान समुद्र मे जा गिरा और उसकी अकाल मृत्यु हुई। उसके स्थान पर जो कप्तान नियुक्त हुआ वह बडा ही क्रोधी और निर्दय निकला। जब नाव के कर्मचारी तथा सेवक उसके विरुद्ध हो उठे और उन्हे मारना चाहते थे, तब केलाग ने वहाँ शान्ति स्थापित की और कप्तान तथा अन्य कर्मचारियो की इच्छा के अनुसार स्वय केलाग ने नाव चलाने का भार अपने ऊपर ले लिया। सयोग से

एक भारतीय विद्वान् के साथ डॉ० सैमुएल हेनरी केलाग

हिन्दी व्याकरण

मूल लेखक

सैमुएल हेनरी केलाग

मूल पुस्तक के दूसरे संस्करण की भूमिका

साम्राज्ञी (विक्टोरिया) के भारतीय सेवा आयोग के सदस्यो ने मेरा यह व्याकरण प्रशासनिक सेवाओं के लिए चुने गये अभ्यर्थियो के पाठ्यक्रम मे निर्धारित किया था, अत इसका प्रथम संस्करण जल्दी ही समाप्त हो गया। भारत मे रहने वाले मित्रों के बार-बार के आग्रह के कारण "हिन्दी व्याकरण" का संशोधित तथा परिवर्द्धित संस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है।

पिछले संस्करण में मैंने दस बोलियों का विवेचन किया था। इस संस्करण मे मागधी, मैथिली और नेपाली का भी समावेश किया गया है। इस संस्करण की तालिकाओं मे सब मिला कर १३ बोलियों के रूप देखे जा सकते है। गत सस्करण में राजपूताना (राजस्थान) की बोलियो और भोजपुरी के बारे मे जो सामग्री छपी थी, इस संस्करण मे उसे दोबारा लिखने के अतिरिक्त बहुत-सी नई जानकारी भी सम्मिलित की गई है। पहले संस्करण मे बोलियो के बारे मे संक्षेप मे लिखा गया था। इस बार बोलियो के बारे मे सामग्री इतनी बढ गई कि एक स्वतत्र अध्याय बनाना पडा। भाषावैज्ञानिक टिप्पणियो को नये सिरे से लिखा गया। १८७६ ई० से अब तक भारतीय आर्यभाषाओ का अध्ययन वैज्ञानिक ढग से हुआ है। मैने इस अध्ययन से पूरा लाभ उठाया है। कार्य की सीमा और पुस्तक के कलेवर को ध्यान मे रखते हुए मेरे लिए असंभव था कि मै तालिकाओ मे बोलियो के जो अनेक वैकल्पिक रूप दिये गये है, उन सब के बारे मे विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता। मेरा विश्वास है, तीसरे और चौथे अध्याय मे दिये गये पर्याप्त उदाहरणो और उनके प्रयोगो के आधार पर हिन्दी व्याकरण का विद्यार्थी स्वय उन वैकल्पिक रूपो का विवेचन कर सकेगा, जिनकी व्याख्या इस पुस्तक मे नही की गई है। वाक्य-रचना और कारक-प्रक्रिया के सम्बन्ध मे लिखते समय इस सस्करण मे अधिकाश स्थलो पर **"प्रेमसागर"** के स्थान पर राजा लक्ष्मणसिह, उपजिलाधीश-उत्तर पश्चिम प्रदेश (वर्त्तमान उत्तर प्रदेश) द्वारा हिन्दी मे अनुवादित 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' (शकुन्तला) से उदाहरण दिये गये है। कुछ समय पहले ही इस हिन्दी अनुवाद को भारतीय सेवाओ की प्रतियोगिता के लिए पाठ्य-पुस्तक बनाने का आदेश दिया गया। आवश्यकतानुसार अन्य आधुनिक रचनाओ से भी सहायता ली गई है। लाला श्रीनिवासदास द्वारा लिखित नाटक "रणधीर और प्रेममोहिनी" के उदाहरण कई स्थानो पर देखे जा सकते है। पात्रो ने अनेक बोलियो का प्रयोग किया है, अत इस नाटक का महत्त्व बढ गया है। कृत्रिम शैली और क्षेत्रीय प्रभाव के रहते हुए भी "प्रेमसागर" के अनेक उदाहरण इस संस्करण से नही हटाये गये। कारण यह है कि हिन्दू धर्म के पुराणानुमोदित भक्तिमार्ग के लिए इस पुस्तक का महत्त्व निकट भविष्य मे भी बना रहेगा। "प्रेमसागर" उत्तर भारत की बहुत ही लोकप्रिय धार्मिक पुस्तक है। हिन्दू धर्म का उपदेशक इस ग्रंथ की अवहेलना नही कर सकता।

हिन्दी व्याकरण का विद्यार्थी इस संस्करण मे अनेक परिवर्त्तन देखेगा। कई अनुच्छेदो का क्रम परिवर्त्तित हो गया है। कई स्थलो पर शब्द भी बदले गये है। मुझे आशा है, इन परिवर्त्तनो से पुस्तक मे अधिक स्पष्टता आई है। पाठक को ठीक-ठीक जानकारी पाने मे सहायता मिलेगी।

प्रथम संस्करण की आलोचना करने वालों के प्रति मै कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। इस आलोचना के कारण मैंने इस संस्करण मे अनेक दोषों का परिहार किया है। प्रथम संस्करण की पुनरावृत्ति से पहले मैंने कुछ व्यक्तियों को पत्र लिख कर जानना चाहा था कि आप इस पुस्तक के सम्बन्ध मे क्या विचार रखते हैं। भारतीय पण्डितो, उत्तर भारत मे काम करने वाले शासकीय अधिकारियो तथा ईसाई धर्म के प्रचारको ने अनेक सुझाव दिये। इन सुझावो का भी मैने पूरा-पूरा उपयोग किया है। सुझाव भेजने के लिए मैं निम्नलिखित व्यक्तियो के प्रति विशेष रूप से आभार प्रदर्शित करना चाहता हूँ—

भारतीय नागरिक सेवा के श्री एफ० एस० ग्रौज तथा श्री डब्लू० एम्० क्रुक, भारत मे ईसाई धर्म के प्रचारक माननीय जेन्कर सी० एम्० एस्० (मथुरा), माननीय कोले एल्० एम्० एस्० (अलमोडा), माननीय एडविन ग्रीव्स एल्० एम्० एस्० (मिर्जापुर), और स्काच मिशन राजपूताना के माननीय राब तथा माननीय ट्रेल। मेरे भूतपूर्व अध्यापक तथा इस समय के मित्र पण्डित लक्ष्मीनारायण ने गत सस्करण की भाँति इस सस्करण को प्रस्तुत करने मे भी बहुत सहायता पहुँचाई है।

बगाल नागरिक सेवा के सर्वश्री ग्रिअर्सन तथा बीम्स और डॉक्टर ए० डी० रुडोल्फ हार्नली का ऋण भी स्वीकार करता हूँ। बीम्स तथा हार्नली के तुलनात्मक व्याकरणो और पूर्वी भारत की बोलियो के सम्बन्ध मे ग्रिअर्सन की रचना के बिना विस्तृत जानकारी उपलब्ध करना असभव था। नेपाली के सबंध मे मेरे साधन बहुत सीमित थे। प्रयत्न करने पर भी मै लूक की 'दिव्यवार्त्ता' के नेपाली अनुवाद (ऐरामपुर प्रेस, बंगाल से प्रकाशित) के अतिरिक्त अन्य कोई रचना प्राप्त नही कर सका। जिस समय यह पुस्तक तैयार की जा रही थी, मुझे स्काटलैण्ड मिशन के माननीय ए० टर्नबुल एम्० ए०, बी० डी० (दार्जलिग) की 'नेपालीज ग्रामर' नामक पुस्तक मिली। इस पुस्तक की सहायता से मैने तालिकाओं मे दिये गये नेपाली के रूपो को सुधारा और बहुत से नये रूप जोडे। मै फ्रेडरिक पिनकाट के 'हिन्दी मैनुअल' का उल्लेख करना नही भूलूँगा। इस पुस्तक से वाक्य-रचना तथा मुहावरों और कहावतो को मैने ज्यों-का-त्यो लिया है। 'हिन्दी मैनुअल' की सामग्री से मेरे व्याकरण का महत्त्व बढा है।

अन्त मे मेरा यह लिखना अनुचित नही होगा कि मैने अपने व्याकरण के सशोधन तथा परिवर्द्धन का काम विपरीत परिस्थितियो मे किया। कई वर्षो तक मुझे भारत से बाहर रहना पडा। मुझे ऐसा पुस्तकालय उपलब्ध नही था जहाँ उत्तर भारत की भाषा के बारे मे उपयुक्त सामग्री मिलती। हिन्दी के पंडितो से मिलने-भेटने की सुविधा भी नही थी। भारत से बाहर एक बडे गिरजाघर के कार्यो को निबटाने के बाद हिन्दी के अध्ययन के लिए पर्याप्त समय नही मिलता था। इन सब कारणो से इस पुस्तक मे अब भी बहुत-सी त्रुटियाँ रह गई है। मुझे इस बात का ज्ञान भी है कि पुनरावृत्ति के बाद भी कई स्थानो पर मै पूरी जानकारी नही दे सका। यदि मै भारत मे होता तो सभवत. इस पुस्तक की सभी त्रुटियो का परिहार हो जाता।

इस व्याकरण के प्रथम सस्करण के स्वागत मे मेरी जो प्रशंसा की गई, उससे मुझे बहुत प्रोत्साहन मिला। मुझे विश्वास है, जिन लोगों के लिए यह सशोधित और परिवर्द्धित सस्करण छापा जा रहा है, वे इसका कम स्वागत नही करेगे।

तोरंतो, कनाडा
सितंबर १८९२

—एस० एच० केलाग

मूल पुस्तक के प्रथम संस्करण की भूमिका

भारत के २५ करोड निवासी बीस से अधिक भाषाएँ बोलते है। इनमे छह या सात करोड लोग, अर्थात् देश की कुल आबादी का चौथाई भाग हिन्दी भाषी है।[1] उत्तर भारत मे हिन्दुओ के काशी, प्रयाग, मथुरा जैसे महान् धार्मिक केन्द्रो, हिमालय के उच्च शिखरो पर स्थित केदारनाथ और बदरीनाथ जैसे पवित्र क्षेत्रो, महाराज सिन्धिया, महाराज जयपुर तथा अन्य शक्तिशाली राजपूत नरेशो की स्वतत्र रियासतो, सक्षेप मे कहा जाये तो २४८००० वर्गमील मे बसनेवाली आबादी हिन्दी बोलती है। केवल बडे नगरो और ऐसे स्थानो को अपवाद माना जा सकता है जहाँ मुसलमानो का प्रभाव लबे समय तक रहा है, या इस समय भी जहाँ कार्यालयो मे मुसलमानो की भाषा—उर्दू—का प्रयोग हो रहा है, ऐसे स्थानो पर बहुत से हिन्दी भाषी लोग अपनी भाषा की अवज्ञा करते पाये जाते है। इन लोगो ने फारसी बहुल उर्दू को प्रभावित भी किया है।

उत्तर भारत की प्रादेशिक राजधानियाँ, जिलानगर और ऐसे कस्बों मे जहाँ सरकारी कर्मचारी रहते है, हिन्दी ही बोली जाती है। इसके अतिरिक्त इतने बडे क्षेत्र मे बोली जाने वाली भाषा के सम्यक् ज्ञान और ऐसे व्याकरण के महत्त्व को अस्वीकार नही किया जा सकता जो उसकी प्रमुख विशेषताओ को प्रकट कर सके। सरकार ने जानते हुए भी कि यह बोली (उर्दू) केवल उत्तर भारत मे बसने वाले मुसलमान बोलते है तथा यह व्याकरण की दृष्टि से पछाँह मे बोली जाने वाली भाषा की एक शैली मात्र है, इसे राजभाषा का दर्जा दिया है। भारत आने वाले विदेशी उर्दू का ज्ञान प्राप्त करते है। वास्तव मे यह उस जीवित आर्य भाषा की पूर्णतया अवहेलना है. जिसका उपयोग हिन्दुओ का विशाल समाज करता है: बहुत से लोगो का विश्वास है कि जिस उर्दू का ज्ञान उन्होने सम्पादित किया है, वह उत्तर भारत के हिन्दू तथा मुसलमानो की समान रूप से घरेलू भाषा है, हिन्दी और उर्दू भिन्न भाषाएँ नही है, इन दोनो मे यदि कोई अन्तर है भी तो वह केवल लिपि के कारण है, वस्तुत हिन्दी कोई भाषा नही है, उसका अस्तित्व केवल "हिन्दी" नाम मे है। इस मान्यता के निराकरण के लिए किसी तर्क की आवश्यकता नही है। मैं समझता हूँ, उपर्युक्त भ्रम को दूर करने के लिए सज्ञा और क्रिया के रूपो की तालिका पर्याप्त है।

दूसरी ओर ऐसे लोगों की कमी नही है जो हिन्दी के पृथक् अस्तित्व को तो दृढता के साथ स्वीकार करते है, किन्तु उर्दू और हिन्दी के पारस्परिक सम्बन्ध को लेकर भ्रम मे पडे हुए है। जब मै पहली बार

---

१. हिन्दी बोलने वालों की यह अनुमानित संख्या संभवतः बहुत कम है। श्री कस्ट का कहना है—"भारत मे हिन्दीभाषियों की संख्या ८ करोड़ से कदापि कम नहीं है।"—(माडर्न लैंग्वेजेस आफ द ईस्ट इंडीज, पृष्ठ ४६)। यदि उर्दू के नाम से संबोधित फारसी बहुल हिन्दी या हिन्दुस्तानी को हिन्दी की एक शैली मान लिया जाए तो हिन्दीभाषियों की संख्या १० करोड़ हो जाती है। संसार में चीनी भाषा के बोलनेवालों के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा के बोलनेवालों की संख्या इतना अधिक नहीं है।

भारत आया था, मुझे बार-बार विश्वास दिलाया गया था कि हिन्दी और उर्दू का अन्तर केवल शब्दावली पर आधारित है। यदि यह धारणा केवल ऐसी धार्मिक तथा शैक्षणिक पुस्तको तक सीमित रखा जाए जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से विदेशी लेखको ने लिखी है, तो किसी को आपत्ति नही होगी। कठिनाई यह है कि विदेशी लेखको ने यह सोचा था कि यदि उर्दू मे प्रयुक्त अरबी-फारसी के शब्दो के स्थान पर सस्कृत शब्दो का प्रयोग किया जाए तो उनकी भाषा शुद्ध हिन्दी कहलाएगी। इसलिए एक अद्भुत, किन्तु बहुमान्य धारणा बन गई है कि हिन्दी की शुद्धता को इस बात से नापा जा सकता है कि उसमे फारसी-अरबी शब्दो का अनुपात कितना है। इस मापदड से रामायण की भाषा को जाँचा जाए तो पता चलेगा तुलसीदास जी शुद्ध हिन्दी लिखने मे असफल रहे। इसी तरह प्रतिभाशाली कबीर की हिन्दी भी शुद्ध नही मानी जाएगी। इन दोनो लेखको ने अरबी-फारसी के शब्दो का प्रयोग किया है। यह मानना पडेगा कि ये दोनो हिन्दी के कवि नही है। किन्तु अरबी-फारसी के शब्दो को हटा कर शुद्ध हिन्दी बनाने की प्रवृत्ति जल्दी समाप्त हो गई। शुद्ध हिन्दी की सनक मे जब कोई व्यक्ति बोलते समय सस्कृत शब्दो की भरमार करता है तो ग्रामवासी अपने को अपमानित-सा अनुभव करते हुए, ताकने लग जाता है। यह मानना होगा कि गाँव मे रहने वाला उर्दू मे प्रयुक्त अरबी-फारसी के शब्दो की तुलना मे सस्कृत के शब्दो को कम समझता है, किन्तु इसका यह तात्पर्य नही कि वह उर्दू बोलता है। यह अलग बात है कि वे हमारी अज्ञानता पर दया प्रदर्शित न कर रहे हो। देहात के लोगो की हिन्दी बहुत-कुछ हम लोगो की समझ मे आ जाती है, किन्तु हमारी हिन्दी उनकी समझ से बाहर है।

विचार करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सामान्य जनता की भाषा शब्दावली की अपेक्षा व्याकरण के कारण उर्दू से अधिक भिन्न है। इसी तरह साहित्य की दृष्टि से तुलसी, सूर अथवा कबीर की हिन्दी और आधुनिक उर्दू का अन्तर कुछ शब्दो पर आधारित नही है। यह बात भी नही है कि हिन्दी के इन महाकवियों ने अरबी-फारसी के शब्दो को चुन-चुन कर निकाला है (ऐसा उन्होंने किया भी नही)। रामायण की दुर्बोधता और विशेषता दोनो तात्त्विक है। इन दोनो का सम्बन्ध केवल शब्दावली से न होकर भाषा के व्यावहारिक रूप और वाक्य-रचना से है।

हिन्दी और उर्दू की विभाजक रेखा को पहचानने के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध नही है। उत्तर भारत के हिन्दुओ की साहित्यिक तथा ठेठ बोल-चाल की भाषा का कोई व्याकरण नही है। इस दिशा मे अब तक प्रयत्न भी नही किया गया। इस बात पर किसी का ध्यान भी नही गया। श्री एथरिंगटन ने अपने व्याकरण मे हिन्दी के उसी रूप का विवेचन किया है जो व्याकरण की दृष्टि से उर्दू के स्वरूप से साम्य रखता है। उन्होंने अपनी पुस्तक के ताजा संस्करण मे ब्रज की संज्ञाओ तथा धातुओ की रूपावली की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की है। डॉक्टर बेलटाइन ने अपने ब्रजभाषा के सक्षिप्त व्याकरण और प्रोफेसर दे तासी ने अपनी कृति "ग्रामेर दे ल लैंग्वे हिंदोई" मे भी उर्दू की जानकारी के साथ-साथ ब्रज-भाषा के मात्र रूप दिये है। सभवतः ये रूप फोर्ट विलियम कॉलेज के लिए शासन द्वारा प्रकाशित "हिन्दी व्याकरण" से लिए गए है। अब तक हिन्दी के सभी वैयाकरणो ने उस पूरबी हिन्दी की समानरूप से उपेक्षा की है, जिसका प्रतिनिधित्व तुलसीदास की रामायण करती है, यह अलग बात है कि उसमे पछाँह की बोली का भी मिश्रण हुआ है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि विश्वव्यापी लोकप्रियता और जनता पर पडे प्रभाव की दृष्टि से तुलसीदास की रामायण के साथ कबीर के अतिरिक्त हिन्दी के किसी कवि की कृति नही रखी जा सकती। यद्यपि पूरबी बोली पछाँह की ब्रज की अपेक्षा हिन्दी की अधिक महत्त्वपूर्ण और उत्कृष्ट शैली है, फिर भी

श्री बाटे की उल्लेखनीय कृति से पहले न तो कोई ऐसा व्याकरण छपा और न कोई शब्दकोश ही सामने आया, जिसमे कम-से-कम इस बात का संकेत मिलता हो कि तुलसीदास अथवा इसी तरह के अन्य लेखको की रचनाओ मे व्याकरण की दृष्टि से विशिष्ट रूप तथा उल्लेखनीय वाक्य-विन्यास विद्यमान है।[1] उदाहरण के लिए "ब" से बनने वाले भविष्यकालिक रूप के सम्बन्ध मे हिन्दी के वैयाकरणो ने क्या लिखा है? यह रूप रामायण ही नही, पूरबी बोलियो मे सामान्य रूप से मिलता है। किसी भी व्याकरण मे क्या इस तथ्य का उल्लेख मिलता है कि उर्दू और पछाँह की बोलियो की सकर्मक क्रिया के कर्मवाच्य, पूर्णता बोधक भूतकाल के साथ कर्त्ताकारक मे प्रयुक्त होने वाला परसर्ग 'ने' पूरब की बोलियो मे प्रयुक्त नही होता? क्या किसी ने इस बात की सूचना दी है कि 'ने' का प्रयोग तुलसीदास ने सकर्मक क्रिया के किसी भी काल मे नही किया है?

असंदिग्ध रूप मे कहा जा सकता है कि अध्ययन के लिए सहायक सामग्री के अभाव मे यूरोप के निवासियो मे परिनिष्ठित हिन्दी के प्रति उदासीनता बढती जा रही है। इस स्थिति ने बहुत से यूरोपवासियो को तकल्लुफी भाषा-उर्दू के विशेष अध्ययन के लिए प्रेरित किया है। यद्यपि शासन ने हिन्दी के महाकवि तुलसीदास की रचनाओ के सर्वाङ्गीण अध्ययन के लिए पुरस्कार की घोषणा की है, किन्तु नागरिक सेवा के अनेक सदस्यो ने अरबी और फारसी के सम्यक् ज्ञान के लिए घोषित पुरस्कारों को पाने का प्रयास किया। मुसलमानो के अतिरिक्त अन्य भारतीयो के लिए ये दोनो भाषाएँ पूर्णतया विदेशी है। सामान्य जनता के धार्मिक विचारो को प्रभावित करने वाले ईसाई धर्मप्रचारको ने भी अपने को एक ऐसे काव्य से अपरिचित रखा है जो किसी अन्य रचना की अपेक्षा उत्तर भारत के हिन्दुओं को धार्मिक दृष्टि से अनुप्राणित करने का सबसे सशक्त और सजीव साधन है। सामान्य जनता की भाषा मे लिखे गए इस महाकाव्य की उपेक्षा का मुख्य कारण यह है कि कोई ऐसी पुस्तक उपलब्ध नही है, जिसकी सहायता से छात्र इसकी व्याख्या कर सके। मैं अपने कष्टप्रद अनुभव से जानता हूँ कि भारत के किसी छोटे कस्बे में भरोसे के लायक पण्डित का मिलना भी आसान नही, जो रामायण अथवा इसी प्रकार के किसी अन्य काव्य को समझाने मे अध्ययन-कर्त्ता को सहायता दे सके। जो व्यक्ति किसी जिला-नगर मे नियुक्त होता है, उसके लिए भी स्थानीय हिन्दुओ की भाषा सीखना सरल नही है। अधिकांश बोलियो मे साहित्य नही है, इन बोलियों की स्वाभाविक विशेषताओ की चर्चा करना आवश्यक नही है। मुझे इतना ही कहना है कि उत्तर भारत मे राजकाज की भाषा के नाते उर्दू ने जो महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है, उसे दृष्टि मे रख कर इन बोलियो की उपेक्षा मूर्खतापूर्ण और निरर्थक है। इस बात की आवश्यकता है कि मजिस्ट्रेट लोग अदालतो मे देहात के गवाहो को सुन सके और ईसाई धर्म के प्रचारक बिना तीसरे की सहायता लिए प्रतिपक्षियो से शास्त्रार्थ कर सके ये प्रतिपक्षी ईसाई धर्म को समझना चाहते है।

अब तक ऐसी कोई पुस्तक नही लिखी गई, जिससे यह समझा जा सके कि उत्तर भारत की बोलियाँ किस सीमा तक भिन्नता रखती है और उनके भेदों का वास्तविक स्वरूप क्या है? जो व्यक्ति सामान्य

---

[1] प्रसन्नता की बात है कि अब (१८९२ ई० में) यह कथन सत्य नहीं रहा। कुछ समय पहले ही श्री पिनकाट की उत्कृष्ट कृति "हिन्दी मैनुअल" छपी। बीम्स के विशाल ग्रंथ और श्री ग्रिअर्सन तथा डॉक्टर हार्नली के व्याकरण के बारे में लिखने की आवश्यकता नहीं है।

जनता की बोलचाल और साहित्य की भाषा का ज्ञान पाना चाहता है, बोलियो के भेद-उपभेद सदैव उसे भ्रम मे डालते है। इन भेद-उपभेदो के कारण विद्यार्थी निरुत्साह हो जाता है।

मैने इन कठिनाइयो को धीरे-धीरे पार किया है। जैसा भी पण्डित मिला, मैने हिन्दी का अध्ययन जारी रखा। मै बोलियो के भेदो को लिखने के साथ-साथ उन्हे व्यवस्थित रूप देता रहा.। पहले मेरा विचार पुस्तक लिखने का नही था।। मैने अपने उपयोग के लिए ही टिप्पणियाँ तैयार की थी। यह काम कई वर्षो तक जारी रहा और इस तरह जो टिप्पणियाँ जमा हुई, उन्होने पुस्तक का रूप धारण कर लिया। मेरा यह उद्देश्य कभी नही रहा कि हिंदी व्याकरण की जो सामग्री पहले से उपलब्ध है, उसे केवल नये ढग से प्रस्तुत कर दूँ। मै यह चाहता था कि हिन्दी-व्याकरण मे जो आवश्यक जानकारी नही दी गई है, उसकी पूर्त्ति और जो त्रुटियाँ रह गई है, उनका निराकरण किया जाए। इस दृष्टिकोण से मैने उर्दू-हिन्दी के उपलब्ध व्याकरणो को ध्यानपूर्वक पढा।

विशेष रूप से मैंने आधुनिक परिनिष्ठित हिन्दी के उन मूलभूत तथ्यो का अध्ययन किया जो हिन्दी की अन्य बोलियो मे भी समान रूप से विद्यमान है। मेरी पुस्तक मे विद्यार्थी ऐसी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे जो अब तक की प्रकाशित किसी व्याकरण मे नही है। यहाँ मै निम्नलिखित विवरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ—

१ व्यावहारिक कारणो से मैने इस व्याकरण के लिए हिन्दी के उस रूप को आधार बनाया है जो उर्दू से बहुत-कुछ साम्य रखता है। छात्रो का ध्यान कई कारणो से हिन्दी का यही रूप आकर्षित करता है। पूरे उत्तर भारत मे फैले हुए हिन्दी भाषी क्षेत्र मे सामान्य भाषा के रूप मे हिन्दी का यही रूप प्रचलित है। शिक्षा-विभाग के पदाधिकारियो ने हिन्दी के इसी रूप को शिक्षा के माध्यम के रूप मे स्वीकार किया है। यही कारण है, मैने सबसे पहले हिन्दी की इसी शैली पर विचार किया है। इन्ही कारणो से हिन्दी की इस शैली को परिनिष्ठित बोली के नाम से सबोधित किया गया।[1] इस परिनिष्ठित हिन्दी अथवा खडी बोली को मैने प्राथमिकता अवश्य दी है, किन्तु हिन्दी साहित्य की दो परिमार्जित बोलियो—ब्रज और पूरबी[2] हिन्दी का विवेचन भी उसी ढग से किया है। हिन्दी के विद्वान् के लिए इन दोनो बोलियो का महत्त्व खडी बोली से कम नही है। ब्रज भाषा पछाँह की बोलियो का प्रतिनिधित्व करती है तो पुरानी पूरबी पूरब की बोलियो का। इस पुस्तक मे इन दोनो बोलियो की शब्द रूपावली और धातु रूपावली ही नही, वाक्य-विन्यास से भी सम्बन्धित अगणित भेदो को वर्गीकरण के साथ प्रस्तुत किया गया है। इन दोनो बोलियो के भेदो की आपस मे तथा खडी बोली के रूपो के साथ तुलना की गई है। इस बात का दावा नही किया जा सकता कि हिन्दी की सभी बोलियो के विभिन्न रूप इस पुस्तक मे समाविष्ट है। हिन्दी-लेखको की अनगिनत अनियमितताओ से कोई एक व्यक्ति परिचित नही हो सकता। फिर भी यह आशा की जा सकती है कि इस

---

[1] हिन्दी के इस रूप को प्रायः "खड़ी बोली" अथवा "शुद्ध बोली" के नाम से सम्बोधित किया जाता है। कुछ यूरोपीय विद्वानों ने "हाई जर्मन" के अनुकरण पर इसके लिए "हाई हिन्दी" नाम का भी प्रयोग किया है।

[2] हार्नली ने पूरबी अथवा पूर्वी लिह 'बैसवाड़ी" नाम का प्रयोग किया है। मुझे यह नाम अधिक उपयुक्त लगता है। बैसवाड़ी का तात्पर्य है बैसवाड़ा की बोली। बैस नामक जाति के कारण एक विशेष क्षेत्र बैसवाड़ा कहलाता है।

व्याकरण की सहायता से प्रेमसागर, राजनीति तथा रामायण के विद्यार्थी को बहुत कम स्थलो पर निराश होना पडेगा। सभव है, उपर्युक्त तीन पुस्तको के अतिरिक्त अन्य किसी पुस्तक मे प्रयुक्त कोई रूप रह गया हो, किन्तु इस बात का प्रयास किया गया है कि कोई सामान्य रूप छूटने न पाये। इस सामान्य रूप के सहारे थोडे-बहुत परिवर्त्तन को समझा जा सकता है।

२. साहित्यिक हिन्दी के अतिरिक्त इस पुस्तक मे अपेक्षाकृत कम महत्त्व की नौ-दस बोलियो के रूप भी दिये गये है। मेरा विश्वास है, इस पुस्तक के द्वारा पहली बार हिन्दी का पूर्ण स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है। मै यह मानता हूँ कि बोलियो के स्थानीय उपभेदो का समावेश इस पुस्तक मे नही हो सका, किन्तु मुझे विश्वास है पूर्व मे बगाली से लेकर पश्चिम मे गुजराती तथा सिन्धी तक फैली हुई हिन्दी भाषा की सभी जीवित शैलियो के बारे मे बहुत-कुछ जानकारी इस पुस्तक मे आ गई है। अगणित बोलियो को दो-तीन प्रमुख भाषा शैलियों के साथ जोडा गया है। यदि सभी बोलियो का विवरण भेद-उपभेद के साथ दिया जाता तो अत्यधिक विस्तार सहायता पहुँचाने के स्थान पर विद्यार्थी को उलझन मे डाल देता। मेरा विश्वास है, यह व्याकरण उन विदेशी लोगों को मूल्यवान् सहायता पहुँचाएगा, जो देहात मे नियुक्त है और बोलचाल की भाषा को समझना चाहते है। यह सच है कि बोलचाल की स्थानीय भाषा को केवल पुस्तकों से नही सीखा जा सकता, किन्तु इसमे भी सन्देह नही कि किसी बोली का ज्ञान प्राप्त करने में व्याकरण से सहायत्ता अवश्य मिलती है। साहित्यिक दृष्टि से भी ग्रामीण बोलियाँ महत्त्वहीन नही है। साहित्य मे कुछ स्थल ऐसे अवश्य आते है, जिनकी व्याख्या स्थानीय बोली की सहायता से की जा सकती है। जहाँ तक भाषावैज्ञानिको का प्रश्न है, गँवारू और ऊबड-खाबड बोलियाँ मूल्यवान् फल प्रदान करती है।[1]

३. मैने उदाहरणों पर विशेष ध्यान दिया है। व्याकरण मे उदाहरणो से अपुष्ट लक्षण का उल्लेख असन्तोषजनक है। यदि कोई लेखक किसी पराई भाषा का व्याकरण लिख रहा है और वह किसी लक्षण अथवा नियम के लिए अपनी ओर से उदाहरण देता है तो इससे विद्यार्थी बहुत कम उत्साहित होते है, फिर चाहे ये उदाहरण भाषा की दृष्टि से कितने ही शुद्ध क्यो न हो। मैने यह नियम बना लिया कि व्युत्पत्ति अथवा वाक्य-रचना के बारे मे जब कोई मान्यता प्रस्तुत की जाये तो उसका समर्थन एक अथवा एक से अधिक उदाहरणो से होना चाहिए। ये उदाहरण बिना किसी अपवाद के देशी लेखको की पुस्तको से चुने जाने चाहिएँ। यदि उदाहरण किसी पुस्तक मे नही मिला है तो लोगो के मुँह से निकलने वाली भाषा को प्रमाण माना गया है। मैने विदेशी लेखको की पुस्तको से एक भी उदाहरण नही लिया। यूरोपीय विद्वानो ने पौर्वात्य भाषा पर कितना ही अधिकार क्यो न पा लिया हो, उन्हे मातृभाषा मे लिखने वाले लेखको से अधिक विश्वस्त नही माना जा सकता। हो सकता है विदेशी लोगो की लिखी पुस्तको—निश्चित रूप से इस तरह की पुस्तके बहुत कम है—मे अनुभूति व्यक्त करने का ढग ठीक हो और मुहावरो का प्रयोग भी उचित रूप से किया गया हो, किन्तु जो लोग हिन्दी पढते समय इस प्रकार की पुस्तको को निर्विवाद मान लेते है, उन्हे कई स्थलों पर धोखा खाना पडता है। प्रत्येक स्थल पर दिये गये उदाहरणो की बहुलता को

---

[1] व्यावहारिक कारणों से मैंने कुछ बोलियों का नामकरण लीक से हट कर किया है। प्रचलित नामों के स्थान पर मैंने उन बोलियों का नाम संबंधित संभाग अथवा प्रदेश के नाम पर रखा है। "अवधी" का तात्पर्य उस बोली से है जो अवध में बोली जाती है। "रिवाई" रीवा (इस समय मध्यप्रदेश) रियासत में बोलते है। यह उल्लेखनीय है कि राजपूताना में मेवाड़ की बोली 'मेर' लोग भी बोलते हैं। मेरों और मेवाड़ से सम्बन्धित इस बोली को मेरवाडी या मेवाड़ी कह सकते है।

इस पुस्तक की विशेषता माना जा सकता है। उदाहरण बहुलता के कारण पुस्तक के कलेवर के साथ-साथ मूल्य मे भी वृद्धि हुई है, किन्तु यह मानना पडेगा कि छात्र के लिए इस ग्रथ का व्यावहारिक महत्त्व भी बहुत बढ गया है। साहित्यिक हिन्दी के लिए मुख्य रूप से **प्रेमसागर** और **रामायण** से उदाहरण लिये गये है। इन दोनो पुस्तको के चुनने का एक कारण तो यह है कि शासन[1] ने नागरिक और सैनिक सेवा के लिए आयोजित होने वाली परीक्षाओ के पाठ्यक्रम मे इन दोनो पुस्तको को रखा है। इसीलिए इन दोनो ग्रन्थो के व्याकरण और मुहावरो से सम्बन्धित सामग्री की बहुत माँग की जा रही थी। मै विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि भारतीय सेवाओं के लिए जो लोग आवेदन-पत्र भरते है, या भारत मे प्रशासकीय पदो पर नियुक्त होने वाले अधिकारियों के लिए जो लोग प्रतियोगिता मे सम्मिलित होते है, उनके लिए उदाहरण-बहुलता के कारण यह व्याकरण बहुत सहायक सिद्ध होगा। इन दोनो पुस्तको से उदाहरण लेने का औचित्य एक दूसरे कारण से भी सिद्ध किया जा सकता है—सम्पूर्ण हिन्दू समाज मे इन दोनो ग्रन्थो की लोकप्रियता को अस्वीकार नही किया जा सकता। उर्दू जानने वाले लोगो ने 'प्रेमसागर' के विरुद्ध बहुत-सी बाते कही है। रामायण की भाषा पर भी कम आक्षेप नही हुए है, किन्तु इन दोनो पुस्तको की आलोचना करने वाले प्रत्येक बात पर या तो अग्रेजो की रुचि को ध्यान मे रखते है या उन्होने मुसलमानो के दृष्टिकोण को स्वीकार किया है। सचाई यह है कि पढा-लिखा हो चाहे अनपढ, ऊँची जाति का व्यक्ति हो चाहे नीची जाति का, सभी लोग समान रूप से इन दोनो पुस्तको की शैली की प्रशसा करते है। किसी ब्राह्मण के मुख से प्रेमसागर के नपे-तुले, लय युक्त गद्य को उत्सुकता से सुनने वाले देहाती निरक्षर लोगो की भीड को कही भी देखा जा सकता है। रामायण की क्लिष्टता के बारे मे बहुत-कुछ कहा जाता है, किन्तु ईसाई धर्म का प्रत्येक प्रचारक अनुभव करता है कि गगा घाटी मे उपदेश देते समय अथवा आपसी बातचीत मे भी यदि रामायण से उदाहरण प्रस्तुत किया जाये तो ठेठ ग्रामीण व्यक्ति मे भी प्रशसा का भाव जागता है। प्रशासनिक अधिकारी, विशेष रूप से ईसाई धर्म का प्रचारक ऐसी लोकप्रिय पुस्तक से अपरिचित नही रह सकता, जिसने जनता को इतना अधिक प्रभावित किया है। यदि मेरी पुस्तक महाकवि तुलसीदास की कृतियो के अध्ययन मे सहायक सिद्ध हो और लोग इसके कारण रामायण के अध्ययन मे प्रवृत्त हो तो मै समझूँगा मेरे लिखने का बहुत बडा उद्देश्य पूरा हो गया।

यदि मैंने अधिकाश उदाहरण प्रेमसागर और रामायण से लिये है तो इसका यह तात्पर्य नही है कि अन्य पुस्तको की अवहेलना की गई है। मैने निम्नलिखित पुस्तको से भी सहायता ली है—

सूत्र शैली मे लिखे गये ब्रजभाषा के गद्य की पुस्तक **"राजनीति"**, पूरबी बोली मे लिखी गई कबीर की कविता, पछाँही हिन्दी का सुखबिलास, पण्डित नीलकण्ठ गोरे शास्त्री का **'षड्दर्शन दर्पण'**, कालिदास के सस्कृत नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' का व्यावहारिक भाषा मे किया गया कण्व लक्ष्मणसिह का उत्कृष्ट अनुवाद,[2] मारवाडी को मुश्किल से साहित्यिक बोली कहा जा सकता है, इसकी एक रचना तक मेरी पहुँच

---

[1] मेरे इस कथन के लिखे जाने के बाद परीक्षा के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम से "प्रेमसागर" हटा दिया गया।

[2] श्री फ्रेडरिक पिनकाट ने इसका सम्पादन प्रशंसनीय ढंग से किया है। उन्होने यथास्थान टिप्पणियों के अतिरिक्त अंत में शब्दकोश भी दिया है। यह पुस्तक हिन्दी के प्रत्येक विद्यार्थी के पास रहनी चाहिए

हो सकी, वह है—स्काच प्रेसबीटेरिअन मिशन, ब्यावर (राजस्थान) के श्री राब्सन द्वारा सम्पादित "मारवाडी ख्याल (नाटक)"।

४. इस व्याकरण की चौथी विशेषता भाषावैज्ञानिक टिप्पणियो मे देखी जा सकती है। हिन्दी के विभिन्न रूपो के उद्भव और विकास’ ने ५० पृष्ठ लिये है। मैने यह बताने का प्रयास भी किया है कि विभिन्न बोलियो के रूपो मे परस्पर क्या सम्बन्ध है। सस्कृत और विविध प्राकृतो से भी उन रूपों की तुलना की गई है। इस क्षेत्र मे श्री बीम्स और हार्नली जैसे विद्वानो से पहले भी कई व्यक्तियो ने पर्याप्त काम किया था। मै यह नही मानता कि मैंने प्रकट अनियमितताओ को कुछ कम किया है या हिन्दी के विकास को ठीक तरह से समझा दिया है। मैने किसी निर्णय तक पहुँचाने वाले तथ्यो को बहुत झिझक के साथ लिपिबद्ध किया है, किन्तु जब मुझे पता चला कि बीम्स और हार्नली जिस निर्णय पर पहुँचे है, स्वतत्र रूप से प्रयास किए जाने के बाद मेरे निष्कर्ष भी उनसे भिन्न नही है तो मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

५ इस पुस्तक मे सामग्री और व्यवस्था की दृष्टि से बहुत-सी नवीनताएँ दिखाई देगी। अब तक जो कुछ लिखा गया उसकी तुलना मे मैने अधिक सुनिश्चितता से काम लिया है। यदि कोई यह सोचे कि मैनेसंशोधन के मामले मे अतिवाद का आश्रय लेकर बहुत-सी गलतियाँ की है. तो मै इतना ही कहना चाहूँगा कि मैंने कुछ अच्छे अधिकारी विद्वानो के विवेचन को स्वीकार किया है और इस स्वीकृति पर मुझे प्रसन्नता हुई है। क्रिया के कालिक रूपो का मैने जिस ढग से नामकरण किया है, वे पूर्ववर्त्ती व्याकरणो मे प्रयुक्त नामो की तुलना मे अधिक तात्त्विक है। मेरे नामो मे समरूपता देखी जा सकती है। नामकरण के इस नये ढंग को हिन्दी के विद्वान् अवश्य सराहेगे। मैने हिन्दी के रूपो का विकास बताते समय प्रत्ययो की सूची ही तैयार नही की है। पारस्परिक सम्बन्ध और साम्य को ध्यान मे रख कर रूपो का वर्गीकरण भी किया है। इसी तरह समास वाला परिच्छेद भी सर्वथा नया प्रयास है। आश्चर्य है, जहाँ तक मेरी जानकारी है किसी भी व्याकरण मे भाषा के इस महत्त्वपूर्ण अंग पर कुछ नही लिखा गया। कविता के किसी भी पृष्ठ की व्याख्या के लिए समासो की जानकारी अनिवार्य है। वाक्य-विन्यास पर विचार करते समय कविता मे प्रयुक्त सरचना पर भी प्रकाश डाला गया है। यह सरचना कविता का विशेष रूप से पुरानी हिन्दी की कविता का मुख्य लक्षण मानी जाती है। संयुक्त वाक्यो के बारे में भी स्वतत्र रूप से पहली बार जानकारी दी गई है।

हिन्दी के विद्यार्थी की व्यावहारिक आवश्यकताओ को ध्यान मे रख कर छन्दशास्त्र से सम्बन्धित उचित जानकारी दी गई है। हिन्दी के छन्दशास्त्र पर अपेक्षित ध्यान नही दिया जा रहा है। निश्चित रूप से यह अध्याय विद्यार्थियो के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। यूरोप की भाषाओ के लिए छन्दशास्त्र की जानकारी उतनी आवश्यक नही है, जितनी हिन्दी के लिए। हिन्दी मे देशी लेखक की लिखी गद्य रचना बहुत-कुछ दुर्लभ है। दुर्भाग्यवश अग्रेजी मे हिन्दी छन्दशास्त्र पर कोई पुस्तक नही थी। भारतीय लेखको की छन्द पर लिखी पुस्तके एक तो शास्त्रीय ढग की है, दूसरे उनमे सकेतो से काम लिया गया है। इन दोनो कारणो से विद्यार्थियो की बात दूर, विद्वानो के लिए भी ये पुस्तके दुर्बोध बनी हुई है। यदि यह समझा गया कि मैंने काव्य के द्वार मे प्रवेश करने वाले व्यक्तियो के मार्ग से कॉटे हटाये है और ईसाई धर्म के प्रचारको तथा अन्य लोगो का ध्यान एक आकर्षक विषय की ओर आकर्षित हुआ है, तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।

अन्त मे, मै कहना चाहता हूँ कि यह व्याकरण एक ओर तो हिन्दी के नौसिखियों को और दूसरी ओर उच्च स्तर के हिन्दी विद्यार्थियोंको ध्यान मे रख कर लिखा गया है। हिन्दी की पढ़ाई प्रारंभ करनेवालो

के लिए आवश्यक आधारभूत जानकारी मोटे अक्षरों मे छापी गई है। उच्च स्तर के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सामग्री छोटे अक्षरो मे छपी है। बोलियों की जानकारी भी छोटे अक्षरो मे मुद्रित हैं। इस अंश की छपाई मे समान टाइप का प्रयोग हुआ है।

जिस समय यह व्याकरण लिखा जा रहा था, ईसाई धर्म के अनेक प्रचारको और बहुत-से प्रशासनिक अधिकारियो ने मुझे काम जारी रखने के लिए प्रोत्साहित किया। मैं उनके प्रति हर्षपूर्वक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। मारवाडी और राजपूताना की अन्य बोलियो के सम्बन्ध मे मुझे टोडगढ (राजपूताना) मे स्काच प्रेसबीटेरिअन मिशन के प्रचारक श्री डब्लू० राब् ने आवश्यक सामग्री भेजी। इन बोलियो से सम्बन्धित प्रूफ भी उन्ही ने देखा। मै विशेष रूप से उन्हे हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। इस पुस्तक को राजपूताना की बोलियो के सम्बन्ध मे जो श्रेय प्राप्त है, उसके वास्तविक अधिकारी श्री राब् है। श्री बीम्स सी० एस्० (कटक) ने मूल्यवान् सुझाव देने के अतिरिक्त मुझे काम करने के लिए प्रोत्साहित किया, मै उनके प्रति भी आभार प्रदर्शित करता हूँ। इसी तरह उपयोगी सुझावों के लिए मै बेप्टिस्ट मिशन प्रयाग के श्री बाटे का भी आभारी हूँ।

प्रयाग, उत्तर-पश्चिम प्रदेश, भारत
दिसम्बर, १८७५ ई०

एस० एच० केलाग

सहायक पुस्तकें

१. दे तासी—ग्रामेर दे ला लैंग्वे हिन्दोइ
२. पिनकाट—हिन्दी मैनुअल
३. ग्रिअर्सन—इट्रडक्शन टु द मैथिली लैंग्वेज आफ नार्थ बिहार
४. ग्रिअर्सन—सेवन ग्रामर्स आफ द डाइलेक्ट्स ऐंड सब डाइलैक्ट्स आफ द बिहारी लैंग्वेज
५ फौर्ब्स—हिन्दुस्तानी ग्रामर
६. प्लैट्स—हिन्दुस्तानी ग्रामर
७. डावसन—हिन्दुस्तानी ग्रामर
८. मोनेर-विलियम्स—इंट्रडक्शन टु हिन्दुस्तानी
९. टर्नबुल—नेपाली ग्रामर
१०. न्यूटन—पजाबी ग्रामर
११ शापुरजी एदलजी—गुजराती ग्रामर
१२. स्टेवेनसन—मराठी ग्रामर
१३. बैल्लैर्स और अश्केडर—मराठी ग्रामर
१४. ट्रम्प—सिन्धी ग्रामर
१५. शाम चरण—बंगाली ग्रामर
१६ मोनेर-विलियम्स—सस्कृत ग्रामर
१७ लैस्सेन—इंस्टीट्यूशनेस् लिग्वे प्राकृतिके
१८ वररुचि—प्राकृत प्रकाश (कोवेल द्वारा सम्पादित)
१९. बीम्स—कम्परेटिव ग्रामर आफ द आर्यन लैंग्वेजेस आफ इडिया
२० हार्नली—ग्रामर आफ द गौडियन लैंग्वेज़

छन्द सम्बन्धी अध्याय के लिए

१. छन्दार्णव
२. छन्दोदीपिका
३. कवि हीराचंद कांजी—श्री पिगलादर्श
४. एदरिंगटन की 'हिन्दी ग्रामर' मे जान क्रिश्चियन द्वारा लिखित छन्दशास्त्र संबंधी अध्याय

सूची

अध्याय पृष्ठ

१. वर्णमाला १

२. सन्धि २४

३ हिन्दी के विधायक तत्त्व २९

४. हिन्दी की बोलियाँ ५१

५. सज्ञा ६३

६. विशेषण १०७

७. संख्या ११३

८. सर्वनाम १३५

९. क्रिया १८५

१०. व्युत्पत्ति : भाववाचक सज्ञा तथा विशेषण की रचना २८६

११. समास २९३

१२. क्रियाविशेषण, उपसर्ग, शब्दयोगी, समुच्चय-बोधक और उद्गारवाचक ३००

१३. वाक्य-विन्यास ३१७

१४ छन्दशास्त्र ४०६

पहला अध्याय

वर्णमाला

१ सस्कृत की भॉति हिन्दी भाषा मामान्यतया देवनागरी[1] लिपि मे लिखी जाती है। हिन्दी के लिए प्रयुक्त इस लिपि मे ११ स्वर और ३३ अमिश्रित व्यजन है। इनके साथ नासिक्य ध्वनियो के दो चिह्न अनुस्वार और अनुनासिक तथा ईषत् महाप्राण ध्वनि विसर्ग का चिह्न सम्मिलित कर सकते है।[2] विसर्ग का प्रयोग हिन्दी मे बहुत कम होता है। नीचे समान रोमीय चिह्नो के साथ देवनागरी लिपि के अक्षर दिये जा रहे है।

२ ह्रस्व 'अ' को छोड कर प्रत्येक स्वर के दो रूप है। पहला रूप शब्द के आरम्भ मे अथवा स्वतत्र वर्ण के रूप मे प्रयुक्त होता है। दूसरा रूप 'मात्रा' कहाता है और शब्द के मध्य अथवा अन्त मे प्रयुक्त होता है। यह उल्लेखनीय बात है कि वर्णमाला मे वर्गीय व्यजन, स्वर, अर्द्ध स्वर और ऊष्म वर्णो का क्रम उच्चारण स्थान के अनुसार रखा गया है। आरभ कण्ठ्य वर्णो से हुआ है। ओष्ठ स्थानीय वर्णो पर क्रम समाप्त होता है। व्यजनो की पहली पॉच पक्तियो को पारिभाषिक रूप मे 'पंच वर्ग' कहते है।

स्मरणीय—हिन्दी की अनेक बोलियॉ है। अधिकाश बोलियो मे लिखित साहित्य का अभाव है। इस व्याकरण मे 'स्तरीय हिन्दी'[3] को आधार बनाया गया है।[4]

---

[1] साधारणतया 'नागरी' शब्द का प्रयोग होता है।

[2] संस्कृत में अनुनासिक, अनुस्वार और विसर्ग का उच्चारण अन्त्य ह्रस्व अकार के साथ होता है। वैसे अन्त्य अकार गद्य तथा बोलचाल की हिन्दी में सदैव अनुच्चारित रहता है। देखिए : १०, अ।

[3] परवर्ती यूरोपीय विद्वानों ने 'स्तरीय हिन्दी' (high Hindi) शब्द का प्रयोग हिन्दी की उस बोली के लिए किया है जो व्याकरण और पद-रचना की दृष्टि से भारतीय मुसलमानों की बोली-उर्दू-अथवा हिन्दुस्तानी से मिलती-जुलती है। मुसलमानों की बोली को अरबी बहुल अथवा फ़ारसी बहुल 'स्तरीय हिन्दी' कह सकते है। 'स्तरीय हिन्दी' वह बोली है, जिसे भारत सरकार कचहरियों में प्रयुक्त करती है और हिन्दी बोलने वाले राष्ट्रभाषा के रूप में जिसे सर्वत्र समझते है। इस बोली में ही शासकीय और ईसाई धर्म-प्रचारकों के विद्यालय की पाठ्य-पुस्तकें छपती है। ईसाई धर्म के पवित्र ग्रन्थों का अनुवाद भी इसी बोली मे हुआ है। 'स्तरीय हिन्दी' में उत्तर और मध्यभारत के ईसाई धर्म-प्रचारकों ने अपना अधिकांश साहित्य प्रकाशित किया है।

[4] कुछ यूरोपीय विद्वानों ने इस बोली के लिए 'स्टैण्डर्ड हिन्दी' शब्द का प्रयोग किया है। 'खड़ी बोली' इसी शब्द का अनुवाद है। १९वीं शती के दूसरे दशक मे हिन्दी के इस रूप के लिए 'खड़ी बोली' शब्द प्रचलित हुआ। इस समय भी ब्रज, अवधी तथा हिन्दी के अन्य क्षेत्रीय रूपों से पृथक् करने के लिए, 'खड़ी बोली' नाम का प्रयोग उस भाषा के लिए होता है, जो समूचे हिन्दी भाषी क्षेत्र की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक

[शेष अगले पृष्ठ पर]

३ देवनागरी के अक्षर इस प्रकार है—

स्वर

अ, आ ा, इ ि, ई ी, उ ु, ऊ ू,
a ā i ı u ū
ऋ ृ, ए े, ऐ ै, ओ ो, औ ौ,
Ri e ai O au

नासिक्य चिह्न— अनुनासिक ˘ , अनुस्वार ˘ , ईषत् महाप्राण विसर्ग ।
n N h

व्यंजन

कण्ठ्य—	क,	ख,	ग,	घ,	ङ।
	k	kha	ga	gha	na
तालव्य—	च,	छ,	ज,	झ,	ञ।
	cha	chha	ja	jha	ña
मूर्द्धन्य—	ट,	ठ,	ड,	ढ,	ण।
	ṭa	ṭha	da	dha	Na
दन्त्य—	त,	थ,	द,	ध,	न।
	Ta	Tha	da	dha	na
ओष्ठज—	प,	फ,	ब,	भ,	म।
	pa	pha	ba	bha	ma
अर्द्धस्वर—	य,	र,	ल,	व।	
	ya	ra	la	va	
ऊष्म—	श,	ष,	स।		
	sha	sha	sa		
महाप्राण—	ह।[1]				
	ha				

भाषा है और जो अहिन्दी भाषी प्रान्तों में अन्तर्प्रान्तीय भाषा के रूप मे व्यवहृत होती है। सुविधा के लिए इस रूप को 'हिन्दुस्तानी' के नाम से भी स्मरण किया गया है। 'खड़ी बोली' शब्द के कारण भ्रम उत्पन्न हुआ है। 'हिन्दुस्तानी' शब्द के साथ भाषायी आन्दोलन जुड़ा हुआ है, अतः कैलाग द्वारा प्रयुक्त 'स्तरीय हिन्दी' नाम अधिक उपयुक्त है।—अनुवादक

[1] नागरी वर्णमाला के लिए अन्तर्राष्ट्रीय रूप से जो रोमीय अक्षर प्रयुक्त होते है, उनकी सूची इस प्रकार है—अनुवादक

स्वर	व्यंजन		
अ - a	क् k	त् t	व् v
आ ा ā	ख् kh	थ् th	श् s

[शेष अगले पृष्ठ पर]

बोलियों में प्रयुक्त होने वाली कुछ अन्य ध्वनियाँ

अ. उपर्युक्त अक्षरों के अतिरिक्त सस्कृत में तीन स्वर अधिक है—ऋ, लृ और लॄ। वैदिक संस्कृत मे एक मूर्द्धन्य व्यंजन अधिक है—ळ। यह 'ळ' मराठी मे सुरक्षित चला आ रहा है। पजाबी, गुजराती और उड़िया मे भी यह 'ळ' सुरक्षित है, किन्तु इन भाषाओं की लिपियो में इसके लिए विभिन्न सकेत काम मे लाये जाते है। हिन्दी से सम्बन्धित मारवाडी तथा हिमालय की बोलियो मे यह 'ळ' बोला जाता है। मध्य दोआबे की ग्रामीण जनता कभी-कभी 'पीपल' शब्द के लकार को 'ळ' बोलती है। साहित्यिक हिन्दी मे ऋ, लृ, लॄ अथवा ळ का उपयोग नही होता।

आ. हिन्दी मे प्रयुक्त जिन स्वरो का ऊपर उल्लेख किया गया है, उनके अतिरिक्त एक स्वर और है—ह्रस्व एँ, जो अँग्रेजी के मेट (met) शब्द मे प्रयुक्त 'एँ' के समान है। इस ह्रस्व 'एँ' का प्रयोग कुछ जिलो की बोलचाल की भाषा मे सुना जा सकता है। उदाहरण के लिए अयोध्या और रीवा के आसपास इस स्वर का प्रयोग खूब होता है, विशेष रूप से कुछ क्रियापदो और सर्वनामो मे। जैसे स्थितिसूचक-क्रिया—अहेँउँ (=मै हूँ) अहेँस् (तू है), आदि।[1] दोआबे के लोग कुछ शब्दो मे दीर्घ 'ए' के स्थान पर ह्रस्व 'एँ' का प्रयोग करते है, जैसे—बिटिया (बेटा शब्द का स्त्रीलिग रूप) के लिए 'बेँटिया'। यह ह्रस्व 'एँ' उत्तर-पश्चिमी हिमालय की बोलियों मे भी प्रयुक्त होता है। ह्रस्व 'एँ' के अस्तित्व के सम्बन्ध मे आगे चल कर लिखा जाएगा। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि छन्दशास्त्र की कुछ पुस्तको के अनुसार 'ए' दीर्घ है, किन्तु रामायण में कही-कही छन्द की दृष्टि से वह ह्रस्व गिना जाता है। ऐसे स्थलो पर ह्रस्व एँ साधारणतया या तो ह्रस्व 'इ' के लिए आता है, या ह्रस्व 'अ' के लिए। जैसे 'जिहि' के लिए जेँहि और राखउ के लिए राखेँउ।[2]

स्वर							व्यंजन	
इ	ि	i	ग्	g	द्	d	ष्	sh
ई	ी	ı	घ्	gh	ध्	dh	स्	s
उ	ु	u	ङ	n	न्	n	ह्	h
ऊ	ू	ũ	च्	c	प्	p		
ऋ	ृ	rı	छ्	ch	फ्	ph		
ऋ	ृ	rĭ	ज्	j	ब्	b		
लृ	ृ	lri	झ्	jh	भ्	bh		
लॄ	ॄ	lrı	ञ्	ñ	म्	m		
ए	े	e	ट्	t	य्	y		
ऐ	ै	ai	ठ्	ṭh	र्	R		
ओ	ो	o	ड्	d	ल्	l		
औ	ौ	au	ढ्	dh	ळ्	Ḷ		
			ण्	n	ळ्ह्	Lh		

१. अधिक उदाहरणों के लिए संज्ञा के कारक रूपों से सम्बन्धित सूची तथा छन्द शास्त्र से सम्बन्धित १३वाँ अध्याय देखिए।

२. रामायण में इस ह्रस्व 'एँ' के अनेक उदाहरण मिलेगे। देखिए इस पुस्तक का छन्द शास्त्र सम्बन्धी अध्याय १३।

स्मरणीय—लैस्सेन ने लिखा है कि प्राकृत मे लिखते समय ह्रस्व और दीर्घ 'ए' मे कोई अन्तर नही होता। एक ही लिपि-चिह्न से यथास्थान ह्रस्व या दीर्घ 'ए' का उच्चारण किया जाता है।[1]

इ अवध और रीवा की बोली मे ह्रस्व 'ओॅ' का प्रयोग सर्वनाम रूपो मे होता है। जैसे-ओॅन का (=उनका)।

ई हार्नली और ग्रियर्सन का कथन है कि इलाहाबाद के पूरब मे जो बोली प्रचलित है, उसमे ह्रस्व 'एॅ' और ह्रस्व 'ओॅ' के अतिरिक्त ह्रस्व 'ऐॅ' और ह्रस्व औॅ भी बोले जाते है। ए, एँ, ओ अॉ तथा ऐ, ऐॅ और औ, औॅ मे प्रयत्न की भिन्नता नही है, केवल उच्चारण के समय की कमी या अधिकता रहती है।[2] नागरी लिपि मे इन ह्रस्व सयुक्ताक्षरो के लिखने की व्यवस्था नही है, अत हार्नली ने इन वर्णो के लिए बंगाली और पजाबी लिपि से अक्षर लिये है। ग्रियर्सन ने हार्नली का अनुसरण किया है। इनकी आकृति इस प्रकार है—

ह्रस्व एॅ=एॅ, , ह्रस्व ऐ=ऐॅ ; ह्रस्व ओ=ाॅ, ह्रस्व औ=ौॅ।

दीर्घ स्वरो के लिए प्रयुक्त अक्षरो से इन अक्षरो मे इतनी ही भिन्नता है कि इनकी मात्राओ के साथ बिन्दुहीन चंद्र लगाते है। कुछ पुस्तकों मे मात्रा बलदार छपती है। ह्रस्व ए तथा ऐ का मुख दॉईं ओर न होकर बाँई ओर है।[3] विशिष्ट वर्णो के लिए आगे चलकर इन विशेष अक्षरों का प्रयोग किया जाएगा।

व्यंजनों का उच्चारण

४ सामान्य रूप से सभी व्यंजन ह्रस्व 'अ' की सहायता से उच्चारित होते है। ऐसे स्थलो पर ह्रस्व 'अ' व्यजन का अभिन्न अग होता है। जैसे 'क' केवल 'क्' के लिए प्रयुक्त नही होता, क का अर्थ है क्+अ। प्+अ=प। यही बात अन्य अक्षरो की है। 'कार' शब्द जोडकर किसी भी अक्षर का उल्लेख किया जा सकता है, जैसे 'अकार' से 'अ' का बोध होता है, 'तकार' से 'त' का। सयुक्त व्यंजन का पहला वर्ण 'र्' हो तो उसे रेफ कहते है जैसे—'र्क' का 'र्'। कोई विशेष वर्ण अभिप्रेत नही होता तो 'अक्षर' शब्द का प्रयोग किया जाता है। अक्षर का बिगडा हुआ रूप 'अच्छर' भी प्रयुक्त होता है। जैसे—'वह कौन-सा अक्षर (या अच्छर) है।

अ. यह एक सामान्य नियम है कि शब्दान्त मे इस प्रकार का अन्तर्भुक्त अकार अनुच्चारित रह जाता है। पछॉही हिन्दी के विपरीत पूरबी हिन्दी के अनेक शब्दों मे अन्त्य अकार उच्चारित होता है। जहॉ अन्त्य 'अ' का उच्चारण नही होता, वहॉ अन्तिम व्यजन को हलन्त न लिखकर उसके पश्चात् '०' चिह्न लगाया गया है। इस चिह्न का उपयोग ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'सेवन ग्रामर्स' मे किया है। जैसे मैथिली मे 'घर' के तिर्यक् रूप के एक वचन में घर० (=घर्)।

देवनागरी वर्णमाला के लिखने की रीति

स्वरों के लिखने की रीति

५. 'अ' स्वतन्त्र रूप से शब्द के आरभ मे लिखा जाता है। शब्द के मध्य मे या अन्त मे उसी समय लिखा जाता है, जब उसका स्वतंत्र उच्चारण करते है, किन्तु ऐसा बहुत कम स्थलों पर होता है। जहाँ

---

[1] लैस्सेन-इंस्टिट्यूशनेस लिंग्वे प्राकृतके, § १९, ४।

[2] ग्रिअर्सन : सेवन ग्रामर्स, भाग १, पृ० १०।
हार्नली : कं० ग्रा० गौ०, पृ० एल १०।

[3] इन वर्णों के लिए मैंने जो चिह्न प्रयुक्त किए है, वे हार्नली के इन रूपों से कुछ भिन्न है।

वर्णों के रूप मे अक्षरो का उल्लेख हो रहा हो, वहाँ भी 'अ' स्वतत्र रूप से लिखा जाता है। व्यजन मे अन्तर्भक्त होनेवाले 'अ' के लिए कोई चिह्न नही है। 'अप' और 'तअ' मे 'अ' स्वतंत्र वर्ण है, इसीलिए उसे मूल रूप मे लिखा गया है, किन्तु 'प', 'त' मे 'अ' का कोई चिह्न नही है, यद्यपि इन दोनो अक्षरो का रूप है—प्+अ, त्+अ। जब व्यंजन के साथ इस अन्तर्भुक्त 'अ' के स्थान पर कोई दूसरा स्वर आता है तो उसका मात्रावाला रूप प्रयुक्त होता है। शब्द के आरम्भ मे अथवा शब्द के मध्य तथा अन्त मे जब कोई स्वर व्यंजन से पृथक् स्वतत्र रूप मे उच्चारित होता है, तो वह अपने मूल रूप में लिखा जाता है। जैसे—उक, ऊन, इय, ईख, गाओ, दाई। व्यंजन के साथ आनेवाले कुछ स्वरो की मात्रा व्यजन के पीछे लगती है, जैसे—ा (आ), ी (ई), ो (ओ) और ौ (औ)। ह्रस्व 'इ' की मात्रा (ि) व्यंजन से पहले लगती है। े (ए), ै (ऐ) व्यंजन के ऊपर तथा ु (उ), ू (ऊ) और ृ (ऋ) व्यजन के नीचे स्थान पाते है। उदाहरण के लिए यहाँ स्वर समन्वित 'क' के रूप दिये जा रहे है—

क, का, कि, की, कु. कू, कृ, के, कॅ, कै, कॅ॑ को, कॉ, कौ, कौॅ,।

स्वर से प्रारंभ होनेवाले शब्द मे प्रत्येक स्वर मूल रूप मे आता है। जैसे—अत, उद, ओर आदि। केवल 'ऐ' स्वर इसका अपवाद है। हिन्दी पुस्तको मे 'ऐ' को 'अै' भी लिखते है, किन्तु यह रूप ठीक नही है। 'ऐ' के लिए 'अै' नही लिखना चाहिए।

व्यंजन

६ शब्द के आरभ, मध्य अथवा अन्त मे व्यजन का रूप नही बदलता, क्, ङ, छ्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, द्, फ्, र् और ह् को छोड कर शेष व्यजनो के साथ खडी पाई रहती है। तीन अक्षरो का मस्तक फूटा हुआ है ध, भ, झ (=झ), 'झ' कई बोलियो मे लिखा भी जाता है।

—मारवाड़ी तथा कुछ अन्य बोलियो मे व और ब दोनो के लिए 'व' का प्रयोग होता है, भेद जानने के लिए केवल बिन्दु लगाया जाता है, जैसे व (=ब), व़ (=व)। बोलियो मे 'ख' का प्रयोग सामान्यतया नही होता, इसके स्थान पर सदैव 'ष' लिखा जाता है। बोलियो मे श, ष और स के लिए केवल 'स' का प्रयोग होता है।

संयुक्त व्यंजन

७. व्यजनो के उपर्युक्त असंयुक्त रूपो के अतिरिक्त संयुक्त रूप भी प्रयुक्त होते है। सयोगी व्यजन यह सूचित करता है कि उसके साथ कोई स्वर नही है। जैसे 'सत' मे 'स' के साथ 'अ' है, किन्तु 'स्त' मे 'स' स्वरहीन है। 'तव' और 'त्वा' मे भी यही बात है। आगे चल कर ऐसे उदाहरणो पर विचार किया जाएगा, जहाँ व्यजन का असंयोगी रूप लिखा जाता है, किन्तु जिसका स्वर अनुच्चारित रहता है। जैसे 'करता' का उच्चारण सस्कृत की संज्ञा 'कर्ता' के समान होता है।

अ छात्रों के पथप्रदर्शन के लिए यहाँ इस बात का उल्लेख किया जाता है कि हिन्दी मे सस्कृत के जो तत्सम शब्द प्रयुक्त होते है, उन्हीमे संयुक्त व्यजनो का उपयोग किया जाता है। तद्भव शब्दो में साधारणतया असयुक्त व्यजनो का ही प्रयोग होता है।

आ. सयुक्त व्यंजन तीन प्रकार से लिखे जाते है, पहला ढग व्यंजन के नीचे दूसरा व्यंजन लिखने का है, जैसे ट्ट (ट्+ट), दूसरा ढग सयोगी व्यंजन की खड़ी पाई हटाकर उसे दूसरे व्यजन से सटाकर लिखने का है, जैसे ब्द, त्थ, य्य। तीसरे प्रकार मे दोनो व्यंजन आशिक रूप से अथवा

पूर्ण रूप से परिवर्त्तित हो जाते है। इस प्रकार के सयुक्त व्यजन बहुत कम है। जैसे क्+ष=क्ष, ज्+ञ=ज्ञ।

(१) सयुक्त व्यंजन के प्रारभिक अथवा अन्तिम सदस्य के रूप मे 'र' भिन्न भिन्न प्रकार से लिखा जाता है। यदि वह सयुक्त व्यजन का प्रथम सदस्य है तो वह द्वितीय अक्षर के मस्तक पर अर्द्धवृत्ताकार लिखा जाता है—जैसे सर्प। यदि 'र' संयुक्त व्यजन मे द्वितीय सदस्य हो तो उसे प्रथम सदस्य के नीचे एक टेढी-सी छोटी रेखा से अंकित करते है—जैसे ग्रहण।

(२) जिस सयुक्त व्यजन मे दो से अधिक व्यजन हो, और प्रथम व्यजन 'र्' हो तो उसे तृतीय व्यजन के मस्तक पर अर्द्धवृत्ताकार लिखा जाता है। जैसे—धर्म्म, सर्व्व। जहाँ सयुक्त व्यजन मे ि (इ), ी (ई), े (ए), ै (ऐ); ो (ओ) और ौ (औ) अन्तर्भुक्त हो, अथवा साथ मे अनुस्वार हो तो रेफ उन सब के अन्त मे, दाहिनी ओर मस्तक पर लिखा जाएगा। जैसे—धर्म्मी, मूर्ति, सर्व्वं[1] आदि।

संयुक्त व्यंजनों का वर्गीकरण

८ सयोगी व्यजनो के आधार पर सयुक्त व्यजनो का वर्गीकरण दृढ, निर्बल और मिश्रित नामक तीन वर्गो मे होता है।[2] दृढ व्यजनो से बनने वाला सयुक्त व्यजन दृढ़ सयुक्त व्यजन, निर्बल व्यजनो के संयोग से बनने वाला निर्बल सयुक्त व्यंजन और दृढ तथा निर्बल अथवा निर्बल तथा दृढ व्यंजनो के सयोग से बनने वाला संयुक्ताक्षर मिश्रित कहाता है। तीन श्रेणियो मे विभक्त करके सयुक्त व्यजनो की सूची नीचे दी जा रही है। 'अ' इन सब में उच्चारण के लिए अन्तर्भुक्त है।

दृढ संयुक्ताक्षर

क्क, क्ख, क्त ग्ध, च्च, च्छ, ज्ज, ज्झ, ट्ट, ट्ठ्, ड्ग, ड्ड, त्क, त्त, त्थ, त्प, द्ग, द्द, द्ध, द्भ, प्त, प्प, प्फ, ब्ज, ब्द, ब्ध, ब्ब, ब्भ।

निर्बल संयुक्ताक्षर

ण्ण, ण्य, न्न, न्म, न्य, न्र, न्व, न्स, म्न, म्म, म्य, म्र, म्ल, म्ह, य्य, र्ण र्म र्य, र्व, र्श, र्ष, र्ह, ल्म, ल्य, ल्ल, ल्ह, व्य, व्र, व्व, श्न, श्य, श्र श्ल, श्व, ष्म, ष्य, ष्व, स्न, स्म, स्य, स्र, स्व, स्स, ह्म, ह्य, ह्न, ह्ल, ह्व।

मिश्रित संयुक्ताक्षर

क्म, क्य, क्र, क्ल, क्व, क्ष, ख्य, ग्न, ग्म, ग्य, ग्र, ग्ल, ग्व, घ्न, घ्य, घ्र, ङ्क, ङ्ख, ङ्ग, ङ्घ, च्य, छ्र, ज्ञ, ज्म, ज्य, ज्र, ज्व, ञ्च, ञ्छ, ञ्ज, ञ्झ, ड्र, ण्ट, ण्ठ, ण्ड, ण्ढ, त्न, त्म, त्य, त्र, त्व, त्स, थ्य, न्द, ध्य, ध्र ध्व, न्त, न्थ, न्द, न्ध, प्न, प्म, प्य, प्र, प्ल, प्स, ब्य, ब्र, भ्य, भ्र, र्क, र्ख, र्ग, र्घ, र्च, र्छ, र्ज, र्त, र्थ, र्द, र्ध. र्प, र्ब, र्भ, ल्द, ल्प ल्ब श्च, ष्क, ष्ट, ष्ठ, ष्प, ष्म, ष्य, स्क, स्त, स्थ, स्प, स्फ।

---

[1] रेफ के पश्चात् भी अनुस्वार का चिह्न अंकित किया जाता है। जैसे—सर्व्वं।—अनुवादक

[2] पाँचों वर्गों के अल्पप्राण तथा महाप्राण-दोनों प्रकार के व्यंजन-'दृढ़ व्यंजन' और शेष निर्बल व्यंजन है।

कुछ अन्य चिह्न

९ अनुनासिक का चिह्न ँ पूर्ववर्ती स्वर की अनुनासिकता प्रकट करता है। इसीलिए अनुनासिक के चिह्न से कोई शब्द प्रारभ नही होता। यह चिह्न या तो वर्ण के मस्तक पर लिखा जाता है या वर्ण के ऊपर कुछ दाहिनी ओर को हटा कर । जैसे कहाँ , कौँ। विदेशी विद्वानो द्वारा सम्पादित पुस्तको मे अनुनासिक के स्थान पर अनुस्वार छपता है।

१० **अनुस्वार**—अनुस्वार के कारण अनुनासिक की अपेक्षा अधिक अनुनासिकता व्यक्त होती है। अनुनासिक की भाँति अनुस्वार का चिह्न भी वर्ण के मस्तक पर अथवा दाहिनी ओर कुछ हट कर लिखा जाता है। जैसे—अश, बाह, सो।[1]

११. विसर्ग—ः, विसर्ग का अर्थ है परित्याग (स् या र् का परित्याग)। विसर्ग निर्बल महाप्राण ध्वनि को व्यक्त करता है। जिस वर्ण के साथ विसर्ग का चिह्न होता है, उससे पृथक् उसकी ध्वनि सुनाई देती है। इसका प्रयोग केवल तत्सम शब्दो में होता है। यह भी देखा जाता है, कि जिन तत्सम शब्दो मे विसर्ग होता है, उन्हे हिन्दी मे बिना विसर्ग के ही प्रयुक्त करते है। जैसे 'दु ख' केवल बोलते समय ही नही, लिखते समय भी 'दुख' हो जाता हैं। 'अन्त करण' के स्थान पर 'अन्तकरण' का प्रयोग होता है।

स्मरणीय—१. भारतीय वैयाकरणो ने विसर्ग की व्याख्या दूसरे प्रकार से की है। उनके विचार से विसर्ग मूलत 'स्' से सम्बन्धित नही है। विसर्ग का अर्थ है—श्वास का त्याग। मै ऊपर दिये गये अपने स्पष्टीकरण को ठीक मानता हूँ। इसके लिए प्रमुख तर्क यह है कि भारोपीय भाषाओ मे 'स्' का 'ह्' मे रूपान्तर सामान्य बात है। इसके विपरीत 'ह्' का 'स्' मे रूपान्तर शायद ही कही हुआ हो।[2]

२ हिन्दी की बारहखड़ी मे विसर्ग का अस्तित्व उचित नही है। प्राकृत मे ही इस ध्वनि का लोप हो चुका था। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ मे इसका प्रयोग नही होता।

१२ अनुनासिक, अनुस्वार तथा विसर्ग के अतिरिक्त सस्कृत मे कुछ अन्य चिह्नो का प्रयोग भी होता है। हिन्दी मे भी इन चिह्नो का उपयोग किया जाता है अत नीचे उनका परिचय दिया जा रहा है—

१. विराम (हल) का चिह्न (्), केवल व्यंजन के उच्चारण के लिए और अन्तर्भुक्त 'अकार' की अनुपस्थिति को सूचित करने के लिए इस चिह्न का उपयोग किया जाता है, जैसे—क्।

२ अवग्रह का चिह्न ऽ ', ए अथवा ओ के पश्चात् शब्दारभ के अकार का लोप सूचित करने के लिए इस चिह्न का उपयोग होता है। जैसे—त्रिशो अध्याय के लिए त्रिशोऽध्याय। कविता मे प्रथम चरण के अन्त मे अर्द्ध विराम के लिए चिह्न लगाया जाता है—"।" और दूसरे चरण मे पूर्ण विराम के लिए चिह्न होता है "॥"। इन दोनो विराम चिह्नो का प्रयोग केवल कविता मे होता है। इन चिह्नो के अतिरिक्त किसी अन्य विराम-चिह्न का प्रयोग नही होता। भारतीय भाषाओं की अधिकाश पुस्तको मे दो शब्दो के मध्य स्थान भी नही छोड़ा जाता।

३. दोहरे शब्दों के बीच मे २ लिखा जाता है। इस चिह्न का तात्पर्य यह है कि पूर्ववर्ती शब्द दुहराया जाये। वे अपने २ घर गये (=वे अपने-अपने घर गये)।

४. किसी अक्षर के अन्त मे लिखा गया बिन्दु '०' अग्रेजी की भाँति शब्द के संक्षिप्त रूप को प्रकट करता है। जैसे—रामायण बा० (=रामायण बालकाण्ड)।

---

१. 'बाँह' और 'सोँ' में 'आ' तथा ओ अनुस्वरित न होकर सानुनासिक है।—अनुवादक

२. मोनेर विलियम्स : संस्कृत ग्रामर, § ८।

५. अग्रेज प्रकाशको की ओर से प्रकाशित हिन्दी पुस्तको मे विराम-चिह्नो (˙) का प्रयोग किया गया है। इन पुस्तको का अनुकरण करते हुए भारतीय प्रकाशक भी अपनी पुस्तको मे विराम-चिह्नो का प्रयोग करने लगे है। मैने देखा है कि भारतीय प्रकाशकों की ओर से छपी पुस्तको मे विराम-चिह्नो का प्रयोग अनुचित ढग से हुआ है।

१३ हिन्दी वर्णो के लिखने का ढग अब तक स्थिर नही हुआ है। 'ण' के स्थान पर 'न' का प्रयोग ऐसे सस्कृत शब्दो मे होता आया है, जहाँ व्याकरण के नियमानुसार 'ण' का उपयोग ही होना चाहिए। 'किरण' के स्थान पर 'किरन', 'गुण' के स्थान पर 'गुन' लिखा जाता है। व और ब, तथा श और स के सम्बन्ध मे भी ऐसी ही भ्रान्ति बनी हुई है। श तथा ष के स्थान पर 'स' के प्रयोग का रुझान पाया जाता है। मूल 'ष' के स्थान पर 'ख' भी लिखा जाता है। हिन्दी मे संस्कृत की वर्तनी ही मान्य है, किन्तु यह मान्यता केवल ऐसे तत्सम शब्दो तक सीमित है, जिनमे किसी प्रकार की विकृति नही आई है।

उच्चारण

स्वरों का उच्चारण

१४ हिन्दी के अधिकाश स्वरो का उच्चारण यूरोपीय भाषाओ के स्वरो से मिलता-जुलता है। अँग्रेजी मे हिन्दी के अकार से मिलता-जुलता कोई स्वर नही है, फिर भी हम (hum) और अप (up) मे उच्चारित 'अ' और टोटल (total), अमेरिका (America) के अनुच्चारित वर्णों का अन्तिम 'अ' हिन्दी के 'अ' का बहुत कुछ प्रतिनिधित्व करता है। बहुत से विदेशी लोग भारत में हिन्दी के 'अ' का उच्चारण कैट (cat) मे विद्यमान 'a' जैसा करते है, किन्तु यह उच्चारण ठीक नही है।

अ. आपसी बातचीत मे अथवा गद्य पढते समय शब्दान्त का अन्तर्भुक्त अकार अनुच्चारित रह जाता है। जैसे 'गुण' का उच्चारण 'गुण्' और 'रात' का उच्चारण 'रात्' होता है। इस नियम के कुछ अपवाद भी है।

१. कुछ व्यजनो मे अन्तर्भुक्त अकार का उच्चारण होता है, जैसे—न, त, छ।

२. जिन संयुक्त व्यंजनो मे दूसरा सदस्य-अक्षर 'र' अथवा 'व' होता है, वहाँ अन्तर्भुक्त 'अ' का उच्चारण किया जाता है। इ, ई, अथवा ऊ के पश्चात् आनेवाले अन्तिम 'य' के अन्तर्भुक्त 'अ' का हल्का सा उच्चारण किया जाता है। जैसे—शास्त्र, इन्द्र, विप्र, ईश्वरत्व, गुरुत्व, तिय, प्रिय, इन्द्रिय, राजसूय।

३. संख्यावाची शब्दो का अन्त्य 'अ' सदैव उच्चारित होता है। जैसे—चौक, तीन, नम्म, किन्तु 'तीन तीन नौ' का उच्चारण किया जाता है—तीन् तीन नौ।

४. कविता मे अन्त्य अकार का सदैव उच्चारण होता है। उदाहरण—"समरथ कहँ नहि दोष गुसाईं।" किन्तु जिस वर्ण पर यति होती है, सामान्यतया उसका अन्त्य 'अ' अनुच्चारित रह जाता है। जैसे—'झुलत पलना रघुवर। पुलकित माई' का उच्चारण होता है—झुलत पलना रघुवर्। पुलकित माई।

---

१. यह बात उल्लेखनीय है कि पंडित लोग 'र' वाले संयुक्ताक्षरों का उच्चारण ठीक-ठीक करते हैं, किन्तु साधारण लोग इस प्रकार के संयुक्ताक्षरों को स्वरभक्ति के साथ पढ़ते हैं; जैसे—शास्तर, बिपर आदि।

५ पहले उल्लेख किया जा चुका है कि पूरब की बोलियो मे अन्त्य 'अ' का उच्चारण किया जाता है। विभक्ति सम्बन्धी विकारो मे भी यह बात देखी जाती है। जैसे—घर रहल। इस पुस्तक मे उच्चारित 'अन्त्य' 'अ' के लिए व्यंजन के दाहिनी ओर '०' चिह्न का उपयोग किया गया है। जैसे—घर०, रहल० ।

६. बातचीत और गद्य पढ़ते समय उपान्त्य के 'अ' और अन्तिम 'य' का उच्चारण इस भाँति किया जाता है कि 'ऐ' के उच्चारण से उसका अन्तर बहुत कम रहता है। ऐसे स्थानो पर कभी-कभी 'अय' के लिए 'ऐ' लिखा भी जाता है, जो ठीक नही है। जैसे—'समय' का उच्चारण सदैव 'समै' होता है। कभी-कभी 'समै' लिखा भी जाता है।

अ. 'छय' सदैव 'छै' बोला जाता है। कही-कही यह रूप लिखा भी जाता है। इसके विपरीत कही-कही 'ऐ' के लिए 'अय' और 'ओ' के लिए 'अव' लिखते है, जो शुद्ध नही है। तुलसीदास की रामायण मे 'बैर' के लिए 'बयर' और चन्द के पृथ्वीराज रासो मे 'किन्नो' के स्थान पर 'किन्नव' मिलता है।

आ. ध्यान देने की बात यह है कि जब अन्त्य 'अ' समासित शब्दो के मध्य मे आता है, तो वह अनुच्चारित नही रहता। उसका धीमा उच्चारण होता है। हिब्रू जानने वालो के लिए इस बात से सहायता मिलेगी कि हिब्रू के 'श्व' शब्द में उच्चारित 'अ' से इस 'अ' की बहुत समानता है। अँग्रेजी के पाठको के लिए समासित शब्द के मध्य मे आने वाले अन्त्य अकार को 'a' द्वारा नही, षष्ठी के चिह्न (अपास्ट्रोफ) से प्रकट किया जा सकता है। जैसे 'अन्न' का उच्चारण 'अन्न्' है, किन्तु समास मे अन्नदाता (ann'dátá); 'फल' का उच्चारण 'फल्' होता है, किन्तु समास मे 'फलदायक' (phal'dāyak) ।

इ इसी प्रकार का धीमा उच्चारण क्रिया अथवा उस सज्ञा के अन्त्य अकार का है, जिसके साथ कारक का चिह्न नही जोड़ा गया है। 'कर' धातु के 'करना' रूप का उच्चारण कर्ना और 'चल' धातु के कृदन्त रूप चलता का उच्चारण 'चल्ता' होता है। यही बात सज्ञा की है। मूल शब्द 'पुर' से बनने वाले 'पुरवा' का उच्चारण होता है पुर्वा, 'कुँआर' शब्द से बननेवाला कुँआरपन का उच्चारण होगा 'कुँआर्पन'; मूर्ख शब्द से बनने वाले 'मूरखपन' शब्द का उच्चारण होगा 'मूरख्पन'। यदि जुड़नेवाला प्रत्यय साधारण-सा हो तो इस अकार का उच्चारण होता है। जैसे—जानत।

ई एक से अधिक वर्णो वाली धातु के साथ जब स्वर से आरभ होने वाला प्रत्यय जोड़ा जाता है तो मूल धातु का उपान्त्य 'अ' अनुच्चारित रहता है, जैसे निकल से निक्ला। किन्तु जब प्रत्यय व्यंजन से प्रारभ होता है तो इस प्रकार की धातुओं के उपान्त्य 'अ' का पूरी तरह उच्चारण किया जाता है।[1]

स्मरणीय—१ हार्नली और ग्रियर्सन ने इस अनुच्चारित 'अ' का उल्लेख किया है। उन्होने अनुच्चारित 'अ' को 'तटस्थ स्वर' के नाम से स्मरण किया है और इसे प्रकट करने के लिए नागरी मे सम्बन्धित व्यंजन के नीचे बिन्दु और रोमीय अक्षरों मे सम्बन्धित व्यंजन के पश्चात् 'अपास्ट्रोफ' चिह्न का प्रयोग किया है। विद्यार्थियो की सुविधा को ध्यान मे रखते हुए मैने इस पुस्तक मे नागरी अक्षरो मे कोई चिह्न लगाना आवश्यक नही समझा। ऐसे शब्द जिस तरह लिखे जाते है, मैंने भी उन्हें उसी

---

[1] इस पुस्तक के प्रथम संस्करण में अनुच्चारित 'अ' के सम्बन्ध में नहीं लिखा गया था। केवल इस बात का उल्लेख किया गया था कि उपर्युक्त उदाहरणों में 'अ' लुप्त रहता है। भारत में रहते समय स्वयं सुन-सुन कर मुझे अपने मन्तव्य में सुधार करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। अनुच्चारित 'अ' के सम्बन्ध में जो उदाहरण दिए गए है, उनकी पुष्टि हार्नली, ग्रियर्सन और अनेक भारतीय विद्वानों ने अपने-अपने निरीक्षण के आधार पर की है। इसीलिए मैंने इस संस्करण में यह परिवर्तन किया है।

तरह लिखा है। रोमीय अक्षरो मे ऐसे स्थलो पर सम्बन्धित व्यजन के साथ अ (a) का प्रयोग नही किया है।

उल्लेखनीय—२ उपर्युक्त नियम व्यजन मे समाविष्ट 'अ' पर ही लागू होता है। जब 'अ' स्वतत्र रूप से आता है, तो उसका उच्चारण अवश्य किया जाता है, चाहे वह मध्य मे आये, चाहे अन्त मे। जैसे—तुअ, हरुअ।

उ पूरबी हिन्दी के 'अ' की ध्वनि बगाली के 'अ' की दीर्घ ध्वनि से समता रखती है। अँग्रेजी के 'बाल' (ball) शब्द मे उच्चारित 'अ' और पूरबी बोलियो के 'अ' मे सादृश्य है। 'अ' की ऐसी दीर्घता उत्तरी मराठी मे भी सुनाई देती है। मराठी भाषी क्षेत्र मे सर्वत्र क्रिया के मध्यम पुरुषवाची पुल्लिगी रूप मे 'अ' का उच्चारण 'अह' सुना जाता है। तृतीय पुरुष के एकवचन को सूचित करनेवाली सहायक क्रिया के य० मे भी 'अह्' सुनाई देता है। भोजपुरी के क्रियापदो के पु०, एकवचन के 'य०' मे मराठी की भाँति 'अह्' सुनाई देता है। भोजपुरी मे वर्तमानकालिक कृदन्त के उपान्त्य 'अ' का उच्चारण भी इसी प्रकार किया जाता है। जैसे—'देख लो' मे।

१५ 'आ' का उच्चारण अँग्रेजी के फादर (father) शब्द मे प्रयुक्त 'आ' के समान होता है। इ'—पिन (pin) की 'इ' के समान, 'ई'—मशीन (machine) की 'ई' के समान, 'उ'—पुल (pull) के 'उ' के समस्न, 'ऊ'—टूल (tool) के 'ऊ' के समान और 'ऋ'—ब्रिक (brink) की 'रि' के समान उच्चारित होते है।

क कविता मे शब्दान्त का इकार तथा उकार सदैव उच्चारित होते है। क्षेत्रीय बोलियो मे अन्त्य 'इ' तथा 'उ' का प्रयोग नही मिलता। यदि किसी शब्द मे इनका उच्चारण किया भी जाता है, तो बहुत क्षीण। जैसे मति का उच्चारण दोनो प्रकार से किया जाता है, मति या मत। इसी प्रकार 'परन्तु' का उच्चारण भी परन्तु या परन्त होता है।

ख. इसके विपरीत कुछ बोलियो मे अन्त्य ह्रस्व 'इकार' का उच्चारण दीर्घ किया जाता है। जैसे कन्नौजी मे 'मति' के स्थान पर मती। कुमाउनी मे 'चलिकर' के स्थान पर 'चली वेर'।

स्मरणीय—'ऋ' और 'रि' मूलत दो भिन्न ध्वनियाँ है। 'र' के समान 'ऋ' के उच्चारण मे स्पन्दनशील जिह्वा को दन्तमूल का स्पर्श नही करना चाहिए, किन्तु उच्चारण के समय इस बात का ध्यान नही रखा जाता।

संयुक्त स्वरों का उच्चारण

१६. ए, ऐ, ओ और औ चार सयुक्त स्वर है। ए और ऐ का द्वितीय स्वर 'इ' तथा 'ओ' और 'औ' का द्वितीय स्वर 'उ' है। 'ए' का उच्चारण अँग्रेजी के 'दे' (they) मे प्रयुक्त 'ऐ' से बहुत कुछ सादृश्य रखता है।[1] 'ए' के मूलस्वर है—अ+इ। 'ऐ' का उच्चारण टाईम (time) के 'आई' से भिन्न है। अँग्रेजी के इस 'आई' से हिन्दी का संयुक्त दीर्घस्वर 'ऐ' इस बात मे भिन्न है कि अँग्रेजी के 'आई' का 'ई' दीर्घ है, जब कि हिन्दी के सयुक्त स्वर 'ऐ' का द्वितीय स्वर 'इ' ह्रस्व है, ऐ=a+i, किन्तु 'टाईम' की 'आई' (i) '=ā+ī, । हिन्दी का प्रचलित शब्द "है" अँग्रेजी के 'हाई' (high) की

---

[1] एक विद्वान् भारतीय मित्र ने बताया है कि भारतीय लोग 'ए' का उच्चारण उसी तरह करते हैं, जैसे यार्कशायर के निवासी (great) के संयक्त स्वर (ea) का करते है।

तरह नही बोला जाता। हिन्दी का 'ओ' अँग्रेजी के गो (go) के 'ओ' की भाँति उच्चारित होता है, किन्तु टॉप (top) मे प्रयुक्त 'ओ' (o) से उसका कोई मेल नही। 'ओ' के मूलस्वर है—अ+उ। हिन्दी का 'ऐ' जिस तरह अँग्रेजी के फाईन (fine) शब्द के 'आई' से सर्वथा भिन्न है, उसी तरह हिन्दी के 'औ' और अँग्रेजी के अवर (our) मे प्रयुक्त ou मे कोई साम्य नही है। हिन्दी का 'औ' मूलत. आ+उ है, जब कि अँग्रजी का ou=आ+ऊ है।[1]

अनुनासिक

१७. अनुनासिक (ँ)। पहले लिखा जा चुका है कि अनुनासिक पूर्ववर्ती स्वर को नासिक्य ध्वनि प्रदान करता है। हिन्दी के अनुनासिक की स्थिति फ्रान्सीसी शब्द बाँ (bon) तथा एफेत (enfant) की सानुनासिक ध्वनियों के समान है। विदेशियो द्वारा प्रकाशित हिन्दी पुस्तको मे अनुनासिक के लिए अनुस्वार (ं) का प्रयोग हुआ है।

१८. अनुस्वार (ं)। अनुस्वार की ध्वनि अनुनासिक की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होती है। ऊष्म वर्णो से पहले अनुस्वार बहुत स्पष्ट सुनाई देता है। जैसे—अंश, वश। संस्कृत से लिये गये तत्सम और अर्द्धतत्सम शब्दो मे अनुस्वार का प्रयोग अधिकता से होता है। ह्रस्व स्वर के पश्चात् आनेवाले अनुस्वार को परवर्त्ती व्यजन के वर्गीय नासिक्य वर्ण मे परिवर्त्तित किया जा सकता है। इस नियम के अनुसार अनुस्वार निम्नलिखित वर्गीय नासिक्य वर्णो मे भी लिखा जा सकता है—ङ, ञ्, ण्, न्, म्। मगल और मङ्गल दोनो रूप ठीक है। 'मगल' शब्द का अनुस्वार अपने परवर्त्ती व्यजन 'ग' के कारण 'ङ' की ध्वनि देता है। 'सबध' शब्द मे पहला अनुस्वार परवर्त्ती वर्ण 'ब' के कारण ओष्ठ्य नासिक्य 'म्' का प्रतिनिधित्व करता है और दूसरा अनुस्वार परवर्त्ती 'ध' के कारण दन्त्य नासिक्य 'न्' का।

क किन्तु संस्कृत के तद्भव शब्दो मे दीर्घस्वर के पश्चात् आनेवाला अनुस्वार स्पर्श व्यंजन से पहले आने पर भी वर्गीय नासिक्य व्यजन मे परिवर्त्तित नही होता। अनुनासिक की भाँति वह भी पूर्ववर्त्ती स्वर को नासिक्य बनाता है। जैसे—सोठ का उच्चारण सोण्ठ नही हो सकता। इसी प्रकार—चाँद, साँड आदि।

स्मरणीय—उपर्युक्त उदाहरणो मे अनुनासिक मूलत ह्रस्व स्वर के परवर्त्ती नासिक्य वर्ण का प्रतिनिधित्व करता है। यह प्रश्न किया जाता है कि इस प्रकार के उदाहरणो मे अनुस्वार मूल नासिक्य वर्ण को व्यक्त करता है, या पूर्ववर्त्ती स्वर को केवल सानुनासिक बनाता है। मै जिन पडितो से विचार कर सकता था, उनका आग्रह रहा कि नासिक्य ध्वनियाँ हिन्दी की अपनी नही है। अपने तुलनात्मक व्याकरण मे बीम्स ने भी यही विचार व्यक्त किया है। उन्होने यह तर्क दिया है कि हिन्दी के जिन अर्द्धतत्सम शब्दो मे दीर्घ स्वर सानुनासिक दिखाई देता है, वे इस बात के द्योतक है कि तत्सम अवस्था मे

---

[1] व्यंजन के साथ हिन्दी के 'ऐ' और 'औ' का उच्चारण जैसा होता है, उसे देखते हुए कुछ विद्वानों का विचार है, उच्चारण की दृष्टि से ये दोनों संयुक्त स्वर नहीं हैं। संस्कृत में चारों संयुक्त स्वरों की रचना इस प्रकार है—अ अथवा आ+इ अथवा ई=ए; अ अथवा आ+ए अथवा ऐ=ऐ; अ अथवा आ+उ अथवा ऊ=ओ; अ अथवा आ+ओ अथवा औ=औ। परिनिष्ठित हिन्दी में 'ऐं' और औ का उच्चारण व्यंजन के साथ बहुत कुछ इस तरह होता है अंए (ऐ), अंओ (औ)। जब ये दोनों संयुक्त स्वर स्वतन्त्र वर्ण के रूप में आते है तो इनका उच्चारण होता है—अंइ (ऐ), अंओ (औ)।—अनुवादक

संयुक्त व्यंजन मे से किसी एक व्यजन के लोप होने पर क्षतिपूर्ति के लिए पूर्व स्वर को दीर्घ किया गया है। मूल शब्द मे अनुस्वार की स्थिति हलन्त नासिक्य वर्ण के समान रहती है।

ख कविता मे पादान्त के तत्सम शब्द के साथ अनुस्वार जोड़ा जाता है, जो नासिक्य 'म्' का प्रतिनिधित्व करता है। इस अनुस्वार का उच्चारण भी 'म्' होता है। जैसे—गुणमय, अय।

१९. अँग्रेजी शब्द 'की' (key) और 'गिव' (give) मे आनेवाले क तथा ग के समान हिन्दी के 'क' और 'ग' का उच्चारण होता है। अँग्रेजी के जिन (gin) मे प्रयुक्त G के समान हिन्दी का 'ग' उच्चारित नही होता।

२०. अँग्रेजी शब्द चर्च (church) और जस्ट (just) के क्रमश 'च' और 'ज' के उच्चारण से हिन्दी के 'च' और 'ज' का उच्चारण बहुत कुछ सादृश्य रखता है। अन्तर इतना ही है कि अँग्रेजी के च और ज की अपेक्षा हिन्दी के च और ज दन्त्य अधिक है।

२१. हिन्दी के ट और ड को अँग्रेजी के 'ट' (t) और ड (D) की तरह उच्चारित करने के लिए कहा जाता है, किन्तु वास्तविकता यह है कि अंग्रेजी मे ये दोनों ध्वनियाँ विद्यमान नही है। ट और ड के उच्चारण मे जीभ पूरी तरह पीछे पलटती है और तालु से टकराती है, जबकि अँग्रेजी के ट (t) ड (D) के उच्चारण के समय जीभ पलटती अवश्य है, किन्तु टकराती है ऊपरी दन्त पंक्ति के मूल स्थान से।

स्मरणीय—हिन्दू लोग हिन्दी मे अँग्रेजी शब्दो को लिखते या बोलते समय ट (t) और ड (D) के स्थान पर नागरी के 'ट' और 'ड' का प्रयोग करते है। 'त' और 'द' का प्रयोग कोई नही करता, यद्यपि वास्तविकता यह है कि अँग्रेजी की ये दोनो ध्वनियाँ हिन्दी के 'त' तथा 'द' के अधिक निकट है। बहुधा 'ड' के नीचे बिन्दु अकित रहता है। उस स्थिति मे 'ड' के लिए रोमीय अक्षरों मे r का उपयोग होता है।

२२. 'ड़' का ठीक-ठीक उच्चारण करने के लिए जीभ को उलटाकर अँग्रेजी के 'र' (R) के उच्चारण का यत्न करना चाहिए। 'ढ' भी दो तरह से उच्चारित होता है, ढ और ढ। 'ढ' को रोमीय लिपि मे (Ṛh) लिखा जाना चाहिए।

विशेष—पाश्चात्य लोगो के लिए हिन्दी की अन्य ध्वनियो की अपेक्षा 'ड़' और 'ढ' का उच्चारण अधिक कठिन है। इसीलिए इन दोनों के उच्चारण मे विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है। बहुत कम यूरोपीय जन होगे जो इन दोनो व्यजनो का ठीक-ठीक उच्चारण कर सकते है। विद्यार्थी को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि 'ड़' का उच्चारण अंग्रेजी के 'र' (R) अथवा हिन्दी के 'र' से सर्वथा भिन्न है। स्पष्ट रूप से उच्चारित 'ड़' मूर्द्धन्य 'ड' से साम्य रखता है। इसीलिए 'ड' और 'ड़' मे परस्पर बहुत से परिवर्तन होते हैं। लिखते और बोलते समय ड-ढ तथा ड-ढ मे कोई अन्तर नही रहता। जैसे—बूढा या बूढ़ा। पंजाबी में इन दोनों ध्वनियो के लिए पृथक्-पृथक् अक्षर है।

२३. अँग्रेजी में हिन्दी के 'त' तथा 'द' से मिलती-जुलती ध्वनियाँ नही है। अग्रेजी के ट (t) और ड (D) के उच्चारण मे जीभ ऊपरी दंत-पक्ति के मूल से टकराती है, जबकि 'त' और 'द' के उच्चारण मे जीभ तालु का स्पर्श करती है।

२४. अँग्रेजी के 'प' (P) और हिन्दी के 'प' मे कोई अन्तर नही है। अँग्रेजी के 'ब' (B) और हिन्दी के 'ब' मे केवल इतना ही अन्तर है कि अंग्रेजी के 'ब' (B) के उच्चारण मे दोनो होठ हलके से स्पर्श करते हैं। हिन्दी के 'ब' मे दोनों होठ अच्छी तरह मिलते है। बहुत से शब्दो के लिखते और बोलते समय 'व' और 'ब' का अन्तर शेष नही रहता। 'व' के स्थान पर 'ब' का और 'ब' के स्थान पर 'व' का प्रयोग होता है।

महाप्राण व्यंजन

२५ उपर्युक्त प्रत्येक स्पर्श व्यजन की महाप्राण ध्वनि भी है। यद्यपि अल्पप्राण व्यजन के साथ 'ह्' की ध्वनि जोडने से महाप्राण व्यंजन की अभिव्यक्ति होती है, किन्तु बाह्य प्रयत्न् मे अल्पप्राण और 'ह्' की ध्वनि भिन्न-भिन्न सुनाई नही देती।[1] महाप्राण व्यंजन का उच्चारण-स्थान एक ही होता है। अल्पप्राण व्यंजन को बलपूर्वक उच्चारित करके महाप्राण व्यंजन को व्यक्त किया जा सकता है। अँग्रेजी के वाक्यखड 'अप हिल' (uphill), ब्रिक हाउस (brickhouse) का इस तरह उच्चारण किया जाता है कि क्रमश 'प' तथा 'क' परवर्त्ती 'ह्' से मिल जाते है। सम्मिलन के कारण पहले वाक्यखड मे 'फ' और दूसरे मे 'ख' सुनाई देता है। इस प्रकार के ध्वनि-सयोग के कारण ही प्+ह और क्+ह का ठीक-ठीक उच्चारण किया जा सकता है। विशेष ध्यान इस बात पर दिया जाना चाहिए कि अल्पप्राण स्पर्श व्यंजन और 'ह्' के मध्य किसी स्वर का प्रवेश न होने पावे। जैसे 'फल' का उच्चारण फल (phəl) होना चाहिए, न कि पहल (pəhal); इसी तरह कहाना (kahəna) और खाना (khəna) का अन्तर भी समझ लेना चाहिए। यदि अल्पप्राण स्पर्श व्यजन और 'ह्' के मध्य किसी स्वर का उच्चारण किया जाये तो अर्थ भेद भी हो सकता है।

स्मरणीय—(विदेशी) विद्यार्थी को इन महाप्राण व्यजनो को ठीक तरह से उच्चारित करने के लिए बहुत अभ्यास करना चाहिए। अशिक्षित हिन्दुस्तानी भी अल्पप्राण और महाप्राण व्यजन को अच्छी तरह व्यक्त करता है। ऐसा कभी नही होता कि वह अल्पप्राण के स्थान पर महाप्राण और महाप्राण के स्थान पर अल्पप्राण व्यजन का प्रयोग करे। केवल 'फ' मे भ्रम होता है, जिसका उच्चारण अपठित लोग कभी-कभी 'फ' करते है।[2] अशिक्षित भारतीय भी महाप्राण व्यजन का उच्चारण करते समय कभी अल्पप्राण स्पर्श व्यजन और 'ह्' को पृथक् नही करता।

•नासिक्य व्यंजनों का उच्चारण

२६. इंग्लैण्ड (England) का प्रथम 'न' (n) हिन्दी के ङ् से सादृश्य रखता है। 'ङ्' कंठ-स्थानीय स्पर्श व्यंजनों से पहले उच्चारित होता है। कोई शब्द (ङ्) से प्रारभ नही होता। अंग्रेजी शब्द पिंच (Pinch) के तीक्ष्ण 'न्' (n) के समान (ञ्) का उच्चारण करना चाहिए। यह केवल तालव्य स्पर्श व्यंजनो से पहले बोला जाता है। 'ञ्' से भी किसी शब्द का आरभ नही होता।

क. नेपाली और पूरबी हिन्दी के ग्रामीण रूपो मे 'ञ्', शब्द के आरंभ अथवा मध्य मे स्वतत्र व्यंजन के रूप मे उच्चारित किया जाता है। जैसे नेपाली मे आदरवाची सर्वनाम तपाञि। इसी प्रकार अन्य शब्दो में भी 'ञ्' का प्रयोग होता है। जैसे बडाञि (बडप्पन), पवित्रताञि (पवित्रता), ञाहा (यहाँ), पाञि (मैंने पाया है)। हार्नली ने पूरबी हिन्दी के उदाहरण इस प्रकार दिये है—अगिञा (आग), ञाहि

---

[1] ध्वनि को अंकित करने वाले यंत्र पर देखा गया है कि ख, घ, आदि क+ह, ग्+ह नहीं है। उच्चारण की दृष्टि से महाप्राण ध्वनि अपनी स्वतंत्रता रखती है।—अनुवादक

[2] पूर्वी राजस्थान, हरियाणा और दिल्ली के आसपास 'फ' के स्थान पर 'फ़' का उच्चारण क्षेत्रीय प्रभाव का द्योतक है। इस सम्बन्ध में शिक्षित अथवा अशिक्षित व्यक्ति के कारण उच्चारण-भेद नहीं होता। —अनुवादक

(नही)।[1] बुन्देलखडी मे भी स्थानवाची क्रियाविशेषण मे 'ञ्' स्वतंत्र रूप से सुनाई देता है, जैसे—याञी आदि।[2]

स्मरणीय—कण्ठ्य और तालव्य नासिक्य ङ् और ञ् का ज्ञान परवर्ती स्पर्श व्यंजन के कारण हो जाना चाहिए, इसीलिए मैने यहाँ उनका उल्लेख किया है। दन्त्य नासिक्य 'न्' रोमीय न (n), के समान है, इसलिए n के साथ कोई विशेष चिह्न लगाने की आवश्यकता नही है।

२७. टवर्ग के अन्य वर्णो की भाँति 'ण' की ध्वनि भी किसी यूरोपीय भाषा मे नही है। मूर्द्धन्य व्यजन के साथ 'ण्' का उच्चारण किया जाता है। 'ड' के उच्चारण के समय जीभ की जो स्थिति रहती है, 'ण' का उच्चारण करते समय भी जीभ को उसी स्थिति मे लाना चाहिए, फिर उस मुडी हुई जीभ को तालु से टकराते हुए 'न' का उच्चारण करना चाहिए। ङ् और ञ् की भाँति ण् भी टवर्गीय अक्षर से पहले आता है। ण् और ङ्–ञ् मे अन्तर यह है कि ण् का उच्चारण स्वतंत्र वर्ण के रूप मे भी होता है, जब कि ङ् और ञ् का नही होता। जैसे प्रचलित शब्द 'गुण' और 'वर्णन' मे। पूरबी हिन्दी के ग्रामीण रूप के अतिरिक्त 'ण' से कही शब्द आरभ नही होता। पूरबी हिन्दी के उदाहरण है—णरसिह। स्तरीय हिन्दी और हिन्दी से सम्बन्धित अधिकाश बोलियो मे ऐसे स्थलो पर 'न' का प्रयोग किया जाता है।

भारत स्थित अधिकाश विदेशी लोग 'ण' और 'न' मे अन्तर नही करते। यही बात गगा के आसपास बसनेवाले लोगो की है। लिखते समय भी 'ण' के स्थान पर प्राय 'न' का प्रयोग किया जाता है। यह देखा गया है कि पठित हिन्दू इन दोनो वर्णो का यथास्थान उच्चारण करते है। 'ण' और 'न' की वास्तविक ध्वनियो का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

२८ न (n)। हिन्दी 'न' और अँग्रेजी न (n) मे इतना ही अन्तर है कि हिन्दी का 'न' अग्रेजी न (n) से अधिक दन्त्य है। परवर्ण यदि दन्त्य हो तो हलन्त 'न्' का उच्चारण होता है। जीभ का अग्रभाग ऊपरी दाँतो का स्पर्श करता है।[3]

अँग्रेजी म (m) और हिन्दी 'म' मे उच्चारण की दृष्टि से कोई भेद नही है।

अन्तस्थ वर्णो का उच्चारण

२९. 'य' का उच्चारण अँग्रेजी के 'य' (y) के समान होता है।

क कभी-कभी 'य' का उच्चारण 'ज' किया जाता है, विशेष रूप से जब यह वर्ण सस्कृत शब्द के प्रारभ मे आता है। जैसे—युग का उच्चारण जुग और योग्य का जोग किया जाता है। अन्त मे भी 'य' का उच्चारण 'ज' होता है, जैसे—सूर्य के स्थान पर सूरज। कई स्थलो पर 'सूरज' लिखा भी गया है। जहाँ शब्दान्त मे ह्रस्व 'अ' के साथ 'य' आता है, उच्चारण मे 'ए' का भ्रम होता है। जैसे—'समय' का उच्चारण 'समे'।

३०. 'र' जैसी ध्वनि अँग्रेजी मे नही है। जर्मन भाषा के 'र' के समान हिन्दी का 'र' लुठित ध्वनि है किन्तु उतना कठोर नही है।

---

१. हार्नली : कं० ग्रा० गौ, ६१३।

२. देखिये इस पुस्तक की सूची, सं० २३।

३. 'न' स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होता है। यह शब्द के आरंभ में भी आता है। जैसे—नाम, नाना, नीरा, नेता आदि।—अनुवादक

‘ल’ भी पूरी तरह अँग्रेजी के ल (L) के समान उच्चारित नही होता। अँग्रेजी ‘ल’ के उच्चारण मे जीभ का अग्रभाग तालु का स्पर्श करता है, जबकि हिन्दी ‘ल’ के उच्चारण मे, उसे ऊपरी दन्तपक्ति छूनी पडती है। इसीलिए हिन्दी ‘ल’ अँग्रेजी ल (L) की अपेक्षा अधिक दन्त्य और कोमल होता है।

‘व’ अँग्रेजी के व (v) और व (w) के मध्य की ध्वनि है। रोमीय वर्णमाला मे ‘व’ के लिए ‘वी’ का संकेत चुना गया है।

क. ‘र’ तथा ‘त’ को छोड़कर ‘व’ जब किसी अन्य व्यजन के साथ सयुक्त होकर आता है तो अँग्रेजी ‘व’ (v) की अपेक्षा अधिक कोमल सुनाई देता है। तब वह अग्रजी के ‘व’ (w) की भाँति उच्चारित होता है। जैसे—ह्‌वै, स्वर्ग। साधारण लोग प्रचलित शब्द ‘स्व’ मे ‘व’ का उच्चारण इतना कोमल करते है कि वह समस्थानीय स्वर ‘उ’ में परिवर्त्तित हो जाता है। जैसे—‘स्वर’ को बहुत से लोग ‘सुर’ पढते है। कुछ स्थानो पर ‘ईश्वर’ को ‘ईसुर’ बोलते है।[1] सर्वनाम ‘वह’ के ‘व’ का उच्चारण अपेक्षाकृत कोमल होता है। ‘त्’ और ‘र’ के सयोग मे ‘व’ का उच्चारण कुछ कठोर किया जाता है। जैसे—तत्व, महत्व, पूर्व, सर्व। ‘र्’ के संयोग से अकोमलता इतनी बढ़ती है कि ‘व’ का उच्चारण ‘ब’ होने लगता है। ‘पूर्व’ और ‘सर्व’ के स्थान पर ‘पूर्ब’ तथा ‘सर्ब’ उच्चारण होता है।

ऊष्म व्यंजनों का उच्चारण

३१ अँग्रेजी के शट (shut) शब्द के ‘श’ (sh) के समान हिन्दी के ‘श’ का उच्चारण होता है। उच्चारण की दृष्टि से ‘ष’ कुछ भिन्न है ‘श’ से। अन्य मूर्द्धन्य व्यंजनो की भाँति ‘ष’ के उच्चारण मे जिह्वा ‘श’ की अपेक्षा तालु के पश्च भाग को अधिक छूती है।

‘स’ दन्त्य ऊष्म वर्ण है। अँग्रेजी ‘स’ की अपेक्षा इसका उच्चारण कुछ भिन्न प्रकार से किया जाता है। अँग्रेजी ‘स’ (s) के उच्चारण मे जीभ तालु का स्पर्श न कर, ऊपरी दाँतो को छूती है। हिन्दी के ‘ह’ और अँग्रेजी के ‘ह’ मे कोई अन्तर नही है।

क. ‘ष’ का उच्चारण साधारणतया ‘श’ किया जाता है। कुछ स्थानो मे ‘ष’ का उच्चारण ‘ख’ होता है। ‘दोष’ शब्द का उच्चारण ‘दोश’ और ‘दोख’ दोनो होते है। कुछ प्रदेशो मे लिखते समय ‘ख’ के लिए ‘ष’ लिखते है। मारवाड़ी मे सर्वत्र ‘ख’ के लिए ‘ष’ लिखा जाता है। पुरानी हिन्दी मे भी यह बात देखी जाती है। जैसे—दुख के स्थान पर दुष।

३२. सयुक्त व्यंजन के प्रत्येक सदस्य का उच्चारण स्पष्ट रूप से होना चाहिए, चाहे वे सजातीय हो, चाहे विजातीय। ‘कुत्ता’ का उच्चारण ‘कुता’ नही है। पत्थर ठीक है, ‘पथर’ अशुद्ध है। किन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए, कि सयुक्त व्यजन के भिन्न-भिन्न सदस्यो पर अनावश्यक बल न दिया जाये।

उच्चारण के सम्बन्ध में पछाँह की विशेषता

३३. माडवाडा (मारवाडा) और मेरवाड़ा मे उच्चारण सम्बन्धी विशेषताएँ निम्न प्रकार है। इन दोनो क्षत्रो मे बहुवचन के प्रत्यय ‘आॅ’ का उच्चारण अँग्रेजी के आल (all) शब्द मे प्रयुक्त ‘आ’ के

---

[1] पछाँह की कई बोलियों में ‘व’ ‘उ’ बन कर पूर्णतया लुप्त हो जाता है। ‘ईसुर’ के स्थान पर इन बोलियों में ‘ईसर’ का प्रयोग करते है।—अनुवादक

समान होता है, किन्तु 'अ' (a) कुछ कम विवृत रहता है। 'औ' का उच्चारण भी इन दोनो क्षेत्रों मे बहुत कुछ 'ऑ' से सादृश्य रखता है। च और छ का उच्चारण 'स' किया जाता है, जैसे 'चक्की' के लिए 'सक्की' और 'छाछ' के स्थान पर 'सांस'। माडवाडा और मेरवाडा मे बोलते समय 'ह' अनुच्चारित रहता है। यदि उच्चारण किया भी जाता है तो बहुत हल्का-सा। मूर्द्धन्य 'ळ' का प्रचलन है। ऊपर उठी हुई जीभ-को गोल करके तालु का स्पर्श कीजिये 'ळ' का उच्चारण सरल हो जाएगा। कुछ लोग 'क' के लिए स्वतत्र लिपि-चिह्न का प्रयोग न करके 'ल' के नीचे बिन्दु लगाते है।

३४. मैने नागरी और अँग्रेजी वर्णों की समानता तथा विषमता के सम्बन्ध मे ऊपर जैसा ब्यौरा दिया है, वैसा ब्यौरा भारतीय भाषाओ के किसी वैयाकरण ने नही दिया है। हिन्दी के अधिकाश वर्णो का उच्चारण अँग्रेजी के निकटस्थ समान वर्ण से कुछ-न-कुछ भिन्न होता है। किसी ऐसे भारतीय से अँग्रेजी वाक्य पढने के लिए कहिये, जो अँग्रेजी सीख रहा हो। यदि उसके मुँह से निकलने वाले अँग्रेजी वाक्यो पर ध्यान दिया जाये तो तुरन्त यह पता चल जाएगा कि वह व्यक्ति अँग्रेजी के बहुत कम वर्णो का उच्चारण यथोचित कर रहा है। ऊपर जो उच्चारण-भेद बताया गया है, उससे ठीक-ठीक परिचित होने के लिए यही उपाय सबसे अच्छा है। किसी भारतीय से हिन्दी सुनते समय हम इस भेद को हृदयगम नही कर सकते। भारतीय व्यक्ति से अग्रेजी सुनकर हम तुरन्त पहचान सकते है कि अँग्रेजी वर्ण के उच्चारण मे क्या त्रुटि की जा रही है।

सुर

३५ उच्चारण सम्बन्धी इस अध्याय को समाप्त करने से पहले मै 'सुर' के सम्बन्ध मे थोडी जानकारी देना आवश्यक समझता हूँ। हिन्दी में सुर का अस्तित्व असदिग्ध है, किन्तु वह अँग्रेजी की भाँति तीव्र नही है। मात्रा की दृष्टि से सुर का महत्त्व अधिक नही माना जाता, यद्यपि हिन्दू साधारण वार्तालाप मे भी प्रत्येक अक्षर की मात्रा को यथारीति ध्वनित करता है। मेरा परामर्श है कि विदेशी लोग हिन्दी सीखते समय 'सुर' को व्यक्त करने के लिए 'स्वराघात' का प्रयोग न करे। स्वराघात एक प्रकार से अँग्रेजी भाषा की विशेषता है। प्रत्येक दीर्घ स्वर का उच्चारण बिना स्वराघात के आवश्यक समय मे करना चाहिए।

३६. ऊपर के अनुच्छेदो से यह बात प्रकट हो चुकी है कि 'ष' और 'य' दो ऐसे अक्षर है, जिनसे दो-दो ध्वनियाँ व्यक्त होती है। इन दो अक्षरो को छोड़कर शेष अक्षर केवल अपनी ध्वनि को व्यक्त करते है। बगाली मे भी 'य' को 'ज' पढ़ा जाता है, किन्तु तब 'य' के नीचे एक बिन्दु का उपयोग किया जाता है। व्यापार मे प्रयुक्त होनेवाली महाजनी लिपि मे 'व' को 'ब' पढा जाता है। 'व' पढने के लिए नीचे बिन्दु की आवश्यकता पडती है। क्षेत्रीय रूप से जहाँ 'ष' और 'य' के दो उच्चारण होते है, मैंने वहाँ के रूपो के लिए रोमीय अक्षरो मे 'ष' के लिए sh और 'य' के लिए y का उपयोग किया है।

क द्विविध उच्चारण के प्रसग मे 'ष' और 'य' के उल्लेख के पश्चात् संयुक्त व्यंजन 'ज्ञ' = ज्+ञ की चर्चा करना चाहता हूँ, जो बिना किसी अन्तर के हिन्दी भाषी क्षेत्र मे सर्वत्र 'ग्य' उच्चारित होता है। 'ज्ञान' के स्थान पर 'ग्यान' बोला जाता है। इसी तरह उत्तरी मैथिली मे 'षँ' का 'खँ', 'क्ष' का 'छ' और ह्य का 'झ्य' उच्चारण होता है[1]

---

[1] देखिए, सूची सं० १

विदेशियों की उच्चारण सम्बन्धी त्रुटियाँ

३७. ऊपर बताया जा चुका है कि विद्यार्थी को दो समस्थानीय वर्णों के उच्चारण-भेद को ठीक तरह से समझ लेना चाहिए। सधे हुए कान ही अल्पप्राण और महाप्राण तथा मूर्द्धन्य और दन्त्य वर्णों के अन्तर को जान पाते है। प्रायः समझा जाता है कि इन उच्चारण-भेदो को ठीक-ठीक न समझना कोई गभीर बात नही है। मेरे विचार से, जो व्यक्ति जनता से सम्पर्क बढाना चाहता है, अथवा यह इच्छा करता है कि सामान्य जनता उसके विचारों को सुने तो इससे बड़ी कोई गलती नही हो सकती कि वह उच्चारण-भेद को ठीक-ठीक न जाने। वास्तविकता यह है कि समस्थानीय अक्षरो मे एक के स्थान पर दूसरे के प्रयोग से अर्थ भी बदल जाता है। महाप्राण वर्ण की उपेक्षा करके उसके स्थान पर अल्पप्राण वर्ण का प्रयोग करना, दन्त्य 'त', 'द' आदि के स्थान पर अंग्रेजी के ट, ड आदि का उच्चारण, 'ड़' के स्थान पर हिन्दी के 'र' अथवा अग्रेजी के 'र' (R) का उपयोग, व्यंजन के द्वित्व का अपूर्णोच्चारण ये सब सामान्य त्रुटियाँ है। इन त्रुटियो के अतिरिक्त स्वराघात से रहित अन्त्य दीर्घ स्वर को ह्रस्व बनाने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। जैसे—'करता' का उच्चारण किया जाता है 'करत', पानी का पानि, माली का मालि। इस प्रकार का उच्चारण अशुद्ध है।

३८ इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए यहाँ ऐसे शब्दो की सूची दी जा रही है, जिनमे समस्थानीय वर्णों का प्रयोग है और उच्चारण भेद के कारण जिनमे अर्थ भेद उत्पन्न हुआ है।

ध्वनि साम्य वाले शब्द[1]

खाना (khānā)=भोजन, खाद्य पदार्थ, भोजन करना।
कहाना (kahānā) =√कहना का प्रेरणार्थक रूप।
काना (kānā)=एक आँख का आदमी।
ख़ाना (khānā) फ़ा, ख़ाना=कमरा।
कीड़ा (kiṛā)=कीट, कीड़ा।
खीरा (khīrā)=खीरा
काटना (kāṭnā)=√काटना
कातना (kātnā)=कातना
खड़ा (होना) (khaṛā honā),
कड़ा (kaṛā)=सख्त, कठोर।
खरा (kharā)=शुद्ध
खरा (Kharrā)=खर्रा
खट्टा (khaṭṭā)=खट्टा
कट्टा (kaṭṭā)=कट्टा
कटा (kaṭā)=कटा हुआ
खपरा (khaprā)=खपरैल
कपड़ा (kaparā)=वस्त्र

---

[1] यह सूची यूरोपीय लोगों को ध्यान में रख कर तैयार की गई है।—अनुवादक

घड़ा (gharā)=घट
गड़ा (garā) =गडा हुआ
गढ़ा (garhā)=गँढा गर्त
घोड़ा (khorā)=अश्व
गोरा (gorā)=गौरवर्ण, यूरोपीय सैनिक
गाड़ी (gārī)=गाड़ी
गारी (gārī)=गाली
छुरी (chhurī) छुरी
चूड़ी (chūrī) चूड़ी
छूना (chhūnā) स्पर्श करना
चूना (chūnā) चूना (टपकना)
जाड़ा लगना (jārā lagənā) ठंड लगना
झाडा लगना (jhārā laganā)
झाल (jhāl) तीव्रता (पानी की झाल)
जाल (jāl) जाल।
टीका (ṭīkā) टीका
ठीका (ṭhīkā) ठेका
दाल (dāl) दाल
डाल (ḍāl)√'डालना' का विधि रूप
ढाल (dhāl)√'ढालना' का विधि रूप
धो (dho)√'धोना' का विधि रूप
दो (do)√'देना' का विधि रूप, दो (संख्या)
बकरी (bakrī) बकरी
बखरी (bakhrī) घर
ताला (Tālā) ताला
टाला (ṭālā) कीचड़ का स्थान (?)
पढ़ना (paṛhnā)√पढना
पड़ना (paṛnā)√गिरना
पानी (pānī) पानी
पाणि (pāṇi) हाथ
पुड़िया (puṛiyā) चूर्ण
फुड़िया (phuṛiyā) व्रण
फुरिया (phuriyā) सत्य
फल (phal) फल
पल (pal) पल

बाट (bāṭ) मार्ग
भात (bhāt) पका चावल
भाट (bhāṭ) भाट (एक जाति)
बुढ़िया (buṛhiyā) बूढ़ी स्त्री
बुड़िया (buṛiyā)
बूढ़ा (būṛhā) बूढा
बुरा (burā) बुरा
भाई (bhāī) भाई
बाई (bāī) वात पीड़ा
भई (bhaī) हुई
मोटी (moṭī) मोटी (स्त्री)
मोती (motī) मोती
रोती (rotī) रोती (हुई)
रोटी (roṭī) रोटी
सात (sāt) सात
साथ (sāth) साथ
साठ (sāṭh) साठ

अन्य लिपियाँ

३९. हिन्दी भाषा के लिए देवनागरी के अतिरिक्त कैथी, महाजनी (सराफी) और बनियाटी लिपियों का प्रयोग भी किया जाता है। कैथी शब्द का उद्‌गम कायस्थ अथवा कायथ शब्द से हुआ है। हिन्दुओं मे कायथ जाति के लोग मुख्य रूप से कार्यालयों में काम करते है। इस जाति के व्यक्तियों ने शीघ्रता से लिखने के लिए देवनागरी लिपि मे कुछ अच्छे परिवर्तन किये हैं। इसीलिए यह लिपि 'कैथी' कहलाती है। कैथी में कुछ पुस्तकें भी छापी गई, किन्तु यह लिपि लोकप्रिय नही बन सकी, इलाहाबाद से पश्चिम में इस लिपि का प्रयोग नही होता। 'महाजनी' शब्द महाजन (व्यापारी) से बना है। 'महाजनी' के लिए 'सराफ़ी' शब्द भी प्रयुक्त होता है, जो अरबी के 'सराफ़' शब्द से सम्बन्धित है। रसीद, हुंडी तथा बही-खाते इस लिपि मे लिखे जाते है। 'बनियाटी' शब्द का सम्बन्ध 'बनिया' जाति से है। बनियाटी और महाजनी में अधिक अन्तर नही है। इन दोनों लिपियो का प्रयोग केवल व्यापार मे किया जाता है।[1]

क. कैथी का 'र' हिन्दी 'र' के उस रूप से साम्य रखता है, जो संयुक्ताक्षर के द्वितीय सदस्य के रूप मे लिखा जाता है। कैथी मे व्यंजन के द्वित्व वाले रूप का प्रयोग नही होता। ऐसे स्थानो पर केवल एक वर्ण लिखते है। 'कुत्ता' के स्थान पर 'कुता' लिखा जाता है। भिन्न स्थानीय अक्षर भी संयुक्त रूप से

---

[1] **महाजनी और बनियाटी का प्रयोग केवल व्यापार में होता है। 'कैथी' का प्रयोग बहुत सीमित क्षेत्र में हुआ। वास्तव में देवनागरी लिपि ही हिन्दी की एकमात्र लिपि है। वैसे फारसी लिपि का प्रयोग भी कुछ लोग करते रहे हैं।—अनुवादक**

प्रयुक्त नही होते, 'ज्ञान' के स्थान पर गिआन, प्रवेश के लिए परवेश आदि। ह्रस्व-दीर्घ दोनो के लिए एक स्वर ही प्रयुक्त किया जाता है। 'य' के लिए प्राय. 'व' लिखते है। ऋ और रि, ख और ष, श और स के लिए कैथी मे पृथक्-पृथक् अक्षर नही है। पाँचों नासिक्य वर्णों के लिए भी एक अक्षर से ही काम लिया जाता है।

ख. महाजनी और बनियाटी दोनों कैथी लिपि से जन्मी है। अन्तर यह है कि कैथी की भाँति महाजनी और बनियाटी मे शिरोरेखा और खडी रेखा का प्रयोग नही होता। इन तीनों लिपियो के अधिकांश अक्षरों मे शिरोरेखा के अतिरिक्त कोई अन्तर नही है। बहुत थोड़े अक्षर ऐसे है, जो देवनागरी और कैथी से भिन्न है। ह्रस्व और दीर्घ का अन्तर बताने के लिए अलग-अलग चिह्न नही है। ऋ और रि; श, ष और र तथा नासिक्य वर्णो मे कोई अन्तर नही है। अनुस्वार का प्रयोग कही नही होता। स्वर प्राय. नही लिखे जाते, केवल व्यंजन के सहारे अनुमान से ठीक उसी प्रकार पढा जाता है, जैसे बिना नुक्तोवाली फारसी और अरबी को। अग्रेजी की ध्वन्यात्मक शीघ्र-लिपि मे भी यही होता है। जैसे—'क्यूँकि' के लिए 'कीक', 'ने' के लिए 'न', 'करे' के लिए 'कर' आदि। स्थान और व्यक्ति के कारण हिन्दी की इन लिपियों में भी थोड़ा-बहुत अन्तर पडता है। अग्रेजी में भी इस प्रकार का भेद देखा जाता है।

अरबी वर्णमाला

४०. उर्दू के लिए प्रयुक्त होने वाली अरबी और फारसी की विशेष ध्वनियो को व्यक्त करने के लिए नागरी के अक्षरो के नीचे बिन्दु लिखते है। बैताल पचीसी, सिंहासन बत्तीसी जैसी प्रचलित पुस्तकों मे अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। इन पुस्तको मे कम स्थानों पर ही अरबी-फारसी शब्दों के लिए उचित चिह्न लगाये गये है। किसी स्वर के नीचे बिन्दु लगाने का तात्पर्य यह है कि उसके पूर्व अथवा पीछे अरबी की 'अ' (ऐन) ध्वनि है। 'अ़' अरबी के ऐन के लिए आता है। बिन्दुयुक्त अन्य वर्ण इस प्रकार हैं—

क़ाफ, ख़े, ग़ैन, ज़े, ज़़े, ज़ाल, ज़्वाद, ज़ोय, तोय, फ़े

अक्षरों का वर्गीकरण

४१. प्रयत्न के अनुसार हिन्दी के स्वर-व्यंजनो की वर्गीकृत सूची इस प्रकार है—

वर्ग	स्वर	स्पर्श		नासिक्य	अन्तस्थ	ऊष्म
		अघोष	घोष			
	१	२	३	४	५	६
कण्ठ्य	अ आ	क ख	ग घ	ङ	य	ह
तालव्य	इ ई ए ऐ	च छ	ज झ	ञ	र ळ	श
मूर्द्धन्य	ऋ (ॠ)	ट ठ	ड ढ	ण	ल	ष
दन्त्य	ऌ (ॡ)	त थ	द ध	न	व	स
ओष्ठ्य	उ ऊ ओ औ	प फ	ब भ	म		

क. ए, ऐ और ओ, औ का वर्गीकरण उनके द्वितीय सयोगी स्वर के अनुसार किया गया है, जो क्रमशः तालव्य और ओष्ठ्य है। साथ ही ये अपने प्रथम संयोगी अ अथवा आ के कारण कण्ठ स्थानीय अक्षरों से भी सम्बन्धित हैं। समस्थानीय अक्षर सवर्ण कहलाते है।

घोष और अघोष

४२. आभ्यन्तर प्रयत्न के अनुसार अक्षरो को दो श्रेणियो मे बाँटा जाता है। जिस अक्षर के उच्चारण मे वायु रुकी रहती है, उसे अघोष कहते है। जिस अक्षर के उच्चारण में वायु मुख से पूर्णतया अथवा आंशिक रूप से निकलती है, उसे घोष कहते है। ऊपर जो सूची दी गई है, उसमे द्वितीय श्रेणी के सभी अक्षर अघोष है, चाहे वे स्वर हो या व्यंजन। इसी प्रकार ऊष्म अक्षर भी अघोष है। शेष सभी अक्षर घोष है।

सवर्ण अक्षर

क. अक्षरो के निम्नलिखित सम्बन्ध पर ध्यान दीजिए—

१. द्वितीय श्रेणी का प्रत्येक अघोष व्यंजन तृतीय श्रेणी के घोष व्यजन का सवर्णी है। इसी तरह तृतीय श्रेणी का घोष व्यंजन द्वितीय श्रेणी के अघोष व्यंजन का सवर्णी है। उदाहरण के लिए द्वितीय श्रेणी का अघोष 'क' तृतीय श्रेणी के सघोष 'ग' और तृतीय श्रेणी का भ द्वितीय श्रणी के अघोष 'फ' का सवर्णी है।

२. तृतीय श्रेणी का प्रत्येक घोष व्यंजन और स्वर चतुर्थ श्रेणी के अर्द्धस्वरों का सवर्णी है। केवल कण्ठ्य अक्षर इस नियम के अपवाद है। इसी प्रकार ओष्ठ्य 'व' तृतीय श्रेणी के ओष्ठ्य 'ब' का सवर्णी है। प्रथम श्रेणी के ओष्ठ्य स्वर उ, ऊ भी 'व' के सवर्णी हैं। इ तथा ई और स्पर्श घोष व्यंजन 'ज' तथा तालव्य अर्द्ध स्वर 'य' मे सावर्ण्य है।

३. 'ह्' कण्ठ्य-ऊष्म अक्षर है; इसीलिए इसकी गिनती छठी श्रेणी मे ऊष्म वर्णों के साथ की गई है। प्रत्येक श्रेणी का एक ऊष्म वर्ण है, केवल ओष्ठ स्थानीय अक्षर इसके अपवाद है।

आगामी अध्याय मे छात्रों को सन्धि-नियमों पर ध्यान देना चाहिए।

•

हिन्दी के अक्षर

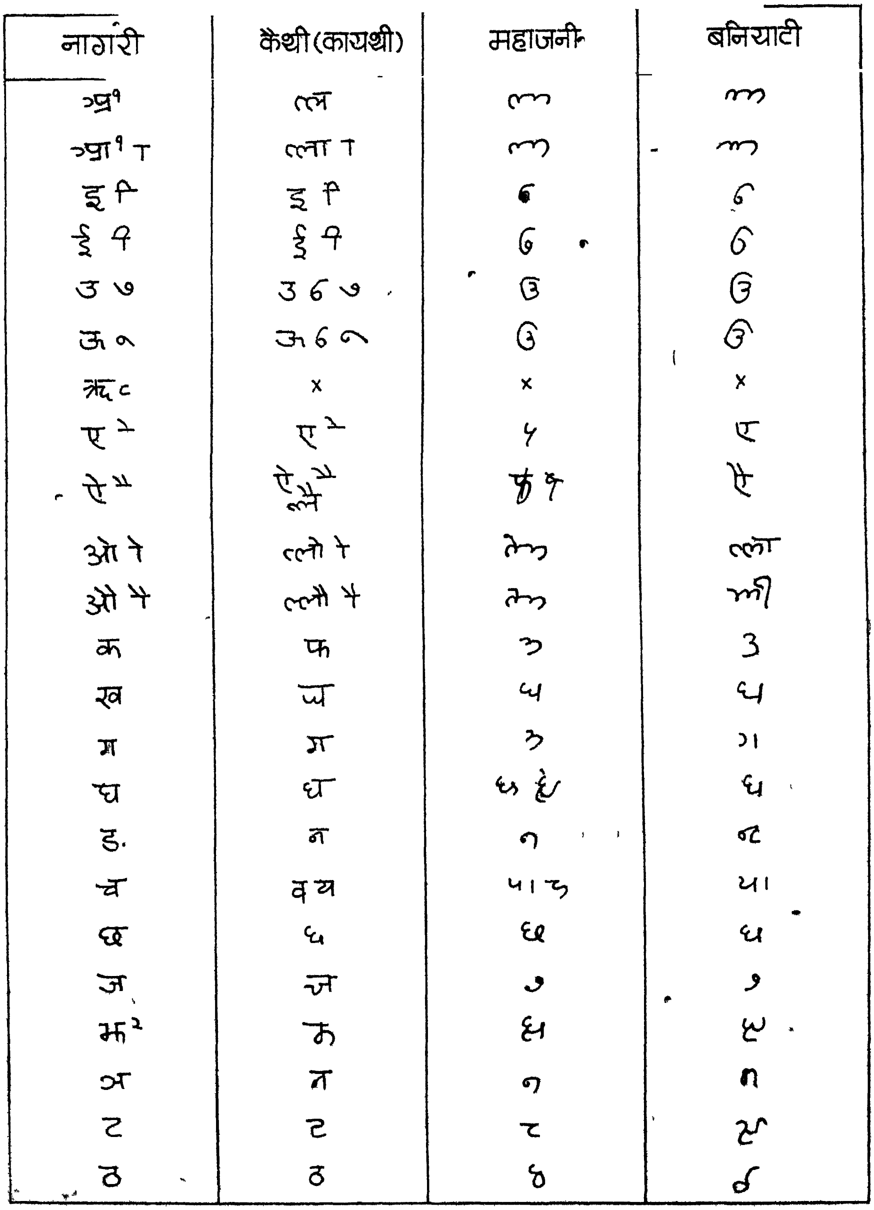
नागरी
कैथी (कायथी)
महाजनी
बनियाटी
अ¹
आ¹ ा
इ ि
ई ी
उ ु
ऊ ू
ऋ ृ
ए े
ऐ ै
ओ ो
औ ौ
क
ख
ग
घ
ङ
च
छ
ज
झ²
ञ
ट
ठ
×

---

१ अ तथा आ भी प्रचलित है।
२ 'झ' भी प्रचलित है।

हिन्दी के अक्षर (पिछले पृष्ठ से आगे)

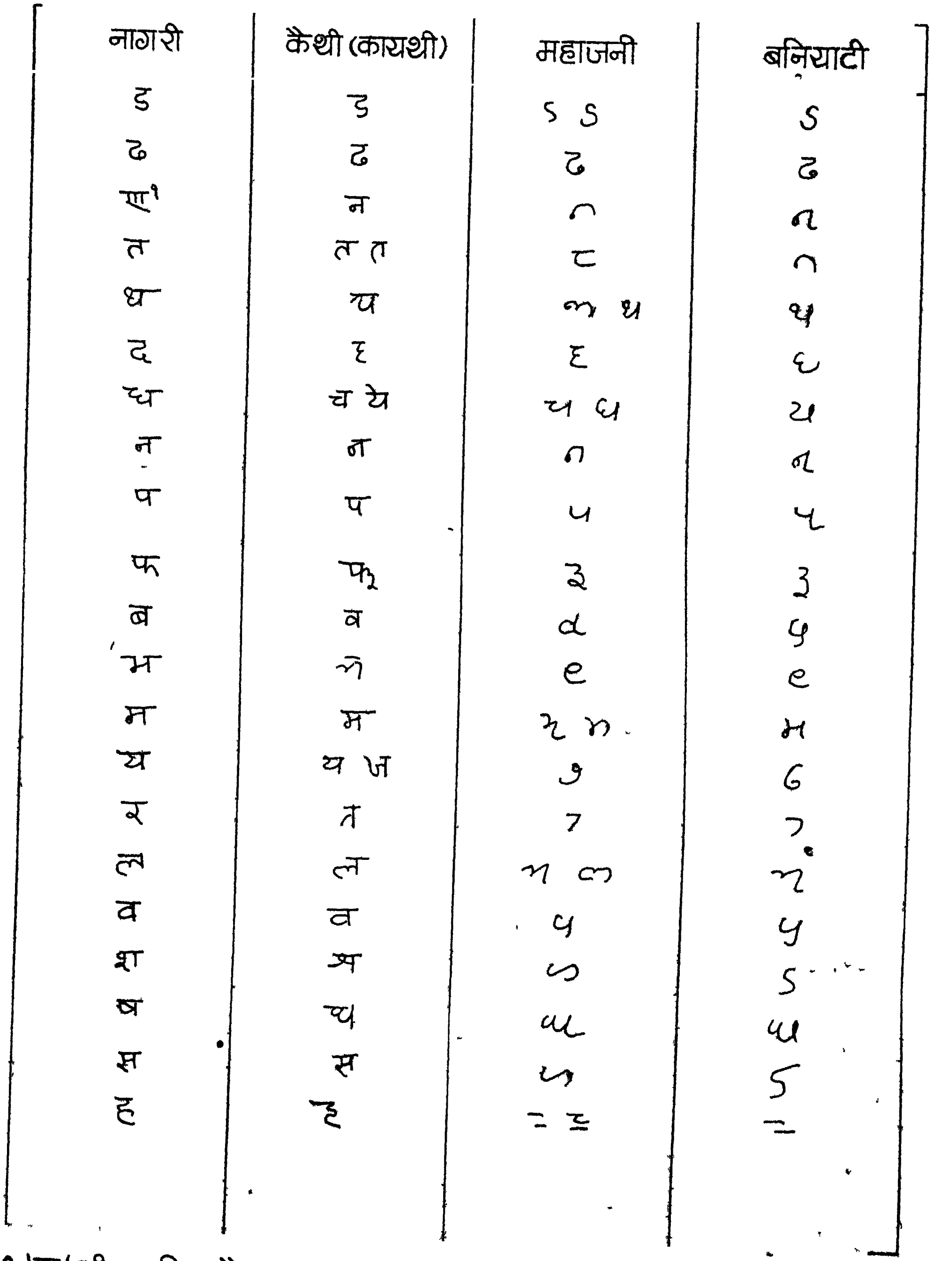
नागरी
कैथी (कायथी)
महाजनी
बनियाटी
ड
ढ
ण[1]
त
थ
द
ध
न
प
फ
ब
भ
म
य
र
ल
व
श
ष
स
ह

---

[1] 'ण' भी प्रचलित है।

द्वितीय अध्याय

सन्धि[1]

४३. सन्धि एक पारिभाषिक शब्द है। उच्चारण और श्रवण की सुविधा के लिए निकटस्थ अक्षरों के मेल को सन्धि कहते है। हिन्दी मे प्रयुक्त संस्कृत तत्सम शब्दो पर ये सन्धि-नियम बिना किसी अपवाद के लागू होते है। तत्सम शब्दों को ठीक-ठीक लिखने और समीसित करने के लिए इन नियमो का पालन पूरी तरह किया जाता है।

क. प्राकृत से प्राप्त होने वाले तद्भव शब्दों और उनके समासों मे इन सन्धि-नियमों की उपेक्षा की जाती है, किन्तु हम इस तथ्य से परिचित है कि आरंभ मे इन नियमो का पालन किया जाता था। आधुनिक रूपों के निर्माण मे इन नियमो का योग रहा है। सन्धि-नियमों की जानकारी से छात्र को यह लाभ होगा कि वह शब्द-कोशो के अवलोकन में होने वाले अधिक परिश्रम से बच सकेगा। हिन्दी-कविता मे प्रयुक्त अनेक विशेषणों और तद्भव संज्ञाओं की जानकारी में सन्धि-नियमो से विशेष सहायता मिलती है।

गुण और वृद्धि सन्धि

गुण-सन्धि

४४. सर्वप्रथम गुण और वृद्धि सन्धि की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। बहुत से असंयुक्त स्वरों से पहले आने वाले 'अ' से गुण सन्धि का सम्बन्ध है। जैसे अ+इ (अथवा 'ई')=ए, अ+उ (अथवा 'ऊ')=ओ , अ+ऋ (अथवा 'ॠ')=अर्। गुण सन्धि के कारण 'इ' अथवा 'ई' परिवर्त्तित होती है 'ए' मे; उ अथवा ऊ परिवर्त्तित होता है 'ओ' मे और ऋ अथवा ॠ परिवर्त्तित होती है 'अर्' मे।[2]

वृद्धि-सन्धि

४५. इन्ही असंयुक्त स्वरों (इ, उ, ऋ) के पूर्व 'अ' के स्थान पर 'आ' के आने से वृद्धि सन्धि होती है। अथवा ह्रस्व 'अ' के पश्चात् संयुक्त स्वर (ए, ऐ, ओ, औ) के आने पर भी वृद्धि सन्धि होती है। वृद्धि के कारण आ+इ=ऐ; आ+उ=औ, आ+ऋ=आर्।[3] अथवा अ+ए=ऐ; अ+ओ=औ; और अ+अर्=आर्। वृद्धि के कारण इ अथवा ई परिवर्त्तित होती है—'ऐ' में, उ अथवा ऊ परिवर्त्तित होते

---

[1] १. नए छात्र इस तथा अगले अध्याय को छोड़ सकते हैं।

[2] २. वास्तविकता यह है कि अ और इ अथवा ई मिल कर 'ए' में, अ और उ (अथवा ऊ) मिल कर 'ओ' में, अ और ऋ अथवा ॠ मिल कर 'अर्' में परिवर्त्तित होते हैं। अ ह्रस्व भी हो सकता है और दीर्घ भी।—अनुवादक

[3] ३. वृद्धि सन्धि का यह लक्षण ठीक नहीं है। दीर्घ 'आ' के पश्चात् 'इ', 'उ' अथवा 'ऋ' के आने पर गुण सन्धि ही होती है।—अनुवादक

है 'औ' मे और 'ऋ' रूप लेती है आर् का। नियमानुसार 'अ' की गिनती गुण स्वरो मे की जाती है, वह वृद्धि के परिवर्तनो को ग्रहण करता है, इसीलिए वृद्धि सन्धि के प्रसग मे भी उसका उल्लेख हुआ है।[1]

स्वरों का पारस्परिक सम्बन्ध

४६ चाहे अकेले हो या संयुक्त रूप मे, समान प्रयत्नवाले स्वर परस्पर सवर्ण होते है। भिन्न प्रयत्नवाले स्वर एक-दूसरे के लिए असवर्ण है। जैसे— उ, ऐ असवर्ण स्वर है।

४७. ध्यान देने योग्य बात यह है कि § ४२ के अनुसर कण्ठ्य 'अ' अथवा 'आ' को छोडकर समान बाह्य प्रयत्नवाले स्वर का एक अन्तस्थ अर्द्ध स्वर भी है। इ, ई, ए और ऐ का अन्तस्थ अर्द्धस्वर है 'य'। उ, ऊ, ओ और औ का अन्तस्थ स्वर है 'व', और ऋ का अस्तस्थ अर्द्धस्वर है 'र'। निम्नलिखित सूची से स्वरो की उपर्युक्त स्थिति स्पष्ट होती है—

ह्रस्व स्वर	समान दीर्घ स्वर	गुण	वृद्धि	अन्तस्थ अर्द्धस्वर
अ	आ	अ	आ	×
इ	ई	ए	ऐ	य
उ	ऊ	ओ	औ	व
ऋ	(ॠ)	अर्	आर्	र

इस तालिका को समझने के पश्चात् निम्नलिखित नियमो को सरलता से समझा जा सकेगा।

स्वर सन्धि

सन्धि-नियम : स्वर

४८ प्रत्येक असयुक्त स्वर चाहे वह ह्रस्व हो चाहे दीर्घ—जब अपने सवर्ण असयुक्त स्वर–चाहे वह ह्रस्व हो चाहे दीर्घ–के साथ आता है तो दोनो दीर्घ स्वर मे परिवर्त्तित हो जाते है। इस प्रकार की दीर्घ-सन्धि अथवा किसी अन्य प्रकार की सन्धि मे अन्त्य अकार को लुप्त नही माना जाता। जैसे—कल्प+अन्त =कल्पान्त; पाप+आत्मा =पापात्मा, कृपा+आयतन =कृपायतन, अहि+ईश=अहीश, भानु+उदय=भानूदय।

४९ अ और आ के पश्चात् जब कोई असवर्ण असयुक्त स्वर (चाहे वह ह्रस्व हो, चाहे दीर्घ) आता है तो दोनो मे गुण-सन्धि होती है और जब अ अथवा आ के पश्चात् गुणित अथवा सयुक्त स्वर आते है तो वृद्धि-सन्धि होती है।[1] जैसे–परम+ईश्वर =परमेश्वर, न+इति=नेति, महा+ईश=महेश,

---

[1] वृद्धि सन्धि का लक्षण ठीक नहीं है। इस सन्धि की वास्तविक स्थिति निम्न प्रकार है—अ अथवा आ+ए=ऐ; अ अथवा आ+ऐ=ऐ; अ अथवा आ+ओ=औ; अ अथवा आ+औ=औ।—अनुवादक

हिम+उपल=हिमोपल, शैल+उपरि=शैलोपरि, एक+एक=एकैक, सदा+एव=सदैव, देव+ऋषि=देवर्षि, अमित+ओजस=अमितौजस, महा+औषधि=महौषधि।

५०. जब असयुक्त स्वर—इ, ई, उ, ऊ और ऋ असवर्ण स्वर से पहले आते है तो समस्थानीय अन्तस्थ वर्णो मे परिवर्त्तित हो जाते है। जैसे—इति+आदि=इत्यादि, सु+अल्प=स्वल्प, अनु+एषी=अन्वेषी।

५१. किसी स्वर से पहले सयुक्त स्वर ए और ओ क्रमश अय् और अव् मे परिवर्तित होते है। इसी प्रकार स्वर से पूर्व सयुक्त स्वर ऐ तथा औ क्रमश आय् और आव् मे बदलते है।

क. वास्तव मे § ५१ वाला नियम कोई नई बात प्रतिपादित नही करता। ए तथा ओ इन सयुक्त स्वरो के अन्तिम सदस्यो—इ तथा उ को क्रमश य् तथा व् मे परिवर्त्तित किया गया है, तथा प्रथम सदस्य अ या आ पूर्ववत् बना रहता है। इस तरह यहाँ भी § ५०. के अनुसार सन्धि होती है।

ख. ५१ वाला नियम हिन्दी विद्वानो को इस बात की क्षमता प्रदान करता है कि वे हिन्दी मे प्रयुक्त बहुत से सस्कृत शब्दो का मूल रूप पहचान ले। उदाहरण के लिए 'जय' शब्द लीजिये, जो मूलस्वर 'इ' के गुण और अ के सयोग से बना है, √ जि+अ, जे+अ=जय। इस प्रकार √ भू से भो+अ=भव। मूल स्वर की वृद्धि और 'अक' प्रत्यय के योग से √ नी, नै+अक=नायक शब्द बनता है।

५२ संस्कृत के कुछ वाक्य-खडो मे कही-कही अन्त्य 'ए' अथवा ओ के पश्चात् शब्दारभ का 'अ' लुप्त हो जाता है और 'ए' तथा 'ओ' अपरिवर्त्तित रहते है। तुलसीदास की रामायण मे 'ते अपि' के लिए 'तेपि' तथा 'ते अति' के लिए 'तेति' का प्रयोग मिलता है। ये शब्द सस्कृत मे अवग्रह के साथ लिखे जाते है, जैसे—तेऽपि, तेऽति।[1]

व्यंजन सन्धि

घोष व्यंजन से पहले अघोष व्यंजन

५३. घोष वर्ण से पूर्व अघोष व्यंजन अपने अल्प प्राणीय घोष व्यजन मे परिवर्तित होता है।[1] जैसे—जगत्+अम्बा=जगदम्बा। हनुमत्+आदि=हनुमदादि, भविष्यत्+वक्ता=भविष्यद्वक्ता।

सस्कृत मे अघोष व्यंजन से पूर्व घोष व्यजन सर्वत्र अपने अल्प प्राण अघोष व्यजन मे परिवर्त्तित होता है, किन्तु हिन्दी में इस सन्धि के उदाहरण दुर्लभ हैं।

५४. नासिक्य व्यजन से पहले कोई अन्य व्यजन अपने वर्ग के पञ्चमाक्षर (नासिक्य) मे परिवर्त्तित होता है। जैसे—तद्+मात्र=तन्मात्र, चित्+मय=चिन्मय।

५५ अन्त्य त् तथा द् परवर्ती 'च' अथवा 'ज' मे परिवर्त्तित होते है। इस सन्धि मे सयुक्ताक्षर का का प्रथम सदस्य 'न्' लुप्त होता है। जैसे—सन्त्+चित्=सच्चित्; सन्त्+जन=सज्जन।[3]

---

[1] देखिए, § १२.

[2] देखिए, सूत्र ४२.

[3] 'सच्चित्' और 'सज्जन' का विग्रह इस प्रकार हैं—सत्+चित् और सत्+जन। 'न्त' के 'न्' लोप की बात उचित नहीं है।—अनुवादक

५६ मूर्द्धन्य व्यजन ऋ, र, ष मे से किसी एक के पश्चात् आनेवाला 'न' परिवर्तित होता है 'ण' मे। मूर्द्धन्य वर्ण और 'न' के मध्य किसी स्वर अथवा न्, म्, य् अथवा व्, कवर्ग तथा पवर्ग का कोई व्यंजन, अनुस्वार अथवा ह् के आने पर भी यह परिवर्तन होता है। 'ऋन' अशुद्ध और ऋण शुद्ध है, 'शरन' अशुद्ध और शरण शुद्ध है, 'आभूषन' अशुद्ध और आभूषण शुद्ध है। इसी प्रकार रामायन ठीक न होकर रामायण शुद्ध है, यद्यपि इस शब्द के आरंभिक 'र' और अन्त्य 'न' के मध्य 'आमाय' का व्यवधान है, फिर भी 'न' को ण आदेश हुआ है।

क हिन्दी मे प्रयुक्त सस्कृत शब्दो की ठीक-ठीक वर्तनी के लिए इस नियम को विशेष रूप से ध्यान मे रखना चाहिए। यह बात भी उल्लेखनीय है कि इस नियम का प्रयोग सस्कृत के तत्सम शब्दो पर ही होता है। स्तरीय हिन्दी के शब्दो मे सर्वत्र 'न' अपरिवर्तित रहता है। 'कारन' के लिए 'कारण' लिखा जाता है, किन्तु 'करना' के स्थान पर 'करणा' नही लिखा जाता। 'करना', 'कारण' की भाँति संस्कृत शब्द नही है। मारवाड़ी, गढ़वाली जैसी बोलियो मे प्राकृत से प्राप्त तद्भव शब्दो मे भी कही-कही 'न' का परिवर्तन 'ण' मे होता है किन्तु इस प्रकार का परिवर्तन नियम ५६. के कारण नही है। इन बोलियो की प्रवृत्ति मूर्द्धन्य नासिक्य की पाई जाती है। यह प्रवृत्ति इन बोलियो मे सर्वत्र दिखाई देती है, यहाँ तक कि अनावश्यक रूप से दन्त्य 'न' के स्थान पर मूर्द्धन्य 'ण' का प्रयोग मिलता है।

५७ म्, स्पर्श व्यंजन से पूर्व 'म्' परवर्ती व्यजन के पञ्चमाक्षर (नासिक्य) मे परिवर्तित होता है, यद्यपि उसे सदैव अनुस्वार के रूप मे लिखने की प्रवृत्ति पाई जाती है।[1] संस्कृत के ऐसे अनेक समासित शब्दों मे इस नियम को विशेष रूप से देखा जा सकता है, जहाँ 'सम्' पूर्वपद के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। जैसे—सम्+कल्प=सङ्कल्प अथवा संकल्प, सम+चित=सञ्चित, सम+ताप=सन्ताप, सम्+शय=संशय।

ऊष्म अक्षरों की सन्धि

५८ समासित शब्दो मे अ तथा आ को छोड कर किसी अन्य स्वर के पश्चात् अन्त्य 'स्' परिवर्त्तित होता है 'र्' मे। इस प्रकार की सन्धि के लिए यह आवश्यक है कि 'स्' के पश्चात् 'र' के अतिरिक्त कोई-न-कोई घोष वर्ण रहना चाहिए। इस परिवर्तन के उदाहरण सस्कृत के तत्सम शब्दो में सामान्य रूप से मिलते है। जैसे—आशीस्+वाद=आशीर्वाद; दुस्+जन=दुर्जन। यदि 'स्' के पश्चात् 'र्' आए तो 'स्' का लोप होता है और पूर्व स्वर दीर्घ कर दिया जाता है। जैसे—निस्+रोग=नीरोग।

५९. ह्रस्व 'अ' अथवा घोष व्यंजन से पूर्व अस् (अथवा अ) 'ओ' मे परिवर्तित होता है। 'ओ' के पश्चात् 'अ' का लोप होता है और उसे अवग्रह से व्यक्त किया जाता है। निम्नलिखित शब्द इस प्रकार की सन्धि के उदाहरण है—मनस्+हर=मनोहर; रजस्+गुण=रजोगुण। अध्यायो के शीर्षक मे इस सन्धि के उदाहरण मिलते है। जैसे—प्रथमस्+अध्याय=प्रथमोऽध्याय। इसी प्रकार रामायण मे प्रयुक्त सस्कृत वाक्य खड—सोपि, योसि, सोगि की व्याख्या की जा सकती है, सस्+अपि, यस्+असि, सस्+असि। इन उदाहरणो मे अवग्रह की उपेक्षा उचित नही है।

---

[1] देखिए, § १८

६०. संस्कृत शब्दो मे अ अथवा आ के अतिरिक्त किसी भी स्वर और क अथवा र के पश्चात् आने वाले 'स्' के स्थान पर 'ष' लिखना चाहिए। यह 'स' शब्दान्त मे नही होना चाहिए। भविस्य न लिख कर हमें 'भविष्य' लिखना चाहिए। हिन्दी में इस नियम के अपवाद भी मिलते है।

६१. संस्कृत के समासित शब्दो मे क, ख, प अथवा फ के पूर्व अ त्य 'स्' विसर्ग अथवा 'ष्' मे परिवर्तित होता है। 'निस्' उपसर्ग के योग से बननेवाले अनेक शब्द इस परिवर्तन के उदाहरण है। कुछ अन्य शब्द भी इस नियम के उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते है। जैसे निस्प्रमाण के स्थान पर निष्प्रमाण, निस्कलंक के लिए निष्कलंक अथवा नि कलक। प्रातस्काल के स्थान पर प्रात काल।

६२ संस्कृत मे उच्चारण की सुविधा के लिए इस प्रकार की सन्धियो के अनेक नियम है, किन्तु यहाँ उन्ही नियमों का उल्लेख किया गया है, जिनके कारण हिन्दी मे प्रयुक्त होने वाले लगभग सभी संस्कृत तत्सम शब्दो को ठीक तरह से लिखा जा सके।

तीसरा अध्याय

हिन्दी के विधायक तत्व

भारत की मूल भाषाएँ

६३ आज जो देश हिन्दुस्तान कहाता है, उसमे ईस्वी सन से बहुत पहले सस्कृत भाषी आर्यजन प्रविष्ट हुए थे। आर्यो ने यहाँ एक ऐसी जाति को बसा पाया, जिसकी भाषा सस्कृत से भिन्न थी। भारत के ये मूल निवासी आर्यों के अभियान के कारण अपने निवास स्थान से खदेडे गये। उनमे से कुछ उत्तर भारत के पर्वतों और अरण्यो मे चले गये, अधिक लोग मध्यप्रदेश तथा दक्षिण भारत के जंगलों-पहाडो मे बस गये। इन स्थानो पर ये आर्येतर जन अपनी पुरानी बोलियो तथा अन्धविश्वासयुक्त मानव-पूजा जैसी बातो को आज भी सुरक्षित रखे हुए है। बहुत-से आर्येतर लोग निस्सन्देह अपने मूल स्थानों पर बने रहे, जहाँ नवागन्तुक आर्यो और उनकी भाषा ने उन्हे प्रभावित किया। मूल निवासी विजेता लोगो के दास बन गये। उत्तर और पश्चिम भारत के बहुत-से भागो मे यद्यपि आदिवासियो की भाषा शीघ्र लुप्त हो गई, फिर भी उसने विजेता आर्यो की भाषा को बहुत कुछ प्रभावित किया। तूरानी प्रभाव के अतिरिक्त 'प्राकृत' के नाम से सम्बोधित प्राचीन भारतीय भाषाओ की विशेषताओ का उल्लेख करके हम कोई गलती नही करेंगे। ये प्राकृतें शताब्दियो तक सस्कृत के साथ-साथ उसी प्रकार प्रचलित रही जैसे इटली मे राज-दरबार तथा सास्कृतिक क्षेत्र की भाषा लेटिन के अतिरिक्त बहुत-सी क्षेत्रीय बोलियाँ भी विद्यमान थी।

पुरानी प्राकृतें

६४. बहुत प्राचीन काल मे प्राकृत के दो मुख्य भेद थे। पश्चिम मे शौरसेनी और पूर्व मे मागधी प्राकृत बोली जाती थी। इन दोनो के मध्य बीच की एक बोली और थी, जो अर्द्धमागधी कहाती थी। ये दोनों अथवा तीनो बोलियाँ ईसा पूर्व चौथी शती मे पूर्व से लेकर पश्चिम तक समूचे उत्तर भारत की बोलियो को समेटे हुए थी। प्राकृत के प्राचीन वैयाकरणों ने महाराष्ट्री प्राकृत का उल्लेख भी किया है, जो शौरसेनी से कुछ बातों मे ही भिन्न थी। महाराष्ट्री मुख्य रूप से कविता की भाषा थी, जबकि शौरसेनी गद्य मे प्रयुक्त होती थी। साहित्य मे प्रयुक्त प्राकृत के परिनिष्ठित रूप से बहुत दूर बोलचाल की भाषा की अनेक शैलियाँ विकसित हो रही थी। भारतीय वैयाकरणों ने इन शैलियो को अपभ्रश कहा है। एक क्षेत्र की अपभ्रंश से दूसरे क्षेत्र की अपभ्रश बहुत-सी बातो मे भिन्न थी। पश्चिम मे शौरसेनी अपभ्रश और पूर्व मे मागधी अपभ्रंश का प्रचलन था। इस प्रकार की कुछ अन्य अपभ्रंश भाषाएँ भी थी। साहित्यक प्राकृतौ-शौरसेनी, मागधी-और अन्य प्राकृतो से अपभ्रशो का जन्म हुआ। अपभ्रश की क्षेत्रीय शैलियो से आधुनिक भारतीय भाषाओ की उत्पत्ति हुई। ये बोलियाँ सस्कृत से उसी प्रकार सम्बन्धित है, जैसे यूरोप की

आधुनिक रोमानी भाषाएँ साहित्यिक लेटिन से। अपभ्रंशों से उद्भूत उत्तर भारत की आधुनिक बोलियाँ सात हैं—पंजाबी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, हिन्दी, उड़िया और बंगाली। प्राचीनता की दृष्टि से सर्वप्रथम पंजाबी, गुजराती और हिन्दी का उल्लेख होता है। हिन्दी का प्रारंभ १००० ई० से माना जाता है। सबसे पुराने जिस लेखक की रचना उपलब्ध हुई है,[1] वह है चन्दवरदाई, जिसने लगभग १२वीं शती के अन्त में लिखा। काल की दृष्टि से हिन्दी के पश्चात् मराठी का नाम लिया जाता है। बंगाली का उद्भव सबके बाद हुआ।

हिन्दी का महत्व

६५ इन सातों भारतीय आर्य भाषाओं में महत्त्व की दृष्टि से हिन्दी का स्थान पहला है। उत्तर में हिमालय के हिमशिखरों से दक्षिण में विन्ध्याचल की चोटियों और नर्मदा नदी तक हिन्दी की कोई-न-कोई बोली बोली जाती है। पूर्व में सखासी नदी हिमालय से लेकर गंगा तक हिन्दी की सीमा बनाती है। दक्षिण-पश्चिम की सीमा के लिए सखासी से नर्मदा तक एक रेखा खींची जा सकती है। पश्चिम में सीमा बताने के लिए कच्छ की खाड़ी के सिरे से पश्चिम की ओर रेखा अंकित की जा सकती है। वहाँ से उत्तर-पूर्व में शिमला के निकट सतलज तक रेखा खींचनी चाहिए।

ऊपर जो सीमा-रेखा अंकित की गई है, उसके अनुसार २ लाख ४८ हजार वर्गमील[4] के क्षेत्र में हिन्दी बोली जाती है। इसके बोलनेवालों की संख्या ७ करोड़ से कम नहीं है।[2] अपनी विशेष शैली उर्दू अथवा हिन्दुस्तानी के कारण हिन्दी उत्तर भारत के बहुत बड़े भूभाग की राजभाषा है। मुसलमानों की मातृभाषा होने के कारण भी समूचे उपमहाद्वीप-भारत—में इसे राष्ट्रभाषा का स्थान मिला है।[3]

हिन्दी पर मुसलमानों का प्रभाव

६६ हिन्दी ने आरंभिक काल से ही विदेशी प्रभावों को स्वीकार किया है। आरंभ में मुसलमानों के अनेक अभियानों और फिर उत्तर भारत के अधिकांश भाग पर उनके अधिकार के पश्चात् १२वीं शती

---

[1] इस विषय में मूर के संस्कृत टैक्स्ट्स, भाग २, पृष्ठ १४६-१४९ पर दी गई टिप्पणियों से बहुत जानकारी मिलती है।

[2] यह संख्या सम्भवतः १८७० या १८८० ई० की है। तब की जनगणना को भाषा की दृष्टि से अधिक विश्वस्त नहीं माना जा सकता। उर्दू के अतिरिक्त हिन्दी से सम्बन्धित कई बोलियों को पृथक मान कर गिनती की गई थी।—अनुवादक

[3] समूचे भारत के मुसलमानों की मातृभाषा उर्दू नहीं है। हिन्दी और पंजाबी क्षेत्र के मुसलमान ही अपनी मातृभाषा उर्दू मानते हैं। बंगाल, आसाम, गुजरात, महाराष्ट्र, केरल, मद्रास और आन्ध्र के अधिकांश मुसलमान उर्दू नहीं समझते। वे अपने क्षेत्र की भाषा ही बोलते हैं। समूचे भारत में हिन्दी व्यापार, तीर्थयात्रा तथा अन्य कारणों से समझी जाती है। हिन्दी तथा पंजाबी क्षेत्र से जो मुसलमान अन्यत्र बसा है, उसके कारण भी हिन्दी का प्रसार हुआ है।—अनुवादक

[4] ग्रिअर्सन और हार्नले का विचार है कि इलाहाबाद के पूर्व में बंगाल तक जो बोलियाँ बोली जाती हैं, उनका समावेश हिन्दी में नहीं होना चाहिए। दोनों ने इन बोलियों के लिए 'बिहारी' नाम का उपयोग किया है। इन दोनों विद्वानों ने हिमालय की सभी बोलियों को हिन्दी के अन्तर्गत नहीं माना। देखिए, ग्रिअर्सन-सेवन ग्रामर्स ऐंड भाग १, पृ० १-३। हार्नले कम्परेटिव ग्रा पृ० १, २।

के अन्त मे तथाकथित उर्दू अथवा 'शिविर भाषा' को विकास का अवसर मिला। प्रत्यक्ष रूप से उर्दू हिन्दी से भिन्न दिखाई देती है, किन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि उर्दू भी हिन्दी की एक विशेष शैली मात्र है। हिन्दी की अन्य बोलियो से उर्दू केवल इसी बात मे भिन्न है कि इसमे सस्कृत-प्राकृत के तत्सम-तद्भव शब्दो और मुहावरो के स्थान पर बडी मात्रा मे अरबी-फारसी के शब्द तथा वाक्य खण्ड प्रयुक्त होते है। वैसे देखा जाये तो मुसलमानो का प्रभाव उर्दू तक सीमित नही है। हिन्दी की सभवत कोई ऐसी विशुद्ध शैली बची हो जिसने मुसलमानो से थोड़े-बहुत अरबी-फारसी के शब्द ग्रहण न किये हों। देश के प्रशासनिक कार्यों मे उर्दू को जो बढावा दिया गया तथा आने-जाने के साधनो की वृद्धि से समूचे हिन्दी-प्रदेश मे भाषा ही नही अन्य क्षेत्रो मे भी अनेक परिवर्तन अभूतपूर्व तीव्रता से हो रहे है।

हिन्दी में तूरानी तत्व

६७ ऊपर, आधुनिक हिन्दी के उद्भव तथा विकास के बारे मे जो सक्षिप्त विवरण दिया गया है, उससे प्रकट होता है कि वह यथार्थ मे सस्कृत की भाँति आर्यभाषा है, और आर्यभाषा ही इसके रूप-विन्यास तथा अधिकाश शब्दराशि की निर्मात्री है, फिर भी तूरानी और सेमेटिक तत्त्व इसमे विद्यमान है।

तूरानी अथवा भारत के आदिवासियो की भाषा के जो तत्त्व, अल्प मात्रा मे ही क्यो न हो, हिन्दी मे सुरक्षित है, उनके सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ कहना सभव नही है। हम इससे परिचित नही है कि किसी विद्वान् ने अब तक आदिवासियो और द्रविड लोगो की भाषाओ के साथ हिन्दी की गभीर तथा वैज्ञानिक तुलना की है। इस प्रकार की तुलना के फलस्वरूप ही इस विषय की अधिक प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत की जा सकती है। इस प्रकार की जाँच-पड़ताल के लिए उपयुक्त और सुयोग्य विद्वानो का मिलना बहुत कठिन है। यह होते हुए भी, यदि मै गलती नही करता, तो यह कह सकता हूँ कि अब तक जो अनुसन्धान हुए है, उनसे यही सकेत मिलता है कि हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओ पर तूरानी प्रभावो को अनावश्यक रूप से बढा-चढ़ा कर दिखाया गया है।

क. कुछ लोगो का विचार है कि तूरानी तथा द्रविड़ प्रभाव हिन्दी व्याकरण मे खोजे जा सकते है। जैसे—शब्दो मे उच्चारण सम्बन्धी किसी प्रकार के परिवर्तन के बिना विभक्ति सम्बन्धी विकारो की अनुपस्थिति मे भी परसर्ग अथवा अनुबन्धित अव्ययो के द्वारा कारको की अभिव्यक्ति, और काल, पुरुष तथा अन्य बातों को प्रदर्शित करने के लिए सहायक क्रियाओ से रूप-निर्माण उन तथ्यो मे से है, जो हिन्दी को सस्कृत तथा प्राकृत से पृथक् करते है और उसका सम्बन्ध दक्षिण भारत की भाषाओ के साथ जोडते है। ये तथ्य आर्येतर प्रभाव के द्योतक है। किन्तु ये तथा इसी प्रकार के अन्य सादृश्य वास्तविकता से दूर केवल मनोरजक और भ्रमपूर्ण है। वास्तविक बात तो यह है कि हिन्दी मे परसर्ग का प्रयोग तूरानी भाषाओ के शब्द-संयोजन से सर्वथा भिन्न है। आगे चल कर बताया जाएगा कि हिन्दी मे कारक को प्रकट करने के लिए जो अव्यय अथवा परसर्ग प्रयुक्त होते है वे मूलत सस्कृत के शब्द है। अधिक प्रयोग के कारण उनमे बहुत विकृति आ गई है। ये परसर्ग सज्ञाओ तथा सज्ञा के साथ क्रिया के सयोजन को ही सूचित नही करते। इनकी उपलब्धि सस्कृत से हुई है। ये सब व्याकरण-सम्बन्धी रचना की सूचना देते है। डॉक्टर काल्डवेल ने अपने

---

१. संस्कृत तथा प्राकृत के माध्यम से हिन्दी को अधिकांश आर्यशब्द मिले है, साथ ही मुस्लिम आक्रमण के कारण वर्तमान फारसी के माध्यम से भी पुरानी जन्द (एक आर्य भाषा) के कुछ शब्द हिन्दी में सम्मिलित हुए हैं।

तुलनात्मक व्याकरण मे द्रविड भाषाओ के कर्म तथा सम्प्रदान कारक की विभक्ति 'को' अथवा 'कु' के साथ हिन्दी भाषा के कर्म-सम्प्रदान कारक की विभक्ति 'को' की जो अनुरूपता दिखाई है, उसके सम्बन्ध मे प्रतिष्ठित विद्वानो का कथन है कि यह केवल सयोग की बात है। हिन्दी और सस्कृत मे विन्यास तथा रूप सम्बन्धी जो भेद दिखाया गया है, वह कम-अधिक, किन्तु स्पष्ट रूप से , यूरोपीय भाषाओ मे भी देखा जा सकता है। प्रत्येक यूरोपीय भाषा मे कारक सम्बन्धी विकारो की क्षति हुई है। जिन प्राचीन भाषाओ से उनका उद्भव हुआ है, उनके सयोगी रूपो की क्षति यूरोप की प्राचीन तथा नवीन भाषाओ को बहुत कुछ भिन्न करती है। यूरोपी भाषाओ की भी यह सहज आवश्यकता है कि वे सहायक क्रियाओं का प्रयोग करे।

जहाँ तक हिन्दी की सज्ञाओ का सम्बन्ध है, थोडी-बहुत दुविधा बराबर रही है। जैसे-जैसे भारत की भाषाओ पर अधिक कार्य हुआ है, उनके उच्चारण सम्बन्धी नियम अच्छी तरह ज्ञात होते जा रहे है, वैसे-वैसे पुरानी धारणाएँ बदली है। हिन्दी के जिन बहुत-से शब्दो को पहले सस्कृत से उद्भूत माना गया था, आगे चलकर उनके बारे मे यह अनुमान लगाया गया कि उनका सम्बन्ध भारत के आदिवासियो की भाषा से है। ठीक ढग से अध्ययन करने के पश्चात् अब अन्तिम रूप से यह कहा जा रहा है कि इन शब्दो का सम्बन्ध साहित्यिक सस्कृत से है। फिर भी कुछ शब्दो के बारे मे सन्देह बना हुआ है, विशेष रूप से क्षेत्रीय बोलियों के ग्राम्य शब्दो के सम्बन्ध मे। जाँच-पडताल के पश्चात् कुछ भद्दे शब्द ऐसे रह जाते है, जो निस्सन्देह तूरानी है।[1] प्रोफेसर मोनेर विलियम्स ने अपने सस्कृत व्याकरण मे सुझाव दिया है कि हिन्दी ने संस्कृत से जो मूर्द्धन्य वर्ण ग्रहण किये है, उनका मूलस्रोत सस्कृत न होकर सभवत आदिवासियों की भाषा है।[2] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी के ऐसे अधिकाश शब्द जो मूर्द्धन्य अक्षर से प्रारभ होते है, शुद्ध सस्कृत से नही लिये गये है। ऐसे शब्द प्राकृत से प्राप्त हुए है। उदाहरण के लिए 'प्रेम सागर' को प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसके ८९ शब्द मूर्द्धन्य वर्ण ट, ठ, ड और ढ से प्रारभ होते है। इनमे से केवल २१ शब्द तत्सम है और शेष ६८ प्राकृत से सम्बन्धित है। इसके विपरीत 'क' से प्रारभ होने वाले १२८ शब्दो मे से १०७ तत्सम और केवल २१ प्राकृत से मिले है। इस विवरण से यह ज्ञात होता है कि मूर्द्धन्य अक्षरो से प्रारभ होनेवाले तीन-चौथाई शब्द प्राकृत से आये है जब कि 'क' से प्रारभ होनेवाले $\frac{५}{६}$ शब्द सस्कृत से सम्बन्ध रखते है। यह भी देखा गया है कि हिन्दी भाषी क्षेत्र मे मूर्द्धन्य वर्णों का प्रचलन ऐसे स्थान पर ही अधिक है, जहाँ चाहे आज आदिवासियो की सख्या अधिक न हो, किन्तु पहले दीर्घकाल तक वे वहाँ रह चुके है, जैसे—हिमालय और राजस्थान का पश्चिमी भाग। कुछ भी हो, मोनेर-विलियम्स के उपर्युक्त सुझाव को स्वीकार करने मे बीम्स और हार्नले को आपत्ति है। इन दोनो का विचार है कि मूर्द्धन्य तथा दन्त्य दोनो प्रकार की ध्वनियाँ मूलत भारतीय आर्य ध्वनियाँ है। इन दोनो का सुझाव है कि आदि भारतीय आर्यभाषा मे सभवतः अर्द्धमूर्द्धन्य ध्वनियाँ थी जो हार्नले के शब्दो मे "...दो दिशाओ मे इस तरह परिवर्तित हुई कि पूर्ण मूर्द्धन्य और पूर्ण दन्त्य बन गई।"[3]

हिन्दी पर अरबी-फारसी का प्रभाव

६८ संक्षेप मे, प्रत्येक दृष्टि से हिन्दी पर तूरानी प्रभाव बहुत कम पड़ा है। व्याकरण और शब्दावली दोनों दृष्टियों से हिन्दी असदिग्ध रूप से आर्यभाषा है। किन्तु हिन्दी को शुद्ध आर्यभाषा मान कर कुछ

---

[1] देखिए, ट्रम्प ग्रामर आफ़ द सिन्धी, पृ० ३।

[2] मोनेर-विलियम्स : संकृत ग्रामर, पृ० २४ की टिप्पणी ।

[3] बीम्स : कम्प० ग्राम० खं० १, पृ० २३२-२३५, हार्नले : कम्प० ग्रा० § १२

विदेशी विद्वान् अति कर देते है। वे इस बात को स्वीकार ही नही करते कि हिन्दी मे संस्कृत और प्राकृत के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा के शब्द भी है। ये लोग शुद्ध हिन्दी के उत्साह में, वार्तालाप मे चाहे असफल रहे, किन्तु लिखते समय सतर्कता के साथ अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग नही करते।[1] इस बारे मे हमे यह नही भुलाना चाहिए कि सिद्धान्त के साथ-साथ तथ्यों पर ध्यान देना भी आवश्यक है। किसी निर्णय पर पहुँचने से पहले हमे हिन्दी के साहित्यिक ग्रन्थों का परीक्षण करना चाहिए। गद्य मे **'प्रेमसागर'** और कविता मे **रामायण** को चुना जा सकता है। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो भारत की जनता जिस भाषा को हिन्दी कहती है, वह अरबी तथा फारसी के शब्दों से रहित नहीं है।

क. इस कथन की पुष्टि मे छात्र अरबी-फारसी शब्दों की निम्न सूची पर ध्यान दे। ये शब्द रामायण मे भी प्रयुक्त हुए है। इन शब्दों की हिन्दी वर्तनी दी जा रही है—

गरीबनिवाज, साहेब, बराबरी, अस्वार, बकसीस, बजार, लायक, बाग, हाल, फौज, सोर, बन्दीखान, हवाले, बजाज, सराफ, हुनर, सक्क, गुमान, खबर, तरवार, दरबार, गर्द, ताज, जोर, कागद, गनी, गरीब, जिनिस, दाम, जहाज, बाद, लगाम, जीन आदि।

कबीर और कबीर की भाँति ऐसे लेखक जिनका जीवन मुसलमानो मे बीता, अरबी-फारसी के शब्दो का अधिक प्रयोग करते है। जिन स्थानों पर मुसलमानो की आबादी बहुत कम है, वहाँ के हिन्दू भी अपनी ग्रामीण भाषा मे बहुत-से अरबी-फारसी के शब्द प्रयुक्त करते है। जैसे—हुकम, सरकार, बन्दोबस्त, या, साहब, बखशिश, मजूरी (मज़दूरी), जमीन्दार (ज़मीदार) आदि।

अरबी-फारसी के शब्दों के मिश्रण के सम्बन्ध में यहाँ एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विजेता मुसलमानों ने हिन्दी से ऐसे सभी संस्कृत शब्द बाहर कर दिये जो विधि तथा प्रशासन से सम्बन्ध रखते थे। विजेता लोगों ने इन संस्कृत शब्दो के स्थान पर अरबी-फारसी के शब्दो का प्रयोग किया। 'शुद्ध हिन्दी, के उत्साह मे कोई व्यक्ति आज इन अरबी-फारसी शब्दो के स्थान पर संस्कृत पर्यायो का उपयोग करे तो उसकी भाषा को कुछ पंडितों के अतिरिक्त कोई नही समझेगा। प्रशासनिक और विधि-सम्बन्धी शब्दावली के अतिरिक्त अन्य विषयो के अरबी-फारसी शब्दो का अनुपात सर्वत्र समान नही है। देश के विभिन्न भागो मे यह अनुपात या तो बढ़ जाता है या घट जाता है। धुर उत्तर-पश्चिम मे अनुपात बहुत अधिक है, जब कि पूर्व तथा दक्षिण की ओर इन विदेशी शब्दों की संख्या बहुत कम है।

हिन्दी में अरबी-फ़ारसी की ध्वनियाँ

६९. अरबी और फारसी की वर्णमाला बहुत-सी बातो मे देवनागरी से भिन्न है। हिन्दी में अरबी-फारसी की ध्वनियो का प्रयोग करते समय देवनागरी लिपि मे कुछ परिवर्तन किया जाता है। कुछ ध्वनियों के लिए विशेष चिह्नो का उपयोग नही किया जाता। अरबी-फारसी की विशेष ध्वनियों को व्यक्त करने का प्रयत्न इस प्रकार किया जाता है—

क. तोय और ते दोनों को 'त' से व्यक्त करते है। जैसे—तलब और तकरार।

---

१. एथेरिगटन-हिन्दी ग्रामर, भूमिका, पृ० ४, ५

ख. से, स्वाद और सीन तीनो को 'स' से व्यक्त करते है। जैसे—साबित, सईस और साहब, साहिब या साहेब। शीन को 'श' से व्यक्त करते है, किन्तु दोआबा, मारवाड तथा कुछ अन्य भागों मे इसका उच्चारण 'स' से भी किया जाता है। जैसे—शुरू, या सुरू और शक या सक्क।

ग. जाल, ज़े, ज्वाद और जोय ये ध्वनियाँ अँग्रेजी के जेड के समान उच्चरित होती है, किन्तु हिन्दी मे इन्हें 'ज' से व्यक्त किया जाता है। जैसे—जरा, जमीन, जामिन, जाहिर। मारवाडी तथा कुछ अन्य बोलियो मे शब्दान्त का ज़ाल 'द' मे परिवर्त्तित होता है, जैसे—कागज के लिए कागद।[1]

घ हे तथा हे दोनो को 'ह' से व्यक्त करते है; जैसे—हाल और हर। अरबी-फ़ारसी के दोनो 'ह' यदि शब्द के मध्य मे आते है तो मारवाड़ी लोग उनका उच्चारण नही करते। जैसे—शहर के लिए सैर और साहब के लिए साब। कण्ठच खे और गैन दोनो को क्रमश ख और ग लिखते है, जैसे—ख़ाक के लिए खाक, गम के लिए गम और गुलाम के लिए गुलाम। क़ाफ़ का उच्चारण सामान्यतया 'क' करते है, जैसे हक के लिए हक्क, कौल के लिए कौल। मध्य दोआबे के लोग कभी कभी अन्तिम काफ का उच्चारण 'त' करते है, जैसे—तहकीक को तैकीत, मुआफिक को माफित। ऐन लुप्त रहता है, या उसका उच्चारण 'अ' किया जाता है। जैसे—अक्ल का उच्चारण 'अकल' होता है, वाकआ का उच्चारण वाकिआ करते है। यदि ऐन से पहले 'अ' आता है तो उसे दीर्घ कर देते है और 'ऐन' का कोई चिह्न उच्चारण मे शेष नही रहता। जैसे—मआलूम को मालूम। वाव सामान्यतया 'व' से व्यक्त किया जाता है, किन्तु मारवाड़ी मे मैने वजीर के लिए उजीर सुना है। मारवाड़ी मे 'व' का उच्चारण इतना कोमल किया जाता है कि वह सवर्णी स्वर 'उ' मे परिवर्तित हो जाता है।

घ. हिन्दी की अधिकाश बोलियो मे फ़े अपने मूल रूप मे सुरक्षित है। कुछ बोलियों में इसे 'फ' उच्चारित करते है; जैसे—सर्राफ के लिए सराफ। कुछ प्रदेशों में मामान्य जनता अधिकाश शब्दो में हिन्दी के 'फ' को भी फारसी के 'फ' में बदल देती है। जैसे फल का उच्चारण फल और फिर का उच्चारण फ़िर होता है।

च ऊपर अरबी-फारसी की जिन विशेष ध्वनियो की चर्चा की गई है, उनके अतिरिक्त शेष ध्वनियाँ हिन्दी मे भी हैं। उन ध्वनियों के लिए देवनागरी मे सकेत विद्यमान है। आवश्यकतानुसार ध्वनियो मे परिवर्तन होता है, कुछ ध्वनियाँ विकृत होती है, किन्तु इसका यह तात्पर्य नही है कि देवनागरी उन ध्वनियो को व्यक्त नही कर सकती। कुछ इलाकों मे ऊष्म ध्वनि के पश्चात् दूसरी ध्वनि उच्चारित नही होती। दोआबे मे मजदूर के लिए मजूर तथा मजबूत के लिए मजूद सुनने को मिलता है। मारवाड में मसजिद को मसीत कहते है। 'इ' के स्थान पर 'अ' के उच्चारण की प्रवृत्ति भी मिलती है, जैसे—नमक के लिए निमक, करन्द: के लिए करिन्द।

---

[1] ये परिवर्तन लिपि से सम्बन्धित न हो कर ध्वनि से सम्बन्धित है।

[2] उच्चारण सम्बन्धी यह विकृति लेखक को व्यक्ति विशेष के कारण ही सुनाई दी होगी। इस प्रकार के उच्चारण को नियम नहीं माना जा सकता।—अनुवादक

तत्सम शब्द

हिन्दी में संस्कृत की संज्ञाएँ

७०. अब हम सस्कृत से गृहीत शब्दो पर विचार करते है। हिन्दी मे इन शब्दो का अनुपात नब्बे प्रतिशत से कम नही है। भारतीय लेखको ने संस्कृत शब्दो के दो भेद किये है—(१) तत्मम, (२) तद्भव। तत्सम शब्द वे है जो सीधे संस्कृत से लिये गये है और जिनमे किसी प्रकार का विकार नही आया है। इन शब्दो मे केवल पुरानी विभक्ति का ह्रास हुआ है। तद्भव का तात्पर्य सस्कृत के ऐसे शब्दो से है, जिनमे वृद्धि, क्षति अथवा वर्ण-परिवर्त्तन के कारण विकार उत्पन्न हुआ है। कुछ शब्दो मे यह विकार नाममात्र का है और कुछ मे रूप बहुत बदल गया है।

७१. उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार तत्सम शब्द हिन्दी से सम्बन्धित कई बोलियो मे समान रूप से प्रयुक्त होते है। जिस तरह अग्रेजी मे ग्रीक और लैटिन के बहुत-से तत्सम शब्द ऊँचे विचारों को व्यक्त करते है, उसी प्रकार हिन्दी मे दार्शनिक तथा वैज्ञानिक विचारो की अभिव्यक्ति संस्कृत के तत्सम शब्दो मे होती है। हिन्दी से सम्बन्धित बोलियो के लिखित रूप मे तत्सम शब्दो का अनुपात अधिक है। साथ ही हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हिन्दी की सभी बोलियो मे कुछ सीमा तक और पछाँही शैली मे विशेष-रूप से अरबी, फारसी के शब्द सस्कृत तत्समो का स्थान ग्रहण किये हुए है। जैसे-जैसे हम पूर्व की ओर बढते है, हिन्दी मे सस्कृत तत्समो की संख्या अधिक होती जाती है। यहाँ तक कि बगाली के क्षेत्र मे संस्कृत शब्दो का अनुपात पराकाष्ठा को पहुँच जाता है। तत्सम शब्दों की स्थिति को समझने के लिए निम्नलिखित तथ्य सहायक सिद्ध होगे।

सहवर्त्ती तत्सम तथा तद्भव

७२. कई बार एक ही धातु अथवा सज्ञा के तत्सम और तद्भव दोनो रूप प्रयुक्त होते है। जैसे तत्सम क्रोध और तद्भव कोह, तत्सम लाभ और तद्भव लाह दोनों का उपयोग किया जाता है। अर्थ की दृष्टि से कुछ शब्द ऐसे हैं जिनके दोनो रूपों का अर्थ भिन्न नही होता; जैसे—क्रोध और कोह, योग्य और जोग मे अर्थ की भिन्नता नही है। तद्भव रूप का सम्बन्ध बोलियों से है। रामायण की पुरानी पूरबी हिन्दी की मुख्य विशेषता है महाप्राण स्पर्श व्यजन के स्थान पर 'ह' का अवशिष्ट रहना। जैसे—लाभ, शोभा और क्रोध के लिए लाह, सोहा और कोह का प्रयोग। जहाँ तत्सम और तद्भव रूप साथ-साथ आते है, वहाँ उनके अर्थ मे अन्तर रहता है। जैसे— मेघ का तात्पर्य बादल है, जब कि 'मेह' का अर्थ है वर्षा अथवा पानी की बौछार। प्राय· तत्सम रूप व्यापक अर्थ का द्योतक होता है, जबकि तद्भव रूप सीमित अथवा सकुचित अर्थ प्रकट करता है। जैसे —'स्थान' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ मे है, किन्तु 'ठाना' स्थान विशेष के लिए ही आता है। तत्सम रूप ऊँचे आशय को व्यक्त करता है जबकि तद्भव रूप कुछ घटियापन लिये रहता है। तद्भव शब्द 'देखना' सामान्य अर्थ का द्योतक है जबकि तत्सम शब्द 'दर्शन' 'देखना' की अपेक्षा ऊँचे आशय को व्यक्त करता है। लोग, 'जगन्नाथ का दर्शन करना' कहेगे, 'जगन्नाथ को देखना' कभी नही कहेगे।

उल्लेखनीय—शिष्टाचार के पालन मे हिन्दू लोग बहुत प्रसिद्ध है। यह शिष्टाचार बातचीत मे केवल उपयुक्त सर्वनाम तथा उसके बहुवचन और आदर के विभिन्न स्तरो को सूचित करनेवाले क्रिया-रूपो से ही व्यक्त नही किया जाता अपितु तत्सम और तद्भव रूपो के प्रयोग पर भी ध्यान दिया जाता है। तत्सम शब्द प्रायः अधिक आदर के लिए प्रयुक्त होते है।

तत्सम संज्ञाएँ और विश्लेषण

७३. हिन्दी में प्रयुक्त शुद्ध संस्कृत संज्ञाओ और विशेषणो मे कारक सम्बन्धी परिवर्तन शेष नही है। संस्कृत मे शब्द का प्रथमा विभक्ति से रहित जो रूप रहता है, उसी को हिन्दी मे आधार माना जाता है। जैसे संस्कृत में शब्दों के रूप है—यत्न, इच्छा, अग्नि, धेनु, दातृ, मातृ, सरित्, धनवत्, नामन्, महिमन्। हिन्दी मे इनका रूप है—यत्न, इच्छा, अग्नि, धेनु, दाता, माता, सरित, धनवान, नाम, महिमा।

क. इस नियम का अपवाद वे शब्द है, जिनके अन्त मे 'अस्' अथवा 'उस्' होता है, जैसे—मनस्, चक्षुस्। सस्कृत मे इन शब्दों के कर्त्ताकारक मे ही 'स्' का लोप होता है, किन्तु हिन्दी में सभी कारको मे 'मन' और 'चक्षु' रूप को आधार माना जाता है। तुलसीदास की रामायण मे केवल एक स्थान पर 'दातार' शब्द आया है, जो निस्सन्देह लय के लिए है। यह सस्कृत का रूप है। हिन्दी मे इस शब्द का आधार 'दाता' है।

ख. जिन सस्कृत विशेषणो के अन्त मे 'वत्' आता है, हिन्दी उनके कर्ताकारक के एकवचन वाले रूप 'वान्' को स्वीकार न कर बहुवचन वाले रूप को स्वीकार करती है। जैसे—दयावन्त, पापवन्त। इसी प्रकार क्षुधावन्त के लिए छुधावन्त।

ग जैसा कि पहले बताया गया है, हिन्दी संज्ञाओ के रूपान्तर मे सस्कृत कारको का रूप इतना सक्षिप्त और विकृत हो जाता है कि मूलरूप को पहचानना सभव नही होता। कुछ तत्सम शब्दों मे सस्कृत के कारक रूप भी मिलते है, किन्तु वे हिन्दी के उस तरह के अभिन्न अग नही है, जैसे लैटिन और ग्रीक की संज्ञाएँ तथा वाक्यखंड मूल कारक रूप के साथ अंग्रेजी मे आत्मसात् हुए है। अग्रेजी मे इस प्रकार के प्रयोग मिलते है—'idest', 'etcetra', 'dogmata'। हिन्दी मे सस्कृत कारक सहित शब्द-रूपों के उदाहरण निम्न-प्रकार है—सर्वस्य (सम्बन्ध कारक के एक वचन मे सर्व शब्द), सुखेन (करण कारक के एकवचन में सुख शब्द), अर्थात् (अपदान कारक के एकवचन मे अर्थ शब्द)। इस प्रकार के प्रयोग केवल कविता मे अपवाद स्वरूप ही मिलते है।

तुलना और श्रेष्ठता सूचक रूप

७४. संस्कृत के तुलनात्मक और श्रेष्ठतासूचक प्रत्यययुक्त शब्द हिन्दी मे भी प्रयुक्त होते है, किन्तु उन शब्दो के कारक-सम्बन्धी परिवर्तन स्वीकार नही किये जाते। इन शब्दो का प्रयोग बातचीत मे बहुत कम होता है। साहित्यिक भाषा मे अधिक प्रयोग मिलता है। जैसे—श्री से श्रेष्ठ, प्रिय से प्रियतम। तुलनात्मक रूपो का प्रयोग श्रेष्ठतासूचक रूपो से कम होता है, जैसे—मन्द से मन्दतर, पुण्य से पुण्यतर। यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी मे संस्कृत का तुलनात्मक रूप भी श्रेष्ठता सूचित करता है।

संख्यावाचक और सर्वनाम

७५. सामान्य जनता द्वारा निरन्तर प्रयोग के कारण हिन्दी मे सस्कृत के संख्यावाचक शब्द और सर्वनाम बहुत कुछ विकृत और परिवर्तित हो चुके है। अधिक प्रयोग के कारण इस प्रकार का परिवर्तन स्वाभाविक था। हिन्दी के साहित्यिक रूप मे, विशेष रूप से अध्यायों का शीर्षक देते समय संस्कृत के तत्सम संख्यावाचक शब्द आते हैं। कहीं-कहीं संस्कृत सर्वनाम भी कारक रूपों मे प्रयुक्त दिखाई देते है, प्रथम और मध्यम पुरुषवाची सर्वनामो के सम्बंध कारक के एकवचन वाले रूप 'मम' तथा 'तव' विशेष रूप से। इन रूपो का प्रयोग मुख्य रूप से कविता मे हुआ है।

क्रिया के तत्सम रूप

७६ हिन्दी में बिना किसी अपवाद के क्रिया के तद्भव रूपो का प्रयोग होता है। केवल कविता मे बहुत कम स्थलो पर ऐसे रूप मिलते है, जिनमे संस्कृत के कालवाची प्रत्यय जुंडे रहते है। जैसे संस्कृत के 'नम्' धातु के वर्त्तमान काल, प्रथम पुरुष, एकवचन, परस्मैपद मे 'नमामि' रूप का प्रयोग हिन्दी कविता मे मिलता है, किन्तु यह रूप हिन्दी का अपना नही है। हिन्दी मे कालवाची नियमित तद्भव कृदन्त रूपो के साथ-साथ सस्कृत के अपरिवर्त्तनशील कृदन्त रूपो का प्रयोग भी मिलता है। इस प्रकार का प्रयोग बोलचाल मे भी सुनाई देता है। हिन्दी मे प्रयुक्त होनेवाला शब्द 'वर्तमान' है, जिसमे संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'वृत्' धातु के साथ कृदन्त प्रत्यय 'मान' जुडा हुआ है। 'त्वा' प्रत्यय युक्त अव्ययात्मक भूत कृदन्तवाची रूप का प्रयोग हिन्दी मे, बहुत कम क्यो न हो, मिलता है। जैसे रामायण में 'चित्वा' शब्द। भूतकालवाची कृदन्त प्रत्यय 'त' और 'न' (ण) से युक्त रूप भी हिन्दी मे प्रचुरता से देखने को मिलता है; जैसे—क्रृ से कृत, वच् से उक्त, पृ से पूर्ण, मुह से मोहित। सस्कृत के कुछ अन्य कृत् प्रत्यय भी हिन्दी में प्रयुक्त होते है, जैसे—'तव्य' प्रत्यय, √ कृ से कर्तव्य; 'य' प्रत्यय √दृश् से दर्श्य। 'स्य' प्रत्यय युक्त रूप हिन्दी मे कम देखने को मिलते है; जैसे—√भू से भविष्य। यहाँ 'स्य' के साथ प्रयुक्त होनेवाला 'त्' छोड़ दिया गया है। हिन्दी में संस्कृत के अनेक क्रियाविशेषण, उपसर्ग और समुच्चय बोधक अव्यय बिना किसी परिवर्तन के प्रयुक्त होते है। ऐसे शब्दो की सूची यथास्थान दी गई है।

तद्भव शब्द

७७. हिन्दी के तद्भव शब्दो का विस्तृत विवेचन करना इस पुस्तक का विषय नही है। हिन्दी की विभिन्न बोलियो के अध्ययन मे तद्भव शब्दों की निर्माण-प्रक्रिया सहायक सिद्ध हो सकती है, इसीलिए यहाँ उसका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। इस जानकारी के कारण छात्र हिन्दी से अधिक परिचित हो सकेगा। जो लोग इस विषय की अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते है, उन्हे अन्य ग्रन्थो से सहायता लेनी चाहिए।[1] हम यहाँ सक्षेप मे उच्चारण सम्बन्धी परिवर्तनो का उल्लेख करते है। ये परिवर्तन उत्तर-भारत मे बोली जाने वाली हिन्दी मे सर्वत्र देखे जाते है। अब भी परिवर्तन की प्रक्रिया रुकी नही है।

कण्ठ्य स्वरों का परिवर्तन

७८ इस बात का उल्लेख क्रिया जा चुका है कि हिन्दी मे ह्रस्व स्वरों के परित्याग करने की प्रवृत्ति है। अन्त्य अन्तर्भुक्त अकार का उच्चारण नही होता, यद्यपि इस प्रकार का अनुच्चारण व्यंजनो को सयुक्त लिख कर व्यक्त नही किया जाता। अन्त्य अन्तर्भुक्त 'इ' तथा 'उ' का उच्चारण नही होता। यदि इनका प्रयोग शब्द में अन्य किसी स्थल पर होता है तो उच्चारण अवश्य किया जाता है।

क बीम्स ने लिखा है कि शब्दारंभ मे अ तथा उ का लोप सामान्य बात है। संस्कृत के ऐसे समासित शब्दो के, जिनके प्रथम पद के रूप मे अधि, अपि, अभि, उप आदि उपसर्ग आते है, तद्भव रूपों मे आरंभिक अ और उ का लोप पाया जाता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित शब्द दिये गये है—

---

[1] देखिए : जान बीम्स कृत 'कम्परेटिव ग्रामर आफ़ द माडर्न आर्यन लैंग्वेजेस आफ इंडिया' और डाक्टर ए० डी० एफ० हार्नले की पुस्तक 'कम्परेटिव ग्रामर आफ द गौडियन लैंग्वेजेस'। इस विषय के पूर्ण अध्ययन के लिए इन पुस्तकों का अध्ययन अनिवार्य है।

झाँकना>सं० अध्यक्षणम्, भीगना>सं० अभ्यञ्जनम्, बैठा<सं० उपविष्ट। इन उदाहरणो मे कुछ अन्य शब्द भी सम्मिलित किये जा सकते है—पठावन या पठावना<(स० प्रेरणार्थक रूप) उपस्थापय। साधारण शब्दो मे भी आरंभिक 'अ' का लोप होता है, जैसे—लाबू (कुष्माण्ड, कुम्हडा)<स० अलाबू।

ख. स्त्रीलिग वाची सस्कृत प्रत्यय 'आ' तद्भव सज्ञाओ मे अनुच्चारित अन्त्य अकार मे परिवर्तित होता है, जैसे सं० वार्ता से बात, स० निद्रा से नीद। प्रत्ययगत इ अथवा ई का लोप होता है, जैसे स्त्रीलिगवाची 'इनी' प्रत्यय का केवल 'न' शेष रहता है, 'माली' शब्द के स्त्रीलिगवाची रूप 'मालिनी' से हिन्दी मे 'मालन'; सं० भगिनी, प्रा० वहिणी से हिन्दी का बहन शब्द, सेठन (सेठ की पत्नी), स० अक्षि से आँख। अन्त्य उ अथवा ऊ पर भी यह नियम लागू होता है। जैसे स० तनु से तन, सासु से सास।

ग. क्रियाविशेषण, उपसर्ग और परसर्गो के अन्त्य 'ए' पर भी यह नियम लागू होता है। सस्कृत शब्द मूलत कुछ स्थलो पर अधिकरण कारक मे आते है, किन्तु ऐसे स्थलो पर भी हिन्दी मे अन्त्य 'ए' का प्रयोग नही होता। स० 'समीपे' हिन्दी मे 'समीप' रह जाता है, स० सगे हिन्दी मे सग। कही-कही अन्त्य 'ए' क्षीण होता हुआ 'इ' का रूप धारण करता है, जैसे लागि (तक)।

७९. 'अ' प्राय 'इ' मे परिवर्तित होता है। सयुक्त व्यंजन के स्वरहीन वर्ण मे यह परिवर्तन विशेष रूप से देखा जाता है। जैसे स० स्मरण>हि० सुमिरन। 'पहला' शब्द लिखते समय प्राय 'पहिला' बनता है। कही-कही सस्वर वर्ण मे भी यह परिवर्तन देखा जाता है; जैसे—स० क्षमा>हि० छिमा। स० नकुल >हि० नेवला, यहाँ 'अ' परिवर्तित हुआ है 'ए' मे।

अकार कम स्थलो पर 'उ' मे परिवर्त्तित होता है। जहाँ कही ऐसा परिवर्तन देखा जाता है, वहाँ उसे परवर्ती ओष्ठ्यवर्ण प्रभावित करता है, जैसे—हि० खुजली<सं० खर्जू। हि० मूछ<सं० श्मश्रू।

क. 'अ' युक्त व्यंजन के पश्चात् यदि 'इ' अथवा 'उ' आता है तो पूर्ववर्ती अकार प्राय. अनुच्चारित रहता है। कही-कही इस प्रकार का 'अ' परवर्ती वर्ण के समस्थानीय सयुक्त स्वर मे बदलता है; जैसे—इम्ली<सं० अम्लिका; उंगली<सं० अंगुली; सेंध<सं० सन्धि; चोंच >स० चचु।

ख. संस्कृत शब्दो मे यदि 'अ' के पश्चात् अर्द्धस्वर 'य' अथवा 'व' आये तो दोनो में सन्धि हो जाती है। यह सन्धि प्राय. वृद्धि मे होती है। जैसे—स० नयन >हि० नैन; स० समय >हि० समै अथवा समे; सं० लवण >हि० लोन। संस्कृत शब्द 'अपर' का 'प' पहले 'व' मे परिवर्तित हुआ और फिर 'अ' तथा 'व' के संयोग से औ, स० अपर >हि० और।

ग. यहाँ उस नियम का उल्लेख करना उचित होगा जिसके कारण सस्कृत की अस् (=अ., प्रथमा बहुवचन) विभक्ति प्राकृत मे 'ओ' बनती है। अधिकाश तद्भव शब्दो मे इस अस् (अ.) की विकृति इस समय भी रुकी नहीं है, वह प्राय. शब्दान्त में 'अ' अथवा 'उ' के रूप मे अवशिष्ट है। जैसे—सर्वनामो मे, विशेष रूप से सम्बन्धवाचक सर्वनाम 'जो', ब्रज के प्रश्नवाचक सर्वनाम को, मारवाडी के सर्वनाम जिको तथा विको में क्रमशः सं० य. तथा कः का प्राकृत रूप सुरक्षित है। इसी प्रकार हिन्दी मे 'परसों' शब्द का प्रयोग होता है, जो सं० 'परश्व': से उद्भूत है।

तालव्य तथा ओष्ठ्य स्वरों का परिवर्तन

८०. इ, ई, उ और ऊ की विकृति के उदाहरण अधिक नही है। इकार परिवर्तित होता है 'उ' मे; जैसे—सं० शिङ्घ >हि० सूंघना। ई >अ; जैसे—सं० परीक्षण >हि० परखन। स० विद्युत >हि० बिजली मे 'उ' परिवर्तित हुआ 'अ' मे, हि० बाई<स० वायु; 'बाई' की अन्त्य 'ई' सभवत. सवर्ण व्यजन 'य' से

उद्भूत है, 'वायु' का अन्त्य उकार लुप्त हो गया, क्षतिपूर्ति के रूप मे 'इ' को दीर्घ किया गया है। हि० बिन्दी <स० बिन्दु मे हम अन्त्य उकार को परिर्वातित होता हुआ देखते है 'ई' मे। 'बिन्दी' शब्द का उद्भव एक दूसरे प्रकार से भी सिद्ध किया जा सकता है। अनेक ईकारान्त तद्भवो के अंध्ययन् के पश्चात् यह भी माना जाता है कि यहाँ अन्त्य 'ई' प्राकृत के उपान्त्य 'इ' का प्रतिनिधित्व करती है, जैसे बिन्दिक (?) से बिन्दी। उकार भी 'इ' मे परिर्वातित होता है; जैसे—हि० तनिक <सं० तनुक। 'उ' का ए मे परिवर्तन-स० फुफ्फुस >हि० फेफडा।

मूर्द्धन्य स्वरों की विकृति

८१ 'ऋ' की अनेक विकृतियाँ है। आरभिक ऋकार तद्भवो मे सदैव 'रि' उच्चारित होता है; जैसे—स० ऋषि >हि० रिषि। मध्य मे आने वाला 'ऋ' साधारणतया परिर्वत्तित होता है 'इ' मे, जैसे—हि० गिद्ध <स० गृध्र, स० वृश्चिक >हि० बिच्छू। 'ऋ' 'ई' भी बनती है; जैसे—हि० सीग <स० शृग; हि० मीच <स० मृत्यु। ऋ की विकृति 'ए' मे भी होती है, जैसे सं० गृह >हि० गेह। 'उ' मे भी परिवर्त्तन होता है, जैसे हि० सुरत <स० स्मृति, साधारणतया यह परिवर्तन औष्ठ्य वर्ण के सामीप्य के कारण देखा जाता है। ऋकार का परिवर्त्तन 'उ' मे भी देखा जाता है, जैसे—हि० मुआ <स० मृत। कही-कही 'अ' मे रूपान्तर होता है, जैसे—हि० मट्टी (मिट्टी) स० मृत्तिका, हि०, पावस सं० प्रावृष्। शब्दारंभ मे न आकर भी 'ऋकार' सामान्यतया 'इ' मे बदलता है, जैसे ग्रिहस्थ <स० गृहस्थ, कही कही 'इरी' मे भी रूपान्तर होता है, जैसे स० सृजन >हि० सिरीजन। ओष्ठ्य वर्ण के प्रभाव से 'ऋ' का रूपान्तर 'रु' होता है; जैसे—सं० वृक्ष >हि० रुख।

स्वरों का दीर्घीकरण

८२ यदि संस्कृत तथा प्राकृत शब्दो मे किसी अक्षर का लोप होता है तो क्षतिपूर्ति के रूप मे अ इ अथवा उ को दीर्घ करते है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि सस्कृत-प्राकृत के अनेक शब्द 'क' प्रत्ययान्त होते है। प्राकृत के बहुत से शब्द संस्कृत शब्द के साथ निरवयवी प्रत्यय 'क' के[1] योग से बनते है। दीर्घ स्वरान्त बहुत से शब्द इसी श्रेणी मे आते है। आकारान्त पुल्लिगी तद्भव शब्दो और ईकारान्त स्त्रीलिगी शब्दो पर यही नियम लागू होता है। ऐसे बहुत से ईकारान्त शब्दो पर भी यह नियम लागू होता है, जिनसे व्यवसाय अथवा उद्योग का पता चलता है। उदाहरण निम्न प्रकार है—चीता <सं० चित्रक (प्रा० चित्तओ?); घोड़ा <सं० घोटक (प्रा० घोडओ?), मक्खी <स० मक्षिका, बालू <सं० बालुका। घी<सं० घृत; यह शब्द सं० नापित>हि० नाई की भाँति बना है। इन शब्दो के अन्त्य ईकार तथा ऊकार सभवत. मध्यकालीन रूप इयो, उवो[2] के विकृत रूप हो, 'क' के लोप के पश्चात् 'य' और 'व' मे उच्चारण सम्बन्धी परिवर्तन हुआ (जैसा कि 'नापित' शब्द मे हुआ है)।[3]

---

[1] **प्राकृत के इस प्रत्यय के सम्बन्ध में देखिए लेस्सेन, इन्स्ट० लिंग० प्राक० § ८९, १; १६४, १९, एट पास्सिम।**

[2] वही, § ८८.

[3] वही, § ८९

८३ उच्चारण सम्बन्धी परिवर्तन के फलस्वरूप संस्कृत के संयुक्ताक्षर तद्भव शब्दो मे एकाकी व्यजन बनते है। इस प्रकार के परिवर्तन मे सदैव पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर दीर्घ बनता है। जैसे—स० हस्त हि० हाथ, स० अग्नि >हिं० आग; सं० इक्षु >हि० ईख, सं० मिष्ट >हि० मीठा; सं० विंशति >हि० बीस।

क कही-कही संयुक्ताक्षर से पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर इस स्थिति मे सवर्णी संयुक्त स्वर मे परिवर्तित होता है; जैसे—हि० कोढी <स० कुष्ठी; हि० सोठ <स० शुष्ठि अथवा शुष्ठी। सयुक्ताक्षर के एकाकी व्यंजन बनने पर पूर्ववर्ती 'ऋ' परिवर्तित होती है 'ई' मे, जैसे—हि० पीठ <सं० पृष्ठ, हि० दीठ <स० दृष्टि।

ख. कुछ स्थलो पर इस स्थिति मे दीर्घ बननेवाला स्वर सानुनासिक उच्चारित होता है। यह नियम उस स्थिति मे विशेष रूप से लागू होता है, जब संयुक्ताक्षर का प्रथम अवयवी नासिक्य रहता है; जैसे—चॉद <चन्द्र, काँटा <कण्टक; ऊँट <उष्ट्र। साँप <सर्प और ऊँचा <उच्च दूसरे प्रकार के उदाहरण है, यहाँ यह बात और जोड़ी जा सकती है कि संयुक्ताक्षर के एकाकी बनने पर ही नही, कुछ अन्य परिवर्तनो मे भी विकल्प से पूर्ववर्ती स्वर को सानुनासिक बनाते है, जैसे—मेह अथवा मेह <मेघ। खॉसी अथवा खासी <कासिका मे परवर्ती ऊष्म वर्ण के प्रभाव से 'क' परिवर्त्तित हो गया 'ख' मे।

ग सस्कृत मे उपसर्गों से बनने वाले समासो मे जहॉ स्वराघात होता है, वहाँ यह स्वराघात तद्भव शब्दो मे पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर को दीर्घ बनने से रोकता है, जैसे सं० उत्था (=उत्+स्था) का तद्भव रूप 'ऊठना' न होकर 'उठना' होता है।

दीर्घ स्वर का ह्रस्वीकरण

८४. जब कोई बड़ा या भारी शब्द किसी अन्य शब्द के साथ जुड़ता है तो दीर्घस्वर ह्रस्व स्वर में परिवर्तित होता है; यह परिवर्तन मुख्य रूप से समासित शब्दों के पूर्वपद मे देखा जाता है, जैसे 'बटमार' शब्द मे बट <बाट। इसी प्रकार 'पानीहारा' के लिए 'पनहारा', 'फूलवारी' के लिए 'फुलवारी' और 'शीतकाल' के लिए 'सितकाल'। दीर्घ स्वर वाला प्रत्यय शब्द मे जुडता है, तब भी यह परिवर्तन देखा जाता है; जैसे—बूढा से बुढापा; मीठा >स० मिष्ट से मिठाई। ऐसे स्थलों पर सयुक्त स्वर के स्थान पर सवर्णी एकाकी स्वर रखा जाता है, जैसे—बेटा से बिटिया; छोटा से छुटका।

अन्त्य संयुक्त स्वर का ह्रस्वीकरण

८५. प्राकृत और संस्कृत शब्दो के अन्त्य सयुक्त स्वर तद्भव रूप मे सवर्णी एकाकी स्वर मे बदलते है; जैसे सस्कृत कर्त्ता कारक, एक वचन की विभक्ति 'अ' प्राकृत मे ओ बनती है और यह 'ओ' पुरानी हिन्दी, नई हिन्दी, नेपाली और हिमालय की अधिकाश बोलियों मे 'उ' का रूप धारण करता है; जैसे—सं० शर. >प्रा० सरों >सरु (रामायण मे); सं० अनुराग. >प्रा० अनुरागो >अनुरागु (पुरानी हिन्दी)। आधुनिक हिन्दी मे यह अन्त्य 'उ' भी लुप्त हो गया, इसीलिए 'अनुरागु' के स्थान पर 'अनुराग' का प्रयोग होता है। इसी तरह क्रियापद का अन्त्य 'ए' अथवा 'ऐ' प्राय' 'इ' मे परिवर्तित होते है; जैसे—होए <सं० भवति के लिए होइ; चाहे के लिए चाहि।

क. तत्सम शब्द के अन्त्य व्यंजन के लुप्त होने पर प्राकृत मे अओ, इओ और उओ का प्रयोग होता है। हिन्दी मे ये तीनों प्रत्यय क्रमशः आ, ई और ऊ बनते हैं। प्राकृत के 'अओ' के लिए हिमालय की बोलियो

मे 'ओ' और 'औ' आता है। उच्च हिन्दी मे गेहूँ<सं गोधूम अपवाद माना जाएगा, यहाँ 'ओ' परिवर्तित हुआ है 'ए' में। शब्द के मध्य मे 'औ' 'ओ' बनता है; जैसे—सं० मौक्तिक>मोती।

ख. जहाँ ब्रज में 'औ' आता है, वहाँ कन्नौजी मे 'ओ' का प्रयोग होता है। हिन्दी के तद्भव शब्दो में संज्ञा और विशेषणों मे मध्यस्थित 'औ' परिवर्तित होता है 'ओ' मे; जैसे—सं० पौत्र>हि० पोता। सं० कैवर्त>हि० केवट मे 'ऐ' परिवर्त्तित हुआ है 'ए' मे।

स्वरागम

८६ यदि संयुक्ताक्षर का पहला अवयवी 'स्' हो तो बातचीत मे हिन्दू लोग आरंभ मे 'अ' का उच्चारण करते है, जैसे—'स्त्री' का उच्चारण अस्त्री (कोई-कोई इस्त्री) भी कहता है; स्थान के लिए अस्थान। इस प्रकार का स्वरागम कही-कही साहित्य मे भी देखा जाता है; जैसे—रामायण मे 'स्तुति' के लिए 'अस्तुति', स्नान के लिए अस्नान।

वर्ण-विच्छेद

८७. प्राकृत मे व्यंजन-लोप के कारण अवशिष्ट दो स्वर पास-पास बने रहते है; किन्तु हिन्दी में या तो सन्धि-नियम के अनुसार दोनो स्वर मिल जाते है या उन दोनो के मध्य किसी व्यंजन का आगम होता है। साधारणतया ऐसे स्थलो पर स्वरो को पृथक् रखने के लिए 'य', 'व' या 'ह' का प्रयोग किया जाता है, जैसे—सं० 'चरति' शब्द पुरानी हिन्दी मे 'चलइ' बनता है, किन्तु आधुनिक हिन्दी मे उसका उच्चारण 'चले' या 'चलै' किया जाता है। संस्कृत शब्द 'पिपासित' मे एक 'प' और अन्त्य 'त' का लोप होता है। 'य' श्रुति के कारण 'पियासा' शब्द बनता है, 'बातुल' शब्द मे 'त' के लोप और 'व' के आगम के कारण 'बावला' शब्द उद्भूत हुआ। कही स्वरो का पार्थक्य बना रहता है; जैसे—सं० सूची>हि० सूई (सुई); सं० कोकिल>हि० कोइल।

अपवाद

८८. संस्कृत के सन्धि-नियमों के अनुसार हिन्दी में कई स्थलों पर स्वरों का मेल नही होता। निम्नलिखित अपवाद उल्लेखनीय है—

१. दीर्घ स्वर के पश्चात् प्राय. ह्रस्व स्वर का लोप होता है। जैसे—रोदन>रोअन>रोना। कही-कही दीर्घ स्वर का परवर्ती ह्रस्व स्वर बना रहता है, जैसे—स० कोकिल>कोइल।

२. कही-कही सरल स्वर अ+इ, अ+उ सस्कृत व्याकरण के अनुसार गुणित न होकर क्रमश 'ऐ' और 'औ' में परिवर्तित होते है। इस प्रकार के उदाहरण क्रिया मे अधिक मिलते है; जैसे—हसति>हसइ>हँसै। द्वितीय पुरुष, एक वचन 'चलौ' का उद्भव संभवत. 'चलहु' से हुआ।

३ निम्नलिखित सख्यावाची शब्दो मे 'ए' अथवा 'ऐ' का प्रयोग उपर्युक्त नियम के विरुद्ध होता है, पैंतीस (३५), पैंतालीस (४५), सैंतालीस (४७), पैंसठ (६५)। इन सख्यावाचक शब्दो के सस्कृत पर्यायो मे ऐसी ध्वनियाँ नही है, जिनके सम्मिलन से 'ऐ' का उद्भव हुआ हो।[१] 'तैंतीस' (३३) अथवा

---

[१] हिन्दी और संस्कृत के संख्यावाचक शब्दों की सूची देखिए।

'तेतीस' का 'ऐ' अथवा 'ए' नियमानुसार सस्कृत के 'अय' से सभूत है। मूल सस्कृत शब्द है त्रयस्त्रिशत्। तैतालीस अथवा तेतालीस की उत्पत्ति भी तेतीस की भाँति स० त्रिचत्वारिशत् से हुई है। बीम्स का यह कहना उचित ही है कि हिन्दू शब्दो को छन्दमय बनाने की स्वाभाविक रुचि रखते है। इसी रुचि ने तेतीस के अनुकरण पर पैंतीस, पैंतालीस, आदि उपर्युक्त सख्यावाची शब्दो की रचना मे सहायता दी होगी।[1]

क 'अ' अथवा इ, उ के पश्चात् क्रमश य और व आते है, तो उन्हे स्वर मान लिया जाता है, जैसे—अ+य को अ+इ के समान मानकर सन्धि करते है, फलस्वरूप अ+य से 'ए' अथवा 'ऐ' का उद्भव होता है। इसी प्रकार अ+व (=अ+उ)='ओ' अथवा औ। कई स्थलो पर इ+य (=इ+ई)=ई और उ+व (=उ+उ)=ऊ। इसी नियम के अनुसार समय>समै, भव>भौ और इन्द्रिय>इन्द्री।[2]

उल्लेखनीय—(१) § ८२. मे जो ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्द दिये गये है, उनकी व्याख्या मे इस नियम से सहायता मिलती है। इन शब्दो मे 'क' के लोप के पश्चात् स्वरो की पृथकता बनाये रखने के लिए 'य' अथवा 'व' श्रुति का उपयोग होता है। स० 'घोटिका'> प्रा० घोडिया> घोडिय, अन्त्य 'इय'> ई। इस नियम के अनुसार घोटिका> घोडी। इसी प्रक्रिया से स० बालुका> प्रा० बालुआ> बालुवा> बालुव > बालू।

उल्लेखनीय—२ यहाँ इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि अवध तथा दोआबे की बोलचाल मे ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्दो का वह पुराना रूप सुरक्षित है, जो मूल रूप से कुछ ही विकृत हुआ है। पश्चिमी अवध मे 'भैसी' (स० महिषिका) के लिए 'भैसिया' शब्द प्रचलित है। इसी प्रकार स० घोटिका से विकृत 'घोडिया' भी सुनने को मिलता है।[3]

आधुनिक सन्धि-नियम

ख हार्नले ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ की विशेष सन्धियो का उल्लेख किया है। 'अ' अथवा 'आ' के साथ 'इ' की सन्धि से ऐकार बनता है, इसी प्रकार अ+उ=औ। उदाहरण के लिए प्रथम पुरुष के भविष्यकालिक रूप 'चलइ' प्रस्तुत किया जा सकता है, जो 'चलै' बना। इसी प्रकार 'कहउँ' से 'कहौं'। अ और इ की सन्धि से 'ऐ' के अतिरिक्त 'ए', 'ई' या 'इ', जैसे—हि० डेढ, प्राकृ० दिअढे, मागधी दिवड्ढे। 'मिहनत' शब्द मारवाडी मे 'मीनत' बनता है। अ तथा उ के सयोग से औ के अतिरिक्त ओ अथवा ऊ, जैसे—स० सुगन्धक से हि० सौधा, सोधा आदि। अ, इ, उ अथवा ए के साथ ए के योग से 'ए और ओ+अ=ओ।[4]

विजातीय अनुस्वार

स्मरणीय—हिन्दी मे अनुस्वार सदैव शब्द के अश के रूप में ही प्रयुक्त नही होता। स्वर को सानुनासिक बनाने की प्रवृत्ति भी कुछ शब्दो मे सुरक्षित है। जैसे—'रणधीर' और 'प्रेममोहिनी' मे सर्वत्र 'ने'

---

[1] बीम्स : कम्परेटिव ग्रामर, खं० २, पृ० २९२.

[2] देखिए, § ९०

[3] प्राकृत में 'क' प्रत्यय किसी भी शब्द के साथ जोड़ा जाता है। उसके प्रयोग के लिए नियम निर्धारित नहीं था। लस्सेन इंस्ट० लिंग० प्रा० पास्सिम।

[4] हार्नले : कम्प० ग्राम० पृ० ४८, अधिक उदाहरणो के लिए देखिए इसी पुस्तक मे § ९४-९८।

परसर्ग को 'ने' लिखा गया है। इसी तरह 'ए' को एँ बनाने की प्रवृत्ति है, विशेष रूप से क्रियार्थक सज्ञा के सविभक्तिक रूपो मे, जैसे—'जानने का' के स्थान पर 'जाननें का', 'कहनेवाला' के लिए कहनें वाला आदि।

व्यंजनों की विकृति

मध्य स्थित व्यंजन का लोप

८९. ट या ड को छोड़कर शेष अघोष स्पर्श व्यंजन, म, य, व, म और ह, कही-कही र और ल भी शब्द के मध्य मे असयुक्त रूप मे आये तो लुप्त हो जाते है। इस नियम के अनुसार व्यजन के लोप के कारण जब दो अवशिष्ट स्वर निकट आते है, यदि वे दोनो सवर्ण है, तो दीर्घ सन्धि के कारण दोनो का स्थान एक दीर्घ स्वर ले लेता है। प्राकृत की भाँति कही-कही दोनो स्वरो का पार्थक्य शेष रहता है। वैसे आधुनिक बोलियों मे श्रुति के लिए 'य' और 'व' का प्रयोग दो स्वरों को पृथक् रखने के लिए किया जाता है। कही-कही श्रुति के रूप मे 'ह' का प्रयोग भी होता है। उदाहरण है—सं० मेलक, प्राकृ० मेलओ, हि० मेला, पुरानी मारवाडी -मेलो। स० भगिनी>हि० बहिन, इस उदाहरण मे 'ग' के लोप होने पर 'भ' परिवर्तित हुआ 'बह' मे। स० सूची>हि० सूई, स० रजनी>हि० रैन, स० चतुर्थ>हि० चौथा, स० हृदय>हि० हिय, स० उदय>पू०हि०उए, स० कूप>हि० कूआ, स० दीपक>हि० दिया, स० पूर्णिमा>हि० पून्यौ, स० विवाह>हि० ब्याह अथवा वियाह, हि० पहचान अथवा पहिचान<प्रा० परिच-अण, स० नासिका के लिए हि० नाक।

क. मारवाडी मे 'ठ' का लोप होता है, मार० पोशाल<स० पाठशाला, पोशाल मे 'पठ' धातु का 'ठ' लुप्त हो गया।

ख उच्च हिन्दी मे इकार से पहले या पीछे 'ह' का लोप होता है। क्रिया मे 'ह' का लोप विशेष रूप से पाया जाता है, जैसे√होना के वर्त्तमान अथवा सामान्य भविष्य के तृतीय पुरुष मे—स० भविष्यति >पु० हि० होही, होई। सं० चलन्ति>पु० हि० चलहिं>चले। 'उ' से पूर्व भी कही-कही 'ह' का लोप होता है। √करना के वर्तमानकाल मे द्वितीय पुरुष, एकवचन का रूप करो<पु०हि० करहु। आकारान्त शब्दो के विकारी एकवचन मे यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई देती है, जहाँ अहि>अइ>ए का रूप धारण करता है। हार्नले ने संज्ञा-रूपो मे 'ह' के लोप का एक उदाहरण दिया है—स० बृहस्पति>बिफै (पूर्वी हिन्दी मे)। मारवाडी मे इस प्रकार के 'ह' का लोप सामान्य रूप से होता है। हिमालय की बोलियो मे भी साधारणतया 'ह' का लोप पाया जाता है, जैसे—'मिहनत' के लिए 'मीनत'; 'साहिब' के लिए 'साब'। उच्च हिन्दी मे कही-कही क्रियापद मे 'ह' का लोप होता है, जैसे—'ठहरना' के लिए 'ठरना', ठरेगा, ठैरो आदि।

ग अधिकांश स्थलो पर 'स' लुप्त होने से पहले 'ह' मे परिवर्तित होता है। पुरानी हिन्दी मे स >ह शेष रहता है, कही-कही 'स' बचा रहता है, जैसे भविष्यकालिक पु० हि० के ए० व० मे करसि >करहि, फिर 'ह' के लोप के कारण करइ, 'अइ' की सन्धि से करै। भविष्यकालिक द्वितीय पुरुष के पछतैहसि मे 'स' सुरक्षित रह गया।

घ. 'र' के लोप का मुख्य उदाहरण है सयोगी कृदन्त 'करि' के लिए प्रयुक्त होने वाला 'कइ' अथवा 'के'। इसी प्रकार 'करि' के लिए प्रयुक्त होने वाला सम्बन्ध कारक 'के' परसर्ग।'का' का विकारी रूप

तक बावन, चौवन, सत्तावन आदि मे पाँच या पञ्च के 'प' के स्थान पर 'व' का उच्चारण होता है; किन्तु तिरपन, पचपन आदि मे 'प' ज्यो-का-त्यो बना रहता है। मै यह सोचता हूँ कि इन आधुनिक रूपो से पहले बापन, चौपन, जैसे रूप प्रचलित रहे होंगे, किन्तु इस समय इनका प्रचलन नही है। मारवाड़ी मे 'चौपन' का प्रयोग मिलता है, किन्तु 'पन्च' वाली अन्य संख्याएं हिन्दी के समान है। नेपाली मे एक ऐसा उदाहरण है, जो प>ब के विपरीत ब>प के परिवर्त्तन को सूचित करता है, ने० जुवाप=हि० जवाब (अर० जवाब) स्पर्श व्यजन के लिए सवर्गीय नासिक्य व्यजन का प्रयोग भी होता है; जैसे—सं० प्रस्वेद >हि० पसीना।

तालव्य व्यंजन

९४. एक वर्ग के व्यजन दूसरे वर्ग के व्यजन का स्थान लेते है। तालव्य व्यंजन प्राय. दन्त्य अथवा मूर्द्धन्य व्यंजन मे परिवर्त्तित होते है। धातुओ मे इस प्रकार के परिवर्तन के अनेक उदाहरण बीम्स ने दिये है; जैसे—स० क्षि (?) से चप्, डप्, टप्, दब् आदि।[1]

उल्लेख्य—४१, ४३, ४५, ४७ और ४८ मे प्रकट रूप से यह दिखाई देता है कि 'त' ने स्थान लिया है 'च' का, किन्तु यथार्थ मे ऐसा नही है। सं० एकचत्वारिंशत् के हिन्दी पर्याय इकतालीस मे 'त' प्रतिनिधित्व करता है 'त्व' का। सं० चत्वारिंशत् >प्राकृ० चत्तालीस।[2]

क. राजपूताना और हिमालय की बोलियों मे तालव्य वर्णो का मूर्द्धन्य वर्णो मे परिवर्तन होता है, किन्तु हिन्दी की अन्य बोलियों मे इस प्रकार का ध्वनि-परिवर्तन कठिनाई से ही सुनने को मिलता है। मारवाडी मे आज भी बिना अपवाद के 'च' और 'छ' के स्थान पर 'स' उच्चारित होता है। लोग 'च', 'छ' के स्थान पर 'स' लिखते भी है।

दन्त्य व्यंजनों का मूर्द्धन्य व्यंजनों में परिवर्तन, र और ल

९५. चाहे शब्द के आरभ मे हो, चाहे मध्य मे, तालव्य व्यजनो का मूर्द्धन्य व्यजनो मे परिवर्तन सामान्य बात है। इस परिवर्तन के अनेक उदाहरण दिये जा सकते है, जैसे—हि० डर<स० दर; हि० डाह<स० दह, हि० पडना<स० पत्, हि० टीका<स० तिलक—वैसे हिन्दी मे तिलक शब्द भी प्रचलित है। हि० बूढा<स० वृद्ध। यहा सस्कृत√स्था से बनने वाले अनेक शब्दो का उल्लेख किया जा सकता है, सं० स्थान >हि० ठाँ, हि० ठाना <स० स्थानक आदि।

क. कुछ ऐसे शब्द भी मिलते है, जिनमे मूर्द्धन्य व्यजन का दन्त्य वर्ण मे परिवर्तन हुआ है; जैसे हि० दबना<स० डप् आदि। किन्तु इसके विपरीत हि० डंक<सं० दश।

ख. मूर्द्धन्य वर्ण 'ड' 'ड' बन कर 'र' मे परिवर्त्तित होता है। इसी प्रकार तालव्य व्यजन मूर्द्धन्य व्यंजन मे और वहाॅ से ड>ड>र। इस प्रकार का परिवर्त्तन पूरबी हिन्दी की विशेषता है। पूरबी हिन्दी मे 'ड' और 'ल' परिवर्त्तित होते है 'र' मे, जैसे—स० पत्>पड़ना, और फिर पूरबी हिन्दी मे पडना>परना, √लट् से बनने वाला प्रचलित शब्द 'लडकी' रामायण मे 'लरकि' के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। सस्कृत तड़ाग >हि० तालाब मे मूर्द्धन्य 'ड' 'ल' मे परिवर्तित हुआ।

---

[1] बीम्स : कंप० ग्राम० खं० १, § ५७।

[2] देखिए, हिन्दी और प्राकृत के संख्यावाची शब्दों की तुलना के लिए संख्या सम्बन्धी सूची।

ग कही-कही मूर्द्धन्य वर्ण के स्थान पर 'ल' आता है, जैसे—स० चेट के लिए स्तरीय हिन्दी मे चेला, किन्तु पूरबी हिन्दी मे 'चेरा', मारवाडी √खुटबो के लिए हि० खुलना, यहाँ 'ट' के स्थान पर 'ल' आया है। सं० कुठार >कुल्हारी यहाँ 'ल्ह' आया है ठ, >ड के लिए। ग्यारह से अठारह तक की गिनती मे 'र' आया है, स० के 'दशन्' शब्द के 'द' के लिए। केवल 'सोलह' शब्द इसका अपवाद है, जिसमे 'द' के स्थान पर 'र' न आकर 'ल' आया है, किन्तु कुछ बोलियो मे 'सोरह' रूप भी प्रचलित है जो बारह तेरह के अनुकरण का सूचक है।

नासिक्य वर्णों का परिवर्तन

९६. सस्कृत का मूर्द्धन्य नासिक्य-ण, स्त० हि० के तद्भव शब्दो मे सदैव 'न' बनता है, जैसे—'गुण' के लिए 'गुन', 'पुण्य' के लिए 'पुन', नियमानुसार क्रिया के सामान्य रूप मे जहाँ 'ण' का प्रयोग होना चाहिए, वहाँ भी हिन्दी मे 'न' आता है जैसे—'करणा' के स्थान पर 'करना', 'मरणा' के स्थान पर 'मरना', किन्तु नेपाली के अतिरिक्त हिमालय की सभी बोलियाँ और मारवाडी मे इस नियम के विपरीत 'न' के स्थान पर भी 'ण' उच्चारित होता है।

अर्द्ध स्वरों का परिवर्तन

९७ तद्भव शब्दो मे आद्य 'य' 'ज' बनता है, जैसे—युग>जुग। अन्त्य 'य' भी 'ज' बनता है, चाहे नियम के अनुसार उसका द्वित्व क्यों न हुआ हो, सूर्य >सूरज, इस प्रकार के शब्दो मे 'य' का उच्चारण 'ज' करते है, किन्तु लिखते 'य' है। 'र' परिवर्त्तित होता है 'ल' मे, जैसे—स० सरिता>सलिता। यदि 'बाल' की व्युत्पत्ति √वृ से मानी जाती है तो यहाँ भी 'र' के स्थान पर ल आया है, किन्तु इस प्रकार का परिवर्तन बहुत कम शब्दो मे मिलता है, जबकि समूचे हिन्दी प्रदेश मे 'ल' के स्थान पर 'र' आता है। आद्य 'व' 'ब' मे परिवर्तित होता है। पूरबी हिन्दी मे 'व' का 'ब' रूपान्तर अनिवार्य है।

ऊष्म व्यंजन

९८. सभी ऊष्म वर्ण परिवर्तनशील है। समूचे दोआबे और पूरब मे 'श' का उच्चारण 'स' होता है, जैसे 'दिशा' का उच्चारण 'दिसा' किया जाता है। 'ष' साधारणतया 'ख' मे परिवर्तित होता है, जैसे—'मनुष्य' के स्थान पर 'मनुख', 'दोष' के लिए 'दोख', किन्तु लिखते समय 'ष' के स्थान पर 'ष' ही लिखते है, 'ख' नही। कुछ स्थानो पर , जैसे—मारवाडी मे, 'ख' के स्थान पर 'ष' लिखते है। 'छ' और 'छठा' मे 'ष' परिवर्तित हुआ है छ मे, 'छ' के लिए सस्कृत तत्सम शब्द 'षष' और छठा के लिए 'षष्ठ' है। स० लालसा >हि० लालच मे 'स' 'च' मे रूपान्तरित हुआ है, इसी प्रकार सं० शोभा >छोभा मे 'श' ने 'छ' का रूप धारण किया है। अनेक भाषाओ मे ऊष्म अल्पप्राण व्यंजन को महाप्राण व्यंजन में परिवर्त्तित करने की प्रवृत्ति पाई जाती है; हिन्दी में भी इस परिवर्तन के बहुत-से उदाहरण मिलते है, जैसे—ग्यारह से अठारह तक की गिनती मे अन्त्य 'ह' स० 'दशन्' के 'श' का प्रतिनिधित्व करता है। यही परिवर्तन ७१ से ७८ तक की संख्या मे हुआ है, जहाँ सत्तर का 'स' 'ह' उच्चारित होता है। 'उनासी' की उत्पत्ति अन्य प्रकार से हुई है; जैसे—सं० 'त्रयोदश' के स्थान पर हि० तेरह का प्रचलन हुआ, उसी प्रकार सं० 'एकसप्तति' आदि के स्थान पर हिन्दी मे इकहत्तर, बहत्तर आदि। संख्यावाची शब्दों का उपर्यक्त ध्वनि-परिवर्त्तन हिमालय और राजपूताना की बोलियो को छोड़ कर हिन्दी से सम्बन्धित सभी बोलियो

में पाया जाता है। सख्यावाची शब्दों के अतिरिक्त इस प्रकार का परिवर्तन अन्यत्र कम मिलता है। क्रिया और सर्वनामो के बहुप्रचलित रूपो मे इस प्रकार का ध्वनि-परिवर्त्तन पाया जाता है, किन्तु उन परिवर्त्तनो का उल्लेख अन्यत्र किया जाएगा।

महाप्राण स्पर्श व्यंजन

९९ महाप्राण स्पर्श व्यजनो मे से ख, घ, थ, ध और भ के स्थान पर सामान्य रूप से 'ह्' का प्रयोग होता है, उदाहरण—मुख के लिए मुँह, मेघ >मेह, √कथ् >कहना, दधि >दही; बधिर >बहिरा। आद्य स्पर्श महाप्राण सामान्यतया अपरिवर्त्तित रहता है। मुझे दो-तीन उदाहरण ऐसे मिले है, जहाँ आद्य स्पर्श महाप्राण के स्थान पर 'ह्' शेप रहा है, वह है √भू से उद्भूत√हो, दूसरे उदाहरण है—स० भाण्ड तथा भुण्ड के स्थान पर क्रमश हाँडी तथा हुडी। वर्त्तमान साहित्यिक हिन्दी की अपेक्षा इस प्रकार का परिवर्तन पुरानी पूरबी हिन्दी मे अधिक मिलता है।

क उच्च हिन्दी मे जहाँ अल्पप्राण व्यजन का प्रयोग होता है, वहाँ नेपाली मे कई स्थलो पर महाप्राण व्यजन आता है, जैसे—स्त हि० आपना, ने० आफनु, उ० हि० बालक, ने० बालख। इसके विपरीत उदाहरण भी मिलते है, जहाँ हिन्दी मे महाप्राण व्यजन आता है, वहाँ नेपाली मे अल्पप्राण का प्रयोग हुआ है, स्त हि० दूध, ने० दुद, स्त हि० सिखाना, ने० सिकाउनु, स्त हि० थोरा, ने० तोरो।

प्राकृत 'क'

१०० ध्वनि-परिवर्तन से सम्बन्धित इस अध्याय को समाप्त करने से पहले, हम प्राकृत की एक विशेषता का उल्लेख करना चाहते है, जिसके अनुसार शब्द के अन्त मे 'क' प्रत्यय जोडा जाता है। सस्कृत मे धातु के साथ 'क' प्रत्यय के जुडने से विशेषण बनते है और सज्ञा के साथ इस प्रत्यय के जुडने से 'कर्ता' का बोध होता है, किन्तु प्राकृत का 'क' न तो विशेषण बनाता है और न कर्तृत्व का बोध कराता है, वह सर्वथा निरर्थक है।[1] यद्यपि आधुनिक पछाँही हिन्दी के अधिकाश शब्दो मे यह प्रत्यय लुप्त हो चुका है, फिर भी अनेक स्थलो पर इसका प्रभाव देखा जा सकता है। १६०० ई० मे तुलसीदास ने अपनी रामायण मे केवल सज्ञा ही नही, सर्वनाम तथा सख्यावाचक विशेषण के साथ भी इस निरर्थक 'क' प्रत्यय का प्रयोग अधिकता से किया है। बोलचाल की मैथिली और मागधी मे आज भी यह प्रत्यय अनेक शब्दो के साथ प्रयुक्त होता है। हम आगे चलकर इस प्रत्यय के प्रयोग का उल्लेख कई स्थलो पर करेंगे।

क मारवाडी मे वक्ता और लेखक केवल निरर्थक 'क' प्रत्यय ही नही, कुछ ऐसे अक्षरो का प्रयोग स्वेच्छा से करता है, जो शब्द के अर्थ मे किसी प्रकार का परिवर्तन नही करते। इन निरर्थक शब्दो मे ज, झ, र, स, सी, और खन मुख्य है।[2] सज्ञा ही नही सर्वनाम आदि के साथ भी इन निरर्थक अक्षरो को

---

[1] संस्कृत मे भी अनेक शब्दों मे इस निरर्थक 'क' प्रत्यय को देखा जा सकता है; जैसे—घोटक, कण्टक, मेलक आदि; किन्तु प्राकृत में इस निरर्थक 'क' का प्रयोग जिस प्रचुरता से हुआ है, उतनी अधिकता से संस्कृत में नहीं हुआ। यह विषय व्युत्पत्ति की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसके लिए छात्र वररचि के 'प्राकृत-प्रकाश' मे ४.२५ देखे। इस प्रकार लेस्सेन के इन्स्ट-लिग० प्रा० के पृ० २८८, ४३४, ४६१ और ४७५ भी सहायक होगे।

[2] इन अक्षरों का प्रयोग सर्वत्र निरर्थक नही होता। वास्तव में ये परसर्ग अथवा अव्यय के संक्षिप्त रूप है।—अनुवादक

जोडते है।' 'ख्याल' और 'रणधीर मोहिनी' से मैने कुछ उदाहरण लिये है; जैसे—'इसीर'[1] मर्जी होय'; यहाँ 'इसी ' आया है 'ऐसी' के लिए। 'हुकुम दिया है कम्पनीस'[2]। "पॉवॉ आई आप कैस[3]।" 'षबरज लेवो जाय',[4] (यहाँ षबरज आया है अर० खबर के लिए[5]।)

वर्ण-विपर्यय

हिन्दुओ मे वर्ण-विपर्यय करने की विचित्र प्रवृत्ति है, गूढ और अस्पष्ट शब्दों की जॉच-पडताल मे इस प्रवृत्ति की जानकारी से सहायता मिलती है, जैसे—पछाँह मे मतलब के लिए मतबल, दोआबे में स्नान >ह्नान के लिए नहान, बीमार के लिए बीराम, तिरहुत और गढवाल मे पहुँचना के लिए चहुँपना, नेपाल मे स्त हि० के 'इन्साफ' शब्द के लिए 'निसाफ'। स्वरों के स्थान-परिवर्तन के कारण स्त हिं० का 'भरोसा' सुनाई देता है 'भोरस'।

संयुक्ताक्षर

१०२ हिन्दी मे सयुक्त व्यजनो का विषय बहुत विस्तृत और उलझा हुआ है। इस पुस्तक की सीमाएँ हमे इस बात की अनुमति नही देती कि हम इस बारे मे पूरी तरह विचार करे, इसीलिए यहाँ सामान्य नियमों की ओर संकेत मात्र किया जाता है। जहॉ बहुत ही आवश्यक समझा गया है, वहॉ कुछ विस्तृत जानकारी दी गई है। इस विषय की पूरी जानकारी के लिए छात्र को बीम्स तथा हार्नले के तुलनात्मक व्याकरण सम्बन्धी ग्रन्थों से सहायता लेनी चाहिए।[6]

१०३ तद्भव शब्दो मे सयुक्त व्यंजनो के परिवर्तन को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है।

(१) जब संयुक्त वर्ण के दोनो सदस्य या तो समान होते है, या समान जैसे होते है तो पुराने रूपो मे एक सदस्य का लोप पाया जाता है, किन्तु जिन शब्दो का निर्माण अपेक्षाकृत पीछे हुआ है, उनमे इस प्रकार के सयुक्त व्यजनों को स्वरभक्ति से पृथक् किया जाता है।

---

[1] यहॉ 'र' संक्षिप्त रूप है 'और' का। इस प्रकार के प्रयोग में 'र' का तात्पर्य है 'ही', इसीर ऐसी ही।—अनुवादक

[2] यहॉ 'स' संक्षिप्त रूप है 'ऐसा' का; इस प्रकार के प्रयोग में 'स' का तात्पर्य है—ही, तो, ऐसा; कम्पनीस कम्पनी ने ही। दूसरा उदाहरण—मैं जाऊँ सैलीस हूँ। मै जा थोड़े ही रहा हूँ। "और नहींस के" और नहीं तो क्या?—अनुवादक

[3] इस वाक्यांश का अर्थ है, "आपके ही तो मै पाँवों चल कर आई हूँ", यहाँ भी 'स' अर्थ दे रहा है, 'ही' का।

[4] यहॉ 'खबर' शब्द के साथ 'ज' संक्षिप्त रूप है 'ज' का।—अनुवादक

[5] इन उदाहरणों में 'स' 'र' 'ज' निरर्थक नहीं है। इन अक्षरों के कारण अर्थ में अन्तर पड़ता है।—अनुवादक

[6] यह उचित प्रतीत होता है कि मै इस अध्याय के लिए, विशेष रूप से इस अनुच्छेद के लिए यहॉ श्री बीम्स के प्रति आभार प्रदर्शित करूँ। मैने इस अध्याय को श्री बीम्स के ग्रन्थ के प्रकाशन से पहले लिख लिया था, किन्तु जब उनका ग्रन्थ छपा तो उसके 'संयुक्त व्यंजन' शीर्षक अध्याय से मैंने बहुत लाभ उठाया और यह अंश फिर से लिखा। इस परिवर्तन से निस्सन्देह मेरे कथन में संक्षिप्ति और स्पष्टता आई है।

(२) जहाँ सयुक्त व्यजन मे एक व्यजन बलशाली और दूसरा निर्बल हो तो निर्बल व्यजन का लोप हो जाता है। कही-कही लुप्त व्यजन के प्रभाव से अवशिष्ट व्यजन या तो दूसरा रूप धारण करता है या उसमे कुछ परिवर्तन हो जाता है।

क. प्राकृत-काल के संयुक्त व्यंजनो मे विशेष प्रकार का परिवर्तन दिखाई देता है, जब सयुक्त व्यजन का निर्बल अवयव लुप्त होता है तो सबल अव्यय का अल्पप्राण रूप उसके साथ जोड़ देते है। मिश्रित सयोग मे दुर्बल व्यजन का महाप्राण वाला रूप जोडते है। पुराने समय का यह परिवर्तन हिन्दी मे इस समय भी विद्यमान है, स० प्रस्तर, मक्षिका और हस्त हिन्दी मे क्रमश. पत्थर, मक्खी और हाथ होते है। इस सम्बन्ध मे अधिक उदाहरण आगे चलकर दिये गये है।

ख. उपर्युक्त नियम के कारण जब सयुक्त व्यजन एकाकी व्यंजन मे परिवर्तित होता है तो पूर्ववर्ती स्वर क्षतिपूर्ति के रूप मे दीर्घ बनता है। यदि सयुक्त व्यजन के तत्काल पश्चात् दीर्घस्वर अथवा सबल व्यंजन आ रहा है तो इस प्रकार के दीर्घीकरण की उपेक्षा की जाती है।

ग. इस सामान्य नियम के सम्बन्ध मे यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि वर्ग के पहले चार अक्षर सबल अथवा दृढ कहलाते है।[1] शेष अक्षर निर्बल है। प्रयोग के समय उल्लेखनीय बात यह है कि संयुक्त व्यजन मे दोनो अवयवी सबल हों तो दोनों समान सामर्थ्य वाले अक्षर माने जाते है, किन्तु निर्बल अक्षर की सामर्थ्य भिन्न प्रकार की होती है।[2]

१०४. उपर्युक्त नियमो को निम्नलिखित उदाहरण और टिप्पणी स्पष्ट करते है। संयुक्त व्यजन मे दोनो अवयवी सबल हो तो पहले अवयवी का लोप होता है, जैसे—सं० मौक्तिक>मोती; स० दुग्ध> दूध, स० सप्तन्>सात। तत्सम शब्द मे सयुक्ताक्षर के पश्चात् स्वरयुक्त वर्ण हो तो पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर दीर्घ नही होता, जैसे—सं० उत्+स्था>उठना। लिखते समय सबल संयुक्ताक्षरो को ठीक तरह से लिखते हुए भी हिन्दू लोग बोलते समय स्वरभक्ति का प्रयोग करते है। जैसे—बोलचाल मे 'शब्द' के स्थान पर 'सबद', 'तृप्त' पहले 'त्रिपत' फिर 'तिरपत', 'कर्म' के स्थान पर 'करम।'

१०५. जिस सयुक्ताक्षर के दोनो अवयवी समान सामर्थ्य के नही होते, उसमे निर्बल व्यजन का लोप होता है। क्षतिपूर्ति के रूप मे पूर्ववर्ती स्वर या तो दीर्घ होता है, या गुणित; जैसे—सं० अग्नि>आग; सं० ऊर्ण>ऊन, सं० गर्भिणी>गाभिन, स० ज्योतिष>जोतिष; स० प्रावृष>पावस, स० मूल्य>मोल, सं० स्नेह>हि० नेह; सं० स्त्री>हि० तिया। मजदूरी के लिए ग्राम्य हिन्दी मे मजूरी।

क. 'प्र' मे प्राय: 'अ' के कारण 'प् र' विभक्त होते है; जैसे—प्रतिच्छाया>हि० परछाया, स० प्रकाश>परगास, सं० प्रसाद>हि० परसाद आदि।

ख 'ज्ञा' धातु 'जा' में बदलती है; जैसे—ज्ञान>जानना, कही-कही 'ज्ञ' अधिक निर्बल होकर 'य' बनता है; जैसे—सियाना<सं० सज्ञान; अयान<सं० अज्ञान।

---

[1] देखिए, § ८.

[2] बीम्स ने सामर्थ्य की दृष्टि से अक्षरों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—पहले नासिक्य, फिर ऊष्म और अन्त में अर्द्धस्वर। नासिक्य और ऊष्म-वर्णों की सामर्थ्य समान है। सामर्थ्य के अनुसार अर्द्धस्वरों की स्थिति इस प्रकार है—चारों में सब से अधिक सबल 'व' ('ब' की सामर्थ्य के साथ), 'य' ('ज' की सामर्थ्य के साथ) ल, र, व, ('उ' में परिवर्त्तित होता है,) य ('इ' में परिवर्त्तित है)। देखिए, बीम्सकम्प० ग्रा० खं० १, पृ० ३६०.

संयुक्त व्यंजन में नासिक्य की स्थिति

१०६. सयुक्ताक्षर का प्रथम अवयव कोई नासिक्य वर्ण हो और दूसरा अवयव कोई स्पर्श व्यजन हो तो नासिक्य वर्ण का लोप होता है और पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ तथा सानुनासिक बनता है। नासिक्य-लोप सम्बन्धी उदाहरण प्रचुरता से मिलते है। उदाहरण है—कॉटा <स० कण्टक; चाँद <स० चन्द्र; ताँबा <सं० ताम्र।

संयुक्ताक्षर में अर्द्धस्वर

१०७. सयुक्ताक्षर का प्रथम अवयवी कोई दन्त्याक्षर हो और द्वितीय अवयवी य, र, व तो य, र, व का लोप होता है तथा दन्त्य वर्ण क्रमानुसार चवर्ग मे बदलते है, जैसे—सयुक्त व्यंजन 'त्य' बनता है 'च', सं० सत्य >हि० सच, सं० मृत्यु >हि० मीच। 'द्य' परिवर्त्तित होता है 'ज' मे; सं अद्य >हि० आज। 'ध्य' परिवर्त्तित होता है 'झ' मे, जैसे—सं० सन्ध्या >हि० साँझ। सयुक्ताक्षर का प्रथम अवयवी 'र्' हो और द्वितीय अवयवी दन्त्य हो तो 'र' का लोप होता है और दन्त्य वर्ण यथाक्रम मूर्द्धन्य वर्णो मे बदलते है। 'र' दूसरा अवयवी हो और पहला अवयवी दन्त्य वर्ण हो तो 'र' के लुप्त होने पर भी दन्त्य वर्ण मे बहुत कम परिवर्तन होता है। उदाहरण—स० वर्तन >हि० बाट, स० पत्र >हि० पाट (कपड़ा)। 'ऋ' परिवर्त्तित होती है 'रि' अथवा 'अर्' मे और लुप्त होते समय दन्त्य वर्ण को मूर्द्धन्य वर्ण मे परिवर्तित करती है; जैसे—सं० वृद्ध >हि० बूढ़ा। किसी अन्य स्थान के वर्ण का ओष्ठ्य वर्ण मे रूपान्तर बहुत कम देखा जाता है। बहुत-से लोग सख्यावाची शब्द 'द्वि' के रूपान्तर को प्रस्तुत करते है; जैसे—स० द्वादशन् >हि० बारह; स० द्वाविंशति>हि० बाईस, स० आत्मन् >हि० आप। इन उदाहरणो से अन्य वर्ण का ओष्ठ्य वर्ण मे परिवर्तन प्रकट होता है।

संयुक्त व्यंजनों में ऊष्म

१०८. जब संयुक्ताक्षर का पहला वर्ण ऊष्म हो और द्वितीय वर्ण कोई सबल अक्षर हो तो ऊष्म वर्ण लुप्त हो जाता है और द्वितीय अवयवी महाप्राण बनता है; जैसे—स० हस्तिन्>हि० हाथी, स० पश्चिम> हि० पच्छिम, स० स्तन >हि० थन; स० शुष्क >हि० सूखा, सं० अष्टन् >हि० आठ। कुछ स्थलो पर महाप्राण स्वतंत्र रूप से आता है, और कही-कही महाप्राणत्व आद्य वर्ण मे आ जाता है, जैसे—स० अस्थि > हि० हड्डी; स० स्नान >हि० हनान, स० पुष्प >हि० पुहुप। प्रथम अवयवी क्, त् या प् हो और द्वितीय अवयवी कोई ऊष्म वर्ण हो तो क्, त्, प् का लोप और उष्म वर्ण को 'छ' का आदेश होता है। जैसे—स० क्षय >छय, स० अक्षर >अछर, स० मत्स्य >मछ, सं० ईप्सित >इच्छित। इच्छित शब्द की व्युत्पत्ति 'वेबर' के विचारानुसार √ इष् (प्राकृत धातु) से की जा सकती है।

क 'क्' के साथ ऊष्म वर्ण का सयोग हुआ हो तो ऊष्म वर्ण लुप्त होते हुए पूर्व अवयवी को केवल महाप्राण बनाता है। प्रथम अवयवी किसी दूसरे वर्ग के अक्षर मे नही बदलता जैसे—पुरानी हिन्दी मे स० अक्षर >आखर, स० मक्षिका >मक्खी या माखी।

ख. 'स्थ' सयुक्ताक्षर से प्रारभ होने वाले शब्द, विशेष रूप से √स्था से बननेवाले शब्दों मे दन्त्य वर्ण यथाक्रम मूर्द्धन्य वर्ण मे बदलते है। जैसे—ठाँ (जगह), ठाना (पुलिस थाना); ठढा; मार० कठा (कहॉ) आदि। कही-कही निर्बल व्यजन के साथ ऊष्म वर्ण शेष रहता है, जैसे सं० 'अवश्य'>अवसि।

१०९. हिन्दी के ध्वनि-परिवर्तन सम्बन्धी इन नियमो की जानकारी अत्यन्त आवश्यक होते हुए भी यहॉ विस्तार से नही दी जा सकी। आशा की जाती है कि यह संक्षिप्त जानकारी छात्रों का पथ-प्रदर्शन करेगी। पुरानी हिन्दी की पुस्तकों और आधुनिक हिन्दी की विभिन्न बोलियों के अनियमित और विचित्र प्रकार के रूपों को समझने मे इस जानकारी से सहायता मिलेगी।

चौथा अध्याय

हिन्दी की बोलियाँ

११०. पहले लिखा जा चुका है, बोलचाल की हिन्दी और साहित्यिक हिन्दी की अनेक शैलियाँ हैं, जिनकी गिनती करना सरल कार्य नहीं है। जिस तरह ब्रज और कन्नौजी में बहुत कम भेद है, उसी प्रकार कुछ ऐसी बोलियाँ हैं, जिनमें अधिक अन्तर दिखाई नहीं देता; किन्तु राजपूताना, पछाँह के जिलों, बनारस के आसपास और पूरब में जो बोलियाँ बोली जाती हैं, उनमें परस्पर इतना अन्तर है कि हम चाहे हार्नले, ग्रियर्सन तथा अन्य विद्वानों से सहमत हों या न हों, हमारे सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इन सब बोलियों को हिन्दी की शैली न मान कर अलग-अलग भाषा क्यों न मानें? इस विषय में किसी विवाद में पड़ने का मेरा विचार नहीं है। मैंने व्यावहारिक दृष्टि से हिन्दी शब्द का प्रयोग उस भाषा के लिए किया है जो उत्तर में हिमालय के अधोभाग से लेकर दक्षिण में विन्ध्याचल तथा नर्मदा तक और पश्चिम में पंजाब, सिन्ध तथा गुजरात से लेकर पूर्व तथा दक्षिण पूर्व में बंगाल और छोटा नागपुर तक बोली जाती है।

अनगिनत बोलियाँ

१११. उपर्युक्त क्षेत्र में हिन्दी की जो शैलियाँ प्रयुक्त होती हैं, उनकी गणना पश्चिम से पूर्व की ओर इस प्रकार की जाती है—१. राजपूताना की बोलियाँ—मारवाड़ी, मेवाड़ी, मेरवाड़ी, जैपुरी और हड़ौती; २. हिमालय की बोलियाँ—गढ़वाली, कुमाऊनी और नेपाली; ३. दोआबे की बोलियाँ—ब्रज और कन्नौजी; ४. पूरबी अथवा पूरब की बोलियाँ—अवधी, रिवाई, भोजपुरी, मागधी और मैथिली। इनके साथ पुरानी बैसवाड़ी भी जोड़ी जा सकती है, जिसमें साहित्यिक और धार्मिक दोनों दृष्टियों से महत्त्व-पूर्ण काव्य—तुलसीदास की रामायण-लिखा गया है। अन्त में स्तरीय हिन्दी का उल्लेख होना चाहिए जो उर्दू अथवा हिन्दुस्तानी का आधार है। उपर्युक्त बोलियों की सीमा अंकित करना असंभव है, फिर भी ये बोलियाँ जिस क्षेत्र से सम्बन्धित हैं, उनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है।

बोलियों का क्षेत्र

११२. ऊपर हिन्दी की जो पश्चिमी सीमा दी गई है, वहाँ से पूर्व में अरावली पर्वत तक मारवाड़ी बोली जाती है। जोधपुर और जयनगर मारवाड़ी भाषी प्रदेश के केन्द्र में हैं। अरावली के उत्तरी भाग में मारवाड़ी का क्षेत्र है और दक्षिण तथा पूर्व में बनास तथा चम्बल तक का जो प्रदेश उदयपुर राज्य में है; वहाँ मेवाड़ी बोली जाती है। मारवाड़ी तथा मेवाड़ी के पश्चात् पूर्वी राजपूताना की बोलियों की गिनती होती है। इन बोलियों का क्षेत्र अरावली से बेतवा नदी तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र के उत्तर में जयपुरी और दक्षिण-पूर्व में-कोटा, बूँदी तथा अन्य रियासतों में हड़ौती बोली जाती है।[1] राजपूताना की इन बोलियों

---

[1] **राजपूताने की इन बोलियों को कई उपभेदों में बाँटा जाता है। भारत सरकार की हाल ही में**

[शेष अगले पृष्ठ पर]

के उत्तर-पूर्व से गंगा-यमुना का मैदान है। इस क्षेत्र के ऊपरी भाग मे ब्रज भाषा प्रचलित है। निचले दोआबे मे पूर्व तथा दक्षिण की ओर कन्नौजी का क्षेत्र है, इस क्षेत्र के बीचोबीच ऐतिहासिक नगर कन्नौज पड़ता है, इस नगर के नाम पर ही इस बोली का नामकरण हुआ। दोआबे की इन बोलियो के समानातर सतलज से गंगा तक हिमालय मे गढवाली बोली जाती है। गगा से गोगरी नदी तक कुमाऊनी, गोगरी से घुर पूर्व मे संखासी नदी तक नेपाली, नेपाली के क्षेत्र से मैदान की ओर लौटते हुए यदि हम पश्चिम की ओर से प्रयाग आये तो हमे एक ऐसी बोली मिलती है, जो उत्तर और पश्चिम की बोलियो से कई बातो मे भिन्न है। उत्तर की ओर ‘अवधी’[1] और दक्षिण मे ‘रिवाई’ बोली जाती है। ‘रीवा’ नामक रियासत के कारण रिवाई बोली का नामकरण हुआ है, वैसे इस क्षेत्र का पुराना नाम बघेलखण्ड है, इस नाम के कारण रिवाई को बघेलखण्डी भी कहते है।[2] इन बोलियो के पूर्व मे, हिमालय की तलहटी से २२वी अक्षाश रेखा के समानान्तर छोटा नागपुर और शोण नदी तथा मुजफ्फरनगर जिले तक भोजपुरी बोली जाती है। विशुद्ध मागधी छोटे-से प्रदेश मे बोली जाती है, जो शोण के पूर्व और गंगा के दक्षिण से त्रिकोणाकार बसा है। इस प्रदेश के मध्यभाग मे पटना और गया नामक नगर पडते है। पूर्व मे भोजपुरी और उत्तर-पूर्व मे मागधी से लगी हुई मैथिली बोली जाती है। मैथिली का क्षेत्र पूर्व मे पुर्णिया और भागलपुर जिले तक फैला है। उस क्षेत्र के पूर्व मे बगाली और दक्षिण-पूर्व मे संथाली बोली जाती है। रामायण की पुरानी बैसवाडी का विकसित रूप इस समय अवध और रीवा की बोलचाल मे विद्यमान है। रामायण की बैसवाड़ी को छोड़ कर ऊपर की सभी बोलियाँ अपने-अपने क्षेत्र मे जीवित है और उनका प्रयोग हिन्दू लोग आपसी बातचीत मे करते है।

स्तरीय हिन्दी

११३. ऊपर हिन्दी से सम्बन्धित केवल एक बोली का उल्लेख नही किया गया। काल की दृष्टि से इस बोली की गिनती सब बोलियो के पश्चात् होती है, किन्तु यह शीघ्र इतनी व्यापक हो गई कि इस समय समूचे हिन्दी भाषी प्रदेश मे समझी जाती है। इस बोली की विशेषता यह है कि इसका अपना कोई क्षेत्र नही है। जर्मन भाषा के सादृश्य पर इस बोली का नाम ‘स्तरीय हिन्दी’ रखा गया है।[3] हिन्दी से सम्बन्धित बोलचाल की दो बोलियो से इसका सम्बन्ध है, वे है ब्रज और कन्नौजी। इन दोनों बोलियो की अपेक्षा मुसलमानों की बोली ‘उर्दू’ से इसका अधिक सम्बन्ध है। उर्दू की विभक्तियाँ, सज्ञा तथा धातु रूप आदि उच्च हिन्दी से लिये गये है। उर्दू और हिन्दी का मुख्य अतर यह है कि उर्दू मे अरबी तथा फारसी के शब्द

—प्रकाशित एक विज्ञप्ति में इन उपभेदों का उल्लेख किया गया है—मारवाड़ी के उत्तर और पश्चिम में बीकानेरी, जयपुरी के उत्तर और पूर्व में अलवरी; हड़ौती के दक्षिण में उज्जैनी।

[1] इसे कौसली अथवा बैसवाड़ी भी कहते है।

[2] अवधी और बघेलखण्डी में अधिक अंतर नहीं है, इसीलिए ग्रिअर्सन ने इन दोनों के लिए ‘बैसवाड़ी’ शब्द का प्रयोग किया है। यह नाम ‘बैसवाड़’ के कारण पड़ा। इस प्रदेश में राजपूताने की एक जाति ‘बैस’ बसती थी।

[3] इस पुस्तक के पिछले संस्करण में मैंने इस बोली का नाम ‘स्टैण्डर्ड हिन्दी’ (खड़ीबोली) रखा था; किन्तु इस नाम से हिन्दी से सम्बन्धित अन्य बोलियों के सम्बन्ध में विपरीत धारणा बन सकती थी; इसीलिए मैंने इस संस्करण में इस शैली के लिए ‘स्तरीय हिन्दी’ (हाई हिन्दी) शब्द का प्रयोग किया है।

बडी मात्रा मे प्रयुक्त होते है। उर्दू मे फारसी तथा अरबी के शब्दो का प्रयोग-बाहुल्य क्यो है? उर्दू को इतना महत्त्व क्यों प्राप्त हुआ? भारत मे अँग्रेजी शासन के राजनीतिक प्रभाव और इस शताब्दी मे ईसाई धर्म प्रचारको की गतिविधियो से यह सभव हुआ। उर्दू वह बोली है, जिसमे शासन ही नही अधिकाश अंग्रेज तथा अमेरिकी धर्म-प्रचारको ने हिब्दी पुस्तके प्रकाशित की। हिन्दी भाषी जनता के साथ पत्राचार भी उर्दू मे किया जाता है। असख्य हिन्दी भाषी लोग उर्दू समझते है, लेकिन यह भी सत्य है कि हिन्दुओ के घरो मे कही भी उर्दू का प्रयोग नही होता।[1] अग्रेजी की प्रेरणा से अब वास्तविक हिन्दी मे भी साहित्य रचा जाने लगा है। यदि कोई भविष्य बताने का साहस करे तो वह यह कह सकता है कि भविष्य मे उत्तर भारत की जो भाषा राजकाज या साहित्य की भाषा बनेगी, वह ऐसी भाषा होगी जो उर्दू की भाँति अरबी-फारसी से कम प्रभावित होगी, साथ ही उसमे वर्तमान हिन्दी की अपेक्षा सस्कृत तथा प्राकृत के शब्द भी कम रहेगे।

बोलियों का वर्गीकरण

११४. ऊपर जिन बोलियो का उल्लेख किया गया है, उन्हे दो श्रेणियो मे बाँटा जा सकता है—१. पछाँही हिन्दी, २ पूरबी हिन्दी। पहली श्रेणी मे हिमालय की दो बोलियाँ—गढवाली और नेपाली, गंगा यमुना के मैदान की दो बोलियाँ—ब्रज तथा कन्नौजी और राजपूताने की सभी बोलियाँ सम्मिलित है। पूरबी हिन्दी मे अवधी, रिवाई, रामायण की बैसवाडी, भोजपुरी, मागधी और मैथिली का समावेश होता है। दोनो श्रेणियों की बोलियो में कुछ सामान्य तत्त्व मिलते है, किन्तु यह भी सत्य है कि एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी की बोलियों मे ऐसी अनेक विषमताएँ है, जो इस वर्गीकरण को उचित सिद्ध करती है।

क. हार्नले ने हिमालय की बोलियों और पूरब की बोलियो को सर्वथा भिन्न बताया है। इसीलिए उन्होंने दोनों को एक ही भाषा की शैलियाँ न मानकर स्वतत्र भाषा सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। मै यहाँ किसी विवाद मे नही पड़ना चाहता। यहाँ इतना सूचित करना पर्याप्त है कि हिमालय की बोलियो और राजपूताना की बोलियो मे बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि ऐसा न हो तो हिमालय की बोलियो, राजपूताना

---

१. भारत की ग्रामीण जनता के जीवन से जो लोग कुछ सम्पर्क रखते है, वे श्री ग्रिअर्सन बी० सी० एस० के इस कथन की सचाई को अनुभव करेंगे—"(भारत में) प्रशासन द्वारा प्रचारित किसी विज्ञप्ति तथा साहित्यिक पुस्तक में प्रयुक्त भाषा (उर्दू) उस भाषा से बहुत भिन्न है, जिसमें जनता बातचीत करती है। कुछ अवस्थाओं में जनता की बातचीत वाली भाषा को 'बोली' कहा जा सकता है, किन्तु सर्वत्र बोली के रूप में उसकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। कुछ अवस्थाओं में यूरोपीय जन भारत की जिस शिष्ट भाषा को सीखते है और भारत-निवासी जिस भाषा का प्रयोग यूरोपीय जनों से बातचीत के समय करते है वह मूलतः और रचना की दृष्टि से भी उस भाषा से भिन्न है, जिसका प्रयोग भारत-निवासी घर में करते है। वास्तविकता यह है कि हिन्दुस्तान में कहीं भी ऐसी भाषा नहीं बोली जाती जो कचहरी में प्रयुक्त भाषा से कुछ भी मेल रखती है। यदि कोई गरीब आदमी कचहरी में अपने किसी पड़ौसी पर अभियोग चलाना चाहता है तो, उसे पहले अंग्रेजी सीखनी पड़ेगी या ऐसे दुभाषिये पर भरोसा करना पड़ेगा जो उसे पग-पग पर ठगता है। जो बालक त्रैराशिक नियम को जानना चाहेगा उसे त्रैराशिक सीखने से पहले अंग्रेजी सीखनी होगी क्योंकि अंग्रेजी में ही यह नियम पढ़ाया जाता है। भारत के कुछ हिस्से में यह कठिनाई अधिक मात्रा में है और कुछ हिस्से में कम मात्रा में। कम या अधिक यह कठिनाई सर्वत्र है।" ग्रिअर्सन ने यह बात अन्तर्राष्ट्रीय पौर्वात्य विद्वत्परिषद् के सम्मुख कही थी। बंगाल एसियाटिक सोसाइटी का विवरण सं० ४। अप्रैल १८८७, पृ० १३२।

की बोलियों और ब्रज तथा अवधी को एक ही श्रेणी की भाषा कैसे माना जा सकता है? यदि हम हार्नले की भाँति राजस्थानी और हिमालय की भाषाओ को अलग-अलग मान लेते है तो ब्रज तथा मारवाडी दोनो पृथक् भाषाएँ माननी पडेगी। सभवत हार्नले इन दोनो को पृथक् भाषा मानते रहे होगे।[1]

हार्नले तथा ग्रिअर्सन पूरबी बोलियो को 'हिन्दी' नही मानते।[2] दोनो ने केवल ब्रज और कन्नौजी के लिए ही हिन्दी शब्द का उपयोग किया है। यदि मेरी जानकारी ठीक है तो मेरी यह बात भी सत्य है कि पूरबी बोलियों के क्षेत्र मे और राजपूताने मे भी ब्रज-साहित्य बिकता है। जो लोग पढना-लिखना जानते है वे सामान्यतया ब्रजभाषा के साहित्य मे समान रूप से रस लेते है। विशेष रूप से नेपाली पर विचार किया जा सकता है। नेपाली जितनी निकट है गढवाली और कुमाऊनी के, हिन्दी के साथ भी उसकी निकटता उतनी ही है। नेपाली की गिनती हिन्दी की अन्य शैलियो के साथ होनी चाहिए। इस सम्बन्ध मे मै अपना अनुभव बताना चाहता हूँ। कुछ वर्ष पूर्व गगोत्तरी के निकट मै नेपाली तीर्थ-यात्रियो से मिला था। मुझे अनुभव हुआ कि वे नेपाली यात्री उस हिन्दी को अच्छी तरह समझते है, जिसका प्रयोग ईसाई धर्म प्रचारक अपने उपदेशों मे करते है। साथ ही उन नेपाली यात्रियों ने मेरे भारवाहको से पर्वतमाला की किसी स्थानीय बोली मे बातचीत की। यह बात उल्लेखनीय है कि समूचे गढवाल मे वहाँ के मूल निवासी यूरोपीय जनो के साथ बातचीत करते समय स्तरीय हिन्दी का प्रयोग करते है। ग्रामीण लोगो से सरल स्तरीय हिन्दी मे बातचीत करते समय मैने स्वयं कोई बाधा अनुभव नही की।

हिमालय की बोलियो और धुर पूरब की बोलियो को हिन्दी की ही शैली क्यों माना जाये, इस सम्बन्ध मे मै अपने विचार व्यक्त करना चाहता हूँ, जिससे विद्यार्थी किसी निर्णय पर पहुँच सके।

बोलियों में शब्दावली का अन्तर

११५. हिन्दी से सम्बन्धित बोलियो को ऊपर दो वर्गो मे विभक्त किया गया है। पछाँही और पूरबी हिन्दी मे अन्तर है। एक ही वर्ग की बोलियो मे भी उतना तो नही, किन्तु भेद अवश्य है। एक वर्ग से दूसरे वर्ग और एक ही वर्ग की विभिन्न बोलियों मे दो प्रकार का अन्तर है—शब्दावली का अन्तर और व्याकरण का अन्तर। एक ही विचार को व्यक्त करने के लिए विभिन्न बोलियो मे सर्वथा भिन्न शब्दो का उपयोग होता है। उच्च हिन्दी मे प्रेषित करने के लिए 'भेजना' शब्द का प्रयोग होता है जब कि मारवाडी मे 'मेलवो' और बैसवाड़ी मे 'पठावन'। √बुलाना के लिए स्त० हि० मे बुलाना, रामायण मे बोलब, रिवाई मे गौहराउब। रिवाई मे 'रेंगब' आता है 'चलना' के लिए, स्त० हि० मे यह शब्द √रेंगता से मेल खाता है। क्रिया के सामान्य रूपों मे इस प्रकार का अन्तर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करता है। जैसे—स्त० हि० 'है' =मार० छै=भोजपुरी 'बा' अथवा बाटे। इस प्रकार विभिन्न बोलियो मे प्रयुक्त होने वाले विभिन्न प्रकार के शब्दो का यह अन्तर शब्दकोश से सम्बन्धित है। व्याकरण से इस अन्तर का कोई सम्बन्ध नही।

बोलियों में व्याकरण का भेद

११६. हिन्दी की विभिन्न शैलियों में व्याकरण सम्बन्धी तीन अन्तर दिखाई देते है, उच्चारण भेद, रूपगत भेद और वाक्य विन्यास सम्बन्धी भेद। आगे चलकर इन सब पर यथास्थान विचार किया जाएगा।

---

[1] देखिए, कम्प० ग्रा०, पृ० ३५ की टिप्पणी।

[2] ग्रिअर्सन ने भोजपुरी, मागधी और मैथिली को हिन्दी से पृथक् माना है। उन्होंने तीनों के लिए 'बिहारी' शब्द का प्रयोग किया है।

यहाँ केवल सामान्य ढंग के भेदो का उल्लेख किया जाता है। पहले उन भेदों का उल्लेख किया जाता है, जो पूरबी हिन्दी और पछाँही हिन्दी से सम्बन्धित है।

पूरब की बोलियों का उच्चारण

११७. पूरब की बोलियो मे उच्चारण सम्बन्धी विशेषताएँ निम्न प्रकार है—एक सामान्य नियम के अनुसार उपान्त्य वर्ण से पहले व्यंजनगत दीर्घ तथा संयुक्त स्वर ह्रस्व बनता है। शब्द की व्युत्पत्ति बताने तथा रूप-साधन की जाँच करने के लिए इस नियम से सहायता मिलती है।[1] इस नियम के अपवाद निम्न प्रकार हैं—

(१) अ, या और वा से पहले दीर्घ 'आ' को छोड कर पूर्वोपान्त्य के सभी दीर्घ स्वर दीर्घ बने रहते है।

(२) प्रेरणार्थक क्रिया पर यह नियम लागू नही होता।

(३) उत्तरी मैथिली के क्रिया रूपो पर यह नियम लागू नही होता।

(४) भोजपुरी मे एकवर्णी शब्दों को छोड़ कर वर्तमान मे स्वर को ह्रस्व नही बनाया जाता।

पूरबी ह्रस्व स्वर

११८ उपर्युक्त नियम के सम्बन्ध मे यह बात ध्यान मे रहनी चाहिए कि पूरबी हिन्दी मे ए, ओ, ऐ और औ ह्रस्व भी है। ये पछाँही हिन्दी मे सुनाई नही देते। पछाँही हिन्दी के कुछ ही शब्दो मे ह्रस्व 'ए' का उच्चारण होता है। पूरबी हिन्दी मे इन ह्रस्व स्वरो का उदाहरण है—बेटिया, परोसिया, करतै आदि।

स्मरणीय—(१) हार्नले[2] तथा ग्रिअर्सन[3] ने पछाँही हिन्दी मे 'ऍ' की विद्यमानता स्वीकार नही की। मैने इस व्याकरण के प्रथम संस्करण मे ही यह स्वीकार कर लिया था कि दोआबे और हिमालय के उत्तर-पश्चिम की हिन्दी मे ह्रस्व 'ऍ' विद्यमान है।[4]

स्मरणीय—(१) हार्नले ने लिखा है कि पूरबी हिन्दी के उपर्युक्त विशेष ह्रस्व स्वरों का प्रयोग थोडे से व्यावहारिक शब्दो मे होता है। इन प्रयोगो के सम्बन्ध मे हार्नले ने निम्नलिखित बातो का उल्लेख किया है—

(१) उपर्युक्त नियम को उपान्त्य के ए, ओ, ऐ और औ पर लागू करते है। फलस्वरूप उपान्त्य के ये स्वर ह्रस्व हो जाते है।

(२) सम्बन्ध सूचक परसर्ग 'के' अथवा 'कै' विकल्प से ह्रस्व केॅ अथवा कैॅ बनते है।

(३) जिन सर्वनामों के कारक रूपों मे अन्त्य 'ह' होता है, उनके दीर्घ 'ए' को ह्रस्व बनाते है, जैसे—सम्बन्ध वाचक सर्व० जेह, जेहि से क्रमशः ह्रस्व जेॅह, जेॅहि; संकेतवाचक सर्वनाम 'एंह' से ह्रस्व ऍह।

---

[1] सर्व प्रथम ग्रिअर्सन ने इस नियम का उल्लेख किया था। देखिए–ग्रिअर्सन, मैथिली ग्रामर, पृ० ७७, ७८। हार्नले-कम्प० ग्राम० पृ० ४, ५।

[2] कम्प. ग्रा. पृ. ९, ५।

[3] सेवन ग्रामर्स खंड १, पृ. १०।

[4] प्रथम संस्करण § १. बी.।

(४) क्रिया के ऐसे रूपो मे जहाँ एस, एँ और ऐ प्रत्यय जुड़ते हैं वहाँ ये तीनों प्रत्यय क्रमशः 'एँस', एँ और एँ बनते है। यौगिक कृदन्तो मे भी ये ह्रस्व स्वर सुनाई देते है, जैसे—कहेँ केँ। पछाँही हिन्दी मे 'कहेँ केँ' के स्थान पर 'कहि के' आता है।

पूरबी हिन्दी में स्वर–भक्ति

११९. पछाँही हिन्दी मे निकटस्थ दोनो स्वरो मे सन्धि होती है, किन्तु पूरबी हिन्दी मे दोनों स्वर पृथक बने रहते है। उदाहरण निम्न प्रकार है, रामायण मे 'करइ', पछाँही हिन्दी—'करे', रामायण—भयउ, कन्नौजी—भयो, रामायण पिअ, पछाँही हिन्दी पिय, इसी प्रकार जियत के लिए जिअत। पूरबी हिन्दी मे कही-कही स्वरभक्ति के रूप मे 'य' का प्रयोग होता है। पछाँही हिन्दी मे भी स्वरभक्ति के रूप मे 'य' का प्रयोग बहुलता से होता है। पूरबी हिन्दी बोलनेवाले स्वरभक्ति के रूप मे 'य' के स्थान पर 'ह' अधिक पसन्द करते है, जैसे—प० हि० दिया (दीपक) और पूरबी हिन्दी मे दिहल; आदि।

पूरबी तथा पछाँही हिन्दी में व्यंजनों की स्थिति

१२० पछाँही हिन्दी प्राकृत के रुझान के अनुसार जहाँ मूर्द्धन्य व्यजनो का प्रयोग करती है, वहाँ पूरबी हिन्दी मे दन्त्य ध्वनियो की प्रवृत्ति पाई जाती है; उदाहरण रामायण से दिये जा रहे है—तरे=प० हि० तले, दूबरि =स्त० हि० दुबला। पूरब मे इस समय बोलचाल की भाषा मे स्त० हि० के 'घोडा' शब्द के लिए 'घोर', पश्चिमी हिन्दी मे तोडे =पू० हि० मे तोरै। पू० हि० परब=प० हि० पडना। यह उल्लेख किया जा चुका है कि पूरबी हिन्दी मे 'य' श्रुति का उपयोग होता है, किन्तु साथ ही यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि शब्दारभ मे य अथवा व का उपयोग नही किया जाता। पश्चिमी हिन्दी 'ह' के बारे में पूरबी हिन्दी से विपरीत रुझान रखती है। पछाँही हिन्दी में 'ह' की उपेक्षा की जाती है। राजपूताना और हिमालय की बोलियाँ इस सम्बन्ध मे दूसरे छोर पर है, इन बोलियो मे मध्य भाग का 'ह' लुप्त हो जाता है और अवशिष्ट स्वर मे सन्धि हो जाती है, जैसे—स्त० हि० कहना; पू० हि० कहव, मारवाडी—कैबो। पछाँह में 'चाहिये' के स्थान पर 'चैये' सुना जाता है, पू० हि० पहिल, स्त० हि० पहिला का उच्चारण राजपूताने मे 'पैलो' किया जाता है। 'साहिब' शब्द राजपूताना तथा हिमालय की बोलियो में 'साब' बनता है। स्त० हि० मिहनत, इन बोलियो मे 'मीनत', यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि दक्षिणी राजपूताने मे साधारणतया 'स' के स्थान पर 'ह' उच्चारित किया जाता है, जैसे—समझ के लिए हमझ। हिमालय की बोलियो मे 'ह' की जो स्थिति है, उसे निम्नलिखित उदाहरण स्पष्ट करते है। गढवाली मे होलो के स्थान पर ओलो=स्त० हि० होगा, पू० हि० होब। कुमाऊनी मे 'याँ' और 'काँ'=पू० हि० तथा प० हि० यहाँ, कहाँ। कु० कौणो=स्त० हि० कहना, पू० हि० कहब।

क ग्रिअर्सन ने पछाँही हिन्दी की प्रवृत्ति के विरुद्ध पूरबी हि० मे 'ल' के स्थान पर 'न' के प्रयोग की बात लिखी है।[1] इस सम्बन्ध मे मैं यह सुझाव देना चाहता हूँ कि 'ल' के स्थान पर 'न' का प्रयोग केवल पूरबी हि० की विशेषता नही है, मारवाड़ी में भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है। मारवाडी मे अर० लानत के स्थान पर नानत, लन्दन के स्थान पर नन्दन और स्त० हि० लोन के स्थान पर 'नूण' का प्रयोग

---

[1] ग्रिअर्सन : सेवन ग्रामर्स, भाग १, पृ० ८, ९; और हार्नले : कम्प० ग्राम० § १९५-२०१।

मिलता है। पूरबी हिन्दी के भविष्यकालिक प्रत्यय 'लन' के स्थान पर 'नन', जैसे देखलन के स्थान पर देखनन=स्त० हि० देखेंगे।

बोलियों में शब्द-रचना-पारस्परिक भेद, संज्ञाओं का वर्गीकरण

१२१. पूरबी तथा पछाँही बोलियों के रचना-सम्बन्धी अन्तर को स्पष्ट करने से पहले उन विविध रूपो का उल्लेख करना आवश्यक है, जिनके कारण हिन्दी सज्ञाओं और विशेषणो का निर्माण होता है। इन रूपों को 'लघु' और 'दृढ' इन दो वर्गो मे विभक्त किया जा सकता है। 'लघु' मे निर्बल रूप भी सम्मिलित है। इसी प्रकार 'दृढ' में लम्बे तथा अतिरिक्त रूपो का समावेश भी होता है।[1] शब्द के सक्षिप्ततम रूप को 'निर्बल' कहते है, इस प्रकार के शब्दो के अन्त मे या तो ह्रस्व स्वर आता है, या अनुच्चारित व्यंजन। दृढ शब्द वे कहलाते है, जिनके अन्त मे दीर्घ स्वर आते है, चाहे इन दीर्घ स्वरो का उच्चारण होता हो या न होता हो। निर्बल रूप के साथ सामान्यतया 'या' अथवा 'वा' प्रत्यय जोड़ते है। अतिरिक्त रूप वह है, जहाँ अन्तिम प्रत्यय को दुहराते है। उदाहरण निम्न प्रकार हैं : निर्बल रूप—घोड़, दृढ रूप—घोड़ा, दीर्घ रूप—घोड़वा, अतिरिक्त रूप—घोंड़ौवा अथवा अवधी मे घोंडौना। पूरबी हिन्दी हो चाहे पछाँही हिन्दी प्रत्येक रूप या तो दीर्घ बनता है या अतिरिक्त; अन्तर इतना ही है कि अतिरिक्त रूप ग्राम्य माना जाता है और दीर्घ भी उच्च हिन्दी मे कम प्रयुक्त होता है। जहाँ कही दीर्घ रूप का प्रयोग होता भी है तो वहाँ या तो हीनता का बोध होता है, या स्नेह का, जैसे बेटी से बेटिया। दीर्घ अथवा अतिरिक्त रूप बनाने से पहले अन्त्य अथवा उपान्त्य दीर्घ स्वर को ह्रस्व बनाते है, जैसे—गुलाब से गुलबवा, बात से बतिया। कम-से-कम ब्रज मे कही-कही अन्त्य दीर्घ स्वर यथावत् बना रहता है। ब्रज मे पोटरी से पुरिआ ही नही दीर्घ रूप टट्टू से टट्टूआ भी बनता है।

१२२. संज्ञा तथा विशेषण के इन रूपो मे पछाँही हिन्दी दृढ़ रूप को और पूरबी हिन्दी निर्बल रूप को अधिक पसंद करती है।

उदाहरण—प० हि० घोडा=पू० हि० घोड़ अथवा घोर; प० हि० नारी=पू० हि० नारि, प० हिं० बडा, बडो अथवा बडौ=पू० हि० बड या बर। पूरबी हिन्दी मे जहाँ कही दृढ रूप का प्रयोग किया जाता है, अन्त्य 'ओ' अथवा 'औ' के स्थान पर 'आ' पसन्द करते है। दीर्घ रूपो के सम्बन्ध मे जहाँ पछाँही हिन्दी या (ऐ) अथवा वा (औ) (वा और औ का प्रयोग अधिक पसन्द किया जाता है) वहाँ पूरबी हिन्दी में उपर्युक्त नियम के अनुसार 'वा' और 'औ' का प्रयोग होता है, किन्तु अन्त्य 'ई' अथवा 'इ' के पश्चात् 'वा' 'या' दोनो मे किसी एक का प्रयोग किया जा सकता है; जैसे पू० हिं० मे नारि शब्द से नारिया अथवा नारीवा; जब कि प० हिं० मे 'नारिया' रूप पसन्द किया जाता है। प० हिं० में सर्वनाम के दृढ रूप मे अन्त्य 'ओ' पसन्द किया जाता है, जब कि पू० हि० मे 'ए' का प्रयोग होता है। जैसे—प० हि० जो=पू० हि० जे। सर्वनाम के लम्बे रूपों का प्रयोग पछाँह तक सीमित है फिर भी ब्रज 'को'=प० हि० कौन का प्रयोग सामान्य रूप से पूरबी हिन्दी मे भी होता है। 'कौन' के अनुकरण पर पूरब मे सम्बन्धवाची सर्वनाम 'जौन' तथा अन्योन्य सम्बन्धवाचक 'तौन' का प्रयोग भी होता है, जब कि 'जौन' तथा 'तौन' का प्रयोग पछाँह मे बहुत ही कम है।

---

[1] ग्रिअर्सन : सेवन ग्रामर्स, भाग १, पृ–८, ९ और हार्नले–कम्प० ग्राम० § १९५–२०१. ।

बोलियों में रूप-साधन सम्बन्धी अन्तर

१२३. रूप-साधन मे पू० हिं० और प० हि० का अन्तर इस प्रकार है—व्यजनान्त शब्दो के साथ परसर्ग जोड़ते समय पछाँह में कोई अन्तर नही होता, जब कि पूरब मे व्यंजनान्त संज्ञाएँ ऍकारान्त अथवा अकारान्त बनती है। क्रिया के सामान्य रूप मे 'ल' बदलता है 'ला' में। जैसे पछाँही हिन्दी मे घर शब्द विकारी एकवचन मे भी 'घर' ही बना रहता है, जब कि पूरबी हिन्दी मे घर शब्द विकारी एकवचन मे बनता है—घर० अथवा घरेँ, इसी प्रकार दोहल=प० हि० देना का विकारी रूप दिहला। पूरब और पछाँह दोनो स्थानो पर परसर्ग सहित विकारी रूप समान है, अन्तर केवल एक परसर्ग मे पाया जाता है, वह है कर्त्ताकारक का परसर्ग 'ने'। पूरबी हिन्दी मे इस परसर्ग का प्रयोग कही दिखाई नही देता।

क. ग्रियर्सन ने पूरबी और पछाँही हिन्दी का एक दूसरा अन्तर भी दिखाया है—"पछाँही हिन्दी मे कारक की अभिव्यक्ति परसर्ग की सहायता से होती है। पूरबी हिन्दी की कुछ बोलियो मे आज भी करण और अधिकरण कारक को परसर्ग से व्यक्त नही करते, सस्कृत की भाँति इन बोलियो मे मूल शब्द मे विकार के द्वारा इन कारकों का भाव उत्पन्न किया जाता है।" ग्रिअर्सन ने पाद-टिप्पणी मे अपने कथन का स्पष्टीकरण किया है—"हिन्दी से सम्बन्धित कुछ बोलियों मे अधिकरण कारक के लिए अन्तिम स्वर को 'ए' बनाते है। इस प्रकार का विकार ग्राम्य माना जाता है।" मै इस सम्बन्ध मे इतना ही कहना चाहता हूँ कि इस प्रकार की विकृति अधिकरण कारक मे ही नही करण कारक मे भी देखी जाती है। इस प्रकार के विकारी रूप मे मारवाड़ी और पूरबी हिन्दी मे पूरी समानता है।

पू० हिं० और प० हिं० के क्रिया रूप

१२४ पछाँही हिन्दी और पूरबी हिन्दी के क्रियारूप भी भिन्न है। पूरबी हिन्दी मे पुराने विकारी रूप बहुत अशों मे सुरक्षित है। उदाहरण के लिए काल सम्बन्धी परिवर्तनो को लीजिये। पश्चिमी हिन्दी मे तीन कालो के रूप ही विकार द्वारा सधते है जबकि पूरबी हिन्दी मे इन तीन कालो के अतिरिक्त अपूर्ण वर्त्तमान, अनिश्चित पूर्ण और संभावित अपूर्ण भूत इन तीन कालो मे भी विकारी रूप विद्यमान है। पूरबी बोलियो के इन अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन रूपो पर विचार करते समय मैथिली को प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसमे प्राकृत के पुराने रूप सुरक्षित है, उदाहरण के लिए सभावित अपूर्ण भूत के सभी रूप पछाँही हिन्दी मे लुप्त हो चुके है, किन्तु पूरबी हिन्दी उन्हे बनाये हुए है, जैसे—मैथिली मे प्रथम तथा तृतीय पुरुष के एकवचन मे 'देखितहुँ', 'देखितथि' रूप बनते है, जबकि प० हि० मे दोनो पुरुषो के लिए केवल 'देखता' का प्रयोग होता है। अनेक सार्वनामिक रूपो के अतिरिक्त क्रियापद मे प्रयुक्त होने वाले प्राकृत के 'क' प्रत्यय के कारण इस बात को और स्पष्ट किया जा सकता है। प्राकृत के इस 'क' प्रत्यय ने हिन्दी के आधुनिक तद्भव रूपो को अत्यधिक प्रभावित किया है। राजपूताना के कुछ ग्राम्य प्रयोगो के अतिरिक्त यह 'क' पछाँही हिन्दी के किसी शब्द मे इस समय विद्यमान नही है। क्रिया के रूपो की जो सूची दी गई है, वह इस कथन को पुष्ट करती है।

१२५ प्रत्येक काल पर पृथक्-पृथक् विचार करने से ज्ञात होता है कि पश्चिमी हिन्दी मे 'ह' (मार० 'स'), 'ग' और 'ल' (नेपा० 'न') से व्यक्त होने वाले तीन प्रकार के भविष्यकाल है। पूरबी हिन्दी मे भविष्यकाल के सभी रूप 'व' (ब) से बनते है। बहुत कम स्थानो पर 'व' के अतिरिक्त अन्य प्रत्यय से बनने वाले रूपो का प्रयोग होता है। पछाँही हिन्दी से सम्बन्धित बोलियो मे पूर्णता बोधक कृदन्त और उसके रूप आ, ओ अथवा औ से बनते है, जब कि पूरबी हिन्दी मे इसी उद्देश्य से अन्त मे 'ल' ज़ोड़ा जाता है। पूरब

की बोलियो मे भोजपुरी, मागधी और मैथिली की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इनमे कृदन्त का वर्तमान-कालिक रूप 'ल' से व्यक्त होता है। पूरबी और पछाँही दोनो प्रकार की हिन्दी मे कृदन्त के साथ सहायक क्रिया जोडी जाती है और वचन, लिंग आदि का प्रभाव केवल सहायक क्रिया पर पड़ता है, किन्तु पूरबी हिन्दी की अनेक बोलियाँ इस नियम के विरुद्ध है। उनमे वर्तमान और पूर्णभूत बनाते समय सहायक क्रियाएँ कृदन्त के विकारी रूप के साथ जुड़ती है और लिंग-वचन आदि का प्रभाव सहायक क्रिया पर न पड़कर कृदन्त पर पडता है। इन दोनों कालों मे कृदन्त के रूप चलते है और सहायक क्रिया ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। पछाँही हिन्दी और पूरबी हिन्दी के क्रिया-रूपो का अन्तर आगे दी गई सूची से समझा जा सकता है। यहाँ केवल विशेष और उल्लेखनीय भेदों से परिचय कराया गया है।

बोलियों में रचना सम्बन्धी अन्तर

१२६. पद-रचना की दृष्टि से पूरबी और पछाँही हिन्दी का मुख्य अन्तर सकर्मक क्रिया के पूर्णता-सूचक कालो मे देखा जा सकता है। पछाँही हिन्दी की सभी बोलियों मे पूर्णतासूचक काल के लिए कर्मवाच्य रूप से काम लिया जाता है। इस रचना मे कर्त्ताकारक का प्रयोग खास ढंग से होता है। पछाँही हिन्दी के इस कर्मवाच्य रूप और कर्त्ताकारक के विशेष प्रयोग से पूरबी हिन्दी सर्वथा अपरिचित है।

१२७. पछाँही और पूरबी हिन्दी की एक बोली दूसरी बोली से किस बात मे भिन्न है, इसका उल्लेख आगे चल कर किया जाएगा। फिर भी यहाँ कुछ सामान्य ढग की बातो का उल्लेख किया जा रहा है।

ब्रजभाषा की विशेषताएँ

१२८. स्तरीय हिन्दी के बहुत से शब्द आकारान्त है। इस 'आ' का सम्बन्ध प्रा० 'ओ', सं० 'अक' से है। उच्च हिन्दी मे जो विशेषण और क्रियापद आकारान्त प्रयुक्त होते है, ब्रज मे वे सब औकारान्त बनते है, किन्तु संज्ञा आकारान्त ही बनी रहती है। क्रिया मे साधारणतया और संज्ञा मे कही-कही अन्त्य 'ए' 'ऐ' मे परिवर्त्तित होता है। उच्च हिन्दी की अपेक्षा ब्रजभाषा मे अनुस्वार का प्रयोग अधिक होता है। ब्रज मे धातु का ह्रस्व स्वर प्राय: दीर्घ बनता है; जैसे—रखना के लिए राखनौ, चलना के लिए 'चालनौ।' यह प्रवृत्ति संज्ञा मे भी पाई जाती है, जैसे सच के स्थान पर साँच। कन्नौजी और ब्रजभाषा मे बहुत कम अन्तर है। ब्रज के अन्त्य 'औ' के स्थान पर कन्नौजी मे प्राकृत का 'ओ' उच्चारित होता है। कन्नौजी मे अन्त्य 'ए' ज्यों-का-त्यों बना रहता है और अनुस्वार का प्रयोग बिना किसी रोक-टोक के किया जाता है।

राजपूताना की बोलियाँ

१२९. मारवाड़ी तथा मेरवाडी दोनो बोलियाँ कन्नौजी से इस बात मे साम्य रखती है कि इनके विशेषणो मे भी स्तरीय हिन्दी के अन्त्य 'आ' के स्थान पर 'ओ' का प्रयोग होता है। मारवाड़ी तथा मेरवाड़ी का अन्तर यह है कि इनकी संज्ञाएँ भी ओकारान्त बनती है; जैसे घोड़ा के लिए घोड़ो। इन दोनों बोलियो मे ब्रजभाषा की भाँति शब्द का मध्यवर्ती ह्रस्व स्वर दीर्घ बनता है, जैसे—'लगना' के स्थान पर 'लागणो'; मट्टी के लिए माटी आदि। क्रियापद के लिंग-वचन आदि के परिवर्तन से पहले अनुच्चारित वर्ण मे 'अ' के स्थान पर सामान्यतया 'इ' का प्रयोग किया जाता है। अब तक मुझे इस परिवर्तन का कोई उदाहरण नही मिला है, वैसे इस परिवर्तन का परिचय § १२०. मे दी गई 'ऐ' की सन्धि से मिलता है। वहाँ निस्सन्देह 'ऐ', अ+इ है। कही-कही तो अनुगामी स्वरों के मध्य 'य' अथवा 'व' का आगम होता है; जैसे 'कहावो' (कहाना)

के स्थान पर 'कवाबो'; 'साहिब' के लिए 'सायब', आदि। मारवाड़ी मे सामान्यतया 'स' परिवर्त्तित होता है 'ह' मे; जैसे—प० हिं० के 'समझ' के लिए 'हमझ'; 'साहिब' के लिए 'हाब'। गगा के मैदानो मे बोली जानेवाली बोलियों के सर्वथा विपरीत राजपूताने की बोलियो मे दन्त्य नासिक्य 'न' के स्थान पर मूर्द्धन्य नासिक्य 'ण' बहुत पसन्द किया जाता है। जैसा प० हि० के 'अपना' और 'होना' के लिए मारवाडी मे 'अपणो' और 'होणो'। राजपूताने की बोलियों की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार है; जैसे—मार० तगत=अर० तख्त मार० बाछा=फा० बादशाह।

हिमालय की बोलियाँ

१३०. कुमाउनी, गढ़वाली और नेपाली के सम्बन्ध में मेरा विचार है कि इन तीनों मे या तो लिखित साहित्य बिल्कुल नही है या बहुत थोडा है। इन बोलियों के उदाहरण अधिक मात्रा मे उपलब्ध नहीं है। जो उदाहरण मिले हैं, उनके आधार पर कहा जा सकता है कि इन तीनों का सम्बन्ध केवल गंगा-घाटी की बोलियो से ही नहीं है, अपितु राजपूताना की बोलियो से भी इनकी घनिष्ठता है। नेपाली की विशेषता यह है कि यद्यपि उसमे पछाँही बोलियों के समान कर्त्ताकारक का प्रयोग होता है, किन्तु पूर्णतासूचक कालो मे क्रिया, पूरबी हिन्दी की तरह 'कर्म' के लिंग, वचन आदि ग्रहण करती है। इस तरह नेपाली की स्थिति पूरबी और पछाँही बोलियों के बीच मे पड़ती है। हिमालय की इन बोलियों और राजपूताना की बोलियो के साम्य को प्रदर्शित करने के लिए इस बात का उल्लेख मुख्य रूप से किया जा सकता है कि इन सब में दन्त्य नासिक्य (न) के स्थान पर मूर्द्धन्य नासिक्य (ण) का प्रयोग होता है, जैसे—गढ़० अपणो=प० हि० अपना; गढ० बणायो=प० हिं० बनाया। क्रिया के सामान्य रूपो पर विचार कीजिये—गढ० रोणो=प० हिं० रोना। राजपूताना और हिमालय की बोलियो मे सामान्य रूप से 'ह' का लोप—कुमा० कौणो=मार० कैबों=प० हिं० कहना। इन उदाहरणो मे स्वरो की सन्धि इस बात को प्रकट करती है कि मारवाड़ी में 'इ' के स्थान पर 'उ' का प्रचलन है। राजपूताना और हिमालय की बोलियो मे 'स' रूपान्तरित होता है 'ह' में; जैसे—गढ० हाखिल=प० हि० साखिला। 'च' परिवर्त्तित होता है 'स' मे; जैसे—गढ० निस्सो=प० हि० नीचे। इन बोलियों की अनेक सज्ञाएँ और विशेषण उकारान्त अथवा ऊकारान्त है। यह अन्त्य 'उ' अथवा 'ऊ' प्राकृत के अन्त्य 'ओ' का अवशिष्ट भाग है, जो प० हि० मे अनुच्चारित अन्त्य 'अकार' मे परिवर्त्तित होकर लुप्त हो गया है। आगे दी गई रूपावली से यह बात ज्ञात हो जाएगी कि पछाँही हिन्दी की अन्य बोलियों के समान राजपूताना की बोलियों से भी हिमालय की बोलियाँ इस बात मे भिन्न है कि इनका रुझान संकुचन की ओर है। क्रिया के रूपों मे संकुचन की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। ऊपर बताया जा चुका है कि नेपाली कुछ बातों मे पूरबी बोलियो से साम्य रखती है, अत. उसकी स्थिति मध्यवर्ती भाषा के समान है। राजपूताना की बोलियो के समान नेपाली मे 'ह' का लोप नही होता। नेपाली में राजपूताना की बोलियों के विरुद्ध 'ड' के स्थान पर 'र' और 'ण' के स्थान पर 'न' पसन्द किया जाता है; जैसे—पकरनु=प० हि० पकड़ना, सज्ञा का सामान्य रूप बनाते समय सर्वत्र मारवाड़ी के अन्त्य 'णो' के स्थान पर 'नु' का प्रयोग मिलता है।

रामायण की बोली

१३१ पूरबी बोलियों मे पुरानी बैसवाडी मुख्य रूप से उल्लेखनीय है। तुलसीदास ने पुरानी बैसवाड़ी मे ही अपनी रामायण लिखी है। रामायण को जो साहित्यिक और धार्मिक महत्त्व मिला है, उसके

कारण पुरानी बैसवाडी को अत्यधिक गौरव प्राप्त है। ध्यान देने की बात यह है कि तुलसीदासजी ने रूपावली के सम्बन्ध मे स्वतत्रता से काम लिया है, उन्होने हिन्दी से सम्बन्धित विभिन्न बोलियो से ही नही, प्राकृत और संस्कृत के रूप भी ग्रहण किये है। छात्र को मूल बैसवाड़ी के रूपो तथा इन बाहरी प्रभावों को ठीक तरह समझ लेना चाहिए। पूर्ण भूत के लिए ब्रजभाषा में 'यौ' और कन्नोजी मे 'ओ' का प्रयोग होता है, रामायण में ये दोनों रूप मिलते है। इसी प्रकार भोजपुरी मे पूर्ण भूत 'ल' के योग से व्यक्त होता है। रामायण मे 'ल' वाला रूप भी प्रयुक्त हुआ है। वास्तविकता यह है कि पुरानी बैसवाडी में भूतकालिक रूप न तो 'यौ' अथवा 'ओ' के योग से बनता था और न 'ल' के योग से।

क. पूरबी हिन्दी से सम्बन्धित जिन विशेषताओं का उल्लेख ऊपर किया गया है, उन सब का प्रयोग रामायण में भी हुआ है। इन विशेषताओं के सम्बन्ध में दुबारा लिखना आवश्यक नही है। यहाँ केवल लिपि-सम्बन्धी विशेषताओं का उल्लेख करना पर्याप्त होगा। रामायण मे 'ई' के स्थान पर 'इय' का प्रयोग मिलता है; जैसे जीव के लिए जियव। कुछ शब्दों मे कही आव, कही आउ और कही औ लिखा जाता है। इस विकल्प के सम्बन्ध मे नियम नही बनाया जा सकता, जैसे—रावरे, राउरे और रौरे; इन तीनों रूपो का प्रयोग आदरवाची सर्वनाम के रूप में होता है। कुछ स्थलों पर 'अय' के स्थान पर 'ऐ' लिखा मिलता है, जैसे—'अयन' के लिए 'ऐन'। अनुबन्धों और प्रत्ययों से पहले 'ए' के स्थान पर प्रायः 'अ' अथवा 'इ' का प्रयोग मिलता है; जैसे—प० हि० के 'बालक' के लिए 'बारेक', 'भयउ' के लिए 'भयेउ', 'कहहु' के लिए 'कहेहु' आदि। कविता में इस प्रकार के 'ए' का प्रयोग सामान्य रूप से मिलता है, अन्तर इतना ही है कि यह 'ए' एकमात्रिक (ह्रस्व) है। अर्द्ध स्वर 'य' तथा 'व' क्रमशः 'इ' तथा 'उ' मे रूपान्तरित होते है और दोनो का पार्थक्य बना रहता है; जैसे—द्वारे के लिए 'दुआरे' आदि। प० हि० के अनेक अकारान्त शब्द रामायण में उकारान्त प्रयुक्त हुए है, ऐसे स्थलो पर 'अन्त्य' 'उ' प्राय दीर्घ बनता है, जैसे—सरु, सिरु, मुहु प० हि० में क्रमशः सर, सिर और मुँह है।

स्मरणीय—क. ऊपर जिस अन्त्य 'उ' का उल्लेख किया गया है, वह प्राकृत के कर्त्तकारक एक वचन के अन्त्य 'ओ' का अवशिष्ट अंश है। यह परिवर्त्तन भाषा की उस स्थिति को सूचित करता है, जब कि वह वर्त्तमान रूप की ओर अग्रसर हो रही थी। इसीलिए अन्त्य 'उ' अधिक समय तक सुरक्षित नही रहा। वह अधिक समय तक लिखा भी नही गया। इस प्रकार के सभी शब्दों का अन्त्य 'अ' अनुच्चारित रह गया।

ख. रामायण मे प्रयुक्त शब्दो की ध्वनि सम्बन्धी एक विशेषता यह भी है कि उनमे साधारणतया स्पर्श महाप्राण व्यंजन के स्थान पर सरल महाप्राण 'ह' का प्रयोग हुआ है;[1] जैसे—लाभ के स्थान पर लाह, क्रोध के स्थान पर कोह, नाथ के स्थान पर नाह। महाप्राण व्यंजनो का यह रूपान्तर सभी बोलियों मे मिलता है, किन्तु रामायण मे यह परिवर्तन बहुत सामान्य है।

ग रामायण में प्राकृत का निरर्थक प्रत्यय 'क' प्रचुरता से प्रयुक्त हुआ है। 'क' प्रत्यय का अधिक प्रयोग आधुनिक मैथिली मे भी मिलता है।[2]

इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित उदाहरणों पर ध्यान दीजिये : संज्ञा—दारा, मुट्ठी और नौ के लिए क्रमशः दारिका, मुठिका और नौका।

---

[1] देखिए § ९९.।

[2] देखिए § १२४. और मैथिली के कृदन्त रूपों की सूची।

सख्या—चारिक (चार), पचासक (पचास)।

सर्वनाम—कितिक, कुछुक, बहुतक,[1] कबहुँक।

१३२. आधुनिक पूरबी बोलियों के सम्बन्ध मे यहाँ अधिक लिखने की आवश्यकता नही। केवल एक बात का उल्लेख करना चाहता हूँ कि उत्तरी मैथिली ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत करती है, जो पछाँही हिन्दी की कुछ बोलियो—राजपूताना की बोलियो—से पूर्ण सादृश्य रखते है।

---

[1] इन उदाहरणों में 'क' प्रत्यय न होकर 'एक' का अवशिष्ट भाग है। 'क' का तात्पर्य है—लगभग। चरिक = चार + एक, पचासक = पचास + एक, कितिक = कितने + एक, कुछुक = कुछ + एक, बहुतक = बहुत + एक।—अनुवादक

पाँचवाँ अध्याय

संज्ञा

लिंग

१३३. हिन्दी की संज्ञा लिग, वचन तथा कारक से प्रभावित होती है। सबसे पहले लिग पर विचार किया जाता है। हिन्दी मे दो लिग है—पुल्लिग और स्त्रीलिग। सस्कृत का नपुसक लिंग मराठी मे विद्यमान है, किन्तु हिन्दी और हिन्दी के निकट की भाषा पंजाबी मे वह पूरी तरह लुप्त हो चुका है। नपुसक लिंग के अभाव मे हिन्दी की अनेक सज्ञाओ के लिग-निर्धारण मे सन्देह बना रहता है, केवल व्यवहार से ही उनका लिंग जाना जा सकता है।

संस्कृत की लिंग-व्यवस्था और हिन्दी

१३४ हिन्दी मे प्रयुक्त होने वाले संस्कृत शब्दो के लिग के सम्बन्ध मे सामान्य नियम यह है कि पुल्लिगवाची शब्द हिन्दी मे पुल्लिग बना रहता है और स्त्रीलिगवाची शब्द स्त्रीलिग मे प्रयुक्त होता है। नपुसक लिगवाची शब्द सामान्यतया पुल्लिगवाची शब्द की भाँति उपयोग मे लाये जाते है; किन्तु इस नियम के अपवादो की भी कमी नही है।

क असख्य अपवादो मे से कुछ का उल्लेख यहाँ किया जाता है। ये शब्द सस्कृत मे पुल्लिगवाची है, किन्तु हिन्दी मे स्त्रीलिंगवाची बन गये—आग <स० अग्नि, आँच <स० अर्चि, घाम <सं० घर्म; झकार <सं० झकृति, बास <सं० वास। यदि कुछ लोगो की व्युत्पत्ति ठीक मान ली जाय तो एक उदाहरण और बढाया जा सकता है—सं० वायु >हि० बयार, (मेरे विचार मे 'बयार' की यह व्युत्पत्ति उचित नही है)।

ख. सस्कृत के कुछ शब्द पुल्लिगवाची है, किन्तु उनके तद्भव रूप स्त्रीलिंगी बन गये है, यद्यपि ये तद्भव रूप कही-कही पुल्लिगी शब्द की भाँति भी प्रयुक्त हुए है, जैसे—जय अथवा जै; तान, दाह; और संस्कृत के 'दाह' शब्द से बननेवाला 'डाह' शब्द। आँख, वस्तु और गात हिन्दी के ये तीनो शब्द क्रमश. सं० अक्षि, वस्तु और गात्र से उद्भूत है। संस्कृत मे ये तीनो शब्द नपुसकलिगी है, किन्तु हिन्दी मे स्त्रीलिगवाची। इसी प्रकार सस्कृत का 'देह' तथा 'पुस्तक' शब्द हिन्दी मे स्त्रीलिगवाची है। संस्कृत का मृत्यु शब्द हिन्दी मे केवल स्त्रीलिगवाची है। 'मृत्यु' से उद्भूत 'मीच' शब्द भी स्त्रीलिगी है।

ग. इस प्रकार के लिग परिवर्तन का एक कारण तो यह है कि कुछ शब्दो पर उर्दू के पर्यायवाची शब्दो का प्रभाव पडा है, जैसे—हिन्दी के बयार, बस्तु और पुस्तक शब्द के उर्दू पर्याय हवा, चीज़ और किताब लीजिये।[1]

---

[1] वास्तविकता यह है कि हिन्दी के सम्पर्क के कारण उर्दू में प्रयुक्त अरबी-फारसी शब्दों का लिंग-बदला है। हवा, चीज और किताब मूल भाषा मे स्त्रीलिंगवाची नहीं है। हिन्दी में अधिकांश शब्दों के लिंग परिवर्तन का कारण प्राकृत तथा अपभ्रंश में खोजा जा सकता है। उदाहरण

[शेष अगले पृष्ठ पर]

संस्कृत में 'देह' शब्द पुल्लिगवाची है, किन्तु हिन्दी में उसका प्रयोग मुख्यतः स्त्रीलिग मे होता है, कहीं कही पुल्लिग मे भी प्रयोग मिलता है, इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि उर्दू मे 'बदन' शब्द पुल्लिगवाची है। कुछ तद्भव शब्दों के सम्बन्ध मे यह बात कही जा सकती है कि वे सस्कृत से सीधे नहीं लिये गये; प्राकृत से होते हुए हिन्दी तक पहुँचे। प्राकृत के लिग को हिन्दी ने स्वीकार कर लिया।

१३५ ऊपर जो तथ्य प्रस्तुत किये गये है, उनसे ज्ञात होता है कि लिग के सम्बन्ध मे हिन्दी के बहुत से शब्द व्यवस्थित नही है, फिर भी कुछ ऐसे व्यावहारिक नियम है, जिनके आधार पर लिंग पहचानने में सहायता मिलती है। इन नियमो का आधार या तो शब्दार्थ है, या अन्तिम वर्ण।

अर्थ की दृष्टि से पुंल्लिगत्व

१३६ निम्नलिखित शब्द अर्थ के कारण पुल्लिगवाची है—

(१) पुरुषो के लिए प्रयुक्त होने वाले नाम।

(२) लम्बा, स्थूल, खुरदरा और मजबूत सामान। एक ही प्रकार की वस्तुओ मे लघु तथा सुन्दर वस्तु से विपरीत दिखाई देने वाला सामान, जैसे—गाडी-गाडा, रस्सी-रस्सा, पोथी-पोथा।

(३) धातु, धातुमल, मूल्यवान रत्न, और पत्थरो के नाम सामान्यतया पुल्लिगवाची होते है; जैसे—सोना, रूपा, जस्ता, हीरा, कंकर।

इस नियम के अपवाद मे निम्नलिखित शब्द प्रस्तुत किये जा सकते हैं। ये शब्द स्त्रीलिगवाची है—चाँदी, मृत्तिका अथवा मक्खी (मक्षिका) से समासित शब्द, जैसे—पाडु मृत्तिका, सोनामक्खी।

(४) वर्ष, मास, वार और ज्योतिष के करण; जैसे—सवत्, बुध (वार)।

(५) समुद्र और पर्वतों से सम्बन्धित सभी जातिवाचक और व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ; जैसे—पहाड़, सागर, गिरि, विन्ध्य।

(६) ग्रहों के नाम, जैसे—सूर्य (उच्चारण-सूरज) रवि, शुक्र, केतु। बहुत से भाववाची शब्द, जैसे—प्रेम, क्रोध, लोभ।

इस नियम के अपवाद भी मिलते है। सस्कृत के आकारान्त तत्सम भाववाची शब्द स्त्रीलिग माने जाते है; जैसे—इच्छा। हिन्दी के ये तीन शब्द भी—अडैच (शत्रुता), क्रुध और कभी-कभी कोध भी।

८. कर्तृत्व और सम्बन्ध को सूचित करने वाले सभी शब्द।

इस नियम के अन्तर्गत इन बातो का समावेश भी किया जा सकता है—

क. संस्कृत की तृप्रत्ययान्त सज्ञाएँ, हिन्दी मे इस प्रकार की सज्ञाएँ तान्त होती है; जैसे—दाता; योद्धा (युध्=तृ, 'ता' सन्धि नियम के अनुसार 'धा' मे परिवर्तित हुआ)।

ख. संस्कृत की इन् प्रत्ययान्त संज्ञाएँ, ये संज्ञाएँ हिन्दी में दीर्घ ईकारान्त रहती है; जैसे—कारी (करनेवाला) और कारी से मिलकर बनने वाले समासित शब्द।

ग. संस्कृत के क प्रत्ययान्त शब्द, जैसे—उपदेशक, रचक (निर्माता)।

—के लिए पुस्तक से बनने वाला शब्द पोथी स्त्रीलिंगवाची बना और जब तत्सम शब्द का प्रयोग होने लगा तो उसका लिंग प्राकृत या अपभ्रंश का बना रहा। फ़ारसी-अरबी के साहचार्य के कारण हिन्दी के बहुत ही कम शब्दों के लिंग में परिवर्तन हुआ है।—अनुवादक

१. पंडित लोग ग्यारह करण मानते है, सात करण चर और चार करण स्थिर है।

घ. संस्कृत के न (ण) प्रत्ययान्त शब्द, विशेष रूप से ऐसे समासित शब्द जिनके अन्त में 'न' आता है; जैसे—हरण, दु खभंजन, पतितपावन।

ङ ऐसे समासित शब्द जिनका अन्तिम पद सस्कृत धातु हो, जैसे—रजनीचर, धरनीधर, पापहर।

च. ऐसे तद्भव शब्द, जिनके अन्त मे 'या' (इया, इय्या, ऐया) आता है, जैसे—गवैया, लेवैया, ढँढोरिया।

१३७. निम्नलिखित शब्द स्त्रीलिगवाची है—

(१) स्त्रियों के नाम।

(२) तिथियो के नाम; जैसें—दूज, अष्टमी।

(३) प्राय. सभी नदियो के नाम, जैसे गगा, लवना (तिरहुत की एक नदी)।

अपवाद—इस नियम के विपरीत निम्नलिखित नदियाँ पुल्लिगवाची है—सोन, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र।

१३८. पेड़-पौधों और फूलो के लिग के सम्बन्ध मे कोई निश्चित नियम नही है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि अधिकाश पेड़ो, विशेषकर लम्बे पेडो के नाम पुल्लिगवाची है। कमल के विभिन्न नाम पुल्लिगवाची हैं, जैसे—जलज, सरोरुह, कमल आदि; किन्तु अधिकाश पौधो और फलो के नाम स्त्रीलिगवाची है।[1] इस प्रकार के शब्द प्रयोग मे कम आते है, अत. यहाँ अधिक विस्तार मे जाना आवश्यक नही है।

१३९. ऊपर जो उदाहरण दिये गये है, उनमे से प्रत्येक का कारण निरूपित करना संभव नही है। कही-कही जातिवाचक सज्ञा इतनी प्रभावशाली होती है कि उसके अन्तर्गत आनेवाली सभी व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ लिग के सम्बन्ध मे स्वतंत्र नही रहती। जातिवाचक सज्ञा का लिंग व्यक्तिवाचक संज्ञा को धारण करना पड़ता है। जैसे—जातिवाचक पर्वत, परबत या गिरि शब्द पुल्लिगवाची है अतः पर्वत से सम्बन्धित प्रायः सभी व्यक्तिवाचक सज्ञाएँ पुल्लिग है। इसी तरह से 'धातु' शब्द पुल्लिगवाची है अतः विभिन्न धातुएँ, पाषाण, रत्न आदि के नाम सामान्यतया पुल्लिगवाची है– इस नियम के अपवादस्वरूप चाँदी, मृत्तिका तथा मक्षिका शब्द से बनने वाले सभी समासित शब्द स्त्रीलिगवाची है। यह हो सकता है कि इस प्रकार के शब्द आकारान्त या ईकारान्त होने के कारण पुल्लिगवाची नही माने गये। दिन, दिवस जैसे शब्द पुल्लिगवाची है, अत. वारो के नाम भी पुल्लिगी माने गये, किन्तु तिथि शब्द के अनुकरण पर मास के दिनो के नाम स्त्रीलिगवाची है। ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उससे हटकर भी हमे इस प्रकार की लिंग-व्यवस्था का कारण जनता की भावना मे खोजना चाहिए, जो निर्जीव पदार्थो का लिंग-निर्धारण करती है। जनता इस भावना के आधार पर स्वाभाविक रूप से किसी निर्जीव वस्तु को पुल्लिग और किसी को स्त्रीलिंग मानती है।

अन्त्याक्षर के आधार पर बनी हुई पुल्लिगवाची संज्ञाएँ

१४०. संज्ञा के अन्त्याक्षर के आधार पर लिंग-निर्धारण के नियम इस प्रकार है—

अन्त्याक्षर के कारण निम्नलिखित संज्ञाएँ पुल्लिगवाची है—

(१) ऐसे अधिकाश शब्द जिनके अन्त मे 'आ' अथवा 'आँ' रहता है; जैसे—घड़ा, डेरा, झोला, धूआँ।

अपवाद—

लघुता अथवा अल्पता सूचक 'इया' प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिगवाची होते है; जैसे—थलिया, फुडिया।

---

[1] **वास्तव में अधिकांश फल और पौधे पुल्लिगवाची हैं।—अनुवादक**

निम्नलिखित शब्द भी स्त्रीलिंगवाची है—गूआ (=सुपारी), झोंगा (=जलवृश्चिक), टोआ (=टोहने की क्रिया), बिरियाँ (बारी), ठाँ (स्थान)।

विशेष—(१) आकारान्त तद्भव शब्दों के पुल्लिग होने की बात एक अन्य कारण से जानी जा सकती है। इन शब्दों के साथ विभक्ति जोड़ते समय अन्त्य 'आ' को 'ए' मे परिवर्तित करते है।

(२) अधिकांश उकारान्त अथवा ऊकारान्त शब्दों का अन्त्य 'उ' अथवा 'ऊ' परिवर्तित होता है संयुक्त स्वर 'ओ' अथवा 'औ' मे। अनुनासिक या निरनुनासिक 'व' भी ओ अथवा औ बनता है; जैसे—मधु, कलेऊ, मह्यौ (छाछ), भाव, गाँव।

अपवादों की सूची—

क उकारान्त स्त्रीलिंगवाची शब्द

अचक्षु
आयु
इक्षु
चंचु
जंबु[1]
तर्कु (चर्खे का ताक)
बस्तु
मृत्यु
रेणु

ख. ऊकारान्त स्त्रीलिंगवाची शब्द

आफू (अफीम)
उलू अथवा ऊलू (एक प्रकार की घास)
गू
चमाऊ (र)
चमू
चम्पू
जागू (जगह)
जूँ
दारू
बालू अथवा बारू
भू
रेहू पेहू
लावू (घिया)
लू
सारू (सारिका)

आँसू शब्द का प्रयोग दोनों लिंगों मे होता है। 'शकुन्तला' मे आँसू शब्द का प्रयोग सर्वत्र पुल्लिग में हुआ है।

ग. ओकारान्त अथवा औंकारान्त स्त्रीलिंगवाची शब्द—

छाओं (छाया)
जोखों (जोखिम)
बाओ (वायु)

---

[1] विकल्प से पुल्लिगवाची भी।

भों (भौह)
सलनों (श्रावणी पूर्णिमा)
सरसों
सों (सौ)

घ. स्त्रीलिंगवाची औकारान्त अथवा औकारात शब्द

गौं (अवसर)
दौ (आग, लुक)
पौ
लौ

ङ. निम्नलिखित वान्त शब्द स्त्रीलिगवाँची है—

नेव (नीव)
टेव
राव चाव (हर्ष)

च. निम्न शब्द उभयलिंगी है—

खराऊँ[1] (खड़ाऊँ)
ठाओं (स्थान)
सहाऊ (सहायता)

स्मरणीय—ओकारान्त, औकारान्त और वान्त शब्दो को अलग-अलग ढंग से लिखते है; जैसे—बाओ या बाव; भाव अथवा भाऊ; सो अथवा सूं; भों अथवा भौ आदि। वैकल्पिक रूप का लिंग पर प्रभाव नही पड़ता। इसीलिए प्रत्येक सूची मे इनका उल्लेख करना आवश्यक नही है।

(३) ऐसी सभी भाववाचक संज्ञाएँ पुल्लिग मानी जाती हैं, जिनके अन्त मे 'य' अथवा 'त्व' प्रत्यय रहता है; जैसे—'ईश्वर' से 'ईश्वरत्व'; 'राजन्' से 'राज्य'।

क. इस प्रकार के सभी भाववाचक शब्द तत्सम है। इनके तद्भव रूप का लिंग नही बदलता। तद्भव रूप तत्सम शब्द का लिंग ग्रहण करता है। जैसे—'राज्य' शब्द से 'राज' (पुल्लिग)।

(४) पन, पना, पा, आउ या आव और आन प्रत्यययुक्त सभी शब्द पुल्लिगवाची है; जैसे—लड़कपन, बुढापा, मूरखपन, ऊँचाव या ऊँचाउ, लम्बान।

स्मरणीय—(१) इनमे से कुछ शब्द स्त्रीलिंगी बनते हैं; जैसे—लुच्चीपनी।

२. पन, पा आदि उपर्युक्त प्रत्यय संस्कृत के त्व अथवा त्वन् प्रत्यय से उद्भूत है। संस्कृत मे 'त्व' प्रत्ययान्त शब्द नपुसकलिंगी माने जाते है, इसीलिए उकारान्त तत्सम शब्दो की भाँति ये शब्द भी हिन्दी मे पुल्लिगवाची मान लिये गये।

(५) 'ज' प्रत्ययान्त सभी शब्द पुल्लिगवाची है; जैसे—जल से जलज; उष्मन् से उष्मज (तद्भव—उखमज, इस शब्द का वास्तविक अर्थ है गर्मी अथवा आग से जला हुआ; किन्तु इसका प्रयोग मच्छर, खटमल तथा इसी वर्ग के अन्य प्राणियों के लिए होता है)।

---

[1] पूरब में 'खराऊँ' शब्द नित्य स्त्रीलिंगवाची है।

(६) नकारान्त (णकारान्त भी) शब्द उभयलिगी है, किन्तु इस प्रकार के अधिकाश शब्द पुल्लिगवाची है। पुल्लिगवाची नान्त शब्दो में निम्नलिखित शब्दो का उल्लेख विशेष रूप से होता है—

क. कर्तृत्ववाचक शब्द; जैसे—दहन, गजन आदि।

ख अधिकाश तत्सम शब्द (इस प्रकार के शब्द संस्कृत मे नपुसकलिगी है); जैसे—अयन, दान, दर्पण, ज्ञान।

ग सस्कृत के वे भाववाचक शब्द जिनके अन्त मे संयुक्ताक्षर होता है और सयुक्ताक्षर का अन्तिम वर्ण 'न' रहता है। जैसे—यत्न (साधारणतया 'यत्न' शब्द का उच्चारण 'जतन' होता है; कही-कही 'जतन' लिखा भी जाता है); स्वप्न।

घ इस सूची मे बहुत-सी क्रियार्थक सज्ञाएँ जुड़नी चाहिएँ; जैसे—चलन, करन, मारन।

अपवाद

निम्नलिखित नान्त शब्द स्त्रीलिगवाची है—

अदवान
आनबान
आवन
उत्रन (कपड़ा)
ऊन
कान (लज्जा)
कैंन
खिरकिन (खिड़की)
घिन
छान (छप्पर)
धरन
धुन
फूटन
बकायन (एक पेड़)
रहन
रैन
सुटकुन
सूंघन
सूथन
सैंन
हुन (हुन्न)

यहाँ ऐसे स्त्रीलिगवाची शब्दों की गणना होनी चाहिए जिनके अन्त मे 'इन' आता है। ऐसे शब्दों को §§ १४५, क; १४७, १४८ और १५० मे देखा जा सकता है।

अन्त्याक्षर के आधार पर स्त्रीलिंगवाची शब्द

१४१. निम्नलिखित अन्त्याक्षर वाले शब्द स्त्रीलिंगवाची है—

(१) आकारान्त संस्कृत तत्सम शब्द। इस वर्ग के शब्दों मे निम्नलिखित शब्दो का उल्लेख विशेष रूप से होना चाहिए—

(क) धातु (मूल रूप मे अथवा गुणसन्धि के कारण परिवर्त्तित रूप मे) से बननेवाले ऐसे शब्द जिनके अन्त मे आ, ना या णा आता है, जैसे—√इच्छ् से इच्छा; √तृष् से तृष्णा, √लिख् से लेखा।

(ख) सज्ञाओ अथवा विशेषणो के साथ 'ता' प्रत्यय जोड कर बनने वाले भाववाचक शब्द, जैसे—नम्र से नम्रता, प्रभु से प्रभुता। इस प्रकार के उदाहरणो की कमी नही है।

अपवाद—

संस्कृत के कुछ अन् प्रत्ययान्त शब्द हिन्दी मे आकारान्त होते हुए भी § १३४. के अनुसार पुल्लिंग माने जाते है, उदाहरण—अणिमा, मूर्द्धा, यक्ष्मा, श्लेष्मा।

उल्लेखनीय—

(१) किन्तु 'अन्' प्रत्ययान्त निम्नलिखित शब्द हिन्दी मे स्त्रीलिगवाची है—
प्लीहा, महिमा। 'तारा' शब्द उभयलिगी है।

(२) बहुत से इकारान्त शब्द हिन्दी मे स्त्रीलिगवाची माने जाते है।

(क) इस नियम के अन्तर्गत उन भाववाचक शब्दो का उल्लेख विशेष रूप से होना चाहिए, जिनके अन्त मे 'ति' अथवा 'नि' आता है। जैसे—मति, सगति, ग्लानि। इस नियम के अन्तर्गत ऐसे भाववाचक शब्द भी आते है, जिनमे सन्धि के कारण 'ति' का परिवर्तन 'धि' मे होता है, जैसे—वृद्धि, बुद्धि।

अपवाद—

निम्नलिखित इकारान्त शब्द पुल्लिगी है—
(क) प्राणियो के नाम, जैसे—कपि, कृमि।
(ख) 'धि' से बननेवाले समासित शब्द; जैसे—परिधि, निधि, वारिधि।
ग. निम्नलिखित शब्दो का उल्लेख इस सूची मे होता है—

अतिथि
अक्षि
अग्नि
अणि (शस्त्र)
अर्चि
असि
अस्थि
आराति
दधि
ध्वनि
पाणि
मणि
यष्टि
राशि
वह्नि
वारि अथवा बारि
ब्रीहि
शालि
सचि (घनिष्ठता)
सुरभि

(३) अधिकांश ईकारान्त शब्द स्त्रीलिगवाची है, जैसे—रोटी, बिन्ती, गाली।

अपवाद

१३६. (८) ख मे उदाहृत शब्दो के अतिरिक्त निम्नलिखित शब्द भी—

अमी
अरी (शत्रु)
घी
जी
दही
पानी
मोती
हाथी

स्मरणीय—जो उदाहरण ऊपर अपवाद के रूप में दिये गये है, वे तत्सम रूप मे या तो पुल्लिगवाची है या नपुंसकलिंगवाची। जैसे—अमी और घी सस्कृत के अमृत तथा घृत शब्द से उद्भूत हैं; अरी<सं० अरि (अरिक) और दही<स० दधि (दधिकम्), जी<स० जीव, पानी<स० पानीय, मोती<स० मौक्तिक, ये सभी शब्द §१३४ के अन्तर्गत आते है।

(४) हट, वट और वत प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंगवाची होते हैं, जैसे—चनचनाहट, बुलाहट, बनावट, सगावत।

स्मरणीय—(१) ध्यान देने योग्य बात यह है कि हट, वट और वत प्रत्ययान्त सभी संज्ञाएँ आकारान्त धातुओ से बनी है। इस प्रकार की अधिकाश संज्ञाएँ या तो अनुकरणात्मक है, या अनुप्रासात्मक।

(२) कुछ बोलियो मे हट, वट और वत के 'ह' और 'व' का लोप होता है।

(३) हट, वट और वत प्रत्यय का उद्भव सस्कृत की स्त्रीलिंगवाची सज्ञा 'वृत्ति' से हुआ है, इसीलिए हिन्दी मे इन प्रत्ययो से युक्त सभी सज्ञाएँ स्त्रीलिगी है।

उल्लेखनीय—इन नियमो का प्रयोग करते समय यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि पीछे आनेवाले नियम पहले के नियमो को सीमित करते है। चाहे यथास्थान अपवादो का उल्लेख किया गया हो या न किया गया हो। जैसे—धोबी पुल्लिगवाची शब्द है, यह शब्द §१३८ (८) ख. के अन्तर्गत आता है, इसीलिए इसका उल्लेख §१४१ (३) के अपवादो मे नही किया गया।

अरबी-फारसी शब्दों की लिंग-व्यवस्था

१४२. उपर्युक्त नियम मुख्य रूप से सस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दो पर लागू होते है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, हिन्दी के बहुत से शब्द या तो सीधे संस्कृत से लिये गये हैं या तद्भव होकर आये हैं। हिन्दी मे फारसी-अरबी के जो शब्द प्रचलित है, उनके लिग-निर्धारण मे निम्नलिखित बातें सहायक सिद्ध हो सकती हैं—

(१) अरबी-फारसी के ऐसे अधिकांश शब्द हिन्दी मे पुल्लिगवाची माने जाते है, जिनके अन्त मे 'आ' अथवा 'ह' (अरबी की 'हे') आते हैं, जैसे—दरया, ख़ान·, गुनाह।

अपवाद

निम्नलिखित बहु प्रचलित शब्द पुल्लिगवाची न होकर स्त्रीलिगवाची है—ख़ता, तरह, दवा, दुआ, दुनिया, बला, रूह, सलाह, सुबह।

(४) अरबी के ऐसे शब्द सामान्यतया स्त्रीलिंगवाची होते है, जिनका प्रथम अक्षर 'त' और उपान्त्य अक्षर 'ई' हो; जैसे—तदबीर, तज्वीज; तावीज; किन्तु हिन्दी मे इस प्रकार के शब्द कम प्रयुक्त होते है और वे भी धुर पछाँह मे।

१४३ अधिकाश समासित शब्दो का लिंग अन्तिम शब्द के आधार पर निर्धारित होता है; जैसे—ईश्वरेच्छा, गोपीनाथ।

अपवाद—

किन्तु निम्नलिखित शब्द-युग्मो में प्रथम शब्द के आधार पर लिंग का निर्धारण होता है; चालचलन, चालव्यवहार।

१४४. नेपाली मे प्रकाशित बाइबिल मे ऐसे बहुत से शब्द पुल्लिगवाची है, जो उपर्युक्त नियमो के अनुसार स्त्रीलिंगवाची होने चाहिएँ। उल्लेखनीय बात यह है कि बहुत से आकारान्त तत्सम शब्दो को भी पुल्लिग की तरह प्रयोग करते है; जैसे—कृपा, आज्ञा, इच्छा आदि; इस प्रकार के शब्द उपर्युक्त नियमो के अनुसार स्त्रीलिंगवाची है, किन्तु नेपाली मे इनका प्रयोग पुल्लिगी शब्द की भाँति होता है।

स्त्रीलिंगवाची संज्ञाओं की रचना

१४५. आकारान्त पुल्लिगवाची शब्दो के अन्त्य 'आ'[1] को 'ई'बना कर साधारणतया स्त्रीलिंगवाची बनाया जाता है। जैसे—घोड़ा-घोडी, बेटा-बेटी।

क. व्यवसाय तथा उद्योग सूचक कुछ शब्दो को स्त्रीलिंगी बनाने के लिए 'इन' जोड़ते है; जैसे—कसेरा से कसेरिन; दूल्हा से दुल्हिन किन्तु ठठेरा से स्त्री० लि० ठठेरी, भटियारा से भटियारी या भटियारिन।

§ १४६. बहुत-से हलन्त (जिनके अन्तिम अकार का उच्चारण नही होता) शब्द, चाहे वे तत्सम हों या तद्भव; ईकारान्त बनाये जाते है। ऐसे शब्द स्त्रीलिंगी होते है। उदाहरण इस प्रकार है—(तत्सम) देव से देवी, पुत्र से पुत्री, ब्राह्मण से ब्राह्मणी। (तद्भव रूप) भेड़ से भेड़ी, बन्दर से बन्दरी; इत्यादि।

§ १४७. ईकारान्त पुल्लिगवाची शब्दो के अन्त मे 'न' जुड़ने से स्त्रीलिंगवाची संज्ञा बनती है। ऐसे शब्दों मे अन्त्य 'ई' ह्रस्व 'इ' मे परिवर्तित होती है; जैसे—धोबी से धोबिन; माली से मालिन, नाई से नाइन। इस प्रकार की संज्ञाएँ तद्भव होती हैं और उनसे व्यवसाय अथवा वृत्ति का पता चलता है।

§ १४८. कुछ व्यंजनात पुल्लिगवाची शब्द है, जिनसे उद्योग-व्यवसाय का बोध होता है। इन शब्दो के अन्त मे 'इन' अथवा 'नी' जोड़ कर स्त्रीलिंगी रूप बनाये जाते है; जैसे—सोनार से सुनारिन अथवा सुनारनी; कलार से कलारिन अथवा कलारनी।

(क) कुछ प्राणीवाचक तत्सम और तद्भव शब्द है, जिनके अन्त में 'न' अथवा 'नी' जोड़ते है; जैसे—सिंह से सिंहनी, बाघ (सं० व्याघ्र) से बाघनी।

---

[1] **§ १४० (१) स्मरणीय।**
अन्त्य 'आ' सर्वत्र 'अकः' का परिचायक।

उल्लेखनीय—कुछ शब्दो मे प्रत्यय के संयोग से पहले अन्त्य 'अ' 'इ' में परिवर्तित होता है; जैसे पु० नाग से स्त्री० लि० नागिन; पु० पति से स० पत्नी।

(ख) कर्तृत्वबोधक तत्सम ईकारान्त शब्दो मे अन्त्य स्वर को ह्रस्व बना कर 'नी' जोडते है; जैसे—'हितकारी' से 'हितकारिणी'।

§ १४९. पत्नीत्व की सूचना के लिए संस्कृत शब्दों के साथ 'आनी' जोडते है; जैसे—पंडित से पंडितानी; इन्द्र से इन्द्राणी। यह 'आनी' प्रत्यय कुछ फारसी शब्दो के साथ भी जुड सकता है; विशेष उदाहरण है—मिहतर से मिहतरानी।

§ १५०. परिवार, जाति आदि की सूचना देने वाले कुछ विकृत तद्भव शब्दो का स्त्रीलिंगरूप 'आइन' प्रत्यय जोड़कर बनाते है; इस प्रकार के रूपो में अन्तिम स्वर का लोप होता है; जैसे—दुबे से स्त्री० दुबाइन, पाडे स्त्री० पँडाइन।

§ १५१. अन्य भाषाओ की भाँति हिन्दी मे भी बहुत से ऐसे स्त्रीलिग वाची शब्द है, जो सम्बन्धित पुल्लिगवाची शब्द से भिन्न है, पु० सॉड-स्त्री० गाओं (गाय), पुँ० पुरुष-स्त्री० स्त्री, पु० भाई-स्त्री० बहिन; पु० पिता-स्त्री० माता।

§ १५२. कर्तृत्व सूचक जिन शब्दो के अन्त मे 'या' आता है, उनके दोनो लिंगो के रूप समान रहते है; जैसे—गवैया और लपतिया (=असत्यवादी)।

स्त्रीलिंगवाची प्रत्ययों का उद्भव

१५३. तत्सम शब्दों के साथ जुडनेवाला 'ई' प्रत्यय संस्कृत मे भी विद्यमान है, किन्तु तद्भव शब्दो के साथ जुड़नेवाला 'आ' प्रत्यय' संस्कृत के स्त्रीलिंगी प्रत्यय 'इका' से सम्भूत है, जैसे—स० घोटक के लिए घोड़ा। संस्कृत घोटिका से हिं० घोड़ी (घोड़ी) शब्द का उद्भव सीधे 'घोटिका' शब्द से न होकर 'घोडिया' शब्द से हुआ है। स्त्रीलिंगवाची तद्भव प्रत्यय न, इन और नी स० पुल्लिग प्रत्यय इन् तथा सं० स्त्री० प्रत्यय 'इनी' से उद्भूत है, जैसे—पु० माली (स० मालिन्, कर्ता का० एक व० माली) के लिए स० मालिनी, हिं० मालिन, धोबी का स्त्री० धोबिन यह शब्द 'धाविनी' के लिए प्रयुक्त होता है। स० स्वर्णकारिन्, बहुप्रचलित शब्द स्वर्णकार का स्त्रीलिं० रूप सुनारिन।

संज्ञाओं की विभक्ति

§ १५४. वचन और कारक के कारण सज्ञा मे जो परिवर्तन होता है, उसे विभक्ति कहते है।

(क) अन्य भारतीय आर्यभाषाओ की भाँति हिन्दी मे भी द्विवचन नही है। एकवचन और बहुवचन है। पितृ शब्द के द्विवचन का रूप 'पितरौ' तथा इस प्रकार के अन्य रूप हिन्दी मे प्रचलित नही है। यदि एक-दो स्थानो पर ऐसे शब्दो का प्रयोग हुआ भी है तो उन्हें अन्य भाषा से सम्बन्धित मानना पड़ेगा।

विभक्ति लगाने की विधि

§ १५५. वचन और कारक को सूचित करने के लिए मूल शब्द मे बहुत थोड़ा परिवर्तन किया जाता है और नियमानुसार कुछ परसर्ग जोड़े जाते है। व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाये तो हिन्दी मे केवल एक विभक्ति है, जिसके कारण कुछ विशेष शब्दों मे भिन्नता आती है और रूप चलते है। इसका उल्लेख नीचे

किया जा रहा है। स्त हिन्दी की सज्ञाओं मे होने वाले विभक्ति सम्बन्धी परिवर्त्तन चार नियमो से अनुशासित है।

विभक्ति के कारण एकवचन का परिवर्तन

१. अधिकांश आकारान्त पुल्लिंगी तद्भव शब्दो के विकारी एक वचन मे अन्त्य 'आ' परिवर्तित होता है 'ए' मे और अन्त्य 'आँ' परिवर्तित होता है एँ अथवा 'ए' मे। आकारान्त संज्ञाओ के विकारी एकवचन का रूप इस प्रकार है—कुत्ता—विकारी ए० व० कुत्ते; घोड़ा—विकारी ए०व० घोडे; ताँबा—विकारी ए०व० ताँबे; बनियाँ—विकारी ए०व० बनिये अथवा वनिये; धूआँ —बिकारी ए०व० धूएँ। कारको मे विकारहीन सज्ञाएँ इस प्रकार है—माली, घर, लड़की, माता, बिरियाँ, रात आदि शब्दो के विकारी अथवा अविकारी एकवचन मे कोई अन्तर नही होता। इसी प्रकार पुलि० तत्सम शब्द राजा, आत्मा, पिता आदि का एकवचन सभी कारको मे अविकारी रहता है।

क फारसी के कुछ ऐसे शब्द हिन्दी मे प्रयुक्त होते है, जिनके अन्त मे अस्फुट 'ह' आता है, विकारी एक वचन मे आकारान्त शब्दो की भाँति उनके अन्त्य अ: अथवा अह् परिवर्त्तित होते है 'ए' मे; जैसे—बन्द: से विकारी एक वचन बन्दे।

अपवाद

१. निम्नलिखित पुं० तद्भव सज्ञाएँ सभी कारको के एकवचन मे अपरिवर्तित रहती है—काका, चाचा, लाला आदि ऐसे शब्द जो पारिवारिक सम्बन्ध को सूचित करते है।

२. पुल्लिगवाची विकारी सज्ञाएँ भी सम्बोधन कारक के एकवचन मे विकल्प से अविकारी रहती है; जैसे—बेटा अथवा बेटी।

स्मरणीय—संस्कृत से अपरिचित छात्रो के लिए ऐसे नियमो का समझना कठिन है, जिनके आधार पर पुल्लिग तद्भव आकारान्त शब्दों को स० के तत्सम आकारान्त शब्दो से पृथक किया जा सके। फिर भी निम्नलिखित बातों से सहायता मिल सकती है—

१. ऐसे सभी कर्तृत्वबोधक अथवा सम्बन्धसूचक शब्द जिनके अन्त में 'ता' आता है और

२. सभी आकारान्त भाववाचक सज्ञाएँ, इस प्रकार की संज्ञाओं मे स्त्रीलिंगवाची बहुत से ऐसे शब्द भी सम्मिलित है, जिनके अन्त मे 'ता' आता है तथा इस वर्ग मे ऐसे शब्दो का समावेश भी होता है जिनके अन्त मे 'ना' (णा) आता है। ये संज्ञाएँ तत्सम रूप मे सस्कृत से ली गई हैं। ये संज्ञाएँ समस्त कारकों मे अविकृत रहती है। इन सज्ञाओ के विपरीत स्थूल पदार्थवाची आकारान्त तद्भव संज्ञाएँ है, जिनका 'आ' कारकों के एक वचन मे 'ए' बनता है।

उदाहरण निम्न प्रकार है—दाता, कोमलता, इच्छा, तृष्णा ऐसी तत्सम सज्ञाएँ है जो एकवचन मे सर्वत्र अविकृत रहती है; किन्तु स्थूल पदार्थवाची आकारान्त तद्भव संज्ञाएँ—घडा, लड़का, घुटना आदि—कारको के एकवचन मे विकार ग्रहण करती है।

पुल्लिग शब्दों के कर्त्ता कारक के बहुवचन का विकार

२. उपर्युक्त नियम के अनुसार जिन पुल्लिगवाची शब्दो के विकारी एक वचन मे 'आ' परिवर्त्तित होता है 'ए' मे तथा 'आँ' परिवर्त्तित होता है 'एँ' मे, उनके अविकारी बहुवचन मे भी यही परिवर्तन होता

है। अन्य प्रकार की आकारान्त पु० सज्ञाओ के अविकारी एकवचन तथा बहुवचन मे कोई **विकार नहीं** होता, जैसे—लडका शब्द के विभक्तिसहित एक वचन का रूप लडके और विभक्तिरहित बहुवचन का रूप भी 'लडके'; 'गढा' शब्द के सविभक्ति ए० व० के रूप मे 'गढे' और अविकारी कर्त्ताकारक के बहुवचन का रूप भी गढे; 'रुपिया' शब्द के सविभक्ति एक व० का रूप 'रुपिये' और विभक्ति रहित कर्त्ताकारक के बहुवचन का रूप भी 'रुपिये', इन उदाहरणो के विपरीत घर, योद्धा और भाई ऐसी संज्ञाएँ है जो सविभक्ति एकवचन तथा विभक्तिरहित कर्त्ताकारक के बहुवचन मे अपरिवर्त्तित रहती है।

स्मरणीय—बहुत-सी ऐसी सज्ञाएँ है जिनके प्रत्ययो अथवा विकारों के आधार पर वचन का पता नही चल सकता, किन्तु व्यवहार करते समय इस अपरिचय के कारण कोई सन्देह उत्पन्न नही होता। इस प्रकार के कुछ शब्द अँग्रेजी मे भी है—जैसे—डीर (Dear), शीप (Sheep) आदि, इन शब्दों मे वचन का ज्ञान प्रसग के आधार पर होता है।

स्त्रीलिंगवाची शब्द-कर्त्ताकारक-बहुवचन का परिवर्तन

३. इकारान्त तथा ईकारान्त स्त्रीलिगवाची शब्दो की अन्त्य इ अथवा ई अविकारी कर्त्ताकारक के बहुवचन में 'आँ' बनती है। अन्य प्रकार के स्त्रीलिग शब्दो का अन्त्य स्वर अविकारी कर्त्ताकारक के बहुवचन मे 'एँ' बनता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि अकारान्त स्त्रीलिगवाची शब्दो मे विकल्प से तथा इकारान्त और ईकारान्त स्त्रीलिगवाची शब्दो मे सर्वत्र 'य' का आगम होता है। 'य' से पहले का दीर्घ स्वर नियमित रूप से ह्रस्व बनता है। पहले वर्ग का उदाहरण—लड़की (ए० व०, विभक्तिरहित या विभक्तिसहित)—लड़कियाँ (ब० व० विभक्तिरहित, कर्त्ता का०), विधि (विभक्तिरहित या विभक्तिसहित एकवचन)—विधियाँ (विभक्तिरहित, कर्त्ता कारक, ब० व०)। दूसरे वर्ग के उदाहरण—बात, भेड, वस्तु (विभक्तिरहित या विभक्तिसहित एक वचन)—बातें, भेडे, वस्तुएँ (विभक्तिरहित, कर्त्ताकारक, बहुवचन)।

(क.) 'ऋचा' और 'घटा' शब्द के विभक्तिरहित, कर्त्ता का०, बहुवचन मे ऋचाएँ, घटाएँ अथवा ऋचाये, घटाये। 'जोरू' शब्द का विभक्तिरहित कर्त्ताका० बहु० 'जोरुआँ'।

(ख) 'य' के स्थान पर 'व' श्रुति का प्रयोग बहुत कम स्थलो पर हुआ है, 'व' का आगम मुख्य रूप से ओष्ठ्य स्वर के पश्चात होता है, जैसे—भौ से भौवे। 'ई' के पश्चात 'व' का आगम बहुत कम हुआ है; जैसे—पुतली का बहुव० पुतलियाँ।

(ग) जिन शब्दों के अन्त मे 'इया' है, ऐसे शब्दों मे भी विशेष रूप से अल्पार्थक अथवा तुच्छार्थक शब्दो का बहुवचन केवल अनुस्वार जोड कर बनाया जाता है, जैसे—टिलिया (जवान मुर्गी)—टिलियाँ (विभक्तिरहित, कर्त्ताकारक, बहुवचन); डिबिया—डिबियाँ (विभक्तिरहित, कर्त्ताकारक, ब० व०); चिड़िया-चिड़ियाँ (विभक्तिरहित, कर्त्ताकारक, बहुव०)। इसी प्रकार विधवा शब्द का कर्त्ताकारक, विभक्तिरहित बहुवचन-विधवाँ।

(घ) गाय अथवा गाव और रोम दोनो शब्दों मे बहुवचन सूचक प्रत्यय जुड़ने से पहले अन्तिम अक्षर लुप्त हो जाता है—गौएँ अथवा गाएँ; रोएँ।

स्मरणीय—१. स्त्रीलिगवाची शब्दो के विभक्तिरहित कर्त्ताकारक के बहुवचन मे कही-कही परिवर्तन नहीं होता। इस प्रकार की प्रवृत्ति इन दिनो बढ रही है।

स्मरणीय—समुदायवाची संख्यावाचक शब्द चाहे संज्ञा के रूप मे प्रयुक्त हो, चाहे विशेषण के रूप में, उनके विभक्तिरहित कर्त्ताकारक बहुवचन मे अन्त्य स्वर को 'ओं' मे परिवर्त्तित करते है। जब उनसे

समूह का बोध नही होता तो एक वचन और बहुवचन मे कोई अन्तर नही पड़ता। विमक्तिरहित, समूहवाची बहुवचन कर्त्ताकारक—तीनो, चारों घोड़े। अन्य स्थिति मे चार घोडे; चार आए। सामूहिक अर्थ में प्रयुक्त 'दो' का विभक्तिरहित कर्त्ताकारक के बहुवचन मे 'दोनो'।

विभक्तिसहित बहुवचन की विकृति

४ पुल्लिग और स्त्रीलिग दोनो प्रकार के शब्द विभक्तियुक्त बहुवचन मे ओकारान्त बनते है, केवल सम्बोधन मे 'ओं' का अनुस्वार लुप्त रहता है।

जिन संज्ञाओ को विभक्तियुक्त एकवचन मे एकारान्त बनाया जाता है, उनमे विभक्तियुक्त बहुवचन का यह 'ओं' अन्तिम स्वर का स्थान लेता है। इकारान्त तथा ईकारान्त सज्ञाओ मे 'ओं' के योग से पहले दीर्घ स्वर ह्रस्व होता है और फिर स्वरो की पृथकता के लिए 'य' श्रुति का उपयोग किया जाता है। ऊकारान्त सज्ञाओ मे 'ओं' के योग से पहले 'अन्त्य' 'ऊ' को ह्रस्व बनाते है। अन्य प्रकार के सभी शब्दो मे विभक्तिरहित एकवचन के रूप के साथ 'ओं' जोडते है। इस परिवर्तन के उदाहरण निम्न प्रकार है—

जिन सज्ञाओं का अन्त्य स्वर एकवचन मे 'ए' बनता है, उनके उदाहरण—

घोडा—विभक्तियुक्त ब० व० घोड़ो, सम्बोधन ब० व० घोडो, कुत्ता—विभक्तियुक्त ब० व० कुत्तो सम्बोधन ब० व० कुत्तो।

ईकारान्त तथा इकारान्त शब्दो का विभक्तिसहित बहुवचन—बिल्ली, विभक्तियुक्त ब० व० बिल्लियो, सम्बोधन ब० व० बिल्लियो, धोबी—विभक्तियुक्त ब० व० धोबियो, सम्बोधन ब० व० धोबियो, विधि-विभक्ति युक्त ब० व० विधियो, सम्बोधन ब० व० विधियो।

अन्य संज्ञाएँ—

पुस्तक—विभक्तियुक्त ब० व० पुस्तको, रात—विभक्तियुक्त ब० व० रातो, जोरू विभक्तियुक्त ब० व० जोरुओ, पिता—विभक्तियुक्त ब० व० पिताओ।

अनियमित बहुवचन

(क) देवता, राजा और आत्मा शब्द के विभक्तियुक्त बहुवचन मे निम्नलिखित वैकल्पिक रूप भी मिलते है—देवतो, राजो, आत्मो। इस प्रकार के वैकल्पिक रूप शुद्ध नहीं है। अच्छे लोग अपनी भाषा मे इनका प्रयोग नही करते। तत्सम शब्दों के अनुकरण पर इस प्रकार के शब्दों के विभक्तियुक्त बहुवचन मे अविभक्तिक एकवचन वाले रूप के साथ 'ओं' का योग होना चाहिए—देवताओ, राजाओ, आत्माओं।

(ख) गाय, रोम, गाँव, नाँव, दाँव, पाँव ऐसे शब्द है जिनका अन्तिम वर्ण बहुवचन के प्रत्यय के योग से पहले लुप्त होता है। गाँव, नाँव, दाँव और पाँव मे अन्तिम वर्ण के साथ अनुनासिक का भी प्राय. लोप होता है। तब इन शब्दो के बहुवचन का रूप होगा—गायों, रोओ, गावो, नावों, दाओं, पाओ।

विभक्ति के रूप

§१५६ सस्कृत मे विभक्ति लगाने की बहुत अच्छी प्रणाली विद्यमान है। इस प्रणाली के अनुसार शब्द मे ही कुछ परिवर्तन किया जाता है, किन्तु इस प्रकार की विकृति धीरे-धीरे घटती गई। यहाँ तक कि वर्तमान हिन्दी मे इस प्रकार की विकृति बहुत कम हो गई है। इन परिवर्तनों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

शब्दों के पारस्परिक सम्बन्ध को अच्छी तरह व्यक्त करने के लिए कारक सम्बन्धी परिवर्तनो के साथ कुछ शब्द जोडे जाने लगे हैं, इन शब्दों को परसर्ग कहते हैं।[1] लेटिन और संस्कृत में सज्ञा के साथ कारक का घनिष्ठ सम्बन्ध होता हे, किन्तु हिन्दी मे संज्ञा और परसर्ग का उतना घनिष्ठ सम्बन्ध नही रहता। यह होते हुए भी वैयाकरणों ने व्यावहारिक सुविधा की दृष्टि से सस्कृत के अनुकरण पर हिन्दी की विभक्तियों को आठ कारकों मे विभक्त किया है—कर्ता, (अविभक्तिक), कर्म, सम्प्रदान, सविभक्ति कर्ता कारक[2] अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण और सम्बोधन। अविभक्तिक कर्ता कारक और सम्बोधन कारक मे परसर्ग का प्रयोग नही होता। स्तरीय हिन्दी के अन्य कारको के परसर्ग निम्न प्रकार है—कर्म और सम्प्रदान मे—को; सविभक्ति कर्ता कारक—ने; अपादान—से; सम्बन्ध—का (के, की); अधिकरण—मे, पर, तक अथवा तलक। जहाँ कारक के कारण संज्ञा मे विकार होता है, सम्बन्धित परसर्ग का उपयोग उस विकृत रूप के साथ किया जाता है। जहाँ कारक के कारण सज्ञा में विकार नही होता, परसर्ग अविकृत रूप के साथ जुड़ता हे।

स्मरणीय—एकवचन और बहुवचन दोनो मे एक ही परसर्ग का उपयोग होता हे। वचन का प्रभाव परसर्ग पर नही पड़ता।

निजवाचक सर्वनाम के कर्मकारक मे 'को' के स्थान पर कही कहीं 'तईं' परसर्ग का उपयोग होता है; "अपने तईं।"

कर्म और सम्प्रदान

§१५७ कर्मकारक की रचना दो प्रकार से होती है। एक तो कर्ताकारक के विभक्तिरहित रूप को ज्यो का त्यों कर्मकारक में प्रयुक्त करते है, दूसरे सज्ञा के विभक्ति सहित रूप के साथ 'को' परसर्ग के योग से। दूसरी स्थिति का कर्मकारक सकर्मक क्रिया का विषय बन कर आये तो उसके परसर्ग 'को' का अनुवाद अंग्रेजी मे नही किया जा सकता। इस स्थिति मे 'को' केवल संज्ञा के निश्चय के लिए आता है। किसी गतिसूचक क्रिया के साथ कर्मकारक का उपयोग हुआ हो तो उसके परसर्ग 'को' को अंग्रेजी मे 'टु' (to) के द्वारा व्यक्त करते हैं। ऐसा कर्मकारक यदि समय सूचित करता है तो उसके परसर्ग को अँग्रेजी मे 'अट' (at) से प्रकट करना चाहिए। जैसे—'घर को चलो' का अँग्रेजी अनुवाद होगा—गो टु द हाउस (go to the house); 'रात को' का अनुवाद होगा—अट नाइट (at night)। 'को' परसर्ग का उपयोग सम्प्रदान कारक के परसर्ग के रूप में भी होता है; सम्प्रदान के लिए प्रयुक्त परसर्ग 'को' के लिए अंग्रेजी में सदैव 'टु' (to) आता है।

सविभक्ति कर्ताकारक

§ १५८. सविभक्ति कर्ताकारक के परसर्ग 'ने' को अंग्रेजी मे यथार्थतः 'बाइ' (by) के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है, किन्तु मुहावरेदार अंग्रेजी में इसे अनूदित करना हो तो यह उचित जान पड़ता है कि

---

[1] हिन्दी के इन परसर्गों की स्थिति अंग्रेजी के पूर्वसर्ग (प्रिपोजीशन) जैसी है। हिन्दी में इनका प्रयोग संज्ञा के पश्चात् होता है, इसीलिए इन्हें परसर्ग कहते हैं।

[2] हम जिसे कर्त्ताकारक कहते हैं, संस्कृत व्याकरण के अनुकरण पर उसे करण कारक कहा जाता हैं। वास्तविकता यह है कि हिन्दी में करण कारक साधन अथवा उपकरण को व्यक्त न कर के कर्त्ता को ही प्रकट करता है, इसीलिए यह उचित जान पड़ता है कि हम भ्रामक शब्द (करण कारक) का प्रयोग त्याग दें।

सविभक्ति कर्त्ता कारक का अनुवाद विभक्तिरहित कर्ताकारक के समान किया जाये। विभक्तिसहित कर्ताकारक और उसके परसर्ग के सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी 'क्रिया' वाले अध्याय मे दी जायगी।

अपादान कारक

§ १५९. अपादान कारक के परसर्ग 'से' को अँग्रेजी में कही फ्राम (from), कही बाइ (by) और कही विथ (with) से व्यक्त किया जाता है।

सम्बन्ध कारक

§ १६०. सम्बन्ध कारक का परसर्ग 'का' यथार्थत. विशेषणवाची अव्यय है। यह परसर्ग अँग्रेजी के बिलांगिग टु (belonging to), पर्टेनिग टु (pertainnting to) का पर्यायवाची है। वास्तविकता यह है कि इस परसर्ग 'का' के योग से सज्ञा सम्बन्धवाची विशेषण के रूप मे परिर्वात्तत होती है। इसीलिए तद्भव आकारान्त विशेषणों की भाँति यह परसर्ग—का—भी वचन तथा लिग के प्रभाव से बदलता है।

सम्बन्ध कारक के परसर्ग का परिवर्तन

§ १६१. सम्बन्ध कारक के परसर्ग 'का' के तीन रूप हैं—

१. सम्बन्ध कारक की रचना के लिए पुल्लिगवाची संज्ञा के अविकारी कर्ताकारक के एकवचन के साथ 'का' परसर्ग जोडा जाता है। इसका प्रयोग उस कर्मकारक के साथ भी होता है जो विभक्तिरहित कर्त्ताकारक के एकवचन के समान है।

२. सभी प्रकार के पुल्लिगवाची शब्दो के कर्ताकारक (विभक्तिरहित) के एकवचन को छोड़कर अन्य सभी कारकों में 'का' के स्थान पर 'के' का प्रयोग होता है।

३. 'की' का प्रयोग स्त्रीलिंगवाची सभी संज्ञाओं के पहले होता है, चाहे यह स्त्रीलिंगवाची संज्ञा एकवचन मे हो चाहे बहुवचन में।

उपर्युक्त नियमों को समझने के लिए निम्नलिखित उदाहरण देखिये—

धोबी का बेटा
माली के बेटे
बढ़ई के लड़के पर
राजा के गाँवों में
पंडितों का घर
ब्राह्मण की पोथी
राजा की आज्ञा पर
ईश्वर की बातें
पहाड़ों की चोटियों पर

विशेष—छात्रों को इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि जिस संज्ञा के साथ सम्बन्धसूचक परसर्ग 'का' जुड़ता है, उस सज्ञा के लिंग और वचन का प्रभाव इस 'का' पर नही पड़ता। अनुगामी सज्ञा के लिंग और वचन के अनुसार यह परसर्ग बदलता है।

अधिकरण कारक का परसर्ग

§ १६२. अधिकरण कारक मे कई परसर्गो का उपयोग होता है; अँग्रेजी मे 'मे' के लिए इन (in), 'पर' के लिए आन (on)। 'तक' और 'तलक' दोनो सीमा की सूचना देते है, इन्हे अँग्रेजी मे अप टु (upto), ऐज फार ऐज (as for as) से व्यक्त करते है। 'तक' के स्थान पर संस्कृत शब्द 'पर्यन्त' का उपयोग होता है; जैसे–शकुन्तला नाटक में—समुद्र पर्यन्त।

(क) उल्लेखनीय बात यह है कि कर्मकारक की तरह अधिकरण कारक भी दो प्रकार का है; एक तरह के अधिकरण कारक मे संज्ञा के दोनों वचनों मे कारकवाले विकारी रूप के साथ अधिकरण कारक का कोई परसर्ग जोड़ा जाता है। दूसरा रूप विभक्ति सम्बन्धी विकार को ग्रहण करता है, किन्तु उसके साथ अधिकरण कारक का कोई परसर्ग नहीं जुडता। एकवचन मे अपरिवर्त्तित रहनेवाली सज्ञाओ के विभक्तिरहित कर्ताकारक का एकवचन वाला रूप प्रयुक्त होता है। हम चाहे तो 'उस समय मे' कहे या चाहें तो 'उस समय' कहे, 'नगर के बीच' कहे, या 'नगर के बीच मे' कहे। अधिकरण कारक का दूसरा रूप वहाँ प्रयुक्त होता है, जहाँ शब्द ने पूरी तरह या आशिक रूप से अपना संज्ञापन छोड दिया है और वह व्यवहारतः परसर्ग अथवा क्रियाविशेषण के रूप मे प्रयुक्त हुआ है।

स्मरणीय—द्वितीय प्रकार के अधिकरण कारक मे संज्ञा का केवल विकारी रूप ही वास्तव मे अधिकरण कारक को व्यक्त करता है। यह बात तथ्य से भी स्पष्ट होती है कि सम्बन्ध कारक के परसर्ग 'का' का 'आ' और विशेषण वाची सज्ञा के अन्त्य 'आ' को 'ए' आदेश होता है। 'आ' का 'ए' मे परिवर्तन उस समय भी होता है, जब कि वह विभक्तिरहित कर्ताकारक के एकवचन मे आता है। वास्तव में हम ऐसे स्थलों पर पुराने रूपों की विकारवाली प्रणाली के कुछ चिह्न पाते है। आकारान्त तद्भव शब्दो को छोडकर अन्त्य स्वर को विकृत करने वाली प्रणाली पूर्णतया लुप्त हो गई है। इस प्रणाली के लुप्त होते ही संज्ञा विभक्तिरहित कर्त्ताकारक के रूप मे अवशिष्ट है, किन्तु इस प्रकार के शब्दों की यथार्थ स्थिति का परिचय विशेषणवाची अनुबन्ध के विकार से चल सकता है।

शब्दों से प्रकट होनेवाला बहुवचन

§ १६३. जब बहुवचन के द्वारा वर्ग अथवा समुदाय को व्यक्त करना हो तो सज्ञा के बहुवचन वाले रूप के साथ 'लोग' (स० और गढ० लोक) शब्द जोडते है। बहुवचन के कारण अन्त्य स्वर मे जो परिवर्तन होता है, वह संज्ञा मे न होकर 'लोग' शब्द मे किया जाता है। इस प्रकार परसर्ग भी सज्ञा के साथ न जुडकर 'लोग' शब्द के साथ जुडते है। केवल आकारान्त विकारशील तद्भव शब्दो का अन्त्य 'आ', 'लोग' शब्द से पहले 'ए' में परिवर्तित होता है। चाहे शब्द विकाररहित कर्ताकारक मे प्रयुक्त हुआ हो, चाहे कारक सम्बन्धी विकारी बहुवचन में, दोनों स्थितियों मे अन्त्य 'आ' 'ए' बनता है।

उदाहरण निम्न प्रकार है—राजा लोग (कर्त्ताकारक, विभक्तिरहित, बहुव०, इस प्रयोग का तात्पर्य है राजाओं का वर्ग); धोबी लोगों में, कवि लोगो मे; बनिये लोगों से।

कुछ अन्य उदाहरण—

एक वाक्याश—'दस राजा आए'; इस वाक्याश मे राजाओं का उल्लेख वर्ग के रूप मे नही हुआ है। यदि राजाओ के वर्ग को ध्यान मे रखकर बात कहनी हो तो 'राजा धनी है', इस आशय को ठीक ढंग से इस तरह कहा जाएगा—'राजा लोग धनी होते है।'

क बहुवचन के साथ 'लोग' शब्द का प्रयोग साधारणतया ऐसी संज्ञाओ के साथ होता है, जो व्यक्तियो के लिए प्रयुक्त होती है। साधारण लोग कुछ परिहास के साथ मनुष्येतर प्राणियो के लिए भी कभी कभी इस शब्द का प्रयोग करते है, जैसे—'बन्दर लोग'। इस प्रकार के उदाहरण यह सिद्ध करते है कि 'लोग' शब्द का प्रयोग केवल मनुष्यवाची सज्ञाओ के बहुवचन मे ही नही होता। इसके अपवाद साहित्य मे भी मिलते है, जैसे रामायण मे—मृग लोग सरेन हिए. ।

ख 'लोग' शब्द का प्रयोग प्राय. स्वतत्र रूप से भी होता है। ऐसे स्थलो पर हम लोग 'दे' (they) का प्रयोग 'सामान्य जनता' के लिए करते है, जैसे—लोग कहते है। इस प्रकार के उदाहरणो मे प्राय 'लोग' शब्द लुप्त हो जाता है और क्रियापद 'कहते है'—शेष रह जाता है।

स्मरणीय—'लोग' शब्द का स्त्रीलिग वाची रूप 'लुगाई' है। सज्ञाओं के बहुवचन को सूचित करने के लिए 'लोग' शब्द की भाँति 'लुगाई' का प्रयोग नही होता।

§१६४. वर्ग अथवा समूह को सूचित करने के लिए 'लोग' के अतिरिक्त 'गण' अथवा 'गन' शब्द का प्रयोग भी होता है; जैसे—देवतागण, तारागन आदि। इसी प्रकार के कुछ शब्द और भी है जो बहुवचन अथवा समूह को प्रकट करने के लिए संज्ञा के साथ जोड़े जाते है। इन शब्दो का प्रयोग गद्य और पद्य दोनो मे होता है।

वृन्द, जैसे—भूधरवृन्द; जन, जैसे—भक्त जन, निकर, जैसे—रविकार निकर; सकुल, जैसे—जतु सकुल, व्रात, जैसे—ऋषि व्रात, समूह, जैसे—पाप समूह, समाज, जैसे—सन्त समाज; बरूथ, जैसे—भट बरूथ, समुदाई, जैसे—वटु समुदाई, ठात, जैसे—कपि ठात, ओघ, जैसे—अघ ओघ। शब्द मे पक्ति का भाव प्रकट करने के लिए 'अवली' शब्द जोडते है; जैसे—रोमावली, बलाकावली। बहुवचन को सूचित करने के लिए कही-कही बहुवाचक एक शब्द के स्थान पर दो शब्दो का प्रयोग किया जाता है; जैसे—निसचर निकर बरूथ।

स्मरणीय—इस प्रकार के शब्दो का अनुवाद कही-कही असेम्बलेज (assembleag), मल्टिट्यूड (multitude) करते है। प्राय: संज्ञा के बहुवचन से भी इन शब्दो का आशय प्रकट किया जाता है। सूत्र सूचक चिह्न §१६४. मे जो बहुवाची शब्द दिये गये है वे 'लोग' शब्द के पर्यायवाची नही है। इनमे से प्रत्येक शब्द का स्वतन्त्र अर्थ है। एक शब्द दूसरे शब्द के स्थान पर प्रयुक्त नही किया जा सकता।

§१६५. वस्तु की निश्चित अथवा अनिश्चित स्थिति को प्रकट करने के लिए अँग्रेजी में सज्ञा से पहले कुछ अव्ययों (articals) का प्रयोग किया जाता है, किन्तु हिन्दी मे इन अव्ययो को सर्वत्र व्यक्त नही किया जा सकता। 'घोड़ा' कहने से 'एक घोड़ा' (a horse) का आशय भी व्यक्त होता है और 'यह घोड़ा' (the horse) का भी। इस प्रकार 'स्त्रियाँ' कहने से 'स्त्रियाँ' (women) और 'ये स्त्रियाँ' (the women) दोनों का बोध होता है। हिन्दी मे पदार्थ की अनिश्चितता सूचित करने के लिए कही-कही सख्यावाची 'एक' अथवा अनिश्चयवाची सर्वनाम 'कोई' का प्रयोग होता है, किन्तु इस 'एक' अथवा 'कोई' का अनुवाद अँग्रेजी मे नहीं किया जा सकता। किसी निश्चित पदार्थ के सम्बन्ध में दृढता से कहना अपेक्षित हो तो कही-कही सकेतवाची दूरवर्ती सर्वनाम 'वह' का प्रयोग करते है। कर्मकारक मे प्रयुक्त सज्ञा के सम्बन्ध मे निश्चय व्यक्त करना होता है तो उसके साथ प्राय परसर्ग 'को' का प्रयोग होता है; जैसे—'घोडे को' (अग्रेजी मे इसका अनुवाद होगा—(the horse)। इस प्रकार के उदाहरण से छात्र यह न समझे कि परसर्ग 'को' को अँग्रेजी मे निश्चयसूचक पूर्व-अव्यय (artical) से सर्वत्र व्यक्त किया जा सकता है।

विभक्तियों का वर्गीकरण

§१६६. उपर्युक्त नियमों के अनुसार कारक सम्बन्धी विभक्तियो को समझने मे इस बात से सुविधा होगी कि उन्हे लिंग के अनुसार दो वर्गों मे बाँटा जाये। प्रत्येक वर्ग की विभक्ति के दो भेद है।

पुल्लिगवाची शब्दों की विभक्ति : पहला भेद

§१६६. प्रथम प्रकार की विभक्ति का सम्बन्ध समस्त पुल्लिगवाची शब्दो के साथ है। इस प्रकार की विभक्ति का पहला भेद उन तद्भव शब्दो पर लागू होता है, जिनके अन्त मे 'आ' अथवा 'आँ' होता है और यह अन्त्य 'आ' 'आं' कारक सम्बन्धी विकारी रूपो मे 'ए' अथवा 'एँ' मे परिवर्तित हो जाते है। प्रथम प्रकार की विभक्ति का दूसरा भेद शेष सभी पुल्लिगवाची शब्दों पर लागू होता है। पुल्लिगवाची विभक्ति का पहला भेद निम्न रूपों में देखा जा सकता है—

विभक्तिसहित बहुवचन की स्वीकृति

आकारान्त 'घोड़ा' शब्द

	एकव०	बहुव०
विभक्तिरहित कर्त्ता का०	घोड़ा	घोड़े
कर्मकारक	घोड़ा अथवा घोड़े को	घोड़ो अथवा घोड़ो को
सम्प्रदान का	घोड़े को	घोड़ो को
विभक्तिसहित कर्त्ताकारक०	घोड़े ने	घोडो ने
अपादान का०	घोड़े से	घोड़ो से
सम्बन्ध का०	घोडे का	घोडो का
	घोडे के	घोडो के
	घोडे की	घोडो की
अधिकरण का०	घोडे मे	घोड़ो में
	घोडे पर	घोड़ो पर
	घोड़े तक	घोडो तक
	घोडे तलक	घोडो तलक
सम्बोधन का०	हे घोडे	हे घोड़ो

पुल्लिगवाची शब्द : पुल्लिगवाची विभक्ति : दूसरा भेद

२. पुल्लिगवाची शब्दों की विभक्ति का दूसरा भेद उपर्युक्त शब्दों को छोड़कर शेष सभी पुल्लिगवाची शब्दों पर लागू होता है। अन्त्याक्षर के कारण कोई अन्तर नही पडता। इस भेद का प्रतिनिधित्व 'घर' शब्द करता है। ऊपर विभक्ति के जिस भेद का उल्लेख किया गया है उसके बहुवचन और इस भेद के बहुवचन में अन्तर है। संज्ञाओं के कारण परसर्ग में कोई अन्तर नही पड़ता, अतः यहाँ सभी कारकों रूप के उदाहरण नहीं दिये गये है। यह बात पुनः स्मरण कराई जाती है कि अधिकरणकारक का द्वितीय-विभक्तिरहित कर्त्ताकारक के समान है।

घर

	एकवचन	बहुवचन
विभक्ति रहित कर्ता	घर	घरु
कर्म	घर, घर को	घर, घरो को

तत्सम आकारान्त शब्दों के रूप भी इसी प्रकार चलते है। जिन आकारान्त शब्दो के विकारी रूप मे अन्त्य 'आ' 'ए' नही बनता उनके रूप भी इसी श्रेणी मे आते है—

राजा

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता (विभक्तिरहित)	राजा	राजा
कर्म	राजा, राजा को	राजा, राजाओ को

माली

कर्ता (विभक्ति रहित)	माली	माली
कर्म	माली, माली को	माली, मालियों को

बिच्छू

कर्ता (विभक्तिरहित)	बिच्छू	बिच्छू
कर्म	बिच्छू, बिच्छू को	बिच्छू, बिच्छुओं को।

स्त्रीलिंग वाची शब्द : विभक्ति : प्रथम भेद

§१६७. (१) द्वितीय प्रकार की विभक्तियो का सम्बन्ध समस्त स्त्रीलिगवाची शब्दों मे है। द्वितीय प्रकार की विभक्ति का पहला भेद इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त और ऊकारान्त शब्दों पर लागू होता है। अन्य सभी शब्दों पर दूसरे भेद का प्रयोग किया जाता है।

प्रथम भेद के उदाहरण

पोथी

	एक वचन	बहुवचन
कर्ता (विभक्तिरहित)	पोथी	पोथियाँ
कर्म	पोथी, पोथी को	पोथियाँ, पोथियो को

सारू (सारिका)

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता (विभक्ति रहित)	सारू	सारुआँ
कर्म	सारू, सारू को	सारुआँ, सारुओ को

अन्य कारकों के रूप इसी प्रकार बनते है। सम्बन्धित कारको के परसर्ग लगाने से काम चल जाता है, इसीलिए यहां सब रूप नही दिये गये।

बनता है। बहुवचन सूचक 'न' से पहले दीर्घ स्वर ह्रस्व बनता है। कही कही अन्त्य 'इ' से पहले श्रुति के रूप मे 'य' का आगम हाता है; उदाहरण—पापी (विकारी, ब० व०) में पापिन, पापिनि, पापियन; नारी-(विकारी ब० व०) नारिन, नारियन; पेड़-(विकारी ब० व०) पेड़न; पाय-(विकारी ब० व०) पायन। कन्नौजी के विभक्ति सहित विकारी रूप स्तरीय हिन्दी के रूपों से अधिक भिन्न नहीं है। अन्तर इतना ही है कि विकारी बहुवचन मे 'न' जुड़ता है।

राजपूताना की बोलियों के विकारी रूप

§१६९. मारवाड़ी और राजपूताना की अन्य बोलियों में पक्के तद्भव रूपों के विभक्ति रहित कर्त्ता-कारक के एक वचन मे अन्त्य 'आ' के स्थान पर 'ओ' आता है। यह अन्त्य 'आ' विभक्ति सहित विकारी रूपों में 'ए' न बन कर पुनः 'आ' बनता है। इस सम्बन्ध मे राजपूताना की कोई बोली अपवाद नही मानी जा सकती। जैसे—घोड़ा के लिए विभक्तिरहित कर्ताकारक मे 'घोडो' और विभक्तिसहित विकारी रूप 'घोड़ा'। अन्य सभी शब्दो के रूप उच्च हिन्दी के समान चलते है।

क. उल्लेखनीय बात यह है कि मारवाड़ी के विभक्तिसहित कर्त्ता कारक मे अन्त्य 'आ' परिवर्त्तित होता है 'ऐ' मे और उसके साथ किसी परसर्ग का उपयोग नही होता; जैसे—घोडै (=स्त० हि० घोड़े ने)। अन्य संज्ञाओं का विभक्तिसहित कर्त्ताकारक का रूप विभक्तिरहित कर्त्ताकारक के समान है और उनके साथ कभी परसर्ग नही जुडता। इसी प्रकार मारवाड़ी की समस्त संज्ञाओ के अधिकरण कारक का एकवचन अन्त्य स्वर को 'ऐ' मे परिवर्त्तित करके भी बनता है। इस रूप के साथ भी परसर्ग नही जुड़ता, जैसे—घरै (=स्त० हि० घर मे); घोडै (=स्त० हि० घोडे पर)।

ख. बीम्स के कथनानुसार चन्द बरदाई ने विभक्तिसहित कर्त्ता कारक के विकारी रूप के लिए अन्त्य स्वर को 'ए' बनाया है। यह 'ए' कही-कही 'अय' बनता है। गुजराती और मराठी दोनों मे इस प्रकार का सविभक्ति करण कारक का रूप विद्यमान है, अन्तर इतना ही है कि मराठी मे अन्त्य स्वर 'ए' रहता है और गुजराती में 'एँ'।

ग मारवाड़ी के समस्त पुल्लिगवाची तद्भव शब्द बहुवचन मे आकारान्त बनते हैं। जैसे—'घोड़ो' शब्द का विभक्ति रहित कर्त्ता कारक का बहुवचन 'घोड़ा' बनता है। मारवाडी के पुल्लिगवाची अन्य शब्द विभक्तिरहित बहुवचन मे अपरिवर्तित रहते है। मारवाड़ी के स्त्रीलिंगवाची सभी शब्दो के विभक्ति-रहित कर्त्ताकारक के बहुवचन मे अन्त्य स्वर को 'आँ' बनाते है। यदि अन्त्य स्वर 'ई' हो तो 'आँ' के पूर्व 'य' का आगम होता है; जैसे घोड़ी-घोड्याँ (विभक्ति रहित कर्त्ताकारक, बहुवचन); बात-बाताँ (विभक्ति-रहित कर्त्ता का०, ब० व०), जिन शब्दों के अन्त मे 'आँ' जुडता है, यदि उनमे अन्तिम स्वर दीर्घ 'ई' हो तो वह सर्वत्र 'य' मे परिवर्त्तित होती है; जैसे—माल्याँ रो=प० हि० मालियो का। मारवाड़ी के ये विकारी रूप राजपूताना की सभी बोलियों में मिलते हैं।

हिमालय की बोलियाँ : विकारी रूप

§१७०. गढवाली और कुमाउनी की संज्ञाओं के विकारी एकवचन तथा राजपूताना की बोलियों के विकारी एक वचन में बहुत कुछ साम्य है। जहाँ तक मैं जानता हूँ अन्तर इतना ही है कि गढ़वाली और

---

१. बीम्स—कम्प० ग्रा० खंड २, पृ० २१२।

कुमाउनी मे विभक्तिसहित कर्त्ताकारक और अधिकरण कारक का विकारी रूप (बिना परसर्ग के) नही है।[1] विभक्तिरहित कर्त्ताकारक के एकवचन मे भी हिमालय की इन दोनों बोलियो मे मारवाड़ी की तरह विभक्तिरहित कर्त्ताकारक के एकवचन मे अन्त्य स्वर 'आ' बनता है; किन्तु मारवाड़ी और इन बोलियो का अन्तर यह है कि मारवाड़ी मे विकारी बहुवचन मे अन्त्य स्वर 'आँ' होता है, जब कि इन बोलियो मे अन्त्य स्वर 'औ' बनता है। नेपाली मे विभक्ति रहित कर्त्ताकारक के एकवचन और विभक्ति सहित समस्त कारको के एकवचन मे कोई अन्तर नही है, केवल पक्के तद्भव ओकारान्त शब्द (=स्त० हि० मे आकारान्त) इस नियम के अपवाद है, ये ओकारान्त शब्द विकारी एकवचन मे आकारान्त बनते हैं। नेपाली मे विभक्तिरहित अविकारी बहुवचन तथा विभक्तिवाले विकारी बहुवचन दोनो मे 'हरु' अथवा 'हरु' प्रत्यय जोडा जाता है; जैसे—'बालख' शब्द के अविकारी बहुवचन तथा विकारी बहुवचन दोनो मे 'बालखहरु' अथवा 'बालखहरु'; किन्तु ये बहुवचन सूचक प्रत्यय प्रायः लुप्त रहते है और बहुवचन में भी एकवचन का रूप ही प्रयुक्त होता है; जैसे—'अर्का काढा मा परे (दूसरा काँटो मे पड़ा)। बाइबिल के नेपाली अनुवाद मे कई उदाहरण मिल सकते है।

स्मरणीय—कभी तो यह बहुवचन सूचक प्रत्यय क्रियाविशेषण के रूप मे प्रयुक्त होनेवाले कृदन्तो के साथ जुड़ता है और कभी पूरे वाक्य के साथ। इस कथन की पुष्टि मे यथास्थान (नेपाली रूपो के प्रकरण मे) उदाहरण दिये जाएगे।

ब्रजभाषा के परसर्ग

§ १७१. परसर्गों के आशय तथा प्रयोग के सम्बन्ध मे ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह बहुत हद तक पछाँह की सभी बोलियों से सम्बन्धित परसर्गों पर लागू होता है। सूची स० २ मे उन सबका उल्लेख किया गया है। ब्रजभाषा में कर्म और सम्प्रदान कारक के परसर्ग के रूप मे कौ, कू अथवा कु का प्रयोग होता है। ब्रज और अन्य बोलियों मे अपादान कारक के परसर्ग के लिए 'ते' अथवा 'तें' का प्रयोग किया जाता है। अँग्रेजी मे इस 'ते' अथवा 'तें' का अनुवाद विथ (with) न होकर फ्राम (from) अथवा बाइ (by) होना चाहिए। ब्रज का परसर्ग पै (=स्त० हि० पर) अग्रेजी मे आन (on) का पर्यायवाची है, कही कही इसके लिए बाइ (by) का भी प्रयोग होता है। स्तरीय हिन्दी मे 'ते' अथवा 'तें' के स्थान पर 'से' आता है। ब्रज भाषा के 'लौ' अथवा 'लों' उच्च हिन्दी के 'तक' के पर्यायवाची है।

राजपूताना की बोलियाँ : परसर्ग

§ १७२. मारवाड़ी के परसर्गों के सम्बन्ध मे मुझे अधिक कहना नही है। स्तरीय हिन्दी मे सम्बन्ध कारक के परसर्ग है—का, के, की; मारवाडी मे स्तरीय हिन्दी के इन परसर्गों के स्थान पर रो, रा और री का प्रयोग होता है। इस नियम का एक ही अपवाद है, जब स्वामित्व अथवा कर्त्तव्य व्यक्त करने के लिए सम्बन्ध कारक का उपयोग होता है तो विकारी पुल्लिगवाची शब्द से पहले 'रा' के स्थान पर 'रै' परसर्ग आता है।

---

[1] मुझे स्वयं इस बात पर आश्चर्य है कि गढ़वाली और कुमाउनी में इस प्रकार का परसर्ग-हीन विकारी रूप नहीं प्राप्त कर सका। वैसे मुझे इस बात की आशा है कि इन बोलियों में विकारी रूप अवश्य सुरक्षित होना चाहिए। इस बात की पूरी-पूरी संभावना है कि वे निकट भविष्य में प्राप्त हो जाएँगे।

मारवाड़ी मे 'को', 'का', 'की' परसर्गों के सम्बन्ध मे भी यही बात लागू होती है। उदाहरण है—बठोठ रो सरदार डूगजी है (बठोठ का सरदार डूगजी है); ऊ ब्राह्मण रै घर गीबो (वह ब्राह्मण के घर गया); दश हजार री रोकड़ (दस हजार की रकम); को (= का) के लिए विकल्प से कु' का प्रयोग होता है; जैसे—देवन कु देव (देवाधिदेव)। जहाँ तक मुझे ज्ञात है मै कह सकता हू कि 'तणो' और 'हंदो' परसर्गो का प्रयोग केवल कविता मे होता है। उदाहरण—धूआँ हंदो जाझ (धुएँ का जहाज); दिल्ली तणो नवाब (दिल्ली का नवाब); प्रेम सागर मे एक स्थान पर द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम के साथ 'तणो' न आकर 'तनौ' आया है, उदाहरण है—तुम तनौ (तुम्हारा)।

मारवाड़ी मे 'मॉहि' (= मे) का प्रयोग नियमित रूप से परसर्ग के समान होता है, माँहि का दूसरा रूप 'माई' भी प्रचलित है, जैसे—धूल पगड़ी माहि; किन्तु माहि का प्रयोग बहुत कम स्थानो पर सम्बन्ध कारक के साथ अपने मूल रूप अर्थात् संज्ञा के रूप मे भी होता है; जैसे—"मुलक कै माहि (मुल्क मे); कैंद रै माहि (कैंद मे)। बिभिन्न बोलियो मे प्रयुक्त 'मे' के पर्यायवाची परसर्गो के साथ इसी प्रकार का प्रयोग रामायण तथा अन्य पुराने काव्यो मे भी कही कही मिलता है। देहात की बोलियो मे सूधी (= तक) प्राय. विधेयक सम्बन्धी विशेषण माना जाता है, और इस स्थिति मे वह 'उद्देश्य' के लिंग-वचन को धारण करता है। लोग कहते है—वाण्यो गाम सूधो गयो (बनिया गाँव तक गया); धोबिन ताल सूधी गई (धोबन तालाब तक गई)। मारवाडी के अन्य परसर्गों को जानने मे निम्नलिखित उदाहरण सहायक सिद्ध होगे—

डूगरसिग नै पकड ले गयौ (डूगर सिह को पकड़ कर ले गये); चढ़ि किला ऊपरै (किले के ऊपर चढ कर); 'ऊपरै' परसर्ग का प्रयोग 'मॉहि' के समान सम्बन्ध कारक के साथ भी होता है; जैसे—घोड़ा कै ऊपरै (घोडे पर), 'से' के स्थान पर 'सू' का प्रयोग होता हे—अग्रेज सू करी लड़ाई (अँग्रेजो के साथ लड़ाई की)।

§ १७३ पछाँहो हिन्दी मे मुझे कर्म तथा सम्प्रदान कारक का एक अन्य परसर्ग भी मिला हे, 'ना'= स्त० हि० 'को' यह स्पष्ट रूप से मारवाड़ी के 'नै' तथा पजाबी के 'नू' से सम्बन्धित है। पजाबी का सम्बन्ध-सूचक परसर्ग 'दा' उच्च हिन्दो के 'का' परसर्ग का समानार्थी है। पंजाबी का 'दा' परसर्ग पछाँही हिन्दी मे बहुत कम प्रयुक्त हुआ है। बीम्स ने स्त्रीलिंगवाची शब्द के विकारी कर्ताकारक के एकवचन का एक उदाहरण चन्दबरदाई की कविता से दिया है—'नूपुरा' शब्द से नूपुरया'।

क. 'करके' वास्तव मे एक यौगिक कृदन्त है, जो √करना से बनता है। गगा के मैदानो मे सर्वत्र बातचीत के समय 'करके' का प्रयोग सज्ञा तथा सर्वनाम के विकारी रूप के साथ परसर्ग की भाँति 'से' के स्थान पर होता है। अँग्रेजी मे इसके लिए फ्राम (from) अथवा बाइ (by) आता है। 'करके' के लिए अग्रेजी मे विथ (with) का प्रयोग कभी नही करना चाहिए। उदाहरण निम्न प्रकार है—पाप करके रहित (= पाप से रहित अथवा पाप रहित), किन्तु रामायण के इस उदाहरण मे 'करके' समानार्थी है 'मे' का-सर सम लगे मातु उर करके।

ख. अपादान कारक के परसर्ग 'से', के लिए कही-कही 'सेइ' और 'सन' का प्रयोग किया जाता है। बोलचाल मे कही-कही 'से' के साथ 'ले' जोडते है, जैसे—पहाड से लेकर नदी तक। बोलचाल की भाषा मे कही-कही 'तक' के स्थान पर 'तोडो' का प्रयोग किया जाता है; वास्तव मे 'तोडो' परसर्ग हडौती से सम्बन्धित है।

ग. सूची स० २ से यह प्रकट होता हे कि हिमालय की बोलियो के परसर्ग हिन्दी की अन्य बोलियो से बहुत कुछ भिन्न है। यहाँ उनके सम्बन्ध में अधिक जानकारी देना संभव नही है। एक उल्लेखनीय बात यह

है कि नेपाली का प्रचलित यौगिक कृदन्त 'देखि' ऐसे स्थान पर परसर्ग के रूप मे प्रयुक्त होता है, जहाँ हिन्दी मे 'से' का प्रयोग किया जाता है[1] जैसे—जुन सुकै म देखि लाज मानला=स्त० हि० जो कोई मुझ से लाज माने। हिमालय की सभी बोलियो मे सम्बन्ध कारक का परसर्ग 'का' या 'की' न होकर सर्वत्र 'को' है। हिमालय की बोलियों मे अपादान कारक का परसर्ग 'ले' ऐसे स्थानो पर प्रयुक्त होता है, जहाँ हिन्दी मे 'से' का प्रयोग साधन अथवा जरिया प्रकट करने के लिए किया जाता हे।

पूरबी बोलियाँ

रामायण में प्रयुक्त रूपावली

§ १७४. बहुत सी पूरबी बोलियो के समान रामायण की भाषा में भी पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग वाची सज्ञाओ का अन्त्य दीर्घ स्वर ह्रस्व बनता हे; जैसे—दूलहा से दूलह; घड़ा के लिए घट; नारी के लिए नारि, आदि। स्तरीय हिन्दी मे जहाँ अन्त्य 'अ' (अन्तर्भुक्त) आता है, वहाँ रामायण मे 'उ' का प्रयोग मिलता है, कही-कही यह 'उ' दीर्घ रहता है; जैसे—'देह' के लिए देहु या देहू; वीर के लिए बीरु अथवा बीरू।

§ १७५. रामायण की भाषा में सभी शब्दों की रूपावली समान है। स्तरीय हिन्दी के तद्भव आकारान्त शब्दो के समान रामायण की भाषा मे आकारान्त पुल्लिगवाची शब्दो का प्रयोग नही हुआ है। कर्म और सम्प्रदान कारक को छोड़कर सर्वत्र एकवचन मे सज्ञा अपरिवर्तित रहती है, कर्म तथा सम्प्रदान कारक के एकवचन मे संज्ञा में कोई विकार नही होता, उस अविकृत रूप के साथ केवल 'हि' अथवा 'हिं' का योग होता है। जैसे—रामहि अथवा रामहिं; मुनिहि अथवा मुनिहिं। 'हि' अथवा 'हि' का प्रयोग चौपाई के इस चरण में स्पष्ट रूप से अपादान कारक के साथ हुआ है—'गुरुहि पूछ, करि कुल विधि राजा। पुरानी हिन्दी की कविता मे कही-कही चरण के अन्त मे 'म्' का प्रयोग मिलता है। यह 'म्' लिखते समय अनुस्वार से व्यक्त किया जाता है। अनुस्वार अथवा 'म्' के सम्बन्ध मे इतना और जान लेना चाहिए—

१. कर्त्ताकारक के एकवचन के लिए—"आजु न संसय"; इस उद्धरण में अनुस्वार नपुसकलिंगी कर्त्ताकारक के एकवचन का स्मरण कराता है।

२. कर्मकारक के एकवचन के लिए—"समेत सुग्रीवं", यहाँ अनुस्वार पुल्लिगवाची शब्द के कर्मकारक के एकवचन का बोध कराता हे।

वास्तव मे देखा जाये तो अनुस्वार का प्रयोग केवल तुक और लय के लिये किया गया है। सम्बोधन कारक का एकवचन विभक्तिरहित अविकारी कर्त्ताकारक के समान रहता है।

§ १७६. पुल्लिग और स्त्रीलिग दोनो प्रकार के शब्दो मे अविकारी कर्त्ताकारक के एक वचन और बहुवचन मे कोई अन्तर नही होता। विकारी बहुवचन के लिए अविकारी एकवचन के साथ 'न', 'न्ह' अथवा 'न्हि' जोड़ते हैं; जैसे—मुनि से मुनिन्ह; सुर से सुरन्हि; नारि से नारिन। कुछ स्थलों पर शब्द में स्वर सम्बन्धी परिवर्त्तन के पश्चात 'अन्ह' जुडता है। ऐसे प्रयोगो मे 'य' का लोप होता है; जैसे—'कौतुकि' शब्द के सम्प्रदान कारक मे ब० व० कौतुकि अन्ह।

---

[1] 'करके' परसर्ग के विवरण से इसकी तुलना कीजिए, देखिए, §१७३, क०।

क. मुझे रामायण में केवल एक उदाहरण ऐसा मिला है, जहाँ पुल्लिगवाची शब्द के बहुवचन मे अन्त्य स्वर के रूप मे 'आँ' का प्रयोग हुआ है। यह शब्द है—'बजनियाँ'[1]—

सेवक सकल बजनियाँ नाना।
पूरन किये दान सनमाना॥

§ १७७. रामायण में कुछ शब्द संस्कृत की विभक्ति के साथ प्रयुक्त हुए है; जैसे—पु० करणकारक, ए० व० में सरेन, सुखेन, इन शब्दों का प्रयोग क्रियाविशेषण के रूप में हुआ है। नपुंसक लिग, कर्मकारक, एकवचन—ब्रह्मं; पुं० अपादान का०, ए० व० पदात्; नपुं० अधिकरण, ए०व० मनसि; नपुं० कर्ता का०, ब० व० नरा (नराः के स्थान पर)*; पु० सम्बोधन, ए० व० राजन्; स्त्रीलिंग, सम्बोधन, एकव० सीते।

§ १७८. रामायण में कुछ औकारान्त शब्द मिलते है। अन्त्य 'औ' इन शब्दो का अभिन्न अश है, ये सभी शब्द संज्ञा की भाँति प्रयुक्त हुए है; जैसे—अधमौ, अधौ, एकौ आदि। ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन शब्दों का अन्त्य 'औ' संस्कृत कारक की विभक्ति नही है (प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के द्विवचन मे)। इन शब्दों का अन्त्य 'औ' अवधारण के लिए प्रयुक्त हुआ है और स्तरीय हिन्दी के अवधारक अव्यय 'ही' का समानार्थी है;[2] जैसे—अंधौ बधिर न अस कहहि।

रामायण के परसर्ग

§ १७९. रामायण मे कर्म तथा सम्प्रदान कारक के परसर्ग के रूप मे 'कह' का प्रयोग हुआ है; जैसे—तुम कहँ विपति बीज विधि बयउ। कहँ के अन्य रूप इस प्रकार है—कहं, कह, काहु (काहू), कु और कु। इनमे से एक रूप भी बहुप्रयुक्त नही है। 'हि' अथवा 'हिं' का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। कर्म तथा सम्प्रदान मे साधारणतया 'हि' अथवा 'हिं' का ही प्रयोग किया जाता है।

§ १८०. रामायण में सम्बन्ध कारक के परसर्ग के तीन रूप है—'केर' अथवा 'केरा'; विकारी पु० केरे; स्त्री० केरि। सम्बन्ध कारक के परसर्ग के अन्य दो रूप भी मिलते हैं; केवल स्त्रीलिंगवाची शब्द के पूर्व 'कर' परवर्तित होता है 'करि' मे और दूसरा रूप है 'क' जो स्त्रीलिंगवाची विकारी रूप 'कै' से सम्बन्धित है। सम्बन्धकारक के ये विभिन्न रूप नये छात्रों को दुविधा में डाल सकते है, अतः यहाँ प्रत्येक रूप को उदाहरण सहित उपस्थित करते है—

प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा
मिटै न जीवन्ह केर कलेसा
परहित हानि लाभ जिन्ह केरे
सीता केरि करहु रखवारी
प्रथम भक्ति संतन कर संगा

---

[1] प्रेमसागर में प्रयुक्त 'मरदनियाँ' शब्द से रामायण के 'बजनियाँ' की तुलना कीजिए।

[2] रामायण में प्रयुक्त शब्दों का अन्त्य 'औ' स्पष्ट रूप से ब्रजभाषा के अवधारणार्थक अव्यय 'हु' से उद्भूत है। 'हु' के लोप के कारण 'उ' की सन्धि पूर्ववर्ती स्वर से हुई। इसीलिए 'एकहु' के लिए 'एकउ' का प्रयोग भी मिलता है।

'कर' का प्रयोग पुल्लिगवाची शब्दो और सर्वनामो के विकारी रूपों के साथ होता है, उदाहरण निम्न प्रकार है—

हम काहू कर मरहिं न मारे[1]
जा करि तैं दासी सो अबिनासी
नीको तुलसी क
उमा संत कै इहइ बड़ाई

सम्बन्ध कारक के इन परसर्गो के अतिरिक्त नियमित परसर्ग 'के' और 'की' का प्रयोग भी हुआ है। कम स्थानो पर ही क्यों न सही, रामायण मे कन्नौजी का सम्बन्ध सूचक परसर्ग 'को' और ब्रज का सम्बन्ध-सूचक परसर्ग 'कौ' भी प्रयुक्त हुआ है। 'को' अथवा 'कौ' परसर्ग रामायण की भाषा के लिए पराये है।

§१८१. रामायण मे अपादान कारक का नियमित परसर्ग 'ते' है। अधिकरण कारक का परसर्ग 'मह' है, 'मह' के सात रूप मिलते है, जिनका उल्लेख सूची स० २ मे किया गया है। 'मँह' तथा 'महं' के अन्य रूप अर्थ की दृष्टि से स्तरीय हिन्दी के 'मे' के समान है। अधिकरण कारक के अन्य परसर्गो के सम्बन्ध में लिखना अनावश्यक है। स्तरीय हिन्दी के परसर्ग 'तक' के लिए प्रजत (=स० पर्यंत) का प्रयोग मिलता है, जैसे—योजन एक प्रजत। प्रजंत के अन्य दो रूप भी मिलते हैं—परयन्त तथा परजन्त।

पूरबी बोलियों की विभक्ति

§१८२ अवधी, भोजपुरी, मागधी तथा मैथिली की आकारान्त, पुल्लिगवाची तद्भव सज्ञाएँ विकारी एकवचन मे ज्यो की त्यो रहती है। इस नियम का एक अपवाद मिलता है; सम्बन्ध कारक के एकवचन मे परसर्ग 'क' से पहले अन्त्य आ, ई और ऊ ह्रस्व बनते है, जैसे—घोड़ा क और 'माली क' के स्थान पर 'घोड क' तथा 'मालि क'। दक्षिण भागलपुर मे अन्त्य दीर्घ स्वर ह्रस्व नही बनता। मागधी मे 'घर' जैसी हलन्त दुर्बल सज्ञाएँ विकारी एकवचन मे एकारान्त बनती है, किन्तु दक्षिण भागलपुर की मागधी मे इस प्रकार की सज्ञाएँ 'आकारान्त' होती है। मागधी मे घर और मैथिली मे घर०। इस वर्ग की अन्य सज्ञाएँ विकारी एकवचन मे अपरिवर्त्तित रहती है।

संज्ञार्थक क्रिया का रूप

§क. भोजपुरी, मागधी और मैथिली की लकारान्त संज्ञार्थक क्रिया लकारान्त बनती है; जैसे—देखल, विकारी एकवचन—देखला। इन सभी बोलियो मे केवल धातु अथवा 'इ' से युक्त धातु से बनने वाली संज्ञार्थक क्रिया विकारी एकवचन मे एँकारान्त बनती हैं; जैसे—'देख' अथवा 'देखि' विकारी एक वचन मे 'देखें'; किन्तु मैथिली भाषी प्रदेश के धुर पूर्व में, एँ के स्थान पर, का प्रयोग मिलता है। मागधी की सीमा पर 'ए' परिवर्त्तित होता है 'अँ' मे; जैसे—मैथिली—देखैं, मागधी देख०। दक्षिणी मैथिली भाषी प्रदेश के मध्य भाग में बकारान्त संज्ञार्थक क्रिया के अन्त्य 'ब' के स्थान पर 'बा' मिलता है, जैसे—

---

[1] इस चरण में 'हम' (कर्त्ता का०, बहुव०) के कारण 'मारे' का प्रयोग हुआ है। वास्तव 'मारे' का सम्बन्ध एक व्यक्ति से है।

देखब-देखबा (विकारी एक वचन), भोंजपुरी मे अविकारी और विकारी दोनों प्रकार के बहुवचन के अन्त मे न, नि अथवा न्ह प्रत्यय जुड़ते है। सारन और चम्पारन जिले की बोली मे इन प्रत्ययो के अतिरिक्त बहुवचन (जो आदर के लिए प्रयुक्त नही हो रहा है) बनाने के लिए 'स०' का प्रयोग होता है। मागध-मैथिली मे इसी उद्देश्य से 'नि' जोड़ते है। अवधी, रिवाई और मागधी मे 'न' प्रयुक्त होता है। मागधी की अन्य उपबोलियों मे या तो बहुवचन का रूप एकवचन के समान होता है या 'सभ' आदि शब्द जुड़ते है। रूप-सम्बन्धी सूची में इस तरह के पर्याप्त उदाहरण देखने को मिलेंगे।

विकारी कारक

ख. भोजपुरी, मागधी और मैथिली मे करण कारक तथा अधिकरण कारक का एकवचन परसर्ग के बिना केवल अन्त्य स्वर के विकार से बनता है। करण कारक के एकवचन मे अन्त्य स्वर 'ए' मे और अधिकरण कारक के एकवचन मे अन्त्य स्वर 'ए' मे परिवर्त्तित होता है। तृतीया विभक्ति पछाँही भोजपुरी में 'अन' से और दक्षिण-पूर्वी मैथिली में 'ऐं' तथा 'हैं' से बनतो है। भोजपुरी को छोड़कर पूरब की अन्य बोलियों मे इस प्रकार की विकारी विभक्ति साधारणतया दुर्बल शब्दो मे ही पाई जाती है। भोजपुरी मे इस प्रकार की विकारी विभक्तियाँ सबल शब्दों मे भी मिलती है। ऐंसी विकारी विभक्तियो के पूर्व भोजपुरी मे अन्त्य 'आ' लुप्त हो जाता है। अन्य अन्त्य दीर्घ स्वर ह्रस्व बनते है। प्रत्यय लगने से पूर्व अर्ध-स्वर परवर्ती स्वर में सम्मिलित होते है। उदाहरण इस प्रकार है—'घोड़ा' शब्द से करण कारक मे घोड़े और घोडन; माली शब्द से करण कारक मे मालिये, पोथी शब्द से अधिकरण कारक मे पोथियें।

पूरबी बोलियों में शब्द के योग से बनने वाला बहुवचन

§१८३. पूरबी हिन्दी की सभी बोलियों मे स्तरीय हिन्दी की भाँति 'लोग' शब्द के योग से बहुवचन बनता है; किन्तु जब संज्ञा से प्राणियों का बोध न होकर जड़ वस्तु का ज्ञान होता है तो 'लोग' के स्थान पर 'सभ' शब्द का प्रयोग किया जाता है। बंगाली भाषी क्षेत्र की सीमा पर जो मैथिली बोली जाती है उसमे 'सब' तथा 'सभै' से भी बहुवचन बनाते है। मध्य तथा पश्चिमी पुरनिया में 'सब', 'सिबी', 'सिभी' और 'सी' का प्रयोग होता है। भागलपुर जिले में 'आरहिन्ह' और 'सन्ही' के योग से तथा पुरनिया जिले मे 'आर' के योग से भी बहुवचन बनता है। स्तरीय हिन्दी मे बहुवचन के लिए जब 'लोग' शब्द जुड़ता है तो कुछ मूल शब्दों में विकार होता है, किन्तु भोजपुरी, मागधी और मैथिली को छोड कर पूरब की अन्य बोलियों मे उपर्युक्त बहुवचन सूचक प्रत्यय के कारण सज्ञा मे कोई विकार नही होता। उदाहरण निम्न प्रकार हैं—पोथियन सब, घैरन सभ। ध्यान देने योग्य बात यह है कि बहुवचन सूचक उपर्युक्त सभी शब्द अन्तिम सज्ञा के साथ जुड़ते है।

पूरब की बोलियों में परसर्ग

§१८४.स्तरीय हिन्दी की तरह पूरब की सभी बोलियों मे परसर्ग के योग से कारक बनते है। कुछ उदाहरण सूची सं० २ में दिये गये है। अधिकाश उदाहरणो के सम्बन्ध मे अधिक लिखने की आवश्यकता नही है। यह उल्लेखनीय है कि कर्म तथा सम्प्रदान का परमर्ग 'क' इनै दोनों कारकों के लिए भी प्रयुक्त होता है; शेष परसर्ग केवल सम्प्रदान कारक मे आते हैं। स्तरीय हिन्दी में सम्बन्ध कारक का परसर्ग परवर्ती स्त्रीलिंग अथवा पुल्लिंगवाची संज्ञा के अनुसार परिवर्त्तित होता है, किन्तु पूरब की बोलियों मे ऐसा परिवर्तन

नहीं देखा जाता। पूरबी बोलियों मे सम्बन्ध कारक के परसर्ग की स्थिति को नीचे स्पष्ट किया जाता है।

पूरबी बोलियों में सम्बन्ध कारक का परसर्ग

§१८५. अवधी और रिवाई मे सभी सज्ञाओ के साथ 'कर' परसर्ग का प्रयोग किया जाता है। लिग आदि के कारण 'कर' मे कोई परिवर्तन नही होता। स्तरीय हिन्दी के 'का' तथा 'की' के स्थान पर भोजपुरी मे क, के और कै का प्रयोग मिलता है। इन तीनों परसर्गो का प्रयोग दोनों लिंगों में समान रूप से किया जाता है। विकारी एकवचन तथा बहुवचन वाले पुल्लिगवाची शब्दों के पहले इस परसर्ग का विकृत रूप 'का' का प्रयोग मिलता है, जो स्तरीय हिन्दी के 'के' के समान है। मागधी और मैथिली मे लिग तथा वचन के कारण परिवर्त्तित न होते हुए सभी संज्ञाओं के पूर्व समान रूप से क, के और केर का प्रयोग किया जाता है। पटना के निकट मागधी मे पुल्लिगवाची शब्दो से पहले 'केरा' और स्त्रीलिंगवाची शब्दों से पहले 'केरी' परसर्ग का प्रयोग बहुत कम होता है। अवधी, रिवाई और मैथिली-मागधी में सभी सज्ञाओ के पहले 'कर' परसर्ग का और मैथिली-मागधी मे 'क' और 'केर' का प्रयोग बिना किसी परिवर्तन के किया जाता है। दक्षिण भागलपुर की मैथिली मे वचन के परिवर्तन को ग्रहण न करते हुए पुल्लिगवाची संज्ञाओ के पूर्व 'केर०' तथा स्त्रीलिगी शब्दों के पूर्व 'केरी' परसर्ग का व्यवहार होता है।

कर्त्ताकारक के परसर्ग का अभाव

§१८६ अन्य परसर्गों के सम्बन्ध मे कुछ लिखने की आवश्यकता नही है। यह बात उल्लेखनीय है कि सभी पूरबी बोलियो मे विकारी कर्त्ता कारक के परसर्ग का अभाव है। क्रिया के साथ विकारी कर्त्ता-कारक के सम्बन्ध को व्यक्त करने के लिए केवल पछाँही हिन्दी मे 'ने' परसर्ग का उपयोग किया जाता है। कानपुर के आगे पूरब की बोलचाल मे इस परसर्ग का सर्वथा अभाव है। स्तरीय हिन्दी के विकारी कर्ता कारक के परसर्ग 'ने' के सम्बन्ध मे विस्तार से § १८२, ख. मे लिखा जा चुका है।

परसर्गो का लोप

§१८७ यह बात उल्लेखनीय है कि हिन्दी के अधिकाश काव्यों मे परसर्गो का अधिक प्रयोग नही मिलता। प्राय: उनकी उपेक्षा की जाती है। कारको मे किसी संज्ञा का विकृत रूप उपलब्ध होने पर भी सज्ञा का अविकारी रूप ही प्रयुक्त होता है। सीमित मात्रा मे ही क्यो न हो, ब्रजभाषा के गद्य मे भी परसर्गो की उपेक्षा की जाती है। परसर्गो की यह उपेक्षा छन्द भग के कारण ही नही है। स्तरीय हिन्दी की अपेक्षा पुरानी कविता मे भाषा का प्राचीन रूप अधिक सुरक्षित है। यह पुरानी कविता काव्य-रचना के लिए आज भी आदर्श मानी जाती है। सोलहवी शती में लिखी गई तुलसीदास की रामायण कविता के लिए श्रेष्ठ आदर्श है। कबीर की कविता भी बहुत सम्मान के साथ पढ़ी जाती है। कबीर की वाणी तुलसीदास की रचनाओ से सौ वर्ष पुरानी है। पुरानी कविता के अन्तिम दिनो मे प्राचीन कारक तथा विभक्तियाँ लगभग नष्ट हो चुके थे। केवल एक रूप बचा था और वह था सम्बन्ध कारक का रूप। यह अकेला रूप ही सज्ञा और क्रिया के विभिन्न सम्बन्धों को प्रकट करता था। पुराने समय मे संज्ञा और क्रिया के सम्बन्ध को व्यक्त करने के लिए सम्बन्ध कारक के अतिरिक्त अन्य छह कारक थे। परसर्गों की सहायता से कारक बनाने की आधुनिक विधि धीरे-धीरे विकसित हुई। पुराने रूपो के लोप से ही इन परसर्ग युक्त रूपों की आवश्य-

कता हुई होगी। पुरानी हिन्दी की कविता उस भाषा को प्रस्तुत करती है, जो व्याकरण सम्बन्धी इस सुधार के आरंभ मे विद्यमान थी। इस भाषा में परसर्गों का उपयोग भी होता था, किन्तु आधुनिक हिन्दी गद्य की तुलना मे उनकी संख्या बहुत कम थी। इस पुरानी हिन्दी मे विभक्तियों के सम्बन्ध मे कुछ सीमा तक प्राकृत की विभक्तियों के प्रभाव भी विद्यमान थे, किन्तु तब तक प्राकृत की विभक्तियाँ इतनी घिस चुकी थी कि उनको पृथक्-पृथक् गिनना भी असंभव है। यदि उस समय के प्राकृत कारको को ही ठीक ढग से व्यक्त करना आवश्यक हो तो उनकी सख्या संस्कृत के कारको की भाँति आठ न होकर दो है। कही-कही प्रयुक्त होने वाले सम्बोधन कारक को भी सम्मिलित किया जाये तो यह संख्या तीन तक पहुँचती है। पुरानी हिन्दी की कविता को समझने के लिए व्याकरण सम्बन्धी इन परिवर्तनों को ध्यान मे रखना आवश्यक हैं।

§१८८. आगे जो रूपावली दी गई है, वह हिन्दी से सम्बन्धित चौदह बोलियो के रूपो का तुलनात्मक-अध्ययन प्रस्तुत करती है। सूची सख्या २ मे विभिन्न बोलियों के विकारी रूपो के साथ जुडनेवाले परसर्ग पृथक्-पृथक् दिये गये है। सूची स० ३ मे उपयुक्त परसर्गों के योग से पुल्लिगवाची सबल तद्भव शब्दों के रूप दिये गये हैं। स्थान की कमी के कारण तीसरी सूची मे कुछ रूप नही दिये जा सके, उन्हे सूची स० २ में देखा जा सकता है। इतना पर्याप्त समझा गया है कि अन्य तीन सूचियों मे सज्ञा के अविकारी कर्त्ता कारक के साथ केवल वे विकारी रूप दिये जाये, जिनके साथ परसर्ग जुडते है। कुछ बोलियो मे प्रयुक्त होनेवाले अन्त्य स्वर के विकार से बननेवाले रूपो का उल्लेख भी किया गया है। जिन शब्दो के अन्त मे व्यंजन अथवा अनुच्चारित 'अ' आता है, उन्हे 'सवृत' तथा जिन शब्दो के अन्त मे उच्चारणीय 'स्वर' रहता है उन्हे 'विवृत' नाम से सम्बोधित किया गया है। छठी सूची मे 'नेपाली' के अन्तर्गत 'बात' शब्द के रूप नही दिये गये। नेपाली मे 'बात' शब्द प्रचलित नही है। लुक ने नेपाली में बाइबिल का जो अनुवाद किया है, उसमे 'बात' के लिए 'कुरो' शब्द आया है। विकारी एकवचन मे 'कुरो' परिवर्त्तित होता है 'कुरा' मे। यदि नेपाली मे 'बात' शब्द प्रचलित रहता तो यह कहा जा सकता है कि स्त्रीलिग तथा पुल्लिगवाची अन्य संज्ञाओ की भाँति उसके एक वचन मे अविकृत रूप का प्रयोग होता। नेपाली मे पुल्लिगवाची ओकारान्त तद्भव शब्दों के अतिरिक्त अन्य शब्दो के रूपो मे अन्तर नही होता। सूची मे सभी रूप नही दिये गये है। वास्तविकता यह है कि सभी बोलियों मे कर्मकारक और अविकारी कर्त्ता कारक के रूप भिन्न नही है। अविकारी कर्त्ता कारक के एकवचन तथा बहुवचन के लिए जहाँ कहीं वैकल्पिक रूप दिये गये है, उनमे से किसी एक की पूरी रूपावली दी जा सकती है।

सूची २.

परसर्ग

	स्तरीय हिन्दी	कन्नौजी	ब्रज	मारवाडी	मेवाडी	गढ़वाली	कुमाउनी	नेपाली	पुरानी बैसवाडी	अवधी	रिवाई	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
कर्म सम्प्रदान	को तईं	को	कौ, कू कुं	नै	ऐ	सणि	काणि, कै, हुणि	लाई लाइ	कहं, कह काहु[1] कु, कुं	क	कंहं	के, को[2] लाग, ला, ले, खाति	के[2], लागी, लेल, ला, खातिर	के, कें, कै, कैं, कौं,[2] लागी, लेल, लै, ले खातिर
कर्त्ता	ने	ने	ने	—	...	ने	ले	ले	नही है,	नही है,	नही	नही	नही	नही
अपादान	से	से, सेती	सो	सू।	ऊँ	. .	है	सगं	सन, सु,	से, सेनी सेन	...	सो, सें, सते, करते,	से, सें, सती,	से, सें, सै सै, सों, सं, सं।
,,	...	तें, ते	तें	...	. .	ते	थे, थे	वाट	तें	...	तन, ते,	...	...	...
,,	...	करि, करिके,	...	. .	. .	.	ले	लै	...	. .	...	.	...	...
सम्बन्ध	का, के, की,	को, के, की	कौ, के, की	रो, रा, री, रै	को, का, की, कै,[3]	को, का, की	को, का, (की ?)	को, का, कि	केर, केरा, केरो, केर, केरे, करि,	कर, के	कर	. .	...	कर, केर
,,	...	. .	.	तणो, तणू स्त्री लि० तणी ब० व० तणा	ळो, ळा, ळी, ळै	.		.	कर, स्त्री करि	. .	. .	.	केर, करा, स्त्री केरी	केर[4]
,,	...	. .	. .	हंदो, स्त्री हदी	...	...	.	.	क, स्त्री० के	...	...	कै, के, कि, क्, का	के, क्	के, क्, क
अधिकरण	मे	में, मों	मे	माहै, माई, माय	माऐ	मा	मे, मो	मा	मह, मह, माहि, माहिं, मांझ,[5]	मै	म	मे, मों,	मे, में, मो	में, मो
,,	पर, प	पर,	पै	ऊपरै	ऊपरै	पर	पर	माथि	मुह, मुहु, मझारी, पै, परि, अपरि	पर	पर	परि	...	...
,,	तक, तलक	लों	लौ	सूधी, ताईं	ताईं	तलक	लो	सम्म	प्रयन्त लगि[6]	...	. .	.	...	...

१. चन्द की भट्टी भाषा में भी, कहुँ। २. 'क' का प्रयोग कर्म और सम्प्रदान दोनो मे होता है किन्तु अन्य परसर्गो का केवल सम्प्रदान मे।
३. मेरों में गो, गा आदि भी। ४. दक्षिण भागलपुर मे विकारी केरी का प्रयोग केव जीवित प्राणियो के नामों से पहले प्रयुक्त होता है।
५. चन्द की रचना में भी मंझ, मंझं, मझ, मझ, मधि और मध्य ६. आधुनिक बोलियों में लग भी।

सूची ३. विभक्ति-बलवान पुल्लिंगवाची संज्ञा

घोड़ा

एक वचन

	स्तरीय हिन्दी	कन्नौजी	ब्रज	मारवाडी	मेवाडी	गढ़वाली	कुमाउनी
कर्त्ता	घोड़ा	घोडा	घोड़ा	घोड़ो	घोड़ो	घोड़ो	घोडा
कर्म	घोड़े को	घोडे को	घोड़े कौ	घोडा नै	घोडा रो	घोड़ो सणि	घोडो कणि
सम्प्रदान	घोड़े को	घोडे को	घोड़े कौ	घोडा नै	घोड़ा ऐ	घोड़ा सणि	घोड़ा कणि
करण	घोडे ने	घोड़े ने	घोड़ै ने	घोड़ै	घोड़ै	घोड़ा ने	घोडा ले
अपादान	घोड़े से	घोड़े ते	घोड़े सों, तें	घोडा सूँ	घोड़ा ऊ	घोडा ते	घोडा है आदि
सम्बन्ध	घोडे का	घोड़े को	घोड़ै को	घोडा रो	घोड़ा को, गो को	घोडा को	घोडा को
अधिकरण	घोड़े मे पर	घोड़े मे पर	घोडे मै परि	घोड़ा माहै घोड़ै ऊपरि	घोड़ा माऐ घोडे	घोड़ा मा	घोडा मा
सम्बोधन	घोड़े	घोड़े	घोडे	घोडा	घोडा	(घोड़ा)	(घोडा)

नेपाली	पुरानी बैस वाड़ी	अवधी	किबाई	भोजपुर	मागधी	मैथिली
घोड़ो	इस प्रकार की संज्ञाएं रामायण मे नहीं है।	घोड़वा घोड़, घोड़ौना	घ्वाड़	घोड़ा, घोरा	घोड़ा	घोडा
घोड़ा लाई		घोड़वा क	घ्वाड़ कहं	घोड़ा के को	घोड़ा के	घोडा के, के कै, के
घोड़ा लाई		घोडवा क	घ्वाड कंहं	घोड़ा के ले	घोड़ा के लेल	घोड़ा के ले
घोड़ा ले		नही	नही	घोडे	नही	नही
घोड़ा वाट ले		घोडवा से	घ्वाड़ ते	घोडा सें, थी, संते	घोड़ा सें, से सती	घोड़ै से, सैं स सं
घोड़ा को		घोडवा कर	घ्वाड कर	घोड़क् घोड़ा कैं, के कि	घोड़क घोड़ा केर, केरा के	घोड़ाक्, घोड़क्[1] घोड़ा कैं, क० केर, केर
घोड़ा मा माथि		घोड़वा म मा	घ्वाड म	घोड़ा मे, मों, घोड़े परि	घोड़ा मे, मे, मों	घोड़ा में मों
(घोड़ा)		घोड़वा आदि	घ्वाड़	घोड़ा, घोड़ऊ.	घोड़ा	घोड़, घोड़ऊ

---

[1] दक्षिण भागलपुर मे ।

बहु वचन

	स्तरीय हिन्दी	कन्नौजी	ब्रज	मारवाडी	मेवाडी	गढवाली
कर्त्ता	घोडे	घोडे	घोडे	घोडा	घोडा	घोडा
कर्म	घोडे घोडो को	घोडे घोडन को	घोडे घोडौ घोडनि } कौ	घोडा घोडा नै	घोडा घोड़ा ऐ	घोडा घोडौ सणि
सम्प्रदान	घोड़ो को	घोडन को	घोडौ घोडनि } कौ	घोडा नै	घोडा ऐ	घोड़ौ सणि
करण	घोडो ने	घोडन ने	घोडौ घोडनि } ने	घोडा	घोडा	घोड़ौ ने
अपादान	घोडो से,	घोडन से	घोडौ घोडनि } सो	घोडा सूँ	घोडा ऊ	घोड़ौ ते
सम्बन्ध	घोडो का	घोडन को	घोडौ घोडनि } कौ	घोडा रो	घोडॉ { को, गो, को	घोडौ को
अधिकरण	घोड़ों { मे पर	घोडन { मे पर	घोडौ घोडनि } मै परि	घोडा { माहै ऊपरै	घोडा माऐ घोडे	घोडौ मा
सम्बोधन	घोडो	घोड़ो	घोडौ	घोडा	घोडा	(घोडौ)

कुमाउनी	नेपाली	अवधी	रिवाई	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
घोड़ा	घोडा हेरु	घोडवन घोडौनन	घ्वाडे	घोड़न[1]	घोडन	घोडनि[2]
घोडा घोड़ां कणि	घोडा हेरु लाई	घोडवन क	घ्वाडै घ्वाड़नकंहं	घोडन { के को	घोड़न के	घोडनि { के, के कै कँ
घोड़ां कणि	घोडा हेरु लाई	घोड़वन क	घ्वांड़न कह	घोडन { के ले	घोड़न { के लेल	घोडनि { के ले
घोड़ा ले	घोडा हेरु ले	नही	नही	नही	नही	नही
घोड़ां है आदि	घोडा हेरु { वाट ले	घौडवन से	घ्वाड़न ते	घोड़न { ऐ, बी सते	घोडन { से, से सते	घोडनि { से, सै, स०, स
घोड़ा को	घोड़ा हेरु को	घोडबन कर	घ्वाडन कर	घोडनक घोडन कँ, के कि	घोडनक घोड़न { केरकेरा के	घोड़नक घौडनि { के, क० को, कर
घोडां { मा पर	घोडा हेरु { मा माथि	घौड़वन { का म०	घ्वाडन म०	घोड़न { मे, मों परि	घोडन { मे, मे मो	घोड़नि { मे मो
(घोड़ा)	घोड़ाहेरु	घौड़वन	घ्वांडे	घोड़न		घौड़नि

१. घोरानि, घोरन्ह, घोरास भी।

२. कुछ उपबोलियो मे बहुवचन एक वचन के समान, और शेष सब मे अन्य शब्द की सहायता से बनाया जाता है, सभ आदि जोड़ कर।

सूची ४. क्षेत्रीय रूप पुंल्लिगवाची दुर्बल संज्ञा

घर शब्द

	स्त. हिन्दी	कन्नौजी	ब्रज	मारवाड़ी	मेवाडी	गढ़वाली	कुमाउनी	नेपाली	पुरानी बैसवाडी	अवधी	रिवाई	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
एक वचन														
कर्ता	घर	घर	घर	घर	घर	घर	घर	घर	घर	घर	घर	घर	घर	घर[1]
तिर्यक रूप	घर	घर	घर	घर	घर	घर	घर	घर	घर घरहि	घर	घर	घर	घर घरै	घर घर०
विकारी कर्ताकारक				घर[2]	घर[2]							घरे घरन	घरे	घरें, घरै घरहै
विकारी अधिकरण कारक				घरै	घरै							घरे	घरे	घरे
बहु वचन														
कर्ता	घर	घर	घर	घर	घर	घर	घर	घरहेरु घर	घर	घरन घरने	घरे	घरन, घरनि घरन्ह घर स०[3]	घरन	घरन[4]
तिर्यक रूप	घरो	घरन	घरौ घरनि	घरा	घरा	घरौ	घरा	घरहेरु घर	घरन्हि घरन्ह घरन	घरन	घरन	घरन	घरन	घरन[4]

१. दक्षिणी मैथिली मे सर्वत्र घौर भी।

२. केवल करणकारक मे ही प्रयुक्त स्त० हि० घर ने।

३. सारन और चम्पारन मे।

४ मैथिली की कुछ उपबोलियो मे बहुवचन का पृथक् रूप नही है, सभी बहुवचन 'सभ' तथा अन्य शब्दो के योग से पसन्द किये जाते है।

सूची ५. विभक्ति : विवृत स्त्रीलिंग शब्द : क्षेत्रीय रूप

नारी

एक वचन

	स्त. हिन्दी	कन्नौजी	ब्रज	मारवाड़ी	मेवाड़ी	गढवाली	कुमाउनी	नेपाली	पुरानी बैंसवाडी	अवधी	रिवाई	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
कर्ता	नारी	नारी	नारी	नारी	नारी	नारी	नारी	नारी	नारी	नारिया नारीवा	नारी	नारी	नारी	नारी
तिर्यक रूप	नारी	नारी	नारी	नारी	नारी	नारी	नारी	नारी	नारी¹ नारिन्ह	नारिया नारीवा	नारी	नारी	नारी	नारी
करण (विकारी)				नारी¹	नारी¹							नरिये		नरियें²
विकारी अधिकरण												नरिये		

बहु वचन

	स्त. हिन्दी	कन्नौजी	ब्रज	मारवाड़ी	मेवाड़ी	गढवाली	कुमाउनी	नेपाली	पुरानी बैंसवाडी	अवधी	रिवाई	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
कर्त्ता	नारियाँ	नारी	नारी नारिया	नार्यां	नार्यां	नारी	नारिया	नारी नारीहेरु	नारि	नारिन नारियन	नारी	नारिन नारिन्ह नारी स०³	नारिन⁴	नारिन⁴
विकारी रूप	नारियाँ	नारिन	नारिन नारियन नारियनि नारियौं	नार्यां	नार्यां	नारियौ	नारिन	नारी नारीहेरु	नारिन नारिन्ह नारिन्हि	नारिन नारियन	नारिनि	नारिन नारिन्हि नारि स०³	नारिन	नारिन

१. बिना परसर्ग के प्रयुक्त=उच्च हि० नारी ने।

२. केवल कुछ शब्दों में ही विकारी अधिकरण (बिना परसर्ग के) पाया जाता है। वह भी विशेष रूप से वाक्य खंडों मे।

३. सारन और चम्पारन में।

४. कुछ मैथिली उपबोलियो में बहुवचन के लिए पृथक् रूप नही है, शब्द जोड़कर बहुवचन बनाना, पसन्द करते है।

फलक ६. विभक्ति : संवृत स्त्रीलिंगवाची संज्ञा

बात

क्षेत्रीय रूप

एक वचन

	स्तर हिन्दी	कन्नौजी	ब्रज	मारवाड़ी	मेवाड़ी	गढ़वाली	कुमाउनी	पुरानी बैंसवाडी	अवधी	रिवाई	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
कर्त्ता	बात	बात	बात	बात	बात	बात	बात	बात	बात	बात	बात	बात	बात
तिर्यक् रूप	बात	बात	बात	बात	बात	बात	बात	बात	बात बातहि	बात	बात	बात	बात
कर्त्ता (विकारी)				बात¹	बात¹						बतें		बतै
विकारी अधिकरण											बते		बाते

बहु वचन

	स्तर हिन्दी	कन्नौजी	ब्रज	मारवाड़ी	मेवाड़ी	गढ़वाली	कुमाउनी	पुरानी बैंसवाडी	अवधी	रिवाई	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
कर्त्ता	बातें	बाते	बातैं	बाता	बातां	बात	बात²	बात²	बात	बात	बातन बातन्ह बातनि बात स०³	बातन	बातन बतियनि
विकारी रूप	बातें	बातन	बातन बातनि	बाता	बाता	बातु	बातन	बातन बातनि बातन्ह	बात	बात	बातन बातन्ह बात स०	बातन	बातन बतियनि

१. बिना परसर्ग के प्रयुक्त=उ० हिं० बात ने।

२. इसे मैंने एक पुस्तक मे ही देखा है, मैं अनुमान लगाता हूँ कि यह गढ़वाली के निकट सम्पर्क के कारण आया; इसका उच्चारण 'बात्' होना चाहिए।

३. सारन और चम्पारन मे।

संज्ञा के विभिन्न रूपों का उद्भव

अविकारी कर्त्ताकारक के एकवचन का उद्भव

§ १८९. सस्कृत मे कर्त्ताकारक के एकवचन मे प्रयुक्त होनेवाली विभक्ति आधुनिक हिन्दी के सभी तत्सम और अधिकांश तद्भव शब्दो मे लुप्त हो चुकी है। हिन्दी की पुरानी कविता, नेपाली तथा हिमालय की अन्य बोलियो मे पुल्लिगवाची संज्ञाओ मे अन्त्य 'उ' मिलता है, जो प्राकृत के 'अन्त्य 'ओ' का प्रतिनिधित्व करता है। प्राकृत का अन्त्य 'ओ' स० 'अः' (प्रथमा विभक्ति के एकवचन मे पुल्लिगवाची अकारान्त शब्द का अन्त्य 'अ.') से उद्भूत है; जैसे—देसु प्रा० देसो स० देश. स्त० हि० देश; लाहु प्रा० लाहो स० लाभ. स्त० हि० लाभ।[1]

क स्तरीय हिन्दी के पुल्लिगवाची आकारान्त तद्भव शब्द तथा मारवाड़ी के पुल्लिगवाची ओकारान्त शब्द एकवचन मे एकारान्त बनते है। इस प्रकार के शब्दो का अन्त्य स्वर प्राकृत और संस्कृत मे अकारान्त शब्दो के साथ जुडनेवाले 'क' प्रत्यय का अवशिष्ट भाग है।[2] सर्वप्रथम 'क' का लोप हुआ होगा। फिर समीपवर्त्ती स्वरो की सन्धि हुई। जैसे—स० 'घट' शब्द प्राकृत मे 'घटक', कर्त्ताकारक के एकवचन मे घटकः, § ७९, ग और § ८९ के अनुसार '-क्' का लोप तथा अन्तिम 'अः' सन्धि के अनुसार 'ओ' बना, अन्त्य 'अ' तथा विभक्ति सहित 'क' प्रत्यय के अवशिष्ट रूप 'ओ' की सन्धि से अन्त्य 'औ' की उत्पत्ति हुई। इस सन्धि के कारण ही 'घडौ' जैसा रूप सभव हुआ। ब्रजभाषा मे सामान्यतया इस प्रकार का औकारान्त रूप देखने को मिलता है। मारवाड़ी तथा अधिकाश पछाँही बोलियो मे यह अन्त्य 'औ' दिखाई देता है 'ओ' के रूप मे। इसीलिए इन बोलियो मे 'घट' के लिए 'घड़ो' शब्द का प्रयोग मिलता है। यही अन्त्य 'ओ' अथवा 'औ' स्तरीय हिन्दी मे 'आ' बनता है, जैसे—स० मेलकः से मेलौ, मार० मेलो, स्त० हि० मेला।

ख. स्त्रीलिगवाची तद्भव शब्दो का अन्त्य 'ई' संस्कृत तथा प्राकृत के स्त्रीलिगवाची प्रत्यय 'इका' से उद्भूत है। इस 'इका' प्रत्यय से ही 'इआ' और 'इया' का उद्भव हुआ।[3] अवधी के स्त्रीलिंगवाची शब्दो

---

[1] देखिए, § ७९, ग; ८५, क; ९९; इस प्रकार का परिवर्तन अपभ्रंश में हो चुका था। तुलसीदास की रामायण में इस प्रकार के अन्त्य 'उ' का प्रयोग अरबो और फारसी की संज्ञाओं में भी मिलता है। यह स्पष्ट है कि अरबी-फारसी में इस प्रकार के अन्त्य 'उ' का अस्तित्व नहीं है; फ़ा० 'निवाज़' के लिए 'निवाज़ु; फ़ा० 'तलवार' के स्थान पर तरवारु। बघेलखंड की बोली में अरबी के 'शख्स' तथा 'शहर' शब्द का 'शख्सु' तथा 'शहरु' रूप प्रचलित है।

[2] देखिए, § १०० तथा उसकी पाद टिप्पणी। लैस्सेन ने इस्ट० लिग० प्रा० क. के पृ० ४५७ में लिखा है कि "अपभ्रंश में इस 'क' प्रत्यय का प्रयोग बहुलता से हुआ है। इस प्रत्यय के लोप के कारण पुल्लिगवाची उकारान्त शब्दों के अन्त्य 'उ' का अस्तित्व संभव हुआ। इस प्रकार के आकारान्त और ओकारान्त शब्दों के सम्बन्ध में बीम्स ने हार्नली के विचारों का समर्थन करते हुए सुझाव दिया है कि इन शब्दों में मूलतः कोई सुर ऐसा रहा है, जिसने प्राकृत के अन्त्य 'ओ' को सुरक्षित रखा (कम्प० ग्रामर खं० २, पृ० ४-१५)। इस सम्बन्ध में बीम्स ने जो शब्द-सूची दी है उसके आधार पर इस बात को सर्वत्र स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस समय भी मैं यही मानता हूँ कि कम-से-कम हिन्दी के आकारान्त पुल्लिगवाची शब्दों का अन्त्य 'आ' मुख्यतया प्राकृत के 'क' से उद्भूत है।

[3] देखिए, § ८२, ८८, क. का स्मरणीय।

के अन्त्य 'ईवा' की व्याख्या भी इसी आधार पर की जा सकती है। अवधी शब्द 'नदीवा' (स्त० हि० नदी) प्राकृत के 'नादिका' शब्द का स्मरण कराता है। स्त्रीलिंगवाची ऊकारान्त शब्दों की व्याख्या भी इसी आधार पर की जा सकती है; जैसे—सं० बालुका, प्रा० बालुआ, अवधी बालुया, स्त०हिं० बालू। ईकारान्त तथा ऊकारान्त पुल्लिगवाची अधिकांश शब्दों की व्याख्या इसी प्रकार से की जा सकती है; जैसे—सं० धाविकः से धावियो, धोवियो, स्त० हि० धोबी। सं० नपुं० मौक्तिकम्, प्रा० मोत्तियम्, स्त० हि० मोती। सं० के वृश्चिक के ग्राम्य रूप वृच्छुक. (?) से प्रा० विछौ, स्त० हि० बिच्छू। संस्कृत का स्त्रीलिंगवाची 'आ' प्रत्यय तद्भव शब्दो मे लुप्त हो गया—स० वार्ता, स्त० हि० बात।

विकारी एकवचन का उद्भव

§ १९० पुरानी बैंसवाड़ी तथा प्राचीन हिन्दी के विकारी एकवचन मे 'हि' अथवा 'हिं' का प्रयोग सर्वत्र मिलता है। ये दोनो विभक्तियाँ संस्कृत की कारक प्रणाली का स्मरण कराती है। अपभ्रंश के सम्बन्धकारक की विभक्ति 'हे' से 'हि' का उद्भव हुआ। 'हिं' का सम्बन्ध अधिकरण कारक मे प्रयुक्त 'हिं' विभक्ति से है। 'हि' का उद्भव संस्कृत के सम्बन्ध कारक के चिन्ह 'स्य' से माना जाता है।[1] संस्कृत मे केवल सर्वनामो के साथ अधिकरण कारक के एकवचन मे 'स्मिन्' का प्रयोग होता है, किन्तु प्राकृत मे सज्ञाओ के साथ भी इसका प्रयोग हुआ है। इस 'स्मिन्' से ही 'हि' का उद्भव हुआ। पुरानी हिन्दी मे विभक्तियाँ प्राय: लुप्त हो गईं, इसीलिए उस काल की कविता मे सम्बन्ध तथा अधिकरण कारक मे ही नही, सम्प्रदान, कर्म, तथा अपादान कारक में भी 'हि' तथा 'हिं' का प्रयोग मिलता है।

क. प्राकृत के जिन शब्दों के अन्त मे 'अको' अथवा 'अओ' रहता है, उनके साथ 'हि' का 'ह' लुप्त हो हो जाता है। पूर्व स्वर के साथ सन्धि के कारण अवशिष्ट 'इ' परिवर्त्तित होती है 'ए' मे। स्तरीय हिन्दी के एक वर्ग के शब्दो मे यह 'ए' विकारी एकवचन का परिचायक है। एक वर्ग के शब्दो में 'हि' का पूर्णतया लोप होता है। जिन शब्दो के साथ 'हि' का लोप होता है, उनके विकारी अथवा अविकारी एकवचन मे कोई अन्तर नही रहता; इस वर्ग के शब्दों का रूप 'घर' शब्द की भाँति चलता है।

ख मारवाड़ी, मेवाड़ी, कन्नौजी, गढ़वाली और गुजराती के एक विशेष वर्ग की सज्ञाओं मे प्राकृत के सम्बन्ध कारक के एक वचन की विभक्ति स्स (सं० स्य) इस समय भी विकृत अवस्था में विद्यमान है। इन बोलियों के कुछ शब्दों के साथ स्स से उद्भूत ह अथवा अहो विभक्ति के ह का लोप होता है। पड़ौसी स्वर के साथ अवशिष्ट अ की सन्धि के कारण अन्त्य आ का अस्तित्व संभव हुआ। ऊपर जिन बोलियों का उल्लेख किया गया है उनके विकारी एक वचन में यह आ प्रयुक्त होता है। समीपस्थ स्वरों को पृथक् रखने के लिए वँ का आगम पाया जाता है।

परसर्ग रहित करण तथा अधिकरण कारक का विकारी एकवचन

ग. मेरवाड़ी और मारवाड़ी में बिना परसर्ग के करण कारक का रूप मिलता है। इन बोलियों मे करण कारक के लिए अन्त्य स्वर को 'ऐं' मे परिवर्त्तित करते है। स्पष्ट रूप से यह 'ऐं' संस्कृत करण कारक की विभक्ति 'एन', अप 'एण' और 'एँ' से उद्भूत है। अनुस्वार अथवा नासिक्य वर्ण के लोप के कारण केवल 'ए' शेष रह गया। भोजपुरी, मागधी और मैथिली मे भी परसर्ग हीन विकारी करण कारक में अन्त्य स्वर 'एँ'

---

[1] लैस्सेन—इन्स्ट० लिग० प्राक०, § १७५, ६.।

में बदलता है; जैसे—'बले' (बल से), पूरब की इन बोलियों के अतिरिक्त मराठी में भी करण कारक के विकारी रूप मे अन्त्य 'एँ' का अनुस्वार संस्कृत की 'इन' विभक्ति के 'न' का प्रतिनिधित्व करता है। गुजराती में राजपूताना की बोलियों की भाँति अनुस्वार लुप्त हो गया है। गुजराती भी परसर्ग हीन विकारी रूप सुरक्षित रखे हुए है। संस्कृत के अधिकरण कारक के एक वचन की विभक्ति 'इ' हिन्दी की कई बोलियो मे 'ए' अथवा 'ऐ' के रूप मे बची हुई है।

अविकारी कर्त्ता कारक का बहुवचन

§ १९१. हिन्दी मे आकारान्त तद्भव संज्ञाओं को एकारान्त बना कर अविकारी कर्त्ता कारक का बहुवचन बनाते है। मागधी प्राकृत मे कर्त्ता कारक, पुल्लिग, बहुवचन में आकारान्त शब्दों में यही विकार पाया जाता है।[१] मागधी के इस रूप को देखकर कोई व्यक्ति यह मान सकता है कि हिन्दी के तद्भव आकारान्त शब्दो का परसर्गहीन बहुवचन वाला रूप मागधी की देन है, किन्तु इस विचार को स्वीकार करने में कठिनाई यह है कि मागधी प्राकृत की पूर्वी शैली है और आकारान्त को बहुवचन मे एकारान्त बनाने के उदाहरण हिन्दी की पछाँही बोलियो मे मिलते है। हिन्दी की पछाँही बोलियो की व्याख्या मे पश्चिमी अपभ्रंश से बहुत सहायता मिलती है। पश्चिमी अपभ्रंश, मारवाड़ी (साथ ही कुमाउनी, गढ़वाली और मेवाड़ी) के आकारान्त शब्दो के अविकारी बहुवचन के उद्भव के सम्बन्ध मे जानकारी देती है। यह कहा जा सकता है कि तद्भव पुल्लिगवाची शब्दो का अन्त्य 'आ' अपभ्रंश के अन्त्य 'ओ' अथवा 'औ' का निर्बल रूप है; किन्तु इस कथन से बहुवचन के अन्त्य 'ए' पर कोई प्रकाश नही पड़ता। इस सम्बन्ध मे मै इस समय भी हार्नली के इस सुझाव का समर्थन करना चाहता हूँ कि परसर्गहीन कर्त्ताकारक के बहुवचन के इस अन्त्य 'ए' और परसर्गयुक्त कर्त्ताकारक के एकवचन वाले रूप मे साम्य है। वह मूलतः सम्बन्ध कारक के एकवचन का रूप है (जैसा कि पहले बताया जा चुका है)। लोग, वृन्द अथवा इसी प्रकार के किसी समूहवाची शब्द का बोध प्रसग के अनुसार होता है। यह अनुमान केवल कर्त्ताकारक के विकारी तथा अविकारी बहुवचन से ही पुष्ट नही होता अपितु 'कुत्ते लोग' जैसे प्रयोगो से भी प्रमाणित होता है। 'कुत्ते लोग' के समान कम प्रयोग मिलते है और ग्राम्य माने जाते हैं। सम्बन्ध कारक का एकवचन किस प्रकार कर्त्ताकारक मे परिवर्तित हुआ, इसे समझाने के लिए बघेलखंडी एक रूप प्रस्तुत करती है। बघेलखंडी में द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम का बहुवचन वाला रूप "तिहारै" कर्ताकारक मे भी प्रयुक्त होता है। अवधी में कर्त्ताकारक बहुवचन की पुरानी विभक्ति 'न' अथवा 'नि' सुरक्षित है। संस्कृत मे नपुसक लिग के कर्त्ता तथा कर्मकारक के बहुवचन मे प्रयुक्त 'नि' से इसका सम्बन्ध है। अवधी में 'न' अथवा 'नि' का प्रयोग पुल्लिग और स्त्रीलिग दोनों मे होता है। इस तरह का प्रयोग प्राकृत में भी पाया जाता है।[२]

क. स्त्रीलिग के कर्त्ताकारक के बहुवचन मे प्रयुक्त एं, आँ और अनुस्वार सस्कृत में नपुंसक लिंगी कर्त्ता तथा कर्मकारक के बहुवचन में प्रयुक्त 'आनि' से सम्बन्धित हैं। प्राकृत मे यह 'आनि' विभक्ति अवकुचन के कारण-अन्त्य 'अइँ' मे परिवर्त्तित हुई। 'इ' लोप तथा 'न' के अनुस्वार बनने पर यह रूप संभव हुआ; कर्त्ताकारक के बहुवचन की विभक्ति के रूप में अन्त्य 'आँ' शौरसेनी में प्रयुक्त हुआ है।[३]

---

[१] लैस्सेन, इन्स्ट० लिग प्राक०, पृ० ४३०। बीम्स, कम्प० ग्राम० खं० २, पृ० २०५।

[२] लैस्सेन, इन्स्ट० लिग० प्राक०, पृ० ३०९।

[३] वही, पृ० ३७९।

ख. ऊपर के शीर्षकों में जिन संज्ञाओं का उल्लेख नही हुआ है, उनका बहुवचन नष्ट हो चुका है। एकवचन का रूप ही बहुवचन में प्रयुक्त होता है।

बहुवचन के विकारी रूप का उद्भव

§ १९२. हिन्दी के विकारी बहुवचन का प्राचीनतम रूप बीम्स द्वारा उद्धृत चन्दवरदायी का 'आन' वाला रूप है। यह 'आनम्' प्राकृत के 'आणम्' से सम्बन्धित है। हिन्दी मे प्रयुक्त अन्त्य 'औं' 'ओं' तथा 'आँ' का बहुवचनवाला रूप प्राकृत की सम्बन्ध कारक की विभक्ति 'हुँ' और 'हूँ' से उद्भूत हैं। कुछ बोलियो मे विकारी बहुवचन 'अन' और 'अनि' के योग से बनते है, अन तथा अनि संस्कृत मे नपुंसक लिंग के कर्त्ता तथा कर्मकारक बहुवचन की विभक्ति 'आनि' से सम्बन्धित है। संस्कृत मे सम्बन्ध कारक की विभक्ति 'आनाम्' अथवा 'आणाम्' या 'आम्', के सादृश्य के कारण कई बार दोनो में भ्रम उत्पन्न होता है।

क. पूरब की बोलियों में बहुवचन के अन्त्य 'न' से पहले 'हि' का प्रयोग होता है। इस प्रकार के रूप की व्याख्या करने मे मैं असमर्थ हूँ। इस सम्बन्ध मे मैं इतना ही कह सकता हूँ कि विकारी रूप को स्पष्टता से व्यक्त करने के लिए 'हि' (सं० स्य) का प्रयोग होता है। केवल अन्त्य 'अन्' से इतनी स्पष्टता नही आ सकती। विकारी एक वचन के लिए 'हि' (सं० स्य) का प्रयोग होता ही है।[1] इसी उद्देश्य के लिए अर्थात् विकारी बहुवचन के लिए भी उसका प्रयोग आवश्यक समझा गया। बहुवचन में प्रयुक्त न्ह की व्याख्या हार्नली के कथनानुसार की जा सकती है।[2] हार्नली ने प्राकृत के बहुवचन मे प्रयुक्त ण से न्ह की उत्पत्ति बताई है। यह 'ण्ण' प्राकृत मे ही 'न्ह' बन चुका था।[3]

§ १९३. नेपाली में अविकारी तथा विकारी बहुवचन में 'हेरु' अथवा 'हरु' की रचना दो तत्वों से हुई है; पहला तत्व 'हि' (अथवा 'ह') (सं० स्य) है, जो प्राकृत मे सम्बन्ध कारक के एक वचन की विभक्ति के रूप मे प्रयुक्त हुआ है;[4] दूसरा तत्व 'केरको' है, जो केरौ, केरो और केरु मे रूपान्तरित हुआ। 'घोड़हकेरु' जैसे शब्द इसके उदाहरण है। 'क' के लोप के कारण 'घोड़ाहेरु' जैसे रूप का प्रचलन हुआ।

परसर्गों की व्युत्पत्ति

§ १९४. हिन्दी के भाषा वैज्ञानिक अध्ययन मे जिन कठिन प्रश्नों का सामना करना पड़ता है; उनमे से एक है—सम्बन्ध कारक के परसर्ग की व्युत्पत्ति। बनारस के डाक्टर हार्नली ने इस कठिन प्रश्न का समुचित उत्तर पाने में सफलता प्राप्त की है।[5] हार्नली के तर्कों से अवगत होने के लिए मैं उनकी तुलनात्मक व्याकरण के अध्ययन का सुझाव देना चाहता हूँ। मैं यहाँ उनकी खोज के परिणामों को संक्षेप में लिखता हूँ।

---

[1] देखिए, § १८०।

[2] कम्प० ग्राम०, पृ० २११।

[3] लैस्सेन, इन्स्ट० लिंग० प्राक०, पृ० २७१।

[4] वही, पृ० ४६२।

[5] देखिए, § ३७७, मेरे व्याकरण के प्रथम संस्करण के पश्चात् बीम्स ने इस मान्यता को स्वीकार कर लिया; देखिए, बीम्स० कम्प० ग्राम०, खं० २, पृ० २७६-२८७।

सम्बन्ध कारक के परसर्गों की व्युत्पत्ति

क. हिन्दी के सम्बन्ध कारक के परसर्ग का, कौ, को, क, कर, करा, केरौ, केरो, केरा, केर, गो, रो और ळो या तो सीधे संस्कृत के कृत (√ कृ का कृदन्त रूप) से सम्बन्धित है या इसी 'कृत' के प्राकृत मे हुए रूपान्तरों के साथ। 'कृत' के साथ प्राकृत का सामान्य प्रत्यय 'क' जुड़ा, 'त' का लोप हो गया, ऋ परिवर्तित हुई 'एर' में। इस प्रकार 'केरक' अथवा 'केरिक' रूप निष्पन्न हुआ। प्राकृत मे 'केरक' अथवा 'केरिका' का प्रयोग प्रायः सम्बन्धी संज्ञा के पश्चात हुआ है, सम्बन्ध कारक के लिंग-वचन को वह ग्रहण करता है। इस तरह के प्रयोग के कारण किसी प्रकार का अर्थभेद नही पाया जाता। आगे चलकर केरक, केरिक या इसके अन्य रूप सम्बन्धकारक के लिए प्रयुक्त होने लगे और फिर तो आज की हिन्दी की भाँति सम्बन्ध कारक का परसर्ग ही बन गया। जिस तरह 'घोटक' से 'घोड़ो', 'घोड़ा' या 'घोड़' का जन्म हुआ, उसी प्रकार 'केरकः'; से हिन्दी के परसर्ग 'केरो', 'केरा', 'केर', 'के' की उत्पत्ति हुई। 'कृत' के ऋकार के लिए पुराने 'एर' के स्थान पर 'अर' की उपलब्धि प्राकृत के 'करितो', 'करिओ', जैसे रूपों से हुई। पूरब की बोलियो मे इन्ही रूपों से 'कर', 'कर्' और 'क' का प्रचलन माना जाता है। हिन्दी के सम्बन्धकारक के परसर्ग के ये सब प्राचीनतम रूप है। स्तरीय हिन्दी, मारवाड़ी और मेवाड़ी मे प्रथम पुरुष और मध्यम पुरुषवाची सर्वनामो के सम्बन्ध कारक मे 'करको' अथवा 'केरको' के आदि तथा अन्त्य 'क' के लोप के कारण 'रौ', 'रो' अथवा 'रा' शेष रह गया। ब्रज, कन्नौजी और स्तरीय हिन्दी मे प्रचलित सम्बन्ध कारक के परसर्ग 'कौ' 'को' और 'का' तथा मारवाड़ी के परसर्ग 'गो' की व्युत्पत्ति भी ऊपर दिये गये रूपो के आधार पर सरलता से की जा सकती है। मारवाड़ी के परसर्ग 'ळ' का उद्भव प्राकृत में 'कृतक' के एक अन्य रूप' केलको' से माना जा सकता है।

ख. मारवाड़ी मे प्रयुक्त सम्बन्ध कारक का परसर्ग दा, गढ़वाली के परसर्ग 'दो' संक्षिप्त रूप है मारवाड़ी में प्रयुक्त परसर्ग 'हन्दो' के।[1] बीम्स ने मारवाड़ी के परसर्ग 'हन्दो' की व्युत्पत्ति दी है—"संस्कृत मे अस् के वर्त्तमानकालिक कृदन्त रूप 'सन्त' का 'स' मारवाडी के सामान्य नियम के अनुसार 'ह' मे परिवर्तित हुआ। सिन्धी में इसका 'सन्दो' रूप मिलता है।"[2] मारवाड़ी मे इस परसर्ग का उदाहरण निम्न प्रकार है—घोड़ा दा (पुराना रूप—घोड़ा हन्दो)।

ग. मारवाड़ी में सम्बन्ध कारक का परसर्ग 'तनौ' (गुज तणो) अधिक प्रचलित नही है। अपभ्रंश में इसका 'तणो' रूप प्रचलित था। पुरानी गुजराती मे भी इसका प्रयोग मिलता है। बीम्स 'तनौ' या 'तणो' का सम्बन्ध संस्कृत के 'तन' से मानने है; संस्कृत मे 'तन' के उदाहरण है—सनातन, पुरातन, नूतन; ये तीनों शब्द क्रमशः सना, पुरा और नू (नव) के साथ 'तन' के योग से बने है।[3] यदि यह व्युत्पत्ति स्वीकार कर ली जाती है तो 'तनौ' के अन्त्य 'ओ' के सम्बन्ध मे कोई दुविधा नही हो सकती। प्राकृत के प्रत्यय 'तनको' और 'तनो' में सादृश्य है। इस प्रकार के अनुमान की पुष्टि इस बात से भी होती है कि मारवाड़ी लोग 'क' तथा अन्य निरर्थक अक्षर आज भी शब्द के साथ जोड़ते हैं। तथ्यो पर विचार करने के पश्चात यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी के परसर्ग साधारणतया प्राकृत के स्वतंत्र शब्दो से बने हैं;

---

[1] देखिए, § १७२। हार्नली ने 'दा' अथवा 'दो' परसर्ग की व्युत्पत्ति √देना के पूर्णकालिक रूप 'दिया' से मानी है। देखिए, कम्प० ग्राम०, पृ० २३९।

[2] कम्प० ग्राम० खं० २, पृ० २९०, २९१।

[3] कम्प० ग्राम०, खं० २, पृ० २८७।

ये शब्द मूलतः पूर्ववर्ती शब्द के व्याकरण सम्बन्धी परिवर्तन स्वीकार करते थे। अन्य परसर्गों के विपरीत 'तनौ' इस नियम के लिए अपवाद ही माना जाएगा। हमे इस विषय पर अधिक जानकारी की प्रतीक्षा करनी चाहिए।

सम्प्रदान और कर्मकारक के परसर्ग की व्युत्पत्ति

§ १९५. इस व्याकरण के प्रथम सस्करण मे मैने कर्मकारक के परसर्ग-'को', 'कौं' आदि की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में ट्रम्प का समर्थन किया था। ट्रम्प ने 'को' 'कौं' आदि की व्युत्पत्ति संस्कृत के उसी 'कृत' से मानी है, जिससे सम्बन्ध कारक के परसर्ग 'का' आदि का उद्‌भव हुआ है। प्रथम संस्करण के पश्चात मै इस विषय मे अध्ययन करता रहा। इस अध्ययन के फलस्वरूप मुझे हार्नली का सुझाव उपयुक्त दिखाई दिया।[1] बीम्स ने भी हार्नली का समर्थन किया है।[2] हार्नली तथा बीम्स ने 'क' से प्रारंभ होने वाले कर्मकारक के विभिन्न परसर्गों का सम्बन्ध स० 'कक्ष' शब्द के अधिकरण एकवचन रूप 'कक्षे' से स्थापित किया है। बंगाली मे 'निकट' के अर्थ मे 'काछे' का प्रयोग होता है। पुरानी हिन्दी मे कक्ष>काख>(काँख); सामान्य नियम के अनुसार 'ख' का 'ह' शेष रहा; फिर 'ह' का लोप, इस प्रक्रिया के कारण कर्मकारक परसर्ग के ये रूप उपलब्ध हुए—'काहं', 'कह', 'काहुं' अथवा 'कहुं' और 'को'। बीम्स ने अपनी मान्यता की पुष्टि मे ध्वनि सम्बन्धी समान परिवर्तन का उदाहरण दिया है—सं० पक्ष, हिं० पाख, पाखु, पहु।[3] इस परसर्ग के पुराने रूपों मे जो 'ह' मिलता है, उसकी व्युत्पत्ति इसी ढंग से की जा सकती है। पुरानी मान्यता के आधार पर इस 'ह' का कोई कारण नही दिया जा सकता। 'कक्ष' शब्द और को, कौ आदि के अर्थ मे भी अधिक अन्तर नही है। यह बताया जा चुका है कि बगाली मे निकट के लिए 'काछे' शब्द का प्रयोग होता है।

क. पछाँही हिन्दी मे प्रयुक्त कर्मकारक के परसर्ग 'ने', 'नै' और 'ना' का विवेचन करते समय नेपाली के परसर्ग 'ले' का उल्लेख किया जाता है। नेपाली के 'ले' का सम्बन्ध लगि (लग) से है। हिन्दी की कुछ बोलियो मे 'लगि' इस समय भी 'को' तथा 'तक' के अर्थ मे प्रयुक्त होता है।[4] ध्वनि सम्बन्धी प्रचलित नियम के अनुसार 'ल' परिवर्तित हुआ 'न' मे। 'ल' का 'न' मे रूपान्तरण मारवाड़ी के इन शब्दो मे देखा जा सकता है—अर० 'लानत' के लिए 'नानत', 'लन्दन' के लिए 'नदन'। 'नानत' और 'नन्दन' शब्दो का प्रयोग मारवाड़ी के 'खयालों' मे हुआ है।

ख. हिमालय की बोलियो मे कर्मकारक के परसर्ग के रूप मे प्रयुक्त 'कणि' का सम्बन्ध स० कर्ण के अधिकरण एकवचन के रूप 'कर्णे' से है। यह 'कणि' ब्रज तथा कन्नौजी के 'कने' से सादृश्य रखता है, जैसे—मेरे कने आओ। पछाँही बोलियो मे 'सणि' मिलता है। हार्नली ने 'सणि' का उद्‌भव स० सगे से माना है। हार्नली ने 'सणि' के साथ अपादान कारक के परसर्गो—'सैं', 'से', 'सन', 'सने' और 'सेनी' का

---

[1] कम्प० ग्राम० § ३७५, १।

[2] कम्प० ग्राम० खं० २, पृ० २५२-२५९।

[3] वही, पृ० २५८।

[4] एक संभावित व्युत्पत्ति और है। इस व्युत्पत्ति का सुझाव हार्नली ने दिया है। हार्नली ने 'लें' की व्युत्पत्ति सं० लब्ध (: स्त० हि० लिया) से मानी है। लब्ध शब्द के अधिकरण कारक का एक वचन में रूप है—लब्धे। देखिए, कम्प० ग्राम० § ३७५, २।

सम्बन्ध स्थापित किया है। कुमाउनी के 'हुनि' की व्युत्पत्ति स्पष्ट नही है। मेरे विचार से इसका सम्बन्ध कर्तृत्वबोधक सज्ञा 'हुन्या' ($\sqrt{}$हुनु=$\sqrt{}$ होना) से है; मेरा हुन्या अंस[1] (मेरा अंश)।

ग. 'को' के स्थान पर कही कही 'तै' का प्रयोग होता है, 'अपने को'='अपने तै'। 'तै' की उत्पत्ति सं० स्थान शब्द के अधिकरण कारक के एकवचनवाले रूप 'स्थाने' से हुई है।[2]

परसर्ग युक्त कर्त्ताकारक के परसर्ग की व्युत्पत्ति

§ १९६. इस व्याकरण के प्रथम सस्करण के पश्चात बीम्स ने जो तथ्य प्रस्तुत किये, उनके कारण परसर्ग युक्त कर्ताकारक के 'ने' के सम्बन्ध मे दीर्घकालीन विवाद समाप्त हो गया। बीम्स ने कर्त्ताकारक के परसर्ग 'ने' का सम्बन्ध कर्मकारक के उन परसर्गो से जोड़ा है, जिनका आरभ 'न' से होता है।

क. पहले इस 'ने' का सम्बन्ध करणकारक की संस्कृत विभक्ति 'इन' से बताया जाता था, इस मान्यता के विरुद्ध निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत किये गये।

पहली बात तो यह कि 'ने' संस्कृत की विभक्ति 'इन' की तरह संज्ञा के साथ संलग्न न होकर हिन्दी के अन्य परसर्गों-में, पर आदि के समान संज्ञा से पृथक् रहता है। 'में', 'पर' आदि परसर्गो के सम्बन्ध मे हमें यह अच्छी तरह ज्ञात है कि उनका उद्भव स्वतत्र सज्ञाओं से हुआ है। दूसरा तथ्य यह है कि एकारान्त शब्दो के साथ संस्कृत विभक्ति 'इन' नही आती। अधिक प्रयुक्त होने के कारण प्रत्यय या शब्द अवकुंचित होते है। उनका दीर्घीकरण संभव नही, 'इन' से 'ने' का विकास इसीलिए संभव नही है। तीसरा तर्क यह है कि 'ने' का प्रयोग हाल मे होने लगा है। पुरानी पुस्तकों में इसका प्रयोग नही मिलता। यदि 'ने' सं० 'इन' से उद्भूत है, तो इसका प्रयोग पुरानी रचनाओ मे भी मिलना चाहिए। अन्तिम तर्क यह है कि वर्त्तमान स्तरीय हिन्दी के नियम के अनुसार सर्वनाम के विकारी रूप के साथ 'ने' परसर्ग का प्रयोग होना चाहिए, पुराने लेखको ने उनके साथ 'ने' का प्रयोग नही किया, सर्वनाम के परसर्ग हीन विकारी रूप से काम चलाया है। इस बात से सिद्ध होता है कि संस्कृत मे करणकारक के एकवचन मे जो विभक्ति जुड़ती थी, वह बहुत पहले लुप्त हो चुकी। राजपूताना की बोलियों मे संस्कृत के करणकारक की विभक्ति विकृत अवस्था में आज भी विद्यमान है। राजपूताना की बोलियों मे कर्ताकारक में 'ने' अथवा ऐसा ही कोई परसर्ग प्रयुक्त नही होता; मारवाड़ी मे 'घोड़े ने' के स्थान पर 'घोड़ै' का प्रयोग होता है।

ख. 'ने' की ठीक-ठीक व्युत्पत्ति के लिए गुजराती से सहायता मिलती है। गुजराती मे सम्प्रदान कारक मे परसर्ग 'ने' का प्रयोग होता है। सम्प्रदान के अतिरिक्त गुजराती मे ऐसे बहुत से स्थलो पर भी परसर्ग 'ने' का प्रयोग मिलता है, जहाँ स्तरीय हिन्दी मे कर्त्ता (परसर्ग युक्त) कारक के साथ 'ने' का उपयोग होता है। इस बात को ध्यान में रख कर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी में परसर्ग युक्त कर्त्ताकारक में प्रयुक्त होने वाले 'ने' और गुजराती तथा पंजाबी के सम्प्रदान कारक मे प्रयुक्त 'ने' में निकट सम्बन्ध है। अन्तर इतना ही है कि गुजराती परसर्ग युक्त कर्त्ता और कर्म दोनो मे 'ने' का उपयोग करती है और हिन्दी केवल विकारी कर्ता के साथ। कर्मकारक के लिए हिन्दी में स्वतंत्र परसर्ग पहले से विद्यमान है, अतः 'ने' केवल कर्त्ताकारक तक सीमित रह गया। ऐतिहासिक और भौगोलिक दोनों दृष्टियो से गुजराती और हिन्दी मे निकट का सम्बन्ध है।

---

[1] देखिए, § १९८, ख। ल्यूक १२।

[2] देखिए, § १९८, ख।

यदि अब 'ने' की व्युत्पत्ति के लिए कोई मुझसे पूछेगा तो मै तत्कोल उत्तर दूंगा कि इस 'ने' का सम्बन्ध√लग से है। पछाँही हिन्दी की कुछ बोलियो मे भी 'ने' का प्रयोग सम्प्रदान कारक के परसर्ग 'को' के स्थान पर पाया जाता है। नेपाली मे 'लग' तथा उससे उद्भूत रूप का प्रयोग होता है। 'ने' की व्युत्पत्ति इस प्रकार होगी—स० भूतकालिक कृदन्त, कर्तृवाच्य-लग्य, प्रा० लग्गिओ, हि० लगि, ले, ने। कही कही 'ने' के साथ अनुस्वार का प्रयोग भी होता है, किन्तु यह अनुस्वार स्तरीय हिन्दी का अपना नही है। अन्य बोलियो के अनुकरण के कारण उसका प्रयोग होने लगा।

अपादान कारक के परसर्ग

§ १९७. पहले उल्लेख किया जा चुका है कि अपादान कारक के परसर्ग 'से' तथा उसके अन्य रूपों—सं, सें, सैं, सने, सन और सनी का सम्बन्ध 'सगे' से है। सस्कृत मे 'सग' शब्द के अधिकरण कारक के एक वचन मे 'सगे' रूप बनता है। कुछ वोलियों मे अपादान कारक के परसर्ग के लिए 'हे' का प्रयोग मिलता है, जो 'स' के 'ह' मे परिवर्तन का साक्षी है। 'सों' और 'सौ' स्वभावतः सस्कृत के 'सम्' से उद्भूत है। 'सम्' का 'म्' ओष्ठ स्थानीय संयुक्त स्वर 'ओ' अथवा 'औ' मे परिवर्त्तित हुआ।

क. संस्कृत मे 'तस्' से भी अपादान कारक की अभिव्यक्ति होती है। सस्कृत सज्ञाओ के साथ 'तस्' सर्वत्र अपादानकारक का अर्थ प्रकट करता है। इस 'तस्' से हिन्दी के 'तें', 'ते' और 'तन' की उत्पत्ति हुई। यह बात उल्लेखनीय है कि सस्कृत का 'तस्' प्राकृत मे नियमित रूप से 'तो' बनता है। हिन्दी मे अपादान कारक के लिए प्रयुक्त तें, ते आदि का सम्बन्ध इस 'तस्' से स्थापित किया जाता है, किन्तु इस व्युत्पत्ति के बारे मे सन्देह का एक कारण है। जैसे अन्य परसर्गो के सम्बन्ध मे यह धारणा बन चुकी है कि उनका उद्भव किसी न किसी स्वतंत्र संज्ञा से हुआ है, उसी प्रकार इन परसर्गो की उत्पत्ति भी प्रत्यय से न होकर संज्ञा से होनी चाहिए। मै इस बारे में हार्नली का समर्थक हूँ। उन्होने 'ते' तथा 'तें' का सम्बन्ध तॄ (नियमित रूप तीर्ण) के कृदन्त रूप 'तरित' के अधिकरण रूप 'तरिते' से माना है। सस्कृत का 'तरिते' प्राकृत मे 'तरिए' अथवा 'तइए' और वहाँ से हिन्दी का 'ते'। 'ते' के साथ कही-कही जो अनुस्वार दिखाई देता है, वह स्वाभाविक नही है।

अधिकरण कारक के परसर्ग

१९८. अधिकरण कारक के परसर्ग 'में' तथा इसके अन्य रूपों का सम्बन्घ संस्कृत शब्द 'मध्य' के अधिकरण कारक एकवचन के रूप 'मध्ये' से जोड़ा जाता है। इस परसर्ग के अन्य रूप है—मध्य, माघ, माहि, मह। ये सभी रूप समान विकास के परिचायक है। 'मध्य' शब्द का 'घ्' परिवर्त्तित हुआ 'ह्' मे। अन्त्य 'य' §९० के अनुसार 'इ' बनकर लुप्त हो गया। 'मज्झ' तथा 'मज्झि' मे 'ज्झ' स्थानापन्न है 'ध्य' का (देखिए §१०७)। दीर्घरूप 'माहे' प्राकृत के बढे हुए रूप 'मध्यके' से बना। हिन्दी मे प्रयुक्त अनुस्वार सहित रूपो—माहिं, महं, में, मो और मज्झं—का उद्भव संस्कृत 'मध्यम्' से माना जाता है। 'मध्य' शब्द के कर्मकारक के एकवचन में 'मध्यम्' बनता है। 'मे' अथवा 'मै' रूपान्तर है 'माहि' के; महं, मँ इन मे 'ह' के लोप के पश्चात् निकटस्थ स्वरो मे सन्धि हुई है।[1]

---

[1] अधिकारी विद्वान् प्रोफ़ेसर बेवर ने 'मे' की उत्पत्ति संस्कृत अधिकरण कारक के एकवचन की विभक्ति 'स्मिन्' से मानी है, किन्तु मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ। बेवर के इस

क. 'में' के अतिरिक्त 'पर' तथा उसके अन्य रूपों का उपयोग भी अधिकरण कारक के परसर्ग के रूप मे हुआ है। 'पर' संस्कृत के 'उपरि' मे उद्भूत है। मारवाड़ी मे पुराने सलग्न रूप से लेकर आज तक 'उपरि' का 'उ' सुरक्षित है। सं० 'उपरि' से भोज० परि, स्त० हि० पर, ब्रज पै और उर्दू 'प' का विकास हुआ।

ख प्रोफेसर मोनेर विलियम्स ने 'तक' की उत्पत्ति 'दघ्न' से मानी है। सस्कृत मे 'दघ्न' का प्रयोग उसी अर्थ मे होता है[1] जिस अर्थ मे हिन्दी भाषी 'तक' परसर्ग का प्रयोग करते है। सस्कृत के 'जानुदघ्न' का वही आशय है, जो हिन्दी के 'घुटने तक' का है। इस व्युत्पत्ति को स्वीकार करने मे एक ही बाधा है। अन्य परसर्गों की व्युत्पत्ति हमे इस बात के लिए प्रेरित करती है कि 'तक'[4] का उद्भव भी किसी स्वतंत्र शब्द से होना चाहिए। मैं हार्नली[2] के इस विचार का समर्थन करना चाहता हूँ कि स० √तॄ के भूतकालिक कृदन्त रूप 'तरित' से 'तक' का उद्भव हुआ। सम्प्रदान कारक का 'कु' उसके साथ जोडा गया, 'र' तथा 'त' लुप्त हो गये।[3] 'तलक' का 'ल' तरित के 'र' का प्रतिनिधित्व करता है। 'तक' 'तलक' का सक्षिप्त रूप है। हार्नली ने 'ते' तथा 'तै' का उद्भव भी 'तरित' से माना है।

ग. 'तक' अथवा 'तलक' के अर्थ को 'लगि' अथवा 'लागि' परसर्ग भी व्यक्त करते है। इनकी उत्पत्ति स०√लग के भूतकालिक कृदन्त रूप लग्य, प्रा० लग्गिओ से मानी जाती है। प्राकृत के अन्य रूप लगिऊण स० लगित्व से 'लो' और 'लौ' की उत्पत्ति हुई[4]। मध्य 'ग' के लोप, निकटस्थ स्वरों की सन्धि और 'ण' के रूपान्तर से 'लगिऊण' रूपान्तरित हुआ 'लो' अथवा 'लौ' मे। मै इस बारे में भी हार्नली का समर्थन करना चाहता हूँ; हार्नली ने 'लों' और 'लौ' की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है—अपभ्रंश मे अधिकरण कारक का एकव० लइअहुँ सं० अधि० रूप लब्घे (?) थे।[3]

वैकल्पिक सुझाव को तो किसी तरह विचारणीय नहीं माना जा सकता कि हिन्दी का 'में' अरबी के 'मिन' का द्योतक है। आधुनिक हिन्दी में अरबी के अधिक शब्द नही मिलते, फिर परसर्ग आदि के रूप में तो किसी अरबी शब्द के प्रयोग की कल्पना भी नहीं की जा सकती। उर्दू में भी 'मिन' स्वतंत्र रूप से न आकर अरबी के वाक्य खंडों में ही प्रयुक्त हुआ है; जैसे—'मिन जुम्ला', 'मिन जानिब' आदि। इन वाक्य खंडों में भी वह पूर्वसर्ग के रूप में आया है, परसर्ग के रूप में उसका प्रयोग नहीं हुआ। बेवर के 'में' सम्बन्धी विचारों से अवगत होने के लिए देखिए, जेटंग १८७७, ३३।

१. संस्कृत ग्रामर ८०, २०।

२. कम्प० ग्राम० पृ० २२५, २२६।

३. कम्प० ग्राम० पृ० ११४।

अध्याय ६

विशेषण

§ १९९. हिन्दी के विशेषणों मे किसी प्रकार की जटिलता नही है। इसीलिए उनके विश्लेषण की आवश्यकता प्रतीत नही होती। विशेषणो को दो भागो मे बाँटा जा सकता है—(१) अविकारी विशेषण, (२) विकारी विशेषण। हिन्दी अविकारी विशेषण अँग्रेजी विशेषणो की भाँति अपने विशेष्य के कारण किसी प्रकार का विकार ग्रहण नही करते। इसीलिए अविकारी विशेषणो के सम्बन्ध मे कुछ लिखना अनावश्यक है। समस्त आकारान्त विशेषण विकारी विशेषण है। आकारान्त तद्भव संज्ञाओ की भाँति आकारान्त विशेषण परसर्गयुक्त विकारी एकवचन मे एकारान्त बनते है। सम्बन्ध कारक के परसर्ग 'का' के परिवर्तन के सम्बन्ध में जो नियम दिये गये है, वे आकारान्त विशेषणो पर भी लागू होते है। इन नियमो का उल्लेख सुविधा के लिए किया जा रहा है—

विकारी विशेषणों के रूप

(१) पुल्लिगवाची विशेष्य से पहले विशेषण का अन्त्य 'आ' अपरिवर्तित रहता है।

(२) परसर्गहीन कर्त्ताकारक के एकवचन के अतिरिक्त पुल्लिगवाची विशेष्य चाहे किसी कारक और वचन में हो, विशेषण का अन्त्य 'आ' परिवर्त्तित होता है 'ए' मे।

(३) स्त्रीलिंगवाची विशेष्य चाहे किसी कारक और वचन मे हो, विशेषण का अन्त्य 'आ' परिवित्तत होता है 'ई' मे।

विशेषणों के सम्बन्ध मे निम्नलिखित उदाहरणों से सहायता मिलेगी—

अविकारी विशेषण

सुन्दर फूल
सुन्दर फूल पर
सुन्दर फूलो पर
सुन्दर लड़की
सुन्दर लड़कियाँ
सुन्दर लड़की का
सुन्दर लड़कियों का
धर्मी पुरुष
धर्मी पुरुष का
धर्मी पुरुषों का
धर्मी पुरुषों में

धर्मी स्त्री
धर्मी स्त्री को
धर्मी स्त्रियों को

विकारी विशेषण

काला घोड़ा
काले घोड़े
काले घोड़े का
काले घोड़ों पर
काली बिल्ली
काली बिल्लियाँ
काली बिल्ली पर
काली बिल्लियो को

क. पुल्लिगवाची विशेष्य का ईकारान्त विशेषण कही-कही विकारी बनता है। ऐसे स्थलो पर अन्त्य 'ई' परिवर्तित होती है 'इया' मे; जैसे—दुखी, दुखिया।

§ २००. कुछ विशेषणो का अन्त्य स्वर 'आँ' बनता है। इनका रूप भी ऊपर दिये गये आकारान्त विशेषण के समान बदलता है। यदि विशेष्य पुल्लिगवाची हो और विकारी कारक मे प्रयुक्त हुआ हो तो इन विशेषणो का अन्त्य 'आँ' परिवर्तित होता है—'एँ' मे। यदि विशेष्य स्त्रीलिगवाची है—चाहे वह किसी वचन और कारक मे हो—विशेषण का अन्त्य 'आँ' परिवर्तित होता है 'ईं' मे। जिन सख्यावाची विशेषणो के अन्त मे 'वाँ' आता है, उन पर भी यही नियम लागू होता है; उदाहरण—बाये हाथ; दसवी घडी पर; बीसवें महीने मे।

उल्लेखनीय—संज्ञा की भाँति बहुवचन मे विशेषणो को एंकारान्त, आँकारान्त और ओंकारान्त नही बनाते। कविता मे जब कभी विशेषण पादान्त मे आते है तो बहुत कम स्थलो पर बहुवचन सूचित करने के लिए उनके अन्त्य स्वर को 'एँ', 'आँ' अथवा 'ओ' मे परिवर्तित किया जाता है। पूर्णता सूचक अथवा अपूर्णता सूचक कृदन्तवाची शब्द जब क्रियाविशेषण के रूप मे प्रयुक्त होते है, तो उन पर भी विकारी विशेषणो से सम्बन्धित सभी नियम लागू होते है।

§ २०१. सज्ञा और सर्वनाम के विकारी रूप के साथ 'सरीखा' शब्द जोड कर सादृश्य व्यक्त किया जाता है। बोलियों मे 'सरीखा' के अन्य रूप सरीका, सारिखा भी प्रयुवत होते हैं। 'सरीखा' शब्द की व्युत्पत्ति है—सं० सदृक्ष>प्रा० सरिच्छं>हि० सरीखा। सरीखा के रूप आकारान्त विशेषणो के समान होते है; जैसे—तुम्ह सरीखे पुरुषों को; उस सरीखे को मत मानो।

§ २०२. सादृश्य के लिए 'सा' का प्रयोग भी किया जाता है। अन्तर इतना ही है कि इससे कुछ हीनता का भाव प्रकट होता है।

क. आकारान्त विशेषणों की भाँति 'सा' का अन्त्य 'आ'—'ए' और 'ई' मे परिवर्तित होता है। यदि वह आकारान्त विशेषण के साथ प्रयुक्त हो रहा है, तो उसके अन्त्य 'आ' मे भी लिंग और वचन के अनुसार परिवर्तन होता है; उदाहरण—लाल-सा फूल; नीली-सी आँखें; पीले-से पत्ते।

ख. सादृश्य अथवा अनुरूपता के लिए 'सा' के योग से संज्ञा अथवा सर्वनाम को विशेषण बनाते हैं। इस स्थिति में सर्वनाम का विकारी रूप प्रयुक्त होता है; जैसे—खड्ग-सा हथियार; मुझ-सा पापी तुम-सा मित्र।[1]

उल्लेखनीय—'सा' युक्त शब्द कभी कभी संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होता है। इस स्थिति मे 'सा' अनुबद्ध शब्द के लिंग-वचन धारण करता है; जैसे—विथा-सी छाई जाती है।

ग. संज्ञा और सर्वनाम दोनो के सम्बन्धकारक के साथ भी 'सा' का प्रयोग होता है किन्तु इस स्थिति मे वह सादृश्य का अर्थ न देकर व्यक्ति अथवा वस्तु के सम्बन्ध मे ही कुछ बताता है। ऐसे प्रयोगो में सम्बन्ध कारक में प्रयुक्त संज्ञा और 'सा' दोनों परवर्ती संज्ञा के कारण रूप बदलते है।

हम 'सा' का प्रयोग इस तरह भी कर सकते है—'पंडित की सी बोली; हाथी का सा मुंह; बाघ से दांत।'

घ. इस प्रकार के 'सा' युक्त शब्दो मे सम्बन्ध कारक के पश्चात आनेवाली संज्ञा का अध्याहार पाया जाता है। 'हाथी का सा मुह' का तात्पर्य है—हाथी का मुंह जैसा मुह।

ङ. कहीं-कही उपमित संज्ञा लुप्त रहती है, जैसे—परबत की कंदरा-सी दिखाई पड़ती है। यहां हम किसी स्त्रीलिंगवाची शब्द का प्रयोग कर सकते हैं, जैसे—वस्तु।

अधिकता सूचक अनुबन्ध

§ २०३ सादृश्य सूचक 'सा' और अधिकतासूचक 'सा' ध्वनि साम्य रखते हुए भी व्युत्पत्ति और अर्थ दोनो दृष्टियो से भिन्न है। अधिकता सूचक 'सा' विशेषण की भाँति अधिकता अथवा अत्यन्तता सूचित करने के लिए प्रयुक्त होता है; जैसे—बहुत-सा आटा, थोडी सी रोटी, ऊँचा सा पहाड, बडे से घोड़े।

क. अधिकता सूचक 'सा' सस्कृत के 'शस्' प्रत्यय से बना है। ब्रज मे इसका रूप 'सो' है। सादृश्य सूचक 'सा' सस्कृत के 'सम्' से उद्भूत है। ब्रजभाषा मे उसका रूप 'सौ' है। जिस तरह ब्रज का 'करनौ' स्त० हिं० में 'करना' बना उसी प्रकार ब्रज का 'सौं' स्त० हिं० मे 'सा' बन गया।

बोलियों के विशेषण

§ २०४ हिन्दी से सम्बन्धित बोलियो मे जो विशेषण प्रयुक्त होते हैं, उनके सम्बन्ध मे अधिक लिखने की आवश्यकता नही है। स्तरीय हिन्दी के विकारी आकारान्त विशेषण ब्रजभाषा में औकारान्त और कन्नौजी और राजपूताना तथा हिमालय की बोलियों में ओकारान्त होते है। इन बोलियो मे विशेषण विशेष्य के लिंग-वचन धारण करता है। ब्रजभाषा मे पुल्लिग वाची विशेषणो के विकारी रूप मे विकल्प से अन्त्य स्वर को सानुस्वार बनाते है; उदा० स्त० हिं० थोड़ा, ब्रज थोडौ; मार० मेवा० कन्नौ० आदि मे थोड़ो; ब्र० मीठे वचन सों अथवा मीठें वचन सों; स्त० हिं० मीठे वचन से। मारवाडी के उदाहरण है—बड़ो घोड़ो, बड़ी घोडी; बड़ा घोडा (स्त० हिं० बड़े घोडे); बडा बाछा रो तगत। कविता मे कही-कहीं विशेषण का कन्नौजी रूप प्रयुक्त होता है, जैसे—स्त० हिं० के 'साँवला' के लिए रामायण मे 'साँवरो' प्रयुक्त हुआ है।

---

[1] इसी आशय में अंग्रेजी के साथ इन क्षेत्रीय प्रयोगों की तुलना कीजिए— 'सिक लाइक' वीक लाइक आदि।

क. हिमालय की बोलियों मे इस श्रेणी के ओकारान्त विशेषण यदि पुल्लिगवाची विशेष्य के विकारी एक वचन अथवा बहुवचन के साथ आएँ तो इनका अन्त्य 'ओ' भी परिवर्तित होता है 'आ' मे। स्त्रीलिगवाची विशेष्यो के साथ विशेषण का अन्त्य 'ओ' बनता है 'ई'। जैसे—ने० ठुलो, पुल्लिग विकारी विशेष्य के साथ ठुला; स्त्रीलिगवाची विशेष्य के विकारी रूप के साथ ठुली। किन्तु स्तरीय हिन्दी का अधिकार सूचक विशेषण 'अपना' नेपाली मे निर्बल होकर 'आफनु' बनता है, किन्तु सबल रूपो के अनुकरण के कारण पुल्लिगवाची विशेष्य के साथ 'आफना' और स्त्रीलिगवाची विशेष्य के साथ 'आफनी' बनता है।

§ २०५. रामायण की भाषा मे आकारान्त विशेषणो का अभाव है; सभी विशेषण अविकारी है; केवल निम्नलिखित विशेषण इस नियम के अपवाद माने जा सकते है, संस्कृत के स्त्रीलिंगवाची तत्सम शब्दों के एकवचन वाले रूप के समान इनका रूप बनता है। स्त्रीलिंगवाची विशेषणो के साथ कभी कभी 'इ' जुडती है, जैसे—'बर राऊ'; 'बर हानि' अथवा 'बरि हानि'। 'सा' के स्थान पर प्रायः 'सम' का प्रयोग मिलता है; जैसे—दशरथ सम राऊ।

क. पूरबी बोलियों के सभी विशेषण पुल्लिग वाचक विशेष्य के अविकारी कर्त्ताकारक और विकारी रूपों के साथ सर्वत्र अविकृत बने रहते है। ग्रिअर्सन ने इस नियम के अपवाद स्वरूप आजमगढ़ और बनारस की बोली मे प्रयुक्त आकारान्त तद्भव विशेषणों का उल्लेख किया है, जो स्त० हि० के विशेषणो के समान बहुवचनवाची विशेष्यों के साथ एकारान्त बनते है। दक्षिण भागलपुर की मैथिली को छोड़कर अन्य बोलियो मे स्त्रीलिंगवाची विशेष्यों के साथ आनेवाले आकारान्त विशेषण ईकारान्त बनते है। दक्षिण भागलपुर की मैथिली मे विशेष्य के लिंग के कारण विशेषण मे कोई परिवर्तन नही होता। इस बोली मे एक आकारान्त सबल रूप मिलता है, जो स्त्रीलिंगवाची विशेषण के कारण ईकारान्त बनता है। उत्तर की मैथिली मे रामायण की पुरानी बैसवाड़ी के समान कुछ विशेषण स्त्रीलिंगवाची विशेष्य के साथ इकारान्त बनते है।

§ २०६. कविता में कही-कही कुछ विशेषण, मुख्यत तत्सम विशेषण कारक तथा लिंग को व्यक्त करने वाले संस्कृत प्रत्ययों को अपनाते है। हमे सस्कृत के स्त्रीलिंगवाची प्रत्यय 'ई' (अन्, अथवा इन् प्रत्यय के कारण उपलब्ध) और 'आ' युक्त विशेषण प्राय देखने को मिलते है। समासित शब्दो के द्वितीय पद मे भी इस प्रकार के रूप देखने को मिलते है। अन्त्य 'ई' छन्द की दृष्टि से प्रायः ह्रस्व की जाती है। उदाहरण इस प्रकार है—कामिनी . . . रतिमद मोचनी, भगति अति पावनि; सीता पुनीता; गरुड़ कै गिरा विनीता। सस्कृत पुल्लिग अथवा नपुंसक लिंग के कर्मकारक के एकवचन की 'म्' विभक्ति के साथ विशेषण का प्रयोग बहुत ही कम मिलता है—जैसे—'अजं नित राम नमामि', 'निकदय द्वदघनम्।'.

तुलना

§ २०७. तुलना करते समय हिन्दी विशेषणों के साथ प्रत्यय नहीं जोड़ा जाता। जिस संज्ञा अथवा सर्वनाम के साथ तुलना की जाती है, उसके साथ अपादान का परसर्ग जोड़ते है, इतने से ही काम चल जाता है। जैसे—यह घर उससे बड़ा है; वह वृक्ष आम के पेड़ से ऊँचा है, शहद से मीठा।

क. 'और', 'अधिक' कभी कभी फा० जियादा (हिन्दी मे इसका उच्चारण ज्यादा: अथवा जियाद. किया जाता है)—के योग से भी तुलना का आशय निकलता है। दोआबे में क्षेत्रीय रूप से 'जास्ती', या ज्यास्ती के योग से भी तुलना की जाती है।

उत्तमता सूचक विशेषण

§ २०८. विशेषण के द्वारा श्रेष्ठता अथवा उत्तमता सूचित करने के लिए 'सब' शब्द के साथ अपादान कारक का परसर्ग लगाते है, जैसे—सबसे बडा, सबसे नीच, यह मछली सब मछलियो मे सुन्दर है।

क. अँग्रेजी तथा अन्य भाषाओं की भाँति हिन्दी मे भी किसी गुण की अत्यधिकता सूचित करने के लिए विशेषण के पूर्व बहुत से शब्दो का प्रयोग होता है। ऐसे प्रयोगो मे दो वस्तुओं या गुणो की तुलना अपेक्षित नही होती। जैसे—बहुत गहरी नदी, बहुत के स्थान पर 'बड़ा' शब्द का प्रयोग भी किया जाता है, जैसे—बडा भारी पत्थर, ऐसे स्थलों पर 'बड़ा' शब्द का प्रयोग अच्छा नही माना जाता। इसी आशय के लिए अधिकता सूचक अनुबन्ध 'सा' का प्रयोग भी होता है। इस आशय के लिए साहित्यिक हिन्दी मे 'अति' और 'अत्यन्त' का प्रयोग अधिक किया जाता है, जैसे—अति सुन्दर, अत्यन्त भयानक। इसी आशय के लिए तत्सम शुद्ध विशेषण के पूर्व 'परम' शब्द जोडा जाता है; जैसे—परम अद्भुत, परम शुद्ध।

ख. तुलना करते समय किसी वस्तु, व्यक्ति आदि की श्रेष्ठता प्रकट करने के लिए तुल्य सर्वनाम अथवा सज्ञा को अधिकरण कारक मे रखते है। ऐसा करते समय उसके साथ 'मे' परसर्ग भी जोड़ा जाता है। कही-कही उस शब्द से पहले 'सब' का प्रयोग भी मिलता है। जैसे—वह सब बुद्धिमानो मे बुद्धिमान था; इन पेड़ो मे बडा यही है। इन वाक्यो की तुलना कीजिये अँग्रेजी के इस वाक्य खड से—ब्रेव अमाग द ब्रेव (brave among the brave)।

संस्कृत रूप

§ २०९. हिन्दी मे तुलना और उत्तमता सूचक कुछ संस्कृत तत्समो का प्रयोग भी किया जाता है; जैसे—उत्तम; श्री से श्रेष्ठ; प्रिय से प्रियतर, पापी से पापिष्ठ।

क. फारसी के ऐसे शब्दों का प्रयोग नही मिलता जिनसे तुलना अथवा श्रेष्ठता का भाव प्रकट होता हो। 'बिहतर' शब्द इसका अपवाद है: ऐसे हिन्दू भी बिहतर' शब्द का उपयोग करते हैं, जो उर्दू के अभ्यस्त नही हैं।

नेपाली में तुलनात्मक रूप

§ २१०. नेपाली मे उस शब्द के विकारी रूप के साथ 'भंदा' जोडते है, जिस शब्द से तुलना करना अभीष्ट है। भंदा शब्द की व्युत्पत्ति के बारे मे कहा जाता है कि यह √भन्नु (स्त० हि० भनना) का अपूर्ण कृदन्त रूप है। इसका विकारी रूप 'भन्दो' बनता है। ऊपर 'भदो' का जो प्रयोग किया गया है, उसके अनुसार व्यावहारिक रूप से यह परसर्ग की भाँति प्रयुक्त हुआ है। उदाहरण—तिम्हेरु धेरै चरा भन्दा ठुला मोल का छौ" "तुम्हारी गोरैया अन्य चिडियो से अधिक मूल्यवान"; "यो कगाली विधुवा ले उन्हेर, भन्दा ज्यास्ति हाली", उस दरिद्र विधवा ने उन लोगो मे अधिक खर्च किया। बहुत कम स्थानो पर 'भन्दा' के स्थान पर 'चाँहि' शब्द का प्रयोग होता है, यह 'चाँहि' शब्द √चाहनु के कृदन्त रूप से बना है। सज्ञा अथवा सर्वनाम के अनुसार इस 'चाहि' के रूप बदलते है, जैसे—उस चहिं धर्मी (=उससे अधिक धर्मात्मा)। उत्तमता सूचित करने के लिए विशेषण से पहले 'सब' शब्द के साथ 'चाँहि' जोड़ते हैं; जैसे—सबै चाँहि असल लुगा (सबसे अच्छा परिधान); सबै चाँहि ठुलो गनिन्या छ (कौन सबसे श्रेष्ठ गिना गया है?)।

§ २११. संज्ञाओं के उद्भव के सम्बन्ध मे §१८९-१९२, में सामान्य रूप दिये गये हैं। वे नियम विशेषणों पर भी लागू होते है। आकारान्त, ओकारान्त और औकारान्त तद्भव विशेषण प्राकृत के 'क' प्रत्यय युक्त शब्दों से बने है। उकारान्त अथवा अनुच्चारित अकारान्त तद्भव विशेषण सस्कृत से आये है। जैसे—हिन्दी का 'काला' विशेषण सीधे सं० 'काल' से उद्भूत नही है। प्राकृत का 'कालक' 'काळ' शब्द का पूर्ववर्ती रूप है। इसके विपरीत 'सुन्दर' विशेषण सीधे संस्कृत से प्राप्त हुआ है, यह दूसरी बात है कि वह लिंग-वचन-कारक मे संस्कृत के स्थान पर हिन्दी का अनुकरण करता है। ईकारान्त तत्सम विशेषण सस्कृत के 'इन्' प्रत्ययान्त रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं, जैसे—धनिन् से धनी।[1]

---

[1] देखिए, § १५३।

अध्याय ७

संख्या

§ २१२. संख्यावाची शब्दों की रचना नियमित नही है, अत विद्यार्थी को सौ तक पूरी गिनती याद करनी पडती है। पुस्तकों में कहीं-कहीं संस्कृत के संख्यावाची शब्द भी देखने को मिलते है। अध्यायों की गिनती में प्राय संस्कृत की संख्यावाची संज्ञाओं का उपयोग किया जाता है।

नीचे सूची (सं० ७) में हिन्दी के संख्यावाची शब्द दिये जा रहे है। साथ में संस्कृत पर्याय, रोमीय और हिन्दी अंक भी दिये गये है।

सूची (सं० ७)

संख्यावाची शब्द

रोमीय अंक	हिन्दी अंक	हिन्दी संख्या	संस्कृत संख्या	रोमीय अंक	हिन्दी अंक	हिन्दी संख्या	संस्कृत संख्या
0	०	शून्य	शून्य				
1	१	एक	एक	11	११	ग्यारह	एकादशन्
2	२	दो	द्वि	12	१२	बारह	द्वादशन्
3	३	तीन	त्रि	13	१३	तेरह	त्रयोदशन्
4	४	चार	चतुर्	14	१४	चौदह	चतुर्दशन्
5	५	पाँच	पञ्चन्	15	१५	पन्द्रह	पञ्चदशन्
6	६	छ	षष	16	१६	सोलह	षोडशन्
7	७	सात	सप्तन्	17	१७	सत्रह	सप्तदशन्
8	८	आठ	अष्टन्	18	१८	अठारह	अष्टदशन
9	९	नौ	नवन्	19	१९	उन्नीस	ऊनविंशति
10	१०	दस	दशन्	20	२०	बीस	विंशति

रोमीय अंक	हिन्दी अंक	हिन्दी संख्या	संस्कृत संख्या	रोमीयअंक	हिन्दी अंक	हिन्दी संख्या	संस्कृत संख्या
21	२१	इक्कीस	एकविंशति	42	४२	बयालीस	द्विचत्वारिंशत्
22	२२	बाईस	द्वाविंशति	43	४३	तेंतालीस	त्रिचत्वारिंशत्
23	२३	तेईस	त्रयोविंशति	44	४४	चौआलीस	चतुश्चत्वारिंशत्
24	२४	चौबीस	चतुर्विंशति	45	४५	पैंतालीस	पञ्चचत्वारिंशत्
25	२५	पच्चीस	पञ्चविंशति	46	४६	छियालीस	षट्चत्वारिंशत्
26	२६	छब्बीस	षड्विंशति	47	४७	सैंतालीस	सप्तचत्वारिंशत्
27	२७	सत्ताईस	सप्तविंशति	48	४८	अडतालीस	अष्टचत्वारिंशत्
28	२८	अट्ठाईस	अष्टाविंशति	49	४९	उनचास	ऊनपञ्चाशत्
29	२९	उन्तीस	ऊनत्रिंशत्	50	५०	पचास	पञ्चाशत्
30	३०	तीस	त्रिंशत्	51	५१	इकावन	एकपञ्चाशत्
31	३१	इकतीस	एकत्रिंशत्	52	५२	बावन	द्वापञ्चाशत्
32	३२	बत्तीस	द्वात्रिंशत्	53	५३	तिरपन	त्रिपञ्चाशत्
33	३३	तेतीस	त्रयस्त्रिंशत्	54	५४	चौवन	चतुःपञ्चाशत्
34	३४	चौतीस	चतुस्त्रिंशत्	55	५५	पचपन	पञ्चपञ्चाशत्
35	३५	पैंतीस	पञ्चत्रिंशत्	56	५६	छप्पन	षट्पञ्चाशत्
36	३६	छत्तीस	षट्त्रिंशत्	57	५७	सतावन	सप्तपञ्चाशत्
37	३७	सैंतीस	सप्तत्रिंशत्	58	५८	अठावन	अष्टपञ्चाशत्
38	३८	अडतीस	अष्टात्रिंशत्	59	५९	उनसठ	ऊनषष्टि
39	३९	उन्तालीस	ऊनचत्वारिंशत्	60	६०	साठ	षष्टि
40	४०	चालीस	चत्वारिंशत्	61	६१	इकसठ	एकषष्टि
41	४१	इकतालीस	एकचत्वारिंशत्	62	६२	बासठ	द्वाषष्टि

रोमीय अंक	हिन्दी अंक	हिन्दी संख्या	संस्कृत संख्या	रोमीय अंक	हिन्दी अंक	हिन्दी संख्या	संस्कृत संख्या
63	६३	तिरसठ	त्रिषष्टि	84	८४	चौरासी	चतुरशीति
64	६४	चौसठ	चतु.षष्टि	85	८५	पचासी	पञ्चाशीति
65	६५	पैंसठ	पञ्चषष्टि	86	८६	छियासी	षडशीति
66	६६	छियासठ	षट्षष्टि	87	८७	सतासी	सप्ताशीति
67	६७	सड़सठ	सप्तषष्टि	88	८८	अठासी	अष्टाशीति
68	६८	अड़सठ	अष्ट षष्टि	89	८९	नवासी	नवाशीति
69	६९	उनहत्तर	ऊनसप्तति	90	९०	नव्वे	नवति
70	७०	सत्तर	सप्तति	91	९१	इकानवे	एकनवति
71	७१	इकहत्तर	एक सप्तति	92	९२	बानवे	द्वानवति
72	७२	बहत्तर	द्वासप्तति	93	९३	तिरानवे	त्रिनवति
73	७३	तिहत्तर	त्रिसप्तति	94	९४	चौरानवे	चतुर्नवति
74	७४	चौहत्तर	चतु सप्तति	95	९५	पचानवे	पञ्चनवति
75	७५	पछत्तर	पञ्च सप्तति	96	९६	छियानवे	षण्णवति
76	७६	छिहत्तर	षट्सप्तति	97	९७	सतानवे	सप्तनवति
77	७७	सतत्तर	सप्तसप्तति	98	९८	अठानवे	अष्टानवति
78	७८	अठहत्तर	अष्टसप्तति	99	९९	निनानवे	नवनवति
79	७९	उनासी	ऊनाशीति	100	१००	सौ	शत
80	८०	अस्सी	अशीति	1000	१०००	सहस्र-हजार[1]	सहस्र
81	८१	इकासी	एकाशीति	100000	१०००००	लाख	लक्ष
82	८२	बयासी	द्वयशीति	1000000	१००००००	वियुत	नियुत
83	८३	तिरासी	त्र्यशीति	10000000	१०००००००	कडोड[2]	कोटि

---

[1] हजार शब्द फारसी होते हुए भी हिन्दी मे बहु प्रचलित है।

[2] 'करोड़' भी।

क. सस्कृत की अर्ब अथवा अर्बुद, खर्ब, नील, पद्म और शख संख्याएँ हिन्दी मे अधिक प्रचलित नही है।

§ २१३. रुपये के विभिन्न अशो को लिखते समय पृथक्-पृथक् चिह्नो से अंकित करते है। एक रुपये मे सोलह आने और एक आने में चार पैसे होते है।[१] एक पैसा)।, दो पैसे)।।; तीन पैसे)।।।, एक आना -), दो आने =) तीन आने ≡); चार आने ।); आठ आने ।।); बारह आने ।।।)। पैसे और आने को इस प्रकार जोडा जाता है, पाच आना और एक पैसा ।-)।, छह आने और दो पैसे ।=)।।, ग्यारह आने और तीन पैसे ।। ≡)।।।; चौदह आने और एक पैसा ।।।=)।, एक रुपया १); तीस रुपये और चार आने ३०।); दो सौ पैतीस रुपये सात आने और दो पैसे—२३५। ≡)।। ।

बोलियों के संख्यावाची शब्द

ब्रज और कन्नौजी

§ २१४. ब्रजभाषा मे दो के लिए 'द्वै', 'द्वौ' और 'दोऊ' तथा चार के लिए 'चारि' का प्रयोग होता है। कन्नौजी मे चार के लिए 'चौ', उन्नीस और इक्कीस के लिए 'उनईस' तथा 'इक्कीस' और सौ के लिए 'सै' प्रचलित है।

मारवाड़ी

§ २१५. मारवाडी और स्त० हि० की सख्याओ मे इतना ही अन्तर है कि मारवाड़ी मे 'स' परिवर्त्तित होता है 'ह' मे। मारवाड़ी के सोलह के लिए 'होलह'; बीस के लिए 'बीह' और साठ के लिए 'हाठ' प्रयुक्त होता है। अन्त्य 'ह' का उच्चारण बहुत हल्का किया जाता है। 'रणधीर और प्रेम मोहनी' मे 'पन्द्रह' के स्थान पर 'पनरा' का प्रयोग मिलता है।

मेवाड़ी

§ २१६. मेवाड़ी के संख्यावाचक शब्दो की बहुत-सी विशेषताएँ है—'स' चाहे आरम्भ मे हो चाहे मध्य अथवा अन्त मे, नियमित रूप से 'श' उच्चारित होता है; जैसे—शाट = ६०; बाशट = ६२; बीश = २०; चालीश = ४०; आदि। सामान्य जनता शात = ७ को दात कहती है। बीस से चालीस तक की संख्याओ मे 'श' का लोप होता है; जैसे बीश = २० के स्थान पर 'बी'; चोतीश (३४) के स्थान पर 'चोती' और चमालीश (४४) के स्थान पर 'चमाली' आदि। निम्नलिखित सख्याओ मे 'एक' का 'क' परिवर्त्तित होता है 'ग' मे; जैसे—अगतीश (३१); अगतालीश (४१); अगशट (६१); अगोतर, अकोतर भी, (७१)। प्रत्येक दशी की नवीं सख्या मे भी संस्कृत के 'क' के स्थान पर 'ग' आता है, केवल नव्यासी (८९) और नन्याणू इस नियम के अपवाद है। सस्कृत का 'एकोनत्रिशत' शब्द लीजिये, उच्च हिन्दी का 'उनतीस' तथा अन्य बोलियों मे प्रयुक्त इस संख्या के अन्य रूप संस्कृत के इसी शब्द से बने है। मेवाड़ी मे नौ युक्त सख्याएँ इस प्रकार है—उगणीश (१९); गुणतीश (२९); गुणचालीश, गुणतालीश अथवा गुण्यालीश (३९); गुणचाश (४९); गुणशट (५९); गुणतर (६९), गुणियाशी (७९)। साठी

---

[१] अंग्रेजों के समय में प्रचलित एक रुपये में सोलह आने और एक आने में चार पैसे होते थे।—अनुवादक

संख्या मे सर्वत्र 'ठ' परिवर्त्तित होता है 'ट' मे; जैसे—त्रेशट (६३), चोशट (६४) आदि। मेवाड़ी के कुछ विशेष सख्यावाचक शब्द इस प्रकार है—

४, च्यार।
६, छै।
९, नो।
१०, दश।
११, ग्यारा।
१२, बारा।
१३, तेरा।
१४, चवदा।
१५, पनरा।
१६, सोला, होला।
१७, शतरा, हतरा।
१८, अठारा।
२१, अकीश।
२४, चोईश।
२६, छाईश।
३४, चोतीश।
४२, बियालीश।
४३, तियालीश।
४४, चमालीश, चंवालीश।
५१, अक्यावन।
५५, पचांवन।
६६, छाशट।
६७, शतशट।
७०, शतर।
७२, बोतर।
७३, तेतर।
७४, चोतर।
७५, पच्योतर।
७६, छियोतर।
७७, शत्योतर।
७८, अठ्योतर।
८०, अशी।
८१, अक्याशी।
८२, बियाशी।
८३, तियाशी।
८४, चोराशी।
८५, पच्याशी।
८७, शत्याशी।
८८, अठ्याशी।
९०, नेउवै।
९१, अक्याणूँ।
९२, बांणूँ।
९३, तराणूँ।
९४, चोराणूँ।
९५, पच्याणूँ।
९६, छन्यूँ, छियाणूँ।
९७, शत्याणूँ।
९८, अठ्याणूँ।
९९, नन्याणूँ।
१००, शो, शेकड़ो।
१०००, हजार।
१०००००, लाख।
१०००००००, करोड़, कोड़।

हिमालय की बोलियाँ : संख्यावाचक शब्द

§२१७. हिमालय की बोलियो मे प्रचलित संख्यावाचक शब्द और स्तरीय हिन्दी के संख्यावाचक शब्द बहुत मिलते-जुलते है। नेपाली बाइबिल मे कुछ सख्यावाचक शब्द इस प्रकार है—तिन (३); एघार (११); बारह (१२)। सज्ञा के विकारी रूप के साथ 'एक' के स्थान पर 'एका' का प्रचलन है। जब वस्तु की निश्चितता पर जोर देना अभीष्ट होता है तब 'एका' का प्रयोग विशेष रूप से होता है, जैसे—"एका घर का पाँच जना आपस्त मा बिरोध गर्नन" (एक ही घर के पाँच जनो मे परस्पर विरोध होगा)।

'एका को शत्रु होला र अर्का को मित' (एक का तो शत्रु होगा और एक का मित्र।); इस वाक्य में 'एक' और 'अर्का' की विपरीतता पर ध्यान देना चाहिए।

क. नेपाली के बहुत से सख्यावाचक शब्दो के साथ 'उटो' प्रत्यय जोडा जाता है, पुल्लिगवाची विशेष्य के साथ 'उटो' बनता है 'उटा' और स्त्रीलिगवाची विशेष्य के साथ 'उटी'; जैसे—येउटो अथवा येवोटो (=एक ही); दुओटो (=दो ही); सातोटो (=सात ही)। सख्या के अवधारण के लिए 'उटो' प्रत्यय जोड़ते है; जैसे—सातोटो भाई थिया (सात ही भाई थे)।[1]

रामायण के संख्यावाचक

§२१८. रामायण के निम्नलिखित संख्यावाची शब्द उल्लेखनीय है—

१, इक। ४, चारिक। १६, सोरह।
२, दुइ। ९. नव। २५, पचवीस।
३, त्रय। १४, चारिदस। १०००, सहस।

रामायण की उपर्युक्त संख्याओ के साथ ऐसी सख्याओ का उल्लेख किया जा सकता है, जिनकी रचना ठीक नही है। जैसे—नवसप्त, इसका शाब्दिक अर्थ है—'नौ-सात' किन्तु इसे १६ के लिए प्रयुक्त किया गया है। 'सोलह' के लिए प्राकृत पर्याय 'षोडश' अथवा 'षोडष' का प्रयोग भी हुआ है। रामायण ही नही स्त० हि० मे भी षोडश जैसे संख्यावाचक मिलते है, विशेष रूप से पारिभाषिक ढग के वाक्य खण्डो मे इनका प्रयोग हुआ है; जैसे—षोडश कला। रामायण के कुछ स्थलो पर 'दस' के लिए 'दह' का प्रयोग हुआ है; जैसे—दह दिसि। केवल लिखने की भिन्नता के कारण कुछ संख्यावाचको के रूप भिन्न दिखाई देते है।

पूरबी बोलियों में संख्यावाचकों का क्षेत्रीय रूप

§२१९. नीचे भोजपुरी, मागधी और मैथिली मे प्रचलित १८ तक की ऐसी गिनती दी जा रही है, जो स्तरीय हिन्दी से कुछ भिन्न है—

अंक	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
१.	एगो	एक, एगो	एक, एके, ऐगो
२.	दू, दूई	दू	दुई, दूइ, दूगो, दू
३.	तीनि	.....	.....
४.	चारि	.....	चारि
६.	छौ, छव	छो	छव, छौ
८.	आठ	.....	.....
९.	.....	नो	नों, न
११.	इगारह, इग्यारह	.....	एगार
१५.	पनरह	पनरह	पनर
१६.	सोरह	सोरह	सोरह

---

[1] लुक एक लेखक का नाम, २९।

क. इन बोलियो के संख्यावाचको के आरंभिक वर्ण का स्वर§११७ के व्यवहृत होने पर ह्रस्व बनता है। यदि क्षतिपूर्ति के रूप मे कोई स्वर दीर्घ बनाया गया है, तो उस पर यह नियम लागू नही होता। कुछ अन्य स्थानो पर प्रथम वर्ण का स्वर ह्रस्व बनता है। उदाहरण निम्न प्रकार है—भोजपुरी मे—२१, एकइस, ३१, एकतिस, ६१, एकसठ। मागधी मे १, एक, ७१, एकहत्तर। मैथिली मे १, एक; ११, एगारह; २१, एकैस; ३१, एकतिस, ४१, एकतालिस, ४२, बेआलिस, ५१, एकौन; ५३, तेरपन, ८२, बेआसी अथवा बेरासी। 'एक' की भाँति इस नियम के अनुसार 'ओ' बनता है ह्रस्व 'ओ', 'ऐ' का ह्रस्व 'ऐ'; औ का ह्रस्व औ; जैसे—मैथिली मे ४३, तैतालीस, ४५, पैतालीस; ४७, सैतालीस; ८४, चौरासी; ९४, चौरानबे। मागधी मे ८९, नोआसी, ७४, चौहत्तर। भोजपुरी मे ९४, चौरावे।

ख. भोजपुरी तथा मैथिली मे बीस, तीस और चालीस के साथ बनने वाली संख्याओ का उपान्त्य स्वर ह्रस्व होता है, जैसे—१९ उनइस, ३३ तेतिस, ४४ चवालिस इत्यादि। मैथिली की कुछ उपबोलियो मे उपान्त्य स्वर पूर्ववर्ती स्वर मे मिलता है, जैसे—२१ एकैस, २३ तैस, २७ सतैस।

ग भोजपुरी मे साठ तथा साठ से बननेवाली सभी सख्याओ का उपान्त्य 'आ' ह्रस्व बनता है, जैसे—६१ एकसठि, ६२ वासठि आदि। ९१ से ९९ तक 'नवे' का 'न' पूर्ववर्ती स्वर को अनुनासिक बनाता है, जैसे—९२ बावे इत्यादि। मागधी मे सत्तर तथा सत्तर से बनने वाली सभी सख्याओ मे 'त्त' उच्चारित होता है 'न्त'; जैसे—बहन्तर इत्यादि।

ग. मैथिली के निम्नलिखित सख्यावाची शब्द उल्लेखनीय है—२७ सतैस, २८ अठैस, ३९ उनतालीस, ४२ ब्यालिस, ५१ एकौन; ५२ बौन; ५७ सतौन अथवा सन्ताओन, ५८ अठौन अथवा अठाऔन, ६३ तिरेसठ अथवा तिरैजेठ, ६४ चौसठ; ६६ छिअरसठ, १०० सव।

घ पूरबी बोलियो के अनेक सख्यावाचियो मे अन्य बहुत से शब्दो की भाँति 'औ' के स्थान पर विकल्प से 'अव' लिखा जाता है, कही-कही 'अव' के स्थान पर पुन 'औ' आता है। जैसे—चवबिस अथवा चउबिस=स्त० हि० चौबीस, चौअन अथवा चउअन=स्त० हि० चौवन।

विभिन्न रूप

§ २२०. सख्यावाचको के निम्नलिखित रूप भी मिलते है। यह भिन्नता बोलियो के कारण न होकर केवल अक्षरो की वर्तनी के कारण है—

१, एक
२, दोन्
६, छ, छह
११, एग्यारह
१९, उन्नीस
२१, एकीस
२७, सत्ताईस
३१, एकतीस
३२, बत्तीस
३३, तैतीस
३८, अठतीस

४१, एकतालीस
४२, बयालिस
४३, तैतालीस
४४, चवालीस
४६, छत्तालीस
४८, अठतालीस
४९, उनुँचास
५१, एकावन, इक्यावन
५३, त्रेपन
५४, चौपन
५५, पचावन

५७, सत्तावन
५८, अट्ठावन
६१, एकसठ
६३, त्रेसठ
६८, अठमठ
७१, एकहत्तर
७३, तिरहत्तर
७५, पचहत्तर
७६, छहत्तर
८१, इक्यासी
८२, बासी

८७, सत्तासी
८८, अट्ठासी
९०, नवे
९१, इक्यानवे, एक्यानवे, एकानवे
९५, पचानवे, पच्चानवे
९६, छानवे
९७, सत्तानवे
९९, निन्यानवे, निन्नावे
१००, सल।

सौ से अधिक की संख्या

§ २२१. हिन्दी मे सौ से ऊपर अग्रेजी की भाँति गिनती चलती है, अन्तर यह है कि सख्याओ का सश्लिष्ट रूप समाप्त कर दिया जाता है, जैसे—एक सो एक, तीन सौ साठ, एक हजार बीस।

क कविता मे कही-कही छोटी-छोटी सख्या भी विश्लिष्ट अवस्था मे आती है, जैसे—बीते कल्प सात अरु बीसा।

ख १०० और २०० के बीच की सख्या मे कही-कही इकाई या दहाई की सख्या पहले और सैकड़े की सख्या उसके पश्चात् बोली जाती है। ऐसा करते समय छोटी सख्या के अन्त्य स्वर को 'आ' बनाते है; जैसे—चालीसा सौ=१४०। अन्य प्रकार से बनने वाले रूप आगे चलकर दिये जाएँगे।

'एक' के योग से बननेवाले मुहावरे

§ २२२. अन्य सख्या के साथ यदि 'एक' जोडा जाये तो उसका अर्थ 'एक' न होकर लगभग होता है, जैसे—चालीस एक=चालीस के लगभग, सौ एक=सौ के लगभग, किन्तु 'एक सो एक' की सख्या मे अन्तिम 'एक' का अर्थ 'एक' है। एक सख्या मे लगभग का आशय उत्पन्न करने के लिए 'आद' (=स० आदि[1]) शब्द जोडा जाता है, जैसे—एक आद सेर आटा (=लगभग एक सेर आटा)।

क. अँग्रेजी मे जहाँ अनिश्चय व्यक्त करने के लिए शब्द से पहले 'ए' (a) अथवा एन (an) का उपयोग होता है, वहाँ हिन्दी मे कही-कही 'एक' लिखा जाता है, किन्तु ऐसा तभी होता है, जब अनिश्चय के साथ-साथ वस्तु की अखण्डता अथवा एकता का भाव भी व्यक्त करना हो। अँग्रेजी भाषियो को 'एक' शब्द का प्रयोग सोच-समझ कर करना चाहिए। अग्रेजी मे ए (a) अथवा 'एन' (an) का जहाँ प्रयोग होता है, वहाँ 'एक' शब्द का व्यवहार सर्वत्र नही किया जा सकता। उदाहरण—एक आध सेर आटा। एक आधा कोस।

समग्रता सूचक रूप

§ २२३. सामान्यतया सख्यावाची शब्द विकारी बहुवचन मे प्रयुक्त नही होता। जब किन्ही वस्तुओ की समग्रता अथवा पाँञ्जिकता व्यक्त करना है तो परसर्ग रहित अथवा परसर्ग सहित दोनो अवस्थाओं मे सख्यावाचक का अन्त्य स्वर 'ओ'[2] मे परिवर्तित होता है, जैसे—चार पेड, चारो पेड। बीस आये—बीसो आये। दो—दोनो, यहाँ 'दोनो' मे 'दोन' का प्रयोग हुआ है 'दो' के लिए।

---

[1] संख्यावाची 'आद' अथवा 'आध' की उत्पत्ति सं० अर्द्ध से मानी जानी चाहिए।
—अनुवादक

[2] अन्त्य स्वर के स्थान पर आने वाले 'ओं', 'ऐं' आदि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में देखिए, § २३९।

क्रम सूचक संख्यावाचको के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार है—पहिली पुस्तक, सातवें पर्व में, दसवाँ महीना।

राजपूताना की बोलियों और नेपाली में क्रमसूचक संख्याएँ

§२२७ मारवाडी के क्रमसूचक इस प्रकार है—पैलो, दूजो या बीजो, तीजो, चौथो, पाँचमो, छठो या छठमो। छह के पश्चात् सभी संख्यावाचको के अन्त मे 'मो' जोडते है। मेवाडी और मारवाडी के क्रमवाचको मे अन्तर नही है। क्रमसूचक 'मो' प्रत्यय के योग से पहले अन्त्य 'आ' ह्रस्व बनता है; जैसे बारा से 'बारमो' आदि। पेलडो(=पहला) को छोडकर बीकानेरी और मेवाडी-मारवाड़ी में समानता है। 'पेलड़ो' (पहला) रूप हडोती मे भी मिलता है। इन क्रमसूचक शब्दो का अन्त्य 'ओ' पुल्लिग के एकवचन तथा बहुवचन दोनो मे 'आ' बनता है। स्त्रीलिंगवाची विशेष्य चाहे एकवचन मे हो, चाहे बहुवचन मे अन्त्य 'ओ' परिवर्त्तित होता है 'ई' मे। हडौती मे इस प्रकार की 'ई' दीर्घ न होकर ह्रस्व रहती है। नेपाली के रूप इस प्रकार है—पहिलो, दुसरो, तेस्रो, चौथो, पाँचौं, छैटो। छह के पश्चात् आनेवाली सख्याओ का अन्त्य स्वर 'औं' मे परिवर्त्तित होता है। इस नियम का एकमात्र अपवाद है 'नौ', जिसका क्रमसूचक रूप बनता है 'नउँ'। पुल्लिगवाची विशेष्यो के साथ चाहे वे एकवचन मे हो चाहे बहुवचन में, क्रम सूचको का अन्त्य स्वर 'औं' मे परिवर्त्तित होता है। स्त्रीलिगवाची विशेष्य के साथ क्रमवाचको का अन्त्य स्वर 'ई' बनता है।

पूरबी हिन्दी के क्रमसूचक

§२२८ जहाँ तक मै जानता हूँ, पूरबी बोलियो मे निम्नलिखित रूप उल्लेखनीय है; पहला=भोज० माग०, मैथि० पहल; दूसरा=भोज०, मैथि० मे दूसर तथा माग० और मैथि०+दोसर, तीसरा=भोज०, मथि० तीसर तथा माग० और मैथि० मे तेसर; चौथा के लिए भोज० और माग० चौठ, भोजपुरी मे भी चौथ, मैथि० चौठ और चारिम। बंगाल के सीमावर्ती स्थानो को छोड़कर सर्वत्र विशेष्य के विकारी रूप से पहले क्रम सूचक संख्याओ का अन्त्य स्वर 'आ' बनता है; दक्षिण भोजपुर मे अन्त्य स्वर अ रहता है। भोजपुरी मे स्त्रीलिगवाची सज्ञा से पहले क्रम सूचक सख्या का अन्त्य स्वर 'अई' मे परिवर्तित होता है। इन तीनों बोलियो मे अतिरिक्त प्रत्यय 'क' से बननेवाला वैकल्पिक रूप भी प्रचलित है; जैसे—पहिलका, दुसरका, तेसरका अथवा तिसरका; छठा के लिए छठवाँ; भोजपुरी मे छट्ठा अथवा छठा, मागधी मे छठो अथवा छठवाँ; मैथि० छठवाँ, छठम अथवा छठम। इनके अतिरिक्त अन्य सख्याओ के क्रमसूचक रूप इस प्रकार बनते है—भोजपुरी मे आँ, अथवा 'वा' जोडकर, मागधी मे 'ओं' अथवा 'वा' के योग से, मैथिली मे ओं, म, अम, इम, अमा अथवा अम के संयोग से। दसवाँ=भोज० दसां, माग० दसो, मैथि० दसम, दसिम आदि। पूरबी बोलियों मे बिना किसी अपवाद के क्रमसूचक प्रत्ययो से पूर्व का दीर्घ स्वर ह्रस्व बनता है।

§२२९. रामायण मे इन रूपो के अतिरिक्त इस प्रकार के रूप भी मिलते है—सातव, अठव, नवम।

चान्द्र तिथियों का नामकरण

§२३० चान्द्र तिथियो के लिए जो क्रमसूचक सख्या काम मे लाई जाती है, वह इन सब क्रमसूचको से भिन्न प्रकार की है। चान्द्रमास मे दो पक्ष होते है, प्रत्येक पक्ष मे पन्द्रह चान्द्र दिवस है। एक पक्ष मे

चन्द्रमा घटता है, दूसरे में बढ़ता है। जिस पक्ष मे चन्द्रमा घटता है, उसे कृष्ण पक्ष अथवा बदी कहते है। जिस पक्ष मे चन्द्रमा बढता है वह शुक्ल पक्ष अथवा 'सुदी' कहलाता है। पूर्णिमा के पश्चात् मास प्रारभ होता है। १ से १५ तक गिनते है। फिर इसी प्रकार १ से १५ तक गिन कर ठहरते है। यद्यपि इन सख्याओ के साथ 'तिथि' शब्द का प्रयोग बहुत कम होता है, फिर भी 'तिथि' शब्द के विशेषण रहने के कारण इन सबका प्रयोग सदैव स्त्रीलिग मे किया जाता है। व्यवहारतः इन सबका प्रयोग विशेषण की भाँति न होकर संज्ञा की तरह होता है। नीचे तिथिवाचक सख्याओ के नाम दिये जा रहे है, सुविधा के लिए मारवाड़ी के पर्याय भी दिये गये है—

चान्द्रमास की तिथियों के नाम

तिथि	स्त० हि०	मारवाड़ी
पहली	परिवा	एकम
दूसरी	दूज	दूज, बीज
तीसरी	तीज	तीज
चौथी	चौथ	चौथ
पाँचवी	पंचमी	पाँचम
छठी	छट्ठ	छट
सातवी	सत्तमी	सातम
आठवी	अष्टमी	आठम
नवी	नौमी	(नवम ?)[1]
दसवी	दसमी	दस्सम
ग्यारहवी	एकादसी	ग्यारस
बारहवी	द्वादसी	बारस
तेरहवी	तेरस	तेरस
चौदहवी	चौदस	चौदस

क. कृष्णपक्ष की पन्द्रहवी तिथि को अमावस अथवा मावस और शुक्लपक्ष की पन्द्रहवी तिथि को स्त० हिं० में पूर्णमासी, पूनो अथवा पून्या, ब्रज मे पून्यौ अथवा पून्यौ, मारवाडी मे पूनम अथवा पूँन्यूँ कहते है।

ख. मारवाडी मे कुछ तिथियो के लिए अन्य नाम भी प्रचलित है, जो इस प्रकार है—एकै (पहली) दोज (दूसरी), चौथ (चौथी), पाँचे (पाँचवी), छठ (छठी), शाते (सातवी), आठे (आठवी), नोमी (नवी), दशी अथवा दशमी (दसवी), ग्यारश (ग्यारहवी), बारश (बारहवी), तेरश (तेरहवी), चवदश (चौदहवी), अमावश (कृष्णपक्ष की पन्द्रहवी), पुनम (शुक्लपक्ष की पन्द्रहवी)। कुछ नामों में अन्त्य स्वर को विकल्प से अनुनासिक करते हैं, जैसे—साते (सातवी) आदि।

ग. कभी कभी सभी तिथियाँ संस्कृत की क्रमवाची संख्या से व्यक्त की जाती है, जो इस प्रकार है—

---

[1] मारवाड़ी में भी 'नौमी' का प्रयोग किया जाता है।—अनुवादक

पहली	प्रथमा[1]
दूसरी	द्वितीया
तीसरी	तृतीया
चौथी	चतुर्थी
पाँचवी	पचमी
छठी	षष्ठी
सातवी	सप्तमी
आठवी	अष्टमी
नवी	नवमी
दसवी	दशमी
ग्यारहवी	एकादशी
बारहवी	द्वादशी
तेरहवी	त्रयोदशी
चौदहवी	चतुर्दशी

कृष्णपक्ष की पन्द्रहवी तिथि को अमावस्या और शुक्लपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि को पूर्णिमा कहते है।

अंशवाची संख्याएँ

§२३१. अंशवाची सख्याओ का रूप अनियमित है। बहुप्रचलित रूप निम्न प्रकार है—

$\frac{1}{4}$ पाव, चौथाई
$\frac{1}{3}$ तिहाई
$\frac{1}{2}$ आधा
$\frac{3}{4}$ पौन
$1\frac{1}{4}$ सवा
$2\frac{1}{2}$ अढाई अथवा ढाई
$+\frac{1}{2}$ साढ़े

अंशवाचकों का प्रयोग

§२३२. 'पाव' का प्रयोग स्वतंत्र रूप से एक के चौथाई भाग के लिए होता है। यदि मुख्य सख्या के सम्बन्ध मे कुछ सन्देह हो तो पाव के स्थान पर 'चौथाई' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'पौने' शब्द का प्रयोग संख्या और परिमाणवाचक शब्द से पहले होता है और अर्थ निकलता है उस सख्या या परिमाण का चौथाई भाग कम। 'सवा' शब्द का प्रयोग भी सख्या या परिमाणवाची शब्द से पहले किया जाता है, तात्पर्य

---

[1] प्रथमा का प्रयोग नहीं किया जाता। पहली तिथि के लिए 'प्रतिपदा' शब्द का प्रयोग होता है।—अनुवादक

है उस संख्या अथवा परिमाण का एक चौथाई भाग अधिक। डेढ' शब्द का प्रयोग स्वतंत्र रूप से होता है, अर्थ है उस संख्या और परिमाण का एक और आधा भाग। यदि इन तीनो मे कोई अंशवाचक स्वतंत्र रूप से आता है तो संख्यावाची शब्द का अध्याहार कर लिया जाता है; इस स्थिति मे 'पौने' का प्रयोग न होकर 'पौन' शब्द का प्रयोग होता है। 'पौने' शब्द केवल संख्यावाचक शब्द के साथ प्रयुक्त किया जाता है। 'अढ़ाई' का अर्थ है दो और आधा $=२\frac{१}{२}$, इसका प्रयोग स्वतंत्र रूप से किसी संख्या अथवा परिमाण के दो तथा आधे भाग के लिए होता है। 'साढ़े' का प्रयोग स्वतंत्र रूप से नही होता, साढे शब्द पूर्व सर्ग की भाँति संख्या अथवा परिमाणवाचक सख्या के पहले प्रयुक्त किया जाता है, अर्थ है उस सख्या अथवा परिमाण का आधा भाग अधिक, इस शब्द का प्रयोग १ तथा २ के साथ नही होता, साढ़े एक अथवा साढे दो का प्रयोग न होकर 'डेढ' और 'अढ़ाई' शब्द का प्रयोग किया जाता है। संख्यावाची शब्द के पूर्व 'आधा' शब्द का रूप होता है—'आध'; जैसे—आध सौ=५०। 'आध' के स्थान पर कही कहीं संस्कृत तत्सम 'अर्द्ध' का प्रयोग भी किया जाता है।

अंशवाचको के प्रयोग को निम्नलिखित संख्याएँ स्पष्ट करती है—

$\frac{१}{२}\times\frac{१}{४}=\frac{१}{८}$ आध पाव
$१\frac{१}{४}\times\frac{१}{४}=\frac{५}{१६}$ सवा पाव
$१\frac{१}{२}\times\frac{१}{४}=\frac{३}{८}$ डेढ़ पाव
$२\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}=\frac{५}{८}$ अढ़ाई पाव
$२\frac{१}{४}$ सवा दो
$५\frac{१}{२}$ साढ़े पाँच
$७\frac{३}{४}$ पौने आठ
७५ पौन सौ
१५० डेढ़ सौ
२५० अढ़ाई सौ
३७५ पौने चार सौ
४५० साढ़े चार सौ
१२५० सवा हजार
१५०० डेढ़ हजार
१७२५ पौने दो हजार
२५०० अढ़ाई हजार
३५०० साढ़े तीन हजार
१५०००० डेढ़ लाख

ख. अंशवाचको का प्रयोग नाप तोल तथा गिनती के लिए भी होता है। जैसे—डेढ़ कोस, पौने दस गज, अढ़ाई मन, पाव छटाँक, साढ़े बारह हाथ, सवा बरस।

बोलियों में प्रयुक्त होने वाले अंशवाचक

§२३३. मारवाड़ी और स्तरीय हिन्दी के अंशवाचको में विशेष अन्तर नही है, जो थोडा-बहुत अन्तर मिलता है, उसका विशेष महत्व नही है। मारवाड़ी के कुछ रूपो में विकारी अवस्था के अन्त्य 'ए' के स्थान पर

'आ' मिलता है। यही परिवर्तन संज्ञाओं और विशेषणो मे भी मिलता है; जैसे—स्तरीय हिन्दी के 'पौने' के स्थान पर 'पौना'। 'साढे' के लिए 'साढ़ा' रूप मिलता है, प्राकृत के निरर्थक प्रत्यय 'क' के साथ 'साढ़ीक' रूप भी प्रचलित है; जैसे—साढ़ीक[1] बारा बरस।

§२३४. मारवाडी मे अशवाचको के निम्नलिखित रूप मिलते है—पाव, आदो (आधा), पूँण (पौन), शवा (सबा), डोढ़ (डेढ़), पूणा दो (पौने दो), शवा दो (सवा दो), अड़ाई (अढ़ाई), साड़ातीन (साढ़े तीन), आदि।

§२३५. ग्रिअर्सन के अनुसार पूरब की बोलचाल मे अशवाचकों के निम्न रूप प्रचलित है।

$\frac{१}{४}$ भोजपुरी-पा, पौआ, पड़वा। भोज०, माग०, मैथि० पौ, पा, पौआ।

$\frac{१}{३}$ भोज० तिसरी; माग० मैथि०तेहाई, तेहाड, तिहाइ, तिहै, तेखरी, तेसरी, तिरभाग।

$\frac{१}{२}$ भोजपुरी-आध, खाडा; भोज०, माग० अधिया; मैथि० अद्धा, आधे, आध, अध।

$\frac{३}{४}$ भोज० पौना; माग० गउठ[2]; मैथि० पौना, पौने, तीन पा।

१$\frac{१}{४}$ भोज० माग०, मैथि० सावा, सवाई; भोज० सवाइया।

१$\frac{१}{२}$ मैथि० डेढा, डेर।

२$\frac{१}{२}$ भोज० आढ़ा; भोज० माग० अढइया; माग० मैथि० अढाई, अढै, अराइ, अढ़िया।

$+\frac{१}{२}$ मैथि० सारेह।

वृद्धिसूचक संख्यावाचक

§२३६. वृद्धिसूचकों की रचना सख्यावाची शब्द के साथ 'गुना' अथवा 'गुन' शब्द के योग से होती है। इस स्थिति मे संख्यावाचक शब्द मे थोड़ा बहुत परिवर्तन भी किया जाता है; उदाहरण—दुगुना, चौगुना, तिगुना, सतगुना (सातगुना), दसगुना।

क. इसी अर्थ मे कुछ संज्ञाओ के साथ 'हरा' शब्द जोड़ते है; जैसे दोहरा, तिहरा'।

ख. सूत्र, तन्तु अथवा रस्सी वाची शब्दो के साथ इस आशय के लिए 'लड़ा' शब्द जोड़ते है; जैसे—तिलड़ा, चौलड़ा।

गुणनवाचक

§२३७. अँग्रेजी के गुणनसूचक शब्द ट्वाइस (twice), थ्राइस (thrice) आदि के पर्याय हिन्दी मे नही है। हिन्दी मे इस आशय को व्यक्त करने का ढंग निम्न प्रकार है—

दो सत्ते चौदह, तीन पंजे पंद्रह। इस तरह की गुणनसूचक संख्या को हिन्दी मे पहाड़ा कहते है। इन संख्याओं के मूल रूप मे कही कही अन्तर पड़ता है। गुणनसूचक संख्याओ के विशेष रूप इस प्रकार है—

---

[1] 'साढ़ीक' का 'क' प्राकृत का निरर्थक प्रत्यय नहीं है। 'साढ़ा' या 'साढ़' के साथ 'एक' शब्द का संक्षिप्त रूप 'ईक' जुड़ा हुआ है। संख्यावाची शब्दों के साथ 'एक' शब्द का प्रयोग 'लगभग' के अर्थ में किया जाता है।—अनुवादक

[2] गंउठ और राजस्थानी के 'घोंटे' में कितना साम्य है।—अनुवादक

१—एकम्, कम्
१¼—सम
१॥–डौढ़ा, डेओढ़ा
२—दूना
२॥—ढाम, ढाया
३—ती, तीन
३॥—हूँटा, हौटा
४—चौक, चौका
४॥—ढोचा
५—पंजे
५॥—पोंचा
६—छक्का
६॥—खोचा
७—सत्ते
७॥—सतोचा
८—अट्ठे
९—नम, नम्मा
१०—दहाम

§२३८. ऊपर वे सख्याये दी गई है, जिनके विशेष रूप प्रचलित है, फिर ये रूप भी सख्यावाची सामान्य शब्दो के स्थान पर सर्वत्र नही आते। इन विशेष रूपो का उपयोग इतना ही है कि इनके सहारे पहाड़ो को सरलता से याद रखा जा सकता है। किसी सख्या को एक से गुणा करते समय 'एक' के स्थान पर 'कम' का प्रयोग होता है, जो 'कं' लिखा जाता है, जैसे—चार क चार। इस पहाडे की पहली शृंखला इस तरह प्रारंभ होती है—'एकम् एक' = संभवतः 'एक के एक'; दो क दो। कही-कही पहाडे मे 'एक' के स्थान पर 'एकम्' भी आता है, जैसे—दस एकम् दस। 'दो' के पहाड़े मे दो के स्थान पर 'दून' शब्द का प्रयोग होता है, इस 'दून' के साथ मराठी के 'दोन' की तुलना की जा सकती है। 'दस' तक की संख्या के साथ 'दूना' का स्त्रीलिंगी रूप 'दूनी' और दस से अधिक के लिए पुल्लिगी रूप 'दूना' आता है; जैसे—सात दूनी चौदह; बारह दूना चौबीस। तीन से दस तक गुण्य के साथ 'तीन' की जगह 'ती' आता है, जैसे—'चार ती बारह;' 'ग्यारह तीन तेंतीस।' 'तीन' गुण्य के साथ 'चार' का स्थान 'चौक' लेता है, दो के पहाड़े मे 'चौका' शब्द का प्रयोग होता है; जैसे—पाँच चौक बीस=५×४=२०; दो चौका आठ=२×४=८; गुणक 'पॉच' के लिए सर्वत्र 'पञ्जे'; जैसे—दस पंज पचास १०×५=५०। ११ के पश्चात् प्रत्येक गुण्य के साथ गुणक 'छ' के लिए एक वचन का रूप 'छक्का' प्रयुक्त होता है और २ से ११ तक के गुण्य के साथ बहुवचन मे 'छक्के' अच्छा समझा जाता है; जैसे—चार छक्के चौबीस=४×६=२४, बारह छक्का बहत्तर=१२×६=७२, ११ को छोड कर अन्य गुण्य के साथ 'सात' के स्थान पर 'सत्ते' का प्रयोग होता है, ११ के साथ मूल रूप मे 'सात' आता है; जैसे—छ सत्ते बयालीस=६×७=४२; ग्यारह सत्ते सतत्तर ११×७=७७। सात की तरह गुणक आठ ११ के साथ मूलरूप में और अन्य सख्या के साथ अट्ठे के रूप मे प्रयुक्त होता है, जैसे—पॉच अट्ठे चालीस=५×८=४०, ग्यारह अट्ठे अठासी=११×८=८८।

गुण्य दो के साथ गुणक ९ का रूप 'नम्मा', ३ से १० तक 'नौ' और ११ तथा ११ से आगे के पहाडो मे 'नम' बनता है; जैसे—दो नम्मा अठारह=२×९=१८, चार नम्मा छत्तीस=४×९=३६; ग्यारह नौ निनानवे=११×९=९९, बारह नम एक सौ आठ १२×९=१०८। सभी अंकों के साथ गुणक 'दस' का रूप 'दहा' होता है। दस के पश्चात अन्य संख्याए, चाहे गुण्य हो या गुणक, मूल रूप मे प्रयुक्त होती है।

क. पहाडो मे १०० से २०० तक की सख्या मे छोटी सख्या के साथ 'उतर' (अधिक) शब्द जोडते है, इन शब्दो मे सौ की संख्या इकाई और दहाई की संख्या के पश्चात् आती है, जैसे—बीसोत्तर सौ=१२०; ध्यान दीजिये—बीसोतर सौ=बीस+उत्तर।

ख. ३½ से ७½ तक की अंश सूचक सख्याएँ पहाडो मे मूल रूप मे आती है। कही कही डोढा के लिए डोढ़ा, हूँटा और होटा के लिए हूंठा अथवा होठा भी आते है।

ग. गिनते समय १ से ९ तक के लिए 'एकाई'; १० से ९९ तक दहाई और १०० के लिए सौ (या सैकड़ा) शब्द का प्रयोग होता है। पहाडो मे १¼ के लिए सवाया और २½ के लिए अढैया (या ढैया) बोलते है।

बोलियों के गुणन सूचक

§२३९. मारवाडी तथा मेवाडी के गुणन सूचक रूप इस प्रकार है।

	मारवाड़ी	मेवाड़ी
१.	एकूँ	एक
२.	दूनी	दूणा
३.	ती	तीया
४.	चौक	चौकु
५.	पजे, पान	पजा
६.	छक, छके, छज	छगे
७.	सत्ते	सता
८.	अट्ठे	अठा
९.	ने, नम्मे	नमां
१०.	धाम	दा

क. मेवाड़ी में अंशसूचको के पहाडो मे निम्न रूप प्रयुक्त होते है—

१।। डोड़ा; २।। ढिया, ३।। हूटा; ४।। ढूंचा

§२४०. पूरबी बोलियो मे गुणनसूचको के रूप इस प्रकार है—

	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
१.	का, एक्का, एकाई, के. एक[1], एकै[1]।	एक्का	का, का, काइ।

---

[1] केवल 'एकं एक' अथवा 'एकै एक' में प्रयुक्त (एक एकं एक)।

	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
१$\frac{१}{४}$	सवा	सवा, सवैया	मागधी के रूपों के अतिरिक्त सव, सवैएं, सवैये, सम, समां।
१$\frac{१}{२}$	डेढ़ा, डेढ़े, डेवढ़, डेढ़ो।	ड्योढ़ा	डेउढ़ा, डेउढ़े, डेउढे, डेओढा, डौढ़ा, दोबर।
२.	दूनी, दूना, दुगुनी, दो।	दूनी, दोबरी, दूगुना।	दुन्ना, दूनी, दून, दोबरा, दोबर।
२$\frac{१}{२}$	अढ़ां, अढाई, अढ़इया; अढ़ैया।	अढाई; अढैया।	मागधी के रूपों के अतिरिक्त अढैएं; ढाम।
३.	तिया, तियाई, तिरिका, ति, त्रिका, त्रिके, तिरिके, तिन।	तीया, तीना।	ती, तिया, तियाइ, तेबरा, तिरि।
३$\frac{१}{२}$	हूंठा, अंगूठा, अंगूंठा।	हुंठा, हुठा।	हूठा, हूंठे, हुंठा, हुंट्ठा, हुट्ठे।
४.	चौक; चौके, चर।	भोजपुरी के समान।	चौंका, चौंके, चौच, चौबरा।
४$\frac{१}{२}$	घमूचा; घंगूचा।	घौचा, ढौंचा।	घौंचा, घौंचे, ढोचे, ढौंच, ढोचा।
५.	पच; पाच, पचा[1], पचे; पुरे[1]।	पचे, पंचे	पचे, पाँचबरा, पंजा, पंजे।
५$\frac{१}{२}$	पहुँचा	पहुँचा	पहुँचा, पहुँचे, पोंचा[1]
६.	छह; छक, छका, छके, छाक।	छक, छक्का, छट्ठे	मागधी के रूपों के अतिरिक्त छाक।
६$\frac{१}{२}$	बिछिया	खौचा	खौंचा, खोचा, खौचे।
७.	सात, सते; सत	सते —	मागधी के अतिरिक्त सत्ते, सतें, सातबरा।
७$\frac{२}{२}$	चलौसा		सतोंचा
८.	आठ, आठे, अढ़े	सट्ठे	अट्ठे, अट्ठें, अट्ठा, आठबरा।
९.	नवाँ, नवाँई, नउका।	नवांई	नम, नम, नमा, नवां, नमां, नाम, नवें, नव, नौबरा।
१०.	दहां, दहांई, दसका।	दहांई	दहम, दहांइ, दहाइ, दहैएं, दांहों, दहां, धां, दसबरा।

---

[1] केवल 'पचा पचीस' (पाँच पंजे पच्चीस) में।

[2] पहाड़ों में बहुत कम स्थलों पर प्रयुक्त।

[3] राजस्थानी में ये सभी रूप प्रयुक्त होते हैं।—अनुवादक

§२४१. पूरबी हिन्दी के पहाड़ो मे १०० से अधिक की संख्या विशेष रूप से व्यक्त की जाती है। 'सौ' के लिए सर्वत्र 'सो', १०० से १२० तक की संख्या मे छोटी संख्या (इकाई अथवा दहाई) सौ से पहले बोली जाती है और स्तरीय हिन्दी की भाति उसके साथ 'उतर' शब्द जोड़ते है, संधि के कारण अ+उ=ओ; जैसे—एकोतर सो=१०१; चौदहोतर सो=११४, आदि। १२० से १६० तक तथा १६० से १७० तक नियमित रूप से तथा ११० से १२० तक विकल्प से 'उतर' के स्थान पर 'आ' जोड़ते है; जैसे—तीसा सो=१३०; छपन्ना सो=१५६ आदि। इन रूपो की उल्लेखनीय बात यह है कि पूर्वोपान्त्य दीर्घ स्वर सर्वत्र ह्रस्व बनता है; इसके विपरीत दूसरी, तीसरी और चौथी दशी मे उपान्त्य का ह्रस्व स्वर दीर्घ स्वर मे परिणत होता है; जैसे—पनराहा सो=११५; छब्बीसा सो=१२६; आदि।

क. पहली दशी के निम्न रूपो मे 'उतर' से पहले 'ल' का आगम होता है—दिलोतर सो=१०२; तिलोतर सो=१०३; चलोतर सो=१०४; छिलोतर सो=१०६; सतलोतर सो=१०७। निगरोतर सो १०९ के लिए और दहोतर सो ११० के लिए। दसवी दशी मे ९० से ९८ तक 'व' परिवर्तित होता है 'ब' मे, जैसे—नब्बे सो=१९०।

समूह सूचक

§२४२. समूह सूचक संख्यावाचक बनाने के लिए अन्त्य स्वर को 'आ' अथवा 'ई' बनाते है, जैसे—बीसा; बत्तीसी; चालीसा।

निम्नलिखित शब्द, समूह अथवा पुंज सूचित करने के लिए प्रयुक्त होते है—

जोड़ा-जोड़ी (=दो)
गंडा (=चार, विशेष रूप से चार कौड़ी)
गाही, पंजा=पाँच
कोड़ी=बीस
सैकड़ा=सौ।

क. कभी कभी संख्यावाचक शब्द बिना किसी परिवर्तन के समूह अथवा पुंज के लिए प्रयुक्त होते है।

संख्यावाचक शब्दों की व्युत्पत्ति

§२४३. संस्कृत के संख्यावाचक शब्द प्राकृत से होते हुए हिन्दी मे पहुँचे। प्राकृत के संख्यावाचक नीचे दिये जा रहे हैं। अध्याय ३ में ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी सामान्य नियम दिये गये है। प्राकृत के सख्यावाचकों और ध्वनि-परिवर्तन सम्बन्धी नियमों के आधार पर छात्र मूल रूप जान सकेंगे। नीचे कुछ विशेष संख्याओं का उल्लेख किया गया है।

प्राकृत के संख्यावाचक शब्दों का निर्वचन पूर्ण नहीं है। नीचे जो विवरण दिया जा रहा है, उसके लिए मैं भी बीम्स का ऋणी हूँ।

संख्या	प्राकृत	हिन्दी
१.	एक्क	इक्क, इक, एक।
२.	दो (सं० द्वि, द्व)।	दोय, दोई, दुइ, दो।
३.	तिण्णि (सं० नपुं० त्रीणि)।	तिन, तीन।

संख्या	प्राकृत	हिन्दी
४.	चत्तारि (सं० नपु० चत्वारि)।	चारि, चार।
५.	पञ्च	पाँच
६.	छ (सं० षष)	छ, छे।
७.	सत्त	सात
८.	अट्ठ	आठ
९	नौ (स० नव)।	नव, नौ।
१०.	दस	दस
११.	इआरह	इगारह, ग्यारह।
१२.	बारह	बारह
१३.	तेरह	तेरह
१४.	चौद्दह	चारिदस, चौदह।
१५.	पण्णरह	पनरा, पन्द्रह, पनरह।
१६.	(सोरह)[1]	सोरह, सोलह।
१७.	सत्तरह	सत्तरह, सत्रह।
१८.	अट्ठारह	अठारह
१९.	एकनुविसइ	उनईस, उनीस।
२०	वीसइ	बीस
३०.	तीसा	तीस
४०.	चत्तालीस	चालीस
५०.	पण्णास	पचास
६०.	सट्ठि	साठि, साठ।
७०.	सत्तरि	सत्तर
८०	असीइ	अस्सी
९०	नउए	नवे
१००	सत, सय, सअ	सये, सइ, सौ।

संख्यावाचकों की व्युत्पत्ति।

§२४४. संस्कृत में 'दो' की संख्या के लिए 'द्व' तथा 'द्वि' का प्रयोग होता है, स्तरीय हिन्दी का 'दो' परिवर्त्तित रूप है 'द्व' का; हिन्दी से सम्बन्धित बोलियो के रूप दोय, दोइ, दुइ और द्वै का विकास सं०

---

[1] बीम्स ने इस संख्या का 'सोलह' रूप दिया है, किन्तु पुरानी हिन्दी में 'सोरह' रूप मिलता है। किसी अन्य प्राकृत के प्रभाव से 'र' परिवर्त्तित हुआ होगा 'ल' में। मेरे विचार से 'र' और 'ल' दोनों में से 'ल' वाला रूप परवर्ती है।

'द्वि' से हुआ है। 'तीन' शब्द सं० नपुं० 'त्रीणि' से उद्भूत है।[१] पुरानी बैसवाड़ी में संस्कृत का पुल्लिगवाची रूप 'त्रय' सुरक्षित है। 'चारि' अथवा 'चार' का अन्त्य 'रि' अथवा 'र' सं० पु० चत्वार के 'र' का प्रतिनिधित्व करते है। संख्यावाचकों मे नपुंसक लिंगी बहुवचन रूप के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि संज्ञा का बहुवचन भी नपुंसक लिंगी बहुवचन का ऋणी है।

§२४५. ११ से १८ तक की संख्या मे संस्कृत के 'दशन्' का 'द' स्तरीय हिन्दी मे 'र' बना; केवल 'चौदह' और 'सोलह' इस नियम के लिए अपवाद माने जाते हैं। दन्त्य वर्ण से 'र' की उत्पत्ति 'सत्तर 'शब्द से बनने वाली सभी संख्याओ में देखी जाती है। सत्तर वाली संख्याओं मे 'र' मूल संस्कृत शब्द 'सप्तति' के 'त' का स्थान लेता है। 'चौरह' शब्द में जो 'द' के स्थान पर 'र' का उच्चारण किया जाता है, वह 'चतुर्दशन्' के 'र' का प्रभाव है। यह 'र' हिन्दी के पुराने रूप 'चारिदस' में सुरक्षित है; इन रूपों में 'चतुर' का 'उ' लुप्त होता है। 'सोलह' रूप इसलिए संभव हुआ होगा कि पहले 'द' परिर्वात्तत हुआ 'र' में और 'र' परिर्वात्तत हुआ 'ल' में, तुलसीदास तथा अन्य बड़े कवियों ने 'सोरह' शब्द का प्रयोग किया है। गो० तुलसीदास की रचनाओं में एक पुराना रूप षोडष भी प्रयुक्त हुआ है। 'षोडश' शब्द में प्रारंभिक 'ष' के प्रभाव से 'ड' परिर्वात्तत हुआ 'ड़' में

§२४६. बीस से बनने वाली संख्या चौबीस तथा छब्बीस मे सं० विंशति का 'व' 'ब' में परिर्वात्तत हुआ। बीस की अन्य संख्याओं में 'व' लुप्त रहता है। 'उन्चास' मे पचास' शब्द का 'प' लुप्त है; यह शब्द सं० 'ऊनपञ्चाशत्' से उद्भूत है। 'द्वि' के दन्त्य वर्ण की अपेक्षा ओष्ठ्य वर्ण अधिक पसंद किया गया; जैसे बीस से बनने वाली संख्याएँ 'बाईस' आदि और 'दो' के योग से बनने वाली संख्याएँ बत्तीस आदि, 'बानवे' तथा 'द्वादशन्' से उद्भूत 'बारह' भी इस कथन को पुष्ट करते हैं।

§२४७. हिन्दी की उनीस (१९), उनतीस (२९), उनतालीस (३९) आदि संख्याएँ संस्कृत 'ऊन' (कम) तथा अगली संख्या के योग से बनी हैं। संस्कृत में भी 'नवत्रिंशत्' का वैकल्पिक रूप 'एकोनचत्वारिंशत्' स्त० हि० 'उन्तालीस' मिलता है। संस्कृत में भी 'एक' शब्द का परित्याग किया गया है; जैसे 'नवदशन्' के लिए प्रयुक्त 'ऊनविंशति'—स्त० हि० उनईस या उनीस।

§२४८. 'चालीस' से बनने वाली समासित संख्याओं में आने वाले 'ल' का कारण प्राकृत शब्द चत्तालीस में ढूंढ़ा जा सकता है; प्राकृत के 'चत्तालीस' का 'ल' प्रयुक्त हुआ है सं० के 'चत्वारिंशत्' के 'र' के लिए। यह कहना उचित नही है कि इन संख्याओं में 'ल' 'चालीस' के 'च' के लिए आया है। वास्तव में इन संख्याओं से 'च' लुप्त हो गया है। 'द्विचत्वारिंशत्' से उद्भूत 'बयालीस' में 'च' के लोप के कारण 'य' श्रुति का उपयोग हुआ है। 'पचास' के योग से बनने वाली संख्याओं मे सं० पञ्चाशत् का 'प' 'व' मे परिर्वात्तत हुआ; जैसे—इकावन (५१); बावन (५२); चौवन (५४); सतावन (५७); अठावन (५८); इनके अतिरिक्त शेष संख्याओं मे 'प' सुरक्षित है। तिरपन (५३), तिरहसठ (६३), तिरासी (८३) और तिरानवे (९३) का 'र' बीम्स के मतानुसार केवल श्रुति के लिए है; किन्तु मैं इस मत से सहमत नही हूँ। मेरा विचार यह है कि इन शब्दों में प्रयुक्त 'र' संस्कृत से आया है; उदाहरण के लिए सं० चतुरशीति से उद्भूत स्त० हि० के 'चौरासी' शब्द में प्रयुक्त 'र' प्रस्तुत किया जा सकता है।

§२४९. स्त० हि० के 'सौ' अथवा 'सै' (१००) का उद्भव संस्कृत के 'शतम्' शब्द से हुआ है। पहला

---

[१] 'तीन' की भाँति 'दो' का एक रूप 'दोन' भी प्रचलित है। 'दोन' का प्रयोग नियमित रूप से मराठी में होता है। 'दोन' हिन्दी में भी समूहवाचक 'दोनों' में सुरक्षित है। अधिक के लिए देखिए, §२२३।

रूप—'सौ' प्राकृत के 'सउ' से तथा दूसरा रूप—'सै' प्राकृत के 'सयम्' से सम्बन्धित है। 'सयम्' का 'य' 'त' के लोप के पश्चात् श्रुति के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

समूहवाचकों की व्युत्पत्ति

§२५०. 'दोनों', 'बीसों', 'लाखों' आदि समूहवाचक शब्दों में प्रयुक्त 'ओं' प्रत्यय का उद्भव संस्कृत के समूहवाचक प्रत्यय 'यम्' से माना गया है। 'बीसों' का उद्भव इसीलिए संस्कृत के काल्पनिक रूप 'विंशतयम्' से माना जाता है। कुछ लोग मानते हैं कि बहुवचन मे नियमित रूप से प्रयुक्त 'ओं' इन सख्याओं के कर्त्ता (अविकारी, विभक्तिहीन) कारक के बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है और इस तरह बीसो, लाखों आदि रूप उपलब्ध होते हैं। यह विचार उचित नहीं है। विकारी बहुवचन के 'ओं' और इन समूहवाचक संख्याओं के 'ओं' का सादृश्य केवल संयोगवश है, इन दोनों का उद्भव भिन्न प्रत्ययों से हुआ है।

अंशवाचकों की व्युत्पत्ति

§२५१. अनियमित रूप से रचे जाने वाले अंशवाचकों की व्युत्पत्ति कुछ इस तरह की जाती है—सं० पाद>प्रा० पाउ, पाओ>हि० पाव ¼। स्त० हि० पौन (¾) <प्रा० पाओन<सं० पादोन। स्त० हि० आधा (½) सं० के अर्ध शब्द से बनने वाले 'अर्द्धक' से। स्त० हि० सवा<प्रा० सवाउ<सं० सपाद। साढ़े (अविकारी रूप 'साढ़ा' प्रयुक्त नही होता)<प्रा० सड्ढो<सं० सार्द्धक। २½, ३½, ४½ को सूचित करने वाले अंश वाचकों की व्युत्पत्ति देना बहुत कठिन है। हार्नली ने इनकी व्याख्या प्राकृत के अन्तरिम रूपों की सहायता से की है।[1] हम भी इस विवरण से लाभ उठा सकते हैं। हार्नली के विचार से ये रूप संस्कृत शब्द 'अर्द्ध' और आगामी संख्या के योग से बने हैं। सब से पहले 'डेढ़' शब्द को लीजिए। हार्नली का विचार है कि इसकी व्युत्पत्ति प्राकृत के 'अड्ढदिवे' शब्द से हुई है, प्रा० अड्ढदिवे का सम्बन्ध सं० अर्द्ध + द्वितीय के साथ सरलता से स्थापित किया जा सकता है। 'अढ़ाई' का पूर्ववर्ती रूप अड्ढाइआ प्रा० अड्ढाइज्जा (अड्ढा तइज्जा)=सं० अर्द्ध तृतीया है। हुंटा, हूँटा आदि की उत्पत्ति प्रा० अद्धुट्ठ कल्पित रूप अद्धोट्ठ=अद्ध औट्ठ=अद्ध + चउट्ठ∠सं० अर्द्धचतुर्थ से मानी गई है। ढोंच, ढोंचा (४½) की व्युत्पत्ति भी इसी प्रकार के एक संस्कृत समासित शब्द अर्द्धपञ्चम से मानी जाती है। सं० अर्द्धपञ्चम प्रा० अड्ढौंचउ>हि० ढोंच, ढोंचा आदि। 'पचास' के योग से बनने वाली संख्याओं मे 'प' का 'व' में परिवर्त्तित होना बताया जा चुका है, इस संख्या में भी संस्कृत 'पञ्च' का 'प' 'व' मे परिवर्त्तित हुआ। इस शृंखला की सभी संख्याओं के लिए इसी प्रकार की व्युत्पत्ति जारी रखना संभव नही है; क्योंकि पोंचा (५½), खोंचा (६½) और सतोंचा (७½) में प्रथम शब्द संख्यावाची है। पोंचा की उत्पत्ति पाँच से और सतौंचा की उत्पत्ति 'सात' से स्पष्ट दिखाई देती है। खोंचा (६½) का 'ख' सं० षश के आरंभिक 'ष' के लिए आया है। 'ष' का 'ख' मे परिवर्त्तित होना सामान्य बात है। मैंने प्रथम संस्करण मे यह सुझाव दिया था कि 'ढोंचा' 'पोंचा' आदि की उत्पत्ति 'उच्छ' शब्द हुई है, किन्तु हार्नली ने 'ढोंचा' शब्द की उत्पत्ति स्पष्ट और प्रामाणिक ढंग से दी है कि मैं अपने इस सुझाव को निराधार मानता हूँ। मैं हार्नली के इस विचार का समर्थन करता हूँ कि सामान्य जनता ने अनजाने में 'ढोंचा' के अनुकरण पर 'पोंचा' आदि का व्यवहार किया। 'क' प्रत्यय युक्त समूहवाचक तथा गुणनवाचक संख्याएँ सीधे संस्कृत से आई है।

---

[1] देखिए, ग्रामर आफ़ द गौड़ियन लैंग्वेजेस, पृ० २६९, २७०।

संस्कृत में 'क' प्रत्यय तथा कभी-कभी 'कर' प्रत्यय के योग से समूहवाचक संख्याओं की रचना होती है। 'कर' प्रत्यय का उदाहरण हिन्दी का 'सैकड़ा' तथा उसके अन्य रूप है। हि० दूना<सं० द्विगुणक को छोड़ कर अन्य आकारान्त शब्दों की रचना 'आ' प्रत्यय के योग से हुई है। यह 'आ' भाववाची संज्ञा बनाने के काम आता है।

अंशवाचकों की व्युत्पत्ति

§२५२. हिन्दी के अधिकाश संख्यावाचक शब्द संस्कृत से सम्बन्धित है। सस्कृत के संख्यावाची शब्द प्राकृत से होते हुए हिन्दी में प्रयुक्त होने लगे। जैसे—हि० दसवाँ<सं० दशम; हि० पचासवाँ<स० पचशतम्। इसी तरह हि० पहला<प्रा० पढमिल्ल<सं० प्रथम। सं० 'थ' प्राकृत मे पहले 'ध' बना, अन्य महाप्राण अक्षरों की भाँति 'ध' का केवल 'ह' शेष रह गया। 'पहला' शब्द मे 'ल' अतिरिक्त प्रत्यय है। हिन्दी में प्रयुक्त 'दूसरा' और 'तीसरा' शब्द की व्युत्पत्ति स्पष्ट नही है। हार्नली ने 'सरा' की व्युत्पत्ति सं० श्रित से मानी है। दूसरा का उद्भव इस तरह कल्पित किया गया है—हि० दूसरा<प्रा० दुसलिये<सं० द्विश्रित।

क. चान्द्रमास की तिथियों के नाम भी संस्कृत से सम्बन्धित है। इन नामों मे 'तिथि' शब्द का अध्याहार कर लिया जाता है। 'परिवा' का जन्म प्रथमा शब्द से हुआ,[1] मूल 'प्र' के दोनों व्यंजन वियुक्त हुए। 'थ' का लोप और म>व। 'दूज' और तीज' का उद्भव क्रमशः 'द्वितीया' और 'तृतीया' से हुआ। दोनो शब्दों में 'त' का लोप और 'य'>ज।

---

[1] 'परिवा' की व्युत्पत्ति 'प्रतिपदा' से अधिक युक्तिसंगत है। 'प्रति' शब्द का 'पड़ि' में परिवर्तन होना अन्य उदाहरणों से भी सिद्ध होता है।

आठवाँ अध्याय

सर्वनाम

§२५३. अन्य भाषाओं की भाँति हिन्दी मे भी सर्वनामों के रूप नियमित नहीं है। कुछ बोलियों मे ही संस्कृत की विभक्तियाँ अवशिष्ट रह गई हैं। सामान्यतया संज्ञाओं मे पुरानी विभक्तियों के चिह्न दिखाई नही देते। यह परिवर्तन बहुत कुछ अपभ्रंश काल मे हुआ। सर्वनामो के साथ भी परसर्ग लगाकर कारक बनते है, फिर भी इसमे सन्देह नही कि संस्कृत के सर्वनामों मे विभक्ति सम्बन्धी जो परिवर्तन होते थे, वे कुछ अंशों मे हिन्दी मे विद्यमान हैं। राजपूताना की कुछ बोलियों को छोड़ कर हिन्दी के सर्वनामों में लिंग भेद नही है। प्राकृतों में कुछ को छोड़ कर बहुत से सर्वनामो में लिंगभेद विद्यमान था। हिन्दी में तृतीय पुरुषवाची सर्वनाम नहीं है; तृतीय पुरुष के लिए निश्चयवाचक सर्वनाम 'यह' तथा 'वह' और अन्योन्य सम्बन्धी सर्वनाम 'सो' का प्रयोग होता है।

उल्लेखनीय—हिन्दी मे तीन पुरुष हैं—उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, अन्य पुरुष।

§२५४. प्रथम पुरुष और द्वितीय पुरुष के सम्बन्ध कारक में जो रूप प्रयुक्त होता है, वह किसी अन्य कारक में काम नही आता। विकारी रूप के साथ 'का' परसर्ग के स्थान पर 'रा' जुड़ता है। विशेषता यह है कि यह 'रा' शब्द का अभिन्न अंश बन जाता है। निजवाचक सर्वनाम 'आप' अपनी विशेषता रखता है, इसके सम्बन्ध कारक का रूप पूर्णतया विकारी है; यह रूप है—'अपना', जो सं० 'आत्मनः' से बना है। प्रथम पुरुष तथा द्वितीय पुरुष के कर्त्ता कारक (विकारी, विभक्ति युक्त) का रूप ही अन्य कारकों के लिए आधार बनता है।

याद करने के लिए विभिन्न सर्वनामों के विकारी रूपो पर ध्यान देना आवश्यक है। निश्चयवाचक सर्वनाम 'यह' तथा 'वह', सम्बन्ध सूचक सर्वनाम 'जो', अन्योन्य सम्बन्ध सूचक 'सो', प्रश्नवाचक 'कौन' तथा 'क्या' के विकारी एकवचन मे 'स' विभक्ति और विकारी बहुवचन मे 'न' अथवा 'न्ह' विभक्ति जुड़ती है। हिन्दी से सम्बन्धित बोलियों मे विभक्ति का उपयोग होता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि निकट-वर्त्ती संकेतवाचक सर्वनाम का विकारी रूप 'इ' (बहुत कम "अ"), 'इ' का दीर्घ रूप 'ई' अथवा गुणरूप 'ए' अथवा सवर्णी अर्द्धस्वर 'य' से प्रारंभ होता है। दूरवर्ती संकेतवाचक पर ध्यान दीजिए तो पता चलेगा कि उसका आरंभिक अक्षर ओष्ठ्य 'उ' अथवा दीर्घ 'ऊ' अथवा सवर्णी अर्द्धस्वर 'व' होता है। आरंभिक 'ज' सम्बन्ध को तथा 'स' और 'त' अन्योन्य सम्बन्ध को सूचित करते है। इस तरह इन पाँचों सर्वनामों के रूपों में किसी एक का आरभिक अक्षर बदलने से दूसरे सर्वनाम का रूप बन जाता है। इसका अर्थ यह है कि इन पाँचो सर्वनामों के आरंभिक अक्षर में ही अन्तर है। सभी के साथ समान विभक्तियों का उपयोग किया जाता है। स्तरीय हिन्दी के पाँच प्रमुख सर्वनामों के आधार-रूप निम्न प्रकार हैं—

प्रकार	निकटवर्ती निश्चय-वाचक	दूरवर्ती निश्चय-वाचक	सम्बन्ध सूचक	अन्योन्य-सम्बन्धी	प्रश्न-वाचक
कर्त्ता (अविकारी)	य	व	ज	स	क
कर्त्ता (विकारी-विभक्ति सहित)	इ	उ	जि	ति	कि

क. अनिश्चयवाचक सर्वनाम की रचना के लिए उच्च हिन्दी में प्रश्नवाचक सर्वनाम को आधार बना कर उसके साथ 'ई' जोड़ते है। बोलियों मे इ, उ, ऊ अथवा हि, ही और हू जोड़ते है।

ख. इन सर्वनामों के आधार-रूपों मे परिवर्तन के कारण छह प्रकार के क्रियाविशेषण बनते है; इन क्रियाविशेषणों के सम्बन्ध में विस्तार से आगे चल कर लिखा जाएगा (देखिए अध्याय ११)।

§२५६. प्रथम पुरुषवाचक सर्वनाम के रूप इस प्रकार हैं—

मैं

कारक	एकवचन	बहुवचन
(१) कर्त्ता (अविकारी)	मै	हम
(२) कर्म, सम्प्रदान	मुझे, मुझको	हमें, हमको, हमों को
(३) कर्त्ता (विकारी, विभक्ति सहित)	मैंने	हमने, हमों ने
(४) अपादान	मुझ से	हमसे, हमों से
(५) सम्बन्ध	मेरा, मेरे, मेरी	हमारा, हमारे, हमारी
(६) अधिकरण	मुझमें, मुझ पर	हममे, हम पर, हमों में, हमों पर

§२५७. मध्यम पुरुषवाची सर्वनाम के रूप भी इसी प्रकार चलते हैं—

तू

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता (अविकारी, विभक्ति रहित)	तू	तुम
कर्म, सम्प्रदान	तुझे, तुझको	तुम्हें, तुमको, तुम्हों को
कर्त्ता (विकारी, विभक्ति सहित)	तूने	तुमने, तुम्हों ने
अपादान	तुझसे	तुमसे, तुम्हों से
सम्बन्ध	तेरा, तेरे, तेरी	तुम्हारा, तुम्हारे, तुम्हारी
अधिकरण	तुझमें, तुझ पर	तुममे, तुम पर— तुम्हों में, तुम्हों पर

§२५८. 'तुम्हारा' के स्थान पर कहीं-कही 'तुमारा' प्रयोग भी मिलता है। 'रामायण' तथा 'प्रेम मोहिनी' में 'तुमारा' कई स्थानों पर आया है। कर्मकारक तथा सम्प्रदान कारक के एकवचन मे 'मेरे तई', 'तेरे तई' रूप भी मिलते है; पिनकाट के 'हिन्दी मैन्युअल' मे 'तेरे को' रूप भी दिया गया है, जैसे—'तेरे को क्या चाहिए सो माँग लेओ।" सम्बन्ध कारक के विभक्ति सहित रूप को आधार बना कर दूसरे कारकों के परसर्गों का व्यवहार करना जहाँ पूरब की बोलियों मे सामान्य बात है, वहाँ स्तरीय हिन्दी मे इनका प्रयोग बहुत ही कम मिलता है। उच्च हिन्दी मे इस प्रकार के रूप उचित नही माने जाते।

एकवचन और बहुवचन

§२५९. अंग्रेजी मे प्रथम पुरुष और मध्यम पुरुष के बहुवचन का प्रयोग एकवचन में भी किया जाता है, इसी प्रकार हिन्दी मे भी दोनो पुरुषो के बहुवचन 'हम' और 'तुम' एकवचन मे भी प्रयुक्त होते है। द्वितीय पुरुष का एकवचन वाला रूप—'तू' घनिष्ठता अथवा स्नेह सूचित करने के लिए प्रयुक्त होता है; विशेष रूप से स्त्रियाँ आपसी बातचीत मे एक-दूसरे के लिए 'तू' सर्वनाम का प्रयोग अधिक करती है। मनुष्य अपनी सन्तान तथा पत्नी के लिए 'तू' का प्रयोग करते है। गुरु अपने शिष्य के लिए और स्वामी अपने सेवकों तथा आश्रितों के लिए इसी रूप का उपयोग करता है। इस रूप के सम्बन्ध में यह और कहा जा सकता है कि हीनता प्रकट करने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। समान स्थिति अथवा उच्च श्रेणी के व्यक्तियो के लिए यदि 'तू' का प्रयोग किया जाये तो विरोध और अपमान प्रकट होता है। नौकर-चाकरों को छोड़ कर किसी अन्य व्यक्ति के लिए 'तू' का प्रयोग नही करना चाहिए।

आराध्य का सम्बोधन

§२६०. आराध्य को सम्बोधित करने के लिए द्वितीय पुरुष का रूप निश्चित नहीं है। मेरा विचार है कि हिन्दू लोग इस कार्य के लिए आदरवाचक सर्वनाम 'आप' का प्रयोग करते है, किन्तु इसके साथ कोई ऐसा शब्द आवश्यक होता है, जो बहुवचन का आशय उत्पन्न करे। हिन्दी के विपरीत उर्दू में, मुसलमानो के एकेश्वरवाद के प्रभाव से, अंग्रेजी की तरह, द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम के एकवचन का प्रयोग होता है। ईसाई धर्म प्रचारको तथा भारतीय ईसाइयों ने उर्दू के प्रभाव से हिन्दी पुस्तको मे ईश्वर के लिए 'तू' का प्रयोग किया है। हिन्दी की दृष्टि से ईश्वर के लिए 'तू' का प्रयोग उचित न होते हुए भी 'ईसाई हिन्दी' की दृष्टि से अनुचित नही है।

क. यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी मे जब कभी हमारे स्वामी ईसा के सम्बन्ध में कोई घटना लिखी जाती है अथवा उनके इहलोक की लीला का उल्लेख किया जाता है तो 'आप' का ही प्रयोग होता है। हिन्दुओं की दृष्टि से यह बात सोची भी नही जा सकती कि प्रार्थना-दिवस के दिन भक्तों का समूह महात्मा ईसा को 'तू' से सम्बोधित करे, इसीलिए बैपटिस्ट मिशनरी सोसाइटी की ओर से प्रकाशित 'बाइबिल' के प्रशंसनीय अनुवाद को मै उचित मानता हूँ, जिसमे ईश्वर अथवा 'ईसा' के लिए 'आप' का प्रयोग किया गया है।

§२६१. दीर्घ रूप 'हमों' और 'तुम्हों' का उपयोग बहुवचन मे ही होता है। इन रूपो के रहते हुए भी लोग 'हम' और 'तुम' के साथ कुछ शब्द जोड़ कर बहुवचन बनाते है। 'हमों' और 'तुमो' का प्रयोग न कर के बहुवचन के लिए 'हम' और 'तुम' के साथ 'लोग' जोड़ कर काम चलाया जाता है; जैसे—हम लोग, तुम लोग; (विकारी-विभक्ति सहित रूप) हम लोगों को, तुम लोगो को; सम्बन्ध कारक—हम लोगों का, तुम लोगों का, आदि।

§२६२. जब सम्बन्ध कारक मे प्रयुक्त किसी सज्ञा अथवा विशेषण के साथ इन सर्वनामों का प्रयोग होता है तो सर्वनाम का विकारी रूप ही प्रयुक्त होना चाहिए और परसर्ग का, के, की—केवल साथ की संज्ञा के साथ जुडना चाहिए; जैसे—मुझ अभागी का, हम बढइयों का, तुम बुद्धिमानो का; हमारे बढइयो का; तुम्हारे बुद्धिमानो का।

§२६३ व्यक्तिवाचक सर्वनामों के सम्बन्ध कारक के रूप विकारी बहुवचन की विभक्ति के साथ संज्ञा की भाँति प्रयुक्त होते है, इस स्थिति में विधेय प्रसगानुसार जाना जा सकता है। भागवत पुराण का यह उदाहरण देखिए—"आन देशों मे तुम्हारो से बडे सूर बीर हुए है।"

§२६४. अगले छह सर्वनामों के रूपो का सादृश्य निम्नलिखित सूची मे दी गई विभक्तियो से प्रकट होता है।

§२६५. इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए कि स्त० हि० का 'जो' अँग्रेजी सर्वनाम 'हू' (who) अथवा 'व्हिच (which) का पर्यायवाची नही है। अग्रेजी मे इसका ठीक-ठीक अनुवाद होगा—'द वन हू' (the one who) अथवा 'दैट व्हिच' (that which)। जैसे-जो आदमी आया; मैने जो कहा सो किया।

§२६६. अनिश्चयवाचक सर्वनाम 'कोई' का बहुवचन दुहरा कर बनाते है; जैसे—कोई कोई आया; मैने किसी किसी को देखा। कभी-कभी बल देने के लिए भी कोई को दुहराते हैं। बहुवचन मे 'कोई' के स्थान पर 'कितने' का प्रयोग भी होता है, जैसे—कितने कहते थे।

उल्लेखनीय—वास्तव मे 'कितने' प्रश्नवाचक सार्वनामिक है, इसीलिए यह अनिश्चयवाचक सर्वनाम के स्थान पर प्रयुक्त होता है। 'कितने' की तुलना अँग्रेजी के इस वाक्य खड से कीजिये—'हाउ मेनी गो (how many go) और 'हाउ मे गो' (how may go).।

अवधारणार्थक प्रत्यय

§२६७. 'कौन' और 'कोई' विकारी एक वचन मे कही-कही अपरिवर्त्तित रहते है; 'प्रेम सागर' का उदाहरण—कौन रीति से कृष्ण उपजे।

§२६८. उपर्युक्त सभी सर्वनामों के साथ कभी-कभी अवधारणार्थक अव्यय 'ई' अथवा 'ही' जुड़ता है। विकारी बहुवचन मे अन्त्य 'ओ' के स्थान पर 'ई' आता है। उदाहरण—यही, मैं ही, उसीको, उन्हींने कहा। बहुत कम स्थलों पर विकारी बहुवचन के साथ भी 'ही' प्रत्यय जुडता है, जैसे—उन्ही ही से।

संज्ञा और विशेषण के रूप में

§२६९. जब कोई सर्वनाम सज्ञा की भाँति प्रयुक्त होता है तो उसके साथ उपयुक्त परसर्ग जुड़ता है। जब कोई सर्वनाम विकारी कारक मे प्रयुक्त किसी संज्ञा के साथ आता है तो वचन के अनुसार वह [illegible] के विकारी रूप धारण करता है, जैसे—उस पर, किन्तु उस घोड़े पर; किसके घर को गया; किन्तु किस घर को, उसके देश के लोग, किन्तु उस देश के लोग, जिनका, किन्तु जिन बनियों का; तिन बनियों को आदि।

§२७०. इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि 'ओकारान्त' रूप केवल संज्ञा की भाँति प्रयुक्त होता है, ह्रस्व स्वरांत रूप विशेषण के रूप मे सज्ञा के साथ आता है, जैसे—'उन घोड़ो का है' के

सूची ८ : उच्च हिन्दी में सर्वनामों के रूप

		निकटवर्ती निश्चय वाचक	दूरवर्ती निश्चय०	सम्बन्ध सूचक	अन्योन्य सम्बन्ध सूचक	प्रश्न वाचक	अनिश्चय वाचक
		यह	वह	जो	सो[1]	कौन	कोई
एकवचन	कर्त्ता (विभक्ति रहित)	यह, यिह	वह, वुह[2]	जो	सो	कौन	किसीने
	कर्म - सम्प्रदान	यह, इसे, इसको	वह, उसे, उसको	जो, जिसे, जिसको	सो, तिसे, तिसको	किसे, किसको[3]	
	कर्त्ता (विभक्ति सहित)	इसने	उसने	जिसने	तिसने	किसने	किसीने
	सम्बन्ध	इसका[4]-के-की	उसका[4]-के-की	जिसका-के-की	तिसका-के-की	किसका-के-की	किसीका-के-की
	अधिकरण	इसमे, इस पर	उसमे, उस पर	जिसमे, जिस पर	तिसमे, तिस पर	किसमे, किस पर	किसीमे, किसी प
बहुवचन	कर्त्ता (विभक्ति रहित)	ये[5], यह	वे, वह	सो	सो	कौन	बहुवचन में प्रयोग नही होता।
	कर्म - सम्प्रदान	इन्हे, इनको, इन्ही को	उन्हे, उनको, उन्हो को	जिन्हे, जिनको, जिन्हों को	तिन्हे तिनको तिन्होको	किन्हे, किनको, किन्होंको	
	कर्त्ता (विभक्ति सहित)	इनने, इन्होने	उनने, उन्होने	जिनने, जिन्होंने	तिनने, तिन्होंने	किनने, किन्होंने	
	अपादान	इनसे, इन्हो से	उनसे, उन्हो से	जिनसे, जिन्होसे	तिनसे, तिन्होंसे	किनसे, किन्होंसे	
	सम्बन्ध	इनका, इन्हो का[4]	उनका, उन्हों का[4]	जिनका जिन्हों का[4]	तिनका, तिन्हों का[4]	किनका, किन्होका[4]	
	अधिकरण	इनमे, इन्हो मे, इन्हों मे, इन्हों पर	उसमे, उन पर— उन्हो मे, उन्हो पर	जिनमे, जिन पर, जिन्होमें, जिन्हों पर	तिनमे, तिन पर— तिन्होमे, तिन्हो पर	किनमे, किन पर किन्होमे, किन्हो पर	

---

१. कर्त्ताकारक (विभक्ति रहित) को छोड कर शेष कारको मे अन्योन्य सम्बन्धी सर्वनाम के रूप मे प्राय. दूरवर्ती निश्चय वाचक 'वह' का प्रयोग होता है।

२. 'वो' का प्रयोग हिन्दी पुस्तकों मे भी मिलता है; वास्तव मे यह ब्रजभाषा का रूप है।

३. बातचीत मे प्रश्नवाचक 'कौन' किस, कोई और किसी के लिए भी प्रयुक्त होता है। यह प्रयोग उचित नही है।

४. 'का' का रूपान्तर 'के' तथा की में होता है, देखिए § १६१।

५ कही-कही 'ये' का प्रयोग होता है, किन्तु 'ये' का प्रयोग शिष्ट नही माना जाता। देखिए, 'रणधीर और प्रेम मोहिनी'।

स्थान पर 'उन्ही घोड़ो का' प्रयोग नहीं होता; इसके विपरीत हम कह सकते हैं—'उनने कहा' अथवा 'उन्होने कहा'।

क. सम्मान प्रकट करने के लिए दीर्घ रूप अधिक पसंद किया जाता है। मथुरा के आसपास की बोली में 'ह्' लुप्त रहता है।

आदरार्थक रूप

§२७१. जब किसी के लिए सम्मान प्रकट करना अभीष्ट हो तो एक वचन के लिए भी बहुवचन प्रयुक्त होता है, आदर के लिए ह्रस्व रूप की अपेक्षा दीर्घरूप पसन्द किया जाता है; यदि बहुवचन और एकवचन के रूप मे कुछ साम्य हो तो बहुवचन को अधिक स्पष्टता से व्यक्त करने के लिए 'लोग' शब्द जोड़ते हैं; यह 'लोग' विकारी कारक में विकारी ह्रस्व रूप और परसर्ग के मध्य में आता है और बहुवचन के कारण 'लोग' शब्द के अन्त्य 'अ' को 'ओं' बनाते हैं। जैसे—**वह लोग; उन लोगों** के गाँव में; **जो लोग** आए; आदि।

§२७२. अनिश्चयवाचक सर्वनाम को छोड़कर शेष सभी सर्वनामों के कर्म तथा सम्प्रदान के एकवचन तथा बहुवचन मे दो-दो रूप होते हैं; इनमे से पहला एकारान्त (एकवचन) और ऐँकारान्त (बहुवचन) विशुद्ध रूप से बिना परसर्ग का विभक्ति वाला विकारी रूप है और दूसरा आधार रूप के साथ 'को' परसर्ग के योग से बनता है। दोनों रूपों का प्रयोग कर्म तथा सम्प्रदान कारक में होता है किन्तु परसर्ग 'को' से युक्त रूप कर्मकारक के लिए और दूसरा रूप सम्प्रदान कारक के लिए पसंद किया जाता है। सम्प्रदान अथवा कर्मकारक के लिए किस रूप का प्रयोग होना चाहिए, इसका निर्णय कभी-कभी उच्चारण सम्बन्धी सुविधा को ध्यान से रखकर भी होता है। जैसे—'मैंने उसे माली को दिया' इस वाक्य में कर्म तथा सम्प्रदान दोनों में 'को' का प्रयोग (मैंने उसको माली को दिया) कानों को अच्छा नही लग सकता।

§२७३. जब इन सर्वनामों का प्रयोग अविकारी अथवा 'को' परसर्ग के बिना होता है तो वे कर्त्ता-कारक (अविकारी) के रूप मे रहते है, जैसे—जो घर मे देखता है; यह बात कह कर। जब ये सर्वनाम संज्ञा के स्थान पर आते हैं तो इनका प्रयोग कर्मकारक के अविकारी रूप में होता है; किन्तु इस प्रकार के प्रयोग के लिए यह आवश्यक है कि सर्वनाम से किसी वस्तु का बोध होता हो; जैसे—मै यह कहता हूँ; जो कहते हैं सोई कहते है। 'कौन' और 'कोई' का प्रयोग इस तरह नही किया जा सकता।

'क्या' और 'कुछ'

§२७४. प्रश्नवाचक सर्वनाम 'कौन' और अनिश्चयवाचक 'कोई' के अतिरिक्त प्रश्नवाचक 'क्या' और अनिश्चयवाचक 'कुछ' का प्रयोग भी होता है। 'कौन' और 'क्या' सर्वनाम का यथास्थान प्रयोग करने के लिए निम्न बातों पर ध्यान रखना चाहिए—

(१) 'कौन' का प्रयोग व्यक्ति और वस्तु दोनों के लिए किया जाता है, किन्तु 'क्या' का प्रयोग केवल 'वस्तु' के लिए होता है। आश्चर्य व्यक्त करने के लिए कही-कहीं व्यक्ति के लिए भी 'क्या' सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है; जैसे—क्या मूरख। ऐसे प्रयोगों में सर्वनाम के साथ अवधारणार्थक प्रत्यय 'ही' जोड़ा जाता है; जैसे—**क्या ही** बड़ा राजा।

(२) 'कौन' का प्रयोग संज्ञा और विशेषण दोनों के साथ कर्त्ता (विभक्तिरहित) और कर्म (विभक्ति-सहित) दोनों कारकों में होता है। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि संज्ञा के साथ 'कौन' का प्रयोग केवल व्यक्ति के लिए किया जाता है। उदाहरण—**कौन** है? तुमने **किसको** बुलाया? **किसका** है? **किस** लड़के का? तुमने **किस** महाजन से पूछा? **किस** घर में?

क. बहुवचन के लिए प्रायः 'कौन' को दुहराते हैं; जैसे—कौन कौन आए?

(३) विशेषण के रूप में 'क्या' केवल कर्त्ताकारक (परसर्ग रहित) में आता है। संज्ञा के लिए क्या विकारी रूप में आता है।

क. 'क्या' का सम्प्रदान कारक वाला रूप 'काहे को' सामान्यतया अंग्रेजी के 'ह्वाइ' (why) का पर्यायवाची है। सम्बन्ध कारक का रूप 'काहे का' वस्तुओं के लिए आता है; उदाहरण—तुम काहे को आए? यह क्या है? यह काहे का बना है?

अनिश्चयवाचक सर्वनाम का प्रयोग

§२७५. 'कोई' और 'कुछ' ये दोनों अनिश्चयवाचक सर्वनाम संज्ञा तथा विशेषण के लिए प्रयुक्त होते हैं। वस्तु और व्यक्ति दोनों के लिए इनका प्रयोग किया जाता है। अन्तर उस समय पड़ता है जब इनका प्रयोग संज्ञा के स्थान पर होता है। संज्ञा के स्थान पर 'कोई' का प्रयोग 'कौन' की तरह केवल व्यक्ति के लिए और 'कुछ' का प्रयोग केवल वस्तु के लिए होता है। विशेषण के रूप मे 'कोई' और 'कुछ' व्यक्ति तथा वस्तु दोनो के लिए आते है।

क. जब 'कोई' और 'कुछ' का प्रयोग विशेषण के रूप मे होता है तो इनका अन्तर इस तरह समझा जा सकता है—'कुछ' सदैव किसी अंश के लिए प्रयुक्त होता है। उदाहरण—'**कोई है**?' (=वहाँ कोई है? या वहाँ कोई भी है।); किन्तु '**कुछ है**'। मैंने **किसी को** देखा; **कुछ** लड़के आए।

§२७६. 'क्या' केवल एकवचन में आता है। 'कुछ' सर्वत्र अविकारी रहता है।

क. कुछ वैयाकरणों ने 'कुछ' का विकारी रूप दिया है—'किसु'। वास्तव मे 'किसु' क्षेत्रीय बोलियो में प्रयुक्त 'कोई' का पुराना पर्याय है। 'किसु' के रूप क्षेत्रीय बोलियो के सर्वनाम रूपों की सूची मे देखे जा सकते है। प्रो० दे० तासी ने 'कुछ' का विकारी रूप 'किन्हू' लिखा है; वास्तव मे 'किन्हू' 'कोई' के विकारी बहुवचन का वैकल्पिक रूप है।

क्या

एकवचन

कर्त्ता (विभक्तिरहित)—क्या
कर्म, सम्प्रदान—काहे को
कर्त्ता (विभक्ति सहित)—रूप नही है।
अपादान—काहे से
सम्बन्ध—काहे का
अधिकरण—काहे में, काहे पर

§२७७. द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम 'तू' अथवा 'तुम' के लिए आदरार्थक सर्वनाम 'आप' का प्रयोग होता है। द्वितीय पुरुष के प्रति आदर व्यक्त करने के लिए 'आप' आता है। एकवचन में इसके रूप पुल्लिंग-

वाची संज्ञा की भाँति चलते है—कर्त्ताकारक (विभक्ति या परसर्ग रहित)—आप, कर्म तथा सम्प्रदानकारक आपको, सम्बन्धकारक—आपका; इत्यादि।

क. एक से अधिक व्यक्तियों के लिए 'आप' के साथ 'लोग' शब्द जोडकर बहुवचन बनाते है; इस स्थिति में 'आप' सर्वत्र अविकृत रहता है; कारक सम्बन्धी विकार 'लोग' शब्द मे होते है; जैसे—**आप लोग** देखिये; मैं आप लोगो से कहता हूँ।

ख. आदरार्थक सर्वनाम 'आप' का प्रयोग उस व्यक्ति के लिए भी होता है, जिसके बारे मे द्वितीय पुरुष से बातचीत की जा रही है और वह व्यक्ति बातचीत के समय उपस्थित हो। मेरे विचार से ऐसे अवसर पर 'आप' के स्थान पर साहिब, पंडित, लाला जैसे आदरवाचक शब्दो का प्रयोग ठीक रहेगा।

निजवाचक सर्वनाम

§२७८. निजवाचक सर्वनाम का उद्भव भी 'आप' की भाँति सं० आत्मन. से हुआ है, किन्तु इसके रूप भिन्न प्रकार से चलते है। निजवाचक सर्वनाम के एकवचन के रूप इस तरह है—

आप (निजवाचक)

एकवचन

कर्ता (परसर्ग रहित)	आप
कर्म, सम्प्रदान	आपको, अपने को, अपने तई
कर्ता (परसर्ग सहित)	आपने
अपादान	आपसे
सम्बन्ध	अपना, अपने, अपनी
अधिकरण	आप मे, आप पर

बहुवचन के रूप भी एकवचन के समान चलते है। केवल सम्बन्ध कारक और अधिकरण कारक के बहुवचन के रूप भिन्न है। सम्बन्ध—आपस का, अधिकरण—आपस में; उदाहरण—आपस की बातचीत, वे आपस में झगड़ा करते है।

निजवाचक सर्वनाम के सम्बन्ध कारक का रूप

§२७९. अन्य पुरुषवाचक सर्वनामों के सम्बन्धकारक के लिए निजवाचक सर्वनाम के सम्बन्ध कारक का रूप उस समय प्रयुक्त होता है, जब सर्वनाम क्रिया के 'उद्देश्य' को प्रकट करता है। कभी-कभी अन्य स्थिति में भी ऐसा प्रयोग मिलता है। इस सम्बन्ध में विस्तार से वाक्य रचना सम्बन्धी अध्याय मे लिखा जाएगा। यहाँ एक-दो उदाहरण पर्याप्त है—वह **अपने** घर को जाता है, किन्तु वह **उसके** घर को जाता है। 'वह **उसके** घर को जाता है' इस वाक्य मे 'वह' किसी अन्य **व्यक्ति** के घर को जाता है। इसी प्रकार—**स्यार अपने** बिल में छिपा रहा।

§२८०. निज वाचक सर्वनाम के सम्बन्ध कारक का रूप 'अपना' कभी-कभी बहुवचन के विकार को ग्रहण करता है। इस स्थिति मे वह संज्ञा की भाँति आता है और उसका अर्थ होता है—आत्मीय जन, जैसे—वह अपनों के पास आया। यह रूप कभी-कभी एकवचन मे भी प्रयुक्त होता है, इस स्थिति मे संज्ञा का अध्याहार करना पड़ता है; जैसे—उसने अपने को मारा (अपने को=बेटा, भाई आदि प्रसंगानुसार)।

§२८१ ध्यान देने योग्य बात यह है कि निजवाचक सर्वनाम का ह्रस्व रूप आदरवाची सर्वनाम 'आप' से सादृश्य रखता है, जैसे—उसने आपको मारा। जहाँ अर्थ सदिग्ध हो, निजवाचक सर्वनाम के दीर्घ रूप के साथ 'आप' जोडते है, जैसे—उसने अपने आपको मारा।

क्षेत्रीय बोलियों के सर्वनाम

§२८२. इस अध्याय के साथ जुड़ी हुई सूची मे तेरह बोलियो के सर्वनाम और उनके रूप दिए गए है। इस सूची से पहले बहुप्रचलित रूपों के सम्बन्ध मे जानकारी पाना ठीक रहेगा। ब्रजभाषा के सर्वनामों के रूप नियमित है, अपवादो की संख्या अधिक नहीं है; इसीलिए इनके बारे मे अधिक लिखना अनावश्यक है। सूची मे मारवाड़ी की विभिन्न बोलियों मे प्रयुक्त सामान्य रूप दिए गए है। मारवाड़ी के सर्वनामो के इन रूपों का उल्लेख आगामी अनुच्छेदो मे किया जाएगा। ये रूप नाटको मे प्रयुक्त हुए है।

ब्रजभाषा के सर्वनाम

§२८३. ब्रजभाषा मे कुछ स्थलो पर सम्बन्ध कारक के 'मेरौ' तथा 'तेरौ' के स्थान पर 'मो' और 'तो' का प्रयोग मिलता है; जैसे—तो मन की जानति नही, भस्म करत पै मो हियौ।

मैने 'मोहि' के स्थान पर 'मोय' सुना है। साहित्य मे सम्बन्धवाची तथा अन्योन्य सम्बन्धवाची सर्वनाम के सम्बन्ध कारक के एकवचन के रूप 'जासु' तथा 'तासू' का प्रयोग अधिक हुआ है।

राजपूताना की बोलियों के सर्वनाम

§२८४. प्रथम पुरुषवाची सर्वनाम मे प्रयुक्त 'म' कही अल्पप्राण रहता है, कही महाप्राण। दोनों रूपों का प्रयोग समान रूप से होता है; जैसे—म्हारी अरज सुनो; सुण मारी बात। इस उदाहरण में कर्त्ता-कारक (विकारी) मे 'मै' बिना परसर्ग के प्रयुक्त हुआ है—गुरु की अग्या मै पाई। मारवाडी मे द्वितीय पुरुष के विकारी एकवचन मे नियमित रूप से 'थ' आधार रूप है, कही-कहीं 'तौ' (ब्र० तो) का प्रयोग भी मिलता है, जैसे—तौ नै गोरषनाथ भरमयो।

मारवाड़ी निश्चयवाचक

§२८५ मारवाडी मे कर्त्ताकारक (अविकारी) एकवचन मे निश्चयवाचक सर्वनाम 'यह' और 'वह' का रूप है—'ई' और 'ओ'; जैसे—ओ रुक्को लिष; ई दगो कियो अंगरेज'। 'ई' के लिए 'यो' और 'ओ' के स्थान पर 'वो' का प्रयोग भी मिलता है, जैसे—यो जोगी बण आयो, वोई नाथ राणी। सूची मे जो रूप दिए गए है उनके अतिरिक्त भी कुछ रूप मिलते है—नाटको मे विकारी एकवचन के लिए प्रायः ब्र० 'वा' (स्त० हि० 'उस') का प्रयोग भी मिलता है; जैसे—वा नु पायो; यहाँ 'नु' (=स्त० हि० 'को') 'नै' के लिए आया है। आदरवाची बहुवचन के लिए 'वुण' प्रयुक्त होता है, इसके साथ कर्त्ताकारक (विकारी) का परसर्ग 'ने' नियमित रूप से उपेक्षित रहता है, जैसे—अमर कियो वुण, 'वुण' के स्थान पर 'वे' का प्रयोगों भी कर्त्ता-कारक (विकारी) बहुवचन मे होता है; जैसे—वे ब्रह्म ग्यान सुणायो मा नै। विकारी एकवचन मे 'उ' का प्रयोग मिलता है; जैसे—पीगल उ री लुगाई (पिगला उसकी लुगाई)।

क. बोलचाल की मारवाड़ी तथा मेवाड़ी मे 'यह' के लिए पुल्लिंग मे 'ओ' और स्त्रीलिंग में 'आ' अथवा 'या' का प्रयोग मिलता है। इसी प्रकार 'वह' के लिए पुल्लिग मे 'वो' तथा स्त्रीलिंग मे 'वा' का प्रयोग

होता है। इस प्रकार का लिंग भेद केवल कर्त्ताकारक के एकवचन मे सुरक्षित है। वैसे बोलचाल की मारवाड़ी और मेवाड़ी मे 'यह' का विकारी एकवचन में नियमित रूप है—'ई'। इन बोलियों मे सम्बन्धवाची सर्वनाम सामान्यतया अन्योन्य सम्बन्धवाची सर्वनाम के लिए आता है।[1]

ख. मेरवाड़ी में प्रथम तथा द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम के सम्बन्ध कारक के एकवचन मे 'म्होळो और 'थौळो'[2] का प्रयोग होता है; इन रूपों का उल्लेख सूची मे नही है।

मारवाड़ी का सम्बन्धवाची तथा अन्योन्य सम्बन्धवाची सर्वनाम

§२८६. सम्बन्धवाची सर्वनाम 'ज्यो' के अतिरिक्त 'जो' और 'जे' का प्रयोग होता है। विकारी एकवचन का प्रचलित रूप है 'ज्यां', जैसे—वो ही षावद तेरो ज्यामैं बसै। बिना परसर्ग के 'ज्या' का प्रयोग कर्त्ता (विकारी) के लिए भी होता है; स्मरण रखने योग्य बात यह है कि कभी-कभी कर्त्ता (विकारी) और अन्य कारकों में प्रयुक्त 'ने' परसर्ग ब्रजभाषा से लिया गया है, जैसे—ज्यां ने धर्यो सीस पर हात।

§ २८७. सूची मे प्रश्नवाचक सर्वनाम के जो रूप दिए गए हैं, उनके अतिरिक्त विकारी एकवचन मे 'किण' और 'कोन' का प्रयोग भी होता है। कर्त्ता (विकारी) मे प्रयोग देखिए—किण पापी भरमायो ?, कोन राज त्याग तपस्या कीनी ? कर्त्ता (विकारी) कारक में नियमित रूप 'कौन' का प्रयोग भी होता है; जैसे—कौन उस्ताद ने ग्यान दिया ? नाटकों में 'क्या' के स्थान पर ब्रज के 'काहा' का प्रयोग मिलता है। निम्नलिखित उदाहरणों मे मारवाड़ी के नियमित रूप 'कांई' का प्रयोग देखिए—'म्हारै कांई सराय सूं काम' ? मारवाड़ी का 'का' स्त० हि० के क्या का पर्याय है; उदाहरण—विना पवन का पाणी।

मेवाड़ी की विशेषताएँ

§२८८. मेवाड़ी हिन्दी की सभी बोलियों से इस बात मे भिन्न है कि उसमे पुरुषवाची दो सर्वनामो को छोड़ कर शेष सर्वनामो मे लिंगभेद है। स्त्रीलिंग के लिए एक रूप का प्रयोग होता है और पुल्लिग के लिए दूसरे रूप का। यह बात भी ध्यान मे रखने योग्य है कि मेवाडी के सर्वनामों के सम्बन्ध कारक के 'ळो' युक्त रूप की अपेक्षा 'को' युक्त रूप अधिक प्रचलित है। वास्तविक बहुवचन 'याँ' और 'वरा' से बनने वाले दीर्घ रूप की अपेक्षा लघु रूप अधिक पसन्द किया जाता है।

§२८९. मारवाड़ और मेवाड़ की बोलचाल की भाषा मे निजवाचक सर्वनाम के सम्बन्धकारक का रूप 'अपना' अधिक प्रयुक्त नही होता। कई सर्वनामो के सम्बन्ध कारक के रूप वाक्य के उद्देश्य को व्यक्त करते हैं; मारवाड़ी में प्राय: कहते हैं—म्हू म्हारो काम करहू (=मैं अपना काम करूँगा)। ऊ वी के गाम गीयो=वह अपने गाँव गया। वै वाका घोड़ा चढाया (=वे अपने घोडों पर चढ़े)।

हिमालय की बोलियों के सर्वनाम

§२९०. जहाँ तक मेरे अनुभव का प्रश्न है, मै यह कह सकता हूँ कि हिमालय के लोग आदरवाची सर्वनाम के विशेष आग्रही नहीं हैं। अपने से बडों के लिए भी बिना किसी हिचक के 'तुम' का प्रयोग किया जाता है। गंगा-यमुना के मैदान में 'तुम' से निरादर व्यक्त होता है; हिमालय की बोलियो मे ऐसी बा

---

[1] छात्र लोग बोलचाल की मारवाड़ी और नाटकों की मारवाड़ी के अन्तर पर ध्यान दें।

[2] इन रूपों के 'औ' के उच्चारण के लिए देखिए §३३।

नही पायी जाती। पहाड़ी लोगों से 'आप' बहुत कम सुना जाता है। जो पहाड़ी मैदान के लोगो मे हिलमिल जाते है, वे ही 'आप' का प्रयोग करते है। मैदान के लोग द्वितीय पुरुष के एकवचन में भी 'तुम' का प्रयोग करते है, लेकिन पहाड़ी लोग एकवचन 'तू' ही बोलते है।

क. नेपाली ही एक ऐसी पहाड़ी बोली है, जिसमे आदरवाची सर्वनाम 'तपाञि' विद्यमान है। तपाञि स्त० हि० के 'आप' का पर्यायवाची है। इसमे किसी प्रकार का विकार नही होता। अविकृत रूप के साथ परसर्ग जुड़ता है; जैसे—तपाञि का इच्छा छ मन्या=स्त० हि० यदि आपकी इच्छा हो। 'आपु' अथवा 'आफैं' नेपाली के निजवाचक सर्वनाम है, विकारी एकवचन मे दोनों अपरिवर्तित रहते हैं; हिन्दी के अधिकरण कारक बहुवचन के 'आपस मे' के लिए नेपाली मे 'आपस्त मा' आता है। स्त० हि० आप से आप=ने० आफु आफैं।

§२९१. बीम्स ने इस बात का उल्लेख किया है कि चन्द बरदाई की पुरानी हिन्दी मे अन्य सर्वनामों के विकारी रूप की भाँति 'मो' और 'तो' का प्रयोग बिना परसर्ग के हुआ है। बीम्स ने निम्न उदाहरण दिए हैं—किम उधार मो होई; नाथ मो नाम चन्द; सुनिय बात तो तात।[1]

रामायण के सर्वनाम

§२९२. रामायण की पुरानी बैसवाड़ी मे उच्च हिन्दी की भाँति सर्वनामों के साथ परसर्ग का प्रयोग होता है; केवल कर्त्ताकारक (विकारी) इसका अपवाद है। उच्च हिन्दी और पुरानी बैसवाड़ी का अन्तर यह है कि पुरानी बैसवाड़ी मे अधिकांश स्थलो पर परसर्ग लुप्त हो जाता है और दोनो वचनो मे सर्वनाम का विकारी रूप (परसर्ग के बिना) सभी कारकों मे समान रूप से प्रयुक्त होता है। सूचियो मे इन परसर्गो को प्रक्षिप्त रूप मे दिया गया है।

क. सर्वनामों के विकारी रूप का ऐसा प्रयोग केवल पूरबी हिन्दी में ही नही सभी शैलियों की पुरानी कविता में देखा जाता है। राजस्थान के विभिन्न चारणों, चन्द बरदाई और कबीर आदि की रचनाओ मे इसके उदाहरण मिलते है। वाक्य रचना सम्बन्धी अध्याय मे आवश्यक उदाहरण प्रस्तुत किए जाएँगे।

रामायण के पुरुषवाची सर्वनाम

§२९३. रामायण मे कर्त्ताकारक (विकारी) मे 'मो' अथवा 'मोहि' के अतिरिक्त 'मैं' भी प्रयुक्त हुआ है; जैसे—जो मैं पूछा नहि होई। यही बात मध्यम पुरुषवाची सर्वनाम—'तू' अथवा 'तैं' के सम्बन्ध मे कही जा सकती है।[2]

§२९४. यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि रामायण मे व्यक्तिवाचक सर्वनाम के दीर्घ रूप 'मोहि' और 'तोहि' का प्रयोग परसर्ग के साथ या बिना परसर्ग के दोनो तरह से हुआ है; दूसरी ओर विकारी लघु रूप 'मो' तथा 'तो' सदैव परसर्ग के साथ आते है।

क. सम्बन्ध कारक के एकवचन मे 'हमारा' के स्थान पर विकल्प से 'हम' का प्रयोग मिलता है; जैसे—ते पुन्य पुज हम लेखे।

---

[1] देखिए, एसियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल का जनरल, भाग १, सं० २, सन् १८७३ ई०।

[2] यह बात ध्यान देने योग्य है कि रामायण में कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य प्रयोग भ्रम उत्पन्न करते हैं।

ख. सूची में प्रथम पुरुष के जो प्रचलित विकारी रूप दिए गए है, उनके अतिरिक्त (रामायण में) एक स्थान पर 'मह' का प्रयोग 'सम' के साथ हुआ है, जैसे—मह सम (मुझ-सा)। अपनी हिन्दोई व्याकरण मे प्रोफेसर गासाँ दे० तास्सी ने लिखा है कि 'मह' के अनुकरण पर द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम 'तह' भी प्रयुक्त हुआ है।

ग. हिन्दी के अन्य काव्यों की भाँति रामायण मे भी संस्कृत के पुरुषवाची सर्वनामो के सम्बन्ध कारक के एकवचन के रूप 'मय' और 'तव' का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। ये रूप हिन्दी के अपने नही है, इसीलिए उनका समावेश सूची मे नही किया गया।

रामायण के संकेतवाचक सर्वनाम

§२९५. रामायण में संकेतवाची सर्वनामों के नियमित रूप है—इह, ईह अथवा एह और ओ। 'येह' के लिए 'येहू' (=येहु) भी आता है; जैसे—राम भक्त कर लच्छन येहू। निकटवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम का विकारी रूप 'इहि' अथवा 'एहि' है, दूरवर्ती सकेतवाचक रूप है 'ओहि'; कही-कही 'ओहि' के स्थान पर 'वोहि'; उदाहरण—इहि बिधि भरत मज्जन करि; पुनि पुनि पूछति ओहि; मोर अभाग्य जिआवत वोही; **एहि** के हृदय; **इहिं** मह रघुपति नाम।

क. सकेतवाचक सर्वनामों के विकारी बहुवचन के प्रचलित रूप है—इन्ह, उन्ह। इन रूपो का प्रयोग विकारी एकवचन मे भी होता है। रामायण मे प्रयुक्त पुरानी बैसवाड़ी की प्रकृति के अनुसार इन विकारी रूपो के साथ परसर्गों का प्रयोग होता भी है, नही भी होता है; जैसे—राखिय **इन्ह** आंखिन माही। कर्म और सम्प्रदान कारक के विकारी रूप है—'उनहिं' और 'इनहिं'। जैसे—जगदीस **इनहि** बन दीन्हा। 'इनहिं' और 'उनहिं' के स्थान पर 'इहै' और 'उहै' का प्रयोग भी मिलता है।

ख. रामायण मे दूरवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम का 'ओऊ' रूप भी मिलता है, 'ओऊ' का अन्त्य 'ऊ' अवधारणा के लिए है; ब्र० ऊ=स्त० हि० ही। कुछ स्थलों पर इस अन्त्य 'ऊ' का अस्तित्व अन्त्यानुप्रास के लिए है; जैसे—लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न **ओऊ**।

ग. पुरानी हिन्दी की अन्य शैलियों की भाँति रामायण की बोली मे भी निकटवर्ती संकेतवाची सर्वनाम के कर्त्ताकारक (अविकारी) एकवचन में अवधारणार्थक रूप 'इहौ' अथवा 'इहै' (=यही) प्रयुक्त हुआ है; जैसे—निज लोकहिं विरंच गये देवन्ह **इहै** सिखाय; **इहौ** कहत। इन रूपो के अन्त्य 'औ' अथवा 'ऐ' की उत्पत्ति 'इह' के अन्त्य 'अ' तथा अवधारणार्थक अव्यय 'उ' अथवा 'इ' (=ही) की सन्धि से हुआ है। इनके 'एहा' अथवा 'एहू' में अन्त्य स्वर की दीर्घता छन्द के कारण है।

घ. रामायण तथा अन्य पुराने काव्यों मे कही कही संस्कृत के संकेतवाची सर्वनाम का 'अयं' रूप भी मिलता है; जैसे—पापौघमय तव तनु **अयं**।

रामायण के सम्बन्धवाची तथा अन्योन्य सम्बन्धवाची

§२९६. रामायण तथा अन्य पुराने काव्यों में सम्बन्धवाची तथा अन्योन्य सम्बन्धवाची सर्वनामों के विकारी रूप है—'जिहि' अथवा 'जेहि' और 'तिहि' अथवा 'तेहि' 'जाहि' और 'ताहि' रूप भी मिलते है, किन्तु इन रूपों का प्रयोग ब्रज मे अधिक होता है। ऊपर जो रूप दिये गये है, उनका प्रयोग सभी कारकों में परसर्ग सहित अथवा परसर्गरहित दोनो रूपों में मिलता है; जैसे—**जेहि** दिसि नारद बैठे; **तिहि** गिरि पर बट विसाला। इन रूपों के अतिरिक्त ब्रज के सम्बन्धवाची त ा अन्योन्य सम्बन्धवाची

सर्वनामों के विकारी रूप 'जा' तथा 'ता' भी प्राय: प्रयुक्त होते है, अन्तर इतना ही है कि इन रूपो के साथ परसर्ग सदैव जोड़े जाते है। कभी कभी 'मो' और 'तो' की तरह 'जा' 'ता' का उपयोग सज्ञा की भाँति परसर्ग के बिना होता है। इस पक्ति मे 'जा' का प्रयोग देखिये—"**जा** घट प्रेम ना बसे ता घट जानु मसान" यह पक्ति 'सभा विलास' से ली गई है।

क. रामायण मे इन सर्वनामों के सम्बन्ध कारक के रूप प्राय: इस प्रकार है—जिहि, जेहि और तिहि, तेहि अथवा जाकर; जैसे—जेहि सुमिरत; **जा करि** तैं दासी। इन सर्वनामों के ब्रजभषा के रूप 'जासु' 'तासु' भी कही-कही प्रयुक्त हुए है; 'जास' रूप बहुत कम दिखाई देता है; जैसे—यह सवाद जास मन आवा। कुछ स्थलों पर 'तिहि' के स्थान पर 'ताहु' आया है; जैसे—सरन गये प्रभु **ताहु** न त्यागा।

ख. 'जेहि' के स्थान पर 'जेइ' रूप भी मिलता है, जैसे—**जेइ** मातु कीन्ही बावरी; वाक्य खंड मे—**सेउ** मन समुझि; यहाँ 'सेउ' विकारी एकवचन का अवधारणार्थक रूप है, सेउ=सोही (स्त० हि०)। अन्योन्य सम्बन्धवाचक सर्वनाम 'सो' बहुत कम स्थलो पर अविकारी रूप मे प्रयुक्त हुआ है; जैसे—राम परायन **सो** परि होई।

ग. आधुनिक पूरबी हिन्दी की प्रकृति को स्वीकार करने पर कर्तृवाच्य वाक्य से 'जिन्ह' 'तिन्ह' का प्रयोग हुआ है; इन दोनो के रहते हुए भी कही-कही 'जे' तथा 'ते' का प्रयोग मिलता है; जैसे—धन्य **जे** जाये; **ते** देखे दोउ भ्राता।

घ. संस्कृत के सम्बन्धवाची तथा अन्योन्य सम्बन्धवाची सर्वनाम तत्सम रूप मे युक्त हुए है; जैसे—निरखंति **तवानन** सादर ये; पश्यन्ति यं योगी।

रामायण का प्रश्नवाचक सर्वनाम

§२९७. रामायण का बहु चलित प्रथम प्रश्नवाचक सर्वनाम 'कवन' है। इसके साथ कभी-कभी स्त्रीलिंगवाची प्रत्यय 'इ' (=ई) जोड़ा जाता है; जैसे—'कवनि वस्तु असि प्रिय मोहि लागी ?' कहीं-कही ब्रजभाषा का 'को' भी आया है; जैसे—'बेष अगनित **को** गनै' ?

क. संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त प्रश्नवाचक सर्वनाम के एकवचन का नियमित रूप 'किहि' और 'केहि' अन्य रूपों की अपेक्षा अधिक पसंद किये जाते हैं; जैसे—केहि सन करहिं 'विरोध' ? मध्यवर्ती 'ह' कही-कही लुप्त रहता है; जैसे—'धनुष **केई** तोरा" ? जब यह सर्वनाम विशेषण के रूप मे कर्त्ताकारक में प्रयुक्त होता है तो अधिकांश स्थलों पर अपरिवर्तित बना रहता है; जैसे—'मिलै **कवन** बिधि बाला' ? अपरिवर्तित रहते हुए भी यह स्त्रीलिंग वाची 'इ' (=ई) प्रत्यय से सयुक्त होता है; जैसे—'बरनि कवनि विधि जाई ?' विकारी एकवचन का एक रूप 'कवने' भी मिलता है; जैसे—'भगत-हीन सुख कवने काजा' ? संकुचित होने से 'कौने' रूप भी मिलता है; 'आवे **कौने** काज ?' ब्रजभाषा का विकारी एकवचन 'काहि' भी मिलता है; जैसे—सेइय **काहि** ?' अविकारी बहुवचन का रूप '**कवन**' तथा विकारी बहुवचन का रूप किन्ह, तथा किन्हहिं के सम्बन्ध में विशेष रूप से लिखना अथवा उदाहरण देना आवश्यक नही हैं।

§२९८. रामायण मे संज्ञा के लिए प्रयुक्त द्वितीय प्रश्नवाचक सर्वनाम 'क्या' का पर्याय 'काह' है। ब्रजभाषा का 'का' तथा 'कहा' भी प्रयुक्त हुए हैं। विकारी एकवचन में 'काहा' का प्रयोग देखिये—"दूषन काहा" ? प्रश्नवाचक 'क्या' के लिए 'कि' अथवा 'किं' का प्रयोग भी हुआ है; जैसे—'होहि निरामिष कबहूँ **कि** कागा' ?

रामायण के अनिश्चयवाचक सर्वनाम

§२९९—रामायण मे प्रथम अनिश्चयवाचक सर्वनाम के रूप है—कोउ, कवनउ, कवनिउ, कौनो; जैसे—'**कवनिउ** सिद्ध कि बिनु विस्वासा'? मेरा अनुमान है कि कर्ताकारक (अविकारी) का रूप 'कवनिहु' अथवा 'कवनहु' भी होना चाहिए; किन्तु अब तक इनका प्रयोग मिला नहीं। विकारी रूपो में 'हु' का 'ह' बचा हुआ है; 'कवनेउ' के लिए 'कवनेहु' रूप भी मिलता है; जैसे—'कवनेहु काल'। कर्ताकारक (अविकारी) के उपर्युक्त रूपो के अतिरिक्त 'केहू' और 'केहि' रूप भी मिलते है; जैसे—अनुचित कहब न पंडित केही; जानि न पाव बात यह केहू; 'केऊ' और 'कैयो' रूप भी मिलता है।

क. विकारी एकवचन के कई रूप है; 'काहू' (कर्म तथा सम्प्रदान में काहुहि) मिलता है; जैसे—**काहुहि** दोष जनि देहू; 'केहिं' रूप भी मिलता है; जैसे—'कहि न जाल बिधि **केहीं**; यहाँ छन्द के लिए दीर्घ 'ई' का प्रयोग हुआ है। विकारी बहुवचन में 'काहुन' रूप भी प्रयुक्त हुआ है; जैसे—'पान सब **काहुन** पाये'। स्त्रीलिंगवाची रूप 'कवनिहु' है; जैसे—**कवनिहु** भाँति बोध नहिं आवा।

§३००. पुरानी बैसवाड़ी मे द्वितीय अनिश्चयवाचक सर्वनाम 'कुछ' का प्रयोग हुआ है। 'कुछ' के स्थान पर 'कछु' रूप अधिक पसन्द किया जाता है। 'कछु' के स्थान पर प्राकृत का सर्वद्धित रूप 'कछुक' भी मिलता है; स्तरीय हिन्दी की भाँति **बैसवाड़ी** में भी 'कछु' अथवा 'कछुक' अविकृत रहते है; जैसे—राम .कछुक दिन बास करहिंगे आई।

§३०१. रामायण में निजवाचक सर्वनाम का सामान्य रूप है—'आपु' अथवा 'आपुन'; जैसे—आपुन होइ न सोई; नरेस आपु चढ़इ। इस बोली में निजवाचक सर्वनाम के सम्बन्ध कारक का रूप है—**आपन**। सम्बन्ध कारक के इस रूप का प्रयोग अधिकरण के परसर्ग 'पर' के साथ भी हुआ है; जैसे—**आपन पर** कछु सुनै न कोई। निजवाचक सर्वनाम के सम्बन्ध कारक का स्त्रीलिंगवाची रूप 'आपनि' है; जैसे—आपनि दिसि। उपान्त्य स्वर कहीं-कही छन्द के लिए दीर्घ बनता है; जैसे—**अपाना, अपानि**।

क. रामायण तथा अन्य पुराने काव्यों में संस्कृत का निजवाची सर्वनाम 'स्वयं' प्रयुक्त हुआ है; जैसे—'दहन पावक हरि **स्वयं**।' अधिकार प्रकट करने के लिए 'आपन' का प्रयोग नही होता। इस आशय के लिए शब्द के आरंभ मे पूर्वसर्ग की भाँति 'स्व' जुड़ता है; जैसे—**स्वकर** काटि सीस।

रामायण के आदरवाचक सर्वनाम

§३०२. आदरवाचक सर्वनाम 'आप' के सम्बन्ध कारक का रूप 'आपका' के पर्याय के रूप मे पुरानी बैसवाड़ी में 'राउर' का प्रयोग होता है; जैसे—'भरत कि **राउर** पूत न होही।'

पूरब की क्षेत्रीय बोलियों के सर्वनाम

§३०३. आधुनिक पूरबी बोलियों, विशेष रूप से मैथिली के विकारी रूपों की विविधता उल्लेखनीय है। इलाहाबाद के आगे पूरब मे जितनी बोलियाँ बोली जाती हैं, उनमे सम्बन्धवाचक, अन्योन्य सम्बन्धवाचक और प्रश्नवाचक सर्वनामों के रूप दो ढंग से चलते है, एक ढग आदरार्थक रूपों का है और एक ढग सामान्य रूपों का। फिर प्रत्येक ढंग के दो भेद है, एक भेद दीर्घ रूपो का है और दूसरा ढंग ह्रस्व रूपों का। आदरार्थक रूप के कारण पूरब की बोलियाँ पछाँह की बोलियों से भिन्न दिखाई देती है; पछाँह की बोलियों मे बहुवचन का प्रयोग आदर के लिए करते है और मध्यम पुरुष के लिए एक पृथक्

आदरवाची सर्वनाम विद्यमान है। आगे जो सूचियाँ दी गई है, उनमें कारकों की द्वितीय पंक्ति में इन बोलियों के आदरवाची रूप देखे जा सकते है। द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम के आदरार्थक रूप नही बनते। अन्य सर्वनामों के समान द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम के सामान्य रूप प्रयुक्त होते है। आदर प्रकट करने के लिए 'अपने', 'रौवां' जैसे स्वतंत्र शब्दों का प्रयोग किया जाता है। 'अपने', 'रौवा' आदि शब्द स्त० हि० के 'आप' के पर्यायवाची हैं।

दीर्घ और ह्रस्व रूपों का प्रयोग

§३०४. दीर्घ और ह्रस्व रूपों के सम्बन्ध मे यह बात उल्लेखनीय है कि कम-से-कम मैथिली में सर्वनाम का दीर्घ रूप संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होता है। ह्रस्व रूप साधारणतया विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है। ह्रस्व रूपों का प्रयोग निर्जीव पदार्थों को व्यक्त करने वाली संज्ञाओ के स्थान पर या निर्जीव पदार्थों से सम्बन्धित विशेषणों के रूप में होता है।

§३०५. छात्रों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि भोजपुरी, मागधी और मैथिली मे प्रयुक्त सर्वनाम के सम्बन्धकारक का 'रा' वाला रूप सभी विकारी कारकों मे प्रयुक्त होता है। मैंने स्तरीय हिन्दी के सर्वनामो के सम्बन्ध कारक के रूप के साथ भी 'मे' तथा 'पर' परसर्ग का प्रयोग देखा है; जैसे—**मेरे में; तेरे पर।** **'ता के पर'** रूप भी सुनने को मिला है किन्तु यह रूप निस्सन्देह अपवाद माना जाएगा। पछाँही हिन्दी के लिए यह रूप शिष्ट नही माना जा सकता।

रूपों की विभिन्नता

§३०६. सूचियो में पूरबी बोलियो के एक ही सर्वनाम के अनेक रूप दिये गये है। इनके सम्बन्ध मे कुछ जानकारी देना आवश्यक है। पूरब के कुछ जिलों के ग्रामीण 'मुझ' तथा 'तुझ' के 'झ' का उच्चारण 'स' करते है, जैसे—**मुसको, तुमसे,** आदि। मागधी और मैथिली मे बहुवचन के 'न्ह' मे से कही-कही 'ह' का लोप होता है; जैसे—हमन्ह अथवा हमन, इन्हन अथवा इनन। भोजपुरी मे संकेतवाचक सर्वनाम के रूप 'इन्ह' (=इन) और 'उन्ह' (=उन) के साथ पूर्वसर्ग की तरह विकल्प से ह् जुड़ता है; जैसे—इन्हके या हिन्ह के; 'उन्ह' का अथवा 'हुन्ह' का। इन सर्वनामो के आधार रूप मे निम्न प्रकार का परिवर्तन देखा जाता है—'एह' के स्थान पर 'हे'; 'औह' के स्थान पर 'हो', 'ओकरनके' के स्थान पर 'होकरनके; 'एकर' के स्थान पर 'हेकर'। इस बोली और मैथिली मे संकेतवाचक, सम्बन्धवाचक, अन्योन्य सम्बन्धवाचक और प्रश्नवाचक सर्वनामो के कर्ता (अविकारी) कारक के बहुवचन मे प्रत्येक के साथ 'का' जोड़ा जा सकता है; जैसे—इहाँ अथवा इहाँका; केकनी अथवा केकनी का; आदि।

सर्वनामों के संवर्द्धित रूप

§३०७. भोजपुरी तथा धुर पूरब और दक्षिण-पूर्व की मैथिली मे केवल वस्तुओ के लिए संकेतवाचक नर्वनाम, सम्बन्धवाचक सर्वनाम तथा अन्योन्य सम्बन्धवाचक सर्वनामों की रूपावली भिन्न प्रकार से बनती है; जैसे—भोज० 'इत्थू' अथवा 'इथुआ'; 'ओत्थू' अथवा 'ओथुआ'; 'जित्थू' अथवा 'जियुआ'; 'तित्थू' अथवा 'तिथुआ'; 'सित्थू' अथवा 'सिथुआ'; 'कित्थू' अथवा 'किथुआ'। संज्ञा की भाँति सर्वनामो के इन रूपों मे विकार होता है। बहुवचन के रूप इस प्रकार है—इत्थुअन, ओथुअन आदि।

क. अन्य सर्वनामो की भाँति उपर्युक्त रूपों के साथ भी पूर्वसर्ग की भाँति 'ह' का योग कहीं-कहीं होता है; जैसे—हित्यू, हौथुआ आदि।

ख. मध्य और पश्चिमी पुर्निया मे मैथिली की ऐसी रूपावली मिलती है, जो अन्य किसी क्षेत्र में प्रयुक्त नही होती; जैसे—इथी, उथी (जिथी अथवा जथी, तिथी अथवा तथी)[1] किथी अथवा कथी। दक्षिणी भागलपुर मे यह रूपावली कुछ भिन्न है; जैसे—ईथि, ऊथि (जथि, तथि)[1] और कथि आदि।

ग. जब कोई व्यक्ति वस्तु का नाम भूल जाता है, तो भोजपुरी मे सर्वनाम 'यह' के लिए प्रयुक्त 'इत्थू' का 'एथी' रूप आता है। ऐसे ही स्थान पर दोआबे के लोग 'क्या नाम' का प्रयोग करते हैं।

भो० माग० और मैथि० में सर्वनाम का सम्बन्ध कारक

§३०८. व्यक्तिवाचक सर्वनामों के अनुकरण पर भोजपुरी, मागधी और मैथिली में सभी सर्वनामों के सम्बन्धकारक एकवचन के रूप स्तरीय हिन्दी की तरह सम्बन्धकारक के नियमित परसर्ग के योग से बनते है। 'कर' के योग से भी सम्बन्धकारक का रूप बनता है; विकारी वचनों मे 'कर' का अन्त्य 'अ' 'आ' बनता है; कर्तृवाच्य में उपान्त्य दीर्घस्वर की वृद्धि होती है। उदाहरण—मैथिली मे एहिके, एकरा के (=स्त० हि० इसका), एकर; विकारी रूप—एकरा। भोजपुरी में—ओहके, ओकर, विकारी 'ओकरा' आदि।

बघेलखंडी सर्वनाम

§३०९. सेरामपुर (बंगाल) से न्यू टेस्टामेंट का बघेलखंडी हिन्दी में[2] जो अनुवाद छपा है, उसमें सर्वनामों के निम्नलिखित रूप मिलते हैं—प्रथम पुरुषवाची सर्वनाम के कर्त्ता (अविकारी) कारक बहुवचन रूप 'हमारे' और विकारी कर्त्ताकारक का बहुवचन 'हमनु'। द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम के कर्त्ता (अविकारी) कारक के बहुवचन मे 'तिहारे' और विकारी कर्ताकारक के बहुवचन मे—तिहारेनु। निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के विकारी तथा अविकारी दोनों प्रकार के बहुवचनों मे 'ये' और 'यहे' दोनों रूप मिलते है; कर्त्ता (अविकारी) कारक के एक वचन मे भी 'यहे' प्रयुक्त होता है। बघेलखंडी का दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम 'वहे' और 'वे' है; इन दोनों के विकारी बहुवचन का रूप है—'वाहुन'। सम्बन्धसूचक तथा अन्योन्य सम्बन्धसूचक सर्वनाम के विकारी बहुवचन का रूप क्रमश. 'जिननु' और 'तिननु' है। प्रश्नवाचक सर्वनाम 'कोनु' है, इसके विकारी और अविकारी एकवचन के रूपो मे कोई अन्तर नही है। समस्त विकारी रूपों का प्रयोग परसर्ग के साथ होता है; बघेलखंडी के अधिकांश परसर्ग ब्रजभाषा के परसर्गों से सादृश्य रखते है; अन्तर केवल अधिकरण कारक के परसर्ग 'में' मे आता है। बघेलखंडी मे 'में' के स्थान पर 'मों' प्रयुक्त होता है। पूरबी बोलियों की भाँति कही-कही शब्द के योग से बहुवचन बनता है; जैसे—ये सबरेनु तें स्त० हि० इन सब लोगों से।

---

[1] ग्रिअर्सन ने अपनी व्याकरण में इन रूपों का उल्लेख विशेष रूप से नहीं किया, यद्यपि उन्होंने इस बात का उल्लेख किया है कि भिन्न प्रकार के रूप भी विद्यमान हैं। अन्य रूपों का अनुकरण करते हुए मैंने यह रूपावली दी है।

[2] बेप्टिस्ट मिशन प्रेस, सेरामपुर, १८२१ ई०।

पूरबी हिन्दी में सर्वनामों के संवर्द्धित रूप

§३१०. पूरबी बोलियों मे बहुवचन बनाने की वृत्ति अलग ढग की है। ये बोलियाँ विकार के स्थान पर नया शब्द जोड़ कर बहुवचन बनाना अधिक पसन्द करती है। शुद्ध मैथिली मे विकारी बहुवचन केवल आदर के लिए प्रयुक्त होता है। पूरबी बोलियों मे सर्वनाम के साथ 'लोग' शब्द जोड़ कर बहुवचन बनाते है; जबकि पछाँही बोलियों मे बहुवचन बनाने के लिए 'सब' अथवा 'सब' शब्द के विभिन्न रूपों सभ, सबहि, सभी, सभै और सबै जोड़ते है। उत्तरी भाग की मैथिली मे 'सब' के अतिरिक्त 'लोकनि' शब्द भी प्रयुक्त होता है; दक्षिण तथा पूर्व की मैथिली मे सी, सिबी, आरहिन, आर और सन्ही का प्रयोग होता है। सर्वनाम के विकारी रूप के साथ बहुवचन सूचक शब्द जुड़ते हैं। बीम्स के कथनानुसार अवधारणार्थक रूप में भोजपुरी बोलनेवाले लघुरूपों की अपेक्षा दीर्घरूप अधिक पसंद करते हैं; जैसे—इन्हकरा, उन्हकरा; केहू (=स्त० हि० कोई) के बहुवचन मे सामान्यतया 'कितेक' प्रयुक्त होता है; जैसे—**कितेक** घर जलत बा।

सर्वनामों के सम्बन्धकारक के रूप

§३११. सम्बन्धकारक में आकारान्त सर्वनाम विकारी बनता है और शेष सर्वनाम अविकारी रहते है; जैसे—भोजपुरी मे 'मोरे घोड़ा'; मै० उन्हकेर घौरक; आदि। पटना के आस पास की मागधी में इस नियम के अपवाद मिलते हैं; इस बोली में सम्बन्धकारक के लिए 'केरा' (स्त्री०लि० केरी) परसर्ग पुल्लिग० विकारी तथा अविकारी दोनों रूपो के साथ आता है। पश्चिमी भोजपुरी और अवधी में सर्वनाम के पुल्लि० सम्बन्ध कारक के विकारी रूप मे अन्त्य 'र' तथा 'रे' आता है; स्तरीय हिन्दी के समान परसर्ग 'के' का प्रयोग होता है।

पूरबी हिन्दीं में सर्वनामों के अवधारणार्थक रूप

§३१२. भोजपुरी, मागधी और मैथिली में प्रथम तथा द्वितीय पुरुषवाची सर्वनामों के विकारी एकवचन का अवधारणार्थक रूप ओकारान्त रहता है, यह रूप रामायण के अवधारणार्थक औकारान्त रूप से बहुत कुछ सादृश्य रखता है, जैसे—मोरो (=मैं भी), तोहरो (तू भी)। भोजपुरी मे पुरुषवाची सर्वनाम के ये अवधारणार्थक रूप भी मिलते हैं—मोरे, हमरे और तोरे, तोहरे।

पूरबी हिन्दी का आदरवाची सर्वनाम

§३१३. पूरबी हिन्दी के क्षेत्र में जहाँ-जहाँ मुसलमानों का प्रभाव रहा है, वहाँ-वहाँ आदरवाची सर्वनाम 'आप' सुनाई देता है। वैसे इस प्रदेश का बहुत बड़ा भाग—पटना और गया के मध्य का क्षेत्र मागधी बोली का क्षेत्र है, इस क्षेत्र मे 'आप' के स्थान पर 'अपने' और रीवा मे 'अपना' अधिक प्रचलित है। 'अपने' अथवा 'अपना' एकवचन मे अपरिवर्तित रहता है और बहुवचन मे संज्ञा की भाँति विकार ग्रहण करता है। रीवा के आसपास की बोली में अविकारी एकवचन का रूप 'अपना' विकारी कारकों मे 'अपने' बनता है। मागधी में सम्बन्ध कारक के एकवचन का रूप 'अप्पन' अथवा 'आपन' है। दक्षिणी भागलपुर की मैथिली के अविकारी एकवचन में 'अपनै' और 'आपनै' तथा विकारी एकवचन के लिए नियमित रूप से 'अपने', 'अपना' और 'अपन।' एकवचन के आधाररूप के साथ 'सभ' तथा 'लोग' जैसे शब्दों के योग से भी

सर्वनाम के रूपों की सूची के सम्बन्ध में

§३१८. यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि सूचियो मे जहाँ कही अन्त्य 'इ' का उल्लेख है, वह 'इ' छन्द के लिए दीर्घ भी हो सकती है; हम काव्यो मे ओहि, केहि और काहु के लिए ओही, केही और काहू रूप भी पाते है।

§३१९. इस बात पर भी ध्यान दिया जाए कि सर्वनामो के जो रूप दिये गये हैं, उनके आधार रूप में कई बोलियों के बोलनेवाले अनुस्वार पसंद करते है; जैसे—जौन, कौनो, केहि और वा के लिए क्रमशः जौन, कौनों, केहिं और वा का प्रयोग भी मिलता है। इस प्रकार की मामूली भिन्नताओ के सम्बन्ध मे विस्तार से लिखना आवश्यक नही समझा गया।

§३२०. सर्वनामो के कर्मकारक के परसर्ग 'को' के स्थान पर कही-कही तईं (तईं के ये रूप भी प्रचलित हैं—ताइं, ताइं, ताई और ताही) का प्रयोग होता है; जैसे—कर्मकारक मे 'मुझको', 'उसको' के स्थान पर 'मेरे तईं', 'उसके तईं'। कही-कही विकारी रूप के साथ सीधे 'ताईं' जोड़ते है, मारवाड़ी नाटक 'हीरा और राजा' का उदाहरण है—'देगे भेद **तुझ ताईं**'।

§३२१ सूचियों मे दिये गये रूपो के अतिरिक्त ग्रिअर्सन ने निम्नलिखित रूपो का उल्लेख भी किया है[1]—

(१) **प्रथम पुरुषवाची सर्वनाम**—विकारी और अविकारी बहुवचन हमन, हमइन, पछाँह मे अविकारी एकवचन **'मैं'**, विकारी एकवचन 'मो', विकारी तथा अविकारी दोनो प्रकार के बहुवचनो में—हम्मन, हमहन, हमने; उत्तरी मुजफ्फरपुर मे—हमरहिन; सारन मे—हमे; अन्यत्र—हमन, हमनिन्ह,[2] हमइन।[2]

(२) **द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम**—पश्चिम मे अविकारी कर्ता एकवचन—तैं, तुंह, विकारी एकवचन—तूंह, तो, तुहरा (तुहरा का विकारी रूप—तुहरे), अविकारी और विकारी बहुवचन—तूँहन, तुहने, तुहरन; उत्तरी मुजफ़्फ़रपुर में—तोहरहिन; कही-कही—तुन्हन, तोहनिन, तोरन।

(३) **दोनों संकेतवाचक सर्वनाम**—विकारी एकवचन—एहि, ओहि, सारन मे अविकारी एकवचन के 'ई' के लिए 'हे', 'ऊ' के लिए 'हेऊ' हउए, हेउहे, ऊहे; अविकारी और विकारी बहुवचन—इन्हन, इन्हनी,[1] एकनी, आदरार्थक—इहन, उन्हन, उन्हनी,[2] ओकनी; आदरार्थक—उहन, उत्तरी मुजफ्फरपुर मे केवल विकारी बहुवचन मे—एकरहिन, ओकरहिन। विशेष रूप से पश्चिम मे स्वर से प्रारभ होने वाले सर्वनामो मे लिखते और बोलते समय आरभिक 'ह' का आगमन, जैसे—हेकरा, होकरा, हुन्ह, और 'ऊ' के लिए 'हऊ' आदि।

(४) पश्चिम मैं सम्बन्ध वाचक, अन्योन्य सम्बन्धवाचक और प्रश्नवाचक के विकारी बहुवचन (केवल पदार्थवाची सज्ञा के स्थान पर या सज्ञा के साथ आने पर) इस प्रकार है—जाहे, ताहें, काहे, जौने, तौने, कौने, कही-कही जेहि, तेहि, केहि अथवा जे, ते, के; अविकारी और विकारी बहुवचन में जिन्हनी,[2] तिन्हनी,[2] किन्हनी[2], जिन्हन, तिन्हन, किन्हन; जेकनी, तेकनी, केकनी; जिन्हकरा, तिन्हकरा, किन्हकरा;

---

[1] बहुवचन के जिन रूपों के लिए अन्य प्रकार का कोई नियम नहीं बताया गया है, उन पर §३०६ का विकल्प लागू होता है।

[2] मागधी में भी।

पश्चिम मे प्रयुक्त विकारी बहुवचन—जौनन, तौनन, कौनन; जौनने, तौनने, कौनने; मुजफ्फरपुर जिले मे—जेकरहित, तेकरहित, केतरहित।

(५) **वस्तु सम्बन्धी प्रश्नवाचक**, पश्चिम मे अविकारी एकवचन—कित्थू, किथुआ, उत्तरी मुजफ्फरपुर जिले मे—विकारी एकवचन—कथी, इन रूपों के अतिरिक्त करणकारक के एकवचन का प्रचलित रूप है—केथिएँ (=क्यों)।

(६) **वस्तु सम्बन्धी अनिश्चयवाची**, पश्चिम मे—किछ, किछऊ, उत्तरी मुजफ्फरपुर मे—किछिओ; सारन मे—किछु।

मैथिली के अन्य रूप

§३२२. मागधी के अन्य रूप इस प्रकार हैं—

(१) **प्रथम पुरुषवाची सर्वनाम**—अविकारी और विकारी बहुवचन हमनिन, हमरन्ही, हमरन्ह।

(२) **द्वितीय पुरुषवाचक सर्वनाम**—अविकारी और विकारी बहुवचन—तोहनिआ, तोहरन्ही, तोहरन्ह, और—तोहरा सब, आदि।

(३) **दोनों संकेतवाचक सर्वनाम**—अविकारी और विकारी बहुवचन इखनिन, अखनी, एखनी; उखनिन, ओखनी; केवल विकारी बहुवचन—इन्हका, उन्हका।

(४) **सम्बन्धवाचक, अन्योन्य सम्बन्धवाचक** और प्रश्नवाचक सर्वनामो के अविकारी तथा विकारी बहुवचन जिन्ह, जिन्हन; तिन्ह, तिन्हन; किन्ह, किन्हन; गया के आसपास सम्बन्धकारक के एकवचन से—तेकर, तेकरा, सेकर, सेकरा।

(५) **व्यक्ति सम्बन्धी प्रश्नवाचक**—विकारी एक व० कोनें, कोई, केहू।

मैथिली के अन्य रूप

§३२३. मैथिली के अन्य रूप इस प्रकार है—

(१) **प्रथम पुरुषवाचक सर्वनाम**—अविकारी एकवचन—हमें, हम्मे, तोहे; विकारी एकवचन—मोहि, तोहि (कविता मे)।

(२) **संकेतवाची सर्वनाम**—विकारी एकवचन—इन्ह केरा, उन्ह केरा।

(३) सम्बन्धवाचक, अन्योन्य सम्बन्धवाचक और प्रश्नवाचक सर्वनाम, विकारी एकवचन—जिन्ह केरा, तिन्ह केरा, किन्ह केरा।

(४) मैथिली में प्रथम अनिश्चयवाचक सर्वनाम 'केउ' है, इसका विकारी बहुवचन—किन करौ; द्वितीय अनिश्चयवाचक सर्वनाम 'कुछ' के लिए 'कथू' अथवा 'कथियो' के अविकारी रूप के साथ परसर्ग लगाये जाते है; इनका बहुवचन नही बनता। प्रथम अनिश्चयवाचक सर्वनाम के सम्बन्ध कारक एकवचन मे—केकरौ, केकरहौ, केकरौ, कथियो; सम्बन्धसूचक बहुवचन, दक्षिणी मैथिली में—किन करौ। मध्य तथा दक्षिण मुजफ्फरपुर मे 'कुछ' के लिए 'कनिक' और 'तनिक' भी प्रचलित है।

सूची ९. सर्वनामों के क्षेत्रीय रूप : प्रथम पुरुषवाची सर्वनाम

'मैं' आदि

वचन	कारक	स्त० हि०	कन्नौजी	ब्रज	मारवाड़ी	मेवाड़ी	गढ़वाली	कुमाउनी	नेपाली
एक वचन	कर्त्ता	मैं	मै	मै, हौ, हों.	हूं	म्हूं	मैं	में	मैं, म० मों
	कर्म } सम्प्र० }	मुझे मुझको	मोहि मो को	मोहि, मुहि.[1] मोकों, मुज कौ	म्हने, मने.	म्हो } ऐ, ए. म्ह } ने.	मैं मैं सणि	मे { कणी हुणि	म० लाइ
	करण	मैंने	मैं ने	मैने, हौ.	म्हैं, मैं.	म्हें	मैंने	में ले	म० ले
	अपा०	मुझ से	मो से, मो तें०	मो सौ, मुजते	म्हैं सूं, मैं सूं.	म्हो म्हां } ऊं मारा } सूं.	मैं तें	मे { हैं. थैं.	म० { बाट ले
	संब०	मेरा	मेरो	मेरौ	मारो, म्हारो.	म्हा } को,रो. ळो.	मेरो	मेरो.	मेरो
	अधि०	मुझ में मुझ पर	मो में, मो पर	मो मै, मुज परि, मुज पै.	म्है माहे मै ऊपरे	म्हां } मांए. म्हो } ऊपरे, मारा } परे.	मैं { मां पर.	मे मां	म० { मा माथि

वचन	कारक	पुरानी बैसवाडी	अवधी	रिवाई	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
एक वचन	कर्त्ता	मैं	मै	मंयं	मे, मो हम	हम	हम, हमे, हम. हमे, हम्मै.
	कर्म } सम्प्र० }	मो मोहि } (कहं) मुहि	मो का	म्वहि म्वहि } का,कहं म्वा	मोरा; मोरा } के. हमरा; हमरा } ला.	मोरा; मोरा } के. हमरा; हमरा } लेल.	मोरा; मोरा } के हमरा; हमरा } लेल.
	करण	मैं	×	×	×	×	×
	अपा०	मो मोहि } (सन) मुहि	मो } से मे } ते, तन	म्वहि } से म्वा } तन	मोरा हमरा } से	मोरा हमरा } सें	मोरा हमरा } से
	संब०	मोर	मोर	म्वार	मोर, मोरे; मोरा[2] हमार, हमरे; हमरा[3]	मोर, मोरा.[1] हम्मर, हमरा.[1] हमार, हमरे.	मोर; मोरे, मोर. हमर, हमर, हमरे.
	अधि०	मो मोहि } (मांहि) मुहि	मो { म पर.	म्वारे म.	मोरा हमरा } में	मोरा हमरा } में	मोरा हमरा } मे

---

[1] इन रूपों का प्रयोग बहुत कम स्थलों पर परसर्ग के साथ भी होता है।

[2] विकारी कारक का रूप। [3] स्त्रीलिंग में 'री'।

वचन	कारक	स्त० हिन्दी	कन्नौजी	ब्रज	मारवाड़ी	मेवड़ी	गढ़वाली	कुमाऊनी
बहुवचन	अवि- कर्त्ता	हम	हम	हम	म्हे	म्है	हम	हम
	कर्म सम्प्र०	हमे हमको	हमे हमकौ	हमे. हम, हमौ } कौ हमन,हमनि	मा नै, म्हा नै	म्हां' म्हाया } ऐ, ए. म्हांवरा } ने.	हमुँ हम } सणि हमुँ	हमन { कणी हुणि
	करण	हमने	हमने	हम हमौं } ने हमन, हमनि	म्हाॅ	म्हाॅ	हम } ने हमुँ	हमन ले
	अपा०	हमसे	हम से, हम ते	हम, हमौ } सौ हमन, हमनि } ते	मा सूँ, म्हां सूँ	म्हा, म्हाया } सूँ म्हावरा } ऊँ	हम } ते हमुँ	हमन { है. थैं.
	सम्बन्ध	हमारा	हमारो	हमारौ	मारो, म्हांरो.	म्हा, म्हांयां } को, रो म्हावरा } ळो, णो	हमारो	हमरो
	अधि०	हम मे हम पर	हम मे, हम पर.	हम, ौ } मे हमन } परि, हमनि } पै.	मा माहै म्हां ऊपरै	म्हा, } माऐ, म्हाया } ऊपरे, म्हावरा } परे.	हम } मा हमुँ } पर	हमन मां

नेपाली	पुरानी बैसवाडी	अवधी	रिवाई	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
हामि, हामिहेरु हामेरु	हम, हमन	हम	हम्ह	हमनीका, हमरन.	हमनी. हमरनी.	हमनी, हमे, हम (-सभ)[1] हमरा सभ के
हांमि } लाइ हामेरु	हमहिं हम (कह)	हम का	हम्ह कंहं	हमनी; हमनी } के हमरन; हमरन } ला	हमनी; हमनी } के हमरनी, हमरनी } लेल	हमरा सभ { कें, लेल.
हांमि } ले हामेरु	हम	×	×	×	×	×
हामि } बाट हामेरु } ले	हम (सन)	हम { से ते, तन	हम्ह { से तन	हमनी } सें हमरन	हमनी } सें हमरनी	हमरा सभ सें.
हाम्री हांमि } को हामेरु	हम, हमार	हमार	हम्हार	हमनी } के. हमरन } का.	हमनी } के हमरनी } केर, केरा[1]	हमरा सभ के
हामि } मा हमेरु } माथि	हम (माँहि)	हमर म.	हम्ह म	हमनी } मे हमरन	हमनी } मे हमरनी	हमरा सभ मे

---

[1] सब के स्थान पर १८३ में दिया गया कोई अन्य बहुवचन शब्द भी इन रूपों के साथ प्रयुक्त हो सकता है।

सूची १०. सर्वनामों के क्षेत्रीय रूप : द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम

तू

एक वचन

कारक	स्त० हिन्दी	कन्नौजी	ब्रज	मारवाड़ी	मेवाडी	. गढ़वाली	कुमाऊनी
कर्त्ता	तू	तू	तू, तै, तै.	तूँ, थूँ	थूँ	तू तुइन, तिन.	तू
कर्म सम्प्र० }	तुझे तुझको	तोहि तोको.	तोहि, तो कौ.	त थ } नै	थो (ए, ऐ) थेने	तोइ { कू. तोइ { सणि.	त्वै { कणी हुणि
करण	तू ने	तूनें	तू तैं } ने	तै थैं	थैं	तोई न.	त्वी { ले. त्वै { है.
अपादान	तुझ से	तो } से ते	तो { सौ ते	तै थै } सूँ	थो था थारा } ऊं, सूं.	तोई ते.	त्वै { हैं. थैं.
सम्बन्ध	तेरा	तेरो	तेरौ	थारो	था { को, रो ळो.	तेरो.	तेरो
अधिकरण	तुझ { मे पर	तो { मे पर	तो { मैं पर, पै	तै { माहै थै { ऊपरे	थो { माऐ, थारा { परे.	तोई मा.	त्वै मे.

नेपाली	पुरानी भोजपुरी	अवधी	रिवाई	भोजपुरी	मागधी	मैथिलि
त, त	तू, तूँ, तै	तयं	तंय	ते, तूँ	तूँ, तों	तोह, तेहें, तों, तूँ
तं तैं } लाई	तो कहँ तोहि तुहि } (कहं)	तो का	त्वा त्वहि } कह	तोरा, तोरा } के. तोहरा; तोहरा } ला	तोरा, तोरा } कें. तोहरा; तोहरा } लेल.	तोरा; तोरा } के. तोहरा, , तोहरा } लेल.
तं तैं } ले	तू, तै.	×	×	×	×	×
तं } बाट तैं } ले	तोहि तुहि } (सन)	तो { से नन.	त्वा त्वहि } तन	तोरा तौहरा } से	तोरा तोहरा } से.	तोरा तोहरा } से
तेरो	तोर	तोर	त्वार	तौर, तोरे; तोरा[2] तौहार, तोहारे; तोहरा.[2]	तोर, तोरा.[1] तोहर, तोहार. तोहरे, तोहरा.[1]	तोर; तोर, तोरे तोहर; तौहर, तोहरे.
त } मा तैं } माथि	तो माहि तोहि तुहि } (माहि)	तोरे { म. पर.	त्वहि त्वारे } म	तोरा तोहरा } मे	तोरा तोहरा } मे	तोरा तोहरा } में

---

[1] मेरे पंडित ने यह रूप इसी कारक में दिया है।

[2] विकारी कारक का रूप।

बहुवचन

कारक	स्त० हिन्दी	कन्नौजी	ब्रज	मारवाड़ी	मेवाड़ी	गढवाली	कुमाऊनी
कर्त्ता	तुम	तुम	तुम	थै	थै	तुमू, तुमन.	तुमू
कर्म सम्प्र०	तुम्हे तुमको.	तुम्हे तुमको	तुम्है तुम तुम्हौ } कौ	था थाया थावरा } नै, ने	था थांया थांवरा } नै, ने	तुमुँ तुम तुमुँ } सणि	तुमन तुम तुमन } कणी हुणि
करण	तुमने	तुमने	तुम तुम्हौं } ने	था	था	तुम तुमुँ } न.	तुमौ तुमन } ले
अपादान	तुमसे	तुम से	तुम तुम्हौ } सौं. ते.	था, थाणा[3] थांया थांवरा } ऊं	था थाणा थाया थावरा } ऊँ	तुम तुमुं } ते	तुम तुमन } है. थैं.
सम्बन्ध	तुम्हारा	तुम्हारो	तुम्हारौ. तिहारौ	था थाया थावरा } को, रो. ळो. णो.	थां थांया थावरा } को, रो. ळो. णो.	तुमारो	तुमारो तुमरो
अधिकरण	तुम } मे पर	तुम { मे पर	तुम तुम्हौं } मै पर, पै	थां थां यां थावरां } माऐ. परे.	थां थाया थांवरा } माऐ परे.	तुम तुमुं } मां	तुम तुमन } मे

नेपाली	पुरानी भोजपुरी	अवधी	रिवाई	भोजपुरी	मागधी	मैंथिली
तिमि	तुम, तुम्ह तुमह.	आप	तुम्ह	तोहनी का, तोहरन	तोहनी तोहरनी.	तोह, तोहे, तों तोहरा, तोरा } सम[4]
तिम्हेरु तिमि तिम्हेरु } लाइ	तुमहिं तुम्ह (कह).	तुमसब आप } का	तुम्ह कंहं	तोहनी; तोहनी तोहरन; तोहरन } के ला.	तोहनी तोहरनी } के लेल	तोहरा सभ } कें. लेल.
तिमि तिम्हेरु } ले.	तुम्ह	×	×	×	×	×
तिमि तिम्हेरु } बाट ले.	तुम्ह सन	तुम सब आप } से तन	तुम्ह सन	तोहनी तोहरन } से	तोहनी, तोहरनी } सें	तोहरा सभ से
तिमरो. तिमि तिम्हेरु } को	तुम्हार तुमर.	तुमार आप कर	तुम्हार	तोहनी तोहरन } के; का[3]	तोहनी तोहरनी } के, केर केरा[3]	तोहरा सभ के.
तिमि तिम्हेरु } मा माथि	तुम्ह } माहिं. ऊपरि.	तुम सब आप } मे, पर.	तुम्हारेम.	तोहनी तोहरन } मे	तोहनी तोहरनी } मे	तेहरा सभ मे.

---

३ स्त्री लिंगवाची रूप के लिए 'री' या की

४ 'सभ' शब्द के स्थान पर दिये गये बहुवचन शब्दों का प्रयोग किसी भी रूप के साथ हो सकता है।

दूरवर्त्ती सर्वनाम

वह

वचन	कारक	स्त० हिन्दी	कन्नौजी	ब्रज	मारवाडी	मेवाडी	गढ़वाली	कुमाऊनी
एकवचन	अवि. क	वह, वुह.	वुहि, उहि.	वो, वह	ऊ, पु वा, स्त्री	ऊ, वू, पु वा, स्त्री.	वह	वी
	कर्म) सम्प्र.)	उसे उसको	उहि) को वा)	वाहि, विसे वा) कौ विस)	उण, उणी) नै वणी, वी)	उणी, वणी) ऐ वी) नै	वे वे सणि	वी) कणी. वि)
	विका. कर्त्ता.	उसने	उहि) ने वा)	वा) ने विस)	उण, उणी. वणी, वी	उणी वणी वी	वे न	वी) ले वि)
बहुवचन	अबि क	यह, वो, वे	वै	वे, वै.	वै	वै, वी	से	वूँ, वे ऊ, वी
	कर्म) सम्प्र)	उन्हे उन) को उन्हो)	उन्हे) को उन } उन्हों)	उन्ह, विन्है उनि, विन[1] │कौ उन्हौ, विन्हौ│	उणा, वणा) नै वा, व्या)	वणा) ऐ वा) नै	ऊं ऊ सणि.	उनन) कणी. उनू } उनो)
	विका कर्त्ता	उन) ने. उन्हो)	उन) ने उन्हों)	उनि, विन │ नें उन्हौ, विन्हौ│	उणा, वणा वा, व्या	वणा वा	ऊ न	उनन) ले उनू)

	नेपाली	पुरानी बैसवाडी	अवधी	रिवाई	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
एकवचन	ऊ, उ.	ओ	ऊ, ढेकनवा. फुलनवा.	वह	ऊ, औहि,[7] ओ[1] उहा, उन्हा	ऊ.	ऊ, उ, उअं, औ, ओ हऊ, हौ, वें, वै, बहाय
	उस) लाई. वे)	ओहि) कहं वोहि)	ओ का	वहि कह	ओह, ओकरा) के. उहा, उन्हका)	ओह) के ओकरा) लेल	एँहि, ओई, ओ, ऊ) के ओकरा, होकरा) लेल
	उस) ले. वे)	ओहि. वोहि.	×	×	×	×	×
बहुवचन	उन, उन्हेरु. उन्ह[4].	ओ	ओ, ओ सब. फुलाने, ढिकाने	उन्ह.	उन्हका,[6] ओकरन. उहाका.[6]	ऊ उन्हकनी.	उन्ह, उन. हुन्हि हुनि.
	उन) लाई. उन्हेरु)	उन्हहि, उहै उन) कहं. उन्ह)	ओन) औन } का सब)	उन्ह कंह	उन्ह, ओकरन) के उहा समका)	उन्ह │के उन्हकरा│लेल	उन्ह, हुन्ह) उन्हकरा, उनका } के. हुन्हकरा, हुनका } लेल
	उन) ले. उन्हेरु)	उन. उन्ह.	×	×	×	×	×

---

१. यह रूप आज भी मथुरा-आगरा के आसपास बोला जाता है। २. अथवा 'यी' अथवा कुमाउनी वाला रूप। ३. अथवा कुमाउनी की भाँति। ४. सर्वत्र वैकल्पिक रूप से। ५. दो रूप विकारी कारकों में विकल्प रूप से प्रयुक्त होते हैं। ६. इन्ह, इहाँ, उन्ह और उहाँ के साथ सभ जोड़ कर भी बहुवचन बनाते हैं। ७. आदरार्थक बहुवचन में सभ आदि शब्द जोड़ते हैं।

सूची १२. सर्वनामों के क्षेत्रीय रूप—सम्बन्धवाची सर्वनाम 'जो'

वचन	कारक	स्त० हिन्दी	कन्नौजी	ब्रज	मारवाड़ी	मेवाडी	गढ़-वाली	कुमाऊनी	नेपाली
एकवचन	अवि. कर्त्ता	जो	जौंन	जौ, जौन	ज्यो, जिको, जको, पु० जिका, जका, स्त्री	ज्यो, जो, जिको, पु० जका, स्त्री.	.जो	जो, जै.	जनु, जो, ज्या.
	कर्म } सम्प्र० }	जिसे जिसको	जेहि जा } को.	जाहि जा } कौ जाहि }	जिकण जिण, जण, } नै. जणी, जी }	जणी } ऐ. जी } नै	जइ जइसण	जै कणी.	ज, जो, ज्या. जस[1] जुन } लाई.
	वि० कर्त्ता	जिसने	जेहि जा } ने.	जा जाहि } ने.	जिकण, जिकै. जिण, जण, जणी, जी.	जणी. जी.	जइ न	जै ले.	जस जुन } ले.
	सम्बन्ध	जिसका	जेहि जा } ने.	जासु जा } को जाहि }	जिकण जिण, जण, } रो. जणी, जी }	जणी जी } को, रो. जंडो } ळो.	जइको.	जै को.	जस[1] जुन } को.
बहुवचन	अवि. कर्त्ता	जो	जौन	जौ.	ज्यो, जिकै, जकै.	ज्यो, जकै.	जो.	जो, जै	जुन, जुन्हर. जिन्ह, जिन्हेरु
	कर्म } सम्प्र० }	जिन्हे जिन } को जिन्हो }	जिन जिहो } को	जिन्हे जिनि } कौं जिन्हौं }	जिणा, जणा } नै जां, ज्या, जिका }	जणा जा } ऐ. ज्यां } ने.	ज्यूँ ज्यू सणि	जनन जनू } कणी	जुन, जुन्हेरु, } लाई. जिन्ह[2], जिन्हेरु }
	वि० कर्त्ता	जिन जिन्हो } ने	जिनने.	जिनि जिन्हो } ने	जिणां, जणा. जां, ज्या.	जणा जां ज्यां	ज्यूंन	जनन जनू] ले.	जुन, जुन्हेरु } ले. जिन्ह,[2] जिन्हेरु }

वचन	पुरानी बैसवाड़ी	अवधी	रिवाई	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
एकवचन	जो, जू, जवन.	जे, जवन, जौंन,	जऊ नंयं.	{ जे { जौन, जवन	जे. जऊन, जौन.	जे, जे, जैं.
	जिहि, जेहि } (कंहं) जोहि }	जेका.	तऊ नै ज्या } कंह. ज्यहि }	जेह } (के) जेकरा, जौना } ला.	जेह } (के) जैकरा } लेल.	जैंहि, जाहि, जै } के. जकरा, जैकरा } लेल
	जिहि, जेइ. जेहि.	×	×	×	×	×
	जिहि, जेहि. जाकर जासु, जास.	जेकर.	जऊ नै ज्या } केर. ज्यहि }	जेह के. जेकर, जेकरै. (विकारी का) जेकरा.	चेह कै. जेकर, जेकरा री, (स्त्री)	जैहि, जाहि, जै (कै). जेकर, जकर, जैकर.
बहुवचन	जे.	जे.	जेन्ह.	जे, जौन, जवन. जिन्हन.	जे, जिन्हकनी.	जिन, जिन्ह. जिन्हि, जिन्ही.
	जे, जिनहिं. जिनहहि जिन, जिन्ह (कहं)	जेन जेन्ह } का	जेन्ह ज्यन } कंह. ज्यन्ह }	जेकरन } (के) जिन्ह, जिन्हका } ला.	जिन्ह } (के) जिनकरा } लेल.	जिन्ह, जिन्हकरा } के. जनिका } लेल
	जिन, जिन्ह. जे.	×	×	×	×	×

---

[1] अथवा गढ़वाली के समान।

[2] अथवा कुमाऊनी की भाँति।

अन्योन्य सम्बन्धवाची सर्वनाम 'सो'

वचन	कारक	स्त० हिन्दी	कन्नौजी	ब्रज	मारवाड़ी	मेबाड़ी	गढ़वाली	कुमाऊनी	नेपाली
एकवचन	अवि. कर्त्ता	सो	सो	सो	सो, तिको. तिका.	जो, सो, तिको. पु० तिका, स्त्री०	सो.	सो.	तुन, त्यो.
	कर्म सम्प्र	तिसे तिसको.	तिहि ता } को	ताहि. ता ताहि } कौ	तिण तिणी } नैं	तणी. ती } ऐ. नैं.	तइ. तइ सण	तैं कणी.	तुन, त, तो, ताहि.[३] तम त्यो } लाई.
	वि० कर्त्ता	तिसने	तिहिने, ताने.	ताने तासु	तिण. तिणी.	तणी.	तइ न.	तैं ले.	ति, तस त्यो } ले.
	सम्बन्ध	तिसका	तिहि ता } को.	ता ताहि } को	तिण तिणी } रो	तणी ती } को, रो. ळो.	तइ को.	तैं को.	ति, तिस त्यो } को
बहुवचन	अवि. कर्त्ता	सो	सो	सो, ते.	सो, तिकै.	ज्यो, सो.	ते	तौ.	तुन, तुनहेरु ती, ति.
	कर्म सम्प्र०	तिन्हें तिन तिन्हों } को	तिन्ह तिन्हो } को.	तिन्है. तिनि तिन्हौ } कौ	तिणा ने.	तणा ता त्या } ऐ नैं	त्यूँ. त्यूँ सणि.	तनन तनू } कणी.	तिन्ह, तिन्हेरु तिन्ह,[२] तिन्हेरु (लाई).
	वि० कर्त्ता	तिन तिन्हों } ने.	तिन तिन्हों } को.	तिनि तिन्हौ } ने	तिणा	तणा, ता, त्या	त्यूँ न.	तनन तनू } ले.	तिन्ह[२] तिन्हेरु } ले

वचन	पुरानी वैसवाडी	अवधी	रिवाई	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
एकवचन	सु, से, तवन.	से, तवन, तौन.	से, तवन, तौन.	ते, से. तवन, तौन	से. तऊन, तौन.	से, ते, तैं
	तिहि, तेहि ताहि, ताहु } (कहं).	ते का.	ते का	तेह तेकरा, तौना } (के) ला.	तेह तेकरा } (के) लेल.	तेहि, ताहि, ते तकरा, तेकरा } (के) लेल
	तिहि, तेहि. तिहि, तेहि	×	×	×	×	×
	ताकर तासु. तास.	तेकर.	ते कर	तेह कै, तेकर, ते करे. (विकारी का०) तेकरा.	तेह के, तेकर. तेकरा (री, स्त्री०).	तेहि, ताहि, ते (के) तेकर तकर, तेकर
बहुवचन	ते.	ते.	ते.	से, ते, तौन, तवन तिन्हन	से, तिन्हकनी.	तिन, तिन्ह तिन्हि, तिन्ही
	ते, तिनहिं. तिनहहिं. तिन, तिन्ह (कहं)	तेन्ह त्यन त्यन्ह } कंहं	तेन तेन्ह } का.	तेकरन तिन्ह, तिन्हिका } (के) ला.	तिन्ह तिन्हकरा } (के) लेल.	तिन्ह, तिन्हकरा तनिका
	तिन, तिन्ह. ते.	×	×	×	×	×

---

३. परसर्गों के साथ भी।

सूची १३. सर्वनामों के क्षेत्रीय रूप: प्रथम प्रश्नवाचक सर्वनाम 'कौन'

	कारक	स्त० हिन्दी	कन्नौजी	ब्रज	मारवाडी	मेवाड़ी	गढवाली	कुमाऊनी	नेपाली
एकवचन	अवि- कर्त्ता	कौन	को	को, कौ.	कुण, कण. कोन.	कुण, कूण. कण.	की	को, कौ.	को, कुन.
	कर्म सम्प्र०	किसे किसको.	किहि का } को.	काहि. काकौ.	कुण,कुणी कण,कणी } ने. को	कुणी, कणी की } ऐ	कइ सणि	कै कणि	कुन. कस लाई.
	विका० कर्त्ता	किसने	किहि का } ने.	का ने	कुण, कुणी, कोन कण, कणी, की	कुणी, कणी की.	कइ न	कै ले	कुन कस } ले.
बहुवचन	अवि- कर्त्ता	कौन	को.	को, कौ.	कुण, कण.	कुण, कूण. कण.	की	को	को, कुन.
	कर्म सम्प्र०	किन्हे किन किन्हो } को	किनको.	किन्हैं किनि किन्हौ } कौ	कुणा कणा } ने.	कुणां कणां } ऐ.	क्यूं सणि	कनन कनू } कणि	कुन्ह कुन्हेरु } लाई.
	विका० कर्त्ता	किन किन्हो } ने	किनने	किनि किन्हौ } ने	कुणा कणा	कणा	क्यूं न	कनन कनू } ले	कुन्ह कुन्हेरु } ले.

	कारक	पुरानी बैसवाड़ी	अवधी	रिवाई	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
एकवचन	अवि- कर्त्ता	को. कवन, कवनि.	के.	कऊन	{ के कवन, कौन	के, को कऊन, कौन	के, कौन.
	कर्म सम्प्र०	किहि, केहि, केइ कवन, कवनि. कवने, कौने.	के का.	केहि क्या क्यहि } कंह	केह केहि के, केकरा कौना } (के) ला	केह केकरा } (के) लेल.	केहि, के केकरा, ककरा } (के) ले.
	विका० कर्त्ता	किहि, केहि. कवन, कोइ.	×	×	×	×	×
बहुवचन	अवि- कर्त्ता	कवन	के	कऊन	के, कवन, कौन.	के, किन्हकनी.	किन, किन्ह. किन्हि, किन्ही.
	कर्म, सम्प्र०	किनहि, किनहहिं किन, किन्ह (कहं)	केन } क०. का०.	केन्ह क्यन क्यन्ह } कंहं	केकरन किन्ह } (के) ला.	किन्ह किन्हकरा } (के) (लेल)	किन्ह, किन्हकरा कनिका } (के) ले.
	विका० कर्त्ता	किन किन्ह	×	×	×	×	×

सूची १३. सर्वनामों के क्षेत्रीय रूप : प्रथम अनिश्चित सर्वनाम 'कोई'

	कारक	स्त० हिन्दी	कन्नौजी	ब्रज	मारवाड़ी	मेवाडी	गढवाली	कुमाऊनी	नेपाली
एकवचन	अवि० कर्त्ता	कोई.	कोऊ, कौनौ.	कोऊ, कोई. कोय.	कोइ	कोइ. कोह, कणो.	कोई	को, कै.	कोहि.
	कर्म सम्प्र०	किसी को	कौनौ किसू } को.	काहू कौ	कुणी ने	कणी की } ऐ.	कई सणि	कै कणि	कोहि कसै } लाई.
	विकार कर्त्ता	किसी ने	कौनों किसू } ने.	काहू ने	कुणी	कणी. की.	कई न	कै ले.	कोहि कसै } ले.
बहुवचन	अवि० कर्त्ता	क्या	कहा.	कहा, का.	कंई, काई.	कंईं, कांईं.	क्या	क्या	क्या, कि.
	कर्म सम्प्र०	काहे को	काहे को.	काहे कौ.	कुणी ने.	खा ऐ. हाह्नू, साहूं	—	क्या	क्या
	अवि-कारी	कुछ	कछु	कछु	कईं, काई. कर	काई, काईं. काईक	कुछ	कें.	केहि

	कारक	पुरानी बैसवाड़ी	अवधी	रिवाई	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
एकवचन	अवि. कर्त्ता	केऊ, कौनौ, कवनिउ,. काहु, केहु, केउ, कैयौ.	केह, केऊ. कौनो, कवनौ.	कोऊ, कौन्हो.	केहू, केऊ, कैऊ. कौनो.	केहू, केऊ, कोई. कउनों, कौनो	केऊ, कोइ, कोय. कैऔ, कउनौ, कौनौ.
	कर्म सम्प्र०	कौने, कवनिउ. काहुहिं, केहिं, काहु (कहं)	केउ केहू } क.	कोऊ कौन्हो } कह	अविकारी कर्त्ता की भाँति अथवा कैकरो, कथियो केथियो } कें ला	केकरो कौनों } (कें) (लेल)	अवि कर्त्ता की भाँति अथवा केकरो, केकरौ, ककरहुँ, केक- रहौ, किथियो } कें, ले.
	वि० कर्त्ता	काहू	×	×	×	×	×
बहुवचन	अवि- कर्त्ता	कहा, काह, का. कि, कि.	का, काव.	काह	का	का, की. कोंची.	का, कौ.
	कर्म सम्प्र०	काहा	कयि कइ } का.	काई कयी } कहं	अविकारी कर्त्ता की भाँति अथवा काहे, का केथी } कें. ला.	काहे कोंची } कें. लेल.	अवि कर्त्ता की भाँति अथवा काहै, कहि, किये किथी, कैथी, कथी } कें ले
	अवि-कारी	कछु, कछुक	कुछ.	कुछ	कछु, कुच्छो	कुछु, कुच्छो कुच्छओ.	कुछ, कुछु. कयुछ, किछु, किछिओ:

क्षेत्रीय बोलियों के फुटकर रूप

§३२४. उपर्युक्त रूपों के अतिरिक्त निम्न रूप भी प्रचलित हैं। इनमे से कुछ रूपों के प्रचलन-स्थान के उल्लेख करने मे मैं असमर्थ हूँ।

(१) हुँ=मै, स्पष्ट रूप से यह मारवाड़ी के 'हूँ' का लघु रूप है।[1] विकारी एकवचन के 'मोहि'-का संक्षिप्त रूप है—मुह। इस संक्षिप्त रूप का प्रयोग चन्द ने कई स्थलों पर किया है। चन्दबरदाई ने पृथ्वीराज रासो मे प्रथम पुरुष तथा द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम के विकारी बहुवचन 'हमहि' और 'तुमहि' का प्रयोग किया है। इन रूपों के अतिरिक्त परसर्ग के साथ 'हम' और 'तुम' का प्रयोग भी मिलता है।

(२) कुछ स्थलों पर 'तैं' अथवा 'तू' के लिए 'तैंन' और 'ते' का प्रयोग मिलता है। पछाँही हिन्दी मे मैंने इसके सम्बन्धकारक का रूप 'तैंडा' सुना है; जैसे—पकड़ै मुगलाणी तैंड़ा हाथ। पुरानी हिन्दी मे कहीं-कही प्राकृत के सम्बन्ध कारक का रूप 'तुअ' मिलता है।

(३) निकटवर्ती संकेतवाची सर्वनाम 'यह' के अविकारी एकवचन के विभिन्न रूप इस प्रकार है—यौह, येह, जिह, इँह, ईहु, ईहि, ईहै, एई। इन रूपों में से क्रम से अन्तिम तीन केवल अवधारणार्थक रूप है। विकारी बहुवचन में 'ईनि' और 'ईन्ह' रूप मिलते है। ब्रजभाषा मे 'या' के लिए कही-कही 'जा' बोलते और लिखते है।

(४) अविकारी कर्ताकारक के एकवचन मे दूरवर्ती सर्वनाम 'यह' का रूप 'ऊंह' प्रयुक्त होता है; विकारी एकवचन मे 'वा' के स्थान पर कही-कही 'वौ' और 'वाहि' के लिए 'वाहु'। ग्रामीण मुसलमान विकारी एकवचन के रूप 'उस' के स्थान पर 'वुस' बोलते हैं। मारवाडी नाटक 'गोपीचन्द' मे भी 'वुस' का प्रयोग मिलता है—धरो वुसी कै ध्यान। सम्प्रदान कारक के रूप 'उन्हें' के लिए विकारी बहुवचन मे 'उने', 'वुनै' और 'उनकों' का प्रयोग भी किया जाता है। इसी प्रकार कर्त्ता (विभक्ति सहित) के रूप 'उनने' के स्थान पर 'उने' आता है।

(५) अन्योन्य सम्बन्धवाचक कर्ता (विभक्ति रहित) के एकवचन मे 'सो' के अनेक रूपान्तर हैं—सोव, सोय, सौय। 'सोय' और 'सौंय' अवधारणार्थक रूप हैं। विकारी एकवचन के 'तिहि' के स्थान पर 'ति' और 'तिहु' का प्रयोग होता है। सम्बन्धकारक के एकवचन में मैने 'तातनौ' (=तिसका) सुना है। यह रूप दक्षिण-पश्चिम में प्रयुक्त होता है। 'प्रेमसागर' मे इस सर्वनाम के सम्बन्धकारक के एकवचन मे एकाकी 'ता' का प्रयोग मिलता है, जैसे—कहा नाम ता आहि? जाहि, ब्रजभाषा मे जिननि और सम्बन्ध कारक के विकारी बहुवचन के रूप 'जिन्हों' के लिए 'जाइ' प्रयुक्त होता है। साहित्यिक हिन्दी में 'तिन्हे' के स्थान पर 'तिने' और अन्योन्य सम्बन्धवाचक सर्वनाम के विकारी बहुवचन के रूप 'तिन' के लिए 'तान' प्रयुक्त हुआ है।

---

[1] प्रोफेसर ईस्टविक ने ('प्रेमसागर' की शब्दावली में) लिखा है—'हु' का प्रयोग विकारी एकवचन में परसर्ग 'कै' के साथ होता है। उदाहरण इस चौपाई में मिलता है—क्यों हूं कै पति रही हमारी।" वास्तव में यह 'हूं' व्यक्तिवाचक सर्वनाम न होकर ब्रज का अवधारणार्थक अव्यय है। ब्रज में 'कै' संयोजक अव्यय के रूप में प्रयुक्त होता है। यह कै=कर (√करना)। स्तरीय-हिन्दी में 'क्यों' के साथ इस 'कै' का प्रयोग होता है; जैसे—क्यों कर। चौपाई के इस चरण का अर्थ किया जा सकता है—हमारी प्रतिष्ठा क्यों कर रही? (रुक्मिणी से कृष्ण का कथन, 'प्रेमसागर')

(६) प्रोफेसर दे० तास्सी की ‘क्रेस्टोमैथी’ (chrestomathie) मे प्रश्नवाचक सर्वनाम ‘कौन’ के अविकारी एकवचन मे ‘कौनु’, ‘कौने’ और ‘कौनै’ रूप मिलते है। पछाँही हिन्दी मे ‘किस’ के विकारी एकवचन तथा बहुवचन मे ‘काय’ का प्रयोग मिलता है। अनिश्चयवाचक ‘कोई’ के ‘कोइय’ तथा ‘कोऊ’ और ‘कुछ’ के लिए कछुक, ‘कहि’ और ‘कहु’ भी प्रयुक्त होते है। ‘कहि’ और ‘कहु’ का प्रयोग पछाँह मे ही मिलता है। ब्रजभाषा के प्रश्नवाचक ‘कहा’ (=क्या) के स्थान पर कही-कही ‘कहौ’ और इसके विकारी एकवचन के रूप ‘काहे’ के लिए ‘ हि’ का प्रयोग हुआ है।

(७) मैने निजवाचक रार्वनाम ‘आप’ के अविकारी एकवचन मे ‘आपे’ भी सुना है। ‘आपे’ रूप स्पष्ट रूप से मारवाड़ी के अविकारी बहुवचन ‘आपा’ से सम्बन्धित है। मैने इस रूप के साथ स्तरीय हिन्दी मे कही ‘हम’ का प्रयोग भी सुना है। ‘आप के विकारी रूप मे कही-कही अन्त्य ‘अ’ को ‘उ’ मे परिवर्त्तित करते

सर्वनामवाची विशेषण

§ ३२५. उपर्युक्त सर्वनामो के अतिरिक्त बहुत से सर्वनामवाची विशेषण है। ये सर्वनामवाची विशेषण या तो विशेषण के रूप मे प्रयुक्त होते है, या सर्वनाम के रूप मे। §२५५. में जिन पाँच सर्वनामो का उल्लेख किया गया है, उनसे बनने वाले सर्वनामवाची विशेषणों के दो वर्ग है—एक वर्ग से परिमाण और दूसरे वर्ग से गुण का बोध होता है। स्तरीय हिन्दी मे जब संज्ञा के लिए इन सर्वनामवाची विशेषणो के पहले वर्ग का प्रयोग किया जाता है, तो उनके रूप पुल्लिगवाची सज्ञा के समान चलते है; जब इस वर्ग के सर्वनामवाची विशेषणों का प्रयोग विशेषणो की भाँति होता है तो उनका रूप आकारान्त तद्भव विशेषणों की तरह परिवर्त्तित होता है, फलतः पुल्लिग के बहुवचन मे इनका अन्त्य ‘आ’ परिवर्त्तित होता है ‘ए’ मे और स्त्रीलिंग विशेष्य के साथ यह अन्त्य ‘आ’ बदलता है ‘ई’ मे। साथ में दो सूचियाँ दी जा रही है, सूची सं० १४ के रूप स्तरीय हिन्दी में प्रयुक्त होते है। सूची सं० १५ में हिन्दी से सम्बन्धित बोलियों के रूप दिये गए है।

सूची १४. सर्वनामवाचक विशेषण

सर्वनाम—आधार रूप	परिमाणवाचक विशेषण	गुणवाचक विशेषण
अ	इतना, इत्ता	ऐसा
उ, व	उतना, उत्ता	वैसा
जि	जितना, जित्ता	जैसा
ति	तितना, तित्ता	तैसा
कि, क	कितना, कित्ता	कैसा

सूची १५: सर्वनामवाची विशेषणों के रूप

	स्तरीय हिन्दी	कन्नौजी	ब्रज	मार-वाडी	मेवाड़ी	गढ़वाली	नेपाली	पुरानी बैसवाड़ी	अवधी	रिवाई	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
परिमाणवाचक विशेषण	इतना इत्ता	इतनो	इतनौ[1] इतौ	इतरो	अतरो अतरड़ो	एतका	यति येत्तिकै[2]	इता ईता एता	यतना, यत्तान एतिक	यतना, यत्तान एतिक	अतेक, अतहत, अतिनां	एत्तेक एतना	एतेक, एतवाय, एतवे, एतै[3], एतना .
	उतना उत्ता	उत नो	उतनौ	उतरो	उतरो, वतरो, उतरडो	ओतका	उति उत्तिकै	ऊता ओता	ओतना, ओतत, ओतिक,	वतना, वत्तान वातिक	ओतेक, ओतहत, ओतिनां	ओत्तेक ओतना	ओतवाय[3] ओतवे[4], ओतै[3], ओतना .
	जितना जित्ता	जितनो	जितनौ	जतरो	जतरो जतरडो	जतका	जति जेत्तिकै[2]	जेता	जेतना, जेतत, जेतिक	ज्यतना ज्यत्तान ज्यातिक	जतेक जतहत्त जतिनां	जेत्तेक जेतना	जेतवाय[3], जेतवे, जेत[3]
	तितना जित्ता	तितनो	तितनौ	ततरो	ततरो ततरडो	ततका	तति, तेति (तेत्तिकै)[2]	तेता	तेतना, तेतत, तेतिक	त्यतना, त्यत्तान त्यातिक	ततेक, ततहत ततिना	तेतेक तेतना	तेतवाय,[3] तेतवे,[4] तेतै,[3] तेतना .
	कितना कित्ता	कितनो	कितनौ	कतरो	कतरो कतरड़ो	कतका	कति (केत्तिकै)[2]	केता	केतना केतत केतिक	कतना क्यत्तान क्यातिक	कतेक कतहत कतिना	केतेक केतना	केतवाय,[3] केतवे,[4] केतै[3], केतना .
गुणवाचक विशेषण	ऐसा	ऐसौ	ऐसो	इस्यो ऐरो	अश्यो ऐड़ो	एनो, एनू, अनू	यस्तो	अस	अस यस	ऐसन ऐस	अइसन	अइमन	ऐसन, एहिन, एहनु, एहन ऐन्ह,[3] एन्ह,[4] एना, इना,[5]अहिन, ईरंग,
	वैसा	वैसौ	वैसो	उस्यो वैरो	उश्यो, वश्यो वैड़ो	वनो वनू	उस्तो	. . .	ओस	वैसन वैस	वइमन	ओइसन	वैसन, ओहिन[3], ओहनु,[4] ओहिन[4] औसस, औन्ह,[3] ओहन,[5] ओना,[5] ऊरंग
	जैसा	जैसौ	जैसो	जिस्यो जिसे, जैरो	जश्यो, जैड़ो	जनो यनू	जस्तो	जस	जम	जैसन जैस	जइसन	जइसन	जैसन, जैहिन,[3] जैहनु,[4] जहिन,[4] जेरंग, जेहन, जैन्ह,[3] जिना,[5] जेना.
	तैसा	तैसौ	तैसो	तिस्यो तैरो	तश्यो तैडो	तनो तनू	तस्तो	तस	तम	तैमन तैस	तइसन	तइमन	तैसन, तैहिन,[3] तैहनु,[4] तहिन,[4] सेरग कसन,[5] कैहिन[3], तिना,[5] तेना .
	कैसा	कैसौ	कैसो	किस्यो कैरो	कश्यो कैड़ो	कनो कनू	कस्तो	कस	कस	कैमन कैस	कइमन	कइसन	कैसन, कैहिन,[3] केहनु,[4] कहिन,[4] केहन,[5] कैन्ह[3], किना,[5] केना, कीरंग

[1] विकल्प से अनुस्वार जोड़ा जाता है। [2] इस विकारी रूप के साथ ही मुझे इसके रूप मिले हैं सामान्य तथा 'मा' परसर्ग के साथ। [3] दक्षिण पूर्व में। [4] धुर पूर्व में। [5] गंगा के दक्षिण में।

क्षेत्रीय बोलियों में प्रयुक्त सर्वनामवाची विशेषण

§३२६. १५वीं सूची में क्षेत्रीय बोलियों में प्रयुक्त सर्वनामों के जो रूप दिये गये हैं, उनके अतिरिक्त कुछ रूपान्तर भी हैं; जैसे—'उतना' के लिए 'वितना', वेतना, वुतना; 'कित्ता' के स्थान पर कित, किता, केत्ता, कितै; 'जित्ता' के लिए 'जिता'। लिखित साहित्य मे ये वैकल्पिक रूप भी मिलते है—जितना, तितना और कितना के स्थान पर क्रमशः जै, तै, कै।

क. कविता में कहीं-कहीं संस्कृत रूप भी प्रयुक्त हुए है; जैसे—'ऐसा' के लिए 'ईदृश' या 'एतादृश', 'जैसा' के स्थान पर 'यादृश'; 'तैसा' के स्थान पर 'तादृश' और 'कैसा' के स्थान पर 'कीदृश', 'ईदृश' और 'कीदृश' के स्थान पर 'एदृश' और 'कादृश' भी आये है।

सर्वनामवाची अन्य विशेषण

§३२७. ऊपर जो रूप दिये गये है, उनके अतिरिक्त कुछ और रूप भी है, जो सर्वनामवाची विशेषण की तरह प्रयुक्त होते है। आकारान्त तद्भवसंज्ञाओं तथा आकारान्त विशेषणो की भाँति इन सर्वनामवाची विशेषणों का अन्त्य 'आ', 'ए' में परिवर्त्तित होता है। सर्वनामवाची आकारान्त विशेषणों को छोड़कर अन्य सर्वनामवाची विशेषण यदि संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होते है तो उनके रूप द्वितीय वर्ग के पुल्लिगवाची शब्दों के समान चलते है; जब उनका प्रयोग विशेषण की भाँति होता है तो वे अविकृत रहते है।

इस प्रकार के सर्वनामवाची विशेषण निम्न प्रकार है—

एक,
दूसरा
दोनों
सब
सारा
सकल

समस्त
समूचा
हर
और
बहुत
कई-कै
निज
पराया

§३२८. 'एक' शब्द वास्तविक रूप से संख्यावाची है; 'दूसरा' शब्द क्रमसूचक संख्यावाची है। सर्वनाम के रूप में जहाँ कही 'एक' शब्द का प्रयोग होता है, उसके साथ 'दूसरा' शब्द भी आता है; जैसे—एक हँसता **दूसरा** रोता था।

क. कहीं 'दूसरा' के स्थान पर भी 'एक' शब्द आता है। इस प्रकार के वाक्यों में प्रथम 'एक' का अर्थ 'एक' और दूसरे 'एक' का अर्थ 'अन्य' होता है; जैसे—एक यह एक वह कहता था।

ख. 'एक' शब्द के पश्चात् ही समान वाक्य खंड में 'दूसरा' शब्द का प्रयोग हो तो उनका अर्थ होता है—इतरेतर अथवा परस्पर; जैसे—वे **एक दूसरे** को मारते हैं। इस प्रकार के प्रयोगों मे 'एक' शब्द बहुवचन के विकार को ग्रहण नही करता।

§३२९. 'दोनों' शब्द के केवल बहुवचन में रूप चलते है; जैसे—अविकारी—दोनों; कर्म-दोनों को, आदि।

§३३०. विकारी बहुवचन मे 'सब' के स्थान पर 'सभ' उच्चारित होता है, जैसे—कर्मकारक सभों को, सम्बन्ध० सभो का आदि। बहुत कम स्थलो पर 'सबो' रूप भी देखा जाता है।

क. एकवचन मे प्रयुक्त 'सब' का अर्थ है—पूरे, अशेष, जैसे—सब को। बहुवचनवाची रूप 'सभों' का तात्पर्य है—प्रत्येक, हरेक, सभी, जैसे—सभो को।

उल्लेखनीय—'सभो' अथवा 'सबो' रूप परिष्कृत नही माना जाता; इन दिनो 'सब' का अविकारी रूप ही सर्वत्र प्रयुक्त होता है। दूसरी बात यह है कि 'सब' शब्द स्वय बहुवचनवाची है, उसके अन्त्य 'अ' को बहुवचनवाची 'ओ' मे परिवर्तित करना अनावश्यक है।

§३३१. 'सकल' (स० स+कल), 'समस्त' और 'समूचा' इन शब्दो का अर्थ है—सब, सम्पूर्ण अथवा अशेष। बहुत कम स्थलो पर इन तीनो का प्रयोग सज्ञा की भाँति होता है।

§३३२. पुरानी हिन्दी मे फारसी का 'हर' विशेषण कम प्रयुक्त हुआ है। 'प्रेमसागर' मे उसका प्रयोग देखा जा सकता है। बोलचाल मे 'हर' का प्रयोग खूब होता है, इसीलिए यह शब्द हिन्दी का है। अकेला 'हर' कभी सज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त नही होता, जब 'एक' के पहले 'हर' शब्द का प्रयोग होता है, तो उसका अर्थ है—प्रत्येक। 'हरएक' अथवा 'हरेक' का प्रयोग विशेषण और सज्ञा दोनो प्रकार से होता है; जैसे—**हर एक** आया; **हर एक** घर।

§३३३ और—जब 'और' शब्द का प्रयोग सज्ञा के स्थान पर किया जाता है तथा द्वितीय वाक्य खड मे कोई सर्वनामवाची शब्द प्रयुक्त नही होता तो उसका आशय है—अधिक, ज्यादा, जैसे—मुझे और दो। जब उसका प्रयोग विशेषण की तरह किया जाता है तो प्रसग के अनुसार तात्पर्य होता है—अधिक अथवा अन्य, जैसे—मुझे और अनाज दो, किन्तु यह और बात है।

क. एक ही वाक्य खड मे यदि 'और' शब्द का प्रयोग दो स्थानो पर किया जाता है तो पहले **'और'** का अर्थ है—एक तथा दूसरे 'और' का अर्थ है अन्य, जैसे—यह बात **और** है वह **और** है।

§३३४ 'बहुत' का संवर्द्धित रूप 'बहुतेरा' तथा 'बहुत-सा' भी प्रयुक्त होता है।

क. क्षेत्रीय बोलियो मे 'बहुत' के साथ 'सारा' शब्द भी जोड़ते है, इसका तात्पर्य होता है—अत्यधिक; जैसे—बहुत सारा। 'बहुत सारा' अँग्रेजी के मुहावरे-'ए ग्रेट डील' (a great deal) का पर्यायवाची है। पंजाबी मे 'बहुत सारा' का प्रयोग बहुत होता है।

§३३५. विशेषण के रूप मे प्रयुक्त 'कई' अथवा 'कै' का तात्पर्य है—बहुत से, विभिन्न, अनेक। जब सर्वनाम के रूप मे 'कई' अथवा 'कै' का प्रयोग होता है तो उसका अर्थ होगा—कितने। 'कई' अथवा 'कै' के साथ परसर्ग का प्रयोग नही होता; जैसे—**कई** पुरुष आए, **कै** आए?

अग्रेजी मे जब 'सेवरल'. (several) शब्द सर्वनाम की भाँति प्रयुक्त होता है तो हिन्दी मे उसका अनुवाद किया जाता है—कई एक अथवा कितने एक। 'कै है' का तात्पर्य है—कितने हैं? 'कई एक', 'कितने एक' का प्रयोग विशेषण की भाँति किया जाता है, जैसे—कितने एक पेड़ है।

क सर्वनामवाची विशेषण 'कितने' जब सज्ञा अथवा विशेषण की भाँति प्रयुक्त होता है तो उसका आशय है—कुछ, अनेक, जैसे—वहाँ **कितने** भाट भी आए, **कितनों का** मत है।

§३३६ 'निज' शब्द सर्वनाम की भाँति प्रयुक्त होता है, इसका तात्पर्य किसी व्यक्ति से है अथवा किसी वस्तु से इस बात की जानकारी प्रसंग से होती है; जैसे—**निज** पर अपना; **निज** बुद्धि भरोस मोहि नाही। अंग्रेजी के 'औन' (own) के लिए 'निज' शब्द का प्रयोग सज्ञा अथवा सर्वनाम के सम्बन्धकारक वाले रूप के साथ होता है; जैसे—वह राजा का निज पुत्र है; यह मेरी निज पुस्तक है;

वह अपने **निज** घर गया। 'निज' का प्रयोग सम्बन्ध कारक में भी होता है; जैसे—**निज का माल, निज का** नौकर।

§३३७ 'पराया' शब्द वास्तव मे सम्बन्ध सूचक विशेषण है। इस शब्द का प्रयोग संज्ञा के साथ अथवा सज्ञा के स्थान पर होता है; जैसे—यह **पराये** का, **पराई** स्त्री।

क्षेत्रीय बोलियों में प्रयुक्त सर्वनामवाची विशेषण

§३३८ ऊपर जो सर्वनाम दिये गये है, क्षेत्रीय बोलियो मे उनके निम्नलिखित रूपान्तर मिलते है—एक,=इक, यक, 'दूसरा' के स्थान पर दूसरौ, दूसरो, ने० अर्को, पु० बै० दूसर, दूज, दूजा; दोनो=ब्र० दोनौ मा० दोनु, ने० दुवै, पु० बै०—दुहूँ, दूनौ, दुओ, सारा, ब्र० सारौ, क० सारो; सब, ब्र० सबै, सबरै, पु० बै० सबरि, और—ने० अर्को, पु० बै० अवर, बहुत—ब्र० बहौत, पु० बै० बहुतेक, बहूत, गढ० भिंडो, ने० धेर (अवधारणार्थक—धेरै), मार० बोत, बोदी, बोला, बोहोत, मोकलो, कई—मार० केइ। सकल—ब्र० सिग्रौ, मार० शगरो, सगळो, पु० त्रै० सगरे (अविकारी बहुव०); कितने—मार० कितीक।

संस्कृत के सर्वनामवाची तत्सम विशेषण

§३३९. नीचे सस्कृत के सर्वनामवाची तत्सम विशेषण दिये जा रहे है। क्षेत्रीय बोलियो मे इनका प्रचलन नही है। साहित्य मे, विशेष रूप से कविता मे इनका प्रयोग हुआ है—

अन्य
अपर
अमुक
उभय
किमपि
पर
प्रत्येक
बहु
भूरि
युग
युगल
युग्म
सर्व

§३४०. 'अन्य' का बहुप्रचलित रूपान्तर 'आन' है; इसका तात्पर्य है—दूसरा, पराया। 'अपर' संख्यावाची है; जैसे— **अन्य** देश गया; नहिं **आन** उपाऊ; किन्तु—**अपर** हेतु सुनु। सामान्यतया 'अपर' के स्थान पर 'पर' प्रयुक्त होता है; जैसे—परदोष (दूसरे का दोष); परदेश, परलोक।

§३४१. युग, युगल, युग्म (दोनों, दो) ये तीनो मूलतः संज्ञावाची शब्द है, इनका तात्पर्य है—जोड़ा। व्यवहार में ये सर्वनामवाची विशेषण हैं। निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होती है—युग भूपति **युगल** नयन जलधार बही; स्वपाणि युग्म जोरिके। संस्कृत के दूसरे सर्वनामवाची विशेषणों के उदाहरण हैं—**उभय** अपार उदधि; **किमपि** प्रयोजन नाहीं; **अमुक** कहता है; **प्रत्येक** दिन।

§३४२. 'प्रति' कहीं-कहीं सर्वनामवाची विशेषण की भाँति आता है; जैसे—**प्रति** अवतार कथा प्रभु केरी। 'बहु' तथा 'भूर' 'बहुत' शब्द के पर्यायवाची हैं, संस्कृत के अन्य सर्वनामवाची विशेषणों की भाँति इनका प्रयोग भी कविता में हुआ है।

समासित सर्वनाम

सम्बन्धवाचक सर्वनाम के साथ

§३४३. सम्बन्धवाचक सर्वनाम का समास अन्योन्य सम्बन्धवाचक अथवा अनिश्चयवाचक सर्वनाम के साथ होता है। समासित दोनों सर्वनाम वचन आदि के विकार ग्रहण करते है; किन्तु परसर्ग केवल अन्तिम सर्वनाम के साथ जुड़ता है; उदाहरण 'सो' के साथ—जिस तिसका, कोई के साथ—जो कोई, जिस **किसी** को; 'कुछ' के साथ—जो **कुछ**।

क जो कोई=ने० जुन सुकैं।

ख. रामायण में संस्कृत के सर्वनामो के समासित रूप मिलते है—जेन केन विधि, इस वाक्यांश मे जेन केन (=येन केन) करणकारक के एकवचन मे प्रयुक्त हुए है।

और के साथ समास

§३४४. कुछ सर्वनामवाची शब्द 'और' के साथ समासित होते है, जैसे—और कुछ; और कोई, और कौन; और क्या। क्षेत्रीय बोलियों मे इन समासितो का प्रयोग दृढता अथवा निश्चय सूचित करने के लिए होता है।[1]

क. कहीं-कही 'और' का प्रयोग परपद मे किया जाता है। इस प्रकार के समासितो का दूसरा ही अर्थ निकलता है; जैसे—**कोई और, कुछ और**।

ख. सर्वनामवाची विशेषण 'अन्य' अपने साथ ही समासित होता है; जैसे—अन्यौन्य (=सं० अन्योऽन्य)। हिन्दी मे इस समासित का प्रयोग अधिक नही मिलता। कही-कही दोनो 'अन्य' शब्दो को विग्रह से लिखा जाता है; जैसे—**अन्यौ अन्य** प्रीति ते।

प्रश्नवाचक के साथ

§३४५. प्रश्नवाचक 'कौन' के अविकारी एकवचन के साथ 'सा' (विकृत-से, सी) अव्यय जोडते है, जैसे—कौन सा; वह कौन सा पेड है?

क क्षेत्रीय बोलियो मे, कम-से-कम पूरब की बोलियो मे यह 'सा' सम्बन्धवाचक और अन्योन्य सम्बन्धवाचक 'जौन' तथा 'तौन' के साथ समासित होता है, जैसे—जौन सा, तौन सा। दोआबे मे इस 'सा' का समास 'यह' और 'वह' के साथ भी किया जाता है; जैसे—यह सा, वह सा, यह मैं स्पष्ट करना चाहता हूँ कि इस प्रकार का प्रयोग मुझे साहित्य में नही मिला।

ख. पूरबी बोली की पुरानी कविता मे समानता सूचक अव्यय 'सम' का समास सकेतवाची सर्वनाम के विकारी रूप के साथ हुआ है; जैसे—इन सम, इन्ह सम; उन सम, उन्ह सम।

ग. मारवाड़ी में 'कौन-सा' के स्थान पर 'खीयो', स्त्रीलिंग 'खी' का प्रयोग होता है, जैसे—खीयै मनष थां ऐ कीयो=किस मनुष्य ने तुम से कहा?

---

[1] गढवाली में एकाकी 'और' का प्रयोग दृढ़तापूर्वक स्वीकृति व्यक्त करने के लिए होता है।

अनिश्चयवाची सर्वनाम के साथ

§३४६ अनिश्चयवाची सर्वनाम 'सब' शब्द के साथ समासित होते है; जैसे—**सब कोई, सब कुछ** कोई से पूर्व 'सब' के स्थान पर 'हर' भी प्रयुक्त होता है।

§३४७. अनिश्चयवाची सर्वनाम को दुहरा कर उनके बीच मे नकारार्थक अव्यय 'न' का उपयोग करते है। इस प्रकार की रचना विशेष प्रकार के अनिश्चय को सूचित करती है; जैसे—कोई-न-कोई, कुछ-न-कुछ। दोनों पद विकार ग्रहण करते है किन्तु परसर्ग परपद के साथ प्रयुक्त होता है, जैसे—किसी-न-किसी का खेत।

§३४८ अनिश्चय सूचित करने के लिए विभिन्न सर्वनामो तथा सर्वनामवाची विशेषणो के साथ 'कुछ' सर्वनाम समासित होता है। इस प्रकार के समासितो का अग्रेजी अनुवाद कठिन है; जैसे—हम क्या कुछ होगे, बहुत कुछ। इसी प्रकार से—यह कुछ, कितना कुछ आदि।

'कुछ बहुत' का प्रयोग भी मिलता है; जैसे—कुछ बहुत स्मरण न रहेगा।

उर्दू के सर्वनामवाची विशेषण

§३४९ नीचे जो सर्वनामवाची विशेषण दिये जा रहे है, हिन्दी से उनका उतना सम्बन्ध नही है, जितना उर्दू से है। हिन्दी की कुछ आधुनिक पुस्तकों मे इनका प्रयोग मिलता है, इसीलिए यहाँ उनका उल्लेख किया जा रहा है—

बाज
बाजे
गैर
फुलाना
कुल्ल
चद

§३५०. इनमे से केवल 'चन्द' फारसी से सम्बन्धित है, शेष सब अरबी से लिये गये है। 'गैर' शब्द कही-कही, विशेष रूप से समासो मे, नकारार्थक उपसर्ग की भाँति आता है; जैसे—गैर हाजिर। 'फुलाना' उच्चारित होता है 'फुलाना'। यह सर्वनामवाची विशेषण उर्दू से सम्बन्धित होते हुए भी हिन्दी भाषियो के मुँह से सुना जाता है; अवधप्रदेश के निवासी इसका खूब प्रयोग करते है। अवध के लोग तृतीय पुरुषवाची सर्वनाम के स्थान पर दूरवर्ती सकेतवाचक के लिए 'फुलनवा' शब्द का प्रयोग करते है। अवध के लोग इसी अर्थ मे 'ढेकनवा' (ब० व० ढिकाने) भी बोलते है।

सर्वनामवाची विशेषणों की व्युत्पत्ति

व्यक्तिवाचक सर्वनाम : अविकारी एक वचन

§३५१ इस ग्रन्थ मे हिन्दी सर्वनामो के विभिन्न रूपो पर विस्तार से विचार करना संभव नही है। मेरे लिए इतना ही संभव है कि मै बहुप्रचलित रूपो की समावित व्युत्पत्ति को संक्षेप में लिख दूँ। प्रथम पुरुषवाची सर्वनाम के अविकारी कर्ताकारक के एकवचन 'मै' अथवा 'मे' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—संस्कृत के उत्तम पुरुषवाची सर्वनाम के करण कारक एकवचन मे मया **प्रा०** मइ अप० मइं>हि० मै अथवा मे।[1]

---

[1] देखिए, लैस्सेन—इन्स्ट० लिंग० प्राक०, पृ० ४८०। गुजराती में इस समय भी विकारी कर्ता के साथ 'मैं' और अविकारी कर्त्ता के एकवचन में हुं—सं० अहम् का प्रयोग होता है।

हिन्दी मे कर्त्ताकारक (विकारी) मे 'मैं' के साथ अनावश्यक **रूप** से परसर्ग 'ने' का प्रयोग होता है। मारवाडी, पु० बैसवाडी और अन्य बोलियो मे 'ने' के बिना 'मैं' कर्त्ताकारक (विकारी) मे प्रयुक्त होता रहा है। ब्रजभाषा के द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम के कर्त्ताकारक (अविकारी) एकव० के रूप 'तैं' पर भी यही बात लागू होती है।[1]

क. ब्रजभाषा में प्रथम पुरुष कर्ता (अविकारी) के एकवचन के 'मैं' के रूपो के अतिरिक्त 'हौं' अथवा 'हों' के रूप भी प्रयुक्त होते है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—सं० अहम्>प्रा० अहमुम्>अप० हमुं>ब्र० 'हौ' अथवा 'हों'। मारवाडी में 'हौ' का अन्त्य 'औ' 'ऊँ' अथवा 'उँ' बनता है। मेवाड़ी मे इसका रूप 'म्हूँ' है, मेरे विचार से इसकी उत्पत्ति स० 'स्म' ('अस्मद' का बहुवचन वाला रूप) से हुई। सं० त्वम् के लिए प्राकृत में प्रयुक्त होने वाले 'तुस्मकम्'>हि० तू के अनुकरण पर प्राकृत के 'अस्मकम्' रूप की संभावना की गई है। प्राकृत मे प्रयुक्त रूपो मे सं० 'स्म' सर्वत्र 'म्ह' (§१०८) में परिवर्तित हुआ है; 'अस्मकम्' के 'क' के लोप से 'अम्हअम्' उपलब्ध हुआ, फिर 'अम्हअम्' से 'म्हौ' अथवा म्हूँ। मैं इसी 'स्म' से पूरबी हिन्दी के अविकारी कर्ता के एकवचन 'हम' का सम्बन्ध स्थापित करना चाहता हूँ; 'अम्ह' के 'म्ह' मे प्रयुक्त 'म्' तथा 'ह्' का स्थान-विपर्यय और श्रुति के रूप मे 'म्' के साथ 'अ' का उच्चारण; आरम्भिक 'अ' का लोप।

§३५२. द्वितीय पुरुष के कर्त्ताकारक (अविकारी) के एकवचन का रूप 'तू' सं० 'त्वम्' से उद्भूत माना जाता है; कुछ लोगो का कहना है कि 'त्वम्' का अन्त्य नासिक्य (म्) मारवाड़ी और पुरानी बैसवाड़ी के 'तू' अथवा 'तु' मे सुरक्षित है। मै इस व्युत्पत्ति को स्वीकार नही करता। मेरा विचार है कि 'तू ने' के 'तू' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—सं० तव>प्रा० तुअ>हि० तू। अवधी और रिवाई मे कर्ता (अविकारी) ए० व० का 'तयं' अथवा रिवाई के अधिकरण एकवचन का रूप 'मयं'—'तैं' तथा 'मैं' के रूपान्तर मात्र है। लिपि के कारण इस प्रकार का रूपान्तर हुआ है।

क. भोजपुरी में कर्ता (अविकारी) एक वचन का रूप 'तुह' तुम्ह का रूपान्तर है, तुम्ह की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—**सं०** तुष्म>हि० तुम्ह, 'तुम्ह' हिन्दी के बहुवचन का आधार है। मूल रूप 'तु' के साथ उसी प्रकार म्ह>स्म का योग हुआ जैसे सस्कृत मे 'अ' तथा 'यु' के साथ 'स्म' के योग से प्रथम तथा द्वितीय पुरुषवाची 'अस्म' और 'युष्म' सर्वनामो की रचना हुई। मेवाड़ी और मारवाडी के 'थू' मे 'तुम्ह' का अन्त्य महाप्राण 'ह' वर्णविपर्यय के कारण आरम्भ के 'त' के साथ जुड़ा है (देखिये §१०८.)।

व्यक्तिवाचक सर्वनाम : विकारी एकवचन

§३५३. प्राकृत के प्रथम पुरुष तथा मध्यम पुरुष के एक वचन के रूप 'मह' तथा 'तुह' से 'मुज्झ' और 'तुज्झ' का और इनसे हिन्दी का वर्त्तमान विकारी एकवचन 'मुझ' तथा 'तुझ' का उद्भव हुआ। प्रोफेसर लैस्सेन ने प्राकृत के एक विशेष परिवर्तन का उदाहरण दिया है; स० 'लिह' से प्राकृत में 'लिज्झ' का उद्भव हुआ।[2] रामायण मे 'मह' का प्रयोग मिलता है, 'मह' का उद्भव निश्चित रूप से सं० के 'मम' के स्थान पर प्रयुक्त प्रा० रूप 'मस्य' (?) से हुआ है; और 'मस्य' के अनुकरण पर सं० 'तव' के स्थान पर

---

[1] **देखिए, §३५७।**

[2] **लैस्सेन—इन्स्ट० लिंग० प्राक० §५०।**

प्राकृत के सम्बन्धकारक के रूप तुस्य (?) से 'तुह' का उद्‌भव हुआ। 'मह' तथा 'तुह' का प्रयोग अपभ्रंश में मिलता है।

क. ब्रज, कन्नौजी, अवधी और अन्य बोलियो मे व्यक्तिवाचक सर्वनाम के विकारी एकवचन का रूप है—'मो' तथा 'तो'। ये दोनो सम्बन्धकारक के रूप है। चन्द बरदाई ने इनका प्रयोग किया है।[१] प्राकृत के सम्बन्धकारक एकवचन के रूप, 'महुँ' तथा 'तुहुँ'[२] से इनका उद्‌भव हुआ है; प्रचलित नियम के अनुसार 'स' 'ह' मे परिवर्तित हुआ। इनकी तुलना ब्रजभाषा के सम्बन्ध कारक के रूप 'जासु' तथा 'तासु' से की जा सकती है। 'जासु' तथा 'तासु' के अन्त्य 'सु' का उद्‌भव लैस्सेन ने संस्कृत के अधिकार सूचक शब्द 'स्व' से माना है।[३] ब्रजभाषा के रूपो के सहारे मेवाडी के विकारी एकवचन के रूप 'म्हो' और 'थो' की उत्पत्ति प्राकृत के 'अस्मक' तथा 'तुस्मक' से मानी जानी चाहिए। इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि इन रूपो के साथ अधिकार सूचक शब्द 'स्व' अथवा स० की विभक्ति 'भ्यस्'>अप० 'हो' जोडी गई है।

ख. रि० के विकारी एकवचन के रूप 'म्वा' और 'त्वा' के बारे मे मेरा विचार है कि इनकी उत्पत्ति सं० अस्म और तुष्म के साथ प्राकृत प्रत्यय 'क' के योग से बनने वाले संभावित रूपो से हुई। इनके लघु रूप 'मु' तथा 'तु' के साथ 'क' के योग से 'मुक' तथा 'तुक' रूप उपलब्ध हुए, 'मुक' तथा 'तुक' के सम्बन्धकारक के सभावित रूप हो सकते है—'मुकस्य' 'तुकस्य', फिर मुकस्य प्रा० मुआह, तुकस्य<प्रा० तुआह; फिर इन दोनो से म्वा तथा त्वा का उद्‌भव।

§३५४. सम्बन्ध कारक के प्राचीन रूप 'मह' के साथ 'केरा' अथवा 'केरो' के सयोग से 'मेरा' और उसके अनुकरण पर 'तेरा' रूप बना। 'केरा' अथवा 'केरो' के सम्बन्ध मे पहले बताया जा चुका है कि इनका विकास 'केरको' (स० कृत) से हुआ है। बीम्स ने 'मेरा' तथा 'मेरो' की उत्पत्ति ग्राम्य प्राकृत के 'महकेरो' से मानी है,[४] 'क' के लोप तथा समीपस्थ स्वरो की सन्धि से 'मेरो' अथवा 'मेरा' का उद्‌भव हुआ। अपभ्रंश के सम्बन्ध कारक के एकवचन के रूप 'मकु' के साथ इसी प्रत्यय के योग से मारवाडी तथा मेवाडी के सम्बन्ध कारक के रूप 'म्हांरो' 'म्हांको' आदि और पूरबी बोलियो के सम्बन्ध कारक का रूप 'मोरा' का उद्‌भव हुआ। सम्बन्ध कारक मे प्रयुक्त होनेवाला दीर्घ रूप 'म्हारौ' के दीर्घ आकार की उत्पत्ति के बारे मे यह सभावना की गई है कि मूल प्रत्यय 'केरको' के स्थान पर सभावित रूप 'करको' के योग से यह रूप संभव हुआ। कर्म तथा सम्प्रदान कारक के रूप है—'म ने', 'म्ह ने' तथा 'त ने' और 'थ ने', यहाँ आधार रूप का 'आ' इसलिए ह्रस्व रह गया कि प्रत्यय का आरंभिक 'न' स्वरों की संधि का बाधक सिद्ध हुआ। सम्बन्धकारक के इन रूपो के सम्बन्ध मे अधिक जानकारी पाने के लिए पूरबी हिन्दी के कुछ अन्य सर्वनामो के सम्बन्ध कारक के रूपों पर विचार कर लेना चाहिए। ये रूप है—इनकरा, उनकरा आदि। इन रूपों के आधार के लिए प्राकृत के सम्बन्ध कारक का रूप स्वीकार किया गया और उसके साथ इसी कारक का नियमित परसर्ग जोडा गया।

---

[१] देखिए, §२८३ तथा §२८१।

[२] सिन्धी में इस समय भी 'महुँ' का प्रयोग होता है।

[३] इन्स्ट० लिंग० प्राक० §१७५, ६। हार्नली ने इसकी उत्पत्ति संस्कृत में चतुर्थी और पंचमी के बहुवचन की विभक्ति 'भ्यस्'—अप० 'हो' से मानी है। कम्प० ग्राम० पृ० २११।

[४] कम्प० ग्राम०, खंड २, पृ० ३१४।

क. 'मोहि' तथा 'तोहि' आदि के 'हि' के सम्बन्ध मे यह बात कही जा सकती है कि पुरानी हिन्दी में सज्ञा के विकारी एकवचन के लिए 'हि' विभक्ति काम मे आती थी[1], 'हि' का उद्भव संस्कृत की विभक्ति 'स्य' से हुआ, अप० 'हे', पु० हि० 'हि'। सर्वनाम के सम्बन्ध कारक के पुराने रूपो मे सज्ञा की भाँति यह 'हि' विभक्ति जोड़ी गई। 'मुझे' और 'तुझे' का विकास भी सरलता से समझा जा सकता है, प्राकृत के सम्बन्ध कारक के रूप 'मज्झ' और 'तुज्झ' के साथ उपर्युक्त विभक्ति 'हि' के योग से 'मज्झहि' अथवा मुज्झहि और तुज्झहि रूप बने; इनके 'ह' के लोप के कारण निकटस्थ 'अ' तथा 'इ' की संधि से 'मुझे' तथा 'तुझे' रूप निष्पन्न हुए, सम्बन्ध कारक के रूप 'मुझे' और 'तुझे' के अन्त्य 'ए' और आकारान्त तद्भव शब्दो के विकारी एकवचन के अन्त्य 'ए' परस्पर सम्बन्धित है। वास्तविकता यह है कि सम्बन्ध कारक की विभक्ति का प्रयोग सम्प्रदान तथा कर्मकारक के लिए होता रहा है। यह बात उल्लेखनीय है कि कई प्राकृतो मे बहुत पहले सम्प्रदान कारक की विभक्ति नष्ट हो चुकी थी, उसके लिए सम्बन्ध कारक की विभक्ति से काम चलाया जाता था।

§३५५ मारवाड़ी मे प्रथम पुरुष का विकारी रूप 'मै' तथा द्वितीय पुरुष का विकारी रूप 'तै' अथवा 'थैं' है। वास्तव मे ये करण कारक के एकवचन के रूप है जिनके साथ व्याकरण सम्बन्धी नियम के अनुसार अपादानकारक का परसर्ग सूं<सं० सम् जुडता है। मै यह कल्पना करता हूँ कि अधिकरण कारक के ऐसे ही रूप 'म्है माहै', 'थै ऊपरि', आदि को सम्बन्ध कारक का रूप मानना चाहिए, इसका एक कारण यह है कि मैने ऐसा कोई उदाहरण नही देखा है, जिसमे करण कारक के साथ स० 'मध्ये' अथवा 'उपरि' का प्रयोग हुआ हो। इन दोनो का प्रयोग केवल सम्बन्धकारक अथवा कर्मकारक के रूप के साथ होता है। परवर्ती प्राकृत मे सर्वनाम सम्बन्धी विभक्ति 'ऐ' (<स्मिन्) का प्रयोग सम्बन्ध, करण और अधिकरण कारक मे मिलता है। प्राकृत के रूपो के साथ सादृश्य रखने के कारण मार० के तै, मै या तो सम्बन्ध अथवा करणकारक के रूप है या फिर अधिकरण कारक के। इसी प्रकार के सादृश्य के कारण गढवाली और कुमाऊनी के विकारी रूप—मैं, मे और त्वे व्याकरण के नियमानुसार प्राकृत के परसर्ग युक्त करणकारक अथवा सम्बन्ध कारक के एकवचन के रूप से उद्भूत है।

§३५६ पूरबी हिन्दी मे प्रचलित 'हमरा' और 'तुहरा' वास्तव मे बहुवचन के रूप है, फिर भी इनका प्रयोग एकवचन मे होने लगा। अन्य बोलियो के समान इन बोलियो मे भी 'हमारा' तथा 'तुहारा' रूप भी प्रचलित होना चाहिए। स्वराघात (?) के आधार पर सभवत. 'आ' के ह्रस्वीकरण की बात समझाई जा सकती है। व्यक्तिवाचक सर्वनामो के बहुवचन वाले समस्त रूपो के समान 'तुहरा' का 'ह' 'स्म' के 'स्' से उद्भूत है; 'तु' के साथ 'स्म' के योग से तुस्म>तुह।

व्यक्तिवाचक सर्वनाम : कर्त्ता (अविकारी) बहुवचन

§३५७ अधिकाश बोलियो के प्रथम पुरुषवाची सर्वनाम के कर्त्ताकारक (अविकारी) के बहुवचन मे 'हम' प्रचलित है। प्राकृत मे कर्ताकारक (अविकारी) बहुवचन के नियमित रूप 'म्हे' से 'हम' का उद्भव हुआ है, वर्णविपर्यय के कारण 'म्हे' मे 'म् ह्' का स्थान परिवर्तन और बहुवचन की विभक्ति अन्त्य 'ए' का 'लोप'। प्राकृत का 'म्हे' इस समय भी मारवाडी मे प्रचलित है। प्राकृत के कर्त्ताकारक (अविकारी) का रूप म्हे (अम्हे) प्राचीन रूप 'अस्मे' से उद्भूत है। यह 'अस्मे' सस्कृत के कर्त्ताकारक के बहु-

---

[1] देखिए, §१९०।

वचन के प्रचलित 'वय' के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है। इस 'अस्म' से ही संस्कृत के बहुवचनवाची विकारी रूप 'अस्मान्', 'अस्माभि.' आदि की उत्पत्ति हुई है। अन्य सर्वनामों के कर्त्ताकारक के बहुवचनवाले रूपो के सादृश्य से 'अस्म' के साथ भी बहुवचन की विभक्ति 'इ' जोड़ी गई है, जिससे 'अस्मे' (=अस्म+इ) की रचना हुई। 'अस्मे' का अन्त्य 'ए' सस्कृत के कर्त्ताकारक बहुवचन के रूप—ते, इमे, ये आदि के 'ए' से सादृश्य रखता है। रिवाई के कर्ता (अविकारी) बहुवचन मे 'हम्ह' प्रचलित है। इस रूप के सम्बन्ध मे मेरा अनुमान है कि इसी बोली मे प्रयुक्त द्वितीय पुरुष के रूप 'तुम्ह' के अनुकरण पर 'हम' के साथ अन्त्य 'ह' जोड़ा गया। मेवाडी के कर्ता (अविकारी) बहुवचन के रूप 'म्है' के सम्बन्ध मे मेरा विचार है कि यह पश्चिमी प्राकृत के कर्मकारक के बहुवचन के रूप 'अम्हइ' से उद्भूत है और यह रूप कर्ता (अविकारी) कारक मे प्रयुक्त होता है। अग्रेजी के ग्राम्य प्रयोग 'इट इज मी' (it is me) मे प्रयुक्त 'कर्म' से इसका सादृश्य है।

§३५८ द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम के कर्त्ताकारक के बहुवचन का प्रचलित रूप 'तुम' है, पुरानी हिन्दी मे इसका 'तुम्ह' (तुम्ह भी) रूप प्रयुक्त हुआ है। इसका पूर्व रूप प्राकृत मे 'तुम्हे' है। इस 'तुम्हे' का प्रयोग स० वयम् के स्थान पर हुआ। सस्कृत के बहुवचन मे प्रयुक्त 'युष्म' के साथ सादृश्य और नियमितता स्थापित करने के लिए एकवचन के आधार रूप 'तु' के साथ सार्वनामिक 'स्म' जोड़ा गया। प्रथम पुरुष मे 'अस्मे' (अह् मे) रूप प्रचलित था अत. उसके अनुकरण पर भी मध्यम पुरुष के कर्त्ताकारक बहुवचन मे 'तुष्म' रूप बना, अन्य सर्वनामो के अनुसार 'तुष्मे'। यह स्पष्ट दिखाई देता है कि साहित्यिक संस्कृत मे प्रयुक्त यूयम्, युष्मान्, युष्माभिः जैसे अनियमित रूपो की अपेक्षा एकवचन के रूप 'तुष्म' से बने हुए बहुवचन के रूप तुष्मे, तुष्मान् आदि अधिक नियमित थे।

§३५९. मारवाड़ी के कर्त्ताकारक बहुवचन का रूप 'थे' को लीजिये। वर्णविपर्यय के कारण 'तुम्ह' का अन्त्य महाप्राण 'ह' आरभिक व्यजन मे समाविष्ट हुआ (इस विपर्यय से 'थमे' बना ?)। अन्त्य नासिक्य 'म्' एकाकी रहने के कारण पहले अनुस्वार मे परिवर्त्तित हुआ और फिर लुप्त हो गया। सयुक्त स्वर से पहले ओष्ठ्यवर्ण लुप्त हो गया, 'त्वया' मे भी इसी प्रकार ओष्ठ्य वर्ण के लुप्त होने से एकवचन मे 'ते' बनता है। मेवाडी का "तैं" सभवत. कर्मकारक का रूप था, जो आगे चल कर कर्त्ता (अविकारी) के लिए प्रयुक्त होने लगा। प्रथम पुरुष के 'म्है' की भाँति द्वितीय पुरुष के कर्मकारक के बहुवचन मे प्रयुक्त 'थैं' की उत्पत्ति 'तुम्हइं' से हुई।

व्यक्तिवाचक सर्वनाम : विकारी बहुवचन

§३६०. व्यक्तिवाचक सर्वनाम के कर्म तथा सम्प्रदान मे प्रयुक्त 'हमे' 'तुम्हे' की उत्पत्ति प्राकृत के कर्मकारक के बहुवचन 'अम्हइ' तथा 'तुम्हइ' से हुई है। अम्हइ तथा तुम्हइ का प्रयोग पुरानी हिन्दी मे भी बहुत हुआ है। इन रूपो का अन्त्य 'इ' सूचित करता है कि पहले 'वहाँ' 'ह्' विद्यमान रहा है; इनका वास्तविक रूप पहले अम्हहिं (हमहि) और 'तुम्हहिं' रहा होगा। यह अन्त्य 'हि' मेरे विचार से कर्म तथा सम्प्रदान कारक के एकवचन में प्रयुक्त वही विभक्ति है जिसका उल्लेख § १९०. मे किया जा चुका है। यह संभावना की जाती है कि यह 'हिं' सस्कृत (सर्वनामो के) अधिकरण कारक के एक वचन की विभक्ति 'स्मिन्' अथवा सम्प्रदान कारक के बहुवचन की विभक्ति 'भ्यस्' से उद्भूत है।

§३६१. अधिकाश बोलियो के विकारी बहुवचन मे दो तरह के रूप प्रचलित है, एक रूप अपेक्षाकृत दीर्घ और दूसरा रूप अपेक्षाकृत लघु है, जैसे—हम, हमों, तुम, तुम्हो आदि। लघु तथा दीर्घ दोनो रूप और

इनके सभी रूपान्तर मूलतः सम्बन्धकारक के बहुवचन के रूप से उद्भूत है। दीर्घ रूप सम्भवत प्राकृत के 'क' प्रत्यय से युक्त 'अस्मक' तथा तुष्मक से और लघु रूप 'अस्म' तथा 'तुष्म' से उत्पन्न हुए है। पुरानी हिन्दी में हम' तुम अथवा तुम्ह सम्बन्धकारक मे प्रयुक्त होते थे।[1] परवर्ती प्राकृत में इनके पर्याय 'अम्ह' और 'तुम्ह' मिलते है, पुरानी प्राकृत के सम्बन्धकारक की विभक्ति 'आणाम्' इनमे से लुप्त हो गई। हिन्दी मे प्रचलित दीर्घ रूप हमों, हमनि, तुम्हो, तुमनि, तुहनि की उत्पत्ति प्राकृत के सम्बन्ध कारक के बहुवचन अम्हाणाम्, तुम्हाणाम् से हुई; प्राकृत के ये रूप सस्कृत के सम्बन्धकारक के बहुवचन के रूपो के अनुकरण पर बने हैं। इसी प्रणाली के अनुसार सस्कृत मे सज्ञाओ के साथ जुडने वाली विभक्तियों से 'ओ' 'अनि' आदि विभक्तियाँ विकसित हुई है।[2] गढवाली मे अन्त्य 'ओ' 'उ' मे परिवर्तित हुआ; जैसे तुमु, हमु।[3]

§३६२. संस्कृत के सम्बन्ध कारक के बहुवचन की विभक्ति 'आणाम्' प्राकृत के बहुवचन की विभक्ति 'आणम्'>मारवाड़ी तथा मेवाड़ी की बहुवचन सूचक विभक्ति 'आॅ'। यह 'आॅ' मारवाड़ी, मेवाड़ी तथा अन्य बोलियो मे सस्कृत की विभक्तियो की भाँति सज्ञा के साथ जुड़ता है। इसीलिए प्राकृत के 'अम्हाणम्', 'तुम्हाणम्' से मारवाड़ी तथा मेवाडी के 'म्हा' और 'था' का उद्भव हुआ। मारवाडी के दीर्घ रूप 'म्हांयां' और 'थायां' का 'य' संज्ञा की भाँति सर्वनाम रूपो के साथ जुडने वाले 'क' का स्मरण कराता है। 'क' के लुप्त होने पर श्रुति के रूप मे इस 'य' का आगम हुआ। लैस्सेन ने लिखा है कि सर्वनामो के आधार रूप के साथ भी कही-कही यह 'य' जोडा जाता है। 'म्हांयां' आदि दीर्घ रूप प्राकृत के सम्बन्धकारक के दीर्घ रूप 'अम्हकाणम्' और 'तुम्हकाणम्' का प्रतिनिधित्व करते है।' य' से पूर्व का अनुस्वार अनावश्यक है। इनसे भी अधिक दीर्घ रूप म्हांवरां, थावरां की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे मै किसी निश्चय पर नही पहुँचा हूँ। बुन्देलखंडी में अविकारी बहुवचन के समान सम्बन्धकारक का आधुनिक रूप 'तिहांरे' है, 'लोग' जैसे किसी शब्द का वैसे ही बोध हो जाता है।

§३६३. सम्बन्धकारक का बहुवचन 'हमारा' तथा 'तुम्हारा' का आधार रूप है—अम्ह और तुम्ह। इनके साथ प्राकृत का 'करकः' जोड़ा गया; रूप बना—अम्ह करको, तुम्ह करको[4] दोनो रूपो मे 'क' लुप्त हो गया। रूप बना—अम्ह अरओ, तुम्हअरओ, स्वरों की सन्धि तथा 'म् ह्' के वर्णविपर्यय से पहले ब्रज का रूप 'हमारौ' तथा 'तुम्हारौ' बना; फिर कन्नौजी मे 'हमारो' तथा 'तुम्हारो', अन्त मे स्तरीय हिन्दी का रूप 'हमारा' और 'तुम्हारा'। लघु रूप 'हमार' तथा 'तुम्हार' के सम्बन्ध मे सादृश्य के कारण कहा जा सकता है कि ऐसे आधार रूप के साथ प्रत्यय जोड़ा गया, जिसके साथ 'क' अथवा 'करकः' का योग नही हुआ था।

क. मारवाड़ी और मेवाड़ी के म्हांरो, थांरो, म्हांळो, थांळों का अनुस्वार यदि अनावश्यक नही है तो यह मानना पड़ेगा कि ऊपर के रूपों की भाँति प्रत्यय, आधार रूप के साथ न जुड़ कर सम्बन्धकारक के रूप के साथ जुड़ा है, इस तरह राजपूताना के इन रूपों का उद्भव निश्चित रूप से 'अम्हाणम् करको' 'अम्हाण कलको' आदि से हुआ है। यदि अनुस्वार अनावश्यक है तो उनकी व्याख्या अन्य नियमित रूपो की भाँति की जा सकती है।

---

[1] देखिए, §२९४।

[2] देखिए, §१९२।

[3] देखिए, §८५।

[4] हार्नली ने एक निबन्ध में 'मृच्छकटिक' का एक उद्धरण दिया है। इसमें 'अम्हकेलके' (अम्हकेरके) रूप प्रयुक्त हुआ है। इस निबन्ध का उल्लेख पहले किया जा चुका है।

निकटवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम · अविकारी एकवचन

§३६४. यह, यिह, यहु, इह, एह, एहु, हे—जैसे निकटवर्ती सकेतवाचक सर्वनामो के अन्त मे 'ह' विद्यमान है। इन हकारान्त रूपों का उद्भव स० 'एष' से हुआ है। यिहु, येहु, एहु का अन्त्य 'उ' संज्ञाओ की भाँति 'एष.' के अन्त्य 'अ' के लिए प्राकृत 'ओ' का प्रतिनिधित्व करता है।[1] लैस्सेन ने भोजपुरी के 'हे' से उद्भूत 'एहे' रूप का उल्लेख किया है। कर्त्ताकारक के बहुवचन में 'एष' के 'एषे' रूप की कल्पना की गई है। 'एह' तथा 'ईह' के अन्त्य 'ह' के लोप से 'ए' तथा 'ई' शेष रह गए। निकटवर्त्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के शेष रूप—यो, या और यो पुल्लिग मे 'ओ' तथा स्त्रीलिंग मे 'आ'। इनका सम्बन्ध मै 'इम्' से जोडना चाहता हूँ, सस्कृत मे इस 'इम्' के रूप बहुत अनियमित ढग से चलते है। प्राकृत मे यह पूर्णतया विकृत हो गया। 'यो' और 'या' स्पष्टत प्राकृत के पुल्लिग, कर्त्ताकारक, एकवचन के रूप 'इमो' से उद्भूत है; 'इमो' के 'म' का लोप, 'इओ' से 'यो' और 'य' की उत्पत्ति। 'यो' का अनुस्वार इस बात की सूचना देता है कि यह रूप प्राकृत के नपुंसक लिगी रूप 'इम' से सम्बन्धित है, 'इम' से 'इअम्' और फिर 'इअम्' से 'यो'। मेवाडी के पुल्लिगी रूप 'ओ' तथा स्त्रीलिगी रूप 'आ' इसी ढग से 'इमो' तथा स्त्री० 'इमा' से उद्भूत है।[2]

दूरवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम : अविकारी एकवचन

§३६५ निकटवर्ती तथा दूरवर्ती दोनो सकेतवाचक सर्वनामो के रूप मे जो पूर्ण सादृश्य है उससे यह अनुमान लगाया जाता है कि जिस तरह निकटवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम के रूपान्तरो का एक वर्ग 'एष.' से और दूसरा वर्ग 'इम.' से उद्भूत है, तथा उनका आधार-रूप 'य' अथवा 'इ' है उसी प्रकार किसी पुरानी ग्राम्य बोली मे दूरवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम का रूप 'ओषः' तथा 'उमः' होना चाहिए और उनसे बनने वाले रूप-रूपान्तरो का आधार 'उ' रहा होगा। इसी रूप से हम हिन्दी के दूरवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम 'वह' के अविकारी कारक के विभिन्न रूपान्तरों का सम्बन्ध स्थापित कर सकते है। बहुत से लोगो ने इस सर्वनाम के आधार रूप 'उ' का सम्बन्ध संस्कृत के विभिन्न उपसर्गो—उत्, उप, उपरि आदि से जोड़ा है; किन्तु आज तक मुझे संस्कृत अथवा प्राकृतो मे दूरवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम का ऐसा रूप नही मिला है, जो 'ओष्ठ्य' वर्ण पर आधारित हो; यह होते हुए भी इस बात की संभावना बनी हुई है कि आगे चल कर कोई अनुसन्धाता प्राकृतों अथवा अपभ्रशो मे ऐसा रूप खोज सकता है जिससे उपर्युक्त अनुमान सत्य सिद्ध हो।

सम्बन्धवाची, अन्योन्य-सम्बन्धवाची तथा प्रथम प्रश्नवाचक सर्वनाम : अविकारी एकवचन

§३६६. 'जो', 'सो' और 'कौन' इन तीनो सर्वनामों मे बहुत सादृश्य है, इसीलिए यहाँ तीनो पर एक साथ विचार किया जा रहा है। अविकारी एकवचन मे इनमें से प्रत्येक के दो रूप हैं। पहला रूप एकारान्त, ओकारान्त अथवा उकारान्त है तथा दूसरा रूप नकारान्त । पहले ओकारान्त रूप पर विचार किया जाता है। लोगों की धारणा थी कि 'जो', 'सो' तथा 'को' सर्वनामों की उत्पत्ति सीधे संस्कृत के सर्वनाम रूपों—यः, स तथा क. से हुई है; किन्तु हमें हिन्दी में ऐसा निर्विवाद उदाहरण नही मिला, जिसमें प्राकृत का अन्त्य 'ओ' सुरक्षित हो। हिन्दी में प्राकृत अन्त्य 'ओ' केवल ऐसे स्थलों पर विद्यमान हैं जहाँ संस्कृत

---

[1] देखिए, §१८९।

[2] [illegible] सर्वनामों के रूप के बारे में देखिए, हार्नली, कम्प० ग्राम० §४३८।

शब्द के साथ प्राकृत का निरर्थक 'क' प्रत्यय जुड़ा हो, इसीलिए यह अनुमान उचित जान पडता है कि जो, सो तथा को का उद्भव प्राकृत के ऐसे रूपो से होना चाहिए जिनके साथ निरर्थक प्रत्यय 'क' (§१००) जुड़ा हुआ हो। मेवाड़ और मारवाड की पुरानी बोली मे सम्बन्ध सूचक सर्वनाम के सवर्द्धित रूप 'जको' तथा 'जिको' मिलते हैं, जो इस अनुमान की पुष्टि करते है। इस 'जिको' के 'क' के लोप तथा 'इ' के 'य' मे परिवर्त्तित होने-से मारवाड़ी मे इसी सर्वनाम का दूसरा रूप 'ज्यो' उद्भूत हुआ।[1] इस 'ज्यो' अथवा किसी अन्य रूप से विकसित 'जओ' से हिन्दी का 'जो' उद्भूत हुआ। 'जो' के पूर्वरूप 'जको' अथवा 'जिको' के सादृश्य से 'सको' अथवा 'सिको', 'कको' अथवा 'किको' जैसे रूपो का अस्तित्व रहा होगा। हो सकता है आज भी इनका प्रचलन हो। इन्ही रूपों से हिन्दी के 'सो' और 'को' सर्वनामो की उत्पत्ति हुई। मै इन पुराने रूपो के उदाहरण प्रस्तुत करने की स्थिति में नहीं हूँ, फिर भी मेरा विचार है, इनका अस्तित्व अवश्य है। इन रूपो का अनुकरण रिवाई के विकारी रूपो—'ज्या', 'त्या' और 'क्या' में मिलता है, 'ज्या' स्पष्ट रूप से मारवाडी के 'ज्यो' से मिलता-जुलता है। रिवाई के इन रूपो के उद्भव के सम्बन्ध मे 'जिआ', 'जिका', 'तिआ', 'तिका', 'किआ', 'किका' की कल्पना की जा सकती है।

§३६७. अब हम 'जो', 'सो' और 'को' से हट कर इन तीनो सर्वनामो के अन्य रूपों पर विचार करते हैं। कुछ बोलियो के अविकारी एकवचन मे 'जो', 'सो' और 'को' के अतिरिक्त 'जे' अथवा 'जै', 'से' और 'के' अथवा 'कै' भी प्रचलित है। ये सर्वनाम एक-दूसरे से बहुत मिलते-जुलते है; इनका सादृश्य इस अनुमान के लिए प्रेरित करता है कि समवत. ये ऐसे रूप से उद्भूत है जिनमे 'क' के लोप के पश्चात् श्रुति के रूप में 'य' का आगम हुआ हो। इसीलिए इनका पूर्व रूप जयो, सयो, कयो होना चाहिए, अन्त्य 'ओ' अन्य सभी तत्सम शब्दो की भाँति परिवर्त्तित हुआ 'अ' मे। इस परिवर्तन के कारण जय, सय और कय का उद्भव
सभी तत्सम शब्दो की भाँति परिवर्त्तित हुआ 'अ' मे। इस परिवर्तन के कारण जय, सय और कय का उद्भव
हुआ। 'जो', 'सो' और 'को' की उत्पत्ति सीधे इन्ही रूपो से हुई।[2] इस विचार की पुष्टि पूरबी बोली के अनिश्चयवाची सर्वनाम के पुराने रूप 'कयौ' से भी होती है। अनिश्चयवाचक सर्वनाम का आधार रूप प्रश्न-वाचक सर्वनाम के आधार रूप से सादृश्य रखता है, 'के' अथवा 'कै' के उद्भव पर विचार करते समय यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए। सस्कृत के आधार रूप ज, त और क के लिए प्राकृत मे जि, ति, कि रूप प्रचलित है। 'कि' से 'किको' रूप बना होगा और फिर 'किको' से 'कियो', 'किय' और अन्त मे गढ़वाली के प्रश्नवाचक सर्वनाम 'कि' का विकास होना चाहिए।

क. रामायण तथा अन्य पुराने काव्यो में 'जु' तथा 'सु' का प्रयोग मिलता है। मेरा विचार यह है कि इनका उद्भव सीधे सस्कृत 'यः' तथा 'सः', प्राकृत 'यो' तथा 'सो' से हुआ। अन्त्य 'उ' के सम्बन्ध मे मैं बता चुका हूँ कि यह स० के पुंल्लिगी कर्त्ताकारक के एकवचन का अवशिष्ट भाग है। इसीलिए इसके सम्बन्ध मे अधिक लिखने की आवश्यकता नही है।[3]

§३६८. उपर्युक्त तीनों सर्वनामों के अविकारी कारक के रूपो जौन, तौन और कौन के विवेचन मे 'कौन' से बहुत सहायता मिलती है। 'कौन' की सहायता से 'जौन' तथा 'तौन' की व्याख्या की जा सकती है। प्रश्नवाचक 'को' के साथ प्राकृत में उण<सं० पुनः जोड़ा जाता है। को+उण से कवन, कौन, कऊन, कुण और

---

[1] **देखिए, §५०।**

[2] **देखिए, §९०।**

[3] **देखिए, §७९, ग. और §१८९।**

§३७०. मेवाडी और मारवाडी के विकारी एकवचन के ऐसे रूप कठिनाई उपस्थित करते हैं, जिनके अन्त में ण, णि अथवा अनुस्वार आता है। इन रूपों का सम्बन्ध प्राकृत में बनने वाले इन सर्वनामो के करण कारक के णान्त रूपों से स्थापित कर सकते हैं, किन्तु ऐसा अनुमान केवल सादृश्य के आधार पर ही किया जा सकता है। बाधा यह है कि पुराने और नये रूप के बीच का कोई रूप उपलब्ध नही हुआ है, जो इस विकास की पुष्टि कर सके। इस बात की भी संभावना है कि कुछ अन्य उदाहरणों की भाँति यहाँ भी अनजाने बहुवचन का रूप एकवचन में प्रयुक्त हुआ हो।

संकेतवाचक, सम्बन्धवाचक, अन्योन्य सम्बन्धवाचक सर्वनाम : अविकारी बहुवचन

§३७१. विवेच्य पाँचों सर्वनामों के अविकारी बहुवचन के रूपों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। पहली श्रेणी मे वे रूप आते हैं, जो अविकारी एकवचन के रूप होते हुए भी बहुवचन मे और दूसरी श्रेणी मे वे रूप आते है, जो बहुवचन मे ही प्रयुक्त होते है। वुह, यिह, जो, सो, कौन आदि के अविकारी एकवचन के रूप अविकारी बहुवचन मे भी प्रयुक्त होते हैं। दूसरी श्रेणी के अधिकांश रूपों के लिए मारवाड़ी के 'जकै' को नमूने के रूप मे उदाहृत किया जा सकता है, इस 'जकै' के 'क' के लोप के पश्चात् निकटस्थ स्वरों की सन्धि से 'जै' रूप उपलब्ध हुआ। यही बात उपर्युक्त सभी सर्वनामो के रूपों पर लागू होती है। इन रूपों का अन्त्य 'ए' अथवा 'ऐ' सस्कृत सर्वनामो के पुंल्लिग के बहुवचन वाले रूप के अन्त्य 'ए' से पूरा सादृश्य रखता है, संस्कृत में कर्त्ता बहुवचन की विभक्ति 'इ' अन्त्य 'अ' के साथ मिल कर 'ए' की रचना करती है। 'तुम्हे' के लिए प्रयुक्त 'तुम्ह' इस बात की प्रेरणा देता है कि हम रिवाई के अविकारी बहुवचन के 'जेन्ह' का उदभव 'जेन्हे' अथवा 'जिन्हे' जैसे रूप से मानें। यह सादृश्य भोजपुरी के अविकारी बहुवचन के रूप 'जिन्हे' से भी पुष्ट होता है। यह बात अन्य सर्वनामों के रूपो पर भी लागू होती है।

संकेतवाचक, सम्बन्धवाचक, अन्योन्य सम्बन्धवाचक : विकारी बहुवचन

§३७२. इन सर्वनामों के विकारी बहुवचन मे कई आधार रूप प्रयुक्त होते है—(१) सरल मूल रूप; जैसे—स्त० हिन्दी के उन, इन, जिन आदि। (२) ऐसा आधार रूप जिसके अन्त में 'आनां' अथवा 'नां' आता है, जैसे—मारवाडी का उणा, इणां, जणा आदि। (३) 'क' के योग से वर्द्धित रूप; जैसे—मार० जका, तिकां आदि। (४) अन्त्य 'न्ह' वाला सबल रूप, जैसे—पू० हि० इन्ह, उन्ह, जिन्ह आदि। (५) 'क' युक्त रूप से भी अधिक वर्द्धित रूप, जिनके अन्त मे न्ह, न्हनि, न्हो और न्हकरा जैसे शब्द जुड़ते हैं; जैसे—स्त० हि० उन्हो, इन्हों और पू० हि० जिन्हा, तिन्हानि और तिन्हकरा। पहली श्रेणी के रूपो की व्युत्पत्ति देना आवश्यक नही है। दूसरी श्रेणी के रूपो का सम्बन्ध कर्मकारक बहुवचन के एक पुराने रूप से है, जिसके अन्त मे 'अं' है और नया आधार रूप बनाने के लिए जिसके साथ सम्बन्ध कारक के बहुवचन की विभक्ति 'आं'<स० आनाम् जोडी गई। 'क' युक्त आधार रूपो का निर्वचन पहले ही हो चुका है;[1] 'न्ह' वाले रूपो के सम्बन्ध मे यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि सज्ञाओ के बहुवचन मे भी 'न्ह' जुडता है। जिन रूपों मे अन, अनिं, और ओं[2] प्रत्ययो का योग होता है वे और पू० हि० के इन्हकरा, किन्हकरा जैसे रूप मूलतः स्त० हि० के 'इन्हो' जैसे रूपों से सादृश्य रखते हैं। ऊपर दिए गए अन्तिम रूपों मे सम्बन्ध कारक की पुरानी

---

[1] देखिए, §३६६।

[2] देखिए, §१९२, §१९२. क.

विभक्ति ओं<सं० आनाम् जोड़ कर एक नया आधार बनाया गया। इन पूरबी रूपो मे आज भी इसी अर्थ में सम्बन्ध कारक के एकवचन का आधुनिक रूप 'करा' जोड़ते है।

§३७३. अनेक बोलियों मे विकारी बहुवचन के विभिन्न प्रत्यय मूलतः संज्ञाओ और व्यक्तिवाचक सर्वनामो के साथ जुडनेवाले प्रत्ययों के समान है; दीर्घ रूपो मे संस्कृत के सम्बन्ध कारक के बहुवचन की विभक्ति 'आम्' अथवा 'आनाम्' के बहुत से रूपान्तर प्रयुक्त हुए है। इसी प्रकार लघु रूपो मे प्राकृत के विकारी बहुवचन की विभक्ति 'आण' के रूपान्तर काम मे लाये गए है। कर्म तथा सम्प्रदान कारक के रूप 'जिन्हे', 'तिन्हे' सीधे प्राचीन रूप जिन्हहिं, तिन्हहिं से विकसित हुए हैं और इस प्रकार के अन्य रूपो की व्युत्पत्ति को पुष्ट करते है। सम्प्रदान तथा कर्मकारक के बहुवचन मे प्रयुक्त 'हिं' विभक्ति संभवत प्राकृत के सम्बन्ध कारक के बहुवचन के रूप जेसिं, तेसिं आदि के अन्त्य 'हिं' से उद्भूत हैं अथवा यह भी सभव है कि उसका उद्भव संस्कृत के सम्प्रदानकारक बहुवचन की विभक्ति 'भ्यस्' से हुआ हो।

प्रथम अनिश्चयवाचक सर्वनाम के रूप

§३७४. अनिश्चयवाचक 'कोई' तथा उसके विभिन्न रूपान्तर संस्कृत के प्रश्नवाचक सर्वनाम के प्रथमा के एकवचन के रूप के साथ 'अपि' के योग से उद्भूत है। हिन्दी के 'कोई' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—हिं० कोई<सं० कोपि<प्रा० कोवि। 'कोऊ' अथवा 'कोउ' मे 'ई' के लोप के पश्चात् 'व' सवर्णी ओष्ठ्य स्वर 'उ' अथवा 'ऊ' मे परिवर्तित हुआ। 'कौनो' और 'कणो' मे 'अपि' मूलतः समासित रूप के साथ जोड़ा गया, पहला रूप 'कः पुनर् अपि' रहा होगा, फिर अपि>औ अथवा 'ओ'। विकारी रूप की व्युत्पत्ति भी यही है। सं० 'क' के स्थान पर 'कि' से 'किसी' अथवा 'किसू' रूप बना। 'किसी' तथा किसू का उद्भव सस्कृत के सम्बन्धकारक एकवचन के 'कस्यापि' के लिए संभावित रूप 'किस्यापि' से हुआ। 'कस्य' का 'स्' परिवर्त्तित हुआ 'ह्' मे और इस तरह काहू (=कस्यापि) रूप बना। 'केहि' और 'काहु' सभवत 'किहि', 'किहु' अथवा 'कहि', 'कहु' से उद्भूत हैं। इन रूपों के अतिरिक्त इस सर्वनाम के जो अन्य रूपान्तर प्रयोग मे आते हैं, उनकी व्युत्पत्ति भी इसी ढग से की जानी चाहिए। इन तथा ऐसे ही हकारान्त रूपो से अवधी—केऊ, गढ० कई और कन्नौ० कइ की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार के बहुत से हकारान्त रूप कर्त्ता (अविकारी) कारक मे प्रयुक्त होते हैं; यद्यपि ये सब निश्चित रूप से सम्बन्धकारक के रूप है। मुझे केवल एक स्थान पर रिवाई के रूपो मे 'कौन्हो' मिला है, मुझे इस बात का पूरा-पूरा सन्देह है कि यह लिपि-दोष है, लिखते समय असावधानी से 'कौनो' के स्थान पर लिखा गया है।

द्वितीय प्रश्नवाचक सर्वनाम के रूप

§३७५. बैसवाड़ी का 'काह' सं० 'कस्य' से उद्भूत है। यहाँ भी सम्बन्ध कारक का रूप कर्त्ताकारक (अविकारी) में प्रयुक्त हुआ है। नये रूपों के लिए इस रूप को आधार के रूप में स्वीकार किया गया है। लैस्सेन के विचार से यह दूसरा आधार प्राकृत मे बन चुका था।[1] सादृश्य के आधार पर हम इस निश्चय पर पहुँचते है कि इस सर्वनाम का दीर्घ रूप 'कहा' काहक=काहा+प्रा० प्रत्यय 'क' से उद्भूत है, जैसे हिन्दी मे 'कुछ' के लिए 'कच्छुक' का प्रयोग होता है। 'क' का लोप और उपान्त्य दीर्घ स्वर 'आ' का ह्रस्वीकरण, निकटस्थ स्वरों की सन्धि, इस प्रक्रिया से ब्रजभाषा के 'कहा' की उत्पत्ति हुई। लघु रूप 'का', निश्चित रूप

---

[1] लैस्सेन, इन्स्ट० लिंग० प्राक०, §१०६, ५।

से 'काह्' के अन्त्य 'ह्' के लोप से बना। नियमित रूप 'क्या' की उत्पत्ति 'किआ' से मानी जाती है, जिसके, लिए 'कि' से 'किहा' की कल्पना की गई है। यह स्पष्ट हो चुका है कि 'कहा' का उद्‌भव एक अन्य आधार रूप 'काहक' से हुआ है, 'कहा' के विकारी एकवचन के रूप 'काहे' के लिए सम्बन्धकारक के रूप से बनने वाला एक नया 'आधार रूप' प्रयुक्त हुआ है, आकारान्त तदभव संज्ञाओं के समान प्राकृत के सम्बन्ध कारक मे बनने वाले 'काहअ आह' की कल्पना की गई है, जिससे संज्ञाओ की भाँति 'काहाय' और 'काहाय' से 'काहे'।

§३७६. मारवाड़ी तथा मेवाडी मे प्रयुक्त 'कईं', 'काईं' आदि की उत्पत्ति प्राकृत के वर्द्धित नपुंसकलिंगी रूप 'ककिम' (=सं० किम्) से मानी जाती है। 'कईं', 'काईं' आदि का अन्त्य अनुस्वार संस्कृत के नपुंसक लिंग की विभक्ति 'म्' का प्रतिनिधित्व करता है। 'काँईं' के प्रथम अनुस्वार के सम्बन्ध मे मेरा विचार है कि वह व्यर्थ प्रयुक्त हुआ है। विकारी एकवचन का रूप 'खा' द्वितीय आधार रूप 'काह्' (=काहक) से सम्बन्धित है, 'काह' अन्य बोलियों में बहुत प्रचलित है। यहाँ महाप्राण ध्वनि का विपर्यय अन्त्य 'ए' के स्थान पर अन्त्य 'आ' प्राकृत के सम्बन्धकारक की विभक्ति 'अआह' का प्रतिनिधित्व करता है। इसी बोली की संज्ञाओं के विकारी एकवचन के सादृश्य से यह रूप बना।

द्वितीय अनिश्चयवाची सर्वनाम के रूप

§३७७ कुछ, कछु, और किछु तीनो की उत्पत्ति सं० 'कश्चित्' से हुई। 'कच्छुक' के सम्बन्ध मे पहले कहा जा चुका है। मारवाडो तथा मेवाडी के 'कनि' और 'काँईं' का सम्बन्ध 'अपि' युक्त संस्कृत के नपुसकलिगी रूप 'किमपि' के स्थान पर संभावित रूप 'कमपि' से जोडा जाता है। 'कम्' का 'म्' अनुस्वार बना, 'म्' लुप्त हो गया। अन्त्य अनुस्वार संभवतः प्रश्नवाचक रूप 'कईं' के भ्रम के कारण प्रयुक्त हुआ है। इन रूपों का सम्बन्ध स० शब्द 'किंचन' से भी जोड़ा जाता है।

सर्वनामवाची विशेषणों के रूप

§३७८ पाँच सर्वनामों से बनने वाले परिमाण सूचक सर्वनामवाची विशेषणों (सूची १४ और १५ मे इनका उल्लेख हुआ है।) की उत्पत्ति सं० इयत्-कियत् आदि से बताई जाती है। प्राकृत मे इयत्–कियत् आदि के लिए 'एत्तिआ' 'केत्तिआ' आदि का प्रयोग हुआ है। संस्कृत तथा प्राकृत के रूपों का अन्तर 'क' के कारण है, जो प्राकृत मे निरर्थक रूप से प्रयुक्त होता रहा है। इस समय भी कई बोलियों मे यह 'क' कई रूपों मे विद्यमान है, इन रूपो को सूची १५ मे देखा जा सकता है, जैसे—भोज० अतेक, जतेक; गढ़० एतका, ततका आदि। पु० बै० के 'एता', 'जेता' तथा स्त० हि० के 'इत्ता' 'जिता' सीधे प्राकृत के इन्हीं रूपो से उद्‌भूत है। रिवाई के विशेष रूप ज्यातिक, त्यत्तान आदि रिवाई तथा मारवाड़ी मे प्रयुक्त 'जिक', 'तिक' जैसे सर्वनामो से उद्‌भूत हैं। इन सार्वनामिको के साथ जुड़ने वाले नो (नु, ना, न अथवा न्) के सम्बन्ध में बीम्स का विचार है कि मूलतः यह न्यूनाधिक प्रत्यय है।[1] बीम्स का यह विचार उचित जान पड़ता है। इस बात की पुष्टि इस से भी होती है कि राजपूताना की बोलियो में सर्वनामवाची शब्दो के साथ 'रो' अथवा 'ड़ो' प्रत्यय जुड़ते है। 'रो' तथा 'ड़ो' संस्कृत के अल्पार्थक प्रत्यय 'र' का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार के प्रत्यय से संज्ञा द्वारा अभिव्यक्त 'गुण' मे कुछ कमी आ जाती है। अंग्रेजी में प्रयुक्त 'इश' (ish) प्रत्यय (जैसे—

---

[1] बीम्स, कम्प० ग्राम० खं० २, पृ० ११६, ३३२।

ब्लैकिश blak-ish) के साथ 'रो', 'डो' 'न' आदि की तुलना की जा सकती है। मारवाड़ी में जब कृदन्त रूपों को विशेषण की तरह प्रयुक्त करते है तो उनके साथ 'ड़ो' प्रत्यय जुड़ता है।

क. बोलियों मे प्रयुक्त जै, तै, कै (=क्रमशः जितना, तितना, कितना) संस्कृत के यति, तति, कति से उद्भूत है।

§३७९ सादृश्य को प्रकट करने के लिए सार्वनामिको के विविध रूप विद्यमान है, जैसे—जैसा, ज स, जैसन आदि का सम्बन्ध प्राकृत के 'जारिसो' आदि से है; प्राकृत के 'जारिसो' आदि का उद्भव सं० के यादृशः (यत्+दृशः) आदि से हुआ है। बोलियों मे प्रयुक्त होने वाले प्रत्यय नो, नु, ना, रो, ड़ो और परिमाण-वाचक सार्वनामिको के साथ जुडने वाले प्रत्ययो मे पूरी-पूरी समानता है। राजपूताना की बोलियो और गढ़वाली के इन रूपो में 'स' की अनुपस्थिति का कारण यह है कि इन बोलियो मे पहले 'स' 'ह' में परिवर्तित होता है और फिर यह 'ह' लुप्त हो जाता है।[1] गढवाली का 'एनो' (=स्त० हि० ऐसा) की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे अनुमान लगाया जाता है कि इसका पूर्व रूप 'एस्नो' रहा होगा। रिवाई में 'ऐसन' रूप प्रचलित है, इसी प्रकार मारवाड़ी के 'जैड़ो' का रूपान्तर 'जैसडो' भी मिलता है।

§३८०. निजवाचक सर्वनाम 'आप' सं० 'आत्मन' से उद्भूत है, यह 'आत्मन्' शब्द संस्कृत मे इसी अर्थ मे प्रयुक्त होता है। विकारी रूप 'अपना' तथा 'अपने' प्राकृत मे विशेषण की भाँति प्रयुक्त 'आत्मक' से उद्भूत है। इसके विकारी बहुवचन के रूप 'आपस' की व्युत्पत्ति अभी अनिर्णीत है। बीम्स ने इस बात की बहुत संभावना प्रकट की है कि यह प्राकृत के सम्बन्धकारक के रूप 'आपस्स' से व्युत्पन्न हुआ है, किन्तु कठिनाई यह है कि 'आपस्स' साहित्य मे सुरक्षित नही है।

§३८१. आदरसूचक 'आप' भी सं० 'आत्मन्' से उद्भूत है। बोलियो मे इस सर्वनाम के 'आपुन', 'आपु' रूप भी मिलते है। बोलियो मे प्रयुक्त होनेवाला आदरसूचक सर्वनाम 'राउर' अथवा 'रउरउ' 'राउ' संज्ञा के साथ 'रा' प्रत्यय के जुड़ने से बने हैं। संस्कृत का 'राजन्' शब्द समास मे 'राज' बनता है। राज > राउ, 'राज' का 'ज' लुप्त हो गया, अन्त्य 'अः' 'ओ' मे परिवर्तित हुआ, फिर 'राओ' से 'राउ'।[2]

---

[1] देखिए, §९८, §१२०।

[2] §८५, सी, ८९।

नवाँ अध्याय

क्रिया

§३८२. हिन्दी के क्रियापद बहुत सरल हैं। स्तरीय हिन्दी तथा क्षेत्रीय बोलियो की समस्त क्रियाओं के विभिन्न कालों के रूप समान ढंग से चलते है।

जिन क्रियाओं के रूप आदरार्थक विधि तथा कृदन्त रूपो से रचे जाने वाले कालों मे अनियमित ढंग से चलते है, उनकी सख्या केवल सात है। ये सातों क्रियाएँ भी उसी समय अनियमित रूप बताती हैं, जब उनमे से किसी का प्रयोग अन्य धातु की सहायता के लिए किया जाता है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो इन क्रियाओ के रूपो मे और अन्य क्रियाओ के कालवाची रूपो मे बहुत अन्तर भी नही है। इसी लिए इन अनियमित क्रियाओं को प्रयोग करते समय अधिक कठिनाई नही उठानी पड़ती। इन अनियमित रूपवाली क्रियाओ का प्रयोग जब स्वतत्र रूप से होता है तो धातु के साथ नियमित प्रत्यय जुड़ते हैं। फिर सभी बोलियो मे सहायक क्रिया के रूप में प्रयुक्त होने पर इन सातो क्रियाओ के रूप एक जैसी अनियमितता प्रदर्शित करते हैं।

§३८३ हिन्दी की क्रिया वाच्य, अर्थ, काल, लिंग और पुरुष के कारण विकार ग्रहण करती है। वाच्य दो है—(१) कर्तृवाच्य और (२) कर्मवाच्य। यदि ठीक ढग से देखा जाये तो अर्थ केवल चार है, (१) सकेतार्थ, (२) सन्देहार्थ, (३) आज्ञार्थ, (४) क्रियार्थ। क्रियार्थ क्रिया के भाव और काल आदि के बन्धन से रहित क्रिया के तात्पर्य को व्यक्त करता है, इसलिए यथार्थ मे वह क्रियावाचक शब्द अथवा क्रियार्थक संज्ञा है। कृदन्त तीन प्रकार के है—(१) अपूर्णता द्योतक, (२) पूर्णता द्योतक, (३) यौगिक[1]। प्रत्येक क्रिया से कर्तृसूचक संज्ञा भी रची जाती है।

उल्लेखनीय—अपूर्णताद्योतक तथा पूर्णता द्योतक कृदन्त कही-कही विशेषणात्मक कृदन्त कहलाते हैं। यौगिक कृदन्त भारतीय भाषाओ की विशेषताओ मे से एक है। इन यौगिक कृदन्तो के सम्बन्ध मे यथास्थान लिखा जाएगा।

---

[1] इस नामकरण का औचित्य तथा इस प्रकार के नामकरण की आवश्यकता उस समय तक नहीं बताई जा सकती, जब तक हम इन कृदन्तों के प्रयोगों का परीक्षण न करें। हम इस स्थल पर केवल इस धारणा को प्रकट कर सकते है कि 'वर्तमान' और 'भूत' जैसे पारिभाषिक शब्द इन्हीं कृदन्तों पर लागू होते हैं, किन्तु इनके बारे में 'वर्तमान' अथवा 'भूत' जैसे शब्दों का प्रयोग दार्शनिक दृष्टि से उचित नहीं है। ये कृदन्त अपने कालिक रूपों से 'प्रगति' के विभिन्न स्तरों को प्रकट करते है। यह आवश्यक नहीं कि उन रूपों से काल अथवा समय के विभिन्न क्षण भी प्रकट हों। मैंने जब वह बात लिख ली थी, मेरी दृष्टि से प्लेट्स की उत्कृष्ट कृति 'हिन्दुस्तानी ग्रामर' गुजरी। प्लेट्स ने भी इन [illegible]क कृदन्तों के लिए 'पूर्णता द्योतक' और अपूर्णता द्योतक शब्दों का प्रयोग किया है। प्लेट्स ने इन कृदन्तों के लिए काल सूचक 'वर्तमान', 'भूत' आदि शब्दों का प्रयोग नहीं किया है।

§३८४. विधि की गणना भविष्यकाल के भेदो में की जाती है। स्तरीय हिन्दी में पन्द्रह काल हैं।[1] तीन कालो की रचना धातु मे किये गये कुछ विकारो के कारण होती है। दो कालो को छोड़कर शेष की रचना कृदन्त और सहायक क्रिया के योग से होती है।

§३८५. वचन का बोध सभी कालों मे विकार से प्रकट किया जाता है। संभाव्य भविष्य और विधि के अतिरिक्त सभी कालों में लिंग भेद है। संज्ञा और विशेषण की भाँति क्रियापदो मे भी अन्त्य 'आ' पुल्लिग के एकवचन का, अन्त्य 'ए' पुल्लिग के बहुवचन का, अन्त्य 'ई' स्त्रीलिंग के एकवचन का, अन्त्य 'ईं' स्त्रीलिंग के बहुवचन का परिचय देती हैं। स्त्रीलिंग के बहुवचन मे कही-कही अन्त्य 'इयाँ' का प्रयोग भी होता है। सभाव्य भविष्य, सामान्य भविष्य और विधि, भविष्यकाल के इन तीनो भेदो में पुरुष का ज्ञान क्रियापद मे किये गये विकारो से होता है। अनिश्चयता द्योतक काल तथा पूर्णता और अपूर्णता द्योतक दोनो प्रकार के भूत और सभाव्य भूत मे पुरुष का भेद व्यक्त नही किया जाता। शेष कालो मे पुरुष का बोध सहायक क्रिया से होता है।

उल्लेखनीय—पुरुष सूचक प्रत्यय की दृष्टि से देखा जाये तो हिन्दी के किसी काल के रूप पूर्ण नही है। केवल विधि सम्बन्धी रूप इस कथन के अपवाद है, जहाँ द्वितीय पुरुष के एकवचन मे स्वतत्र रूप प्रयुक्त होता है और एक ही प्रकार का विकार द्वितीय पुरुष के एकवचन तथा तृतीय पुरुष के एकवचन का बोध कराता है। प्रथम पुरुष तथा तृतीय पुरुष के बहुवचन के विकार मे भी अन्तर नही पाया जाता।

विशेष—यह बात केवल स्तरीय हिन्दी पर लागू होती है। बोलियो के रूपो के सम्बन्ध मे विस्तृत विवरण आगे चल कर दिया जाएगा।

क्रियार्थ रूप की रचना

§३८६ क्रियार्थ अथवा क्रियार्थक संज्ञा के लिए स्तरीय हिन्दी मे सभी धातुओ के साथ 'ना' जोड़ते हैं। शब्दकोशो में क्रिया-रूपों को इसी 'ना' के साथ देखा जा सकता है; जैसे—बोलना, जाना आदि।

क. क्रियार्थ अथवा क्रिया का सामान्य रूप वास्तव मे क्रियावाचक शब्द अथवा क्रियार्थक संज्ञा है। क्रियार्थ अथवा क्रियार्थक संज्ञा से क्रिया का भाव अथवा क्रिया के व्यापार का बोध होता है। क्रियार्थक सज्ञा विकारी एकवचन मे सर्वत्र एकारान्त रहती है। इसके रूप पुल्लिगवाची आकारान्त तद्भव सज्ञाओ की भाँति चलते है। बहुवचन मे रूप नही चलते। 'लडना' के रूप इस प्रकार होगे, सम्बन्धकारक—लड़ने का, अधिकरण—लड़ने मे, आदि।

ख. स्तरीय हिन्दी तथा उसकी बोलियों मे प्रयुक्त क्रियार्थक संज्ञा के 'ना' युक्त रूप के अतिरिक्त द्वितीय क्रियार्थक सज्ञा भी प्रचलित है। द्वितीय क्रियार्थक संज्ञा की रचना के लिए धातु के अन्त मे 'आ' जोड़ा जाता है, जैसे—'मरना' से द्वितीय क्रियार्थक संज्ञा 'मरा' की रचना हुई है। यदि धातु आकारान्त हो तो उसके मूल रूप के साथ 'य' के आगम के पश्चात् दीर्घ 'आ' जोडा जाता है; जैसे—'जाना' का द्वितीय क्रियार्थक संज्ञा रूप होगा 'जाया'। अनुक्रमसूचक और आकांक्षासूचक संयुक्त क्रियाओं मे ही द्वितीय

---

[1] कुछ बोलियों में कालों की संख्या १५ नहीं है। हिन्दी की कुछ पुरानी बोलियों में विकारी कालों की संख्या अधिक है। इन कालों के रूप बोलियों से सम्बन्धित अध्याय में देखे जा सकते हैं।

क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग होता है। इस प्रकार के प्रयोगों मे द्वितीय क्रियार्थक संज्ञा पूर्णता द्योतक कृदन्त का भ्रम उत्पन्न करती है।

धातु

§३८७. यदि क्रिया के सामान्य रूप अथवा क्रियार्थक संज्ञा मे 'ना' हटा दिया जाये तो धातु शेष रह जाती है। जिन सात क्रियाओ के रूप अनियमित ढंग से बनते है, उनका उल्लेख आगे किया जा रहा है। इन सातों को छोड़ कर शेष सभी क्रियाओ के रूप नियमित और समान रूप से चलते है। धातु की जानकारी इस प्रकार की जा सकती है—'चलना' से 'चल', 'गिरना' से 'गिर', 'कहना' से 'कह' आदि।

विशेष—'धातु' को जानने का एक उपाय यह भी है कि धातु विधि के द्वितीय पुरुष के एकवचन से पूरा-पूरा साम्य रखती है।

स्मरणीय--क्रिया के मूल रूप अथवा धातुओं को दो भागो में बाँटा जा सकता है—(१) संवृत धातुएँ, (२) विवृत धातुएँ। व्यजनान्त[1] धातु संवृत धातु कहलाती है और स्वरान्त धातु—'विवृत'। विवृत धातु वाली क्रिया को प्राय. असयुक्त क्रिया और संवृत धातुवाली क्रिया को मिश्र क्रिया कहते है। 'जाना', 'बुलाना' और 'सोना' क्रिया की धातुएँ—'जा', 'बुला' और 'सो' विवृत अथवा असंयुक्त धातुएँ हैं; किन्तु 'चलना', 'मारना' और 'पकडना' की धातुएँ 'चल', 'मार' और 'पड' मिश्र धातुएँ है।

अपूर्णता द्योतक और पूर्णता द्योतक कृदन्तों की रचना

§३८८. स्तरीय हिन्दी के अपूर्णता द्योतक तथा पूर्णता द्योतक कृदन्तो की रचना धातु से इस प्रकार होती है—

(१) धातु के साथ 'ता' के योग से अपूर्ण कृदन्त की रचना होती है।

(२) धातु के साथ 'आ' जोड़ने से पूर्णता द्योतक कृदन्त की रचना होती है।

इन दोनों नियमों को निम्नलिखित उदाहरणों से समझाया जा सकता है—

क्रिया का सामान्य रूप	धातु	अपूर्ण कृदन्त	पूर्ण कृदन्त
बोलना	बोल	बोलता	बोला
डरना	डर	डरता	डरा
मिलना	मिल	मिलता	मिला
मारना	मार	मारता	मारा

§३८९. ध्यान दीजिए, पूर्णताद्योतक कृदन्त के अन्त्य, आ से पहले—

(१) समस्त आकारान्त, ईकारान्त और ओकारान्त धातुओं मे 'य' का आगम होता है।

(२) अन्त्य 'ई' ह्रस्व 'इ' में परिवर्तित होती है। उदाहरण निम्न प्रकार है—

---

[1] लेखक ने उन धातुओं को व्यंजनान्त माना है, जिनका अन्त्य 'अ' संज्ञा के अन्त्य 'अ' के समान अनुच्चारित रहता है।—अनुवादक

सामान्य रूप	धातु	अपू० कृदन्त	पू० कृदन्त
लाना	ला	लाता	लाया
पीना	पी	पीता	पिया
बोना	बो	बोता	बोया

कृदन्त सम्बन्धी विकार

§३९०. जिन कृदन्त रूपों के अन्त मे 'ता' और 'आ' आते है, उनके अन्त्य 'आ' को आकारान्त तद्भव विशेषणो के अन्त्य 'आ' की भाँति (दे० §१९९) पुल्लिग में 'ए' और स्त्रीलिंग में 'ई' बनाते हैं। स्त्रीलिंग के बहुवचन मे कही-कही अन्त्य 'ईं' और बहुत कम स्थलों पर अन्त्य 'इया' का प्रयोग भी मिलता है।

क. जिन पूर्णता द्योतक कृदन्तो मे अन्त्य 'आ' से पहले 'य' का आगम होता है, उनके बहुवचन मे 'ए' से पूर्व इस प्रकार का 'य' विकल्प से लुप्त होता है। विकारी रूप मे अन्त्य 'ई' से पहले कही-कही 'य' का आगम होता है। यदि पूर्णता द्योतक कृदन्त की धातु के साथ स्त्रीलिंगवाची 'प्रत्यय' 'इ' अथवा 'ई' जोड़ा गया है तो यह 'ई' §४८. के अनुसार मूल स्वर के साथ मिल जाती है। जैसे— पीना से पूर्णता द्योतक कृदन्त का पुल्लिग रूप-'पिया', और पूर्णता द्योतक कृदन्त के स्त्रीलिंगी रूप 'पिई' के स्थान पर 'पी'। इस प्रकार के विकारी कृदन्तों के रूप निम्न प्रकार है—

सामान्य रूप	कृ० अवि० पु०	कृ० विका० पु०	कृ०स्त्री०ए०व०	कृ०स्त्री०ब०व०
डालना	डालता	डालते	डालती	डालती
सोना	सोया	'सोए' अथवा सोये	सोई	सोईं
देना	दिया	दिये	दी	दी
करना	किया	किये	की	की

ख. ध्यान दीजिये, अधिक वर्णोंवाली जिन धातुओ के प्रथम वर्ण में ह्रस्व स्वर रहता है और दूसरे वर्ण के साथ ह्रस्व 'अ' होता है, उन धातुओं के साथ जब स्वर से प्रारंभ होने वाला कोई प्रत्यय जुड़ता है तो धातु का ह्रस्व 'अ' लुप्त हो जाता है। अपवादस्वरूप कही-कही 'अ' का लोप नही होता।

निकलना से बननेवाला पूर्णता द्योतक कृदन्त रूप 'निकला' का उच्चारण 'निक्ला' होता है। इसी प्रकार के संभाव्य भविष्य के तृतीय पुरुष के एकवचन में 'समझे' तथा द्वितीय पुरुष के बहुवचन मे 'समझो' का उच्चारण क्रमशः 'सम्झे' और 'सम्झो' होता है। किन्तु कविता पढ़ते समय द्वितीय वर्ण का 'अ' उच्चारित किया जाता है।[1]

सात अनियमित क्रियाएँ

§३९१. सभी धातुओ के रूप नियमित ढंग से चलते हैं, किन्तु निम्नलिखित सात प्रचलित धातुओं के रूप कुछ अलग ढंग से बनते हैं—

---

[1] देखिए, §१४, ग० (४)।

सामान्य रूप	पूर्णता द्योतक कृदन्त	धातु
होना	हुआ	हू
मरना	मुआ	मू
करना	किया	की
देना	दिया	दी
लेना	लिया	ली
जाना	गया	ग
ठानना	ठ्या	ठ

क. इनमें से करना और मरना का पूर्णता द्योतक कृदन्त रूप क्रियार्थक संज्ञा की धातु से भी बनता है; जैसे—'करा', 'मरा'। 'शकुन्तला' मे एक स्त्री के मुँह से 'करा' कहलाया गया है, किन्तु 'करा' और 'मरा' ये दोनों रूप स्तरीय हिन्दी के नहीं है। ये दोनो कन्नौजी तथा अन्य क्षेत्रीय बोलियो में प्रयुक्त होते हैं।

ख. हिन्दी पुस्तकों के अन्त मे संस्कृत मे प्रयुक्त होने वाला भूतकालिक कृदन्त 'समाप्तम्' प्रयुक्त होता है। ऐसे स्थलों पर 'समाप्तम्' लेटिन के 'फिनिस' (finis) का पर्यायवाची है।

कृदन्तों का वैशेषणिक प्रयोग

§३९२. जब वैशेषणिक ढंग से किसी पूर्णता द्योतक अथवा अपूर्णता द्योतक कृदन्त का प्रयोग किया जाता है तो √'होना' का पूर्णता द्योतक कृदन्त 'हुआ', आवश्यकतानुसार विशेष्य के स्थान पर आने वाले कृदन्त और संज्ञा के अनुसार विकार ग्रहण करता है। ऐसे स्थलों पर 'हुआ' अतिरिक्त शब्द के रूप मे प्रयुक्त होता है। अंग्रेजी में उसका अनुवाद नही किया जा सकता। उदाहरण—बोया हुआ गेहूँ; दौड़ते हुए घोड़े; गाती हुई लड़की।

यौगिक कृदन्त

§३९३. यौगिक कृदन्तों की रचना या तो केवल धातु से होती है या धातु के साथ 'कर' अथवा 'के' के योग से। उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

सामान्य रूप	धातु	यौगिक कृदन्त
करना	कर	कर, करके, कर कर
हँसना	हँस	हँस, हँसके, हँसकर
जाना	जा	जा, जाके, जाकर
सीना	सी	सी, सीके, सीकर

क. कहीं-कहीं 'कर' के पश्चात् 'कर' अथवा 'के' का प्रयोग किया जाता है; जैसे—चलकर के; चल कर कर; गाकर के, गा कर कर। इस प्रकार के प्रयोग क्षेत्रीय माने जाते हैं। साहित्यिक हिन्दी में इन्हें परिष्कृत नहीं माना जाता।

कर्त्तृवाचक संज्ञा

§३९४. क्रिया के सामान्य रूप अथवा क्रियार्थ संज्ञा के विकारी रूप के अन्त में 'वाला' अथवा 'हारा' के जोड़ने से कर्तृवाचक संज्ञा बनती है। उदाहरण इस प्रकार हैं—

सामान्य रूप	कर्तृवाचक संज्ञा
गाना	'गानेवाला', अथवा 'गानेहारा'
दौड़ना	'दौड़नेवाला' अथवा 'दौड़नेहारा'
बोना	'बोनेवाला' अथवा 'बोनेहारा'

क. 'वाला' तथा 'हारा' से बनने वाली कर्तृवाचक संज्ञाओ में से 'वाला' का रूप सर्वत्र प्रचलित है। 'हारा' पछाँह की अपेक्षा पूरब मे अधिक प्रयुक्त होता है। दोनों प्रकार की कर्तृवाचक संज्ञा के रूप पुल्लिग मे 'घोड़ा' की भाँति और स्त्रीलिंग में 'पोथी' की भाँति चलते है। पूरब की बोलियों में विशेष रूप से 'हारा' वाली संज्ञाओं का अन्त्य 'आ' ह्रस्व रहता है।

कालों का वर्गीकरण

§३९५. स्तरीय हिन्दी के १५ कालों को तीन समूहों में बाँटा जा सकता है। पहले समूह में वे काल आते हैं जो सीधे धातु से कुछ विकारों के कारण बनते है। दूसरे समूह मे वे काल आते है जिनकी रचना अपूर्णता द्योतक कृदन्तो के साथ सहायक क्रियाओं के योग से होती है। तीसरे समूह के कालों की रचना पूर्णता द्योतक कृदन्तो के साथ सहायक क्रियाओं के योग से की जाती है। इस ढग से तीन समूहों मे विभक्त कालों को यहाँ एक स्थान पर दिया जा रहा है—

प्रथम समूह

धातु से रचे जानेवाले काल

(१) सभाव्य भविष्य, (२) सामान्य भविष्य,. (३) विधि (भविष्य)।

द्वितीय समूह

अपूर्णता द्योतक कृदन्तों से रचे जाने वाले काल—

(१) अपूर्ण अनिश्चित
(२) अपूर्ण वर्तमान
(३) अपूर्ण भूत
(४) अपूर्ण संभाव्य
(५) अपूर्ण सन्दिग्ध
(६) अपूर्ण सामान्य भूत

तृतीय समूह

पूर्णता द्योतक कृदन्तो से बनने वाले काल

(१) पूर्ण अनिश्चित
(२) पूर्ण वर्तमान
(३) पूर्ण भूत
(४) पूर्ण संभाव्य
(५) पूर्ण सन्दिग्ध
(६) पूर्ण सभाव्य भूत

§३९६ ऊपर कालो को जिस ढग से तीन समूहो मे विभाजित किया गया है तथा जिस ढंग से प्रत्येक काल का नाम रखा गया है, वह हिन्दी तथा हिन्दुस्तानी की पुरानी व्याकरणों से भिन्न है। नामकरण तथा विभाजन को पूर्णतया वैज्ञानिक बनाने के लिए मैंने ऐसा किया है। विभिन्न कालों के पारस्परिक सम्बन्ध तथा प्रत्येक काल की विशेषता से परिचित होने के लिए इस प्रकार के वर्गीकरण से सहायता मिलेगी। ऊपर कालों को जिस ढग से विभक्त किया गया है, उससे दो बातें प्रकट होती है (१) क्रिया के भिन्न-भिन्न अगो से इन कालो की रचना की जाती है, (२) प्रत्येक काल दूसरे काल से मौलिक भेद रखता है। प्रत्येक काल की अपनी विशेषता है। प्रत्येक व्यापार अथवा स्थिति अपनी प्रगति के अनुसार तीन विभिन्न दशाओं से सम्बन्धित रहती है, चाहे यह व्यापार अथवा अस्तित्व वास्तविक हो चाहे संभावित, यथा (१) अभी प्रारम्भ नही हुआ, (२) प्रारम्भ तो हुआ किन्तु उसकी समाप्ति नही हुई, (३) पूरा हो गया। मेरा यह विश्वास है कि किसी घटना अथवा किसी वस्तु के अस्तित्व के सम्बन्ध मे तीनों दशाएँ सभी कालों में व्याप्त है। प्रथम वर्ग के काल ऐसे व्यापार को प्रकट करते हैं, जो अभी प्रारंभ नही हुआ है, इसीलिए इस समूह के कालो की गणना भविष्य काल मे होती है। सामान्य भविष्य काल यथार्थतः भविष्य मे घटित होने वाले व्यापार अथवा अस्तित्व को सूचित करता है। सभाव्य भविष्य तथा विधि भविष्य मे किसी व्यापार अथवा अस्तित्व के घटित होने की सभावना प्रकट करते है। इन दोनो में भी संभाव्य भविष्यकाल आने वाले समय मे क्रिया के घटित होने की सभावना प्रकट करता है, चाहे उस क्रिया के घटित होने की इच्छा की गई हो, चाहे न की गई हो। विधि के रूप किसी क्रिया के भविष्य मे घटित होने की इच्छा व्यक्त करते है।

द्वितीय समूह के रूप क्रिया की ऐसी विभिन्न स्थितियो को व्यक्त करते है, जो अभी पूर्ण नही हैं, अर्थात् क्रिया रुकी नही है, चालू है। तीसरे समूह के काल क्रिया के पूरे होने अथवा व्यापार की समाप्ति को सूचित करते है।

उल्लेखनीय—प्रथम समूह के काल सीधे धातु से बनते हैं, इसीलिए इन्हें मौलिक काल कहा जा सकता है। द्वितीय तथा तृतीय समूह के काल एकाधिक शब्दों अथवा कृत् प्रत्ययो की सहायता से रचे जाते है।

भविष्य काल

§३९७ भविष्य से सम्बन्धित प्रथम समूह के तीनों काल धातु के साथ प्रत्यय के योग से बनते है; जैसे—

(१) धातु के साथ निम्नलिखित प्रत्ययों के योग से संभाव्य भविष्य काल की रचना होती है।

संभाव्य भविष्यकाल के प्रत्यय

एकवचन	प्र० पु० ऊँ	द्वि० पु० ए	तृ० पु० ए
बहुवचन	प्र० पु० एं	द्वि० पु० ओ	तृ० पु० एँ

उदाहरण—√कह से 'कहूँ' (मैं कहूँ); √लिख से 'लिखें' (हम लिखें)।

(२) विधि काल के प्रत्यय सभाव्य भविष्य के समान हैं; केवल द्वितीय पुरुष के एकवचन का रूप भिन्न है, इस मे धातु के साथ कोई प्रत्यय नही जुड़ता; जैसे कहना से 'कह'; आदि।

क. आदरार्थक अथवा प्रार्थना के लिए विधि काल में द्वितीय तथा तृतीय पुरुष के बहुवचन मे धातु के साथ सभाव्य भविष्य से भिन्न प्रत्यय जोड़े जाते है, जो इस प्रकार है—द्वितीय पुरुष के एकवचन में—'इयो'; तृतीय पुरुष के एकवचन मे 'इये' अथवा कही-कही 'इयेगा'। द्वितीय पुरुष के बहुवचन मे सामान्यत. 'इयो' जोड़ा जाता है, आदरवाची 'आप' अथवा उसके पर्यायवाची शब्दो के साथ जब आदरार्थक अथवा प्रार्थनावाची विधिकाल का रूप प्रयुक्त होता है तो 'इये' अथवा 'इयेगा' प्रत्यय जोड़ा जाता है, जैसे—तुम चलियो; आप लिखिये, आप लिखियेगा।

ख ईकारान्त अथवा एकारान्त धातुओं मे उपर्युक्त प्रत्ययो के पहले 'ज' का आगम होता है, इस प्रकार के रूपो में 'ए' 'ई' बनता है, जैसे—√'लेना' से आदरार्थक विधि मे लीजियो अथवा लीजिये; √'देना' से आदरार्थक विधि मे 'दीजियो' अथवा 'दीजिये'; √सीना से आदरार्थक विधि मे सीजियो, अथवा सीजिये, √पीना से 'पीजियो', पीजिये अथवा पीजिएगा आदि।

ग ऊपर जिन क्रियाओ के रूप दिए गए है उनके साथ §३९१ की सूची मे दी गई क्रियाओ मे तीन-का उल्लेख करना चाहता हूँ। इन तीनों क्रियाओ के आदरार्थक विधि के रूप अनियमित ढंग से चलते है; पूर्णता द्योतक कृदन्त की धातु के साथ प्रत्यय जोड़ कर इनके अनियमित रूप बनते है। ये तीनों क्रियाएँ हैं—करना, मरना और होना। इन तीनों के आदरार्थक विधि रूप है—कीजियो, कीजिये; मूजियो, मूजिये; हूजिये, हूजियो। किन्तु √करना और √मरना के 'करिये' तथा 'मरिये' रूप बोलियो मे बहुत प्रचलित हैं। स्तरीय हिन्दी मे भी कही-कही इन रूपों का प्रयोग होता है।

घ. ध्यान दीजिये, आदरार्थक रूपो मे 'ज' के पश्चात् 'इयो' और 'इये' का प्रायः संकुचन होता है। 'इयो' परिवर्तित होता है 'ओ' में और 'इये' परिवर्तित होता है 'ए' मे। ऊपर जो रूप दिये गये हैं, उनके अतिरिक्त निम्न रूप भी प्रयुक्त होते हैं—दीजे, कीजो, पीजे आदि।

उल्लेख्य—पहले लिखा जा चुका है कि ब्रज, कन्नौजी तथा कुछ अन्य क्षेत्रीय बोलियो मे √करना तथा √मरना के आदरार्थक विधि रूप अन्य क्रियाओ की भाँति सीधे धातु से बनाते है। इन रूपों मे अनियमितता नही पाई जाती। स्तरीय हिन्दी मे लिखी गई 'शकुन्तला' मे इन रूपो का प्रयोग हुआ है; जैसे' मातलि दुष्यन्त से कहता है—"आप छाया में विश्राम करिए"। मेरे विचार से स्तरीय हिन्दी मे 'करिये' तथा 'मरिये' का प्रयोग उचित नही है।

घ. समासित शब्दों में कहीं-कहीं स० √अस् के विधि के तृतीय पुरुष के एकवचन के रूप 'अस्तु' का प्रयोग मिलता है; जैसे—'तथास्तु' (तथा+अस्तु)।

(३) संभाव्य भविष्य के तीनो पुरुषों के एकवचक में पुल्लिगवाची रूप बनाने के लिए 'गा' तथा स्त्रीलिंगवाची रूप बनाने के लिए 'गी' का प्रयोग होता है। तीनों पुरुषों के पुल्लिगवाची बहुवचन के रूपों मे 'गे' तथा स्त्रीलिंगवाची बहुवचन मे 'गी' जोड़ते है। धातु के साथ जुड़ने वाले प्रत्यय इस प्रकार हैं—

सामान्य भविष्य काल के प्रत्यय

वचन	पुरुष	पु०	स्त्री	पुरुष	पु०	स्त्री	पुरुष	पु०	स्त्री
एकवचन	प्रथम	ऊँगा	ऊँगी	द्वितीय	एगा	एगी	तृतीय	एगा	एगी
बहुवचन	प्रथम	एगे	एगी	द्वितीय	ओगे	ओगी	तृतीय	एगे	एगी

§३९८. तीनों भविष्य कालों मे विवृत धातुओं (दे० §३८७) के साथ द्वितीय तथा तृतीय पुरुष के एक वचन और प्रथम तथा तृतीय पुरुष के बहुवचन मे 'ए' के स्थान पर प्राय 'य' आता है । इस प्रकार के रूपों मे बहुवचन सूचक अनुस्वार प्रत्यय के आरमिक वर्ण 'ए' के साथ न जुड़ कर धातु के अन्त्य स्वर के साथ जुड़ता है; उदाहरण—भविष्यकाल के द्वितीय तथा तृतीय पुरुष के एकवचन मे 'होए' अथवा 'होय', 'होएगा' अथवा 'होयगा' । प्रथम तथा तृतीय पुरुष के बहुवचन में 'होएगे' अथवा 'होय', 'होएगे' अथवा 'होयगे' ।

§३९९. आकारान्त, ईकारान्त, एकारान्त और ओकारान्त धातुओं के भविष्यकालिक रूपों मे 'ए' तथा 'एँ' से पूर्व 'व' का आगम विकल्प से होता है, जैसे—बताए, पीए, होए के स्थान पर बतावे, पीवे, होवे भी ।

क. पढे-लिखे लोग एकारान्त धातुओं के भविष्यकालिक रूपों मे प्रत्ययो के पूर्व के स्वर का प्राय उच्चारण नही करते, जैसे—√देना के समाव्य भविष्य के प्रथम पुरुष के एकवचन मे 'देऊँ' के स्थान पर 'दूं'; तृतीय पुरुष के एकवचन मे 'देवे' के स्थान पर 'दे'; मध्यम पुरुष के बहुवचन मे 'देवो' के स्थान पर 'दो'। इसी प्रकार √लेना के सामान्य भविष्य के प्रथम पुरुष एकवचन मे 'लूगा', प्रथम पुरुष के बहुवचन मे 'लेंगे' आदि ।

स्मरणीय—समाव्य भविष्य से सामान्य भविष्य के रूप बनाने के लिए 'गा' (सं० गत)[1] और उसके विकारी रूप जोड़े जाते हैं। यह 'गा' वाला रूप परवर्ती विकास का सूचक है। तथ्यो के आधार पर यह बात कही जा सकती है कि आज भी 'गा' क्रिया के मुख्य भाग का अभिन्न अश नही बन सका। अवधारणार्थक अव्यय के साथ यह 'गा' क्रिया के मुख्य अंश से दूर प्रयुक्त होता है। 'शकुन्तला' के निम्नलिखित उद्धरण ध्यान देने योग्य हैं—**करूँ ही गा; माने ही गो**। एक ऐसा उदाहरण भी मिला है, जहाँ दो क्रियाएँ भविष्य काल मे साथ-साथ प्रयुक्त हुई है और यह 'गा' केवल अन्तिम क्रिया के साथ संलग्न है; जैसे—'जो यह मोर चले फिरेगा और उड़ेगा'। इस उद्धरण के सम्बन्ध मे उल्लेखनीय बात यह है कि चलना तथा फिरना क्रिया का एक साथ प्रयोग द्वित्व की प्रवृत्ति सूचित करता है।[2]

अस्तित्व सूचक क्रिया के काल

§४००. क्रिया के अन्य कालों की रचना के सम्बन्ध में लिखने से पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि पहले सहायक क्रिया के रूप मे प्रयुक्त होने वाली 'होना' क्रिया के रूपों पर विचार किया जाये। अन्य

---

[1] मोनेर विलियम्स, संस्कृत ग्रामर, §८९६, ए०।

[2] देखिएँ, 'संयुक्त क्रिया' नामक अध्याय।

क्रियाओं के नियमित तथा प्रचलित कालो के अतिरिक्त √होना के दो काल और है, विशेषप्रकार का वर्तमान काल तथा अनिश्चित भूत, इन दोनो कालों के रूप नियमित नही है।[1] क्रम की दृष्टि से पहले इन दोनो कालों पर विचार होना चाहिए। इन कालो के रूप केवल अस्तित्व की सूचना देते है और इस तरह अंग्रेजी 'ऐम' (am) और वाज (was) के समानार्थी है। स्तरीय हिन्दी मे इन दोनो कालो मे √होना के रूप इस प्रकार हैं—

वर्त्तमान

एकवचन	बहुवचन
मैं हूँ	हम है
तू है	तुम हो
वह है	वे है

भूत

एकवचन	बहुवचन
मैं था	हम थे
तू था	तुम थे
वह था	वे थे
स्त्रीलिंग—मैं थी, आदि	स्त्री० हम थी, आदि

§४०१ √होना के तीनो मौलिक कालो के रूप इस प्रकार है—

संभाव्य भविष्य

एकवचन	बहुवचन
मैं होऊँ, मैं हों[2]	हम होएँ, हम होवें, हम होंय, हम हो[2]
तू होए, तू होवे, तू होय, तू हो	तुम होओ, तुम हो
वह होए, वह होवे, वह होय, वह हो	वे होएँ, वे होवें, वे होंय, वे हो

---

[1] सुविधा के लिए इन विशेष कालों का उल्लेख यहाँ किया गया है, वास्तव में इन दोनों विशेष कालों का सम्बन्ध 'होना' क्रिया से नहीं है। होना का उद्भव सं० भू से हुआ है, किन्तु 'होना' के वर्त्तमान काल के रूप सं० अस् तथा भूतकाल के रूप सं० स्था से उद्भूत है।

[2] स्तरीय हिन्दी में 'हों' प्रयोग नहीं मिलता—अनुवादक।

सामान्य भविष्य

मैं होऊँगा, मैं हूँगा	हम होएंगे, हम होवेंगे, हम होंयगे, हम होंगे
तू होएगा, तू होवैगा, तू होयगा, तू होगा	तुम होओगे, तुम होगे
वह होएगा, वह होवेगा, वह होयगा, वह होगा	वे होएंगे, वे होवेंगे, वे होंयगे, वे होगे
स्त्रीलिग—मै होऊँगी, तू होएगी, वह होएगी	स्त्रीलिग–हम होएंगी, तुम होगी,[1] वे होंगी

विधि

द्वितीय पुरुष, एकवचन–तू हो	शेष रूप संभाव्य भविष्य के रूपो के समान

आदरार्थक विधि

हूजिये अथवा हूजो, हूजिये अथवा हूजे, हूजियेगा

कृदन्त रूपों से बनने वाले काल

§४०२. अब द्वितीय तथा तृतीय समूहो मे उल्लिखित कालो की रचना के सम्बन्ध मे जानकारी दी जाती है। पहले लिखा जा चुका है कि इन कालों की रचना क्रिया के कृदन्त रूपो से की जाती है। प्रत्येक समूह में छह काल है, यदि दोनों समूहो मे क्रमश. एक-एक काल के रूपो को एक साथ रखा जाये तो उनके रूपो मे बहुत साम्य दिखाई देगा। इस प्रकार की जोडी की व्याख्या करने मे बहुत सुविधा होगी। √आना को नमूने के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है।

§४०३. 'अपूर्ण अनिश्चित काल' से किसी विशेष काल का ज्ञान न होकर केवल इतना पता चलता है कि क्रिया समाप्त नही हुई है। 'अपूर्ण अनिश्चित काल' से भूत, वर्तमान और भविष्य मे से किसी एक काल का विधान किया जा सकता है। 'पूर्ण अनिश्चित काल' से यह तो ज्ञात होता है कि क्रिया पूर्ण हो चुकी है, किन्तु किसी विशेष काल का बोध नही होता। इन दोनो कालो की रचना बिना किसी सहायक क्रिया के कृदन्त रूप से होती है, जैसे—मै आता, मैं आया।

क अग्रेजी की क्रियायो मे अपूर्ण अनिश्चित से मिलता हुआ कोई काल नही है। अंग्रेजी में इसका अनुवाद सामान्यतया सभाव्य भविष्य की तरह किया जाता है; जैसे—'जो तुम सच बोलते' (अ० वर यू स्पीकिंग दि ट्रूथ ।[2]

§४०४. दूसरी जोड़ी 'अपूर्ण वर्तमान काल' और 'पूर्ण वर्तमान काल' की है। इन दोनो कालों का सम्बन्ध वर्तमान मे घटित होने वाली क्रिया से है। 'अपूर्ण वर्तमान काल' यह सूचित करता है कि क्रिया वर्तमान मे पूरी नही हुई तथा 'पूर्ण वर्तमान काल' यह सूचित करता है कि क्रिया वर्तमान काल में समाप्त

---

[1] 'तुम होगी' प्रचलित है—अनुवादक।

[2] पुरानी भाषा में यह एक विकारी काल था। रामायण में इस विकारी काल के रूप विद्यमान हैं। पूरबी हिन्दी की बोलियों में इस काल के रूप संभाव्य भूत के लिए अब भी प्रयुक्त होते है। अधिक के लिए देखिए §१२४ तथा रूपावली। बीम्स, कम्प० ग्राम० सं० ३, पृ० १३१, १३२। ग्रिअर्सन-सेवन ग्रामर्स।

हो गई। इस तरह दोनो काल वर्तमान से सम्बन्धित हैं, दोनो कृदन्त के साथ अस्तित्व सूचक क्रिया के वर्तमान कालिक रूप, जुड़ते है; जैसे—मैं आता हूँ, मै आया हूँ।

§४०५. तीसरी जोड़ी 'अपूर्ण भूत काल' और 'पूर्ण भूतकाल' की है। अपूर्ण भूत काल से ऐसी क्रिया का बोध होता है जो भूत काल मे कभी अग्रसर हो रही थी। पूर्ण भूतकाल से ऐसी क्रिया का ज्ञान होता है, जो भूतकाल मे कभी पूरी हो चुकी। इस काल मे समय का बोध अस्तित्व सूचक सहायक क्रिया के भूतकालिक रूप से होता है; जैसे—**मैं आता था, मै आता था।**

§४०६. 'अपूर्ण समाव्य काल' और 'पूर्ण समाव्य काल' की चौथी जोड़ी है। 'अपूर्ण संभाव्य काल' से पता चलता है कि क्रिया अग्रसर हो रही है और 'पूर्ण समाव्य काल' से ज्ञात होता है कि क्रिया समाप्त हो चुकी। इन दोनों का यही अन्तर है, किन्तु समानता इस बात मे है कि दोनो क्रिया की सभावना व्यक्त करते है। इन दोनों कालो मे सहायक क्रिया के रूप मे अस्तित्व सूचक क्रिया के सभाव्य भविष्य का रूप प्रयुक्त होता है, जैसे—'मै आता होऊँ', 'मै आया होऊँ'।

§४०७. 'अपूर्ण आनुमानिक काल' तथा 'पूर्ण आनुमानिक काल' की पाँचवी जोडी है। इन दोनो का अन्तर यह है कि जहाँ पहला काल क्रिया के अधूरा रहने का बोध कराता है, वहाँ दूसरा काल क्रिया की समाप्ति का ज्ञान कराता है। दोनो कालों की समानता यह है कि दोनो ही अनुमान व्यक्त करते है। दोनों कालो मे कृदन्त के साथ सहायक क्रिया के स्थान पर अस्तित्वसूचक क्रिया के संभाव्य भविष्य कालिक रूप का प्रयोग होता है। भविष्य काल क्रिया के घटित होने के स्वीकारात्मक अनुमान को व्यक्त करता है जैसे—वह आता होगा; वह आया होगा।

§४०८. छठी जोड़ी मे अपूर्ण सभाव्य भूत और पूर्ण समाव्य भूत काल की गिनती होती है। इस काल की रचना क्रिया के कृदन्त रूप के साथ अस्तित्व सूचक क्रिया के अनिश्चित अपूर्ण कालिक रूप के योग से की जाती है; जैसे—जो तुम आते होते, कदाचित् किसी ने बतलाया न होता।

क. इन कम प्रचलित कालों के नामकरण तथा इनकी स्पष्ट व्याख्या करने मे वैयाकरण बाधा अनुभव करते रहे है। वास्तविकता यह है कि §४०८ के काल, विशेष रूप से 'अपूर्ण संभाव्य भूत' का प्रयोग इतना कम हुआ है कि निर्णय तक पहुँचने के लिए पर्याप्त उदाहरण एकत्रित करना कठिन है। मेरा विश्वास है, मैंने इन कालो के लिए यथासंभव उचित नामो का प्रयोग किया है। इन दोनो कालों की उल्लेखनीय बात यह है कि इनका प्रयोग कही अकेले नही होता। इनका प्रयोग भूत से सम्बन्धित हेतुमान वाक्यो मे ही मिलता है। यह भी सत्य है कि इस प्रकार के हेतुमान वाक्यों का प्रयोग प्रायः अनिश्चित पूर्ण तथा अनिश्चित अपूर्ण कालो मे ही होता है। इसका अर्थ यह नही है कि इन कालों का प्रयोग केवल अनिश्चय द्योतक कालों तक ही सीमित है।

ख. अन्तिम तीन जोड़ियों के कालो को 'विरल काल' की संज्ञा दी जाती है; किन्तु तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि इनमें से कुछ कालों का प्रयोग विरल नही है। तत्त्वतः यह बात उचित नहीं है कि अपेक्षाकृत प्रयोग बाहुल्य अथवा प्रयोग बिरलता के आधार पर कालो का वर्गीकरण किया जाये। कृदन्त रूपों से बनने वाले कालों में इन सभी कालों को उचित स्थान प्राप्त है।

क्रियाविशेषणिक कृदन्त

§४०९. वैयाकरणो ने उपर्युक्त कालों के साथ तथाकथित 'क्रियावैशेषणिक कृदन्त' की गिनती भी की है। इस क्रियावैशेषणिक कृदन्त की रचना अपूर्णता द्योतक कृदन्त के विकारी रूप के साथ अवधा-

पूर्ण अनिश्चित काल

मैं हुआ	हम हुए
तू हुआ	तुम हुए
वह हुआ	वे हुए

पूर्ण वर्तमान काल

मैं हुआ हूँ	हम हुए हैं
तू हुआ है	तुम हुए हो
वह हुआ है	वे हुए है

पूर्ण भूतकाल

मै हुआ था	हम हुए थे
तू हुआ था	तुम हुए थे
वह हुआ था	वे हुए थे

क. स्मरण रखिए, इन सब रूपों को स्त्रीलिंगवाची बनाने के लिए एकवचन मे अन्त्य 'आ' को 'ई' मे और बहुवचन में अन्त्य 'ए' को 'ईं' मे परिवर्त्तित करते है। समासित क्रियाओ मे बहुवचन सूचक अनुस्वार परपद के साथ जोडा जाता है। उदाहरण—'हम होती थीं' कहेगे, न कि 'हम होतीं थी'। यह नियम सभी क्रिया-रूपो पर लागू होता है।

ख. रोमीय अक्षरों मे 'हुआ' को सामान्यतया 'हूआ' लिखतें है, वास्तव मे 'हु' का उकार ह्रस्व है।

§४११. ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जहाँ तक प्रत्ययो का सम्बन्ध है—हिन्दी के क्रिया रूप बहुत नियमित है। स्तरीय हिन्दी तथा अन्य पछाँही बोलियों[1] मे सकर्मक क्रियाओ के पूर्णता द्योतक कृदन्त के कालिक रूपो की रचना मे एक रूढ़ि प्रचलित है, जिस पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित नियमो को ठीक तरह से समझ लेना चाहिए।

§४१२. सकर्मक क्रिया से बनने वाले कृदन्तों के सभी कालो में जब कर्ताकारक (विकारी), कर्त्ता कारक (अविकारी) के स्थान पर प्रयुक्त होता है; तब दो प्रकार के वाक्य विन्यास देखे जाते हैं, जो इस प्रकार हैं—

कर्मवाच्य तथा भाववाच्य सम्बन्धी रचना

(१) अंग्रेजी की रूढ़ि के अनुसार कर्मवाच्य और भाववाच्य क्रिया का कर्म कर्त्ताकारक (अविकारी) में रखा जाता है। इस प्रकार के वाक्यों में क्रिया का लिंग तथा वचन कर्म के अनुसार निर्धारित होता है।

---

[1] नेपाली को छोड़ कर, देखिए, §१३०।

(२) अंग्रेजी की रूढि के अनुसार क्रिया का कर्म, सम्प्रदान कारक मे आता है और क्रिया इस स्थिति मे न तो कर्त्ता के लिंग-वचन धारण करती है और न कर्म के। वह सदैव पुल्लिग एकवचन मे प्रयुक्त होती है।

इस प्रकार के वाक्य विन्यास को क्रमश 'कर्मवाच्य' तथा 'भाववाच्य' कहते है।

√देखना के पूर्ण वर्त्तमान काल का रूप इन वाक्यो मे देखिए—'मैने वह गाडी देखी' अथवा 'मैने उस लड़की को देखा'। प्रथम उदाहरण मे देखना का उद्देश्य 'गाड़ी' है, जिसके अनुसार क्रिया का प्रयोग तृतीय पुरुष, स्त्रीलिंग, एकवचन मे हुआ है। दूसरे उदाहरण मे क्रिया के उद्देश्य की अभिव्यक्ति नही हुई, वह यहाँ सम्प्रदान कारक मे आया है, अत. क्रिया भाववाचक बन कर तृतीय पुरुष, पुल्लिग, एकवचन मे प्रयुक्त हुई है।

उल्लेखनीय—विद्यार्थियो को ध्यान मे रखना चाहिए—(१) इस प्रकार की रचना केवल सकर्मक क्रिया के साथ ही होती है। (२) केवल पूर्णता द्योतक कृदन्त से बनने वाले कालों मे ही इस प्रकार की रचना होती है। इस वाक्य पर ध्यान दीजिए—"उसने अपने भाई को मारा", हमे ऐसा वाक्य बनाना चाहिए। यद्यपि हम भूतकाल के सम्बन्ध मे कह रहे है, तब भी, हमे कर्तृवाच्य वाक्य की रचना क्रिया के अपूर्णता-बोधक कृदन्त काल मे ही करनी चाहिए। जैसे हम कहते है—"वह अपने भाई को मारता था", इस वाक्य की रचना इस तरह नही की जा सकती—"उसने मारता था।"

उल्लेखनीय—२. अंग्रेजी के जिन वाक्यो मे कर्त्ता क्रिया के साथ आता है, हिन्दी मे उन वाक्यो की रचना तीन प्रकार से होती है। पहले प्रकार की रचना अंग्रेजी के उन वाक्यो से मेल खाती है, जहाँ अकर्मक क्रिया का प्रयोग हुआ है अथवा जहाँ पूर्णता बोधक कृदन्त रूपो की सहायता से बनने वाले कालों को छोड़ कर सकर्मक क्रिया का प्रयोग होता है। दूसरे और तीसरे प्रकार की रचना मे सकर्मक क्रिया के इन कालों मे या तो कर्मवाच्य या भाववाच्य रूपो का प्रयोग होता है। इस प्रकार के रूपो का उल्लेख पहले किया जा चुका है। इन तीनों प्रकार के प्रयोगों को हिन्दू वैयाकरणो ने क्रमश' कर्तरि प्रयोग, कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग के नाम से स्मरण किया है।[1]

§४१३. यह बात उल्लेखनीय है कि हिन्दी के सभी पूर्णता बोधक कृदन्त सस्कृत के पूर्णता बोधक कर्मवाच्य कृदन्तों से उद्भूत हैं; और जिन प्रयोगो की चर्चा की जा रही है उनकी रचना का ढग भी संस्कृत के वाक्य-विन्यास जैसा है। सस्कृत व्याकरण के नियमानुसार उपर्युक्त स्थिति मे कर्मवाच्य कृदन्त को लिंग और वचन के मामले मे उस शब्द का अनुकरण करना चाहिए जो अंग्रेजी की रूढि के अनुसार क्रिया का कर्म माना जाता है, किन्तु सस्कृत मे जिसका प्रयोग करण कारक में होता है; अंग्रेजी के वाक्यांश 'हि सेड' (he said) को हम संस्कृत मे अनुवादित करेंगे—'तेन कथितम्'; हिन्दी मे इस वाक्यांश का अनुवाद होगा—'उसने कहा'। इस तरह संस्कृत मे कहेंगे—"तेन मूषिकशावको दृष्ट."; हिन्दी में कहेंगे—'उसने मूसे का बच्चा देखा'।

§४१४. √बकना, √बोलना, √भूलना और √लाना ये क्रियाएँ अर्थ की दृष्टि से सकर्मक हैं, किन्तु इनका प्रयोग उपर्युक्त नियमों के विपरीत होता है। इनका प्रयोग कर्त्ताकारक (विकारी) के साथ नही होता।

---

[1] समस्त पूरबी बोलियों की भाँति नेपाली में कर्तरि और भावे प्रयोग नहीं हैं। नेपाली में इनके स्थान पर एक विशेष प्रकार का प्रयोग प्रचलित है।

क. यदि 'कर्म' का उल्लेख हुआ है तो √लडना का कर्मणि प्रयोग होता है, अन्यथा उसका प्रयोग अकर्मक क्रिया की भाँति किया जाता है।

ख √जानना के कर्म के रूप मे यदि एक शब्द का उल्लेख हुआ है तो पढे-लिखे हिन्दू उसके साथ कर्ताकारक (विकारी) का प्रयोग करते है और 'कर्म' के स्थान पर एक वाक्य आ रहा है तो उसके साथ अविकारी कर्त्ताकारक का प्रयोग किया जाता है।

ग. समझना के पूर्णता द्योतक कालो मे उद्देश्य को कही-कही अविकारी रखते है, किन्तु यह अच्छा समझा जाता है कि वह कर्त्ताकारक (विकारी) में प्रयुक्त किया जाये।

घ जब √पाना का प्रयोग सयुक्त क्रियाओ मे होता है तो उद्देश्य सदैव अविकारी कारक मे आता है, जैसे—'उसने उसको पाया' किन्तु 'वह जाने पाया'। √देना कुछ समासित क्रियाओ मे अकर्मक मानी जाती है, जहाँ पूर्व पद मे 'आई' प्रत्यय के योग से बनाई गई भाववाचक सज्ञा का प्रयोग हुआ हो, जैसे—'वह दिखाई दिया'; आदि।

क्रिया के रूपों का उच्चारण

§४१५. ध्यान दीजिए, एक वर्णात्मक धातु से बनने वाली समस्त क्रियाओं अथवा प्रेरणार्थक क्रियाओं मे सदैव मूल वर्ण पर स्वराघात होता है, किन्तु जिन प्रेरणार्थक क्रियाओ की रचना धातु के साथ आ, ला, आल, वा आदि प्रत्ययों के योग से होती है, उनमे बलाघात सर्वत्र प्रेरणार्थक प्रत्यय पर रहता है। निम्नलिखित उदाहरणों में **बलाघात** को रेखांकित किया गया है—करूँगा, कराऊँगा; कहता, कहलाता; **बना, बना;** आदि। बहुत से शब्द ऐसे हैं जो स्वराघात के कारण भिन्न प्रकार का अर्थ देते है, जैसे √पढना के अपूर्ण अनिश्चित काल के तृतीय पुरुष के एकवचन मे **'पढ़ा'** किन्तु अन्त्य 'आ' पर स्वराघात के कारण **'पढ़ा'** का तात्पर्य है √पढना का विधि, द्वितीय पुरुष, एकवचन का रूप। इसी प्रकार 'सुना' का तात्पर्य है—सुना गया; किन्तु 'सुना' का अर्थ है—तू कह। स्वराघात को न तो अधिक बल देकर व्यक्त करना चाहिए और न स्वराघात हीन दीर्घ वर्ण का ह्रस्व उच्चारण करना चाहिए।

रूपावली से सम्बन्धित सूचियाँ

§४१६. आगे जो सूचियाँ दी गई है, उनमें तीन क्रियाओ की रूपावली है। १६वी सूची की एक नियमित रूपवाली मे ऐसी अकर्मक क्रिया के रूप हैं, जिसकी धातु व्यजनान्त है। सूची १७ मे स्वरान्त धातु वाली अकर्मक क्रिया के रूप है। सूची १८ मे सकर्मक क्रिया √करना के रूप है। अमिश्रित अथवा मिश्रित क्रिया के रूपो मे इतना थोड़ा अन्तर है कि नियमित रूपवाली एक से अधिक क्रियाओ के रूप देने की आवश्यकता नही समझी गई। दूसरी ओर कुछ अनियमित सी √जाना और √करना बहु प्रचलित क्रियाएँ है कि उनके सभी रूपो के देने की आवश्यकता अनुभव की गई। √करना का पूर्णता द्योतक कृदन्त रूप 'किया' है, ठीक इस रूप की तरह √देना और √लेना के पूर्णता द्योतक कृदन्त रूप है—'दिया' तथा 'लिया'। √दिखाना, पूर्णता द्योतक कृदन्त रूप 'दिखाया', जैसी अमिश्रित धातुओ के रूप √जाना के समान चलते हैं, अन्तर इतना ही है कि इनमें क्रिया के सामान्य रूप की धातु सर्वत्र सुरक्षित रहती है जब कि √जाना के कुछ कालो मे धातु का रूप बदल जाता है।

सूची १६. अकर्मक क्रिया 'गिरना' के रूप

('गिर', संवृत धातु)

क्रियार्थक सज्ञा—गिरना

अपूर्णता सूचक क्रृदन्त रूप—गिरता

पूर्णता सूचक क्रृदन्त रूप—गिरा

यौगिक क्रृदन्त रूप—गिर, गिर के,
गिर कर, गिर कर के,
गिर कर कर।

कर्तृसूचक सज्ञा—'गिरने वाला' अथवा
'गिरनेहारा'

सम्बन्धकारक का रूप—गिरने का, की, के

वैशेषणिक रूप—गिरता हुआ,

वैशेषणिक रूप—गिरा हुआ

धातु से बनने वाले भविष्य कालों के रूप

	एकवचन	बहुवचन
सभाव्य भविष्य	१ मै गिरूँ. २ तू गिरे. ३ वह गिरे	१ हम गिरें[2]. २. तुम गिरो. ३. वे गिरें
सामान्य भविष्य	१. मै गिरूँगा[1]. २ तू गिरेगा. वह गिरेगा.	१ हम गिरेंगे. २. तुम गिरोगे ३. वे गिरेंगे.
विधि	१. मै गिरूँ. २. तू गिर. ३. वह गिरे.	१. हम गिरें. २ तुम गिरो. ३. वे गिरें.
विधि (आदरार्थक)	×	२. तुम गिरियो. ३. आप गिरिये. आप गिरियेगा,

---

[1] स्त्रीलिंगवाची रूप बनाने के लिए एकवचन में अन्त्य 'आँ' ई में परिवर्त्तित होता है।

[2] स्त्रीलिंगवाची रूप बनाने के लिए बहुवचन का अन्त्य 'एँ' 'ईं' में परिवर्त्तित होता है।

सूची १६. चालू : अपूर्णता द्योतक कृदन्त रूपों से बनने वाले काल

एकवचन	बहुवचन
अपूर्ण अनिश्चित—१ मै गिरता. २ तू गिरता ३ वह गिरता	१ हम गिरते २ तुम गिरते. ३. वे गिरते
अपूर्ण वर्तमान—१ मै गिरता हूँ २. तू गिरता है. ३. वह गिरता है.	१ हम गिरते है २. तुम गिरते हो. ३. वे गिरते है
अपूर्ण भूत—१ मै गिरता था २ तू गिरता था ३. वह गिरता था	१. हम गिरते थे. २. तुम गिरते थे. ३ वे गिरते थे
अपूर्ण सभाव्य—१ मै गिरता होऊँ.[1] २ तू गिरता हो ३ वह गिरता हो	१. हम गिरते हो. २ तुम गिरते होओ ३. वे गिरते हो
अपूर्ण आनुमानिक—१ मै गिरता हूँगा २ तू गिरता होगा ३ वह गिरता होगा.	१ हम गिरते होगे २ तुम गिरते होगे ३ वे गिरते होगे
अपूर्ण मामान्य भूत—१ मै गिरता होता २ तू गिरता होता ३ वह गिरता होता	१ हम गिरते होते २ तुम गिरते होते. ३. वे गिरते होते

सूची १६. चालू : पूर्णता द्योतक कृदन्त रूपों से बनने वाले काल

एकवचन	बहुवचन
पूर्ण अनिश्चित—१ मै गिरा २. तू गिरा ३ वह गिरा.	१ हम गिरे.[2] २ तुम गिरे. ३ वे गिरे.
पूर्ण वर्तमान—१. मै गिरा हूँ २. तू गिरा है ३ वह गिरा है	१. हम गिरे है. २ तुम गिरे हो. ३. वे गिरे हैं.
पूर्ण भूत—१ मैं गिरा था २ तू गिरा था ३. वह गिरा था.	१ हम गिरे थे २. तुम गिरे थे ३ वे गिरे थे
पूर्ण सभाव्य—१ मै गिरा होऊँ. २. तू गिरा हो ३ वह गिरा हो.	१. हम गिरे हों २ तुम गिरे होओ ३. वे गिरे हों.
पूर्ण आनुमानिक—१. मै गिरा हूँगा २. तू गिरा होगा ३ वह गिरा होगा	१. हम गिरे होगे २. तुम गिरे होगे. ३. वे गिरे होगे.
पूर्ण सभाव्य भूत—१ मै गिरा होता. २. तू गिरा होता. ३. वह गिरा होता	१. हम गिरे होते. २ तुम गिरे होते. ३ वे गिरे होते

---

[1] इन सूचियों में सहायक क्रियाओं के जो रूप दिए गए है, उनके स्थान पर §४०१ में दिए गए अन्य वैकल्पिक रूपों का प्रयोग इच्छा के अनुसार किया जा सकता है।

[2] इन सब के स्त्रीलिंगवाची रूपों में एकवचन का अन्त्य 'आ' तथा बहुवचन का अन्त्य 'ए', 'ई' में परिवर्तित होते हैं।

सूची १७. अकर्मक क्रिया 'जाना' के रूप ('जा', विवृत धातु)

क्रियार्थक संज्ञा—जाना सम्बन्ध कारक—जाने का

अपूर्णता द्योतक कृदन्त—जाता वैशेषणिक रूप—जाता हुआ

पूर्णता द्योतक कृदन्त—गया वैशेषणिक रूप—गया हुआ

जाहि जा को जेहि ने जा जेहि जा ने जासु जा को ता तिकरन तिन्हका मैथिली

कर्तृवाचक संज्ञा—जाने वाला, जाने हारा

धातु से बनने वाले भविष्यकाल

एकवचन	बहुवचन
सभाव्य भविष्य—१. मै जाऊँ. २. तू जाए. जावे जाय	१ हम जाएँ. जावे. जायँ २ तुम जाओ.
३. वह जाए. जावे. जाय	३. वे जाएँ. जावे. जायँ
सामान्य भविष्य—१ मै जाऊँगा[1]	१ हम जाएँगे जावेंगे. जायँ २ तुम जाओगे
२ तू जाएगा. जावेगा. जायगा.	३. वे जाएँगे जावेंगे. जायँगे
३. वह जाएगा. जावेगा. जायगा.	
विधि—१. मै जाऊँ २. तू जा	१ हम जाएँ. जावें. जायँ. २. तुम जाओ.
३. वह जाए. जावे. जाय.	३. वे जाएँ. जावें जायँ.
प्रार्थना, आदर	२ तुम जाइयो. ३. आप जाइये जाइयेगा.

सूची १७. चालू : अपूर्णता द्योतक कृदन्त से बनने वाले काल

एकवचन	बहुवचन
अपूर्ण अनिश्चित—१ मै जाता २. तू जाता ३. वह जाता	१ हम जाते २. तुम जाते ३ वे जाते
अपूर्ण वर्तमान—१ मै जाता हूँ २. तू जाता है ३ वह जाता है	१ हम जाते है २ तुम जाते हो ३. वे जाते है
अपूर्ण भूत—१ मै जाता था २. तू जाता था ३. वह जाता था.	१. हम जाते थे २. तुम जाते थे ३. वे जाते थे
अपूर्ण संभाव्य—१. मै जाता होऊँ २ तू जाता होय ३. वह जाता होय	१. हम जाते होय २. तुम जाते होओ ३. वे जाते होय.
अपूर्ण आनुमानिक—१. मै जाता होऊँगा २. तू जाता होयगा. ३. वह जाता होयगा	१. हम जाते होंयगे. २. तुम जाते होगे. ३. वे जाते होगे.
अपूर्ण संभाव्य भूत—१ मैं जाता होता २. तू जाता होता ३ वह जाता होता.	१. हम जाते होते २. तुम जाते होते ३ वे जाते होते.

सूची १७. चालू : पूर्णताद्योतक कृदन्त से बनने वाले रूप

एकवचन	बहुवचन
पूर्ण अनिश्चित—१ मै गया[2] २ तू गया ३ वह गया	१. हम गये[1] २. तुम गये[2] ३. वे गये.
पूर्ण वर्तमान—१. मैं गया हूँ. २. तू गया है ३. वह गया है	१. हम गये है. २. तुम गये हो ३. वे गये है
पूर्ण भूत—१ मै गया था २ तू गया था ३. वह गया था	१ हम गये थे २ तुम गये थे ३. वे गये थे
पूर्ण सभाव्य—१. मैं गया होऊँ. २. तू गया होय ३. वह गया होय.	१. हम गये होय २. तुम गये होओ ३. वे गये होंय.
पूर्ण आनुमानिक—१. मै गया होऊँगा. २. तू गया होयगा ३. वह गया होयगा.	१ हम गये होयगे २ तुम गये होगे ३. वे गये होयंगे
पूर्ण संभाव्य भूत—१. मैं गया होता २. तू गया होता ३. वह गया होता.	१. हम गये होते २. तुम गये होते ३. वे गये होते

[1] सर्वत्र 'गए' भी।

[2] स्त्रीलिंगवाची रूप बनाने के लिए एकवचन के अन्त्य 'आ' को 'ई' में तथा बहुवचन के अन्त्य 'ए' को 'ई' में परिवर्तित करते हैं।

सूची १८ सकर्मक क्रिया 'करना' के रूप ('कर', संवृत धातु)

क्रियार्थक संज्ञा — करना

अपूर्णता द्योतक कृदन्त — करता

पूर्णता द्योतक कृदन्त — किया

यौगिक कृदन्त — कर, कर के

कर्तृवाचक संज्ञा — करने वाला, करने हारा

सम्बन्ध कारक — करने का

वैशेषणिक रूप — करता हुआ.

वैशेषणिक रूप — किया हुआ.

धातु से बननेवाले भविष्य काल

एकवचन	बहुवचन
समाव्य भविष्य—१. मैं करूँ. २. तू करे ३. वह करे	१. हम करे २. तुम करो. ३. वे करे.
सामान्य भविष्य—१. मै करूँगा २. तू करेगा ३ वह करेगा	१. हम करेगे २ तुम करोगे. ३. वे करेगे
विधि—१. मै करूँ. २. तू कर ३. वह करे	१. हम करे २ तुम करो ३. वे करें
आदरार्थक विधि	१. ... २. तुम कीजियो, तुम कीजो. ३. आप कीजिये, आप कीजे.

सूची १८. चालू : अपूर्णताद्योतक कृदन्त से बननेवाले काल

एकवचन	बहुवचन
अपूर्ण अनिश्चित—१. मै करता[1]. २. तू करता ३. वह करता	१. हम करते[2] २. तुम करते. ३. वे करते
अपूर्ण वर्तमान—१ मै करता हूँ. २. तू करता है. ३. वह करता है	१. हम करते है २ तुम करते हो ३. वे करते है
अपूर्ण भूत—१. मै करता था. २. तू करता था ३. वह करता था	१. हम करते थे. २. तुम करते थे ३. वे करते थे
अपूर्ण संभाव्य—१. मै करता होऊँ, २. तू करता होवे. ३. वह करता होवे.	१. हम करते होवे २. तुम करते होओ ३. वे करते होवे
अपूर्ण आनुमानिक—१ मैं करता होऊँगा, २. तू करता होवेगा ३. वह करता होवेगा	१. हम करते होवेंगे २. तुम करते होगे ३. वे करते होवेंगे
अपूर्ण संभाव्य भूत—१. मै करता होता २. तू करता होता. ३. वह करता होता.	१. हम करते होते २. तुम करते होते ३. वे करते होते

सूची १८. चालू : पूर्ण कृदन्त से बननेवाले काल ('करा' के स्थान पर 'किया')

एकवचन	बहुवचन
पूर्ण अनिश्चित—मैने, तूने अथवा उसने किया[2].	हमने, तुमने अथवा उन्होने किया[2]
पूर्ण वर्त्तमान—मैने, तूने अथवा उसने किया[2] है	हमने, तुमने अथवा उन्होने किया[2] है
पूर्ण भूत—मैने, तूने अथवा उमने किया था[2]	हमने, तुमने अथवा उन्होने किया था[2]
पूर्ण संभाव्य—मैंने, तूने अथवा उसने किया हो[2]	हमने, तुमने अथवा उन्होने किया हो[2].
पूर्ण आनुमानिक—मैने, तूने अथवा उसने किया होगा[2]	हमने, तुमने अथवा उन्होने किया होगा[2]
पूर्ण संभाव्य भूत—मैंने, तूने अथवा उसने किया होता[2]	हमने, तुमने अथवा उन्होंने किया होता[2]

---

[1] स्त्रीलिगवाची रूपों में एकवचन के अन्त्य 'आ' को 'ई' में तथा बहुवचन के अन्त्य 'ए' को 'ई' में परिवर्त्तित करते हैं।

[2] कर्मवाच्य में सर्वत्र कर्म के लिंग तथा वचन के अनुसार विकार होते हैं, भाववाच्य में यह रूप सर्वत्र अपरिवर्त्तित रहता है।

कर्मवाच्य

§४१७. हिन्दी मे कर्मवाच्य का प्रयोग अग्रेजी की अपेक्षा कम होता है। सकर्मक क्रिया के भूतकाल में जहाँ कर्त्ता के साथ 'ने' परसर्ग जोडा जाता है, वहाँ एक प्रकार का कर्मणि प्रयोग ही होता है। यदि परसर्ग सहित कर्त्ताकारक की क्रिया को छोड़ दिया जाए तब भी हिन्दी मे ऐसे बहुत-से प्रयोग मिलते है जहाँ क्रिया स्पष्टत. कर्मवाच्य है। इस सम्बन्ध मे वाक्य रचना वाले अध्याय मे विस्तार से विचार किया जाएगा।

कर्मणि प्रयोग की रचना

§४१८. किसी भी क्रिया का कर्मणि प्रयोग किया जा सकता है। कर्मणि प्रयोग के लिए पूर्णताद्योतक कृदन्त के साथ √जाना जोडी जाती है। सूची १६ मे दिए गए रूपो के अनुसार 'जाना' क्रिया विकार ग्रहण करती है। उद्देश्य के अनुसार कृदन्त रूप विकारी बनता है, पुल्लिग, बहुवचन मे अन्त्य 'आ' 'ए' बनता है और स्त्रीलिंगी एकवचन तथा बहुवचन मे अन्त्य 'आ' परिवर्तित होता है 'ई' मे।

उदाहरण— √मारना का कर्मवाच्य रूप √मारा जाना, √देना का कर्मवाच्य रूप √दिया जाना, दिखाना का कर्मवाच्य रूप √दिखाया जाना। कर्मणि प्रयोग के उदाहरण—वह पत्र लिखा गया, कोई स्त्री मारी जाती थी, वे नही देखे जाते है।

क कही-कही अकर्मक क्रिया का कर्मणि प्रयोग मिलता है, जैसे √आना का कर्मवाच्य रूप आया जाना। अकर्मक क्रिया के कर्मणि प्रयोग को अग्रेजी मे ज्यो-का-त्यो अनुवादित करना कठिन है।

विशेष—पूर्णताद्योतक कृदन्त के कर्मणि प्रयोग मे √जाना से सहायता ली जाती है। यौगिक क्रिया की रचना मे भी √जाना का उपयोग होता है। हमे √जाना की इन दो स्थितियो का भेद ठीक ढग से जान लेना चाहिए।

नीचे के उदाहरण √जाना की दोनो स्थितियो को स्पष्ट करते है—'खाया जाना', 'खा जाना'।

§४१९ कर्मवाच्य रूपो के बनाने मे अधिक कठिनाई नही होती, अत यहाँ अधिक प्रचलित कालो के कुछ रूप देना पर्याप्त रहेगा। नमूने के लिए √लिखना को प्रस्तुत किया जा सकता है; पूर्ण भूतकाल मे इसका रूप 'लिखा' बनता है।

लिखना का कर्मवाच्य रूप

क्रियार्थक संज्ञा—लिखा जाना।
यौगिक कृदन्त—लिखा जाकर।
सभाव्य भविष्य, तृतीय पु० एकवचन—लिखा जाए।
सामान्य भविष्य एकवचन—लिखा जाएगा।
विधि भविष्य एकवचन—लिखा जाए।

अपूर्ण अनिश्चित एकवचन—लिखा जाता।
अपूर्ण वर्तमान एकवचन—लिखा जाता है।
अपूर्ण भूत एकवचन—लिखा जाता था।
पूर्ण अनिश्चित एकवचन—लिखा गया।
पूर्ण वर्तमान एकवचन—लिखा गया है।
पूर्ण भूत एकवचन—लिखा गया था।

शेष कालो के रूप प्रयोग मे अधिक नही आते। इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि छात्र इनमे से किसी कर्मणि प्रयोग को आवश्यकता से अधिक व्यवहार मे न लाएँ।

प्रेरणार्थक क्रिया

§४२० हिन्दी की किसी भी क्रिया से प्रथम प्रेरणार्थक तथा द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया की रचना हो सकती है। क्रिया अथवा स्थिति की प्रेरणा को प्रथम प्रेरणार्थक रूप प्रस्तुत करता है। द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया किसी क्रिया अथवा स्थिति की प्रेरणा के माध्यम को व्यक्त करती है। उदाहरण के लिए √बनना प्रथम प्रेरणार्थक बनाना, द्वितीय प्रेरणार्थक बनवाना।

यदि क्रिया अकर्मक है, तो उससे बनने वाली प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया सकर्मक होगी। अंग्रेजी मे अनुवाद करते समय प्रेरणार्थक क्रिया को एक क्रिया से व्यक्त किया जाता है, स्पष्ट है कि इस प्रकार का अनुवाद व्याकरण की दृष्टि से उचित नही कहा जा सकता। उदाहरण नीचे दिये जा रहे है।

ब्या[illegible] सर्वनाम विकारी एकवचन

§४२१. प्रेरणार्थक क्रिया की रचना के नियम निम्न प्रकार है—

(१) प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया के लिए धातु मे 'आ' जोडा जाता है। द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया के लिए धातु के साथ 'वा' जोडते है। प्रेरणार्थक क्रिया की क्रियार्थक सज्ञा बनाने के लिए 'आ' अथवा 'वा' युक्त धातु के साथ 'ना' जोडते है। उदाहरण के लिए √जलना लीजिये, इस क्रियार्थक सज्ञा की धातु 'जल' है; जल से प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया 'जला' तथा द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया 'जलवा' की रचना होती है। इन प्रेरणार्थक रूपों से क्रियार्थक सज्ञा बनती है—'जलाना' और 'जलवाना'।

क्रियार्थक सज्ञा	प्रथम प्रेरणार्थक क्रि० स०	द्वितीय प्रेरणार्थक क्रि० सं०
उठना	उठाना	उठवाना
छिपना	छिपाना	छिपवाना
पकना	पकाना	पकवाना
मिलना	मिलाना	मिलवाना
सुनना	सुनाना	सुनवाना

क. प्रेरणार्थक क्रिया मे एकाधिक वर्णो वाली धातु के द्वितीय वर्ण का अन्तर्भुक्त 'अ' बहुत क्षीण सुनाई देता है, इस प्रकार की क्षीण ध्वनि के लिए यह आवश्यक है कि वह धातु के प्रथम वर्ण के ह्रस्व

स्वर की सहायता से बोली जाये; किन्तु द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया के प्रत्यय से पहले इस प्रकार के अन्तर्भुक्त 'अ' का पूरा उच्चारण किया जाता है। उदाहरण निम्न प्रकार है—

क्रिया	**प्रथम प्रेरणार्थक**	**द्वितीय प्रेरणार्थक**
चमकना	चमकाना	चमकवाना
पिघलना	पिघलाना	पिघलवाना
भटकना	भटकाना	भटकवाना
पकड़ना	पकडाना	पकडवाना
परखना	परखाना	परखवाना

उल्लेखनीय—क यदि द्वितीय व्यंजन 'म' हो तो 'अ' की यह क्षीण ध्वनि प्राय लुप्त हो जाती है; जैसे√समझना के प्रेरणार्थक रूप √समझाना का उच्चारण 'सम्झाना' किया जाता है।

ख. प्रथम तथा द्वितीय प्रेरणार्थक प्रत्यय को जोड़ने से पहले एकवर्णी धातु के अन्तर्भुक्त दीर्घ स्वर को ह्रस्व बनाते हैं। विवृत धातुओं में ह्रस्व बनाये गये स्वर के पश्चात् और प्रेरणार्थक प्रत्यय के पहले 'ल' का आगम होता है।

विशेष—इस नियम के प्रयोग से पहले यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि 'आ' का ह्रस्व स्वर 'अ' है, ई, ए, ऐ और कही-कही आ के लिए भी ह्रस्व स्वर के रूप मे 'इ' का प्रयोग होता है, ऊ, ओ और औ के ह्रस्व स्वर के रूप मे 'उ' आता है । इस नियम के अन्तर्गत विवृत धातुओं के निम्नलिखित उदाहरण दिये जाते हैं—

क्रिया	**प्रथम प्रेरणार्थक**	**द्वितीय प्रेरणार्थक**
घूमना	घुमाना	घुमवाना
जागना	जगाना	जगवाना
जीतना	जिताना	जितवाना

संवृत धातुओं के उदाहरण निम्न प्रकार है—

खाना	खिलाना	खिलवाना
पीना	पिलाना	पिलवाना
सोना	सुलाना	सुलवाना

क. इस वर्ग की क्रिया में एकवर्णी धातु हो और उस धातु मे 'ऐ' अथवा 'औ' विद्यमान हो तो दीर्घ स्वर ज्यों-का-त्यों बना रहता है। इस प्रकार की क्रिया का प्रेरणार्थक रूप §४२१ (१) के अनुसार बनता है; जैसे—

पैरना	पैराना	पैरवाना
दौड़ना	दौड़ाना	दौड़वाना

ख किन्तु√बैठना का प्रथम प्रेरणार्थक रूप 'बैठाना' अथवा 'बिठाना' है।√बैठना के अधिकाश रूप विवृत धातुओ के समान बनते है। प्रेरणार्थक के प्रत्यय से पहले 'ल' का आगम भी होता है; इस तरह √बैठना का एक प्रेरणार्थक रूप 'बिठलाना' भी है । इसी तरह√कहना, √सीखना, और √देखना के प्रेरणार्थक रूप विकल्प से 'कहाना', 'सिखाना', 'दिखाना', अथवा 'कहलाना', 'सिखलाना', और 'दिखलाना',

बनते है। 'कहाना' और 'कहलाना' मे कर्मवाच्यता है। √जानना का प्रथम प्रेरणार्थक 'जनाना' भी बनता है और 'जतलाना' भी।

ग. रूप की दष्टि से 'बताना' प्रेरणार्थक है, किन्तु हिन्दी मे इस क्रिया का साधारण रूप विद्यमान नही है।

(२) बहुत-सी एकवर्णी ह्रस्व स्वरयुक्त धातुओ से बनने वाली अकर्मक क्रियाओं का प्रथम प्रेरणार्थक रूप उस ह्रस्व स्वर को केवल दीर्घ करने से बनता है। द्वितीय प्रेरणार्थक रूप अन्य क्रियाओ के अनुसार रचा जाता है। उदाहरण निम्न प्रकार है—

कटना	काटना	कटवाना
बँधना	बाँधना	बँधवाना
लदना	लादना	लदवाना
खिचना	खीचना	खिचवाना

क इस प्रकार की क्रियाओं के प्रेरणार्थक रूप बनाते समय ह्रस्व स्वर को दीर्घ न बनाकर गुण अथवा वृद्धि करते है। उदाहरण—

खुलना	खोलना	खुलवाना
घुलना	घोलना	घुलवाना
खिचना	खैचना	खिचवाना

ख उपर्युक्त क्रियाओं के सादृश्य से निकलना का द्वितीय प्रेरणार्थक रूप 'निकलवाना' बनता है।

ग कुछ धातुओ के अन्त्य 'ट' को 'ड़' मे परिवर्तित करके प्रेरणार्थक रूप बनाते हैं। कुछ टकारान्त धातुओं के प्रेरणार्थक रूप अनियमित ढग से बनते है। कुछ बहुप्रचलित क्रियाएँ इस प्रकार है—

छूटना	छोडना	छुड़ाना
टूटना	तोड़ना	तोड़वाना, तोड़ाना
फटना	फाड़ना	फड़वाना, फड़ाना
फूटना	फोड़ना	फुड़वाना

घ. √बिकना का प्रेरणार्थक रूप बनाते समय 'क' को 'च' मे परिवर्तित करते है। इस तरह √बिकना का प्रेरणार्थक रूप है—'बेचना'; 'रहना' का 'ह' 'ख' मे परिवर्तित होता है, इस तरह √रहना का प्रेरणार्थक रूप 'रखना' बनता है।

ङ. √डूबना और √भीगना के प्रेरणार्थक रूप क्रमशः 'डुबोना' और 'भिगोना'[1] है।

च. √निबडना का प्रथम प्रेरणार्थक रूप 'निबाड़ना' अथवा निबेड़ना है। √बैठना का उल्लेख §४२१. (१) ख. मे हो चुका है। इसका एक प्रेरणार्थक रूप 'बैठालना' भी है। इसी प्रकार √पैठना का प्रेरणार्थक रूप 'पैठालना' तथा √लेना का प्रेरणार्थक रूप 'लिवाना' भी बनता है।

---

[1] इन रूपों का 'ओ' पुराने प्रेरणार्थक प्रत्यय 'अव' का संकुचित रूप है। हिन्दी के कुछ प्रेरणार्थक रूपों में 'अव' भी प्रयुक्त होता है।

४२२. कुछ प्रेरणार्थक क्रियाओ के मूल अकर्मक रूप स्तरीय हिन्दी में प्रयुक्त नही होते। ऐसे रूप हिन्दी से सम्बन्धित बोलियो मे सुनाई देते हैं। बहुप्रचलित प्रेरणार्थक रूप 'देखना' का साधारण रूप 'दीखना' कन्नौजी मे प्रयुक्त होता है। इसके विपरीत कुछ साधारण रूप स्तरीय हिन्दी मे प्रयुक्त होते है, किन्तु उनके प्रेरणार्थक रूप बहुत मुश्किल से सुनाई देते है। उदाहरण के लिए बहु प्रचलित √पड़ना को लीजिये, इसका प्रेरणार्थक रूप 'पाड़ना' स्तरीय हिन्दी मे कभी कभार सुनने को मिलता है, किन्तु रामायण मे इसका रूपान्तर 'पारन' कई बार प्रयुक्त हुआ है।

प्रेरणार्थक धातु के वैकल्पिक रूप

§४२३. बहुत-सी क्रियाओ के प्रेरणार्थक रूप §४२१. (१) और §४२१. (ख) दोनों ढगो से बनाते है। वैकल्पिक रूपों मे अर्थ-भेद भी होता है। एक रूप प्रायः बोलियो से सम्बन्धित रहता है। √दबना को उदाहरण के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है, इसके दो वैकल्पिक प्रेरणार्थक रूप है—'दबाना' तथा 'दाबना'। इन दोनों रूपो का अर्थ-भेद स्पष्ट है। इसी तरह √मिलना का प्रेरणार्थक रूप 'मिलाना' स्तरीय हिन्दी मे प्रयुक्त होता है और 'मेलणो' मारवाड़ी में। 'मेलणो' §४२१ (२) के अनुसार बना है। सभी लोग 'बुलाना' को बोलना का प्रेरणार्थक रूप मानते है, किन्तु रामायण मे 'बुलाना' के स्थान पर सर्वत्र 'बोलन' प्रयुक्त हुआ है।

संज्ञा से बनने वाले प्रेरणार्थक रूप

§४२४. अन्त मे मै ऐसी प्रेरणार्थक क्रियाओ का उल्लेख करना चाहता हूँ, जिनकी रचना भाववाचक सज्ञाओं से होती है। इन प्रेरणार्थक रूपों मे संज्ञा का भाव निहित रहता है। जैसे—रिस से √रिसयाना; 'तेवर' से तेवराना। अनुकरणात्मक संज्ञाओ से बनने वाली क्रियाएँ इसी वर्ग मे गिनी जाती है, जैसे—छनछनाना, किचमिचाना, आदि।

संयुक्त क्रिया[1]

§४२५. संयुक्त क्रियाओ के १२ भेद है—उत्कर्षसूचक, सामर्थ्यसूचक, पूर्तिसूचक, अनुक्रमसूचक, आकाक्षासूचक, सातत्यसूचक, स्थितिसूचक, आरभसूचक, अनुमतिसूचक, प्राप्तिसूचक, द्वित्वात्मक और सांज्ञिक।

क. सुविधा के लिए सयुक्त क्रियाओ के उपर्युक्त १२ भेद किये गये है, किन्तु इनमे से कोई भी सयुक्त क्रिया वस्तुत. न तो समासित क्रिया है और न इनमे दो क्रियाओ का संयोजन हुआ है। व्याकरण की दृष्टि से देखा जाये तो इन सयुक्त क्रियाओ मे यौगिक कृदन्त, क्रियार्थक सज्ञा अथवा कोई सहायक क्रिया विशेष अर्थ के लिए क्रिया के साथ मिल कर आती है। उचित और तर्कसम्मत बात तो यह है कि इन संयुक्त क्रियाओ के सम्बन्ध मे 'वाक्यरचना' सम्बन्धी अध्यायमे विचार किया जाये। फिर भी तथाकथित सयुक्त क्रियाओं के सभी भेदो की व्याख्या नीचे की जाएगी। यहाँ इनके समझने मे सुविधा होगी और 'वाक्य रचना' सम्बन्धी अध्याय में दिये गये उदाहरणों से परिचित होने मे भी सहायता मिलेगी।

---

[1] कुछ संयुक्त क्रियाओं का संयोजन निश्चित कालों में ही होता है, अधिक के लिए 'वाक्य-रचना' सम्बन्धी अध्याव देखिए।

संयुक्त क्रियाओं का वर्गीकरण

सुविधा के लिए सयुक्त क्रियाओ को पॉच वर्गो मे बाँटा जाता है—

प्रथम वर्ग

यौगिक कृदन्तो से बनने वाली—

१ उत्कर्ष सूचक
२. सामर्थ्य सूचक
३. पूर्ति सूचक

द्वितीय वर्ग

आकारान्त क्रियार्थक सज्ञाओ से बनने वाली—

१. अनुक्रम सूचक
२ आकांक्षा सूचक

तृतीय वर्ग

क्रिया के सामान्य रूप से बननेवाली—

१ आरम्भ सूचक
२ अनुमति सूचक
३. प्राप्ति सूचक

चतुर्थ वर्ग

अपूर्णता और पूर्णता सूचक कृदन्तो से बनने वाली—

१. सातत्य सूचक
२. स्थिति सूचक
३. द्वित्वात्मक

पंचम वर्ग

सज्ञा अथवा विशेषण से बननेवाली—

(१) सांज्ञिक

प्रथम वर्ग : यौगिक कृदन्त रूपों से बननेवाली संयुक्त क्रियाएँ

§ ४२६. इस वर्ग की संयुक्त क्रियाओं का पूर्वपद सदैव यौगिक कृदन्त रहता है। संवृत क्रियाओ से सदैव और विवृत क्रियाओं से विकल्प मे ऐसे यौगिक कृदन्त का रूप बनता है जो उस क्रिया की धातु से सादृश्य रखता है, जैसे—**बना** देना, **दिखा** सकता आदि। किन्तु बहुत-सी अमिश्रित क्रियाओं से, विशेषतः आकारान्त प्रेरणार्थक क्रियाओ से बनने वाले यौगिक कृदन्त के अन्त मे 'य' का आगम भी होता है, जैसे—**बताय** देना, **दिखाय** देना, किन्तु **खिला** चुका भी। बहुत-सी बोलियों मे इस प्रकार की क्रियाओ के साथ 'य' जोड़कर यौगिक कृदन्त का प्रयोग नियमित बना लिया गया है।

उल्लेखनीय-स्तरीय हिन्दी और उर्दू में इस प्रकार की संयुक्त क्रियाएँ यौगिक कृदन्त का ऐसा रूप रखती हैं, जो धातु से भिन्न दिखाई नहीं देता, इसीलिए यह कहा जाता है कि इस वर्ग की समासित क्रिया के

पूर्वपद मे 'धातु' आती है। हमने ऊपर जो उदाहरण दिये है, उनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यहाँ पूर्वपद मे धातु न रह कर यौगिक कृदन्त प्रयुक्त हुआ है। यदि हम हिन्दी की उन बोलियो के साथ इस पूर्वपद की तुलना करें, जिनमे यौगिक कृदन्त बनाने के लिए स्वरान्त धातु के अन्त मे 'य' (स्तरीय हिन्दी में भी विकल्प से यह 'य') जोड़ा जाता है और व्यंजनान्त धातुओ के अन्त मे 'इ' का आगम होता है, तो मेरे कथन की पुष्टि हो जाएगी। उदाहरण के लिए, ब्रजभाषा मे बिना किसी विकल्प के ऐसे रूप मिलते हैं—बाँटि देनौं, कहि सकतु, काढि लियौ, आदि। रामायण में भी इस तरह के प्रयोग मिलते है—तजि जाय, कहि सक। मैथिली में भी इस तरह के रूप प्रचलित हैं—बोलि सकब, आदि। इन बातों को ध्यान मे रखते हुए इस वर्ग की संयुक्त क्रियाओ के पूर्वपद मे धातु के प्रयोग की बात उचित नही जान पड़ती। स्पष्टतः इन रूपों में पूर्वपद यौगिक कृदन्त माना जाएगा।

उत्कर्षसूचक संयुक्त क्रिया

§ ४२७. इस वर्ग की संयुक्त क्रियाओ के पूर्वपद मे यौगिक कृदन्त रहता है। इस यौगिक कृदन्त के कारण क्रिया के अर्थ मे उत्कर्ष सूचित होता है, अथवा यह अन्य प्रकार से क्रिया के अर्थ को बदलता है।

इस संयोजन में यौगिक कृदन्त के साथ परपद के रूप मे क्रिया रहती है। इस संयोगी क्रिया के रूप चलते है। यौगिक कृदन्त, काल आदि के कारण विकार ग्रहण नही करता। क्रिया अपना स्वतत्र अस्तित्व अथवा अर्थ नही रखती। केवल यौगिक कृदन्त के अर्थ को प्रभावित करती है। उत्कर्षसूचक सयुक्त क्रिया का अग्रेजी में अनुवाद करते समय उत्कर्ष सूचित करने के लिए मिश्रित क्रिया के साथ किसी अन्य शब्द का प्रयोग करना चाहिए। नीचे कुछ उत्कर्षसूचक संयुक्त क्रियाओ का उल्लेख किया जा रहा है—

क्रिया का सामान्य रूप	**संयुक्त**
फेंकना	फेंक देना
तोड़ना	तोड़ देना
काटना	काट डालना
गिरना	गिर पड़ना
गिराना	गिरा देना
जानना	जान पड़ना
खाना	खा जाना
होना	हो जाना
पीना	पी लेना
रोना	रो बैठना
करना	कर दिखाना
लेना	ले लेना
बैठना	बैठ रहना
देखना	देख रखना
बोलना	बोल उठना
चढ़ना	चढ़ बैठना
सौंपना	सौंप रखना

उत्कर्षसूचक क्रियाओं का प्रयोग

§ ४२८. ऊपर जो सयुक्त क्रियाएँ दी गई है, उनमे ऐसी सभी क्रियाओ का समावेश है जो उत्कर्ष प्रकट करने के लिए अन्य क्रियाओ से बने यौगिक कृदन्तो के साथ प्रयुक्त होती हैं। इस प्रकार की अधिकाश सयुक्त क्रियाओ को अग्रेजी मे अनुवादित करते समय क्रिया के साथ क्रियाविशेषण की भाँति उचित पूर्वसर्ग का प्रयोग करना चाहिए। इससे उत्कर्षसूचक क्रिया के कारण होने वाला अर्थ-परिवर्तन व्यक्त हो जाएगा। प्रत्येक उदाहरण मे परपद (क्रिया) का ठीक-ठीक अंग्रेजी पर्याय देना बहुत कठिन है, फिर भी यहाँ बहुत कुछ समानार्थी शब्द दिये जा रहे है—

बैठना=Permanence (स्थायित्व)
देना=Intensity (उत्कर्ष)
आना=Reflexion (प्रभाव)
जाना=Finality Completeness (अन्तिमता, समाप्ति, पूर्णता)
उठना=Suddenness (तत्कालता)
डालना=violence (वेग)
पड़ना=Chance (अवसर)
लेना=Reflexion, aproiation (प्रभाव, उपयुक्तता)
रहना=continuance (सातत्य)

क. ऊपर 'बैठना' आदि जो आठ क्रियाएँ दी गई है, उनके सम्बन्ध मे यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि √देना (चल देना को छोड़कर) और √डालना का प्रयोग सकर्मक क्रिया के यौगिक कृदन्त रूप के साथ ही होता है। आना और √उठना का प्रयोग अकर्मक धातु के यौगिक कृदन्त रूप के साथ होता है। अन्य क्रियाओ का प्रयोग सकर्मक तथा अकर्मक दोनो प्रकार की क्रियाओ से बने यौगिक कृदन्तों के साथ किया जा सकता है। 'कर आना', 'देख आना' जैसी समासित क्रियाओ को उत्कर्षसूचक संयुक्त क्रियाओ मे सम्मिलित करना इसलिए कठिन है कि इन उदाहरणो मे दोनो क्रियाएँ अपने-अपने अर्थ को व्यक्त करती है। इस प्रकार की समासित क्रियाओ के अन्य उदाहरण इस प्रकार है—

देख आना, न्हाय आना, आदि।

ख. यह बात भी उल्लेखनीय हैं कि सयोगी क्रिया के रूप मे √देना का सयोजन प्रायः प्रेरणार्थक रूपो के साथ होता है, जैसे—बना देना, समझा देना, निकाल देना। किन्तु कुछ प्रेरणार्थक रूपों के साथ √देना का प्रयोग नही किया जाता; जैसे—'बुला देना' के स्थान पर 'बुला लेना' का प्रयोग उचित समझा जाता है।

ग. √जाना का प्रयोग प्रायः अकर्मक क्रियाओ से बने यौगिक कृदन्त के साथ होता है; जैसे—टूट जाना, मिल जाना, पहुँच जाना। कहीं-कही सकर्मक क्रियाओ से बने यौगिक कृदन्तो के साथ भी √जाना का प्रयोग मिलता है; जैसे—खा जाना, कह जाना।

घ. वक्ता के निकट घटने वाली क्रिया को व्यक्त करने के लिए कहीं-कही √जाना के स्थान पर आना का प्रयोग किया जाता है; जैसे—कंधे झुक आये हैं, आज यह चोर यम के घर से बच आया।

ङ. 'रहना' क्रिया से बनने वाली संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग अधिक किया जाता है, किन्तु अधिकाश प्रयोगों मे वे पूर्णता द्योतक कृदन्त के रूप मे प्रयुक्त होती हैं। √रहना से बनने वाली सयुक्त क्रिया

अवधारण के साथ क्रिया के सातत्य अथवा स्थायित्व को व्यक्त करती है; जैसे—बैठ रहो, दोनों लड़के खेलते थे, किन्तु दोनो लडके खेल रहे थे, यह सुनता है, किन्तु वह सुन रहा है।

स्मरणीय—कई अधिकारी वैयाकरणो ने यह प्रश्न उपस्थित किया है कि √रहना के योग से बननेवाली सयुक्त क्रियाओं को 'उत्कर्षसूचक सयुक्त क्रिया' मानना चाहिए या नही। √रहना के योग से बनने वाली सयुक्त क्रियाओं के वर्तमान और पूर्ण भूतकाल को पंडित लोग विशेष नाम से सम्बोधित करते है। √रहना से संयोजित क्रिया के वर्तमानकाल को तात्कालिक वर्तमानकाल और भूत को तात्कालिक अपूर्ण भूतकाल।

च जब यौगिक कृदन्त के साथ संयोगी क्रिया √लेना का प्रयोग होता है, तो **उसका** तात्पर्य है कि क्रिया का प्रभाव कर्त्ता पर पड़ रहा है। कर्त्ता के निकट घटित होने वाली क्रिया को व्यक्त करने के लिए भी √लेना का उपयोग होता है। इस संयोगी क्रिया से यह भी ज्ञात होता है कि लाभ सीधे कर्त्ता को पहुँचता है। 'बुलाना' और 'बुला लेना' तथा 'रखना' और 'रख लेना' का भेद समझना चाहिए। 'शकुन्तला' के इस वाक्य पर ध्यान दीजिए—"उसको जब मै अपने मन की कल्पना से पूरा कर लेता हूँ।" संयुक्त क्रियाओ में लेना का प्रयोग √देना के सर्वथा विपरीत होता है। √लेना से इस बात का ज्ञान होता है कि क्रिया का प्रभाव अथवा लाभ सीधे कर्त्ता पर पडता है अथवा कोई व्यापार कर्त्ता के निकट, घटित हो रहा है, जबकि √देना से निश्चय के साथ क्रिया का प्रभाव दूसरे व्यक्ति पर पडता है; जैसे—'समझ लेना' का तात्पर्य है स्वय समझना, किन्तु 'समझा देना' का अर्थ है—दूसरे को समझाना। √आना का प्रयोग भी लगभग 'लेना' के अर्थ मे ही होता है, किन्तु √लेना की अपेक्षा इसका प्रयोग कम होता है।

छ. √पडना का प्रयोग सकर्मक तथा अकर्मक दोनो प्रकार की क्रियाओं के साथ होता है, किन्तु प्रेरणार्थक क्रिया के साथ इसका प्रयोग नही मिलता। प्रेरकता का भाव 'अवसर' या 'सयोग' के तात्पर्य को समाप्त करता है, वास्तव मे पड़ना से 'अवसर' अथवा 'संयोग' की अभिव्यक्ति होती है, हम 'देख पड़ा' कहते हैं, न कि 'दिखा पडा'।

ज. बहुत से उदाहरणो में देखा जाता है कि एक यौगिक कृदन्त अनेक क्रियाओं के साथ जुडता है। कई उदाहरणों से यह बात स्पष्ट की जा सकती है; √खाना से 'खा जाना', 'खा लेना' और 'खा रहना'; इसी प्रकार मारना से 'मार देना' और 'मार डालना'।

§ ४२९. जिस संयुक्त क्रिया के परपद की क्रिया पूर्वपद की क्रिया के अर्थ को प्रभावित करती है, उसे अंग्रेजी में अनुवादित करते समय या तो किसी अव्यय का उपयोग किया जाता है या फिर पर पद के भाव को व्यक्त करने के लिए स्वतन्त्र अमिश्रित क्रिया का आश्रय लेना पड़ता है। यह होते हुए भी अंग्रेजी मे हिन्दी की अमिश्रित तथा समासित क्रिया के अर्थ-भेद को ठीक तरह से व्यक्त करना बहुत कठिन है। अंग्रेजी ही नहीं, हिन्दी मे भी ऐसी समासित क्रिया जिसके परपद में √देना का उपयोग हुआ है और अमिश्रित क्रिया के अर्थभेद को व्यक्त करना सरल नही है; जैसे 'समझना' और 'समझा देना', 'दिखाना' और 'दिखा देना' का प्रयोग एक-दूसरे के लिए होता है। 'समझना' और 'समझा देना' इसी तरह दिखाना और 'दिखा देना' से यह बात स्पष्ट दिखाई नही देती कि किस रूप में अवधारण का भाव अधिक है। किन्तु जहाँ अर्थभेद होता है, वहाँ उसी प्रकार का होता है, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

§४३० बोलियों मे समासित क्रियाओ का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक होता है। क्षेत्रीय बोलियों और स्तरीय हिन्दी के गद्य मे यौगिक कृदन्त तथा क्रिया के मध्य कोई न कोई अव्यय, विशेषरूप से नकरार्थक अव्यय, का प्रयोग अधिक होता है; जैसे— कुछ देख **नहीं** पडता है, टूट **तो** गया। कहीं-कहीं यौगिक कृदन्त और संयोगी क्रिया के मध्य एक से अधिक शब्द आते है; शकुन्तला का यह वाक्य:

देखिये—**हो तो ऐसा ही** गया हूँ। कृदन्त और ई क्रिया के मध्य इस प्रकार के शब्द अथवा अव्यय अवधारण के लिए आते है। बहुत कम स्थानो पर ही क्यों न हो, बोलियो मे यौगिक कृदन्त सयोगी क्रिया के पश्चात् भी आता है, जैसे—'वह गया है **भाग**'। इस प्रकार का विपर्यय मुहावरेदार गद्य मे उचित नही माना जाता, किन्तु कविता मे उसका प्रयोग कई स्थलों पर हुआ है।[1]

§४३१ विद्यार्थी लोग उत्कर्षसूचक समासित क्रियाओ और ऐसी समासित क्रियाओ जिनके परपद की क्रिया अपने अर्थ को सुरक्षित रखती है, दोनो का भेद ठीक तरह से समझ ले। दोनो प्रकार की समासित क्रियाओं मे कई बार भ्रम होता है; जैसे—उस गाँव को **देख आओ**, मै माली के घर हो **आया हूँ**।

क 'ले जाना' का प्रयोग दोनो अर्थ मे होता है, एक तो दो स्वतत्र क्रियाओ के समासित रूप मे, तब इसका अर्थ होगा 'लेते हुए आना' और दूसरे उत्कर्षसूचक संयुक्त क्रिया के रूप मे, तब इसका अर्थ होगा—'लाना', 'कह सुनना' और 'आ मिलना' आदि का प्रयोग भी दो तरह से होता है।

§४३२. कई संयुक्त क्रियाओ मे √चढना का यौगिक कृदन्त रूप 'चढ' पूर्वपद मे रहता है और परपद मे गतिसूचक कोई क्रिया रहती है। इन संयुक्त क्रियाओ मे परपद प्रधान होता है, यौगिक कृदन्त केवल 'आक्रमण' का अर्थ देता है, उदाहरण है—चढ़ धाना, चढ बैठना, (यहाँ 'बैठना' का आशय है 'दुर्निवार') चढ दौडना, जैसे—वह सब कटक ले चढ धाया। एक और भी—काशी राजा चढ़ दौड़ा।

सामर्थ्यसूचक संयुक्त क्रियाएँ

§४३३. सामर्थ्यसूचक सयुक्त क्रिया के पूर्वपद मे किसी भी क्रिया का यौगिक कृदन्त रूप और परपद मे 'सकना' क्रिया का सयोजन होता है। सकना के रूप चलते हैं। सामर्थ्यसूचक सयुक्त क्रिया से पूर्वपद मे आनेवाली क्रिया के करने की सामर्थ्य व्यक्त की जाती है। उदाहरण निम्न प्रकार है—

बोल सकना; वह दौड सकता है; मैं जा सकूँगा; वे आ सके।

क कभी-कभी √सकना के साथ यौगिक कृदन्त के स्थान पर क्रियार्थक सज्ञा का विकारी रूप आता है, जैसे—'मैं नही जाने सकता हूँ।'[2] किन्तु यह प्रयोग व्याकरण-सम्मत नही है। मथुरा के आस-पास यह वाक्य अशुद्ध माना जाता है।

पूर्तिसूचक संयुक्त क्रिया

§४३४. यौगिक कृदन्त के साथ √'चुकना' क्रिया के योग से पूर्तिसूचक सयुक्त क्रिया बनती है। √चुकना के रूप चलते है। √चुकना के अपूर्णतासूचक कृदन्त रूप 'चुकता' का प्रयोग कम मिलता है। सयुक्त क्रिया के पूर्वपद मे प्रयुक्त क्रिया की पूर्णता का पता सयोगी चुकता से चलता है। सयुक्त क्रिया और पूर्णता द्योतक क्रिया के आशय मे भिन्नता होती है, इसके द्वारा क्रिया की पूर्ति अधिक अवधारण के साथ व्यक्त की जाती है। जैसे—'उसने खाया' किन्तु वह 'खा चुका'।

क. √चुकना के आशय को अंग्रेजी में प्राय: 'ऑलरेडी' शब्द से व्यक्त किया जाता है, जैसे—'वह तो जा चुका है! (he is indeed already gone)। जब इस प्रकार की संयुक्त क्रिया

---

[1] अधिक उदाहरणों के लिए बोलियों की रूपावली देखिए।

[2] इस प्रकार का वाक्य अंग्रेज लोग बोलते थे। स्पष्टरूप से इसकी रचना पर अंग्रेजी का प्रभाव है।—अनुवादक

सामान्य भविष्य के लिए प्रयुक्त होती है तो उसे अंग्रेजी मे पूर्ण भविष्यकाल के द्वारा व्यक्त किया जाता है, जैसे—'जब वह खा चुकेगा' (when he shall have eaten अथवा shall have done eaten.)।

द्वितीय वर्ग : क्रियार्थक संज्ञा के योग से बनने वाली संयुक्त क्रिया[1]

अनुक्रमसूचक संयुक्त क्रिया

§४३५. आकारान्त क्रियार्थक संज्ञा और √करना के योग से अनुक्रमसूचक सयुक्त क्रिया की रचना की जाती है। √करना के रूप चलते हैं। क्रियार्थक संज्ञा पर काल आदि का प्रभाव नही पडता। √करना पूर्वपद की क्रिया के बार-बार होने या उसके नियमित अभ्यास को प्रकट करती है। जैसे—पढ़ा करता, आया करो, वह कहा करता है, आदि।

क. अंग्रेजी का क्रियाविशेषण 'आल्वेज' (always) जहाँ निश्चित अवधि का विधान न कर क्रिया के दुहराने अथवा नियमित अभ्यास को प्रकट करता है, वहाँ हिन्दी मे अनुक्रमसूचक संयुक्त क्रिया प्रयुक्त होती है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी का यह वाक्य लीजिए—he always bathes in the morning (=वह तड़के स्नान किया करता है)। इसके विपरीत अग्रेजी का यह वाक्य है—we shall be always happy (=हम सदा आनन्द में रहेगे)। स्तरीय हि० के अन्य उदाहरण है—मै शास्त्र को पढ़ा करता हूँ, तुम मेरी बातें माना करो, तुम क्यो ऐसा किया करते हो। अनुक्रमसूचक सयुक्त क्रिया को अग्रेजी के इन वाक्यों से भी स्पष्ट किया जा सकता है—he does washing; he does much talking।

आकांक्षा सूचक

§४३६. अनुक्रमसूचक की भाँति आकांक्षा सूचक संयुक्त क्रिया में भी क्रिया का सामान्यरूप प्रयुक्त होता है। इसके साथ √चुकना के स्थान पर 'चाहना' क्रिया समासित होती है। पूर्वपद मे प्रयुक्त क्रिया के होने की आकाक्षा व्यक्त की जाती है। प्रसग से क्रिया के काल का बोध होता है। जैसे—वह बोला चाहता है, घड़ी बजा चाहती थी।

---

[1] यह कहा जाता है कि इस वर्ग की संयुक्त क्रियाएँ पूर्णताद्योतक कृदन्तों से बनती हैं, किन्तु यह धारणा उचित नही है। वास्तविकता यह है कि इस वर्ग की समासित क्रियाओं के पूर्वपद में क्रियार्थक संज्ञा अथवा क्रिया का सामान्य रूप आता है, जो धातु के साथ 'ना' के योग से बनता है। इस प्रकार के रूप का पूर्णताद्योतक कृदन्त के पुंल्लिगवाची रूप के साथ सादृश्य एक प्रकार का संयोग ही है। स्तरीय हिन्दी में क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग इस संयुक्त क्रिया में ही होता है, किन्तु बंगाली में इसके तीन वैकल्पिक रूप हैं—चलन=स्त० हि० चलना; चालिबा=ब्रज० चलिबौ; चला। क्रिया का यह सामान्य रूप पूरबी बोलियों में ऐकारान्त बनकर समासितों में प्रयुक्त होता है, जैसे—चलै लग=स्त० हि० चलने लगा। सुनै चह=स्त० हि० सुना चाहा। इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि इन समासितों में 'चला' और 'चलै' क्रिया के सामान्य रूप अथवा क्रियार्थक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हुए है, 'चला' पर्याय है 'चलना' का और 'चलै' पर्याय है 'चलने' का, अन्त्य 'ना' के स्थान पर अन्त्य 'आ' का प्रयोग मिलता है। इस संयुक्त क्रिया के सम्बन्ध में यह धारणा प्रथम संस्करण में व्यक्त की गई थी। इस पुस्तक के प्रथम संस्करण के पश्चात् मैंने जो अध्ययन किया है, उससे यह धारणा अधिक पुष्ट हुई है। हार्नली ने बहुत-सी बोलियों के उदाहरण देकर मेरे विचार का समर्थन किया है। देखिए, हार्नली—कम्प० ग्राम०, पृ० ३८८, ३२६, १४७।

क. पूर्वपद की क्रियार्थक संज्ञा प्राय: विकारी अवस्था में प्रयुक्त होती है। जैसे वह आने चाहता है।[1] इस प्रकार की सयुक्त क्रियाओ मे √चाहना कभी-कभी पूर्णता द्योतक कृदन्त रूप में भी आती है। वैयाकरण इस प्रकार के प्रयोग को स्वीकार नही करते, किन्तु शकुन्तला मे इस रूप का प्रयोग मिलता है—"मैंने तपस्वी की कन्या को चलने से रोकना चाहा।"

उल्लेखनीय—इन उदाहरणो मे क्रिया का सामान्य रूप क्रियार्थक सज्ञा के रूप मे आया है और वह चाहना से नियन्त्रित रहता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो इस वर्ग की संयुक्त क्रिया तृतीय वर्ग की संयुक्त क्रियाओ से सादृश्य रखती है। यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाये तो इन समासित रूपो को संयुक्त क्रिया कहना पूर्णतया उचित नही जान पड़ेगा।

§ ४३७. जब आकाक्षा सूचक सयुक्त क्रिया में √चाहना का आदरार्थक रूप 'चाहिए' आता है तो उससे कर्तव्य अथवा आवश्यकता का बोध होता है; जैसे इस पुस्तक को पढ़ा चाहिए। इस प्रकार की रचना के सम्बन्ध मे 'वाक्य रचना' अध्याय मे अधिक लिखा जाएगा। इस प्रकार के सयोगों में क्रिया के आकारान्त रूप की अपेक्षा क्रियार्थक सज्ञा का सीधा अपरिवर्तित रूप प्रयुक्त होता है, जैसे—'वहाँ जाना चाहिए।'

तृतीय वर्ग : क्रिया के विकारी सामान्यरूप से बनने वाली संयुक्त क्रिया

आरंभ सूचक

§ ४३८. क्रिया के विकारी सामान्य रूप के साथ √लगना के योग से आरम्भसूचक संयुक्त क्रिया की रचना होती है। इस रूप से पूर्वपद की क्रिया के प्रारंभ होने का परिचय मिलता है। इस संयुक्त क्रिया का प्रयोग उस समय भी होता है जब पूर्वपद की क्रिया बिना रुके होती रहती है। बातचीत में 'कहने लगा' का तात्पर्य है, उसने कहना प्रारम्भ किया। अन्य उदाहरण है—मारने लगा, खाने लगा। सभी स्थानो पर तो नहीं, किन्तु, अधिकाश स्थलों पर √लगना का प्रयोग पूर्णता द्योतक कृदन्त के रूप मे होता है।

अनुमति सूचक

§ ४३९. क्रिया के विकारी सामान्य रूप के साथ √देना के योग से अनुमतिसूचक संयुक्त क्रिया की रचना की जाती है। इस प्रयोग से पूर्वपद में प्रयुक्त क्रिया की अनुमति सूचित होती है, जैसे—मुझे जाने दो, मुझे बोलने दीजिए, उसने उसको खाने दिया।

प्राप्ति सूचक

§ ४४० प्राप्तिसूचक संयुक्त क्रिया की रचना अनुमतिसूचक सयुक्त क्रिया के समान होती है, अन्तर इतना ही है कि इस सयोजन मे √देना के स्थान पर √पाना का प्रयोग होता है, जैसे—तुम वहाँ जाने नही पाओगे, मैं बैठने नही पाया। यह बात ध्यान देने योग्य है कि √पाना भूतकालिक 'पाया' के योग से बननेवाली संयुक्त क्रिया और √करना के भूतकालिक रूप 'किया' से बनने वाली अनुक्रम सूचक संयुक्त क्रिया के साथ विकारी कर्त्ताकारक का प्रयोग कभी नही होता।

§ ४४१ क्रिया के सामान्य रूप अथवा क्रियार्थक सज्ञा से बननेवाली समासित क्रियाओं मे पूर्वपद की क्रिया परपद की क्रिया से नियन्त्रित रहती है; जिस तरह कि क्रियार्थक संज्ञा के स्थान पर आनेवाली

---

[1] स्तरीय हिन्दी में यह प्रयोग उचित नहीं माना जा सकता—अनुवादक।

सज्ञा क्रिया द्वारा नियंत्रित होती है, केवल 'लगना', 'देना' और 'पाना' ही नही अन्य क्रियाएँ भी इसी तरह से सामान्य रूपों के साथ समासित हो सकती है; जैसे 'जाने माँगना', 'देने चाहना', मै नही जा सकता हूँ, के स्थान पर 'मै नही जाने सकता हूँ'[१]। अन्तिम दोनो उदाहरणो मे क्रिया के विकारी सामान्य रूप का प्रयोग स्तरीय हिन्दी की दृष्टि से ठीक नही है, किन्तु बोलियो मे इन रूपो का प्रयोग हुआ है।

चतुर्थ वर्ग : अपूर्णता तथा पूर्णता सूचक कृदन्त से बनने वाली संयुक्त क्रियाएँ

सातत्य सूचक

§ ४४२. सातत्य सूचक सयुक्त क्रियाओ की रचना किसी क्रिया के अपूर्णता सूचक कृदन्त के साथ √रहना के योग से की जाती है। इस प्रकार की संयुक्त क्रियाओ मे कृदन्त कर्त्ता के अनुबद्ध विधेयक के रूप में प्रयुक्त होता है। अत. वह लिग और वचन के सम्बन्ध मे कर्त्ता का अनुसरण करता है। इस सयुक्त क्रिया द्वारा अपूर्णता सूचक कृदन्त के व्यापार के चालू रहने का पता चलता है, जैसे—वह गाती रहती है, तुम क्यो हँसते हो; नदी की धार बहती रहती हैं।

स्मरणीय—१. 'जाता रहा' एक उदाहरण है, इसका अर्थ है 'मर गया', जैसे—'मेरा पिता जाता रहा है'। वस्तुओं का विनाश सूचित करने के लिए भी इस मुहावरे का प्रयोग होता है, जैसे—'सब कुछ जाता रहा।'

स्मरणीय—२. मिलते-जुलते अन्य क्रिया-रूपो के साथ इन रूपो की तुलना करना लाभदायक सिद्ध होगा। उदाहरण के लिए इन प्रयोगो पर ध्यान दीजिये—'वह पढ़ता है', 'वह पढ रहा है', 'वह पढ़ता रहता है;' 'बहता जाना'; 'बहता रहना'।

प्रगतिसूचक संयुक्त क्रिया

§ ४४३. इस प्रसंग में मैं √जाना के योग से बनने वाली सयुक्त क्रियाओ का उल्लेख करना चाहता हूँ। सयुक्त क्रियाओं में प्रगतिसूचक सयुक्त क्रिया की गिनती नही की गई है। √जाना के योग से रची जाती है। कुछ लोगों ने जाना और रहना के योग से बनने वाली समासित क्रियाओं को सातत्य सूचक श्रेणी में गिना है, किन्तु वास्तविकता यह है कि जहाँ √रहना का प्रयोग होता है, वहाँ √जाना का प्रयोग नही किया जा सकता इसलिए इन दोनों के समासित रूपो को एक ही श्रेणी मे रखना उचित प्रतीत नहीं होता, इसीलिए 'प्रगति सूचक' संयुक्त क्रिया, मानना उचित प्रतीत होता है। इस समासित रूप से यह ज्ञात होता है कि स्थिरता से आगे बढ़ रही या हो रही है। जैसे—वह लिखता जाता है; वे लडकियाँ बढती जाती थी, पानी बहता जाता है।

§ ४४४. ऊपर जो उदाहरण दियें गये है, उनसे मिलते-जुलते उदाहरण उन संयुक्त क्रियाओं के है जिनके पूर्वपद मे पूर्णता सूचक कृदन्त और परपद मे कोई गति सूचक क्रिया आती है; जैसे—भागा जाना, चला आना, आदि। अपूर्णतासूचक कृदन्त रूपो से बनी संयुक्त क्रियाओ की भाँति पूर्णता सूचक कृदन्तों से बनने वाली क्रिया भी कर्त्ता के लिंग और वचन ग्रहण करती हैं; जैसे—लौडी चली जाती थी।

---

[१] ये सभी उदाहरण विदेशी लोगों के मुँह से सुने हुए हैं। स्तरीय हिन्दी की दृष्टि से ये प्रयोग उचित नहीं हैं। 'जाने माँगना' की रचना अंग्रेजी वाक्य-रचना का परिणाम है। 'देने चाहना' के स्थान पर 'देना चाहना' उचित है, 'मैं नहीं जाने सकता हूँ' पर भी विदेशी प्रभाव लक्षित होता है।—अनुवादक।

क. कहीं-कहीं ऐसा प्रतीत होता है कि इन सयुक्त क्रियाओं का पूर्णकालिक कृदन्त विकारी एकवचन का रूप धारण करता है, यह बात नीचे दी गई स्थिति सूचक संयुक्त क्रियाओ के कृदन्तो मे भी दिखाई देती है, जैसे—'कहे जा', किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि इस प्रकार के प्रयोगो मे विकारी एकवचन न होकर अवधारणार्थ अव्यय ही विकृत अवस्था मे विद्यमान है; कहे जा=कहहि जा।[1]

स्मरणीय—इस सयुक्त क्रिया को अग्रेजी मे सर्वत्र अनुवादित करना सरल नही है। पूर्णतासूचक कृदन्त का अर्थ जान लेना आवश्यक है। इस रूप से यह व्यक्त होता है कि क्रिया विशेष स्थिति तक पूरी हो चुकी है, इस स्थिति का पता इस सयुक्त क्रिया से चलता है। यह भी ज्ञात होता है कि क्रिया अभी शेष है, अथवा रुकी नही है। इस वाक्य पर ध्यान दीजिए—'एक बाघ पड़ा फिरता था' इस वाक्य मे पहले इस बात का विधान किया गया कि 'बाघ पड गया' और फिर यह प्रतिपादित किया गया कि चारो ओर रेंगता फिरता था। इस प्रकार की संयुक्त क्रियाओ को पूर्णता द्योतक 'प्रगतिसूचक' कह सकते है। यदि सयुक्त क्रिया के पूर्वपद मे अपूर्णतासूचक कृदन्त है, तो, उस संयुक्त क्रिया को 'अपूर्णता सूचक प्रगति द्योतक सयुक्त क्रिया' कह सकते है।

स्थितिसूचक संयुक्त क्रिया

§४४५ स्थिति सूचक संयुक्त क्रिया से, चलते हुए कार्य अथवा गति की स्थिति का पता चलता है। अपूर्णता सूचक कृदन्त के पुल्लिगवाची विकारी रूप के साथ गतिसूचक क्रिया का प्रयोग करने से स्थिति सूचक सयुक्त क्रिया की रचना होती है। लिग और वचन के कारण अपूर्णता सूचक कृदन्त में कोई विकार नही होता, जैसे—वह रोते हुए आता है; एक स्त्री गाते आती थी।

द्वित्वात्मक संयुक्त क्रिया

§४४६ तथाकथित द्वित्वात्मक संयुक्त क्रियाओं के सम्बन्ध मे अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। द्वित्वात्मक संयुक्त क्रिया मे समान अर्थ अथवा मिलते-जुलते अर्थों वाली दो क्रियाएँ समासित होती है। दोनों क्रियाओं में थोडा-बहुत ध्वनि सादृश्य रहता है। दोनों या तो कालवाची कृदन्त के रूप मे प्रयुक्त होती है या यौगिक कृदन्त के रूप मे, जैसे—बिन **समझाए बुझाए**; सब **छोड़ छाड़**; **देख भाल** कर[2]। इस संयोजन मे परपद पूर्वपद के अर्थ मे या तो कोई वृद्धि नही करता या बहुत कम भेद उत्पन्न करता है। अनुप्रास और तुक में हिन्दू बहुत रुचि लेते है, मेरा विचार है, इस प्रकार के द्वित्व प्रयोग केवल श्रवण-सुख के लिए है।

§४४७ ऊपर जो उदाहरण दिये गये है, उनके अतिरिक्त भी अनेक समासित क्रियाएँ बन सकती हैं। इन सयुक्त क्रियाओ मे एक साथ एकाधिक धातुएँ, क्रियार्थक संज्ञाएँ और कृदन्त आ सकते हैं। इस स्थिति मे रूप अन्तिम क्रिया का ही चलता है, शेष क्रियाओं में किसी प्रकार का विकार नही होता; जैसे—जब वे सब कुछ **खा पी गये**; मैं न **पढ़** न **लिख सकता** हूँ; वह **आया जाया करता** था; वे **गा पढ़** चुके है, मैं **पढ़ा लिखा** भी चाहता हूँ; वह **नाचता गाता चला जाता** था; वह मुझे **आने जाने** देगा।

---

[1] स्तरीय हिन्दी में कहे जा=कहता ही जा।—अनुवादक।

[2] मेरी जानकारी के अनुसार √भालना का प्रयोग 'देखना' क्रिया के इसी प्रकार के संयोजनों में होता है।

पञ्चम वर्ग : संज्ञाओं अथवा विशेषणों से बननेवाली सयुक्त क्रियाएँ

संज्ञा से बनने वाली संयुक्त क्रिया

§ ४४८. कभी-कभी कोई सज्ञा अथवा विशेषण क्रिया के साथ इस तरह समासित होता है कि अर्थ की दृष्टि से दोनो का पार्थक्य समाप्त हो जाता है। दोनो से एक अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार के समासित रूप को साज्ञिक सयुक्त क्रिया कहते है। अधिकाश साज्ञिक संयुक्त क्रिया √होना अथवा √करना के योग से रची जाती है। कुछ रूपों में अन्य क्रियाएँ भी समासित होती हैं। इस प्रकार की संयुक्त क्रिया के लिए अग्रेजी में प्राय: एक ही शब्द प्रयुक्त होता है। सांज्ञिक क्रिया के उदाहरण हैं—खड़ा होना (अकर्मक), खड़ा करना (सकर्मक), प्राप्त करना, समाप्त होना, मोल लेना; आदि।

क. जब सांज्ञिक सयुक्त क्रिया मे √करना के स्थान पर √'होना' का उपयोग किया जाता है तो वह सकर्मक बन जाती है। स्तरीय हिन्दी मे 'प्राप्त करना' और 'प्राप्त होना' इस अन्तर को स्पष्ट करते हैं। आगे चल कर जो सूची दी जा रही है, उसमे बहुत से उदाहरण मिलेंगे।

स्मरणीय—जब किसी के प्रति विशेष आदर प्रकट करने की आवश्यकता हो अथवा भाषा को अधिक परिष्कृत रूप में प्रयुक्त करना हो, विशेषरूप से कविता मे तो सांज्ञिक संयुक्त क्रिया में संस्कृत की तत्सम संज्ञा अथवा कृदन्त 'होना' अथवा 'करना' के साथ समासित होते है। 'करना' अथवा 'होना' के अतिरिक्त कोई अन्य अमिश्रित क्रिया भी प्रयुक्त हो सकती है। अंग्रेजी में विभिन्न शब्दों की सहायता से समासित क्रिया का अर्थ-भेद व्यक्त किया जाता है। जैसे—देखना के लिए 'दर्शन करना' खाना के स्थान पर 'भोजन करना', 'जाना' के लिए 'प्रस्थान करना' अथवा 'प्रस्थित होना'। बोलते अथवा लिखते समय छात्र को इन सब बातों पर ध्यान रखना चाहिए।

§ ४४९. सांज्ञिक संयुक्त क्रियाओ की रचना-सम्बन्धी कुछ विशेषताएँ हैं। नियम बनाकर इसका वर्गीकरण सभव नही है। छात्रों की सुविधा के लिए हम यहाँ सांज्ञिक संयुक्त क्रियाओं की सूची दे रहे हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि कारक बदलने से इनका अर्थ भी बदलता है।

§ ४५० करना के योग से बनने वाली सांज्ञिक संयुक्त क्रियाएँ[1]

इन सयुक्त क्रियाओं के पहले 'को' परसर्ग युक्त सज्ञा आती है—

अगीकार करना
आछादन करना
पालन करना
पीछे करना

---

[1] इस तथा आगे की सूची के शब्द इलाहाबाद निवासी पण्डित लक्ष्मीनारायण ने भेजे हैं। इस सूची में बहुत कम शब्द मैने अपनी ओर से जोड़े हैं। पिनकाट के 'हिन्दी मैनुअल' में दी गई पूरी सूची का भी उपयोग किया गया है। मैने कुछ उर्दू शब्द विशेषरूप से लिए हैं, इन उर्दू-शब्दों के बारे में शुद्धतावादी लोग कह सकते हैं कि इनका हिन्दी से कोई सम्बन्ध नहीं है; किन्तु मै व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि हिन्दू लोग उर्दू के इन शब्दों का प्रयोग करते हैं। श्री पिनकाट की सूची से मेरी सूची की तुलना की जाए तो दोनों में रचना सम्बन्धी अन्तर कम दिखाई देगा। मैने अपने पंडितजी का अनुकरण करते हुए यथा-स्थान रचना-सम्बन्धी अन्तर का उल्लेख कर दिया है।

आलिंगन करना
आहार करना
उद्धार करना[1]
उपदेश करना
गुण करना
ग्रहण करना
चिन्तन करना
छिदन करना
ताड़न करना
त्यागन करना
दहन करना
नष्ट करना
निवारण करना
परिपालन करना
पसन्द करना
प्रणाम करना
प्रबोध करना
बस करना
बिदा करना
भग करना
भला करना
भर्त्ता करना
भोग करना
भोजन करना
मर्दन करना[2]
मोह करना
बध करना
वश करना
शासन करना
सहन करना

§ ४५१. निम्नलिखित संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग सम्बन्ध कारक की संज्ञा के साथ होता है। संयुक्त क्रिया का पूर्वपद सम्बन्ध कारक की संज्ञा से सम्बन्धित रहता है—

अधीनताई करना
अध्ययन करना
अनादर करना
अनुमान करना
अनुष्ठान करना
अपकीर्ति करना
अपमान करना
अपेक्षा करना
अभ्यास करना
अभिमान करना
अवलंबन करना
आचरण करना
दाह करना
धन्यवाद करना
ध्यान करना
निग्रह करना
निन्दा करना
न्याय करना
परीक्षा करना
पीछा करना
पूजन करना
पूजा करना
प्रकाश करना
प्रतिपाल करना

---

[1] धार्मिक दृष्टि से इसका प्रयोग होता है। मेरे पंडितजी का विचार है—जिस व्यक्ति का उद्धार किया जाता है, उसे सम्बन्ध कारक में रखते है।

[2] जिसकी मालिश की जाती है, उसे मुख्य कर्मकारक की भाँति 'को' परसर्ग के साथ प्रयुक्त करते हैं और जो मालिश करता है उसे अपादान कारक में रखा जाता है। यदि मालिश करानेवाले व्यक्ति को मुख्य कर्त्ता के रूप में न रखा जाये तो उसके साथ सम्बन्ध कारक के परसर्ग जुड़ते हैं।

आग्रह करना
आतिथ्य करना
आरंभ करना
आशंका करना
आश्रय करना
इच्छा करना
उद्धार करना
उपकार करना
उपार्जन करना
खेद करना
चिन्ता करना
चेष्टा करना
चौकसी करना
वारण करना
लोभ करना
वध करना
विचार करना
विवरण करन
सलाह करना
विश्वास करना
विस्तार करना
व्यापार करना
शिक्षा करना
शिष्टाचार करना
शोक करना
शोधन करना
संचय करना
सम्पादन करना
सन्मान करना

प्रतिष्ठा करना
प्रतीक्षा करना
प्रतीति करना
प्रदक्षिणा करना[1]
प्रमाण करना
प्रशसा करना
प्रार्थना करना
बखान करना
बडाई करना
बाधा करना
बिगाड करना
बिनती करना
भला करना
रक्षण करना
रखवाली करना
लालन करना
संयम करना
सत्कार करना
सलाह करना
साम्हना करना
सुध करना
सेवन करना
सेवा करना
स्तुति करना
स्थापन करना
स्वीकार करना
हत्या करना
हानि करना

§४५२. निम्नलिखित सयुक्त क्रियाएँ 'का' 'की', अथवा 'को' परसर्ग युक्त संज्ञा के साथ आती है—

उपदेश करना
घात करना

परित्याग करना
प्रतिपादन करना

---

[1] १. एक धार्मिक क्रिया।

त्याग करना
निश्चय करना
निवारण करना
वर्जन करना
वर्णन करना
स्पर्श करना

§४५३. निम्नलिखित सयुक्त क्रियाएँ 'का', 'की' अथवा 'से' परसर्ग युक्त सज्ञा के साथ प्रयुक्त होती है—

भेद करना
ठट्टा करना
पूछपाछ करना
पूछी गछी करना[1]

§४५४. निम्नलिखित क्रियाएँ 'का', 'की' अथवा 'पर' परसर्गयुक्त सज्ञा के साथ आती है—

अचम्भा करना
हठ करना

§४५५. निम्नलिखित सयुक्त क्रियाएँ 'से' परसर्ग युक्त अपादान कारक की सज्ञा के साथ आती है—

आचरण करना
आनंद करना
क्षमा करना
गुजारा करना
द्रोह करना
प्रश्न करना
प्रार्थना करना
प्रीति करना
बैर करना
भलाई करना
मित्रता करना
मेल करना
संगम करना

§४५६. निम्नलिखित सयुक्त क्रियाएँ 'से' अथवा 'पर' परसर्ग युक्त सज्ञाओ के पश्चात् आती है—

वाद करना
अनीति करना

§४५७ निम्नलिखित सयुक्त क्रियाएँ ऐसी सज्ञा के पश्चात् आती है, जिनके साथ 'पर' अथवा 'ऊपर' का प्रयोग हुआ है—

अनुग्रह करना
अन्याय करना
असर करना
क्रोध करना
क्षमा करना
घमंड करना

---

[1] इस संयुक्त क्रिया का प्रयोग 'पूछ ताछ करना' के लिए बोलियों में होता है। स्तरीय हिन्दी के लिए यह प्रयोग उचित नहीं है।

कृपणता करना
कृपा करना
कोप करना
दया करना
पछतावा करना
भरोसा करना
विस्मय करना

§४५८ निम्नलिखित सयुक्त क्रियाओ के प्रयोग से पहले सम्बन्ध कारक की सज्ञा के साथ 'साथ' अथवा 'सग' शब्द जोड़ते है—

कपट करना
ठट्टा करना
गमन करना
दातव्यता करना
प्रीति करना
भलाई करना
मेल करना
समागम करना

§४५९. 'मे' परसर्ग युक्त सज्ञा के साथ निम्नलिखित सयुक्त क्रियाओं का प्रयोग होता है—

प्रीति करना
प्रवेश करना
रति करना
सन्देह करना

§४६०. निम्नलिखित सयुक्त क्रियाओ का प्रयोग करते समय सम्बन्ध कारक मे प्रयुक्त सज्ञा के साथ 'ओर' शब्द जोड़ते है। उल्लेखनीय बात यह है कि 'ओर' स्त्रीलिंगवाची शब्द है, अत. संज्ञा के साथ 'की' परसर्ग का प्रयोग किया जाता है—

ध्यान करना
दृष्टि करना
पीठ करना
मुख करना

√खाना से बनने वाली संयुक्त क्रियाएँ

§४६१ (१) के अनुसार पूर्णता द्योतक कृदन्त के साथ √खाना के योग से जो सयुक्त क्रियाएँ बनती है, वे सब कर्मवाच्य होती हैं। पूर्वपद में प्रयुक्त सज्ञा के लिंग का प्रभाव क्रिया पर पडता है—

कौड़ी खाना
गम खाना[1]
घाम खाना[2]

---

[1] पुल्लिंगवाची।

[2] स्त्रीलिंगवाची।

घूस खाना[१]　डाह खाना[२]　भय खाना[२]　मूर्च्छा खाना[२]　हवा खाना[२]
टक्कर खाना[२]　धोखा खाना[२]　मार खाना[१]　सोह खाना[१]

√देना के संयोग से बनने वाली संयुक्त क्रियाएँ

§४६२ √खाना के योग से बननेवाली सयुक्त क्रियाओ की भाँति √देना से बनने वाली सयुक्त क्रियाएँ भी कर्मवाच्य होती है—

उधार देना[२]　कष्ट देना[२]　क्लेश देना[२]　दोहाई देना[२]　माथा देना[२]

§४६३ ऊपर दी गई क्रियाओ मे से कुछ को ही सयुक्त क्रिया कहा जाता सकता है। नीचे 'देना' क्रिया से बनने वाली जो सयुक्त क्रियाएँ दी जा रही है, वे भी इसी ढंग की हैं। इन सयुक्त क्रियाओ की विशेषता यह है कि इनके परपद की क्रिया अकर्मक होती है, इसीलिए पूर्णताद्योतक कालो मे इनका भावे या कर्मणि प्रयोग न होकर केवल कर्तरि प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए 'उसने दिखाई दी' के स्थान पर 'वह दिखाई दिया' कहा जाएगा, 'वह सुनाई दिया' आदि।

छुलाई देना　दिखाई देना　पकडाई देना　बधाई देना　सुनाई देना

√मारना के योग से बनने वाली संयुक्त क्रियाएँ—

§४६४. √मारना से युक्त क्रियाओ मे पूर्वपद की सज्ञा के कारण परपद की क्रिया कर्मवाच्य रहती है—

झपट्टा मारना[१]　डीग मारना[१]　बुडकी मारना[१]　चिंघार मारना[२]
ठट्टा मारना[१]　डुबकी मारना[१]　कूद् मारना[२]　फलाग मारना[२]

§४६५. नीचे बहुप्रचलित सयुक्त क्रियाओ को वर्णक्रम से दिया जाता है—

निश्चय आना　हल जोतना[५]　ध्यान धरना[५,७]　पता पूछना[५,६]
याद आना[३]　बाट जोहना　हाथ धोना[८]　दया विचारना[२,६]
हाथ आना[४]　सोह डालना[२]　जड़ पकडना[२]　प्यार विचारना[५,६]
बात चलाना[२]　स्मरण दिलाना[५]　दिखाई पडना　भय विचारना[५,८]
मुक्की मारना[२]　राह देखना[६]　सुनाई पड़ना　खेद मानना[५]
मुँह चलाना[५]　कान धरना[६]　निश्चय पडना

---

१. 'में' परसर्गयुक्त अधिकरण कारक की संज्ञा के साथ प्रयुक्त होती है।　२. स्त्रीलिंग।

३. 'यह मुझे याद आता है' या 'इसकी याद मुझे आती है'।

४. सम्बन्ध कारक में 'के' परसर्गयुक्त संज्ञा के साथ इस संयुक्त क्रिया का प्रयोग होता है।　५. पुल्लिंग।

६. सम्बन्ध कारक की संज्ञा के साथ प्रयुक्त।

७. 'पर' परसर्ग युक्त संज्ञा के साथ प्रयुक्त।

८. अपादान कारक की संज्ञा के साथ प्रयुक्त।

बुरा मानना
भला-मानना[१]
मुँह मोडना[२]
साँस भरना[३]
ध्यान रखना[४]
प्रेम रखना[२]
लोप होना
मुह रखना
सुध रखना[५]
निश्चय रहना
हाथ लगना[६]
जोडा लगना[६]
गर्मी लगना[३]
ताक लगाना[४]
दाँव लगाना[४]
दोष लगाना[६]
पता लगाना[७]
टक्कर लडना
उधार लेना[२]
मोल लेना[८]
दम लेना
साँस लेना[१]
नाश होना[७]
प्रकाश होना
बिदा होना

क्षेत्रीय बोलियों में क्रिया की रूपावली

अस्तित्वसूचक अनियमित सहायक क्रिया

§४६६ क्षेत्रीय बोलियो की रूपावली पर विचार करने से पहले यह आवश्यक प्रतीत होता है कि हम इन बोलियों मे प्रयुक्त होने वाली अस्तित्व सूचक सहायक क्रिया के वर्तमान तथा भूतकालिक रूपो पर विचार करें। बोलियो मे ये रूप स्तरीय हिन्दी के 'हूँ' तथा 'था' के स्थान पर प्रयुक्त होते है। अस्तित्व सूचक क्रिया के भूतकालिक रूपो मे लिंग के कारण जो विकार होते है, उनके सम्बन्ध मे लिखना अनावश्यक है। क्रिया के भूँतकालिक रूपो मे होनेवाला लिंग-विकार सज्ञा तथा विशेषण मे होनेवाले लिंग-विकार से भिन्न नही है। क्रिया के रूप के साथ प्रत्येक बोली का पुरुषवाची सर्वनाम भी अनावश्यक समझा गया। सर्वनाम सम्बन्धी सूचियो की सहायता से छात्र स्वयं उचित सर्वनाम का प्रयोग कर सकता है।

ब्रजभाषा : अस्तित्वसूचक क्रिया की रूपावली

§४६७. १८वीं सूची मे दिये गये ब्रजभाषा के रूप 'राजनीति'[९] तथा इसी प्रकार की अन्य पुस्तको के प्रत्येक पृष्ठ पर देखे जा सकते हैं। इन दिनो स्तरीय हिन्दी और ब्रजभाषा के रूपों मे कुछ अन्तर दिखाई देता है, और यह अन्तर प्रथम पुरुष के एकवचन तथा द्वितीय पुरुष के बहुवचन तक सीमित है। अन्य रूपो मे कोई अन्तर दिखाई नही देता। 'प्रेमसागर' के एक वाक्य मे द्वितीय पुरुष के बहुवचन मे 'आहि' का प्रयोग हुआ है। यह वस्तुत. पूर्वी हिन्दी का प्रयोग है, वाक्य इस प्रकार है—'तुम दोऊ मेरी कला जु **आहि**।' ब्रजभाषा के भूतकालिक रूप इस प्रकार है—

---

[१] 'को' युक्त कर्मकारक की संज्ञा के साथ प्रयुक्त।
[२] 'से' परसर्ग युक्त अपादान कारक की संज्ञा के साथ प्रयुक्त।
[३] स्त्रीलिंग।
[४] 'पइ' अथवा 'ऊपर' परसर्ग युक्त अधिकरण कारक की संज्ञा के साथ प्रयुक्त।
[५] 'की' परसर्ग युक्त सम्बन्ध कारक की संज्ञा के साथ प्रयुक्त।
[६] 'को' परसर्ग युक्त सम्प्रदान कारक की विभक्ति के साथ प्रयुक्त।
[७] 'का' परसर्ग युक्त सम्बन्ध कारक की संज्ञा के साथ प्रयुक्त।
[८] व्यक्ति सम्बन्धी संज्ञा अपादान कारक में और वस्तु सम्बन्धी संज्ञा कर्मकारक में आती है।
[९] इस पुस्तक के लेखक लल्लूलाल हैं—अनुवादक।

'हो' (स्त्रीलिंग 'ही') के उदाहरण—"तहाँ सुदर्शन नाम राजा **हो**, ताकी पार्वती नाम पुत्री **ही**।" 'हो' के स्थान पर कही-कही 'हुतौ' (स्त्री-हुती) का प्रयोग मिलता है[1] जैसे—'मेरौ मुख जैसौ **हुतौ** तैसौ ही देखिहै; हुती घर माँझ रानी। बघेलखडी के 'हथो' और कन्नौजी के 'हुतो' से ब्रजभाषा के 'हुतौ' का बहुत सादृश्य है।

कन्नौजी रूप

§ ४६८. कन्नौजी मे अस्तित्वसूचक क्रिया के वर्तमानकाल के अनेक रूपो के साथ 'गा' अथवा 'गो' या इससे मिलता-जुलता कोई प्रत्यय जुडता है। दोआबे की क्षेत्रीय बोलियो मे यह 'गा' अथवा 'गो' वाला रूप सर्वत्र प्रयुक्त होता है, किन्तु स्तरीय हिन्दी मे इस रूप का प्रयोग अधिक नही मिलता। इस 'गा' अथवा 'गो' वाले रूप से पजाबी के वर्त्तमानकाल मे बननेवाला प्रथम पुरुष के एकवचन का रूप 'होगा' तथा द्वितीय पुरुष के बहुवचन का रूप 'होगे' का बहुत सादृश्य है।

राजपूताना की बोलियों में अस्तित्वसूचक क्रिया के रूप

§ ४६९ राजपूताना की बोलियो में अस्तित्वसूचक क्रिया के वर्तमान तथा भूतकाल के दो रूप, अर्थात् वर्तमानकाल का 'हूँ' (और इससे मिलते-जुलते रूप) तथा भूतकाल का 'हो' (और इससे मिलते-जुलते रूप) मारवाड तथा मेवाड़, मेवाड के पूर्व मे कोटा, बूदी, जयपुर आदि मे सर्वत्र बोले जाते है, किन्तु मुझसे यह कहा गया है कि साहित्य तथा पत्रव्यवहार मे छू तथा छो का प्रयोग अधिक होता है। 'छ' वाला रूप नाटको मे भी मिलता है; उदाहरण निम्न प्रकार है—हु **छुं** बाण्यो; म्हे **छां** किस्या अजाण (यहाँ एकवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग हुआ है); नाम हमारा लोटनो **छे**, तू **छै** राजकुमार, आदि आदि।

क. उल्लेखनीय बात यह है कि मारवाडी मे उपर्युक्त क्रियारूपो तथा अन्य क्रियाओ के रूपो के साथ क, ज, स, सन आदि निरर्थक अक्षर जोडे जाते है, जिनसे क्रियाओ का रूप बदल जाता है[2]। नाटको में इस प्रकार के परिवर्तित रूप मिलते है, जैसे—'कोई **छोस**'[3] (यहाँ 'छोस' 'छो' के लिए आया है')। छो =स्तरीय हि० 'हो'। इस प्रकार के निरर्थक अक्षर क्रिया ही नही, सज्ञा आदि के साथ भी जुडते हैं।[4]

गढ़वाली में अस्तित्व सूचक क्रिया के रूप

§ ४७०. १८वी सूची में गढ़वाली के जो रूप दिये गये है वे गढ़वाल की राजधानी 'टीरी' तथा उसके आसपास के समूचे प्रान्त में समझे जाते है (यद्यपि ये रूप सर्वत्र प्रयुक्त नही होते)। गढवाल के कुछ गाँवो मे अमिश्रित और सहायक क्रिया के वर्त्तमानकाल मे 'लो' प्रयुक्त होता है। मैने प्रायः सुना है 'कोई लो'=

---

[1] प्राध्यापक ईस्टविक द्वारा सम्पादित 'प्रेमसागर' के पृ० १९४ पर 'हुतौ' को अपूर्णता सूचक कृदन्त 'होता' का ब्रजभाषाई रूप बताया गया है। 'हुतौ' के सम्बन्ध में यह जानकारी ठीक नहीं है।

[2] वस्तुतः क, ज, स आदि निरर्थक अक्षर नहीं हैं, ये सर्वनाम, विशेषण आदि के संक्षिप्त रूप हैं, कैलाग नें जो उदाहरण दिये हैं, उनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है—अनुवादक।

[3] यहाँ 'स' 'सो' का संक्षिप्त रूप है।

[4] देखिए, § १००, क. (यह 'स' कोई विकारी प्रत्यय तो नहीं है ?)।

स्तरीय हिं० कोई है, तुइन औंदाला = स्तरीय हिं० तुम आते हो। वर्तमान काल के बहुवचन मे जो 'छ' वाला बडा रूप दिया गया है, वह टीरी के पूर्व मे प्रयुक्त होता है।

रामायण में अस्तित्वसूचक क्रिया के रूप

§ ४७१. रामायण की पुरानी बैसवाडी के वर्तमान तथा भविष्य मे सहायक तथा सयोगी क्रिया का प्रयोग सामान्य रूप से नही होता। भूतकाल मे जहाँ सहायक क्रिया की आवश्यकता पड़ती है, √होने के भूतकालिक रूप 'भयउ' का उपयोग किया जाता है। विशेष रूप से बैसवाडी की कविता में सहायक तथा सयोगी क्रिया की उपेक्षा की जाती है। किन्तु रामायण मे कही कही और आधुनिक पूरबी बोलियो मे नियमित रूप से √रहना के अनिश्चित पूर्णकाल का प्रयोग स्तरीय हिं० के 'थ' के स्थान पर सयोगी और सहायक दोनो क्रियाओ के रूप मे किया जाता है, हमें रामायण मे इस प्रकार के प्रयोग मिलते हैं—"जो कुछ **उचित रहा** सो कीन्हा", "सती नाम तब **रहा** तुम्हारा।"

अवधी में अस्तित्वसूचक क्रिया के रूप

§ ४७२ अवधी और बैसवाड़ी के वर्तमानकालिक रूपो की तुलना मराठी के वर्त्तमानकालिक रूपो से की जाये तो उनमें अद्भुत साम्य दिखाई देगा। मराठी के रूप निम्न प्रकार है—एकवचन मे आहे, आहेउ, आहे; बहुवचन मे—आहो, आहा, आहेत। अवधी, बैसवाडी और मराठी मे एक ही नकारार्थक अव्यय 'नही' = ब्रज नाहि प्रयुक्त होता है। इस 'नही' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'न' + अस्तित्वसूचक क्रिया के तृतीय पुरुष के एकवचन का रूप 'आहि' = नाहि > नही।

भोजपुरी की सहायक क्रियाएँ

§ ४७३. भोजपुरी मे अस्तित्वसूचक क्रिया के दो रूप है—√बाट और √हव, इन दोनो क्रियाओ के रूप स्तरीय हिं० के 'हूँ', 'है' आदि के पर्यायवाची है। मिथिला की सीमा पर 'अछ' धातु से बनने वाले रूप भी मिलते है। इस क्रिया के लिए सयोगी सहायक क्रिया के रूप मे अवधी और रिवाई की भाति √रह् से बनने वाले रूप काम मे आते है। √हो के अनिश्चित पूर्णकालिक रूप 'भइलो' आदि का प्रयोग सहायक क्रिया के रूप मे कभी नही होता। अन्य अकर्मक क्रियाओं के विकारी पूर्णकालिक रूप की भाँति इसके रूप चलते है। इस अपवाद के साथ √हो से उद्भूत रूप सहायक क्रिया की भाँति प्रयुक्त होते है, √बाट के रूपो का प्रयोग वर्त्तमान में किया जाता है।

क. अवधारणार्थक अव्यय की भाँति वर्त्तमानकाल मे सर्वत्र √बाट से पहले इसी क्रिया से बनने वाला एक शब्द 'बडले' पूर्व सर्ग के रूप मे प्रयुक्त होता है; जैसे—

एकवचन { १ पुल्लि० बडलै बाटो, २ पु० बडलै बाटव, ३ पु० बडले बाटन।
१ स्त्री० बडलै बाट्यूँ, २ स्त्री० बड़लै बाटूव, ३ स्त्री० बडले बाटिन।

बहुवचन { १ पु० बडलै बाटो, २ पु० बडलै बाट, ३. पु० बड़लै बाटन,
१ स्त्री० बडलै बाट्यूँ, २ स्त्री० बडलै बाटू, ३. स्त्री बडलै बाटिन।

ऊपर जो रूप दिये गये है, उनका प्रयोग वर्तमान, सभाव्य भविष्य अथवा विधि मे किया जाता है।

स्मरणीय—'बाट्' धातु प्राय: 'बाड' और 'बाट' में परिवर्तित होती है।

ख भोजपुरी मे सहायक क्रिया 'होब'—स्तरीय हि० 'होना' के अतिरिक्त √हो से ही बननेवाला अधिक दृढ रूप 'होखब' का प्रयोग होता है। 'होखब' के रूप नियमित ढग से सभी कालो मे बनते है। अन्य सहायक क्रियाओं के स्थान पर इन रूपो का प्रयोग स्वतत्रता से किया जा सकता है।

ग. भोजपुरी के पश्चिम मे 'है' के स्थान पर 'खे' प्रचलित है। भोजपुरी के मध्यवर्ती क्षेत्र मे तो नही, किन्तु पश्चिम मे प्रयाग तक 'है' के स्थान पर 'बा' प्रयुक्त होता है, जैसे—ऊ आवत बा, तुम केहि को गोहरावत **बाँ** ? । बीम्स का कथन है कि भोजपुरी के क्षेत्र मे बातचीत के समय ऊपर दिये गये रूप पसन्द किये जाते है, किन्तु प्रश्न करते समय तथा उत्तर देते समय विकारी 'बारी', 'बार' और 'बारन' का प्रयोग किया जाता है।

भोजपुरी में नकारात्मक सहायक क्रिया

§४७४ भोजपुरी मे ऊपर दी गई क्रियाओ के अतिरिक्त अस्तित्वसूचक क्रिया के नकारात्मक प्रयोग के लिए एक अन्य क्रिया है, जिसकी धातु 'नइख' अथवा 'नहिंछ' है। इस धातु के रूप केवल वर्तमान काल मे, २१वी सूची मे दिये गये विकारी वर्तमान के रूपो के समान चलते है। क्रिया के अवधारणार्थक रूपो की तरह इनका प्रयोग वर्तमान, भविष्य अथवा विधि मे किया जाता है।

§४७५ स० स्था > स्तरीय हिं० भूतकालिक 'था' के स्थान पर भोजपुरी के भूतकाल मे सहायक क्रिया के रूप मे √'रह' का प्रयोग किया जाता है। सूची मे इस धातु के लघु तथा दीर्घ दो रूप दिये गये है। अर्थ की दृष्टि से दोनो रूपो मे कोई अन्तर नही है।

मागधी की सहायक क्रियाएँ

§४७६. मागधी मे दो सहायक क्रियाएँ है, जिनमे से एक, रूप की दृष्टि से अनियमित है, तथा दूसरी नियमित।

(१) अनियमित ढग की क्रिया 'अह' < स० अस् है। 'अह' के आरंभिक 'अ' के लोप और उसके साथ प्राकृत प्रत्यय 'क' के जुड़ने से बनने वाली 'हक' क्रिया के कुछ विकृत रूप आज भी प्रयुक्त होते हैं। स्तरीय हिन्दी के विपरीत मागधी की इस क्रिया का अनिश्चित पूर्णकालिक विकारी रूप होता है—हलू=स्त०हिं० था।

(२) दूसरी सहायक क्रिया है होएब=स्त० हिं० होना। इस सहायक क्रिया के रूप सभी कालों मे नियमित ढंग से चलते है। केवल अनिश्चित पूर्णकाल के विकारी रूप अनियमित है, इस काल मे 'होलू' आदि के अतिरिक्त एक पुराना रूप 'भेलू' भी प्रचलित है। यह पूर्णतासूचक विकारी कृदन्त रूप भोजपुरी की भाँति सहायक क्रिया के रूप मे प्रयुक्त नही होता।

मैथिली की सहायक क्रियाएँ

§४७७. मैथिली की विभिन्न बोलियो में पाँच भिन्न-भिन्न धातुओ से बननेवाली सहायक क्रियाओ का प्रयोग होता है—

(१) सबसे पहली धातु 'अछ्' है, जो वर्त्तमानकाल में स्वतंत्र रूप से और सहायक क्रिया के रूप मे (=स्त० हिं० 'हूँ' और 'था') प्रयुक्त होती है। तृतीय पुरुष के एक वचन मे 'अछ्', उत्तरी मैथिली में 'अछि' के अतिरिक्त अन्य रूपों में आरम्भिक 'अ' लुप्त हो जाता है। केवल वर्तमान में सुदृढ रूप 'छिक' के 'छिकू' आदि रूपो का प्रयोग होता है। वर्त्तमान मे इस धातु के नियमित रूप चलते है।

(२) सं० अस् > √अह् मैथिली के अधिकांश क्षेत्रो मे वर्तमान काल, तृतीय पुरुष एकवचन, पुल्लिग मे अह् < सं० अस् के विकृत रूप प्रयुक्त होते है, जैसे—अहि, हो, है, एह, येह, य० और ह०। बगाल की सीमा पर मध्य और पश्चिमी पुरनिया जिले में इस धातु के भविष्यकालिक रूप भी सुनने को मिले है, जो इस प्रकार है—

एकवचन—{ १ हैबै, हैबौ, हैबों, २. हैबा, हैबै, हैबे,[1] हैमें; ३ हैत, हैतो, हैतौ;
बहुवचन—{ १. हैब, हैबी; २. हैब०, हैबहक; ३. रूप नही है।

क. पश्चिम की ओर इस धातु के साथ 'त' जोड कर सुदृढ रूप बनाते है। इस सुदृढ या सवर्द्धित धातु के रूप के रूप √बाट् (सूची १८) के अनुसार चलते है। मैथिली के प्रत्ययो के कारण इसके रूप मे वृद्धि होती है। एकवचन मे—१ हतू, हतो, हतौ; २. हतस, हते, हत, ३ हते, हतै, हतैक; आदि।

(३) उत्तर मैथिली के वर्त्तमानकाल मे √थि (< √स्था) के सुदृढ़ रूप **'थिक'** का प्रयोग होता है। 'थिक' के नियमित रूप चलते है, जैसे—'थिकहु', अथवा 'थिको' आदि। देखिये १८वी सूची।

(४) अन्य पूरबी बोलियो की भाति मैथिली मे भी √अछ् से उद्भूत सहायक क्रिया के अतिरिक्त √रह् के रूप भी प्रयुक्त होते है। वर्तमान तथा पूर्णतासूचक कालो मे इसके रूप चलते है—'रही' अथवा रहिलौं' आदि; यह सर्वत्र सहायक क्रिया का काम देती है और स्त० हि० के 'था' का अर्थ देती है। सहायक क्रियाएँ एक-दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त होती है, किसी सहायक क्रिया के परिवर्तन से अर्थ मे भेद नही होता, एक बोली मे ही भिन्न-भिन्न रूप प्रयुक्त होते है।

(५) पूरब की बोलियो की भाँति मैथिली मे भी उपर्युक्त क्रियाओ के अतिरिक्त √होएब = स्त० हि० होना के कुछ कालो का प्रयोग सहायक क्रिया के रूप मे होता है। पूरबी बोलियो के समान मैथिली मे भी विकारी पूर्णकाल का 'भेलौ' आदि का √भ √स० भू को सुरक्षित रखे हुए है। पूर्णताद्योतक कृदन्त मे 'भेल' और यौगिक कृदन्त मे 'भैके'। इन बोलियों मे यह विकारी पूर्णकाल सहायक क्रिया के रूप मे प्रयुक्त नही होता।

इन दोनो विशिष्ट सहायक क्रियाओं के रूप १८वी सूची में दिये गये है।

पछाही बोलियों के क्रिया-रूप

ब्रजभाषा के रूप

§४७९ ब्रजभाषा के क्रिया-रूप स्तरीय हिन्दी के क्रियारूपों से भिन्न नही है। ध्वनि सम्बन्धी कुछ अन्तर दिखाई देता है। स्तरीय हिन्दी के क्रियारूपो के अन्त्य 'आ' तथा 'ए' के स्थान पर ब्रज मे क्रमशः 'औ' और 'ऐ' आते हैं, देखिये (§१०१); जैसे—'करे' के स्थान पर, 'करैं', 'चलेगा' के स्थान पर 'चलेगौ', 'कहा' के स्थान पर 'कह्यौ' आदि। स्तरीय हिन्दी के वर्त्तमानकालिक प्रथम पुरुष मे जहाँ अन्त्य 'ऊँ' और भविष्य काल के द्वितीय पुरुष के बहुवचन में अन्त्य 'ओ' आता है, ब्रजभाषा मे इन दोनो अर्थात् 'ऊँ' और 'ओ' के स्थान पर 'औ' का प्रयोग होता है; जैसे स्तरीय हिन्दी के 'गिरूँ', 'मारूँगा' और 'कहो' के स्थान पर ब्रजभाषा मे 'गिरौं' 'मारौगौ' और 'कहौ' आता है। अन्त्य 'ऊँ' के स्थान पर कही-कही 'ओ' भी मिलता है और स्वर के पश्चात् आनेवाला यह अन्त्य 'ऊँ' कही-कही शेष रहता है। आकारान्त, ईकारान्त अथवा ओकारान्त धातुओं में अन्त्य स्वर से पहले 'व' का आगम होता है। स्तरीय हिन्दी के समान केवल अन्त्य 'ए' से पहले ही नही, 'ओ' और कही-कही 'आ' तथा व्यंजन से प्रारंभ होने वाले प्रत्येक प्रत्यय से पूर्व नियमित रूप से इस 'व' का उच्चारणी

---

[1] अनुस्वार विकल्प से आता है।

किया जाता है; जैसे—स्तरीय हिन्दी के लाओ, आना, पाता; हुआ, मुआ के स्थान पर क्रमश लावो, आवनौ, पावतु, हुवो, मुवो। ऊकारान्त क्रियाओ के अन्त मे 'व' का आगम होता है, जैसे—'कौन छुवैगो'।

ब्रजभाषा में क्रिया का सामान्यरूप

§४८०. ब्रजभाषा में क्रिया के सामान्य रूप अथवा क्रियार्थक सज्ञा के दो रूप प्रयुक्त होते है—कुछ क्रियार्थक सज्ञाओ के अन्त मे 'नौ' अथवा 'नो' तथा कुछ के अन्त मे 'वौ' अथवा 'वो'। 'वौ' अथवा 'वौ' से पूर्व प्राय 'इ' का आगम होता है। यह 'इ' वाला रूप मुख्य रूप से विकारी एकवचन मे अधिक प्रचलित है। ब्रजभाषा मे 'न' के पश्चात् आने वाला अन्त्य 'ए' पहले 'ऐ' बनता है, फिर 'इ' मे रूपान्तरित होकर लुप्त हो जाता है, 'न' शेष रह जाता है। जैसे—ब्रज मे स्तरीय हि० के 'करना' के स्थान पर 'करनौ' अथवा 'करनौ' और 'करवो' अथवा 'करिवौ' प्रचलित है, इनका बिकारी रूप है—करनै, करनि अथवा करन और करवै अथवा 'करिवै।' 'आ' के पश्चात् 'इ 'कभी-कभी 'य' बनती है, जैसे—मिलायबौ=स्त० हिं० मिलाना, किन्तु सामान्यतया पूर्ववर्ती 'आ' से मिलकर 'ऐ' मे रूपान्तरित होती है, उदाहरण के लिए ब्रजभाषा के ये रूप प्रस्तुत किये जा सकते है—आइबै कौ=ऐवे कौ=स्त० हि० आने का, बतायबौ अथवा बताइवौ=बतैवौ=स्त० हि० बताना, 'देना' के लिए 'दैन' अथवा 'देनौ'; आदि। किन्तु जिन रूपो के अन्त मे 'नौ' आता है उनके 'आ' के पश्चात् 'इ' के स्थान पर 'व' का प्रयोग अधिक मिलता है, जैसे—स्त० हि० के 'चुराना' के लिए 'चुरावनौ'। अन्य उदाहरण इस प्रकार है—सदा काहु सौ **रहिवौ** नाहि, तुम सौ पुत्रनि कौ पडित **करिवे** जोग हौ; राजा कहनि **लाग्यौ**; तुम सौ कहन कौ **आवौ** हौ।

ब्रजभाषा के पूर्णतासूचक और अपूर्णतासूचक कृदन्त

§४८१. हिन्दी मे अपूर्णता तथा पूर्णतासूचक प्रचलित कृदन्तो के अन्त्य 'ता' और 'आ' (या) के स्थान पर ब्रजभाषा मे 'तु' और 'यौ' आते है। आकारान्त धातुओ मे 'तु' से पूर्व 'व' का आगम न होकर 'इय' अथवा 'य' का आगम होता है, जैसे—बैठावतु के लिए 'बैठाइयतु', 'पायतु' आदि। स्तरीय हिन्दी मे पूर्णतासूचक कृदन्त मे 'औ' से पूर्व केवल विकृत धातुओ मे 'य' का आगम होता है, जबकि ब्रजभाषा मे ऐसा कोई बन्धन नही है। 'औ' से पूर्व सर्वत्र 'य' का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण है—होतु, चलतु, मार्यौ, बतायौ, स्तरीय हिं० होता, चलता, मारा, बताया।

क. अपूर्णतासूचक कृदन्त का अन्त्य 'आ' बहुवचन मे प्राय सर्वत्र और एकवचन मे कही-कही लुप्त होता है। स्त्रीलिंगवाची रूपो मे 'उ' का स्थान 'इ' ग्रहण करती है। कही-कही अपूर्णतासूचक कृदन्त के अन्त्य 'तु' तथा 'त' के स्थान पर एकवचन मे 'तो' अथवा 'तौ' और बहुवचन मे ते का प्रयोग किया जाता है; जैसे—'होता' और 'मारता' के स्थान पर 'होतौ' और 'मारतो'।

ब्रजभाषा में यौगिक कृदन्त

§४८२. यौगिक कृदन्त की रचना धातु के साथ 'कें', 'कै', 'कर' अथवा 'करि' के योग से होती है। स्तरीय हिन्दी की अपेक्षा ब्रज मे केवल धातु अथवा धातु के साथ 'इ' जोड़कर भी यौगिक कृदन्त की रचना की जाती है। स्वरान्त धातु मे 'इ' के स्थान पर 'य' लिखा जाता है, किन्तु उच्चारण की दृष्टि से इन प्रयोगो के 'इ' अथवा 'य' भिन्न सुनाई नही देते। धातु के साथ 'कर' अथवा 'कै' के जुड़ने पर भी यह 'इ' तथा उसके

	स्त० हिन्दी	कनौजी	ब्रज	पश्चिमी राजस्थानी	पूर्वी राजस्थानी	गढ़वाली	कुमाउनी	नेपाली	पुरानी बैसवाड़ी
एकवचन	मैं हूँ	हूँ	हौं	हूँ	छूं	छौं, लो।	छ्यौ, छूं	छु, हु[१]	अहऊ, हौ
	तू है	हैगा, हैगो	है	है	छै	छ, छै, लो	छै	छस / स्त्री. छेस, होस	अहहि,आहि,अहई, अहसि, अहै, होइ
	वह है	हैगा, हैगो	है	है	छै	छ, लो	छ	छ, स्त्री.–छै, छे, हो	अहहि, आहि, अहइ, अहै, होइ
बहुवचन	हम हैं	हैं, हैंगे	हैं	हां	छां	छौं ला, छवाऊ ला	छो, छ्यूं	छौं, छुं, हौं[१]	अहहिं, अहइं, हहिं[३]
	तुम हो	हो	हौ	हो	छो	छन ला छवाइ ला	छा	छौ/स्त्री–छेउ, हौ[१]	अहहु, हहु[३]
	वे हैं	हैं, हैगे	हैं	है	छै	छन, ला	छन, छी	छन, छैन; स्त्री., छिन हुन[१]	अहहिं, अहइं, आहै, हहिं[३]

---

१. मुख्य रूप से प्रश्नार्थक। २. ये छह रूप एकवचन तथा बहुवचन में बिना विकार के

५. पश्चिमी बिहार में। ६. उत्तरी मुजफ्फ़रपुर में। ७. केवल कविता में।

ख. बहुत कम स्थानो पर ब्रजभाषा की सवृत धातुओ के अन्त्य 'अ' के साथ यह 'इ' मिल जाती है, जिससे ये रूप बनते हैं—करिहौ (स्त० हि० करूँगा) के स्थान पर 'करैहौ (कर+इ+हौ)। सुनिहौ, मारिहै (–स्तरीय हि० सुनोगे, मारेंगे) के स्थान पर सुनैहौ, मारैहै।

ग. ब्रज के भविष्यकालिक रूपो को निम्नलिखित उद्धरणो से समझाया जा सकता है—ऐसी मुन्दरी **ल्यायहौं;** अबहुँ याकौ **मारिहौं,** हम सो को **करिहै** सगाई, बरषा ऋतु बीते घर **जैहौ;** हम सबै भूखौ **मरिहै;** या सों तुम्ह कैसे बैर **करिहौ;** सरग निवास **करिहैं**।

स्मरणीय—१. अग्रेजों की देख-रेख मे ब्रजभाषा की जो पुस्तके छपी है, उनमे 'हौ', 'है' आदि को धातु से पृथक् लिखा गया है। हो सकता है क्रियार्थक सज्ञाओं के साथ प्रयुक्त इन प्रत्ययो के कारण भ्रम हुआ हो। इस प्रकार सभाव्य भविष्य के 'हि' तथा 'हु', धातु से पृथक् छापे गये है। सभाव्य भविष्य के 'हि' तथा 'हु' मे अवधारणार्थक अव्यय 'ही' के रूपान्तरो की भ्रांति होती है। इस प्रकार की छपाई को हम छापेखानेवालो की त्रुटि नही मान सकते।

स्मरणीय—२. ध्यान दीजिये, ऊपर ब्रजभाषा के दो प्रकार के भविष्यकालिक रूप दिये गये है। इन वैकल्पिक रूपो के कारण अर्थ मे भेद नही होता। दोनो प्रकार के रूपो से सामान्यकालिक अथवा हेतुमुक्त क्रिया का भविष्यकाल मे घटित होना ज्ञात होता है।

ब्रजभाषा में 'विधि' के रूप

§ ४८६ स्तरीय हिन्दी की भाँति ब्रजभाषा मे विधि के रूप सभाव्य भविष्य के रूपो से साम्य रखते हैं। द्वितीय पुरुष का एकवचन इस नियम का अपवाद है। द्वितीय पुरुष के एकवचन मे विशुद्ध धातु का प्रयोग होता है, किन्तु कविता और पुराने गद्य मे केवल धातु का प्रयोग न होकर धातु के साथ 'हि' जोडा गया है, जैसे—या मैं यतन न **करहि;** चिन्ता मत **करहि**।

क. आदरार्थक विधि के रूपो में स्त० हिन्दी तथा ब्रज मे बहुत कुछ साम्य है, अन्तर इतना ही है कि अन्त्य 'ए' और 'ओ' क्रमश. 'ऐ' तथा 'औ' बनते है। 'य' कही-कही द्वित्व होता है, जैसे पीछे मारिय्यौ। इन रूपो मे कही-कही 'य' का स्थान 'ज' लेता है और 'य' तथा 'ज' के पूर्व की 'इ' दीर्घ बनती है। उदाहरण हैं—सोकु **छाडिजै;** वाकौ बन्धु **जाणीजै,** यो कौ मारि **खाईय**।

स्मरणीय—आधुनिक 'य' वाला रूप पुराने 'ज' वाले रूप से उद्भूत है। प्राकृत के 'इज्जइ' प्रत्यय के आदि 'इ' के लोप के कारण अन्त्य 'इ' दीर्घ की गई।

ब्रजभाषा में कृदन्तों से बनने वाले काल

§ ४८७. स्तरीय हिन्दी की भाँति ब्रजभाषा मे भी बहुत से कालो की रचना कृदन्त और अस्तित्व-सूचक क्रिया के सयोग से होती है। अस्तित्वसूचक क्रिया के कालिक रूप इस प्रकार है—वर्तमान मे 'हौं' आदि, भूतकाल में 'हो', संभाव्य भविष्य होऊँगौ अथवा ह्वै हौ आदि; उदाहरण है—सर्प कहितु है, तू काहै तै रोवत है; वह वाकौ गोद मे बैठाइयतु है, काल निकट आवतु है, हौ ठौर नाहि पाय रानी रोवति ही, **हौं आयौ हौ;** कछु दूरि ते चल्यौ हौ।

§ ४८८ ब्रजभाषा मे भी जब पूर्णतासूचक कालो मे सकर्मक क्रिया कर्मवाच्य के रूप मे प्रयुक्त होती है तो उसका कर्त्ता, स्तरीय हिन्दी की भाँति, कर्त्ताकारक (परसर्ग सहित) मे प्रयुक्त किया जाता है। साथ ही, यह बात भी उल्लेखनीय है कि परसर्ग सहित कर्त्ताकारक का परसर्ग 'ने' कविता मे बहुत स्थलो पर

और गद्य में कही-कही प्रयुक्त नही होता। जहाँ 'ने' परसर्ग की उपेक्षा की जाती है वहाँ सर्वनाम अथवा सज्ञा का विकारी रूप प्रयुक्त होता है; जैसे उन एक नगर बसायौ; काग सबद कियौ। ब्रजभाषा का 'हितोपदेश' फ्रासीसी भाषा मे अनुवादित हुआ है, इसमे अस्तित्वसूचक क्रिया के ऐसे प्रयोग मे कर्त्ताकारक की सज्ञा मे एक विशेष विकार पाया जाता है; जैसे—'सुसै कहि'[1] यहाँ 'सुसै' 'सुसा' का कर्ताकारक (विभक्ति सहित) का विकारी रूप और 'कहि' का प्रयोग पूर्णकालिक क्रिया के स्त्रीलिगवाची एकवचन मे हुआ है; 'कहि', 'बात' से सम्बन्धित है।

§ ४८९. ब्रजभाषा मे कुछ बहुप्रचलित क्रियाओ के रूप विशेष ढंग से बनते है। छात्रो को इन विशेष रूपो पर ध्यान देना चाहिए।

(१) क्रियार्थक सज्ञा, सामान्य भविष्य और यौगिक कृदन्त का एक अन्य रूप बनाते समय √होना का आधार रूप बनता है 'ह्व'। इस आधार रूप से सामान्य भविष्य के रूप बनते है—ह्वै हौ, ह्वैहै आदि, क्रियार्थक संज्ञा का रूप होगा 'ह्वैवौ' (यहाँ आधार रूप के साथ 'वा' जोड़ा गया है) और यौगिक कृदन्त का रूप ह्वै, ह्वैकै, आदि। पूर्णतासूचक कृदन्त और उससे बनने वाले समस्त कालों में 'हुआ' के स्थान पर 'भयौ' (पु० में विकारी रूप 'भये' अथवा 'भए', स्त्रीलिंग मे—'भयी' अथवा 'भई') अधिक प्रचलित है।

स्मरणीय—कन्नौजी में सर्वत्र यही रूप प्रयुक्त होता है, केवल अन्त्य 'औ' 'ओ' बनता है। कन्नौजी मे सकुचन के कारण यह 'भओ' अथवा 'भो' भी बनता है।

क. मैने ब्रजभाषा की किसी छपी पुस्तक मे एक स्थान पर स्तरीय हिं० के 'हुआ' के लिए 'हूत' (<स० भूत) का प्रयोग देखा है। द्वितीय पुरुष के एकवचन मे 'होगे' के स्थान पर 'हुगे' भी आता है।

(२) भविष्यकाल के दूसरे प्रकार के रूप तथा 'वौ' से बनने वाले क्रिया के सामान्य रूप और पूर्णताद्योतक कृदन्त में √दैनौं और √लैनो के 'दै' तथा 'लै' के स्थान पर संस्कृत √दा तथा √ला का प्रयोग होता है। पूर्णतासूचक कृदन्त का अन्त्य 'आ' 'अ' बनता है। भविष्यकाल और क्रिया के सामान्य रूप मे अन्त्य 'आ' शब्द तथा प्रत्यय को जोड़ने वाली 'इ' के साथ मिलकर 'ऐ' में परिवर्तित होता है। इन परिवर्तनो के कारण √दैनौं तथा लैनौं के भविष्यकाल, सामान्य रूप और पूर्णताद्योतक कृदन्त के रूप इस प्रकार होगे—क्रियार्थक संज्ञा अविकारी दैवौ, लैवौं; क्रियार्थक संज्ञा विकारी—दैवे, लैवे; भविष्यकाल—दैहों, लैहौ आदि, पूर्णतासूचक कृदन्त अविकारी दयौ, लयौ; पूर्णतासूचक कृदन्त विकारी—दए, लए अथवा दये, लये। इस तरह का प्रयोग मिलता है—'ता मै तें कछु तुम कौ दैहैं'। कन्नौजी मे भी लगभग यही रूप प्रचलित है। इन क्रियाओ के भविष्यकालिक रूपो मे कही-कही शब्द तथा प्रत्यय का सयोजन करनेवाला स्वर लुप्त रहता है और धातु का आधार रूप 'द' तथा 'ल' बनता है; जैसे—सब सुख सपति लहैं। इसी प्रकार √ठाननौ का पूर्णतासूचक कृदन्त 'ठयौ' और इसका स्त्रीलिग वाची रूप 'ठई'। 'प्रेमसागर' के प्रथम अध्याय मे एक स्थान पर √देना के भविष्यकालिक प्रथम पुरुष के एकवचन में 'दैहौं'=स्त० हिं० 'दूंगा' के स्थान पर 'दूहूँ' का प्रयोग मिलता है, जैसे—मैं उसको दूहूँ श्राप।'

क. 'भक्तमाल' की एक टीका मुझे ब्रजभाषा मे देखने को मिली, इसमे √देना क्रिया से बननेवाली एक सयुक्त क्रिया के विधि रूप में द्वितीय पुरुष के बहुवचन के लिए 'देहु' अथवा 'देऔ' (√स्त० हिं० दो)

---

[1] देखिए, दे तेस्सी—क्रेस्तोमैथी, पेरिस, सन् १८४९ और इस रूप की तुलना कीजिए मारवाड़ी के विकारी रूप से (इस पुस्तक का § १६९, क.)।

न होकर √दैनौ से 'द्यौ' बनाया गया है; जैसे—यह सुता तिनकौं बिवाहि **द्यौ**। यह स्पष्ट है कि √दे के लिए प्रयुक्त √दि के 'दिऔ' से सन्धि के कारण 'द्यौ' रूप बना है।

(३) ब्रजभाषा मे करनौ के पूर्णताद्योतक कृदन्त मे प्रायः 'कियौ' का प्रयोग न होकर 'कर्यौ' का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार स्त० हि० के 'किया' के लिए कन्नौजी मे 'करो' रूप प्रचलित है। ब्रजभाषा मे इस क्रिया के बहुप्रचलित भविष्यकालिक रूप 'करिहौ' 'करिहै' आदि के अतिरिक्त 'कैहौ', 'कैहै' आदि रूप भी मिलते है, ये रूप 'काइहौ' आदि से बने है; प्राकृत मे √'कृ' के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले 'का' से 'काइहौ' आदि की उत्पत्ति हुई[1], जैसे—राज इन्द्र कौ **कैहौं**।

(४) ब्रज मे √देना √लेना और √करना इन तीन क्रियाओ के पूर्णतासूचक कृदन्त के उल्लिखित रूपो के अतिरिक्त क्रमश दीन्हौ, लीन्हौ और कीन्हौ रूप भी प्रचलित है। इन रूपो मे वैकल्पिक रूप से 'ह' का लोप हो जाता है, जिससे दीनौ, लीनौ और कीनौ रूप उपलब्ध होते है। उद्धरणों मे इनका प्रयोग देखिये—पूरब जनम सुकृत कोऊ **कीनो**—सो विधि यह दरसन फल दीनौ।[2] √कर के स्थान पर √'की' की क्रियार्थक सज्ञा के रूप मे 'कीनौं' का प्रयोग बहुत कम स्थलो पर देखने को मिला है।

ब्रजभाषा में प्रयुक्त होनेवाले कुछ अतिरिक्त काल

§ ४९०. ब्रजभाषा, कन्नौजी, रामायण की पुरानी बैसवाडी और पूरब की बोलियों मे स्तरीय हिन्दी के नियमित कालो के अतिरिक्त कुछ और काल भी है। उदाहरण के लिए इन बोलियों मे कृदन्त और सहायक क्रिया से बनने वाले स्तरीय हिन्दी जैसे अपूर्ण वर्त्तमान काल के अतिरिक्त एक ऐसा अपूर्ण वर्त्तमान काल भी है, जो विशुद्ध विकारी ढग से बनता है और संभाव्य भविष्यकाल के रूपो से सादृश्य रखता है। यद्यपि इस काल का प्रयोग गद्य मे भी होता है, किन्तु कविता और मुहावरो मे इसका उपयोग अधिक किया जाता है। यह रूप कही-कही उर्दू मे भी प्रयुक्त हुआ है। जैसे—'खुदा **जाने**', आदि। ब्रज के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—'जु पडित होइ सो दुख सुख न **मानै**'; उह सबकौ सग **छुडावहि**; पडित तहाँ वेद **उच्चरें**। गंगा के मैदानो मे जो बोली बोली जाती है, उसके साहित्य तथा बोलचाल के रूपो मे इस काल का प्रयोग खूब मिलता है। इस काल के अधिक उदाहरण वाक्य-रचना सम्बन्धी अध्याय में मिलेंगे।

क. इस विकारी वर्त्तमान के रूपो के साथ ब्रजभाषा मे कही-कही अस्तित्वसूचक क्रिया सहायक-क्रिया के रूप मे जोड़ी जाती है। 'प्रेमसागर' मे इस प्रकार के रूप प्रयुक्त हुए हैं—"मै **पहचानू हूँ**; **दीषे** है, **आवें हैं**। दूर पछाँह की बोली मारवाड़ी मे इस विकारी वर्त्तमान के साथ सहायक क्रियाओ का प्रयोग नियमित बन जाता है। मारवाडी मे वर्त्तमानकाल के इस विकारी रूप तथा अन्य रूपो मे अर्थ सम्बन्धी भेद नही है। विकारी वर्तमान के साथ सहायक क्रियाओ का प्रयोग ब्रजभाषा के साहित्यिक रूप की अपेक्षा कन्नौज के आसपास की बोली मे अधिक होता है। हम यहाँ प्रायः सुनते हैं—साहिब **बुलावे** है, हम **आवे** है।

स्मरणीय—वर्त्तमान हिन्दी में क्रिया का यह रूप भविष्य की अपेक्षा वर्त्तमान मे अधिक प्रयुक्त होता है, अतः फार्ब्स तथा अन्य वैयाकरणो ने लिखा है कि सभाव्य भविष्य का उपयोग कही-कही वर्त्तमान

---

[1] वररुचि—प्राकृत प्रकाश, अध्याय ८, सू० १७।

[2] प्रोफ़ेसर ईस्टविक द्वारा सम्पादित 'प्रेमसागर' से उद्धृत। इस प्रति में अन्त्य स्वर को अनुनासिक लिखा गया है।

काल के लिए भी किया जाता है। मुझे यह बात अधिक उचित जान पडती है कि हम इन रूपो को मूलतः वर्त्तमान काल के रूप मान ले और यह स्वीकार करलें कि इन रूपो का प्रयोग भविष्यकाल के लिए भी किया गया है। वस्तुत. विकारी वर्त्तमान के रूपो का उद्भव सस्कृत के वर्त्तमानकाल के परस्मैपद वाले रूपो से हुआ है।

ब्रजभाषा का आरम्भबोधक अपूर्ण काल

§ ४९१. इन कालो के अतिरिक्त ब्रजभाषा के गद्य और पद्य दोनो मे एक अन्य काल का प्रयोग भी मिलता है, जिसकी रचना अपूर्णतासूचक कृदन्त के साथ अस्तित्वसूचक √होनौ के अनिश्चित पूर्णकालिक रूप 'भयौ' के योग से की जाती है। इस काल को 'आरम्भबोधक अपूर्णकाल' के नाम से व्यक्त किया जा सकता है। इस काल से यह पता चलता है कि क्रिया का व्यापार प्रारभ हो रहा है। उदाहरण—**पीवत भयौ** दही, यह बात मै **बिचारत भयो।** इस काल के अधिक उदाहरण रामायण के कालो के सम्बन्ध मे विचार करते समय दिये जाएँगे।

ब्रजभाषा की प्रेरणार्थक क्रिया

§ ४९२. ब्रजभाषा मे प्रथम प्रेरणार्थक के लिए धातु के साथ 'आव' और द्वितीय प्रेरणार्थक के लिए स्तरीय हिन्दी की तरह 'वा' (अथवा-वाव) जोड़ते है। स्तरीय हिन्दी के प्रेरणार्थक रूपो मे मूल धातु का दीर्घस्वर ह्रस्व होता है, किन्तु ब्रजभाषा मे वह ज्यों का त्यो बना रहता है।

क. स्तरीय हिन्दी के बहुत से प्रेरणार्थक रूप अनियमित रूप मे 'आल' अथवा 'ला' के योग से बनते है, किन्तु ब्रजभाषा मे 'आल' अथवा 'ला' के रूप नियमित माने जाते है। स्वरान्त धातु के साथ प्रेरणार्थक प्रत्यय 'आव' से पहले 'व' अथवा 'य' का आगम होता है। जैसे √भूलनौं से' 'भुलावनौं' और 'भुलवानौं', √बोलनौं से 'बोलावनौ' और 'बुलवानौं', √खानौ से 'खवानौ' अथवा 'खवावनौ' और 'खिलवानौ', अथवा 'खिलवावनौं'; √पीवौं से 'पियावनौं' और 'पिलवानौ'। कविता मे कुछ स्थानो पर 'आव' 'अव' बनता है, जैसे 'प्रेमसागर' मे प्रेरणार्थक रूप' 'पुजवै' का प्रयोग मिलता है—"को **पुजवै** हिय हौंस हमारी'। इस उद्धरण मे 'पुजावै' के स्थान पर 'पुजवै' आया है।

ब्रजभाषा में कर्मवाच्य

§ ४९३ ब्रजभाषा मे कर्मवाच्य रूप की रचना, स्तरीय हिन्दी के समान, धातु के साथ √जानौं के योग से की जाती है।

क. यद्यपि ब्रजभाषा मे सामान्यतया √जानौं के योग से कर्मवाच्य रूप बनता है, किन्तु इसके अतिरिक्त एक विकारी रूप भी प्रयुक्त होता है। इस विकारी रूप मे कर्तृवाच्य रूप के साथ 'इ' अथवा 'इय' जोड़ते है, इस नये रूप के साथ काल सम्बन्धी नियमित प्रत्यय जोडे जाते है। इस तरह का प्रयोग मुख्यतया विकारी वर्तमानकाल मे होता है। 'राजनीति' मे यह रूप अधिक प्रयुक्त हुआ है। एक उदाहरण—'जो विद्या बाल अवस्था मे सिखाइयै सो भूलति नाही।' यहाँ प्रेरणार्थक सिखानौ अथवा √सिखावनौं के विकारी कर्मवाच्य मे 'सिखाइयै' का प्रयोग हुआ है।

स्मरणीय—अनेक उदाहरणो मे यह सन्देह उत्पन्न होता है कि ऊपर दिया गया रूप कर्मवाच्य क्रिया का वर्त्तमानकालिक रूप है या कर्तृवाच्य क्रिया का आदरार्थक विधि रूप। किन्तु ऊपर के उदाहरण मे और इसी तरह के कुछ अन्य उदाहरणो मे स्पष्टतया यह कर्मवाच्य रूप ज्ञात होता है।

स्मरणीय—२. जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी वैयाकरण ने आज तक ब्रजभाषा के इस विकारी कर्मवाच्य रूप का उल्लेख नही किया। इन रूपो को किसी ने विधि का रूप और किसी ने सभाव्य भविष्य का आदरार्थक रूप माना है। ध्यानपूर्वक देखा जाये तो इस बात का पता चलेगा कि दोनो धारणाएँ ठीक नही है। यह रूप अपने वास्तविक अर्थ मे आज भी ब्रजभाषा मे प्रयुक्त होता है। मारवाड़ी, नेपाली, और हिन्दी की कुछ अन्य बोलियो मे पुराना विकारी कर्मवाच्य रूप विद्यमान है ।[1]

कन्नौजी के रूप

§४९४. कन्नौजी के क्रिया रूप ब्रजभाषा से अधिक भिन्न नही है, अन्तर यह है कि कन्नौजी मे ब्रज के अन्त्य 'औ' और 'ऐ' के स्थान पर 'ओ' तथा 'ए' पसन्द किये जाते है। अपूर्णतासूचक कृदन्त के प्रत्यय से अन्त्य 'उ' का लोप होता है और अमिश्रित क्रिया के पूर्णताबोधक कालो मे अन्त्य 'ओ' से पहले केवल 'य' का आगम होता है। क्रिया के सामान्य रूप √करनो तथा √मरनो से पूर्णकालिक नियमित रूप 'करो' और 'मरो' बनता है, जब कि स्तरीय हिन्दी मे इनके लिए 'किया' और 'मुआ' का प्रयोग होता है। स्तरीय हिन्दी के 'हुआ' के स्थान पर कन्नौजी में ब्रज की भाँति 'भयो' अथवा 'भओ' आता है।

बघेलखंडी के रूप

§४९५ बघेलखडी मे जो न्यू टेस्टामेट[2] छपा है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि बघेलखड की बोली पूरबी बोलियो की अपेक्षा ब्रज के अधिक निकट है । विभक्ति सहित कर्त्ताकारक के साथ स्तरीय हिन्दी जिस ढग से सकर्मक क्रिया का प्रयोग करती है, उस ढग का प्रयोग बघेलखंडी मे भी मिलता है। कर्मवाच्य क्रिया के साथ विभक्ति सहित कर्त्ताकारक का प्रयोग पछाँह की सभी बोलियो की विशेषता है । क्रिया का सामान्य रूप धातु के साथ 'वो' के योग से बनता है । कर्तृवाचक सज्ञा बनाने के लिए क्रिया के सामान्य रूप के साथ 'वारो' अथवा 'हारो' जोड़ा जाता है। भविष्यकालिक रूप ब्रजभाषा का अनुकरण करते है, अन्तर यह है कि 'ऐ' तथा 'औ' के स्थान पर 'ए' तथा 'ओ' पसन्द किये जाते है; जैसे—बघे० जेहो=ब्रज० जैहौ=स्त० हि० जाऊँगा, बघे० पेहे=ब्रज० पैहै=स्त० हि० पाएगा, आदि। ब्रज की भाँति अपूर्णतासूचक कृदन्त के अन्त मे 'तु' और कन्नौजी की भाँति पूर्णतासूचक कृदन्त के अन्त मे 'ओ' आता है। पूरबी हिन्दी की भाँति पूर्णतासूचक कृदन्त के प्रत्यय मे 'य' के स्थान पर 'व' अधिक प्रयुक्त होता है, जैसे—स्त० हिन्दी के 'गया' और 'दिया' के स्थान पर बघे० मे 'गवो' तथा दवो; स्त० हिं० के 'हुआ' के लिए बघे० मे 'भवो'। बघेलखंडी का विशेष प्रत्यय 'कनाई' यौगिक कृदन्त मे उसी तरह प्रयुक्त होता है, जैसे स्त० हिन्दी मे धातु के साथ 'के' का प्रयोग किया जाता है। स्वरान्त धातु में प्रत्यय से पहले 'य' का आगम होता है। उदाहरण इस प्रकार हैं—सुनकनाई=उ० हि० सुनकर, जायकनाई=स्त० हि० जाकर। 'कनाई' प्रत्यय मेवाड़ी के प्रत्यय 'कने' से सादृश्य रखता है। मेवाड़ी में 'कने' का प्रयोग यौगिक कृदन्त के साथ इसी अर्थ मे होता है।

---

[1] देखिए, § ५११ और वाक्यरचना वाला वह अनुच्छेद जिसमें स्तरीय हिन्दी के 'चाहिए' पर विचार किया गया है। उस अनुच्छेद में ब्रजभाषा के विकारी कर्मवाच्य के अन्य उदाहरण भी मिलेंगे ।

[2] बैप्टिस्ट मिशन प्रेस, सेरामपुर, सन् १८२१ ई०।

राजपूताना की बोलियों के रूप : क्रिया का सामान्यरूप

§४९६ समूचे राजपूताना मे क्रिया के रूप बहुत कुछ मिलते-जुलते है। सुविधा की दृष्टि से मारवाडी तथा मेरवाडी के रूपो का विवेचन साथ-साथ किया जा रहा है। इन दोनों बोलियो का कोई क्षेत्रीय भेद नही है।

मारवाडी तथा मेरवाडी मे क्रिया का सामान्य रूप दो तरह से बनता है। एक रूप धातु के साथ 'णो' अथवा 'णू' के योग से तथा दूसरा रूप 'बो' के योग से रचा जाता है। दोनो रूपो मे किसी प्रकार का अर्थभेद नही होता। दोनों प्रकार के रूप सर्वत्र समानरूप से प्रयुक्त होते है, किन्तु मेरवाड़ी मे 'णो' तथा 'णू' वाला रूप अधिक सुनाई देता है। पश्चिमी राजपूताना मे 'णो' का अन्त्य 'ओ' क्षीण हो जाता है; 'बोवणो', के स्थान पर 'बोवण' रूप प्रयुक्त होता है, किन्तु यह बात उल्लेखनीय है कि √देणो तथा √लेणो का अन्त्य 'ओ' शेष रहता है। विकारी रूपो मे 'बो' रूपान्तरित होता है 'बा' मे और 'णो' का विकार 'णा' न होकर 'णै' है और वह भी मेरवाडी मे। इस विकारी रूप के पश्चात् सम्प्रदान कारक के परसर्ग 'ए' का प्रयोग नही होता। अन्यत्र यदि कही विकारी रूप की आवश्यकता पड़ती है तो 'बा' युक्त विकारी रूप ही प्रयुक्त होता है, जैसे मेरवाड़ी मे कहा जा सकता है—करणै को, करणै ऊ=स्त० हि० करने का, करने से; किन्तु मारवाडी का प्रयोग होगा—करबा को, करबा सू। हम ख्यालो मे भी इस प्रकार के वाक्य पढते है—'चेलो होबा आयो'=स्त० हि० 'चेला होने आया'। 'डूगरसिंह' नाटक मे स्तरीय हिन्दी मे प्रयुक्त क्रिया का विकारी सामान्य रूप भी प्रयुक्त हुआ है—'ऐसा नही रहणे की आस'।

क. स्तरीय हिन्दी की क्रियार्थक सज्ञा अथवा क्रिया का सामान्य रूप आकारान्त होता है किन्तु मेरवाड़ी मे क्रिया के सामान्य रूप मे धातु के साथ 'णू' अधिक प्रचलित है। जैसे अनुक्रमसूचक सयुक्त क्रिया 'जाया करना' तथा 'मारा करना' के स्थान पर मेरवाडी मे कहा जाएगा—'जावो करणो', और 'मारबो करणो'। मारवाडी के नाटको मे क्रियार्थक संज्ञा के अन्य रूपों की भाँति 'णु' (णू) वाला रूप भी प्रयुक्त हुआ है, 'भरत्री' ख्याल का यह वाक्य देखिये—'मानु कहणु म्हारो।' क्रिया का 'णो' वाला सामान्यरूप उर्दू की क्रियार्थक सज्ञा की भाँति विशेषण बनता है, वैशेषणिक रूप मे स्त्रीलिंगवाची विशेष्य के साथ 'णो' विकारी होता है 'णी' मे, जैसे—'रोटी **पकावणी** है'। विधि के रूपो मे भी यह विकार पाया जाता है, 'डूगरसिह ख्याल' मे यह प्रयोग मिलता है—'देर नही **करणी**।' यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि क्रियार्थक संज्ञा का 'बो' वाला रूप इन अर्थों मे प्रयुक्त नही हो सकता।[1]

राजपूताना की बोलियों में अपूर्णतासूचक तथा पूर्णतासूचक कृदन्त

§४९७ राजपूताना की बोलियो मे सर्वत्र अपूर्णतासूचक कृदन्त के अन्त मे 'तो' तथा पूर्णतासूचक कृदन्त के अन्त मे 'यो' आता है, किन्तु जब मारवाडी मे पूर्णतासूचक कृदन्त विशेषण की भाँति प्रयुक्त होता है, तो अन्त मे 'यो' के स्थान पर 'ड़ो' जोड़ा जाता है; जैसे √भणबो के पूर्णतासूचक कृदन्तवाची विशेषण—'भण्योडो'=स्त० हि० पढा हुआ (कहा हुआ-अनुवादक), √ मारबो से मार्योडो=स्त० हि० मारा हुआ, आदि। कही-कही 'ड़ो' प्रत्यय मे पहले अन्त्य 'य' का लोप होता है; जैसे—'कीधोडो' स्त० हि० 'किया हुआ'। जब पूर्णतासूचक तथा अपूर्णतासूचक कृदन्त विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते है तो उनके

---

[1] दे तास्सी ने √करना का एक विधि रूप 'करदौ' दिया है। "करदौ' पछाँही रूप दिखाई देता है, इसीलिए उसका उल्लेख किया गया है। मुझे इस रूप की अधिक जानकारी नहीं है।

साथ √व्हेणो का पूर्णतासूचक कृदन्त 'व्हियो', अथवा 'थको' या 'लगो' जोडते है,[१] जैसे—'म्है छोरां ने आवतो दीठो'; 'वाको मोला थका को बाप मर गियो', आदि।

क ख्यालो मे पूर्णतासूचक कृदन्त के 'यो' प्रत्यय से पहले 'इ' का आगम होता है और 'यो' के स्थान पर प्राय 'या' आता है; जैसे—सूरज **उगोया**; राज ताकिया, कागद ले हु **आवियो**।

ख जब कृदन्तवाची शब्द क्रियार्थक सज्ञा अथवा कृदन्त के रूप मे प्रयुक्त होता है तो उसके विकारी रूप मे अन्त्य' 'ओ' 'आ' बनता है, जैसे—मुलक मे **लियां** फिरू, इसी प्रकार—म्हारो माल **मगावतां** घडी न करसी जेज; किन्तु अन्य स्थिति मे विकारी रूप एकवचन मे आकारान्त और बहुवचन मे ओकारान्त रहता है।

ग निरर्थक शब्दो के जुडने से अनेक क्रिया रूप बदल जाते है, जैसे—ल्यावता=स्त० हि० लाता के स्थान पर 'ल्यावतास', छोडिया=स्त० हि० छोडा के स्थान पर 'छोडियासन, स्त० हि० के 'देऊ' के लिए 'देवुर', आदि।[२]

राजपूताना की बोलियों के यौगिक कृदन्त

§४९८ यौगिक कृदन्त के अनेक रूप मिलते है—(१) एकाकी धातु यौगिक कृदन्त के रूप मे प्रयुक्त होती है, (२) धातु के साथ 'ने' जोडा जाता है, जैसे—करने, मारने=स्त० हि० करके, मारके। नियम (१) तथा (२) के अनुसार बनने वाले यौगिक कृदन्त समूचे राजपूताना में प्रयुक्त होते हैं, पहले प्रकार का रूप ख्यालो मे प्रयुक्त हुआ है। (३) मेवाडी मे धातु के साथ 'ऊने' के योग से यौगिक कृदन्त की रचना होती है; जैसे—सुणूने, मारूने=स्त० हि० सुनके, मारके, अथवा (४) अपूर्णतासूचक कृदन्त के साथ 'क्ने' के योग से यौगिक कृदन्त बनता है; जैसे—बोडतोक्ने=स्त० हि० काटके[३]। (५) पूर्वी राजपूताना मे धातु के साथ 'र' जोड कर यौगिक कृदन्त की रचना की जाती है, जैसे—मारर=स्त० हि० मारके; व्हैर=स्त० हि० होकर; खार=स्त० हि० खाकर, आदि। यौगिक कृदन्त का 'र' वाला रूप ख्यालो मे मिलता है, जैसे—'षूणै **बैठर** षांवसी'; 'रणधीर और प्रेम मोहिनी' मे 'लार'=स्त० हि० लाके का प्रयोग हुआ है—ये तो वाट ताखडो लार (**वह तो अपने बाट तराजू अपने साथ**)। (६) राजपूताना के निवासियो से मैने कई बार 'करियाणा' अथवा 'करियाना' के योग से बननेवाला यौगिक कृदन्त सुना है, जैसे—सुण करियाणा=स्त० हि० सुनकर। कहा जाता है—'करियाणा' वाला रूप कविता मे भी प्रयुक्त हुआ है, किन्तु मेरे देखने मे कोई ऐसी कविता नही आई जिसमे इसका प्रयोग किया गया हो।

राजपूताने की बोलियों में कर्तृसूचक संज्ञाएँ

§४९९ ऊपर क्रिया के दो प्रकार के सामान्य रूप दिये गये है, उनमे से किसी के विकारी रूप के साथ 'वालो' जोडकर कर्तृवाचक सज्ञा की रचना की जा सकती है। क्रियार्थक सज्ञा का अन्त्य 'णो' विकारी

---

[१] 'थको'<सं० स्था=स्त० हि० 'था', >'थ' का संवर्द्धित रूप 'थक्'। गुजराती की अस्तित्वसूचक क्रिया 'थवूं' से इस रूप की तुलना की जा सकती है। मैथिली का वर्त्तमानकालिक दृढ़ रूप 'थकूं' आदि है। 'लगो' मुख्य रूप से मेवाड़ तथा मेरवाड़ में प्रयुक्त होता है।

[२] राजस्थानी के इन रूपों में निरर्थक प्रतीत होने वाले 'अक्षर' किसी शब्द के संक्षिप्त रूप है। इनके कारण अर्थ में अन्तर पड़ता है—अनुवादक।

[३] बघेलखंडी के यौगिक कृदन्त प्रत्यय 'कनाई' (दे० §४९५) से इसकी तुलना कीजिए।

रूप मे 'णा' बनता है। क्रिया का दूसरा सामान्य रूप भी प्रयुक्त होता है; जैसे—म्हारो माल **लूटबावालो** (डूंगरसिंह का ख्याल)।

मारवाड़ी के काल सम्बन्धी रूप

§५०० मारवाड़ी के काल, स्तरीय हिन्दी की भाँति तीन समूहो मे विभक्त है। मुझे इस बात मे सन्देह है कि मारवाड़ी से बारहों कालो के रूप प्रस्तुत किये जा सकते है या नही। राजपूताना की बोलियो मे प्रत्यय-से पहले स्तरीय हिन्दी की अपेक्षा अधिक रूपों मे 'व' का आगम होता है। सामान्य भविष्य के प्रथम पुरुष के एकवचन तथा द्वितीय पुरुष के बहुवचन में स्वर के पश्चात् 'व' का नियमित रूप से आगम होता है, जैसे—लावु गंगाजल, षबरज लेवो जाय; अपूर्णतासूचक कृदन्त के प्रत्यय से पहले 'तो' जुडता है, जैसे—होवतो, लावतो=स्त० हिं० होता, लाता। पूर्णतासूचक कृदन्त के ह्रस्व स्वर के पश्चात् भी 'व' का आगम होता है; जैसे— मैं लिवी फकीरी, किन्तु पूर्णतासूचक कालो मे 'य' का आगम अधिक सामान्य है, यद्यपि ख्यालों में 'हुवा' =स्त० हि० हुआ रूप मिलता है, किन्तु 'हुयो' का प्रयोग अधिक मिलता है, जैसे—हुयो मुसाण्युं (वह जोगी हुआ)। इसका प्रचलित क्षेत्रीय रूप है—व्हियो अथवा ह्वीओ।

राजपूताना की बोलियों में संभाव्य भविष्य

§५०१ मारवाडी तथा मेवाडी आदि मे संभाव्य भविष्य के प्रत्यय इस प्रकार है, एकवचन—प्रथम पुरुष 'उ' अथवा 'ऊ'; द्वितीय तथा तृतीय पुरुष—'ऐ'। बहुवचन—प्रथम पुरुष 'आ'; द्वितीय पुरुष—ओ; तृतीय पुरुष—ऐ। ऊपर कई उदाहरण दिये जा चुके है, यहाँ एक और उदाहरण पर्याप्त होगा—मन आवै जठै उतरां।

राजपूताना की बोलियों में सामान्य भविष्य

§५०२. राजपूताना की बोलियो मे सामान्य भविष्य के तीन रूप है—

(१) इनमें से दो प्रकार के रूप धातु के साथ निम्नलिखित प्रत्ययों के योग से बनते हैं—

प्रथम भविष्यकालिक प्रत्यय

एकवचन—प्रथम पु०—स्यूं, द्वितीय पु०—सी, तृतीय पु०—सी,
बहुवचन—प्रथम पु० स्यां, द्वि० पु०—स्यो, तृ० पु०—सी,

द्वितीय भविष्यकालिक प्रत्यय

एकवचन—प्र० पु० हूँ, द्वि० पु० ही, तृ० पु० ही।
बहुवचन—प्र० पु० हाँ, द्वि० पु० हो, तृ० पु० हो।

विशेष—'स्यू' कही-कही स्युं अथवा सू मे और 'स्यो' कही-कही 'सो' मे परिवर्तित होता है।

(२) राजस्थानी तृतीय भविष्यकालिक रूप स्तरीय हिन्दी के समान वर्ण के योग से रचे जाते है। सभाव्य भविष्य के कई रूप 'लो' (=स्तरीय हि० 'गा') के योग से बनते हैं, स्तरीय हि० के 'गा' के समान राजस्थानी का 'लो' लिंग-वचन आदि के विकार ग्रहण करता है, पुल्लिगवाची एकवचन में 'ला', स्त्रीलिंगवाची एकवचन तथा बहुवचन मे 'ली' और पुल्लिंगवाची बहुवचन मे 'लो' बनता है।

धातु के साथ जुड़ने वाले प्रत्यय इस प्रकार हैं—

तृतीय भविष्यकालिक रूपों के प्रत्यय

एकवचन—प्र० पु० ऊलो, द्वि० पु० ऐलो, तृ० पु० ऐलो।
बहुवचन—प्र० पु० आंला, द्वि० पु० ओला, तृ० पु० ऐला।

स्मरणीय—तीनों प्रकार के भविष्यकालिक रूप अर्थ की दृष्टि से भिन्न नहीं है, केवल 'लो' वाला रूप इस बात का अपवाद माना जाता है। इस रूप के सम्बन्ध मे कहा जा सकता है कि इससे कुछ सन्देह व्यक्त होता है। 'लो' वाला रूप जोधपुर के आसपास अधिक बोला जाता है। पूर्व मे पूर्वी मारवाड़ और मेवाड़ मे 'हूँ' वाला भविष्यकालिक रूप प्रयुक्त होता है; बूंदी, कोटा, चम्बल नदी के काँठे का प्रदेश और जयपुर के उत्तर की क्षेत्रीय बोलियों मे 'स्यूँ' वाला रूप नियमित ढंग से प्रयुक्त किया जाता है। विशेष क्षेत्रो में भविष्य काल का यह रूप और अस्तित्वसूचक क्रिया के 'छूँ' (दे०§ ४६९) आदि रूपों से बनने वाली क्रिया दोनो का प्रयोग होता है। जनता द्वारा दोनों रूपो के प्रयोगों के कारण क्षेत्रीय बोलियो के साहित्य मे भी दोनो का उपयोग किया जाता रहा है। जिस तरह इन क्षेत्रीय बोलियों में अस्तित्वसूचक क्रिया के अतिरिक्त 'हूँ' आदि का प्रयोग होता है, उसी तरह 'स्यूँ' आदि से बनने वाले एक से अधिक रूपों का उपयोग एक ही क्षेत्र मे किया जाता है।

ख. 'स' युक्त भविष्यकालिको का प्रयोग साहित्य में भी मिलता है। ख्यालो के कुछ उद्धरण यहाँ दिये जा रहे हैं—'पीछै पावां **लास्युँ**' (मै (उसे आपके) चरणों के निकट लाऊँगा); 'षूणै बैठर **षावसी**' (आप कोने मे बैठ कर खाएँगे), 'गोपीचन्द-सा पुतर **होवसी**' (गोपीचन्द जैसा पुत्र होगा); 'सबी मिल चालस्याँ' (सब मिल कर चलेंगे), 'जिससे **होसो** पार' (जिससे (आप) पार होंगे)। इन रूपो में अन्त्य अनुस्वार की उपेक्षा की गई है। मेरा विचार है, अनुस्वारों की उपेक्षा छापेवालों की असावधानी का परिणाम है। मैंने ख्यालो मे अन्य दो प्रकार के भविष्यकालिक रूप नही देखे।

राजपूताने की बोलियों में विधि का रूप

§५०३. द्वितीय पुरुष के एक वचन का विधि रूप प्रत्यय उपसर्गहीन एकाकी धातु से बनता है। विधि काल के द्वितीय पुरुष के बहुवचन में स्तरीय हिन्दी के समान धातु के अन्त में 'ओ' जोडा जाता है। स्वरान्त धातु में विधि सम्बन्धी 'ओ' के संयोग से पूर्व 'व' का आगम होता है; जैसे—थे डेरा **लेवो** उठाय, **जावो** बाई। विधि सम्बन्धी 'ओ' से पूर्व धातु का अन्त्य 'ए' कही-कही 'य' बनता है, जैसे—**ल्यो** तरवारा हाथ मैं; रसता बता **द्यो**। ख्यालों में द्वितीय पुरुष के एक वचन में कही-कही ऊकारान्त रूप मिलता है; जैसे—कयो हमारो मानूँ।

§५०४. ख्यालों में आदरार्थक विधि में अन्त्य 'जो' अथवा 'ज्यो' और 'जे' अथवा 'ज्ये' का प्रयोग मिलता है। स्तरीय हिन्दी मे यह 'ज' वाला आदरार्थक रूप केवल देना और लेना में प्रयुक्त होता है, किन्तु मारवाड़ी मे इस प्रकार का सर्वत्र, यहाँ तक कि व्यंजनान्त धातुओं के साथ भी प्रयोग किया जाता है। द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम के एकवचन के साथ भी आदरार्थक विधि का 'ज्यो' अथवा 'जो' युक्त रूप प्रयुक्त होता है; जैसे—कागद बाँचन **अवज्यो**; थे **सुणजो** सीरदाराँ; तू मत जेज **लगाये**; पावां **ल्याज्ये** मारै।

क. क्षेत्रीय बोलियों में आदरार्थक विधि की रचना धातु के साथ 'जैं' अथवा 'ईजैं', और 'जो' अथवा 'ईजो' के योग से होती है। उदाहरण के लिए √'जीमणो' का आदरार्थक रूप बनेगा 'जीमजै' अथवा

'जीमीजै' और 'जीमजो' अथवा 'जीमीजो'। विधि सम्बन्धी प्रत्यय से पूर्व कही-कहीं 'ई' का आगम होता है। यह रूप ख्यालों में भी प्रयुक्त हुआ है; जैसे—थे जेज **करी ज्यो** नाहि।

राजपूताना की बोलियों में अपूर्णतासूचक कृदन्त

§५०५. क्रिया के व्यापार की असमाप्ति सूचित करने के लिए अपूर्णतासूचक कृदन्त अकेले प्रयुक्त होता है। 'ख्यालो' मे सभाव्य भूतकाल के लिए वर्त्तमान काल के रूपो का प्रयोग होता है। यह प्रयोग 'ख्यालों' मे अधिक प्रयुक्त हुआ है। जैसे—'सिध **होब** सो नहीं रवता' (जो सिद्ध है वह (इस संसार में) नही रहता)।

§५०६. राजपूताना की बोलियों में स्तरीय हिन्दी की भाँति अपूर्णतासूचक क्रिया के साथ सहायक क्रिया का योग न होकर संभाव्य के रूप के साथ अस्तित्वसूचक क्रिया के वर्त्तमान कालिक रूपों में से किसी एक अर्थात् 'घ' अथवा 'ह' के योग से अपूर्ण वर्त्तमान की रचना होती है, जैसे-जोगी अलख **जगावै** है; तुं क्युं **भेजे छै** लैर (तुम लेकर क्यों भेज रहे हो?); बणियाँ क्यूँ घालो छो हाथ (बनियो पर हाथ क्यों डालते हो); 'क्युं षावो छो जैयर' (तुम जहर क्यों खाते हो)।

क. सहायक क्रिया प्रायः उपेक्षित रहती है, विशेषतः जब एक ही वाक्य मे एक से अधिक क्रियाओं का प्रयोग हुआ हो। अपूर्ण वर्तमान और संभाव्य भविष्य के रूपो मे प्रायः सादृश्य रहा है। इस उदाहरण मे पहली तथा दूसरी क्रिया अपूर्ण वर्तमान काल मे प्रयुक्त हुई है—"बीन **बजावै** नाद **सुणावै** षड़ो छे मैल कै बार" (बीन बजा रहा है, नाद सुना रहा है, महल के बाहर खड़ा है)। इस वाक्य की क्रिया भी अपूर्ण काल में प्रयुक्त है 'मुज कूँ क्या **फरमावो**' (मुझे क्या फरमा रहे है)।

§५०७. अपूर्ण भूतकाल और वर्तमान काल के रूपों में बहुत सादृश्य है, अन्तर इतना ही है कि संभाव्य भविष्य के तृतीय पुरुष के एक वचन मे प्रयुक्त होने वाले रूप के साथ अपूर्ण भूतकाल में अस्तित्व-सूचक √हो अथवा √छो का भूतकालिक रूप दोनो वचनों में जोड़ा जाता है; जैसे—स्त० हि० के 'मै सुनता था' के लिए 'हूँ **सुणै छो**' और इसी तरह स्त० हि० के 'तुम क्या करते थे' के लिए 'थे कांई करै छा' अथवा 'करै हा' सुनते है।

क. ये रूप राजपूताना की बोलचाल मे सर्वत्र प्रयुक्त होते हैं, किन्तु कही-कही स्तरीय हिन्दी की भाँति अपूर्णतासूचक कृदन्त के साथ अस्तित्वसूचक क्रिया (छो' अथवा 'हो') का भूतकालिक रूप जोड़ा जाता है।

राजपूताना की बोल्यियों में पूर्णकालिक रूप

§५०८. पूर्णकालिक रूपों की रचना पूर्णतासूचक कृदन्त के साथ, हू्वैणो (=होना) के विभिन्न कालिक रूपो के योग से की जाती है। सकर्मक क्रियाएँ कर्त्ता का अनुकरण करती हैं, उनका कर्म स्त० हिन्दी के समान (देखिये §४१२) परसर्ग रहित अविकारी (कर्त्ता) कारक मे अथवा परसर्ग सहित सम्प्रदान कारक में प्रयुक्त होता है। इस उदाहरण मे हमे कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्य दोनो रूप मिलते हैं—"सुपनुं **आयो** रैन मे स थांको **उड़तो देख्यो** सीस' (रात मे ऐसा सपना आया कि आपका सिर उड़ता दिखाई दिया)। निम्नलिखित उदाहरण प्रचलित कालों से सम्बन्धित हैं—'म्है थनें **मेल्यो छो**' (मैंने तुम्हें भेजा था); ऊ घोडै **चढ्यौ हू्बैलो** (वह (अपने) घोड़े पर चढ़ा होगा); कण उण नै मार्यो **होसी** (किसी ने उसे मारा होगा)।

§५०९. इस पुस्तक के §३९१. में ऐसी क्रियाओ का उल्लेख हुआ है, जिनके रूप नियमित ढंग से बनते हैं, किन्तु राजपूताना की बोलियों में इन क्रियाओ के भी अनियमित रूप प्रयुक्त होते है। पश्चिम

राजपूताना की बोलियो मे √'करणो' के पूर्णकालिक रूप है—कीधो, कीदो अथवा कर्यो; √ 'लेणो' के पूर्णकालिक रूप—लीधो और लीदो है, √देणो के पूर्णकालिक रूप 'दीधो और दीदो दोनो हैं। इसी प्रकार √खाणो का 'खाधो' और √मरणो से मर्यो अथवा मूच्यो; किन्तु 'ख्यालो' मे प्रयुक्त रूपो के अनुसार पूर्वी राजपूताने मे √करणो, √लेणो और √देणो का पूर्णकालिक रूप 'नु', 'नी' अथवा 'ना' और स्त्रीलिंग मे 'नी' के योग से बनता है; निम्न उदाहरणो मे इन रूपो को देखिये—भाया **कीनी** गाफली (भाइयो ने असावधानी की); लीनी फकीरी (सन्यास लिया); दुष सुष **दीनु** रामजी (दु ख-सुख रामजी ने दिया); मै अपना टाबर नै पोशाल माही नही जाणै **दीनौ छै** (मैने अपने बालक को पाठशाला मे नही जाने दिया है); **जाइवे द्यो**। √जाना का पूर्णकालिक स्त्रीलिंगवाची रूप है—'गीयी।

स्मरणीय—बीम्स द्वारा निरूपित हिन्दी के पुराने पूर्णकालिक प्रयोग 'दिद्धिय' तथा 'लद्धिय' से 'द्यो' तथा 'दो' से बननेबाले पूर्णकालिक रूपो पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। बीम्स ने ये दोनो उदाहरण चन्दबरदाई के पृथ्वीराज रासो से लिये है। बीम्स ने रासों के इन रूपो का उल्लेख भी किया है। दिद्धौ, दीधौ और दिज्जय=दिया, किद्धौ तथा किज्जय=किया। बीम्स इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि √करणो और √देणो ने √लेणो के रूप का अनुकरण किया है, लेणो का पूर्णकालिक रूप सस्कृत के कृदन्त रूप 'लब्ध'>प्रा० लद्धौ से सम्बन्धित है। यद्यपि बीम्स ने √ खाणो के पूर्णकालिक रूप का उल्लेख नही किया हैं, किन्तु यह स्पष्ट है कि उसकी रचना भी √ लेणो के रूप के अनुकरण पर हुई है। मारवाड़ी तथा अन्य बोलियो मे प्रयुक्त √करणो और √लेणो के पूर्णतासूचक कृदन्त के नकारान्त रूप तथा साथ ही स्तरीय हिन्दी मे प्रयुक्त 'लिया' और 'दिया' रूप के कारण यह भ्रम उत्पन्न हुआ है।[1]

क हिन्दी से सम्बन्धित बोलियो मे जो क्रियाएँ अनियमित मानी जाती है, उनके अतिरिक्त राजस्थानी में हकारान्त धातुवाली क्रियाएँ भी इस कारण से अनियमित दिखाई देती है कि इन धातुओ का अन्त्य 'ह' काल आदि से सम्बन्धित प्रत्यय के कारण लुप्त हो जाता है। √ कहणो, √ रहणो, और √बहणो का पूर्णताद्योतक रूप बनता है—कयो, रयो और बयो; जैसे—**कयो** हमारो मान (कहा हमारा मानो) कातिक मास **रया** अलूणा (कार्तिक मास में अलूने रहे); नीर **बयो** थारा नैण मे (पानी बहा तुम्हारी आँखों मे)। 'ह' लोप से क्षतिपूर्ति स्वरूप कही-कही प्रत्यय का 'य' 'य्य' बनता है, जैसे—जो मेरा **कय्या** माने (जो मेरा कहा माने)। 'ह' के लोप के पश्चात् कही-कही श्रुतिस्वरूप 'व' का आगम होता है, तब इस प्रकार के रूप बनते हैं—कवो (=कहा); रवनो(=रहना); आदि। इन रूपो के उदाहरण इस प्रकार है—कुसी **रवो** (खुश रहो); **कवो** बात (कहो बात); सो नही **रवतो** इस नगरी कै माँई (वह नही रहता इस नगरी मे); वो बी मरद कवता था (वह मर्द भी कहता था)। विधि काल के रूपो में 'ह' के लोप के पश्चात् कहीं-कही पड़ोसी स्वरो मे सन्धि होती है, इस तरह हमे 'कहो' के स्थान पर 'कौ' और 'रहो' के स्थान पर 'रौ' का प्रयोग मिलता है। इसी तरह 'कहि' के लिए 'कै', 'बह' अथवा 'बहि' के लिए 'बै' का प्रयोग होता है, जैसे—'नदी बै जावे' (नदी बही जाती है)।

राजपूताना की बोलियों में प्रेरणार्थक रूप

§ ५१०. मारवाड़ और राजपूताना की बोलियों में ब्रजभाषा की तरह धातु के साथ 'आव' के योग से प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया और 'वाव' के योग से द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया बनती है। दीर्घ प्रत्यय से पहले

---

[1] देखिए, बीम्स, कम्प० ग्राम० खंड ३, पृ० १४४-१४७।

धातु का दीर्घ स्वर ह्रस्व बनता है। इन रूपो के सम्बन्ध मे इतना लिखना ही पर्याप्त होगा; किन्तु इस अपवाद का उल्लेख करना आवश्यक है कि एकवर्णी संवृत धातुओ के दीर्घ स्वर को ह्रस्व करके 'आव' प्रत्यय और धातु के मध्य 'र' का आगम होता है; जैसे √देणो का प्रथम प्रेरणार्थक 'दिरावणो' और √लेणो का लिरावणो; उदाहरण—मै जोग लिराऊँ (मैं [उससे] जोग लिवाता हूँ)। 'दवावणो' और 'लवावणो' जैसे वैकल्पिक रूप भी मिलते है।

क. ऊपर इस बात का उल्लेख किया गया है कि कालिक रूपो में धातु के अन्त्य 'ह' का लोप होता है। प्रेरणार्थक प्रत्ययों के पूर्व भी धातु का अन्त्य 'ह' लुप्त हो जाता है; उदाहरण—बवा दियो पाणी (बहवा दिया पानी ने); म्हूँ राजा कवावतो हूँ (मैं राजा कहलाता हूँ)। बवा दियो=स्त० हि० बहवा दिया; कवावतो=स्त० हि० कहलाता हूँ।

मारवाड़ी का विकारी कर्मवाच्य रूप

§५११. अरावली के पश्चिम मे बोली जाने वाली मारवाड़ी की यह विशेषता है कि उसमे विकारी कर्मवाच्य का नियमित प्रयोग होता है। इसके लिए धातु के साथ 'ईज' जोड़ते हैं। 'ईज' के योग के कारण धातु का दीर्घ स्वर ह्रस्व बनता है। जिन प्रेरणार्थक क्रियाओ मे प्रेरणार्थक प्रत्यय से पहले 'र' आता है, उनके कर्मवाच्य प्रत्यय और धातु के मध्य मे भी 'र' का आगम होता है। उदाहरण के लिए √करणो के कर्मवाच्य 'करीजणो' स्त० हि०' 'किया जाना' को लीजिये; √खावणो से 'खवीजणो; √लेणो से 'लरीजणो' तथा √देणो से 'दरीजणो'। अकर्मक क्रियाओ से भी इस प्रकार का कर्मवाच्य रूप बनता है, जैसे—√आवणो से 'अवीजणो'। अकर्मक क्रिया का यह कर्मवाच्य रूप केवल पुल्लिग वाचक तृतीय पुरुष के एकवचन मे भाववाच्य क्रिया के रूप मे प्रयुक्त होता है। कर्मवाच्य क्रिया के रूप भी नियमित ढंग से सभी कालो मे चलते है; जैसे—म्है मूँ अवीजै नही=स्त० हि० मुझसे आया नही जाता; म्हू मरीज्यो (मैं पीटा गया); थै सूँ नही खवीजैलो (तुमसे नही खाया जाएगा)। ये रूप अरावली के पूर्व मे बहुत कम प्रयुक्त होते है।

राजपूताना की बोलियों में 'उत्कर्ष सूचक' संयुक्त क्रिया

§५१२. पश्चिमी राजपूताना की अनेक बोलियों मे प्रयुक्त होनेवाली उत्कर्षसूचक संयुक्त क्रियाओ की व्याख्या §४२७-४३२ मे की गई है। संयुक्त क्रियाओ का प्रयोग अधिक नही होता। इन संयुक्त क्रियाओ के अतिरिक्त क्रियाओ के साथ 'परो' अथवा 'वरो' उपसर्ग जोड़ते है। जैसे—√मार डालणा के लिए मारवाडी लोग कहते है—'परो मारणो'; 'चला जाना' के स्थान पर 'परो जावणो', 'उठ जाना' के लिए 'परो उठणो'। जब क्रिया कर्ता के साथ, कर्त्ता के निकट अथवा कर्त्ता के लिए हो रही है तो 'परो' के स्थान पर 'वरो' उपसर्ग होता है, जैसे—√वरो लेणो=स्त० हि० ले लेना। अकर्मक क्रिया के कर्ता और सकर्मक क्रिया के कर्म के अनुसार पुल्लिगवाची विकारी रूपो में 'परो' तथा 'वरो' का विकारी रूप होता है—'परा' तथा 'वरा' और स्त्रीलिंग के विकारी रूपो मे—'परी' और 'वरी'। उदाहरण है—पु० 'थू वरो जा', अथवा स्त्री० 'थू वरी जा'=स्त० हि० तू चला जा अथवा तू चली जा। किन्तु सकर्मक क्रियाओं के साथ 'परो' तथा 'वरो' का लिंग सम्बन्धी विकार 'कर्म' के अनुसार होता है; जैसे—'ऊ पोथी वरी लेवै' (वह पुस्तक उसे ले लेने दो); 'हूँ पोथी वरी लेऊँ हूँ' (मैं यह पुस्तक ले लेता हूँ); 'ऊ पोथी परी देही' (वह यह पुस्तक दे देगा)।

स्मरणीय—कुछ ऐसी क्रियाएँ है, जिनके साथ केवल 'परो' अथवा 'वरो' का ही प्रयोग होता है, जैसे—बरो आणो, परो जाणो। यदि इनके स्थान पर 'परो आणो' और 'वरो जाणो' कहा जाए तो उचित नही होगा।

मारवाड़ी की नकारार्थक संयुक्त क्रिया

क. स्तरीय हिन्दी मे सातत्य सूचक सयुक्त क्रिया की रचना किसी भी क्रिया के अपूर्णतासूचक कृदन्त के साथ √रहना के योग से होती है, किन्तु मारवाड़ी में इस प्रकार का संयोजन 'नकार' का द्योतक है। राजपूताना की बोलचाल मे 'गातो रहणो' का अर्थ 'गाता रहना' न होकर 'गाने से रह जाना' (गाना बन्द करना) है। इसी प्रकार—'कीवाड़ जड़ दो कै मनख माहै आता रहै', किवाड़ बन्द कर दो कि मनुष्य अन्दर न आये।'

प्रथम भविष्यकालिक प्रत्यय

§५१३. राजपूताना की बोलियों के सम्बन्ध में चर्चा समाप्त करने से पहले राजपूताना के चारण चन्दबरदायी द्वारा प्रयुक्त कुछ विशेष रूपों का उल्लेख करना चाहता हूँ। इन रूपों के सम्बन्ध मे बीम्स ने विस्तार से लिखा है—(१) अपूर्णतासूचक कृदन्त कही-कही 'न्त' के योग से बनता है, जैसे—हुवन्त, रहन्त=स्त० हि० होता, रहता। यौगिक कृदन्त के लिए प्रयुक्त 'इयो' (इयौ) के स्थान पर व, इव अथवा एवं प्रयुक्त होता है; जैसे—स्तरीय हिन्दी के 'दिया' के लिए 'दिन्नव', स्त० हि० के 'भ्रमाया' के लिए 'भ्रमेव'; स्त० हि० के 'बोला' के लिए 'बुल्लिव', 'हुआ' के स्थान पर 'हुअ' का प्रयोग होता है, 'हुए' यौगिक कृदन्त की तरह उपयोग मे लाया गया है। 'दीनौ' और 'कीनौ' के स्थान पर 'दिन्नौ' तथा 'किन्नौ' तथा 'देखो' के स्थान पर 'दिट्ठौ' का प्रयोग मिलता है। (५) यौगिक कृदन्त के लिए कहीं-कहीं इयै, इय अथवा य जोड़ा गया है, जैसे—स्त० हि० के 'करके' के लिए 'कियै'; स्त० हि० के 'सींच के' के लिए 'सिंचिय' और स्त० हि० के 'लेकर' के लिए 'लय' (=लइय)।

गढ़वाली और कन्नौजी के रूप

§५१४. हिमालय में गढ़वाल और कुमायूं की बोलियों मे जो क्रिया-रूप प्रयुक्त होते है वे बहुत-सी बातो में मारवाड़ी के क्रिया रूपों से सादृश्य रखते है। जैसे—इन बोलियों मे भी अस्तित्वसूचक सहायक क्रिया के मूल व्यंजन के स्थान पर 'छ' का प्रयोग होता है, भविष्यकालिक प्रत्यय 'गा' के स्थान पर 'लो' (स्त्रीलिंग में लि, ली) आता है और क्रिया के सामान्य रूप मे अन्त्य 'न' (कही-कहीं 'ण' भी) का प्रयोग, धातु के अन्त्य 'ह' का सामान्यतया लोप और पड़ोसी स्वरों की सन्धि। राजस्थानी से अन्तर इस बात में है कि दोनों पड़ोसी स्वर 'ऐ' न बनकर 'औ' बनते हैं; जैसे—स्त० हि० के 'रहना' के लिए गढ़वाली-रौणो। यह उचित जान पड़ता है कि यहाँ धातु तथा सामान्य रूप के प्रत्यय 'ना' का सयोजक स्वर 'इ' न मानकर 'उ' माना जाये। हिमालय की बोलियों तथा राजपूताना की बोलियों में जहाँ ये समानताएँ है, वहाँ वैषम्य भी है। वैषम्य के लिए विशेष रूप से अपूर्णतासूचक कृदन्त का उल्लेख किया जा सकता है जो 'तो' अथवा 'ता' के स्थान पर एकवचन मे 'दो' अथवा 'न्दो' और बहुवचन में 'दा' अथवा 'न्दा' से रचा जाता है; गढ़वाली के अपूर्णतासूचक कृदन्त के ये रूप पंजाबी से सादृश्य रखते हैं। अपूर्णतासूचक कृदन्त का 'तो' वाला रूप भी प्रयुक्त होता है और कही-कही 'त' से पहले पुराना 'न्' भी शेष रहता है; जैसे स्त० हि० के 'बरसता' के लिए गढ़वाली 'बरषन्तो'। कुमाऊनी में सहायक क्रिया से पहले कुछ स्वरान्त धातुओ के पूर्णतासूचक कृदन्तों का कृदन्तसूचक प्रत्यय लुप्त रहता है और अन्त्य मूल दीर्घ स्वर ह्रस्व बनता है; इस नियम के अनुसार कुमाऊनी का 'दि छ' (=स्त० हि० देता है) रूप बनता है। गढ़वाली मे भविष्यकालिक प्रत्यय लो का प्रयोग होता है, किन्तु यह संभाव्य भविष्यकाल के प्रत्यय के साथ न जुड़कर धातु के साथ जुड़ता

है। मैंने कुछ अवसरों पर समाव्य भविष्य काल कें क्रियारूपे और प्रत्यय 'लो' के बीच नकारार्थक अव्यय का प्रयोग सुना है; जैसे—'एनी छुईं ओइ न लो'=स्त० हि० ऐसी बात नही होगी। सूचियों में गढवाली के दो रूप दिये गये हैं, एक रूप 'टीरी' के आस पास और दूसरा रूप टीरी से आगे पूरब मे बोला जाता है। प्रेरणार्थक प्रत्यय 'आव' संकुचन के कारण 'औ' बनता है, जैसे—अकर्मक √बगणो का प्रेरणार्थक रूप होगा–'बगौणो'। मेरा अनुमान है कि गढवाली तथा कुमाऊनी मे मारवाड़ी तथा नेपाली की भाँति विकारी कर्म-वाच्य रूप अवश्य होगा। मुझे अब तक इस विकारी कर्मवाच्य का उदाहरण नही मिल सका।

नेपाली के रूप

§ ५१५. प्राप्त सामग्री के आधार पर मैंने नेपाली के जो क्रिया-रूप सकलित किये हैं, उनका उल्लेख सूची मे कर दिया है। √हुनु (=होना) के कई रूप मैंने इस बोली के अन्य रूपो के सादृश्य से दिये है। नेपाली के विशेष और महत्त्वपूर्ण रूपों के सम्बन्ध मे मैं कुछ जानकारी और देना चाहता हूँ। क्रियार्थक संज्ञा का प्रत्यय 'नु' है, विकारी रूप 'ना' है, 'पाउनु', विकारी रूप 'पाउना'; जैसे 'चिसो न पाउना ले', किन्तु विकारी रूप मे यह 'नुं' न में भी परिवर्त्तित होता है, जैसे—'जाननु' से 'जानन'। 'ना' वाले रूप की अपेक्षा न वाला रूप उत्कर्षसूचक, अनुमतिसूचक आदि संयुक्त क्रियाओं मे अधिक पसन्द किया जाता है। छात्रो को यह बात स्मरण होगी कि इन संयुक्त क्रियाओ के पूर्वपद मे 'क्रियार्थक सज्ञा' प्रयुक्त होती है; जैसे—भनन लागनु (कहना प्रारभ करना); जान दिनु (जाने देना); किन्तु जहाँ स्तरीय हिन्दी मे 'तक' परसर्ग के साथ विकारी क्रियार्थक सज्ञा प्रयुक्त होती है वहाँ नेपाली में क्रियार्थक संज्ञा के अन्त्य 'न' के साथ 'ज्याल्' जोडकर 'सम्म'=स्त० हि० 'तक' का प्रयोग करते है; जैसा कि इस उदाहरण में हुआ है—'न पाउन्ज्याल सम्म खोज्दै न कि' (नही पा सकती खोजने तक)।

नेपाली में अपूर्णता और पूर्णतासूचक कृदन्त

§५१६. अपूर्णतासूचक कृदन्त मे धातु के साथ 'दो' अथवा 'द' और पूर्णतासूचक कृदन्त के लिए धातु के साथ 'यो' जोडते है। जैसे—√जाननु का अपूर्णतासूचक कृदन्त 'जान्दो' अथवा 'जन्द' और पूर्णतासूचक कृदन्त 'जान्यो' है। अपूर्णतासूचक कृदन्त के 'द' से पूर्व और धातु के अन्त्य स्वर के पश्चात् 'अनुस्वार' आता है, जैसे—√जानु (जाना) से 'जांदो' और √आवनु (आना) से 'आउंदो'।

क. कुछ क्रियाओ के अपूर्णतासूचक कृदन्त के लिए 'दो' अथवा 'द' के स्थान पर 'तो' अथवा 'त' प्रयुक्त होते है। नेपाली के रूपो के लिए मेरी सूची अधूरी है किन्तु जो कुछ सामग्री मिली है, उसके आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि कृदन्त रूप के लिए दो अथवा 'द' और 'तो' अथवा 'त' में से किसी एक का निर्वाचन धातु के अन्त्य वर्ण के आधार पर होता है, यह देखा जाता है कि वह अन्त्य वर्ण अघोष है अथवा सघोष। यदि धातु का अन्त्य वर्ण अघोष है तो उसके साथ 'तो' अथवा 'त' का प्रयोग होता है और यदि अन्त्य वर्ण सघोष है तो 'दो' अथवा 'द' प्रत्यय जोड़ते है। जैसे √खोजनु का अपूर्णता सूचक कृदन्त 'खोजदो' अथवा 'खोजद' है, इसी प्रकार √पाउनु से पाउंदो अथवा पाउद किन्तु √सकनु से 'सकतो' अथवा सकत और √देखनु से 'देखतो' आदि।

§५१७ अपूर्णतासूचक तथा पूर्णतासूचक दोनो प्रकार के कृदन्तो के साथ जब कोई दीर्घ प्रत्यय जुडता है तो पुल्लिग के विकारी रूप में अन्त्य 'ओ' 'आ' मे परिर्वातित होता है, इसी प्रकार स्त्रीलिंग के विकारी रूप मे अन्त्य 'ओ' 'ई' मे बदलता है। किन्तु छोटे प्रत्यय 'द' और 'त' वाला रूप दोनों लिंगों

और वचनो मे अविकारी बना रहता है। ऊपर के विकारो के अतिरिक्त इन दोनो कृदन्तों का 'ऐकारान्त' अधिकरणवाचक रूप भी बहुत प्रयुक्त होता है। √खानु और √पीनु के ऐसे रूप इस वाक्य मे प्रयुक्त हुए है—'उ' रोटी न **खांदै** दाख रस न **पिंदै** आयो' (वह न तो रोटी खाते हुए न द्राक्षारस (सुरा) पीते हुए आया)। इस प्रकार की स्थितिसूचक सयुक्त क्रियाओ में यह सयोजन बहुत प्रचलित है। सामान्य ढग की सयुक्त क्रियाओ की रचना 'हुदि' से भी होती है, यह 'हुंदि' √हुनु से बननेवाले अपूर्णतासूचक कृदन्त 'हुन्द' के अधिकरण कारक का रूप है, अधिकरण सूचक विभक्ति 'ऐ' सक्षिप्त होती हुई 'इ' बन गई; इस वाक्याश मे 'हुन्दि' का प्रयोग द्रष्टव्य है—उन्हेरु **जांदै हुन्दि**' (जब वे जा रहे थे); किन्तु इस रूप के स्थान पर अन्त्य 'आ' वाला विकारी रूप भी इस काल मे प्रयुक्त होता है, दोनों प्रकार के प्रयोगो मे अर्थ सम्बन्धी कोई अन्तर नही होता, जैसे—'यिरोशलीम तीर **जांदा** हुदि' (जब वे यरुसलम की ओर जा रहे थे)।

पूर्णतासूचक कृदन्त का वैशेषणिक प्रत्यय

§५१८ जब पूर्णतासूचक कृदन्त विशेषण की भाँति प्रयुक्त होता है तो उसके पुल्लिगवाची विकारी रूप के साथ 'को' जोड़ते है। पूर्णतासूचक कृदन्त का विशेषण के रूप मे प्रयोग देखिये—'उ **मोटायाको** बाछो ल्या मार' (उस मोटे बछड़े को लाकर मारो) और क्रिया सम्बन्धी रचना इस प्रकार होगी—तेरो यो भाई **मर्याको** थियो (तेरा यह भाई मरा हुआ था)। स्त्रीलिगवाची सज्ञा के साथ वैशेषणिक प्रत्यय 'को' 'की' मे परिवर्तित होता है; जैसे—'उसकी सासु ठुला जरा ले **दुख्याकी** थी' (उसकी सास भयानक ज्वर से पीडित थी।) पुल्लिगवाची विकारी एकवचन तथा बहुवचन के कारण यह 'को' 'का' मे बदलता है, जैसे—मेरा बालख म सगै बिछ्यावना मा **सुत्याका** छन (मेरा बालक मेरे साथ बिछौने में सो रहा है)।

क यह पूर्णतासूचक 'को' युक्त कृदन्त रूप संज्ञा के रूप मे भी प्रयुक्त होता है, इस स्थिति मे बहुवचन मे इसके 'का' वाले विकारी रूप के साथ 'हेरु' जोड़ते है। कही-कही 'हेरु' पूरे वाक्य खड के साथ प्रयुक्त होता है, इस स्थिति मे वाक्य खंड सज्ञा का रूप धारण कर लेता है, उदाहरण—'मन चूर्ण भया **काहेरु** सद्य गरन'' (टूटे दिलवाले को बाँधना), भूतलागि दुखाया **काहेरु** आये' (प्रेतबाधा से पीडित आया)।

नेपाली की अस्तित्वसूचक क्रिया

§५१९ नेपाली की अस्तित्ववाचक क्रिया 'हुनु' (होना) अपूर्णतासूचक कृदन्त से बनने वाले कालो मे नियमित रहती है, किन्तु पूर्णतासूचक कृदन्त तथा उससे बनने वाले कालों में, अन्य कुछ बोलियो की भाँति इसकी मूल धातु 'भ' और उससे बनने वाले पूर्णतासूचक कृदन्त 'भयो' के पूर्णतासूचक विकारी काल के रूप इस प्रकार होंगे—प्रथम पुरुष, एकवचन—'भया', द्वितीय पुरुष एक वचन 'भइस' आदि। यह बात उल्लेखनीय है कि नेपाली मे अपूर्णतासूचक एक अन्य कृदन्त रूप 'छन्दो' भी है जो अस्तित्वसूचक क्रिया के वर्तमानकाल में प्रयुक्त होनेवाली 'छ' (अछ) धातु से सम्बन्धित है। इसका प्रयोग सरल वाक्यों मे खूब होता है, जैसे—'लस्कर न छदा' (समूह की अनुपस्थिति मे)।

नेपाली में कर्तृसूचक संज्ञा

§५२० 'नेपाली बाइबिल' में धातु के साथ 'वाला' अथवा 'हारा' या इनके किसी रूपान्तर के योग से बननेवाली कर्तृसूचक संज्ञा का कोई उदाहरण नही मिला। नेपाली मे धातु के साथ 'न्या' जोड़कर

कर्तृसूचक संज्ञा बनाते है; जैसे √चरनु (=बोना) से 'चर्न्या' (=स्त० हि० बोनेवाला); उठनु (=उठना) से 'उठन्या' (=स्त० हि उठनेवाला) आदि। बहुवचन बनाते समय नियमानुसार 'हेरु' प्रत्यय जोड़ते हैं; जैसे—'मुक्ति पाउन्य हेरु (मुमुक्षु)। यह प्रकट होता है कि स्तरीय हिन्दी के 'वाला' रूप की अपेक्षा नेपाली की कर्तृसूचक सज्ञा का क्षेत्र अधिक व्यापक है। 'ल्युक' १५ १२ के कुछ उद्धरणो से यह बात समझ मे आती है। '**मेरो हुन्या** अंश मलाइ देउ' (जो मेरा है वह भाग मुझे दो), स्तरीय हिन्दी मे इस आशय के लिए 'होनेवाला' का प्रयोग नही किया जा सकता। अन्य उदाहरण है—'तस को शून्य **हुन्या** बेला नजिकै आयो' (उसके शून्य होने का समय निकट आया); 'मेरो घर प्रार्थना **गर्न्या** घर हो' (मेरा घर प्रार्थना करने का घर है)। अन्य उदाहरणो की भॉति इन अन्तिम उदाहरणो मे यह रूप ऐसे स्थानो पर प्रयुक्त हुआ है, जहाँ स्तरोय हिन्दी में क्रिया के विकारी सामान्य रूप का प्रयोग होना चाहिए था।

नेपाली में यौगिक कृदन्त

§५२१. नेपाली का यौगिक कृदन्त रूप धातु के साथ 'इ' अथवा 'ई' के योग से बनता है और उसके साथ सामान्यतया 'कन' (=स्त० हि० 'कर') अथवा 'के' जोड़ते हैं; जैसे—√हिंडनु (जाना अथवा हिलना) का यौगिक कृदन्त मे 'हिंडि' अथवा 'हिडिकन' रूप होगा; इसी प्रकार √बटोलनु (बटोरना) से 'बटोलि' अथवा 'बटोलिकन'। इकारान्त धातु वाली क्रिया ज्यों-की-त्यो अथवा 'कन' प्रत्यय के साथ यौगिक कृदन्त के लिए प्रयुक्त होती है; जैसे—√लिनु (लेना) का यौगिक कृदन्त रूप 'लि' अथवा 'लिकिन'; √दिनु (देना) का यौगिक कृदन्त रूप 'दि' अथवा 'दिकन'। कुछ एकवर्णी धातुओं के साथ यौगिक कृदन्त का 'इ' प्रत्यय सन्धि के कारण 'ऐ' मे परिवर्तित होता है। इस बात के लिए सबसें अच्छा उदाहरण √जानु (जाना) तथा √हुनु (होना) के यौगिक कृदन्त रूप में मिलता है। इन दोनो के स्थान पर कालिक रूपो मे क्रमशः 'मव' और 'भव' का प्रयोग होता है; अन्य बोलियो में इन धातुओ के पूर्णतासूचक कृदन्त रूप 'गव' और 'भव' से बनते है, वहाँ नेपाली मे इन दोनो से यौगिक कृदन्त की रचना की जाती है और 'गै' अथवा 'गैकन' और 'भै' अथवा 'भैकन' रूप बनते है।

नेपाली का संभाव्य भविष्य तथा विधि काल

§५२२ द्वितीय तथा तृतीय पुरुष के एकवचन के अतिरिक्त सभाव्य भविष्य तथा विधि के रूपों में कोई अन्तर नही है। स्तरीय हिन्दी की भाँति विधि के द्वितीय पुरुष एक वचन मे प्रत्यय तथा विकारहीन धातु का प्रयोग किया जाता है, तृतीय पुरुष के एक वचन तथा बहुवचन में विधि के लिए धातु के साथ क्रमशः 'ओस' तथा 'उन' प्रत्यय जोड़ा जाता है;[1] इस तरह विधिकाल, द्वितीय पुरुष, एक वचन मे √मननु (बोलना) का रूप होगा 'मन'; तृतीय पुरुष एकवचन. में 'मनोस' और तृतीय पुरुष के बहुवचन मे 'मनुन'। अन्य बोलियो मे विधिकाल के आदरार्थक प्रार्थना सम्बन्धी रूप बहुत प्रयोग मे आते है, किन्तु मुझे नेपाली में उनका प्रयोग नही मिला। विधि के आदरार्थक रूप के लिए क्रिया के सामान्य रूप के साथ √होनु (होना) के तृतीय पुरुष, एकवचन के रूप के संयोग से बनी संयुक्त

---

[1] हार्नली ने यह बात लिखी है (देखिए, कम्प० ग्राम० पृ० ३३३), किन्तु नेपाली बाइबिल में मैने इन दोनों का प्रयोग संभाव्य भविष्य में भी देखा है।

क्रिया प्रयुक्त होती है। जैसे—मेरा छोरा लाइ हरनु हवस (मेरे लड़के को देखने की कृपा कीजिये); तपाञि मेरा घर हिंडनु हवस (आप मेरे घर आइएगा)।

नेपाली का सामान्य भविष्य-काल

§५२३. सामान्य भविष्य काल के रूपो मे नेपाली, कन्नौजी तथा गढ़वाली मे सादृश्य है। नेपाली मे भी इस काल के लिए क्रिया के साथ 'ल' युक्त प्रत्यय (ल, इल्, अथवा लो) जुडता है; अन्तर यह है कि नेपाली मे प्रत्यय का 'ल' विकल्प से 'न' बनता है। सूचियो में जो रूप दिये गये है, उनसे ज्ञात होगा कि 'ल' वाला प्रत्यय जो भविष्य काल के विविध रूपो के साथ जुडता है कुछ निश्चित स्थानो पर पुरुष की सूचना देता है। √ छुं के वर्त्तमानकाल के विभिन्न रूपो के पहले कही-कही 'ने' युक्त प्रत्यय जुड़ता है; जैसे गरने छुं =स्त० हि० करूँगा।

नेपाली का वर्त्तमान काल

§५२४. नेपाली में वर्तमान काल के तीन रूप मिलते हैं, तीनो में किसी प्रकार का अर्थभेद नही है। प्रथम रूप बहुत प्रचलित है, इसकी रचना अविकृत धातु के साथ अस्तित्वसूचक क्रिया के 'छु', 'छुस' आदि रूपो के योग से होती है। दूसरा रूप अपूर्णतासूचक निर्बल कृदन्त के साथ पुरुषसूचक प्रत्ययों के योग से बनता है। तीसरा रूप स्तरीय हिन्दी की भाँति अपूर्णतासूचक कृदन्त और अस्तित्वसूचक क्रिया के वर्तमानकालिक रूप के योग से रचा जाता है। तृतीय रूप मे जो अपूर्णतासूचक निर्बल कृदन्त प्रकट होता है, वह व्यक्ति, वचन तथा लिंग के कारण विकारी नही बनता, अपरिवर्तित रहता है। व्यक्ति, वचन आदि का परिचय सहायक क्रिया के रूपो से चलता है। कम-से-कम नेपाली बाइबिल के सम्बन्ध में मैं इतना कह सकता हूँ उसमें वर्तमानकाल का यह तीसरा रूप बहुत कम प्रयुक्त हुआ है। वर्त्तमान काल के तीनो रूपो के नमूने के लिए मैं √गरन (करना) की रूपावली दे रहा हूँ, प्रथम पुरुष बहुवचन; पहला रूप गरछूँ, द्वितीय रूप 'गरदौ;[1] तृतीय रूप—गरद० छू। इसकी रूपावली क्रिया सम्बन्धी सूचियों में दी गई है।

नेपाली का अपूर्ण भूत

§५२५ नेपाली मे अपूर्णभूत दो ढंग से बनता है, दोनों प्रकार के रूपों मे अर्थ सम्बन्धी अन्तर नहीं होता। इनमे पहला रूप बहुत अधिक प्रचलित है, इसकी रचना के लिए वर्त्तमान के प्रथम रूप का अनुकरण करते हुए क्रिया के साथ अस्तित्वसूचक क्रिया का भूतकालिक रूप थ्याँ[2], थिस आदि जोड़ते है। अपूर्णभूत का दूसरा रूप वर्त्तमान के तीसरे ढग के रूप से सादृश्य रखता है। इसकी रचना स्तरीय हिन्दी की भाँति अपूर्णतासूचक कृदन्त के साथ अस्तित्वसूचक क्रिया के भूतकालिक रूप से होती है। वर्तमान काल की भाँति इस काल मे भी निर्बल कृदन्त रूप सर्वत्र अपरिवर्तित रहता है। इस नियम के अनुसार अपूर्ण भूतकाल के प्रथम ढग में √भननु (बोलना) के रूप इस प्रकार है—

एकवचन—प्र० पु० भनथ्यां, द्वि० पु० भनथिस, तृ० पु० भनथ्यो;
बहुवचन—प्र० पु० भनथ्यूँ, द्वि० पु० भनथ्यौ, तृ० पु० भनथ्या।

---

[1] मैंने ये रूप केवल सादृश्य के आधार पर दिये हैं।

[2] हार्नली ने 'थ्याँ' के स्थान पर 'थियें' अथवा 'थें' रूप दिया है। कम्प० ग्राम० पृ० ३०६।

द्वितीय ढंग के रूप इस प्रकार हैं—

एकवचन—प्र० पु० मनद० थियाँ, द्वि० पु० मनद० थिस, आदि।

क. शब्दो के योग से बनने वाले वर्तमान तथा अपूर्णकाल मे अपूर्णतासूचक कृदन्त के अविकारी निर्बल रूप के स्थान पर प्राय: अधिकरण कारक का अन्त्य 'ऐ' से युक्त विकारी रूप सर्वत्र प्रयुक्त होता है। कुछ स्थलों पर इन दोनो रूपो मे अर्थभेद दिखाई नही देता, किन्तु क्रिया के स्थायी प्रभाव को प्रदर्शित करने के लिए दूसरा रूप अधिक पसन्द किया जाता है, जैसे जान दी बैप्टिस्ट से ईसा कहते हैं—"अंधा देखतै छन" आदि।

ख. अपूर्ण वर्तमान काल तथा अपूर्ण भूतकाल दोनों के प्रथम ढंग के रूप में अस्तित्वसूचक क्रिया से पहले स्वरान्त धातु का स्वर सानुस्वार उच्चारित होता है; जैसे—√जानु (जाना) से 'जांछु' (मैं जाता हूँ); √लिनु (लेना) से 'लिछस' (तू लेता है); (√) 'हुनु' से 'हुंछौ'; √पाउनु (पाना) से पाउछन। इसी प्रकार अपूर्णभूत मे √दिनु (देना) से 'दिथ्यो'; √आवनु (आना) से 'आउंथ्यू। इस स्थिति मे √रहनु (रहना) तथा √दहनु का स्वर कही-कही सानुनासिक उच्चारित होता है; जैसे—'रहंछन' (वे रहते हैं), 'दहंछु' (मैं जलता हूँ)।

नेपाली का पूर्णकालिक रूप

§५२६. नेपाली के पूर्णकालिक रूपो मे मुख्य रूप से विकारी पूर्णकालिक रूपो का प्रयोग होता है। इन विकारी रूपों को सूची २१ मे देखा जा सकता है। कही-कही विकारी अनिश्चित पूर्ण के साथ अस्तित्वसूचक क्रिया के वर्तमान अथवा भूतकालिक रूप मे से आवश्यकतानुसार किसी रूप के योग से बननेवाला एकाधिक प्रत्ययों का पूर्ण वर्तमान तथा पूर्ण भूत प्रयुक्त होता है। उल्लेख करने योग्य बात यह है कि इन कालों मे हिन्दी की तरह कर्त्ताकारक के साथ परसर्ग का प्रयोग होता है किन्तु सकर्मक क्रिया पूरबी हिन्दी की तरह पुरुष, लिग और वचन में कर्ता का अनुसरण करती है। समासित क्रियाओं से बननेवाले पूर्णकाल के रूप २०वी सूची मे दिये गये है; पूर्ण भूतकाल के उदाहरण के लिए √देखनु के रूप यहाँ दिये जा रहे है; एकवचन प्र० पु० देख्या थियां, द्वि० पु० देखिस थिस, तृ० पु० देख्यो थियो; बहुवचन प्र० पु० देख्यौ थिऊँ, द्वि० पु० देखयौ थियौ, तृ० पु० देख्या थिया, अथवा देखे थिये।

नेपाली का प्रेरणार्थक रूप

§५२७. हिन्दी की बोलियो मे प्रयुक्त प्रथम तथा द्वितीय प्रेरणार्थक रूपो और नेपाली के प्रथम तथा द्वितीय प्रेरणार्थक रूपो मे बहुत कुछ सादृश्य है। प्रथम प्रेरणार्थक के लिए धातु के साथ 'आउ' (=ब्रज० आव, स्त० हि० आ) जोड़ते है। द्वितीय प्रेरणार्थक रूप मे इस 'आउ' को दोहराते हैं। स्तरीय हिन्दी की भाँति धातु के आन्तरिक विकार से बनने वाला प्रेरणार्थक रूप भी प्रचलित है, जैसे—√मरनु से 'मारनु', मरावनु, √गरनु (करना) से गराउनु। मुझे एक प्रेरणार्थक रूप ऐसा भी मिला है, जिसमे धातु के साथ 'या' जोड़ा गया है; जैसे—'छुट्यायो।'

नेपाली का विकारी कर्मवाच्य

§५२८. नेपाली बाइबिल मे केवल विकारी कर्मवाच्य मिलता है, इस विकारी कर्मवाच्य की रचना कर्तृवाच्य क्रिया की धातु के साथ 'इय' के योग से होती है। इस इय युक्त धातु के साथ कर्तृवाच्य

क्रिया के प्रत्यय जोड कर विभिन्न कालो के रूप बनते हैं। पूर्णतासूचक कृदन्त के प्रत्यय, क्रिया के सामान्य रूप के अन्त्य 'न' अथवा क्रियार्थक सज्ञा के अन्त्य 'न्या' से पूर्व कर्मवाच्य के प्रत्यय 'इय' का 'य' लुप्त हो जाता है, जैसे क्रिया के सामान्य रूप √मारनु (मारना) का कर्मवाच्य सामान्य रूप 'मारिनु' तथा कर्मवाच्य क्रियार्थक संज्ञा 'मारिन्या' बनेगी। अन्य उदाहरण इस प्रकार है—'जब तं फिराइये लास' (जब आप लौटाये जाएँगे); कुटियेला (वह पिटेगा), नाशियौला (तू नाश किया जाएगा); म० तिमिरो छोरो भनिन्या योग्य हुइ न० (मैं तुम्हारा पुत्र नही कहला सकता), त्यो धनी मरि गाड़ियो (वह मरा हुआ धनी गाड़ा गया), पाइया (वे पाये गये); आदि।

नेपाली की संयुक्त क्रियाएँ

§५२९ स्तरीय हिन्दी मे विभिन्न प्रकार की सयुक्त क्रियाएँ क्रिया के विकारी सामान्य रूप के योग से बनती है, किन्तु नेपाली मे इन संयुक्त क्रियाओ की रचना क्रिया के अविकारी निर्बल सामान्य रूप के योग से होती है; जैसे—हुन लाग्यो (होने लगा); आदि। किन्तु अनुक्रम सूचक सयुक्त क्रिया की रचना मे √गरनु (करना) स्तरीय हिन्दी की तरह आकारान्त क्रियार्थक सज्ञा के साथ न जुड़कर अपूर्णतासूचक कृदन्त के विकारी अधिकरण कारकीय ऐकारान्त रूप के साथ जुड़ता है, उदाहरण निम्न प्रकार है—कुकुर खटिरा चाटतै गर्थ्यौ। सातत्यसूचक सयुक्त क्रिया की रचना मे भी अपूर्णतासूचक कृदन्त का यही रूप प्रयुक्त होता है; जैसे—जागदै रह थ्यो=स्त० हि० जाग रहा था। √हुनु के योग से बननेवाली सातत्यसूचक सयुक्त क्रिया मे √हुनु के स्थान पर √'भ' का प्रयोग होता है; जैसे—तं भै रहे छस=स्त० हि० तू हो रहा था।

§५३०. कुछ क्रियाओ के नकारार्थ प्रयोग की विशेषता उल्लेखनीय है। इन प्रयोगो मे नकारार्थक शब्द क्रिया के पश्चात् न आकर नियमित रूप से प्रत्यय के अन्तिम वर्ण के रूप मे जुड़ता है; जैसे—'मानदैनन' (वे नही मानते); 'जानिस' (तू जानता है) किन्तु 'जानिनस' (तू नही जानता है)। मैने ये रूप भी सुने है—देखतैनस (तू नही देखता है); पायेनन (वे नही मिले); सुपिनस (तूने नही सौपा); आदि।

§५३१. स्तरीय हिन्दी के 'चाहिए' के लिए नेपाली मे ये रूप मिलते है—चाहिए छ०, चाहियो, चाहिछ०। स्त० हि० के 'चाहिए था' के लिए नेपाली मे 'चाहिथ्यो' और 'चाहिदै थ्यौ' का प्रयोग होता है।

पूरबी बोलियों के क्रिया-रूप

रामायण की क्रिया रूपावली

§५३२. हिन्दी की पुरानी कविता के समान रामायण में प्रयुक्त पुरानी बैसवाड़ी की काल-रचना पूर्ण विकास का परिचय नही देती। आधुनिक हिन्दी की भाँति इस बोली का काल-विभाजन बहुत स्पष्ट नहीं है। साथ ही यह बात भी कहनी होगी कि पुरानी बैसवाड़ी मे हम बहुत प्रकार के ऐसे प्रत्ययो और कुछ कालों का प्रयोग पाते हैं, जो स्तरीय हिन्दी के लिए अज्ञात है। पहले उन कालिक रूपों की चर्चा करते हैं, जो स्तरीय हिन्दी के कालिक रूपो से बहुत कुछ सादृश्य रखते हैं।

रामायण में क्रिया का सामान्य रूप

§५३३. रामायण की भाषा मे क्रिया का सामान्य रूप अथवा क्रियावाचक शब्द दो प्रकार से रचा जाता है। इस विषय में रामायण की भाषा ब्रजभाषा से मिलती-जुलती है। प्रथम प्रकार में धातु के साथ

'न' और दूसरे प्रकार मे धातु के साथ 'ब' जोड़ते है; उदाहरण हैं—जब तेहि कहा **देन** बैदेही; बिनु सिय राम **फिरब** भल नाही। विकारी रूप भी है—'अस न **होने**'=स्त० हि० ऐसा नही होने का, मै तव दसन **तोरिबे** लायक।

रामायण के अपूर्णता और पूर्णतासूचक कृदन्त

§५३४. धातु के साथ 'त' के योग से पूर्णतासूचक कृदन्त बनता है; जैसे—'बिलोकन' से 'बिलोकत'। अनिवार्य रूप से नही, फिर भी अधिकांश स्थलो पर स्त्रीलिंग मे अन्त्य 'त' 'ति' में परिवर्त्तित होता है; जैसे 'लगावत' से 'लगावति'=स्त० हि० लगाती। अपूर्णतासूचक कृदन्त में इस स्त्रीलिंगवाची विकार के अतिरिक्त अन्य कोई विकार नही होता। इस उदाहरण मे हम ब्रज का कुछ दीर्घ 'तो' युक्त कृदन्त पाते है—'धेनु मन भावतो पय स्रवहिं।'

§५३५ पूर्णतासूचक कृदन्त रूप केवल धातु से बनता है; केवल स्त्रीलिंग के कारण इसके विकारी रूप मे अन्त्य 'अ' 'इ' मे परिवर्त्तित होता है। पूर्णतासूचक कृदन्त अन्य स्थितियो मे अविकारी रहता है, जैसे √कहन, √सुनन का पूर्णतासूचक कृदन्त रूप होगा—'कह', 'सुन'; इनका स्त्रीलिंगवाची रूप होगा—'कहि', 'सुनि'। कविता मे छन्द की आवश्यकता से स्तरीय हिन्दी का आकारान्त रूप भी प्रयुक्त होता है। स्तरीय हिन्दी मे आकारान्त धातुओं के पश्चात् और कालिक प्रत्यय से पहले 'व' का आगम केवल भविष्य सम्बन्धी कालो में ही होता है; किन्तु रामायण मे पूर्णताद्योतक कृदन्त के अन्त्य 'अ' अथवा 'आ' से पहले भी इसका प्रयोग किया जाता है, जैसे—गावा=स्त० हि० गाया; 'आव' अथवा 'आवा'=स्त० हि० आया; किन्तु 'या' वाला सामान्य रूप भी प्रयुक्त हुआ है।

रामायण में यौगिक कृदन्त

§५३६. यौगिक कृदन्त की नियमित रचना धातु के अन्त मे 'इ' जोड़ कर की जाती है; जैसे—'तोहि **देखि** सीतल भइ छाती।' छन्द की आवश्यकता के अनुसार यौगिक कृदन्त की अन्त्य 'इ' अन्य ह्रस्व स्वरो की भाँति दीर्घ बनती है। पादान्त मे इस प्रकार का दीर्घीकरण बहुत होता है; जैसे—बैठेउ सभा असि खबरि **पाई**। ब्रज का 'कै' युक्त यौगिक कृदन्त बहुत कम प्रयुक्त हुआ है, जहाँ प्रयोग हुआ है; वहाँ 'कै' से पहले संयोजक स्वर के रूप मे 'इ' का प्रयोग होता है; जैसे—'मुनीस आयसु **पाइकै**'। कहीं-कहीं यौगिक कृदन्त के रूप मे केवल धातु का प्रयोग किया जाता है और छन्द की आवश्यकता के अनुसार धातु का अन्त्य 'अ' दीर्घ 'आ' बनता है, जैसे—'सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा', यहाँ 'चीन्हा' पूर्णतासूचक कृदन्त का रूप न होकर यौगिक कृदन्त का रूप है।

रामायण में कर्तृसूचक संज्ञा

§५३७. धातु के साथ 'वार' (ब० व० वारे, स्त्री० लि० वारि) शब्द के योग से कर्तृसूचक संज्ञा की रचना होती है। उदाहरण—ते एहि ताल चतुर रखवारे।

रामायण में संभाव्य भविष्य काल

§५३८. रामायण में प्रयुक्त भविष्यकालिक रूप ब्रज के दीर्घ तथा पुराने रूपों से सादृश्य रखते है; एकवचन में—प्र० पु० 'औं'; द्वितीय तथा तृ० पु० 'हि'; बहुवचन-प्रथम तथा तृ० पु० हिं, हि पु० हु। दीर्घ

रूपो में कही-कही ह, ए, ऐ, और एं, ऐं जोड़ते है। उदाहरण—पावक जरौ; केहि मगु जाहीं; को कहै। कही-कही धातु के अन्त्य 'इ' के पश्चात् 'य' का आगम होता है; जैसे—जौ लौ जियौ।

क. कही-कही अन्त्य सयुक्त स्वरो के स्थान पर उनके द्वितीय सयोगी स्वर जुड़ते है; जैसे—जौ मैं करहुं रसोई (जौ=जब); कीचइ मिलइ। छन्द की आवश्यकता के अनुसार इन ह्रस्व स्वरों को दीर्घ करते है; जो अपने अवगुन सब कहऊँ; अन्न सो जो जो भोजन करई।

ख. प्रथम पुरुष के एक वचन मे 'उँ' से पूर्व कही-कही 'ए' का प्रयोग मिलता है, जैसे—तुम्हहि सुनाएउ सोई।

ग. अन्त्य सयुक्त स्वर 'ए' तथा 'ऐ' अपने वर्गीय स्वर 'इ' मे परिवर्तित होते है; जैसे—'चाहै' के लिए 'चाहि'। क्रियार्थक सज्ञा मे यह परिवर्त्तन विशेष रूप से देखा जाता है; जैसे—'आयसु होइ।'

घ. अन्त्य 'इ' भी प्राय. लुप्त होती है। इस तरह द्वितीय तथा तृतीय पुरुष के एक वचन मे प्रत्यय हीन धातु रह जाती है; जैसे—'अधम सो नारि जो सेव न तेही', सो किमि सोव ? । जब छन्द के कारण अन्त्य 'अ' दीर्घ होता है तो स्तरीय हिन्दी के पूर्णतासूचक कृदन्त के इस रूप मे कोई अन्तर नहीं होता; जैसे—मास दिवस मह कहा न माना; जाकर नाम मरत मुख आवा।

ङ. कर्मवाच्य के द्वितीय तथा तृतीय पुरुष के एकवचन मे कहीं-कही अन्त्य 'ए' के स्थान पर 'या' आता है। जैसे—सपनेहु सुनिय न वेद पुराना। द्वितीय तथा तृतीय पुरुष के एक वचन मे अन्त्य 'ए' के स्थान पर कही-कहीं 'उ' आता है, जैसे—जी अस होंउ।

च. 'हिं' के स्थान पर हम प्राय. प्राचीन 'सि' का प्रयोग देखते है; जैसे—जो मैं चहसि, तेहि न भजसि मति मन्द। कही-कही 'सि' के स्थान पर 'सु' भी आता है।

§५३९. अन्य पुरानी पूरबी बोलियो के साहित्य मे मैने उपर्युक्त रूपो के अतिरिक्त 'व' युक्त रूप देखा है। इस आगन्तुक 'व' के साथ नियमित प्रत्यय जुड़ते है; जैसे—एक वचन मे—प्र० पु० 'वौं', द्वि० तृ० पु० 'वै'; बहुवचन मे—प्र० तृ० पु० 'वैं', द्वि० पु० वौ, वो। इन 'व' तथा 'ब' वाले प्रत्ययों और आगे दिये गये सामान्य भविष्यकालिक प्रत्ययों के साथ बंगाली के भविष्यकालिक प्रत्ययो—इबो, इबा या इबे, इबेन से तुलना की जा सकती है।

§५४०. अन्त में मैं इस बात का उल्लेख करना चाहता हूँ कि ऊपर भविष्य काल के जो रूप दिये गये हैं उनसे भविष्य में घटित होने वाली क्रिया के सम्बन्ध मे कुछ-न-कुछ सन्देह व्यक्त होता है, इसीलिए भविष्य के सम्बन्ध मे निश्चय के साथ कहने के लिए रामायण में सामान्य भविष्य के रूप (देखिये, §५४१) अधिक पसन्द किये जाते हैं। ये रूप यत्र-तत्र ऐसे स्थलो पर भी प्रयुक्त हुए है, जहाँ समावना व्यक्त नही की गई है; जैसे—सब दुख मिटहि राम पद देषी; भरतहि समर सिखावन देऊ, प्रभु भंजहि दारुण बिपति; बिकल होसि तैं कपि के मारे। इस प्रकार के प्रयोगों के सम्बन्ध मे पद रचना वाले अध्याय मे अधिक लिखा जाएगा।

रामायण का सामान्य भविष्य काल

§५४१. सामान्य भविष्य काल के तीन प्रकार हैं, क्रमशः ग, ह और ब से इन तीनों प्रकारों का पता चलता है।

(१) 'ग' वाला रूप अधिक प्रयुक्त नही होता। यह रूप पुरानी बैसवाड़ी का अपना नहीं है। पछाँही हिन्दी से लिये गये 'गो' आदि प्रत्यय, संभाव्य भविष्य के अपेक्षाकृत दीर्घ रूपो के साथ जुड़ते हैं; जैसे—

अभय करहिंगे तोहि, या को फल पावहुगे आगे। रामायण के विद्यार्थी ब्रजभाषा के इन रूपों से अच्छी तरह परिचित है, अत यहाँ अधिक उदाहरण नही दिये जा रहे हैं।

(२) सामान्य भविष्य का दूसरा प्रकार इन प्रत्ययों के योग से बनता है, एकवचन मे—प्र० पु० 'ह', द्वि० पु०, तृ० पु० 'हहि'; बहुवचन मे—प्र० तृ० पु० 'हहि', द्वि० पु० हहु: ब्रजभाषा की तरह इन रूपो में भी प्रत्यय से पहले सयोजक स्वर 'इ' आता है, जो धातु के अन्त्य स्वर से मिलकर 'ऐलौ मे परिवर्त्तित होता है, जैसे—काज मैं करिहौ तोरा, लै जैहौ तुम कह, आचरज न मानिहहि; मोहि राज दैहहु जबही, हँसिहहु सुनि हमारि जडताई।

इन नियमित रूपो के अतिरिक्त कुछ रूपान्तर भी मिलते है—

क 'हि के स्थान पर पूववर्ती रूप 'सि' भी आता है; जैसे पछितैहसि अंत अभागी। 'हहि' के स्थान पर 'हेसु' मिलता है. विशेष रूप देखिये—दिहेसु (=स्त० हि० देगा), जैसे—तिन्है दिखाइ दिहेसु तैं सीता।

ख. भविष्यकालिक प्रथम 'ह' कही-कही लुप्त होता है; जैसे—'उभय न देखिअहि', यहाँ 'देखिहहि' के स्थान पर 'देखिअहि' का प्रयोग हुआ है।

'ग. कहीं-कहीं प्रथम 'ह' के लोप के पश्चात् श्रुति के रूप मे 'य' आता है, जैसे—कौतुक प्रात देखियहु भोरा।

(३) सामान्य भविष्य के तीसरे प्रकार मे घातु के साथ केवल 'ब' जुडता है। यह रूप तीनो पुरुषो और दोनो वचनो मे प्रयुक्त होता है। उल्लेखनीय बात यह है कि पूरब की आधुनिक बोलियो मे यह तीसरा प्रकार ही नियमित ढग से प्रयुक्त होता है।

रामायण के उदाहरण इस प्रकार हैं, जैसे—चौथे दिवस मिलब मै आई; सुनि सुख लहब राम बैदेही, अनुचित कहब न पडित केही।

तीसरे प्रकार के सामान्य भविष्य के रूपान्तर इस प्रकार है—

क. कहीं-कही विकल्प से घातु के अन्त्य आकार के पश्चात् 'इ' अथवा 'उ' का आगम होता है, जैसे—जाब जहँ पाउब तही, तौ तुम दुख पाउब, फुलाइब गालू। बहुत कम स्थलो पर व्यजन के पश्चात् भी 'इ' अथबा 'उ' का आगम देखा जाता है, जैसे—पुरअब मैं अभिलाष तुम्हारा।

ख. 'ब' के स्थान पर कही-कही 'बि' आता है; जैसे—मैं मारबि काढ़ि कृपाना।

रामायण का विधि काल

§५४२. विधि काल के रूपो के दो प्रकार है; एक प्रकार के रूप संभाव्य भविष्य के रूप से मिलता है और दूसरा प्रकार सामान्य भविष्य काल के 'ब' वाले रूप से सादृश्य रखता है। इन 'ह' तथा 'ब' वाले दोनो प्रकारों मे अनेक रूपान्तर मिलते है, जिनका उल्लेख विधि तथा संभाव्य कालों के प्रसग में किया गया है।

(१) 'ह' ('स') युक्त रूपों के उदाहरण—पावउँ मैं तिन्ह करि गति घोरा; जिय मानसि जनि ऊना; करसि जनि चिन्ता। 'सि' से पहले 'आ' के स्थान पर ह्रस्व 'ए' आता है; जैसे—सो रचेसि उपाउ। कही-कही 'एसु' भी आता है—परखेसु मोहि एक पखवारा। कही-कही तृतीय पुरुष के एकवचन मे 'ह' के लोप के कारण अन्त्य वर्ण 'ऐ' रह जाता है; जैसे—आचरज न करै जनि कोई। द्वितीय पुरुष के एकवचन का बहु प्रचलित प्रत्यय 'उ' है; जैसें—'देखु तैं जाइ।' तृतीय पुरुष के एकवचन मे भी यही प्रत्यय जुड़ता है; जैसे—राज कल्पसत होउ। संभाव्य भविष्यकाल की तरह विधिकाल में भी अन्त्य स्वर को 'अ' आदेश होता है और द्वितीय तथा तृतीय पुरुष के एकवचन में केवल धातु का प्रयोग किया जाता है; जैसे—मोहि जान न

कोई। द्वितीय पुरुष के बहुवचन का प्रत्यय 'हु' है– जैसे—प्रभु चरित सुनवहु मोही; तजहु सोच। 'अ' के स्थान पर प्राय ह्रस्व 'ए' आता है, 'हु' के पूर्व भी 'अ' का आगम होता है; जैसे—पद पंकज गहेहु; मास दिवस महँ आयेहु। कही-कही 'ह' का लोप होता है—करउ सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई। प्रथम तथा तृतीय पुरुष के बहुवचन का नियमित प्रत्यय 'हिं' (ही) है, जैसे—'तव चरन हम अनुरागही', यहाँ 'हम' 'मै' के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है।

(२) सामान्य भविष्य काल की भाँति विधि के रूपो मे भी सर्वत्र धातु के साथ 'ब' प्रत्यय जोड़ते है। जैसे—जो जानब सतसग प्रभाऊ, मनोरथ पुरइब मोरी; 'ब' के स्थान पर 'बि' अथवा 'वी' भी आता है, जैसे—करवि पाय परि बिनय, आनवी जानकी। द्वितीय पुरुष के बहुवचन मे बहुत कम स्थलों पर 'बो' भी आता है; जैसे—अपराध छिमबो। 'बो' वाला रूप प्रयाग के आसपास बोलचाल मे सुना जा सकता है।

रामायण में आदरार्थक विधि

§५४३. विधि के आदरार्थक रूप में सामान्यतया धातु के साथ 'य' अथवा 'इय' जोड़ते है, जैसे—विनय करिय सागर सन जाई, हम कहुँ परिपालय। आदरार्थक रूप से 'इय' का 'य' कही-कहीं लुप्त हो जाता है, जैसे—तुम नीकि उपाय करिअ। कही-कही ब्रज और स्तरीय हिन्दी की भाँति 'ए' अथवा 'ऐ' जोडते है।

क स्तरीय हिन्दी मे ईकारान्त अथवा एकारान्त धातुओ के साथ इस 'य' के स्थान पर पुराना 'ज' वाला रूप प्रयुक्त होता है। रामायण की बोली मे ईकारान्त अथवा एकारान्त धातुओ के साथ ही नही ब्रजभाषा तथा मारवाडी की तरह हलन्त धातुओ के साथ भी 'ज' जोडा जाता है, जैसे—तेहि अभय करीजे, जियाये जीजै। कही-कही 'जे' के साथ 'हु' भी जोड़ते है, जैसे—रावन कर दीजेहु यह पाती।

रामायण में अपूर्ण वर्त्तमान

§५४४. रामायण की बोली मे अपूर्ण वर्त्तमान के दो प्रकार है, पहला प्रकार §४९० मे उल्लिखित विकारी वर्तमान की भाँति सभाव्य भविष्य से सादृश्य रखता है, दूसरा प्रकार या तो केवल अपूर्णतासूचक कृदन्त से बनता है या स्तरीय हिन्दी की भाँति इसके साथ अस्तित्वसूचक क्रिया का वर्तमानकालिक रूप जोड़ते हैं।

क इन दोनों प्रकारो के अर्थ मे कोई विशेष भेद नही होता, अन्तर इतना ही है कि अपूर्णतासूचक कृदन्त से बनने वाला रूप यह सूचित करता है कि क्रिया ठीक वर्त्तमान काल मे हुई। विकारी रूप केवल वर्त्तमान काल ही नही भूत तथा भविष्य के असमाप्त कार्यो को भी व्यक्त करता है। वाक्य रचना सम्बन्धी अध्याय मे इसके सम्बन्ध में विशेष लिखा जाएगा।

§५४५. अपूर्ण वर्त्तमान काल के विकारी अवस्था के नियमित रूपो के अतिरिक्त वे सब रूपान्तर भी प्रयुक्त होते है, जिनका उल्लेख सभाव्य भविष्य के सम्बन्ध मे किया जा चुका है। यहाँ इन रूपान्तरों के सम्बन्ध मे पुन जानकारी देना आवश्यक नही है, नीचे जो उदाहरण दिये जा रहे है, उनसे नियमित रूपो और रूपान्तरो की पर्याप्त जानकारी मिल सकेगी—

करउं एक बिस्वास; वदौ सब के पद कमल; न जानहि मोहि सुरारी ?; फूलै फले न बेत। द्वितीय तथा तृतीय पुरुष के एकवचन में सामान्यतया 'सि' का प्रयोग होता है और इस 'सि' से पहले कही-कही ह्रस्व 'ए' का आगम होता है; जैसे—करसि पान सोवसि दिन राती; कहेसि संसय। इस उदाहरण मे तृतीय पुरुष के एचवचन का प्रत्यय 'इ' (छन्द के लिए 'ई' भी) है . देह दिनहि दिन दूबरि होई। धातु के अन्त्य 'आ' के पश्चात् तृतीय पुरुष के एकवचन में 'य' आता है। कही-कही 'ह्रस्व 'अ' के पश्चात् भी 'य' आता है, जैसे—मन सकुचय

न, इस प्रकार के 'य' वाले रूपों मे 'य' से पहले कही-कही 'इ' भी आता है। द्वितीय तथा तृतीय पुरुष के एकवचन मे उ' भी आता है, जेसें—जो बर माँगु देउ, अगम लागु मोहि। द्वितीय तथा तृतीय पुरुष के एकवचन मे केवल धातु का प्रयोग भी होता है, जैसे—तेहि बिनु मोह न भाग। इन रूपो में 'अ' दीर्घ किया गया है—जीव नित्य केहि लगि रोवा, बहुवचन के उदाहरण इस प्रकार है—प्रथम पुरुष-विनय हम करही, द्वितीय पुरुष—करहु कवन कारन तप भारी?, तृतीय पुरुष—जे पर दोष लखहि। इस उदाहरण मे पहली दो क्रियाएँ वर्त्तमानकाल मे और अन्तिम क्रिया भविष्यकाल मे प्रयुक्त हुई है—'जे देखहिं देखहि जिन्ह देखे।

§५४६ इस उदाहरण मे केवल अपूर्णतासूचक कृदन्त ही वर्तमानकाल को व्यक्त करता है—जो अवलोक लोकपति, मनहु जरे पर लोन लगावति।

क स्तरीय हिन्दी की भाँति अपूर्ण कृदन्त के साथ कही-कही अस्तित्वसूचक क्रिया का वर्तमानकालिक रूप जुडता है, जैसे—धर्म मैं जानत अहऊँ, निसि दिन देव जपतहहु जेही; मोरि करतहहिं निन्द।

§५४७ कृदन्त से बनने वाले इस प्रचलित रूप के अतिरिक्त वर्त्तमानकाल का एक अन्य रूप भी प्रचलित है; यह रूप 'न्त' के योग से बनता है, जैसे—सब सत सुखी विचरत मही। कही-कही अन्त्य स्वर दीर्घ बनाया जाता है, जैसे—सापत ताड़त पुरुष कहंता।

स्मरणीय—'न्त' वाला रूप केवल रामायण मे ही प्रयुक्त नही हुआ है कबीर ने भी इस रूप का प्रयोग किया है। साखी का यह उदाहरण देखिए—ज्यो ज्यो नर निरधक फिरे त्यो त्यो काल हसन्त। यह रूप गढवाली मे भी आता है—पानी ऊपर तें नाहि बरखन्ती, (देखिए §५१४)।

रामायण में संभाव्य भूत

§५४८ अपूर्णतासूचक कृदन्त के साथ अस्तित्वसूचक क्रिया के किसी अश के योग से सभाव्यभूत की रचना हुई है। अपूर्णतासूचक कृदन्त के साथ 'हुँ' के योग से प्रथम पुरुष का एकवचन तथा 'हु' के योग से द्वितीय पुरुष का बहुवचन बना है। अन्य पुरुषो के प्रत्यय यहाँ नही दिये जा रहे है। कालवाची प्रत्ययो से पहले ह्रस्व ए का आगमन होता है, जैसे—पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही। स्त्रीलिंग में इस 'एँ' के स्थान पर 'इ' आती है। इस उदाहरण मे द्वितीय पुरुष के बहुवचन मे 'उ' से पहले का 'ह' लुप्त हो गया—'जो तुम मिलतेउ प्रथम मुनीसा–सुनितिउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा। प्रथम पुरुष के एकवचन मे 'ए' 'य' मे और 'उं' 'ओ' अथवा 'औ' मे परिवर्त्तित होता है; जैसे—जनित्यौ बिनु भट भुइ भाई–तो प्रन करि होत्यौ न हंसाई, जौ तुम अवतेहु मुनि की नाईं–पद रज सिर सिसु धरत गुसाईं।[1]

§५४९ रामायण के अपूर्ण भूत काल की रचना उ० हि० के 'था' के स्थान पर अपूर्णतासूचक कृदन्त 'रह' के योग से होती है; जैसे—नन जुगवत रह नृप रनिवासू। यह रूप रामायण मे उतना प्रयुक्त नही हुआ, जितना उच्च हिन्दी प्रयुक्त होता है।

---

[1] इस पुराने विकारी काल का उद्भव संस्कृत के वर्त्तमानकालिक कृदन्त से हुआ है। बोलचाल की हिन्दी में भी इस विकारी रूप का प्रयोग किया जाता है। इसी कुल की अन्य भाषाओं-सिन्धी, मराठी आदि में इस रूप का प्रयोग अधिक व्यापक रूप से हुआ है। देखिए 'बीम्स, कम्प० ग्राम० खंड ३, पृ० १२६-१३१।

अपूर्ण आरंभ सूचक

§५५० आरंभ सूचक अपूर्णकाल का उल्लेख §४४१ मे किया गया है। ब्रजभाषा के गद्य की अपेक्षा इस काल का प्रयोग रामायण मे अधिक हुआ है। उदाहरण—गावत क्षेत्र मध्य तह **भये**, **पूछत भये**।

रामायण में पूर्णकालिक रूप

§५५१ रामायण मे किसी की पूर्ति अथवा समाप्ति सूचित करने के लिए सामान्यतया अनिश्चय सूचक पूर्णकालिक रूप का प्रयोग हुआ है, चाहे क्रिया भूत, वर्त्तमान और भविष्य मे कभी घटित हुई हो। स्तरीय हिन्दी मे पूर्णतासूचक कालो के सूक्ष्म भेदो को व्यक्त करने के लिए कृदन्त से बने कई प्रकार के रूपो का प्रयोग होता है, किन्तु रामायण मे इस प्रकार के कृदन्त से बने समासित रूप बहुत कम प्रयुक्त हुए है। कुछ रूप तो रामायण के लिए अपरिचित ही है। अपूर्णतासूचक काल की भाँति पूर्णतासूचक काल के भी दो तरह के रूप मिलते है; पहला प्रकार केवल कृदन्त से व्यक्त होता है और दूसरे प्रकार मे विकारी रूपो का प्रयोग किया जाता है।

§५५२ रामायण मे कृदन्त से बनने वाले अपूर्णतासूचक काल की भाँति कृदन्त से बननेवाला पूर्णकालिक रूप भी स्तरीय हिन्दी के पूर्णकालिक रूपो से भिन्न है। उदाहरण के लिए स्तरीय हिन्दी के पूर्णता सूचक कृदन्तो मे धातु के अन्त्य स्वर को 'आ' बनाते है, जबकि रामायण में अन्त्य स्वर 'अ' होता है, जैसे—'कहा' के स्थान पर 'कह', 'रहा' के स्थान पर 'रह'। स्त्रीलिंग वाची रूप बनाने के लिए यह अन्त्य 'अ' 'इ' मे परिवर्त्तित होता है, जैसे—सुनिस्त हि० सुनी, मानिस्त हि० मानी, छन्द के लिए यह अन्त्य 'इ' प्राय. दीर्घ बनती है। अन्य उदाहरण इस प्रकार है—गिरवर गुहा **पैठ** सो जाई, **कह** सुग्रीव सुनहु।

क. पुल्लिगवाची बहुवचन मे अन्त्य स्वर 'ए' बनता है। स्तरीय हिन्दी के बहुवचन वाले रूप से इस रूप का पूरा-पूरा सादृश्य है।

ख जिन धातुओ के अन्त मे 'आ' अथवा 'ओ' आता है, उनके पूर्णकाल मे सामान्यतया 'वा' जुडता है, जैसे—मै काह **नसावा**; महि मारि **गिरावा**।

§५५३. रामायण मे प्रयुक्त कालों की एक विशेषता यह है कि उनमे स्पष्टता नहीं है। एक काल का रूप दूसरे काल के रूप से सादृश्य रखता है, छन्द के लिए अन्त्य स्वर सर्वत्र दीर्घ किया गया है और एक काल के लिए दूसरे काल का उपयोग हुआ है। उदाहरण के लिए मारना क्रिया के कृदन्त रूप 'मार' को लीजिये, इसका प्रयोग इन कालो मे हुआ है—सभाव्य भविष्य, सामान्य भविष्य, अपूर्णतासूचक काल और वर्त्तमान काल के द्वितीय तथा तृतीय पुरुष के एक वचन और पूर्णतासूचक कालो के तीनो पुरुषो के एक वचन मे। कहना के 'कहि' रूप का प्रयोग निम्न कालों मे होता है—सभाव्य भविष्य, सामान्य भविष्य, अपूर्णता सूचक काल और वर्तमान काल के द्वितीय तथा तृतीय पुरुष के एक वचन, यौगिक कृदन्त तथा तीनो पुरुषो के स्त्रीलिंगवाचो रूपों के लिए। 'कहि' का प्रयोग स्तरीय हिन्दी के पूर्णकालिक कृदन्त के पुल्लिगवाची रूप के स्थान पर भी होता है; जैसे—कछु कहि न जाई। देखना का 'देखी' रूप स्त्रीलिंगवाची पूर्णकालिक कृदन्त के तीनों कालो में प्रयुक्त होता है और यौगिक कृदन्त के रूप मे भी। छन्द की आवश्यकता के लिए 'देखि' का अन्त्य 'इ' दीर्घ बनता है। पिछले और आगामी अनुच्छेदो के आधार पर इन रूपो को बहुत से उद्धरणो मे देखा जा सकता है।

रामायण का कर्मवाच्य रूप

§५५४ सकर्मक क्रिया के कर्ता से सम्बन्धित रूप की कर्मवाच्य रचना के सम्बन्ध मे §४१२ (१) जो बात लिखी गई है, वह रामायण की बोली पर भी लागू होती है। कर्मवाच्य क्रिया लिंग और वचन के मामले मे कर्त्ता के स्थान पर कर्म का अनुसरण करती है। विकारी कर्त्ताकारक के साथ रामायण मे परसर्ग 'ने' का प्रयोग नही होता, यदि सज्ञा के स्थान पर सर्वनाम का प्रयोग हुआ है, और उस सर्वनाम का विकारी रूप उपलब्ध है तो बिना परसर्ग के उसका विकारी रूप काम मे लाया जाता है। एकवचन मे सज्ञा का विकारी रूप नही होता। जब कर्त्ता और कर्म दोनो पुल्लिगवाची होते है तो प्राय् कर्मवाच्य रूप अकर्मक क्रिया के कर्तृवाच्य रूप से सादृश्य रखता है। उदाहरण हैं—जो प्रभु विपिन फिरत तुम **देखा** (देखने वाली पार्वती हैं), भगति तैं **मांगी**, जिन्ह मोहि **मारा** ते मै **मारे**।

§५५५ पूरब की सभी आधुनिक बोलियो मे सकर्मक क्रियाओ के इन बहुप्रचलित कर्मवाच्य रूपो के स्थान पर कर्तृवाच्य रूप भी प्रयुक्त होते हैं, जैसे—बेल-पात तीनि सहस सवत सो **खाई** (यहाँ खानेवाली उमा हैं)। इन उदाहरणो मे यह प्रयोग देखा जा सकता है—कोउ जियत **धरहू**, धन्य जे **जाये**; ते **देखें** दोउ भ्राता।

§५५६ रामायण की बोली की एक विशेषता ऊपर दिया गया कृदन्त रूप है, इस रूप के अतिरिक्त कन्नौजी तथा ब्रजभाषा का अन्त्य 'ओ' तथा 'औ' (यो और यौ) वाला रूप भी प्रयुक्त हुआ है। जैसे—कपि चरनन्हि **पर्यौ**, नारद मुनि गरुड **पठायो**। √देना तथा √लेना का पूर्णता सूचक कृदन्त रूप 'देवा' तथा 'लेवा' भी मिलता है, कही-कही 'दयो' और 'लयो' रूप भी मिलता है।

रामायण में विकारी पूर्णकाल

§५५७ पूर्णता सूचक कृदन्त के एक वचन मे प्रथम पुरुष के लिए 'उ' तथा द्वि० तृ० पु० के लिए 'उ'; बहुवचन मे प्रथम तथा तृतीय पुरुष के लिए 'न्ह' अथवा 'न्हि' और द्वितीय पुरुष के लिए 'हु' जोडकर विकारी पूर्णकाल की रचना हुई है। स्त्रीलिंगवाची रूप के लिए इन प्रत्ययो को कृदन्त के स्त्रीलिंगवाचक रूप के साथ जोडते हैं। इन प्रत्ययो से पहले ह्रस्व' 'ए' अथवा 'अ' का आगम होता है। यह विकारी पूर्णकालिक रूप केवल कर्तृवाच्य रहता है, इसका कर्मवाच्य रूप नही बनता। उदाहरण है—'तव दरस नि पाप' भइउ' (यहाँ पापरहित एवं स्त्री हुई है), तुम जानहु केहि कारन **आयेउं**; अब लगि **रहिउ** कुमारी, भवानी सती सरीर **रहिउ**, खगपति विरचि पह गएऊ, निज नाम **सुनायउ**, तासु पर **डारेन्हि** गिरितरु जूह, **मारेहु** मोहि व्याध की नाई, मल **भूलिहु**।

क द्वितीय तथा तृतीय पुरुष के एकवचन मे 'उ' के स्थान पर प्राय. 'सि' का प्रयोग हुआ है; जैसे—रिपु सम मोहि **मारेसि**, भविष्य काल मे ही नही वर्तमान मे भी यह 'सि' 'हि' बनती है; जैसे—'अब मोहि आइ **जगायेहि** काहा ?'। इस उदाहरण मे 'हु' अवधारणार्थक प्रतीत होता है—'कहि न सकहि जस भयहु विषादू'।

ख ध्यान दीजिये, उपर्युक्त प्रत्यय उन अनियमित कृदन्तो के साथ भी जुडते हैं, जिनका उल्लेख §५६० मे किया गया है। उदाहरण—हरि **लीन्हेसि** सर्बस अरु नारी, **कीन्हेहु** सब काजा।

पूर्णतासूचक अन्य काल

§५५८ ऊपर इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि रामायण मे अनिश्चयसूचक पूर्णतावाची कृदन्त के विविध रूप स्तरीय हिन्दी के पूर्णतासूचक विभिन्न कालो के स्थान पर प्रयुक्त होते है। पूर्णतासूचक

कृदन्त और सहायक क्रिया 'रहन' के योग से बनने वाले सभाव्य भूत और पूर्णभूत का प्रयोग भी बहुत कम स्थलो पर मिलता है, जैसे—दो भाई **गये रहे** देखन फुलवारी, एक सखी सिय सग बिहाई **गई रही।**

रामायण में अनियमित पूर्णकालिक

§५५९ कुछ विशेष क्रियाओ के अनियमित पूर्णकालिक रूपो का उल्लेख स्तरीय हिन्दी और ब्रजभाषा के क्रिया रूपों के प्रसग मे किया गया है। क्षेत्रीय विकारो के साथ ये अनियमित रूप रामायण मे भी प्रयुक्त हुए है; जैसे—होने के पूर्णकालिक एकवचन का रूप 'भा', 'भयउ' अथवा 'भयउ'; बहुवचन मे 'भे', 'भै' आदि, √ठान का पूर्णकालिक रूप 'ठयउ', √जान का ए०व० 'गयउ'=स्त० हि० गया, ब०व० 'गये' आदि, कही-कही ए०व० मे 'गा' भी, बहुवचन मे 'गै' भी, √हनन का पूर्णकालिक बहुवचन 'हये' या 'हिये'; √लगन=स्त० हि० लगा का 'लयउ'। उदाहरण—तब जो दुख **भा;** ; बहु रोग-वियोगनि लोग **हुये।** रामायण मे जाना के वर्तमान तथा भविष्यकाल के प्रचलित रूपो के अतिरिक्त वर्त्तमान काल का विशेष रूप √गम् से उद्भूत, 'गव' अथवा 'गवन' है, इसका पूर्णकालिक रूप 'गया' है—जैसे—देखि सराहन **गवहिं** सिधारे।

§५६० √करना, √देना और √लेना के पूर्णकालिक रूप 'किय', 'लिय' दियौ, लियौ आदि के अतिरिक्त ब्रजभाषा के रूप-कीन्हौ, दीन्हौ, लीन्हौ भी प्रयुक्त होते है। कुछ अवसरो पर ये रूप सकुचित होकर भी आते है, जैसे—त्रिस्ना केहि न **कीन्ह** बौराहा।

क पहले इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि कुछ लेखको ने इन रूपो का अन्त्य 'ह' नही लिखा है। अन्त्य 'ह' के लोप के कारण ये रूप भी मिलते है—कीन, लीनौ, दीन आदि। 'सभा विलास' का उदाहरण है—बिपत कसौटी **कीन।**

ख. रामायण तथा अन्य प्राचीन काव्यो मे आकारान्त धातुओं के साथ 'न' जोडा गया है; जैसे—सुनि दसकध **रिसान;** सकल **हरषाने।** 'न' के स्थान पर 'नो' भी आता है, जैसे—जगत सकल **फिरानो।**

§५६१. रामायण मे एक स्थान पर भोजपुरी, मैथिली तथा मागधी के समान 'ल' वाला पूर्णकालिक रूप प्रयुक्त हुआ है, कोपि गगन पर **धायल;** यहाँ √धाय से 'धायल' रूप बना है, खडी बोली मे इसका रूप है 'धाया'।'

§५६२ इस 'ल' के स्थान पर एक जगह पूर्णकालिक प्रत्यय के रूप मे 'र' आया है। उदाहरण—**गरजेर** बहुरि दससीस।

रामायण में संस्कृत के क्रिया-रूप

§५६३. (१) रामायण मे समकालीन रूपो के स्थान पर कही-कहीं संस्कृत और प्राकृत के क्रिया रूप प्रयुक्त हुए हैं। जैसे—स्त० हि०के 'किया' और 'गया' रूपों के लिए क्रमश 'कृत' और 'गत'। उदाहरण—केहि कै मति इन्ह **कृत** न मलीनी; इहि प्रकार **गत** बासर सोऊ।

§५६४. पिछले अनुच्छेदों मे जिन कृदन्त रूपो का उल्लेख हुआ है, उनके अतिरिक्त रामायण मे संस्कृत के कुछ कालिक रूप भी प्रयुक्त हुए हैं। प्रत्येक रूप का विवरण न देकर यहाँ उल्लेख मात्र किया जा रहा है। प्रचलित रूप इस प्रकार है (१) वर्त्तमान काल, परस्मैपद, प्रथम पुरुष, एकवचन—नमामि, प्रनमामि, पश्यामि, जपामि ('जल्पामि' के स्थान पर)। तृतीय पुरुष, बहुवचन—पश्यन्ति, वदन्ति, नदन्ति, निरखन्ति, उदाहरण—**पश्यन्ति** संयोगी जतन करि, **प्रनमामि** निरन्तर श्री रम-नम्। सस्कृत की अस्तित्व सूचक क्रिया

के द्वितीय पुरुष का एकवचन वाला रूप 'असि' सम्बन्धवाचक तथा अन्योन्य सम्बन्धवाचक सर्वनाम के साथ जुडकर आया है, जैसे—**योसि सोसि** तव चरन नमामी।

(२) आत्मनेपद के वर्त्तमानकालिक रूप भी मिलते है, प्रथम पुरुष, बहुवचन—नमामहे, स्मरामहे, भजामहे, उदाहरण—भवनाथ सो **स्मरामहे; रमेस नित्य भजामहे।**

(३) सस्कृत के ये परस्मैपदी विधि के रूप तृतीय पुरुष के एकवचन में भी मिलते है—तनोतु, बसतु त्रातु। अस्तित्वसूचक क्रिया के तृतीय पुरुष के एकवचन का रूप 'अस्तु' भी प्रयुक्त हुआ है; जैसे—एवमस्तु, **एवमस्तु** करुनानिधि बोले।

(४) परस्मैपद के विधिकाल के द्विवचन के दो-तीन रूप कई स्थलो पर आये है, जैसे—पाहि, त्राहि; उदाहरण—भवमोचन **पाहि पाहि।**

रामायण में प्राकृत के क्रियापद

§५६५ प्राकृत के क्रियापद भी प्रयुक्त हुए है। निर्मय्यौ < स० निर्मित, जैसे—रामायन जिन निर्मय्यौ। कथै < सं० कथति > स्त० हि० कहै, सं० √स्था के वर्तमान काल, तृतीय पुरुष, एकवचन के रूप 'तिष्ठति' का प्राकृत रूप 'तिष्टै', स० के 'वदे' (प्रथम पुरुष, आत्मनेपद, एकवचन) के लिए प्रा० वदि, जैसे—बहुरि **वंदि** खल गन। संस्कृत के प्रथम पुरुष, वर्तमान काल, एक वचन के रूप 'नमामि' के लिए 'नौमि', जैसे—'**नौमि** निरन्तर श्री रघुवीरं', और 'नमामय' भी। प्राकृत का द्वित्व किया हुआ रूप—बिबर्ध एक स्थान पर आया है जो √वृध के स० रूप ववृधे से उद्‌भूत है, जैसे—सेवत विषय **बिबर्ध** जिमि।

रामायण में कर्मवाच्य

§५६६ पूर्णकालिक कृदन्त अथवा सामान्यतया धातु के अन्त्य स्वर को इ बनाकर उसके साथ √जाना के कालिक रूपो को जोड़कर कर्मवाच्य रूप बना है, जैसे—कल्प कोटि **लगि जाहिं** न गाये, **कहि जात** सो नाही।

क इस √जा युक्त रूप के अतिरिक्त प्राकृत का वर्त्तमानकालिक कर्मवाच्य रूप भी मिलता है। यह रूप धातु के साथ 'यत्' के योग से बनता है, बीच मे 'इ' सयोजक के रूप मे आती है। यह वर्तमान-कालिक कर्मवाच्य रूप लिंग, वचन आदि के कारण विकारी नही बनता, उदाहरण—बेष प्रताप **पूजियत** तेऊ; मायापति सेवक सन माया **करियत।**

रामायण में प्रेरणार्थक क्रिया

§५६७. धातु के साथ 'आव' अथवा 'आ' जोड कर प्रथम प्रेरणार्थक और 'वा' जोड कर द्वितीय प्रेरणार्थक रूप बना है। स्तरीय हिन्दी की भाँति प्रथम प्रेरणार्थक रूप मे धातु के स्वर को दीर्घ बनाया गया है। दोनो प्रेरणार्थक रूपो के उदाहरण इस प्रकार हैं—नृप तनु वेद विहित **अन्हवावा**, परम विचित्र बिमान **बनावा।** √देना और √लेना के प्रेरणार्थक रूप है—'दिवाना' और 'लिवाना'।

क ध्यान दीजिये, ऐसी बहुत-सी क्रियाएँ जो स्तरीय हिन्दी मे एक वर्णी प्रत्यय के योग से प्रेरणार्थक रूप बनाती है, रामायण मे उनके प्रेरणार्थक रूप अलग ढंग से बनते है, जैसे—स्त० हि० के √जलाना और √बुलाना के प्रेरणार्थक रूप है—'जारन' ('जालना' के लिए) और 'बोलन'। उदाहरण हैं—जे महिसुर पुर **जारे**; सुचि सेवक **बोले।**

ख धातु के साथ 'आव' अथवा 'अव' के योग से प्रेरणार्थक रूप बनते है, 'पुरावहु' के स्थान पर 'पुरवहु'; जैसे—**पुरवहु** मनोरथ मोरि।

ग कही-कही प्रेरणार्थक 'अव' अथवा 'आव' 'औ' मे परिवर्त्तित होते है, जैसे—इस उद्धरण मे 'रिसावहि' के स्थान पर 'रिसौहै' रूप प्रयुक्त हुआ है—रदपट फरकत नयन **रिसौ है।**

घ. सवृत धातु के साथ प्रेरणार्थक प्रत्यय जोडते समय धातु का दीर्घ स्वर प्राय ह्रस्व नही होता। जैसे स्तरीय हिन्दी के 'बोलाना' और 'दिखाना' का रूप 'बोलावन' तथा 'देखावन' मिलता है; जैसे—तैं बिप्र **बोलाई।**

रामायण में संयुक्त क्रियाएँ

§५६८ रामायण तथा पुरानी बैसवाडी के अन्य काव्यो मे वे सब सयुक्त क्रियाएँ प्रयुक्त हुई हैं, जिनका उल्लेख §§४२५-४६५ मे किया गया है। उल्लेखनीय बात यह है कि रामायण में इन सयुक्त क्रियाओ को इच्छानुसार विग्रह के साथ प्रयुक्त किया गया है। कही तो विग्रह करने वाला शब्द प्रयुक्त हुआ है और कही छन्द की आवश्यकता से इनका ऋप बदल गया है, पूर्वपद परपद के स्थान पर और परपद पूर्वपद के स्थान पर प्रयुक्त होता है। इस प्रकार की प्रेरणार्थक क्रियाएँ **स्तरीय** हिन्दी की प्रेरणार्थक क्रियाओ से थोडी-बहुत भिन्न होती है। भिन्नता इस प्रकार है—

(१) स्तरीय हिन्दी के समान यौगिक कृदन्त से बनने वाली सभी सयुक्त क्रियाओ मे अन्त्य 'इ' अथवा 'ई' बनी रहती है। उदाहरण प्राय प्रत्येक पृष्ठ पर मिल सकते है। कुछ उदाहरण निम्न प्रकार है—कहं चन्द्रिका चद्र **तजि** जाई, जात पथिक जनु **लेत बुलाई**, 'सो **सुधारि** हरिजन जिमि **लेहीं**', इस प्रयोग के 'लेही'-का पृथक् रूप से अग्रेजी मे अनुवाद नही करना चाहिए, अनुवाद करते समय सयुक्त क्रिया के दोनो अशो को एक स्थल पर एकत्रित (सुधारि लेहिं) कर लेना आवश्यक है, सुधार लेहि स्त० हि० सुधार लेते है। इस उदाहरण मे संयुक्त क्रिया के दोनों पद विपर्यय के साथ प्रयुक्त हुए हैं और कृदन्त के अन्त्य 'इ' को छन्द के कारण दीर्घ बनाया गया है—'सरिता सुभगता **सक** को **कही**', यहाँ 'को कहि सक'=स्त० हि० 'कौन कह सकता हैं' के स्थान पर 'सक को कहि' वाक्यांश प्रयुक्त हुआ है।

स्मरणीय—छात्रो को इन बातो पर विशेष ध्यान देना चाहिए—(१) सयुक्त क्रिया का विपर्यय कहाँ-कहाँ होता है, (२) कहाँ-कहाँ पूर्व तथा पर पद का विपर्यय होता है, (३) और कहाँ-कहाँ अन्त्य 'इ' दीर्घ बनती है। ये तीनो बाते काव्य की भाषा मे ही पाई जाती है, अत हिन्दी गद्य के पाठको को इन रूपो को समझने मे कठिनाई होती है।

(२) समासित क्रिया के पूर्व पद मे आने वाला कृदन्त रूप धातु के साथ केवल 'इ' जोडने से बनता है, जब कि स्तरीय हिन्दी मे 'आ' अथवा 'ए' के योग से कृदन्तवाची शब्द की रचना होती है, जैसे—देखि राम रिपुदल **चलि आवा।** स्तरीय हिन्दी मे 'चलि आवा' के स्थान पर 'चले आते हैं' का प्रयोग किया जाएगा, स्तरीय हिन्दी के 'चले' का अन्त्य स्वर 'ए' 'इ' बना है और 'आते' का 'ए' दूसरे चरण के अन्त्यानुप्रास के लिए 'आ' मे परिवर्त्तित हुआ है।

§५६९ आकाक्षा सूचक, आरम सूचक, अनुमति सूचक और प्राप्ति सूचक सयुक्त क्रियाओ के अनेक रूपान्तर मिलते है।

(१) आकाक्षा सूचक सयुक्त क्रियाएँ स्तरीय हिन्दी की भाँति पूर्णता सूचक कृदन्त से बनती है, जैसे—बिवाह मै चाहौ **कीन्हा।**

(२) स्तरीय हिन्दी की भाँति प्राय क्रिया के नकारान्त सामान्य-रूप से भी इनकी रचना होती है। जैसे—**मरन** अब **चहसी**, मोहि **जान दे**, सुग्रीवहि तब **खोजन लागा**।

(३) एकारान्त अथवा ऐकारान्त क्रियार्थक सज्ञा के योग से एक विशेष प्रकार की सयुक्त क्रिया बनती है, जैसे—**चाहहु सुनै** राम गुन गूढा; केहि कारन **करै न दीहा**, रखवारे जब **बरजै लागे**। क्रियार्थक सज्ञा के अन्त्य 'ए' के स्थान पर कही-कही 'अइ' लिखा गया है, जैसे—**लाग कहइ**।

(४) क्रियार्थक सज्ञा का अन्त्य 'ए' कही-कही 'इ' मे परिवर्तित हुआ है, यह 'इ' छन्द की आवश्यकता से 'ई' भी बना है, जैसे—जो **नहाइ चह** इहि सर भाई, जासु चरित **लखि** काहु न पावा। यह अन्त्य 'ए' कही-कही 'य' भी बना है, जैसे—रामचन्द्र गुन **बरनय लागा**। इस प्रकार की सभी सयुक्त क्रियाएँ विग्रह के साथ भी लिखी जाती है, और पूर्व तथा पर पदो का विपर्यय भी होता है, जैसे—**लागेउ** बृष्टि **करै** बहु बाना, आपन नाम कहन तब लयऊ।[1]

अवधी और रिवाई की संयुक्त-क्रियाएँ

§५७० अवधी के सम्बन्ध मे उल्लेखनीय बात यह है कि उसके क्रियापद और सर्वनामो के रूप बहुत कुछ रामायण की पुरानी बैसवाडी का अनुसरण करते है। फिर रीवा की बोली और अवधी के रूपो मे बहुत सादृश्य है। अवधी तथा रिवाई की उल्लेखनीय बात यह है कि सहायक क्रिया के पहले मुख्य क्रिया का कुछ अश शेष रहता है। कुमाउनी की चर्चा करते हुए मुख्य क्रिया के अश मे बनने वाले इस प्रकार के रूपो के सम्बन्ध मे बहुत कुछ लिखा जा चुका है। इन उदाहरणो से यह बात स्पष्ट की जाती है, स्त० हि० हुए थे अव० भ रहे, स्त० हि० गए थे, अव० ग रहे, (स्त्री० भै रही, गै रही)। स्त० हि० हुआ है रि० भ है, स्त० हि० हुआ था, रि० भता। रिवाई मे धातु का अन्त्य 'ओ' प्रत्यय से पहले 'या' मे परिवर्तित होता है; जैसे—स्त० हि० देगा, दोगे, देता=रि० द्यावस, द्यावा, द्यात। √देना, √लेना और √करना इन तीनो क्रियाओ के साथ अवधी तथा रिवाई मे पूर्णकालिक अनियमित प्रत्यय जोड़ते है, इनका रूप होता है—दीन्ह, लीन्ह, कीन्ह। पूर्णकालिक प्रत्यय से पहले अवधी मे 'य' के स्थान पर प्रायः 'व' प्रयुक्त होता है, जैसे—स्त० हि० गया=अव० गवा, स्त० हि० बनाया=अव० बनावा। अवधी तथा रिवाई मे एक विशेष प्रकार का सभाव्य पूर्ण भूत काल प्रयुक्त होता है, जो रामायण के इसी प्रकार के काल से सादृश्य रखता है, दे० §५४८[2]। पहले इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि अवधी, रिवाई तथा पूरब की किसी अन्य बोली मे पछाँही हिन्दी का 'ने' परसर्ग प्रयुक्त नही होता।

भोजपुरी के क्रिया-रूप

§५७१ भोजपुरी, मागधी और मैथिली के क्रिया रूप हिन्दी के क्रिया रूपो से बहुत भिन्न और बगाली के क्रिया रूपो के निकट है। अवधी, रिवाई और पुरानी बैसवाडी के समान भोजपुरी, मागधी और मैथिली मे क्रिया के विकारी रूप अधिक मिलते है, जब कि स्तरीय हिन्दी मे क्रिया के विकारी रूप बहुत कम हैं। प्रत्येक बोली मे सहायक क्रियाओ के योग से बनने वाले वर्त्तमान काल के अतिरिक्त बहुत-सी पछाँही बोलियो के समान विकारी वर्त्तमान काल भी विद्यमान है। पछाँह की बोलियो मे अनिश्चित पूर्णकाल की रचना केवल पूर्णता सूचक कृदन्त से होती है, किन्तु इन बोलियो मे अनिश्चित पूर्णकाल के सभी रूप अन्त्य वर्ण के विकार से

---

[1] 'लयउ' का उद्भव 'लगऊ' से हुआ है, 'ग' के लोप के कारण 'य' श्रुति के रूप में आया है। देखिए, §९९

[2] देखिए, सूची सं० २२।

भी बनते है। इसी तरह पछाँही बोलियो के सभाव्य भूतकाल मे अपूर्णता सूचक कृदन्त पुरुष सूचक प्रत्ययो के बिना प्रयुक्त होते है, किन्तु इन बोलियो मे कृदन्त के साथ तीनो पुरुषो को व्यक्त करने के लिए विशेष प्रत्यय जुडते है, इन रूपो की विशेषता यह है कि पुल्लिग सम्बन्धी पुरुषवाची प्रत्यय स्त्रीलिगवाची प्रत्ययो से भिन्न है। एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि इन बोलियो मे आदरार्थक रूप अधिक है। पछाँही हिन्दी मे आदरार्थक रूप मुख्यतया विधि काल मे और थोडी सख्या मे केवल भविष्यकाल मे प्रयुक्त होते है, वहाँ पूरब की इन बोलियो मे लगभग सभी कालो के रूप दो ढग से बनते है। मैथिली के सम्बन्ध में यह निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि इसकी क्रियाओ के सभी कालो मे दो तरह के रूप है, एक तरह के रूप सामान्य ढंग से प्रयुक्त होते है और दूसरे प्रकार के रूप आदर व्यक्त करने के लिए।

क दोनो वचनो के रूप विद्यमान है, किन्तु इनके प्रयोग में बहुत भ्रम बना रहता है। जिस पुरुष अथवा काल का आदरार्थक रूप सामान्य रूप से भिन्न नही है, उसका बहुवचन वाला रूप आदर के लिए एकवचन मे भी प्रयुक्त होता है। §§११७, ११८ मे इस बात का उल्लेख किया गया है कि किस स्थिति मे दीर्घ स्वर को ह्रस्व बनाया जाता है और किस स्थिति मे वह दीर्घ बना रहता है। इन सूत्रों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। रूप सम्बन्धी सूचियो में इस बात के अनेक उदाहरण मिल सकेगे।

§५७२ भोजपुरी, मैथिली आदि के विकारी वर्तमान तथा विकारी भूतकाल के रूप २१वी सूची मे दिए गए है। यह बात उल्लेखनीय है कि भूतकाल मे तो उपान्त्य दीर्घ स्वर को ह्रस्व बनाते है किन्तु वर्त्तमानकाल मे वह ज्यो-का-त्यों बना रहता है। उदाहरण—**देख लों** (मै देखता हूँ), किन्तु **देखलों** (मैने देखा)। जो रूप सूचियो मे दिए गए है, उनके अतिरिक्त भी कुछ रूप प्रचलित है। उदाहरण के लिए विकारी वर्त्तमानकाल के द्वितीय तथा तृतीय पुरुष के आदरार्थक रूपो को प्रस्तुत किया जा सकता है, जिनकी रचना 'ईला' और 'ईलें' प्रत्यय से होती है। सूचियो मे दिए गए रूपो के अतिरिक्त अनिश्चय सूचक विकारी पूर्णकाल के ये रूप भी मिलते हैं—कर्मकारक मे प्रयुक्त तृतीय पुरुष के प्रति आदर व्यक्त करने के लिए 'इयन' प्रत्यय जोडते है, जैसे—'हम राजा के **देखलियन**; कर्मकारक मे प्रयुक्त द्वितीय पुरुष के प्रति आदर व्यक्त करने के लिए 'इयव' प्रत्यय जोड़ा जाता है, जैसे—हम रउरा के देखलियव। जब द्वितीय पुरुष में प्रयुक्त सज्ञा कर्मकारक मे प्रयुक्त तृतीय पुरुष के प्रति आदर व्यक्त करनी है तो क्रिया के साथ 'अहुन' प्रत्यय जुड़ता है; जैसे—तू साहिब के देखलहुन।

क आदरेतर क्रिया के बहुवचन की रचना के लिए बहुवचन वाची क्रिया के साथ सर्वत्र 'सवं' प्रत्यय जोडते है। ग्रिअर्सन ने अपने व्याकरण मे इस 'सव' को शब्द से पृथक् लिखा है, जैसे—देखलन सव। सारन जिले मे कर्मकारक मे प्रयुक्त तृतीय पुरुष के प्रति अवज्ञा प्रकट करने के लिए अनिश्चित विकारी पूर्णकाल के द्वितीय पुरुषवाची बहुवचन में 'अहुस' प्रत्यय जोडते है, जैसे—तू नउआ के **मारलहुस**।

§५७३ अनिवार्य रूप से तो नही किन्तु सामान्यतया अकर्मक क्रिया के अनिश्चय सूचक विकारी पूर्णकाल के पुल्लिगवाची तृतीय वचन मे अन्त्य 'ए' तथा 'अस्' का लोप होता है और 'इ' जोड़ते हैं। स्त्रीलिंग मे इस 'इ' के स्थान पर दीर्घ 'ई' जुड़ती है। उदाहरण के लिए सकर्मक √देखब का तृतीय पुरुष, पुल्लिग, एकवचन का रूप 'देखलस' तथा तृतीय पुरुष स्त्रीलिंग एकवचन का रूप 'देखलसि' तथा तृतीय पुरुष, स्त्रीलिग, बहुवचन का रूप देखलिन है; किन्तु अकर्मक √गिरब तृ० पु , एकव०, पुल्लिग का रूप 'गिरल' तथा तृ० पु० स्त्रीलिग, एकवचन तथा बहुवचन का रूप क्रमश. 'गिरलि' और 'गिरली' है।

§५७४. 'आरो' प्रत्यय से युक्त (देखिये २०वी सूची) संयुक्त क्रिया से बनने वाला अपूर्ण वर्त्तमान देखने मे वर्त्तमान कालिक कृदन्त और सहायक क्रिया से बनने वाले अपूर्ण वर्त्तमान से भिन्न है, किन्तु दोनो मे

किसी प्रकार का अर्थ भेद नही है। 'बाट' के आरम्भिक 'ब' के लोप तथा §८९ के अनुसार 'ट' के 'र' मे परिवर्त्तित होने और सहायक क्रिया के मुख्य क्रिया मे विलीन होने से यह रूप बनता है।

§५७५. भोजपुरी की कर्त्तृसूचक सज्ञा धातु के साथ 'वैया' अथवा 'हारा' के योग से बनती है; जैसे—√देखब से देखवैया अथवा 'देखनहारा' ओर 'देखनिहारा' भी। क्रियार्थक सज्ञा के तीन रूप मिलते है। पहला रूप केवल धातु से बनता है, दूसरा रूप धातु के साथ 'ल्' और तीसरा रूप 'ब' के योग से रचा जाता है। इन तीनो के विकारी रूप में क्रमश ए, ला और (केवल पश्चिम मे) ऐ अथवा 'ले' जोडते है, जैसे √देखब से 'देख', विकारी देखे (पश्चिम मे देखे)। √देखल् का विकारी रूप देखला, (पश्चिम मे देखले) और देखब का विकारी रूप देखबै (केवल पश्चिम मे)।

क बीम्स [illegible] 'ब' वाली क्रियार्थक संज्ञा के कर्मकारक के रूप मे 'ब' को 'बे' का आदेश दिया है। इस विकार के लिए बीम्स ने दो उदाहरण दिए है—सुबे न कैलन, होबे करि ऐसन, किन्तु मेरे विचार मे ये दोनो उदाहरण भोजपुरी के नही है। मैने मध्य अन्तर्वेद मे अवश्य इस प्रकार से सुना है—खैबे न करे, बे मानिबे न करिहै। सूचियो मे दिए गए यौगिक कृदन्त के सम्बन्ध मे बीम्स का विचार है कि भोजपुरी मे पूर्णता सूचक कृदन्त का विकारी रूप परसर्ग के साथ प्रयुक्त होता है, जैसे—जानि ले पर।

मागधी क्रिया के रूप

§५७६ मागधी मे एकाधिक शब्दो के अपूर्णता सूचक कृदन्त के योग से बनने वाले अपूर्ण वर्तमान काल के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार का अपूर्णकाल भी है, जिसमे हिन्दी की अन्य बोलियो के समान क्रियार्थक सज्ञा के विकारी रूप के साथ सहायक क्रिया जोडी जाती है। इस तरह मागधी मे अपूर्ण वर्त्तमान काल के वैकल्पिक रूप प्रयुक्त होते है, 'देखइत ही' (मै देख रहा हूँ') और 'देख ही' अथवा 'देखे ही' (मै देखता हूँ) आदि। अस्तित्वसूचक √हलू के भूतकालिक रूपों के साथ विकारी क्रियार्थक संज्ञा के योग से भी भूतकाल की रचना होती है; जैसे—देख हलू, देख हल आदि, ग्रिअर्सन ने इन रूपो का अर्थ दिया है—'मैने देखा', आदि।

§५७७. भूत काल के आशय पर बल देने के लिए सभाव्य पूर्णभूत काल मे क्रिया के साथ 'हल' जोडा जाता है। सकर्मक और अकर्मक क्रियाओ के विकारी पूर्णकाल मे निम्नलिखित अन्तर पाये जाते है—सकर्मक क्रिया के द्वितीय पुरुष के एकवचन मे प्रयुक्त होने वाले प्रत्ययो[1] के अतिरिक्त अकर्मक क्रियाओ के साथ 'ला' और 'लै' भी जोडते हैं, जैसे—'गिरला' अथवा 'गिरलै'। सकर्मक क्रिया के तृतीय पुरुष के एकवचन मे प्रयुक्त 'इस' और 'लकइ' के स्थान पर 'ल' और 'लइ' का प्रयोग होता है, जैसे 'मारिस' अथवा 'मारलकइ' किन्तु 'गिरल' अथवा 'गिरलइ'। अकर्मक क्रिया के तृतीय पुरुष के बहुवचन मे 'कन' और 'कथिन' का प्रयोग नही होता। एकाधिक शब्दो के योग से बनने वाले पूर्णकालो में जहाँ सकर्मक क्रिया पूर्णकालिक कृदन्त का विकारी रूप काम मे लाती हैं वहाँ अकर्मक क्रिया अविकारी कृदन्त का प्रयोग करती है, जैसे—सकर्मक क्रिया का पूर्णकालिक रूप—'देखले होतू' और 'मारले होब' हैं जबकि अकर्मक क्रिया के रूप 'गिरल होतू' और 'गिरल होब' है।

§५७८. मागधी की कर्तृसूचक संज्ञा क्रिया के सामान्य रूप के साथ 'हार' प्रत्यय के योग से बनती है। प्रत्यय जोडने से पहले क्रिया के सामान्य रूप का अन्त्य 'न' कहीं-कहीं 'नि' बनता है। भोजपुरी की भाँति मागधी की 'ब' वाली क्रियार्थक सज्ञा अविकारी रहती है, किन्तु अन्य प्रत्ययो से बनने वाले रूप विकारी बनते है। विकारी अवस्था मे इनके अन्त्य स्वर को 'ए' अथवा 'आ' आदेश होता है।

---

[1] देखिए सूची सं० २१।

मैथिली के क्रिया-रूप

§५७९. मैथिली के क्रिया रूप हिन्दी से सम्बन्धित सभी बोलियो के क्रिया रूपों से भिन्न है। वैकल्पिक रूपो का अत्यधिक बहुलता मैथिली की अपनी विशेषता है। सूचियों मे मैथिली के कुछ रूप ही दिए गये है। इस बोली मे भी वे सभी काल है, जो स्तरीय हिन्दी मे है, अन्तर यह है कि मैथिली के प्रत्येक काल, प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक लिग तथा वचन मे अनेक रूपान्तर और वैकल्पिक रूप प्रयुक्त होते है। इन सब रूपान्तरो और विकल्पो को सूचियो मे प्रदर्शित करना सभव नही है।

§५८०. पहले इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि हिन्दी से सम्बन्धित बोलियो मे केवल मैथिली मे प्राकृत का निरर्थक प्रत्यय 'क' आज भी बहुत प्रयुक्त होता है। इस 'क' के सम्बन्ध मे पहले विस्तार से विचार किया जा चुका है। यहाँ इतना लिखना पर्याप्त होगा कि इस निरर्थक प्रत्यय ने उत्तर भारत की बोलियो मे प्रयुक्त होने वाले तद्भव शब्दो को बहुत प्रभावित किया है। हिन्दी की अनेक बोलियो के अधिकाश शब्दो मे 'क्' लुप्त हो चुका है, केवल उसका अवशिष्ट 'अ' पूर्ववर्त्ती स्वर के साथ मिल कर किसी-न-किसी रूप मे सुरक्षित है, किन्तु मागधी और मैथिली मे यह 'क' ज्यो-का-त्यो विद्यमान है। इन दोनो बोलियो के क्रिया रूपो और धातु के साथ भी यह 'क' जोडा जाता है। कही तो यह अस्तित्व सूचक क्रिया 'छ' का रूप बदलता है, जैसे 'छिक', कही यह कालिक रूपो मे अन्तर उत्पन्न करता है, जैसे 'देखल' से 'देखल कै' और 'मारल' से 'मारल-कैन्हि'। पुरुष सूचक प्रत्ययो, विशेषत· औकारान्त और ऐकारान्त पुरुष सूचक प्रत्ययो के साथ भी जुडता है, जैसे—देखभौक; गिरलैक। कही-कही अन्य रूपो के साथ भी 'क' जुड़ता है, जैसे विधिकाल के द्वितीय पुरुष के एकवचन मे—सुतहक, पैभीक। कही-कही 'क' के स्थान पर 'त्' भी जुड़ता है; जैसे—अनियमित ढग से रूप बनाने वाली सहायक क्रिया के सबल रूप 'हऊ' = स्त० हि० 'हूँ' के स्थान पर 'हतू' आदि।

§५८१ मैथिली के क्रिया रूपो के अन्त्य 'ऐ' अथवा 'औ' से पूर्व का दीर्घ स्वर सभाव्य भविष्य को छोड़ कर अन्य सभी कालो मे ह्रस्व बनता है। जैसे—विकारी पूर्णकाल के तृतीय पुरुष के एकवचन मे मागधी का रूप 'भेलै' और मैथिली का रूप 'भेलैक' है। √देखब के अपूर्णतासूचक कृदन्त का 'त' युक्त रूप 'देखत' है, किन्तु 'ऐत' वाले रूप मे पूर्व का स्वर ह्रस्व बनता है—'देखैत'।

क सूचियो में मैथिली के जो रूप दिए गए है, उनमे कही-कही महाप्राण ध्वनियाँ दिखाई देगी, जैसे—खी, भो आदि। पूर्ववर्त्ती अल्पप्राण ध्वनि के साथ 'ह' के योग से इन ध्वनियो का उद्भव हुआ है; जैसे—'छिकही' से 'छिखी',, 'देखबहो' से 'देखभो', 'मारतहिन्ह' से 'मारथिन्ह', आदि।

§५८२. मैथिली मे एकाधिक शब्दो के योग से बनने वाला प्रत्येक पूर्णकालिक रूप दोहेरे ढग का है, एक ढग का रूप पछाँही हिन्दी के समान पूर्णतासूचक कृदन्त के साथ सहायक क्रिया के योग से रचा जाता है और दूसरे ढग के रूप मे पूरब की बोलियो के समान पूर्णता सूचक कृदन्त का विकारी रूप सहायक क्रिया के साथ प्रयुक्त होता है। पहले ढग का रूप इस तरह बनता है—

(१) अकर्मक क्रिया के लिए अविकारी कृदन्त प्रयुक्त होता है।

(२) सकर्मक क्रिया के लिए विकारी कृदन्त प्रयुक्त होता है।

(३) अकर्मक तथा सकर्मक दोनों प्रकार की क्रियाओ के पूर्णता सूचक कालो में सहायक क्रिया लिंग-वचन आदि के विकार ग्रहण करती है।

दूसरे प्रकार के रूप मे लिंग-वचन आदि के विकार पूर्व पद की मुख्य क्रिया में होते है और सहायक

क्रिया सदैव तृतीय पुरुष के एकवचन मे आती है। दोनो प्रकार के रूपो मे किसी प्रकार का अर्थ भेद नही होता, जैसे—'गिरलो य' अथवा 'गिरल छौ'; मारलक य अथवा 'मारले छै'।

§५८३ सकर्मक और अकर्मक क्रियाओ के विकारी पूर्णकालो के प्रत्ययो मे निम्नलिखित अन्तर पाये जाते है—

(१) अकर्मक क्रिया के द्वितीय पुरुष, पुल्लिग, एकवचन मे सकर्मक क्रिया के प्रत्ययो के अतिरिक्त आ, है और 'हा' प्रत्यय का प्रयोग भी होता है।

(२) तृतीय पुरुष, पुल्लिग एकवचन मे सकर्मक क्रिया के प्रत्यय निम्न प्रकार है—अक, कैक, कौक और अकर्मक क्रिया के साथ या तो कोई प्रत्यय नही जोडा जाता या निम्न प्रत्यय जुडते है—ए, ऐ, ऐक, औ अथवा औक'

(३) तृतीय पुरुष, पुल्लिग, बहुवचन मे सकर्मक क्रिया के प्रत्यय निम्न प्रकार है—का, ए, थिन्ह, खिन्ह, अन्ह और 'आत' तथा अकर्मक क्रिया के प्रत्यय है—अथ, अथि, थिन्ह, हिन्ह, अन्ह, ए, आ और आत।

(४) तृतीय पुरुष, स्त्रीलिग, बहुवचन मे सकर्मक क्रिया के प्रत्यय है—ई, इन्ह, ईत और अकर्मक क्रिया के प्रत्यय है—ई, इन्ह और ईत।

§५८४ मैथिली के क्रिया-रूपो की एक उल्लेखनीय बात यह है कि अधिकाश रूप एक-दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त होते है। कौन-सा रूप कहाँ प्रयुक्त होना चाहिए यदि इस सम्बन्ध मे कोई नियम पालन किया भी जाता है तो उसका आधार व्यक्तिगत इच्छा अथवा स्थान विशेष के कुछ मुहावरे है। इसलिए इस सम्बन्ध मे दिया गया कोई नियम पूरे मिथिलाभाषी प्रदेश पर लागू नही होता। अत किसी एक रूप का प्रयोग यदि दूसरे रूप के स्थान पर हो रहा है तो उसके लिए अन्य नियम खोजना पडेगा। उदाहरण के लिए आदरार्थक रूप को लीजिए। हिन्दी से सम्बन्धित बोलियो मे क्रिया के कर्त्ता को ध्यान मे रख कर आदरार्थक रूप का प्रयोग होता है, जब कि मैथिली मे क्रिया के आदरार्थक अथवा आदरेतर सामान्य रूप के प्रयोग के लिए 'कर्म' पर भी ध्यान दिया जाता है। आदरार्थक रूप के प्रयोग के लिए कुछ नियम इस प्रकार है—

(१) मुख्य या गौण 'कर्म' के प्रति बहुत आदर व्यक्त करना हो तो किसी भी पुरुष मे क्रिया के साथ 'ऐन्ह' (ऐन्हि अथवा 'ऐन') प्रत्यय जोडा जाता है। यदि क्रिया द्वितीय पुरुष के बहुवचन मे हो और 'कर्म' मे तृतीय पुरुष का बहुवचन हो और उसके प्रति आदर व्यक्त करना हो तो 'हुन्ह' प्रत्यय जोड़ते है।

(२) जब गौण अथवा मुख्य कर्म प्रथम अथवा तृतीय पुरुषवाची हो और उसके प्रति हीनता का भाव व्यक्त करना हो तो क्रिया के साथ 'ही', 'ही', 'ऐ' अथवा 'ऐक' प्रत्यय जुडता है।

(३) यदि मुख्य अथवा गौण कर्म के रूप मे द्वितीय पुरुष हो और वह वक्ता की अपेक्षा हीन माना जाता है तो क्रिया के साथ 'औ' अथवा 'औक' प्रत्यय पसन्द किया जाता है। यदि आदर व्यक्त करना हो तो 'औन्ह' प्रत्यय जोडते है। यदि कर्त्ता द्वितीय पुरुष मे हो और कर्म तृतीय पुरुष मे तो 'औन्ह' प्रत्यय अवज्ञा के लिए जोडा जाता है।

सभाव्य भविष्य, नकारार्थक सभाव्य अपूर्णकाल और विकारी वर्तमान काल मे द्वितीय पुरुष मे प्रयुक्त सज्ञा के प्रति आदर व्यक्त करने के लिए क्रिया के प्रथम पुरुष वाची रूपो का उपयोग किया जाता है।[1]

---

[1] इस नियम की विस्तृत व्याख्या तथा अन्य उदाहरणों के लिए देखिए—ग्रियर्सन-सेवन ग्रामर्स, भाग ६, पृष्ठ ३२-३६।

§५८५ अपूर्णता सूचक कृदन्त और सहायक क्रिया के योग से बनने वाले कालिक रूपो मे कृदन्त रूप का अन्त्य 'त' प्राय लुप्त होता है और कृदन्त तथा सहायक क्रिया मिल कर एक शब्द को भॉति लिखे जाते हैं; उदाहरण—'देखत छौं' अथवा 'देख छौ', 'देखैत छलो' अथवा 'देख छलो', 'गिरैत रहौ' अथवा 'रिरेरहौ', आदि[1]। पश्चिम की ओर अस्तित्व सूचक क्रिया का 'छ' कही-कही 'स' मे परिवर्त्तित होता है। इस स्थिति मे 'देख छौक' अथवा 'देखैत छौक' के स्थान पर 'दैखैसैक' भी प्रयुक्त होता है। प्रथम पुरुष के एकवचन मे 'छ' के स्थान पर 'स' नही आता।

§५८६ मैथिली कर्तृसूचक सज्ञा की रचना दो प्रकार से होती है—

(१) धातु के साथ 'वैया' प्रत्यय जोड कर।

(२) क्रियार्थक सज्ञा के साथ सीधे अथवा अन्त्य 'न' को 'नि' बना कर 'हार' अथवा 'वाला' प्रत्यय जोड कर। भोजपुरी की तरह मैथिली की क्रियार्थक सज्ञा दो-तीन प्रकार से रची जाती है, देखि=देख, देखल०=देखल। प्रथम प्रकार का रूप विकृत अवस्था मे आकारान्त, एकारान्त अथवा ऐकारान्त बनता है, द्वितीय प्रकार के रूप मे विकारी अवस्था में अन्त्य 'ला' तथा तीसरे प्रकार के रूप मे अन्त्य 'बा' आता है। उदाहरण के लिए √देखब से निम्न क्रियार्थक सज्ञाएँ बनती है—

देख अथवा देखि और इसका विकारी रूप दैखै अथवा देख०, देखल अथवा दैखल० और इसका विकारी रूप 'दैखला, 'देखब', विकारी रूप दैख बा।

भोजपुरी मागधी और मैथिली की अनियमित क्रियाएँ

§५८७ पहले §३९१ मे स्तरीय हिन्दी की अनियमित क्रियाएँ गिनाई गई है। भोजपुरी, मागधी और मैथिली मे भी इन क्रियाओ के रूप अनियमित ढग से बनते है, केवल √ठानना को अपवाद माना जा सकता है। इन बोलियो मे √ठानना का प्रयोग होता है, इसकी मुझे जानकारी नही है। √धरब के रूप √करब के समान चलते है। भोजपुरी, मागधी तथा मैथिली मे √करना तथा √धरना क्रिया के सामान्य रूप, यौगिक और पूर्णता सूचक कृदन्त, इन कृदन्तो के योग से बनने वाले कालिक रूपो मे आधार रूप क्रमश क० तथा ध० रहता है। उदाहरण निम्न प्रकार है—भोजपुरी मे √करब का सामान्य रूप 'कइल'=करना और=धरब के पूर्णकालिक तृतीय पुरुष के एक वचन मे 'धइलस'=धरा, मैथिली मे √करब के यौगिक कृदन्त का रूप 'क० क०' अथवा 'कै क०'=स्त० हि० कर के, मैथिली मे √धरब के पूर्णकालिक तृतीय पुरुष एकवचन मे 'धैलक' स्त० हि० धरा। √मरल=स्त० हि० मरना के संभाव्य भविष्य, सभाव्य भूत, अपूर्ण कालिक रूप और क्रिया के सामान्य रूप मे भोजपुरी 'मर' के स्थान पर 'मु' का प्रयोग करती है। 'मर' के स्थान पर 'मु' का प्रयोग उत्तरी तथा पश्चिमी मैथिली मे भी होता है। मध्य तथा पूर्वी मैथिली मे √मर की यह अनियमितता केवल पूर्णता सूचक कृदन्त और उसके कालिक रूप तथा क्रिया के सामान्य रूप तक सीमित है। धुर दक्षिण मे सभी रूप नियमित ढंग से चलते हैं। मैथिली भाषी क्षेत्र के एक हिस्से मे 'मर' के स्थान पर 'म०' को आधार बनाया जाता है; इस आधार से पूर्णता सूचक कृदन्त का 'मइल' अथवा 'मैला'=स्त० हि० मुआ रूप बनता है। √मरना के अनियमित रूपों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—भोजपुरी में संभाव्य अपूर्ण भूत के तृतीय पुरुष के एक वचन में

---

[1] अपूर्ण भूतकाल के रूप 'देखत बाटों' के स्थान पर भोजपुरी में प्रयुक्त होने वाला वैकल्पिक रूप 'देखतारों' के साथ इन रूपों की तुलना कीजिए। भोजपुरी के इस रूप में कृदन्त के अन्त्य 'त' के स्थान पर प्रत्यय का आरंभिक अक्षर लुप्त हुआ है। देखिए, §५७४।

'मुअत'=स्त० हि० मरता; उत्तरी मैथिली के संभाव्य अपूर्ण भूत के एकवचन मे 'मुइतहुँ'; अपूर्णता सूचक कृदन्त 'मुइत'।√जाना के पूर्णता सूचक कृदन्त और उसके कालिक रूपो मे स्तरीय हिन्दी के समान 'ग' आधार बनता है। इन तीनो बोलियो मे √देब अथवा √देल (देना) और √लेल अथवा √लेब (लेना) के रूप बहुत ही अनियमित ढंग से चलते है। स्थान के कारण इन दोनो क्रियाओं के सभी अनियमित रूपो की चर्चा करना यहाँ संभव नही है। ग्रिअर्सन ने अपनी पुस्तक 'सेवन ग्रामर्स' में इन दोनो क्रियाओ की पूरी रूपावली दी है।

भोजपुरी, मागधी और मैथिली की प्रेरणार्थक क्रिया

§५८८. स्तरीय हिन्दी की तरह भोजपुरी, मागधी और मैथिली मे भी प्रेरणार्थक क्रिया के दो रूप है—प्रथम प्रेरणार्थक रूप और द्वितीय प्रेरणार्थक रूप। ये तीनो बोलियाँ दोनो प्रकार के प्रेरणार्थक रूपो की रचना मे ब्रजभाषा का अनुसरण करती है। प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया के लिए धातु के साथ 'आव' तथा द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया के लिए 'वाव' जोडते है। अन्त्य 'व' प्राय 'उ' बन कर सन्धि के नियमानुसार पूर्व स्वर मे मिलता है।√देखब से 'देखाउब'=स्त० हि० दिखाऊँगा, देखौलस स्त० हि० दिखाया। मागधी मे इन प्रत्ययो के अतिरिक्त विकल्प से प्रथम प्रेरणार्थक मे 'आव' तथा द्वितीय प्रेरणार्थक मे 'वाय' प्रत्यय जुडता है। मैथिली की कुछ बोलियों का प्रथम प्रेरणार्थक रूप स्तरीय हिन्दी की भाँति 'आ' के योग से बनता है अथवा प्रेरणार्थक प्रत्यय का 'व' 'ब' मे परिवर्त्तित होता है।

भोजपुरी, मागधी और मैथिली में कर्मवाच्य

§५८९ इन तीनो बोलियो मे स्तरीय हिन्दी के समान पूर्णता सूचक कृदन्त और √जाना के विभिन्न क्षेत्रीय पर्यायो के योग से कर्मवाच्य रूप बनता है। इन समाश्रित क्रियाओ से बनने वाले कर्मवाच्य रूप के अतिरिक्त भोजपुरी तथा मैथिली में धातु के साथ 'आ' जोड कर विकारी कर्मवाच्य रूप बनाया जाता है। जैसे—कर्तृवाच्य 'देखल' से सामान्य कर्मवाच्य 'देखायल' और विकारी कर्मवाच्य 'देखावल'=स्त० हि० दिखाना। विकारी कर्मवाच्य और सामान्य कर्मवाच्य के अर्थ मे अन्तर है। इससे क्रिया के होने की सूचना मात्र मिलती है, इस रूप का आशय है 'कुछ हो सकता है'। स्तरीय हिन्दी के कर्मवाच्य वाक्य 'यह पोथी उससे पढी नही जाती' के अश 'पढी जाती' के लिए भोजपुरी मे 'पढाल्ि' प्रयुक्त होता है।

भोजपुरी, मागधी और मैथिली में संयुक्त क्रिया

§५९० भोजपुरी, मागधी तथा मैथिली मे उत्कर्ष सूचक, सामर्थ्य सूचक और पूर्त्ति सूचक सयुक्त क्रिआएँ स्तरीय हिन्दी के समान मूल धातु के साथ §§४२७-४३४ मे उल्लिखित क्रियाओ के योग से बनती है। कही-कही सयोजन से पहले रामायण की भाँति धातु के साथ 'इ' जोड़ते हैं। दक्षिणी मैथिली मे 'इ' के स्थान पर 'ए' आता है। समावना सूचक सयुक्त क्रिया बनाने के लिए दक्षिणी मैथिली में धातु के साथ 'सकल' के स्थान पर 'पारल' जुडता है। पूर्त्ति सूचक सयुक्त क्रिया बनाने के लिए सामान्यतया धातु मे कही-कही 'इ' अथवा 'ए' जोडते हैं, किन्तु मैथिली मे इस रूप के स्थान पर धातु के साथ 'ल' युक्त क्रियार्थक सज्ञा के योग से बनने वाला रूप विकल्प से प्रयुक्त होता है; जैसे—'खाइ चुकल' और 'खाएल चुकल'।

§५९१ अनुक्रम सूचक सयुक्त क्रिया के लिए पछाँही हिन्दी के समान पूर्णता सूचक कृदन्त के साथ करल अथवा करब=स्त० हि० करना को जोडते है। स्तरीय हिन्दी के 'आया करो' के लिए भोजपुरी मे 'आइल

क्रिया-रूपों का उद्भव

§५९५. हिन्दी के विभिन्न क्रिया-रूपो का उद्भव दो प्रकार से हुआ है, (१) सीधे सस्कृत अथवा प्राकृत के क्रियापदों से, (२) सस्कृत अथवा प्राकृत के पुराने रूपो के साथ नवीन प्रत्ययो अथवा कृदन्त रूपो के मिश्रण से।

क्रिया के सामान्य-रूप की व्युत्पत्ति

§५९६. हिन्दी मे क्रिया का सामान्य रूप दो प्रकार से रचा जाता है—(१) धातु के साथ 'न' के योग से, 'न' के अन्य रूपान्तर इस प्रकार है—ना, ना, नो, नौ, णू, णो। (२) धातु के साथ 'व' (ब) के योग से, 'व' के अन्य रूपान्तर इम प्रकार है—वौ अथवा वौ, ब अथवा 'बो'। हार्नली ने इन दोनो रूपो की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है—'न' वाला रूप संस्कृत के 'आनीय' प्रत्यय युक्त कृदन्त से और 'व' (ब) वाला रूप सस्कृत के 'तव्य' प्रत्यय युक्त कृदन्त रूप से उद्भूत है।[1] मोनेर-विलियम्स ने हिन्दी क्रिया के सामान्य रूप के विभिन्न प्रयोगो (जैसे सज्ञा के रूप मे, विशेषण के रूप मे, क्रिया के सामान्य रूप मे) की तुलना सस्कृत के सम्बन्धित कृदन्त के प्रयोगो के साथ कर के हार्नली के कथन का समर्थन किया है।[2] उदाहरण के लिए हिन्दी के 'करना' की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी जा सकती है—स० नपु० करणीयम्>अप० करणह>पुरानी हिन्दी करणम्, ब्र० करनौ, क० करनों अथवा करनौ, मार० करणो, मे० करणू, स्त० हि० करना पू० हि० करन। 'करव' अथवा 'करब' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—स० नपु० कर्त्तव्यम्>प्रा० करिअव्वम् अथवा करेअव्वम्>ब्र० करिवौ अथवा करवौ, मार० करबो, पू० हि० करब।

क दे तास्सी के व्याकरण मे √करना के सामान्य रूप 'करदौं' का उल्लेख मिलता है। मै इस 'दौं' के सम्बन्ध मे यह कहना चाहता हूँ कि सस्कृत के 'तव्यम्' प्रत्यय से उद्भूत प्राकृत के 'दव्वम्'[3] से इसकी उत्पत्ति हुई है।

ख. 'व' वाले रूप का उपान्त्य स्वर संभवत क्षतिपूर्त्ति के लिए दीर्घ किया जाता है, मराठी का 'करावे' रूप इसका अच्छा उदाहरण है। धातु के मूल दीर्घ स्वर को ह्रस्व करने का कारण 'बलाघात' हो सकता है, इस प्रकार का बलाघात प्रथम वर्ण पर होता है।

ग सस्कृत का भविष्य कालिक कर्मवाच्य कृदन्त जब सज्ञा की भॉति प्रयुक्त होता है तो वह नपुसकलिगी माना जाता है। हिन्दी मे क्रिया का सामान्य रूप विकृत अवस्था मे एकारान्त अथवा आकारान्त प्रयुक्त होता है तो उस विकारी रूप को सस्कृत के सम्बन्ध कारक के एकवचन से उद्भूत माना जाना चाहिए।[4] किन्तु ब्रजभाषा मे इसका विकारी रूप इकारान्त रहता है। इस इकारान्त रूप को सस्कृत के अधिकरण कारक के एकारान्त एकवचन से उद्भूत मानना चाहिए, ब्रजभाषा का 'करनि' स० के 'करणीये' से विकसित हुआ है।

अपूर्णतासूचक कृदन्त की व्युत्पत्ति

§५९७. अपूर्णता सूचक कृदन्त दो प्रकार का है—(१) जिसके अन्त मे ह्रस्व स्वर अथवा अन्तर्भुक्त

---

[1] एशियाटिक सोसाइटी बंगाल का जर्नल, भाग १, सं० २, सन् १८७३।

[2] मोनेर विलियम्स, संस्कृत ग्रामर, §९०२, ९०५, ९०८।

[3] लैस्सेन, इन्स्ट. लिंग. प्राक० §१२९ (३)।

[4] देखिए, §१९०, क, ख।

सूची २३. मरता क्रिया के भूत संभाव्य में अपूर्णकाल विकारी रूप

	स्त० हिन्दी[१]	अवधी	रिवाई	पुरानी बैसवाडी	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
एकवचन	मारता स्त्री० मारती.	मारतेउ। स्त्री० मारतिउ।	मारत्येहु।[२] स्त्री० मारत्यिहु।[२] मारित्यौ।	मारतेउ। स्त्री० मारतिउ। मारित्यौं।	(मारतो) स्त्री० (मारत्यू)	मार। स्त्री० मारइतियो।	मारितहु[३], मारितिऔ।[८] मारतौ, मारितिए, मारतिया, मारतिहा।
	मारता स्त्री० मारती	मारसेस। स्त्री० मारतिस।	मारत्येह। स्त्री० मारत्यिह।		मारतस। मारतैस[४] मारते। मारती।[५]	मारइत। स्त्री० मारइती। मारइते। मारइता।	मारितहुं, मारितिऐ स्त्री० मारती। मारथी, मारतैं, मारतिहा, मारितहि। मारतिहै। मारते, मारता।
	मारता स्त्री० मारती.	मारत। स्त्री० मारित।	मारत्येइ। स्त्री० मारत्यिइ।		मारतस। मारते। मारत। स्त्री० मारतसि। मारति।	मारइत, मारइ, मारइता। स्त्री० मारइती।	मारितथि, मारतिहै। मारतैं,[८] मारैत। मारतौ,[८] मारतिहौ।
बहुवचन	मारते स्त्री० मारती.	मारित स्त्री० मारित।	मारत्येन। स्त्री० मारत्यिन।		मारती। स्त्री० (मारत्यु)	मारइती। मारइतिअउ। स्त्री० मारइतियो।	मारतऐन्हि। स्त्री० मारती। मारतिऐ।[८] मारती।
	मारते स्त्री० मारती.	मारतेहु। मारतेउ। स्त्री० मारतिउ।	मारत्येह। स्त्री० मारत्यिंहि।	मारतेहु।	मारतह। मारत०। स्त्री० (मारतू)	मारतहू। स्त्री० मारइतू। मारइत। मारइती। मारइत मारइतही।	मारितिएन्हि. मारितहून्हि। मारतह, मारत, मारतिअ। मारथौ, मारथुन्ह।
	मारते स्त्री० मारित	मारतेन। स्त्री० मारतिन।	मारत्येन। स्त्री० मारत्यिन।		मारतन। मारतेन।[४] मारतैं। स्त्री० मारतिन मारती।	मारइतथी स्त्री० मारइथीन। मारइतिही। मारइतिन। मारइतन। मारइतखीन। मारथी। मारथीन।	मारितथीन्हि, मारथिन्ह स्त्री० मारतिन्ह। मारतैन्हि, मारतन्ह। मारती। मारतथि, मारतथ। मारता।[७]

१ केवल स्तरीय हिन्दो के रूप दिए गए है। पश्चिम और उत्तर की अन्य बोलियाँ स्तरीय हिन्दी का अनुकरण करती है। इन बोलियो मे पुरुष सूचक विकार शेष नही रहता। २. त्य के स्थान पर सर्वत्र 'त' भी। ३ सभाव्य भविष्य मे धातु के साथ जुडनेवाले सभी प्रत्यय इस काल के सभी रूपों के साथ जुडते हैं। ४ सारन मे। ५ पश्चिम मे। ६ मारद और मारित के आधार पर भी रूप (सर्वत्र), सभी रूपो मे विकल्प से 'हल' जुड़ता है। ७ मारत या मारित के आधार पर भी रूप (सर्वत्र)। ८ विकल्प से 'क' जुड़ता है।

'अ' आता है, जैसे पुराना रूप 'कहन्त' ब्र० कहतु, क० कहत। (२) जिसके अन्त मे दीर्घ स्वर होता है—गढ० चलन्तो अथवा चल दो, ब्र० चलतौ, मार० चल्तो, स्त० हि० चलता। ये दोनो दो प्रकार के रूप सस्कृत के 'अत्' युक्त कृदन्तो से बने है। एक-दो बोलियो मे अन्त्य 'त' से पहले हलन्त 'न्' का आगम सस्कृत के मूल रूप का प्रतिनिधित्व करता है। प्राकृत के सभी कृदन्तो मे यह 'न्' सुरक्षित रहा है।[1]

क: ऊपर उदाहरण के साथ हिन्दी के कृदन्त रूप की व्युत्पत्ति दी गई है। इस सम्बन्ध मे इतना और कहना है कि हिन्दी कृदन्त के दो रूप मिलते हैं, १ लघु, २ अपेक्षाकृत दीर्घ। लघु रूप सस्कृत के कृदन्त से और दीर्घ रूप सस्कृत कृदन्त के साथ प्राकृत के निरर्थक प्रत्यय 'क' के योग के पश्चात् विकसित हुआ है।[2] लघु रूप की व्युत्पत्ति इस प्रकार दिखाई जा सकती है—स० कर्तृकारक, पु०, एकवचन 'चलन्' ('चलत्' से) प्रा० चलन्तो > पु०हि० चलन्त, क० चलनू, ब्र० चलतु अथवा चलतू, पू० हि० चलत।[3] दीर्घ रूप की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—प्रा० चलन्तको, गढ० चलन्तो और चलदो, ब्र० चलतौ, मार० चलतो, स्त० हि० चलता। 'अपूर्णता सूचक कृदन्त के विकारी रूपो का उल्लेख §१९०, क, ख में किया गया है। बीम्स ने कुमाऊनी के कृदन्त के 'नू' का सम्बन्ध 'अन्तो' वाले प्राकृत रूप से जोड़ा है। मैंने यह 'नू' वाला रूप गढ़वाल से लगे हुए बर्फील प्रदेश मे सुना है।

पूर्णतासूचक कृदन्त की उत्पत्ति

§१९८ पूर्णता सूचक कृदन्त के तीन रूप मिलते है—(१) अकारान्त, (२) दीर्घ स्वरान्त अर्थात् आकारान्त, एकारान्त और ओकारान्त। (३) व्यजनान्त, इन प्रत्ययो मे 'ल' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पहला और दूसरा रूप सस्कृत के 'त' वाले भूतकालिक कृदन्त से विकसित हुआ है। दीर्घ रूपों का उद्भव सं० 'त' के स्थान पर प्राकृत के 'तक' प्रत्यय युक्त कृदन्त से हुआ है।[4] पूर्णता सूचक कृदन्त के स्वर (आ, ओ, औ) प्रत्ययो से पहले ब्रजभाषा तथा मराठी मे 'य' का प्रयोग होता है। इस 'य' के सम्बन्ध मे भाषा वैज्ञानिको का मत है कि यह 'इ' का विकसित रूप है। वररुचि ने इस 'इ' के सम्बन्ध मे लिखा है कि यह कृदन्त प्रत्यय से पहले सस्कृत मे भी प्रयुक्त होती थी, प्राकृत मे इसका प्रचलन अधिक बढ़ गया।[5] पूरब की बोलियो मे व्यवहृत कृदन्त रूप 'चल' अथवा 'चल्' (कर्मणि चलि) सस्कृत के 'चलित्' का संक्षिप्त रूप है। प्राकृत के 'चलितक.' से दीर्घ रूप का विकास इस प्रकार हुआ है—प्रा० चलितक, चलितौ, चलिओ, ब्र० चल्यौ, मार० चाल्यो, क० चलो, स्त० हि० चला।

ख: मारवाडी मे एक विशेष प्रकार का विशेषणवाची कृदन्त प्रचलित है, जिसकी रचना 'डो' प्रत्यय से होती है। यह 'डो' सस्कृत के अल्पार्थक प्रत्यय 'र' से विकसित हुआ है। हिन्दी मे सर्वनामवाची विशेषणो के साथ जुडने वाले 'ड' प्रत्यय से इसका सादृश्य है। प्राकृत मे सज्ञा और विशेषण के साथ इस प्रत्यय का बहुत

---

[1] देखिए, मोनेर विलियम्स, संस्कृ० ग्रामर, §१४१ और लैस्सेन, इन्स्ट. लिंग. प्राक. §१२७ (१), बीम्स ने पूरबी बोलियों के 'न' वाले रूप का सम्बन्ध संस्कृत के ऐसे नपुंसक लिंगवाची रूप से जोड़ा है जो अन्त्य 'न' से बनता है। देखिए, बीम्स कम्प-ग्राम०, खंड ३, §७४।

[2] देखिए, §१००।

[3] देखिए, §८५।

[4] बीम्स का भी यही मत है, देखिए उनकी पुस्तक कम्प० ग्राम० खं० ३, पृ० १२४।

[5] देखिए, वररुचि, प्राकृत प्रकाश, ७.३२।

प्रयोग हुआ है। इसका अल्पार्थक आशय बहुत कुछ प्राकृत मे ही नष्ट हो चुका था। इन पूर्णता सूचक कृदन्तो की रचना सिन्धी मे 'डो' अथवा 'लो' और मराठी मे 'ला' के योग से होती है। डो, लो और ला इन तीनो की उत्पत्ति सस्कृत के 'र' प्रत्यय से हुई है।

ख गढवाली के 'ए' वाले पूर्णता सूचक कृदन्त की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि धातु और प्रत्यय के सयोजन के लिए जहाँ अन्य बोलियों मे 'इ' का प्रयोग होता है, वहाँ गढवाली मे 'अ' प्रयुक्त हुआ है, अन्य बोलियो की भाँति निकटस्थ स्वरो की सन्धि नही हुई। श्रुति के रूप मे 'य' का आगम हुआ। रूप इस प्रकार बनते है—चलाओ, चलयो, चलय, चले।[1]

(२) पूरब की बोलियो मे पूर्णता सूचक कृदन्त का प्रत्यय 'ल' है। गुजराती, मराठी, बगाली और उडिया मे भी इस प्रत्यय का प्रयोग होता है। इसका उद्भव भी सस्कृत कृदन्त के 'त' से इस प्रकार हुआ है—त > द > ड > र > ल, किन्तु पूरब की इन बोलियो में 'र' का 'ल' मे परिवर्तन होना असभव प्रतीत होता है। अन्य सभी शब्दो मे ध्वनि-परिवर्तन के जो उदाहरण मिलते हैं, वे इस परिवर्तन के सर्वथा विपरीत है, फिर यह अनुमान लगाना उचित प्रतीत नही होता कि केवल कृदन्त वाची रूप मे ही 'र' ने 'ल' का रूप धारण किया होगा। इसीलिए यह व्युत्पति सर्वसम्मत नही है। फिर अन्य रूपो के साथ यह 'ल' वाला रूप भी बहुत पुराना है। यहाँ तक कि प्राकृतो मे भी 'ड' और 'र' वाले कृदन्तो के अतिरिक्त 'ल' वाला कृदन्त भी प्रयुक्त हुआ है। मेरा यह निश्चय है कि कृदन्त के इस अन्त्य 'ल' का उद्भव 'त' से नही हुआ है। सस्कृत के 'त' वाले रूप के समान यह 'ल' वाला रूप भी प्राचीन है।[2]

(३) कुछ क्रियाओ के पूर्णता सूचक अनियमित कृदन्त की रचना 'न', 'ना' आदि से होती है। इस नकारान्त कृदन्त रूप का सम्बन्ध सस्कृत के पूर्णकालिक नकारान्त कृदन्त से है। सस्कृत की अनेक क्रियाओं से बनने वाले कृदन्तों मे जहाँ 'त' प्रत्यय का प्रयोग होता है, वहाँ उनके प्राकृत रूपो में 'त' का स्थान 'न' लेता है। उदाहरण के लिए स० 'दत्त' का विकास लीजिए—स० दत्त>प्रा० दिण्ण। हिन्दी मे भी 'दिया' के लिए 'दीना' का प्रयोग मिलता है।

यौगिक कृदन्त की व्युत्पत्ति

§५९९ हिन्दी के अधिकाश यौगिक कृदन्तो का विकास सस्कृत के ऐसे भूतकालिक अविकारी कृदन्तो से हुआ है, जिनकी रचना 'य' अथवा 'त्वा' प्रत्ययों से होती है।

(१) सस्कृत का कृत् प्रत्यय 'य' प्राकृत मे 'इय' का रूप धारण कर चुका था। वहाँ से कुछ बोलियो मे यह 'इ' के रूप में प्रयुक्त हुआ, उदाहरण—स० चल्य, प्रा० चलिअ, ब्र० चलि। विकृत होते-होते यह 'य' प्रत्यय आशिक अथवा पूर्ण रूप से लुप्त हो गया तो आधुनिक बोलियों मे इसके स्थान पर √कृ के 'करि' अथवा 'कर' (स० कृत्य>प्रा० करिअ) को धातु के साथ जोड कर यौगिक कृदन्त की रचना होने लगी। अनेक शब्दो मे धातु के साथ सं० के 'य'>'इ' को जोड़ कर 'करि' अथवा 'कर' का प्रयोग होता है। जैसे—ब्र० चलि करि, स्त० हि० चल कर। 'के' अथवा 'क' की उत्पत्ति 'कर' अथवा 'करि' से हुई है। 'करि' के 'र' का लोप

---

[1] देखिए, §७९, ख।

[2] मैं 'ल' के सम्बन्ध में अपनी यह बात लिख चुका था कि मैंने देखा बीम्स भी इसी निर्णय पर पहुँचे हैं। उन्होंने अनेक युक्तियों से अपने मत को सिद्ध किया है।

तथा 'अ' और 'इ' की सन्धि से 'ए'।[1] संक्षिप्तीकरण की प्रवृत्ति के कारण गढ़वाली मे यह 'के' 'क' मे परिवर्त्तित हुआ, जैसे—मारीक।

(२) क मारवाडी मे यौगिक कृदन्त की रचना करते समय धातु के साथ 'ऊ' जोड़ते हैं; जैसे—**मरूने,** सुणूने, आदि। इस 'ऊ' की व्युत्पत्ति भूतकालिक कर्त्तुवाच्य कृदन्त के लिए प्राकृत मे प्रयुक्त 'तूण' अथवा 'ऊण' से मानी जाती है। प्राकृत का यह 'तूण' अथवा 'ऊण' प्रत्यय सस्कृत के 'त्वनम्' का विकसित रूप है।[2] इसके लिए एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। सस्कृत का 'मृत्वा' प्राकृत मे 'मारौण' बना। फिर ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी प्रचलित नियमो के अनुसार—मारऊँ, मारौ, मारू, मेरवाडी मे 'मृत्वा' के अर्थ मे 'मरूने' का प्रयोग होता है।

ख मारवाडी अथवा मेवाडी के यौगिक कृदन्त प्रत्यय 'ने' के सम्बन्ध मे हमे अधिक विचार करना पडेगा। वैयाकरण अथवा भाषाशास्त्री इसके 'न' मे प्राकृत के 'ऊन' प्रत्यय का आभास पाएगा, जैसा कि मराठी के इसी प्रकार के कृदन्त मे ने का विकास 'ऊन' से हुआ है, किन्तु इसकी व्युत्पत्ति मे हमे अन्त्य 'ने' वाले दीर्घ रूपो का अनुसरण नही करना चाहिए। इसके बारे मे उचित जानकारी गढवाली मे प्रयुक्त 'ईने' (इने) प्रत्यय वाले कृदन्त से मिल सकती है। गढ़वाली के 'ईने' अथवा 'इने' का 'ई' अथवा 'इ' प्राकृत प्रत्यय 'इअ' का अवशिष्ट अश है। बीम्स ने इस 'ने' के उद्भव के सम्बन्ध मे उचित ही लिखा है कि इस 'ने' की व्युत्पत्ति के लिए 'ने' अथवा 'ने' पर विचार करना चाहिए[3], जो गुजराती और हिन्दी की कुछ बोलियों मे कर्मकारक के परसर्ग के रूप मे प्रयुक्त होता है। इस 'ने' अथवा 'ने' परसर्ग की उत्पत्ति स० के कृदन्त रूप 'लग्न'=स्त० हि० लगि से मानी जाती है। 'ल' ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी सामान्य नियम के अनुसार 'न' मे परिवर्त्तित हुआ, अन्त्य 'ग्' का लोप और पडोसी स्वरो की सन्धि से 'ने' का जन्म मानना चाहिए।[4] 'इ' वाले रूप का उद्भव स० के 'य' से और 'ऊ' वाला रूप वैदिक 'त्वनम्' से उद्भूत है। अन्य बोलियाँ इस 'इ' वाले अवकुचित रूप को यौगिक कृदन्त 'करि' के साथ प्रयुक्त करती है। मारवाडी तथा गुजराती इसी कार्य के लिए सं० के कृत् प्रत्यय युक्त 'लग्न' शब्द के विकसित रूप का प्रयोग करती हैं।[5]

(३) 'इयान' प्रत्यय से बनने वाले कृदन्त रूप (देखिए §४९८) की तुलना प्राकृत के 'डाणि' प्रत्यय युक्त रूप से करनी चाहिए। 'डाणि' प्रत्यय का उदाहरण है—करिडाणि। यदि 'डाणि' के 'ड' का लोप हो

---

[1] स्तरीय हिन्दी के 'करके' के स्थान पर पूरब की बोलियों में आज भी 'के' का प्रयोग होता है। एक ग्रामीण के मुख से पूरब में इस तरह का वाक्य सुना जा सकता है "कस के जाव"। इस वाक्य को स्तरीय हिन्दी में कहा जा सकता है—"कैसा करके जाओगे" (तुम कैसे न जाओगे ?)। इस प्रकार 'के' की जो परम्परा रही है, उससे यह प्रकट होता है कि ट्रम्प ने अपने उत्कृष्ट सिन्धी व्याकरण में इस 'के' का सम्बन्ध संस्कृत के प्रत्यय 'य'>प्रा० इय से उद्भूत सिन्धी के 'जे' प्रत्यय से स्थापित कर के उचित नहीं किया है। देखिए, सिन्धी ग्रामर, पृ० २८३।

[2] देखिए, मोनेर विलियम्स, संस्कृत ग्रामर, §५५५।

[3] देखिए, बीम्स, कम्प० ग्राम०, खं० ३, पृ० २३३।

[4] उदाहरणों के लिए देखिए, बीम्स, कम्प० ग्राम०, खं० १, पृ० २४८, खं० २, पृ० २६०।

[5] इस व्याकरण के प्रथम संस्करण में 'ने' के सम्बन्ध में मेरा यह विचार नहीं था। गुजराती में प्रयुक्त कृत् प्रत्यय 'इने' पर मेरा ध्यान केन्द्रित रहा, इसीलिए भ्रम हो गया था।

और 'य' का आगम हो सके तो संभावित रूप 'करियाणि' अथवा 'करियाण' बन सकता है। इस कृदन्त के कन्नौजी रूप मे 'बेर' प्रत्यय जोडा जाता है, जिसकी व्युत्पत्ति मै पहले सस्करण मे नही दे सका था। मै बीम्स की इस व्युत्पत्ति से सहमत हूँ—स० बेला>हि० बेर (समय); जैसे—कु० करि बेर=स्त० हि० कर के।

कर्तृसूचक संज्ञा की व्युत्पत्ति

§६०० कर्तृत्व सूचक सज्ञा की रचना के लिए क्रिया के सामान्य रूप के विकारी रूप के साथ 'वाला' अथवा 'हारा' प्रत्यय जुडता है। 'वाला' और 'हारा' की उत्पत्ति क्रमश सस्कृत 'पालक' और 'कारक' शब्दो से हुई।[1] 'वाला' की व्युत्पत्ति का यह उदाहरण पर्याप्त होगा—स० गोपालक, हि० ग्वाला। 'हारा' का 'ह' कारक के 'क' के लुप्त होने पर श्रुति के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। विकास का क्रम इस उदाहरण मे देखा जा सकता है—चलनिकारा>चलनिआरा>चलनिहारा। विकास का क्रम यही नही रुका। 'र' का लोप तथा 'इ' का 'य' मे रूपान्तर हुआ। इसलिए चलनि आरा>ने० चलनया। वास्तव मे इस प्रयोग मे प्रत्यय द्वारा अनुशासित कर्म को व्यक्त करने वाला सम्बन्ध सूचक सामान्य रूप है।

संभाव्य भविष्य और विकारी वर्त्तमान के प्रत्ययों का विकास

§६०१ सस्कृत के परस्मैपदी वर्तमान कालिक रूप विकसित होते हुए प्राकृत से हिन्दी मे पहुँचे। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि प्राकृत में सस्कृत के 'लट्' आदि से सम्बन्धित तिप्, त आदि के स्थान पर प्रथम पुरुष के एकवचन और बहुवचन मे अस्तित्व सूचक क्रिया का कालिक रूप प्रयुक्त हुआ है, जैसे—प्रथम पुरुष के एक वचन मे अम्हि, सं० अस्मि। प्रथम पुरुष के बहुवचन मे अम्हो अथवा अम्ह>स० स्मः। इस सादृश्य के आधार पर ही तृतीय पुरुष के एकवचन के प्राकृत रूप 'अत्थि' का विकास स० अस्ति से माना जा सकता है। किन्तु मै यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि हिन्दी मे वर्तमान कालिक तृतीय पुरुष के 'हि' का प्राकृत के इसी काल के प्रत्यय 'दि' से कोई सम्बन्ध नही है।[2] हिन्दी के वर्त्तमान कालिक तृतीय पुरुष मे प्रयुक्त 'ही' की व्युत्पत्ति के लिए प्राकृत के 'अहन्ति'>स० 'सन्ति' की कल्पना करना चाहता हूँ।

नीचे टिप्पणियो के साथ वर्त्तमान काल के रूपो को सूचीबद्ध किया जा रहा है। इस काल के विभिन्न रूपो की व्युत्पत्ति जानने मे इससे सहायता मिलेगी।

---

[1] देखिए, ट्रम्प-सिन्धी ग्रामर, पृ० ७५, बीम्स कम्प० ग्रा० खं० ३, पृ० २३८। मैंने प्रथम संस्करण में इस बात का उल्लेख किया था कि 'हारा' की व्युत्पत्ति भाषा वैज्ञानिक लोग 'धारक' से मानते हैं।

[2] बीम्स का विचार है कि प्राकृत के 'द' के लुप्त होने पर श्रुति के रूप में 'ह' का आगम हुआ।

वर्तमान काल

वचन	संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
एकवचन	१. चलामि	चलमि, चलम्हि	चलऊँ, चलौं, चलूं, आदि.
	२. चलसि	चलसि	चलसि, चलहि, चलइ, चलइ, चले.
	३ चलति	चलदि, चलइ, (चलत्थि)? (चलसति)?	चलहि, चलइ, चलै, चले
बहुवचन	१ चलाम	चलम, चलम्हो, चलह	चला, चलौं, चलूं, चलहिं, चलें, चली, चलन.
	२ चलथ	चलामु, चलधम्, चलह	चलहु चलउ, चलो, चला.
	३ चलन्ति	(चलहन्ति) ? चलेन्ति, चलज्ज	चलहि, चलन, चलइं चलैं, चलें, चलै, चली चलय्यँ, चले

स्मरणीय—१. व्युत्पत्ति की दृष्टि से प्रथम पुरुष का एकवचन तथा बहुवचन कठिनाई उपस्थित करता था। बीम्स ने जो कुछ लिखा है, उससे अधिक कुछ लिखने मे मै असमर्थ हूँ। बीम्स ने इस सम्बन्ध मे दो सभावनाएँ व्यक्त की है, एक तो यह कि सामान्य जनो की बातचीत मे एकवचन और बहुवचन का परस्पर परिवर्तन हो गया और दूसरी यह कि तृतीय पुरुष के बहुवचन का रूप प्रथम पुरुष मे प्रयुक्त होने लगा।[1]

स्मरणीय—२ ऊपर जो रूप दिए गए है, उन सब के वैकल्पिक रूप मे धातु के पश्चात् आने वाले 'अ' के स्थान पर प्राकृत मे 'ए' का प्रयोग मिलता है। प्राकृत से ही यह 'ए' स्वर पुरानी हिन्दी मे पहुँचा। पुरानी हिन्दी मे धातु के पश्चात् और प्रत्यय से पहले प्राकृत के इस 'ए' का प्रयोग खूब मिलता है।

§६०२ वररुचि के कथनानुसार प्राकृत मे कुछ स्थलो पर वर्त्तमान काल तथा निश्चित भविष्य काल के लिए 'ज्ज' और 'ज्जा' का प्रयोग होता था।[2] हिन्दी से सम्बन्धित बोलियो मे वर्त्तमान तथा भविष्य काल के लिए प्रयुक्त होने वाला 'अय' तथा 'इय' प्रत्यय प्राकृत के इसी 'ज्ज' तथा 'ज्जा' से उद्भूत है, जैसे—मरिय, मरय='मरता है' आदि। वररुचि ने ही इस बात का उल्लेख किया है कि वर्त्तमान, भविष्य तथा विधि मे प्रत्यय और धातु के मध्य 'ज्ज' अथवा 'ज्जा' का आगम होता है।[3] हिन्दी मे 'यैं' और 'ये' वाले कालिक रूप प्राकृत के ऐसे ही रूप से विकसित हुए है।

भविष्य काल का उद्भव

§६०३. (१) हिन्दी से सम्बन्धित बोलियो के जिन विभिन्न विकारी भविष्य कालिक रूपो मे 'स' अथवा 'ह' का उपयोग मिलता है, उनके उद्भव के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि ये रूप संस्कृत के प्रथम भविष्य काल के रूपो से उद्भूत है, किन्तु मेरा विचार है, इन रूपो का सम्बन्ध संस्कृत के द्वितीय भविष्य काल के रूपों से है। संस्कृत मे भविष्य काल को प्रकट करने वाला 'ष्' अपभ्रंश मे ही 'ह' बन चुका था।[4] इस बारे मे विस्तार से चर्चा करने के लिए हमारे पास स्थान नही है। यहाँ केवल संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी के रूपो को सूचीबद्ध किया जाता है—

---

[1] देखिए, कम्प० ग्राम० खं० ३, पृ० १०५, १०६। [2] वररुचि, प्राकृत प्रकाश, ७.२०।
[3] वही, ७.२१। [4] लैस्सेन, इन्स्ट० लिंग० प्राक० ११७, १; १८६, २।

भविष्य काल

वचन	संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
एकवचन	१ चलिष्यामि	चलिस्सामि, चलिहिमि चलिस्सम	चालस्यू, चालसू, आदि चालहूं, चलिहौ, चलैहौ; आदि.
	२ चलिष्यसि	चलिस्ससि, चलिहिसि चलिहिस्ससि[1]	चालसी, चालही चलिहसि, चालिहहि चलैहै, चलिहै.
	३ चलिष्यति	(चलिस्सत्ति ?) चलिस्सइ	चालसि, चाल्ही. चलिहहि, चलिहै चलिहै.
बहुवचन	१ चलिष्याम	चलिस्सामो, आदि चलिहिस्सामो[2]	चालस्या, चालहा. चलिहहिं, चलिहै
	२ चलिष्यथ	चलिस्सघ (चलिस्सयति) ?	चालस्यो, चालहो चलिहहु, चलिहौ
	३ चलिष्यन्ति	चलिस्सन्ति चलिहिस्सन्ति	चालसी, चालही. चचिहहि, चलिहै

(२) प्रथम सस्करण मे मैने सुझाव दिया था कि हिन्दी से सम्बन्धित बोलियो मे 'ब' वाला भविष्य-कालिक रूप अस्तित्ववाची √भू से उद्भूत है। मेरे इस अनुमान का आधार इस 'ब' वाले रूप का लेटिन के 'बो' युक्त भविष्य कालिक रूप के साथ सादृश्य था। इस सम्बन्ध में बीम्स के तुलनात्मक व्याकरण के तृतीय खड मे जो सामग्री दी गई है, उसे पढ कर मेरा विचार बदल गया। मै भी बीम्स के इस बिचार का समर्थक हूँ कि संस्कृत के तव्य प्रत्यय युक्त कर्मवाच्य कृदन्त रूप से हिन्दी का भविष्य कालिक 'ब' वाला रूप विकसित हुआ है। सस्कृत का कृत् प्रत्यय 'तव्य' प्राकृत मे 'इअव्वम्' बना। कुछ बोलियो मे अस्तित्व सूचक √अस के साथ यह प्रत्यय प्रयुक्त होता भी है। 'ब' वाला भविष्य कालिक रूप सस्कृत की √भू से सम्बन्धित है, इस विचार के विरुद्ध ये तर्क प्रस्तुत किए जाते है—(१) अन्य सभी स्थलो पर भू √का 'भ' 'ह' में परिवर्त्तित हुआ है, उसका 'ब' मे रूपान्तर कोई अन्य उदाहरण प्रस्तुत नही करता, और (२) इसके साथ सर्वत्र 'ओ' का प्रयोग होता है। मै एक तर्क और देना चाहता हूँ—(३) इसका उद्भव सस्कृत के भूतकालिक कृदन्त से हुआ है। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि हिन्दी में क्रिया का 'ना' वाला सामान्य रूप सस्कृत के आनीय युक्त भविष्य कालिक कृदन्त से उद्भूत हुआ है। यह 'ना' वाला क्रिया का सामान्य रूप हिन्दी मे अस्तित्व

---

[1] लैस्सेन, इन्स्ट० लिंग० प्राक०, १७७, १; १८६, २।

[2] जैसा कि यहाँ दिखाई देता है, प्राकृत में सर्वत्र भविष्य कालिक प्रत्यय दुहराया जाता है। रामायण में प्रयुक्त कालिक दीर्घ रूप प्राकृत के इन्हीं रूपों से उद्भूत है।

सूचक क्रिया के योग से भविष्यकाल को व्यक्त करता है। यह बात बीम्स के कथन को सिद्ध करती है।[1] सस्कृत मे सामान्य रूप से इन कृदन्त के साथ सहायक क्रिया का प्रयोग नही होता, इसे पुरानी बैसवाडी के 'ब' वाले अविकारी भविष्यकालिक रूप मे बहुत कुछ देखा जा सकता है। पुरानी बैसवाडी का 'मारिब' प्रा० के मारिअब्ब < सं० मारितव्य का प्रतिनिधित्व करता है। रिवाई के प्रथम पुरुष तथा द्वितीय पुरुष के एकवचन मे 'मारब्येउ' तथा 'मारिबेस' रूप और बहुवचन मे 'मारब' और (२) मारिब रूप प्रयुक्त होते है। इन रूपो मे अधिक स्पष्टता के लिए कृदन्त रूपो को सहायक क्रिया के कुछ अशो से जोडा गया है।

(३) कुछ कारणो से भारत के अनेक क्षेत्रो मे सस्कृत का भविष्यकालिक रूप शेष नही बचा। पुराने वर्त्तमान कालिक रूप ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया है। इसका कारण यह है कि इसके बहुत से रूपान्तर मिलते है, प्रत्येक का अर्थ निश्चित नही है, इसीलिए जनता ने सुविधा के लिए वर्त्तमानकाल के विभिन्न रूपो के साथ नये दो प्रत्ययो मे से एक के योग से नवीन भविष्यकाल की रचना की। ये दोनो प्रत्यय इस समय भी काम मे आ रहे है, एक प्रत्यय है—गौ, गो, अथवा गा और दूसरा प्रत्यय है—लो, ला अथवा ल्यो। इनमे से 'ग' वाले प्रत्यय का उद्भव सस्कृत √गम् के भूतकालिक कृदन्त रूप 'गत:' प्रा० गओ से हुआ है। 'ल' वाला रूप स० √लग् के भूतकालिक कृदन्त रूप 'लग्न' प्रा० लग्गो से उद्भूत है।[2] तद्भव सज्ञाओं की भाँति क्रिया के इन रूपो मे लिंग-वचन के विकार होते हैं।

स्मरणीय—गति सूचक क्रिया के योग से बनने वाले हिन्दी के 'ग' युक्त भविष्य कालिक रूप की तुलना अग्रेजी के इस प्रयोग से करनी चाहिए—I am going to say। अग्रेजी का यह वाक्य इस वाक्य का लगभग पर्यायवाची है—"I shall say."।

विधिकाल के रूप

§ ६०४ हिन्दी की कुछ बोलियो मे विधि काल के रूप ब, बि, बो आदि के योग से बनते है। इन 'ब' वाले रूपो का उद्भव सस्कृत कृत् प्रत्यय 'तव्य' से माना जाता है। द्वितीय पुरुष के एकवचन के रूप 'सु' तथा 'सि' के योग से बनते हैं। सस्कृत के द्वितीय पुरुष के विधिकालिक एकवचन के स्व > प्रा० स्सु > से इस 'सु' अथवा 'सि' का उद्भव हुआ है। द्वितीय पुरुष बहुवचन के लिए विधिकाल के बहुप्रचलित रूप के अन्त्य स्वर 'ओ', ब्रज० 'औ' पुरानी हिन्दी के प्रत्यय 'अहु' से उद्भूत है। लैस्सेन ने इस 'अहु', का उद्भव सस्कृत मे आत्मने पद के विधिकालिक द्वितीय पुरुषवाची बहुवचन के 'ध्वम्' से मानी है। विकास का क्रम इस प्रकार है—स० चलध्वम्, चलहुँ, चलहु, चलौ, चलो अथवा इसका सम्बन्ध वर्त्तमान कालिक द्वितीय पुरुषवाची बहुवचन के समान प्राकृत के 'धम्' प्रत्यय से जोड़ा जा सकता है। विधि काल के द्वितीय पुरुषवाची एकवचन के 'हि' का सम्बन्ध सस्कृत मे द्वितीय, तृतीय, पचम तथा नवम गण के विधि कालिक 'हि' प्रत्यय से अथवा वैदिक

---

[1] यह कृदन्त संस्कृत में भी सामान्य भविष्य का परिचय देता है। इससे किसी प्रकार के स्वामित्व का बोध नहीं होता। देखिए, मोनेर-विलियम्स-संस्कृत ग्रामर, §९०७।

[2] मैंने इस व्याकरण के प्रथम संस्करण में 'ग' और 'ल' वाले प्रत्ययों की जो व्युत्पत्ति दी थी उसे बीम्स ने भी अपने तुलनात्मक व्याकरण में स्वीकार किया था। 'ल' वाले रूपों के सम्बन्ध में बीम्स ने इतना और लिखा है कि सभी भारतीय भाषाओं में आरंभोद्बोधन के लिए √लगना के योग से संयुक्त क्रिया बनती है। देखिए, बीम्स—कम्प० ग्राम० खं० ३, पृ० १६०-६३। 'ग' युक्त भविष्यकाल के सम्बन्ध में बीम्स ने लिखा है कि आज भी यह प्रत्यय अवधारण वाचक अव्यय के पश्चात् लिखा जाता है। जैसे—हारूँ ही गा।

सस्कृत के द्वितीय पुरुषवाची एकवचन के विधिकालिक 'धि' से जोडा जा सकता है। द्वितीय पुरुषवाची एकवचन का 'सि', तृतीय पुरुषवाची एकवचन के सि, हि, ए, ऐ आदि और प्रथम तथा तृतीय पुरुषवाची बहुवचन के 'एँ' आदि की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे मेरा यह अनुमान है कि प्राकृतो मे विधिकालिक और वर्तमानकालिक रूपो मे बहुत भ्रम उत्पन्न हो गया था। दोनो कालो के रूप एक दूसरे के लिए प्रयुक्त होने लगे थे। हिन्दी को भी ये रूप वही से प्राप्त हुए। विधिकाल के रूपो को यहाँ सूचीबद्ध किया जा रहा है।

विधि

वचन	सस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
एकवचन	१ चलानि	चलामु	चलौ, चलू
	२ चल	चलसु, चलाहि. चल	चलसु, चलसि, चलहि चलु, चल, चले, आदि
	३ चलतु	चलदु, चलउ.	चलु, चले, आदि.
बहुवचन	१. चलाम	चलामो, आदि	चले, आदि.
	२ चलत	चलह, चलधम्	चलहु, चलौ. चलो
	३ चलन्तु	चलन्तु—	चले, आदि.

आदरार्थक रूपों की व्युत्पत्ति

§६०५ हिन्दी मे विधि के जो आदरार्थक रूप प्रचलित है, उनकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि प्राकृत के विधि सम्बन्धी रूपो मे आदर के लिए 'ज्ज' का आगम होता था।[१] नीचे दिये गये रूपो की तुलना से यह बात अधिक स्पष्ट होती है—

प्राकृत मे विधि के द्वितीय पुरुषवाची बहुवचन मे दो वैकल्पिक रूप बनते है—चलिज्जधम् अथवा चलिज्जिधम्7पू० हि० चलियहु; आर० आदि चलिज्यो अथवा चलीजो, स्त० हि० चलियो। इसी प्रकार से प्राकृत में विधि के द्वितीय पुरुषवाची बहुवचन मे—चलिज्जह अथवा चलिज्जअ>ब्रज० चलिज्जइ अथवा चलीजे (<चलिज्जय); स्त० हि० चलिये।

अस्तित्वसूचक क्रिया की व्युत्पत्ति

§६०६. अधिकांश बोलियो मे बचे हुए कालो की रचना अस्तित्वसूचक सहायक क्रिया के योग से होती है। यहाँ अस्तित्वसूचक क्रिया के विभिन्न रूपो की व्युत्पत्ति दी जा रही है।

---

[१] लैस्सेन का मत इस सम्बन्ध में विशेष महत्त्व रखता है। देखिए, इन्स्ट० लिंग० प्राक० §१२४

हिन्दी मे प्रयुक्त अस्तित्व सूचक क्रियाओ का सम्बन्ध स० √भू तथा √स्था से है। हिन्दी से सम्बन्धित कुछ बोलियो मे सस्कृत √रह; √वृत्त और प्राकृत √अच्छ के विकसित रूपो का प्रयोग अस्तित्व सूचक सहायक क्रिया के रूप मे होता है।

(१) वर्त्तमान काल के 'हूँ', 'है' तथा बोलियो से सम्बन्धित इनके रूपान्तरो का उद्भव सं० अस् से हुआ है। बीम्स का यह कथन सर्वथा उचित है कि हूँ का उद्भव प्रा० अम्हि √स० अस्मि से[1] नही माना जा सकता। हम प्राकृत के एक ऐसे रूप की कल्पना कर सकते है जो अस∠भू के अनुकरण पर सहायक क्रिया के स्थान मे प्रयुक्त होता रहा है। इस स्थिति मे वर्त्तमान काल के लिए अस् के साथ 'अ' प्रत्यय जोडा गया। इस अनुमान के आधार पर हिन्दी से सम्वन्धित बोलियो मे प्रा० 'अस' के विभिन्न रूपों का विकास इस प्रकार मानना पड़ेगा। एकवचन—प्रथम पुरुष स० अस्मि, प्रा० अहामि ?, पु० बैं० अहू, अव० अहेउ, ब्र० हौ, स्त० हि० हूँ; रि० आॅ; द्वितीय पुरुष—स० असि, प्रा० अहसि ?, पु० बैं० अहसि, अहहि, आहि, अहइ, अहै, अव० अहेम, अहस, अहे आदि।

इन सभी रूपो का उद्भव सस्कृत के लट् लकार के विभिन्न रूपो से हुआ है। मारवाडी मे सामान्य रूप से 'स' 'ह' मे परिवर्तित होता है, अत हम बीम्स के इस विचार का समर्थन कर सकते है कि इसी 'अस' से मार० का भूतकालिक रूप 'हो' (∠स० सन्तो) = स्त० हि० 'था' का उद्भव हुआ। कन्नौजी के 'हुतो' की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे भी बीम्स के इस विचार का समर्थक हूँ कि इसका उद्भव सस्कृत के वर्त्तमान कालिक कृदन्त रूप 'सन्तः' से हुआ है। मारवाड़ी तथा कन्नौजी के 'हो' और 'हतो'[2] के सम्बन्ध मे इस प्रश्न का निराकरण अभी नही हुआ है कि सस्कृत का वर्तमानकालिक रूप इन दोनो बोलियो के भूतकाल मे कैसे प्रयुक्त होने लगा।

(२) 'ह' से प्रारम होने वाली अस्तित्व सूचक क्रिया का उद्भव स० √भू से हुआ है। कुछ बोलियो मे इसी √भू का 'भ' प्रयुक्त होता है। इस तरह √भू से उद्भूत अस्तित्व सूचक क्रिया के 'भ' और 'ह' वाले द्विधा रूपो के कारण कुछ कठिनाई उत्पन्न होती है। नीचे जो उदाहरण दिये जा रहे है, उनसे इन रूपो के समझने मे पर्याप्त सहायता मिलेगी, स० परस्मैपद, वर्त्तमान काल, प्रथम पु०, एक वचन—भवामि (>प्रा० हवामि ?) > पूर्वी तथा पश्चिमी राजस्थानी—हवेऊँ, अन्य बोलियो मे होऊँ आदि। स० परस्मैपद, भविष्य काल, उत्तमपुरुष, एकवचन भविष्यामि (7प्रा० हुविस्सामि ?) 7पूर्वी राजस्थानी व्हेस्यू, व्हेसू, ब्र० होइहउं, व्हैहो, आदि। स० भूतकालिक कृदन्त भूतः (<प्रा० भविओ) ? ब्र० भयौ, अव० भवा, पु० बैं० तथा रि० भा आदि। स० वर्त्तमान कालिक कृदन्त भवत् > प्रा० हुवन्तो 7 चन्द की पुरानी पछाँही हिन्दी-हुन्तो; ब्र० हुतौ; आदि।[3]

---

[1] कम्प० ग्राम० खं० ३, पृ० १७२।

[2] मैंने प्रथम संस्करण में इसकी उत्पत्ति √भू से बताई थी। सं० 'भूत' से 'हुतो' की उत्पत्ति मानने में दो कठिनाइयाँ हैं, एक तो यह कि 'भू' का 'ऊ' 'अ' में कैसे परिवर्त्तित हुआ और 'त' कैसे बना रहा। अन्य रूपों में यह कृत् प्रत्यय (त) लुप्त हो चुका है। इसीलिए मुझे पहले संस्करण की व्युत्पत्ति उचित नहीं जँची और मैंने बीम्स की दी हुई व्युत्पत्ति उस समय तक के लिए स्वीकार कर ली जब तक कोई अच्छी व्युत्पत्ति सामने नहीं आती। देखिए, बीम्स, कम्प० ग्राम०, खं० ३, पृ० १७७।

[3] प्रथम संस्करण में मैंने इन रूपों की व्युत्पत्ति सं० 'भूत.' से दी थी, किन्तु बीम्स ने इसकी व्युत्पत्ति देते हुए एक मध्यवर्त्ती रूप दिया है, जिसमें अनुस्वार और 'त' बचे हुए हैं। इस उदाहरण के कारण मुझे बीम्स की व्युत्पत्ति उचित जान पड़ी। देखिए, कम्प० ग्राम०, खं० ३, पृ० २०२-२०३।

(३) हिन्दी की अस्तित्वसूचक क्रिया के भूतकालिक रूप 'था' का उद्भव सं० √स्था के भूतकालिक कृदन्त रूप 'स्थित' से हुआ है। इसका प्राचीनतर रूप गढवाली के 'थयो' मे विद्यमान है, जिसका 'य' लुप्त 'त' की सूचना देता है, 'थयो' से ब्र० के थो और स्त० हि० के 'था' का विकास हुआ। नेपाली के रूप इस प्रकार चलते है—**एकवचन**—प्र० पु० थियाँ, द्वि० पु० थिस, तृ० पु० थिया। **बहुवचन**—प्र० पु० थियूं, द्वि०पु० थियौ, तृ० पु० थिया।[1] बीम्स ने पुरानी बैसवाड़ी के 'गा' 'का' और 'ला' की व्युत्पत्ति क्रमश. स० गत, कृत और लग्न से मानी है।

हिमालय तथा राजपूताना की कुछ बोलियो मे 'छ' से प्रारम्भ होनेवाले क्रिया रूपों का सम्बन्ध √अच्छ से जोडा गया है[2] किन्तु मै इसका उद्भव भी सं० √स्था से मानता हूँ।

सिन्धी मे अस्तित्वसूचक क्रिया के वर्त्तमान कालिक रूप थिआ, थिए[3] आदि पूर्व मे राजस्थानी भाषा के साहचर्य को सूचित करते है। यह बात प्रसिद्ध है कि राजस्थान के राजपूत गढवाल तथा कुमाऊँ में जाकर बसे थे। इसीलिए राजस्थान की बोली तथा हिमालय की पहाड़ी बोलियो मे यह सादृश्य है; परवर्ती स्वर से पूर्व 'थि' की 'इ' 'य' मे परिवर्तित हुई और प्रचलित ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी नियम के अनुसार 'थ्य' 'छ' में परिवर्तित हुआ। 'छ' से प्रारम्भ होने वाली अस्तित्वसूचक क्रिया के सम्बन्ध मे इससे अधिक लिखने की आवश्यकता नही है।

अस्तित्व सूचक क्रिया का वर्त्तमान काल

वचन	सिन्धी	मारवाडी	कुमाऊनी	गढवाली	नेपाली
एकवचन	१. थिआं	छू	छ्यउ	छौ	छु
	२. थिए, थी	छै	छै	छै, छ	छस
	३. थे	छै	छ	छ	छ, छे
बहुवचन	१. थिऊं	छाँ	छ्यू	छवाऊँ	छूं
	२. थिओ	छो	छा	छ्यंई छौ	छयो. छन.
	३. थिअनि	छै	छन, छीन	छन	छै

---

[1] देखिए, बीम्स, कम्प० ग्राम०, खं० ३, पृ० २०९।

[2] मैने प्रथम संस्करण में यही विचार व्यक्त किया था। बीम्स भी इसी व्युत्पत्ति का समर्थन करते हैं, देखिए, कम्प० ग्राम०, खं० ३, पृ० १८६, १८७। किन्तु पूरबी बोलियों में 'छ' से प्रारंभ होने वाली क्रिया का उद्भव स्पष्ट रूप से √ अच्छ से है। पूरबी बोली और हिमालय तथा राजपूताना की बोलियों में प्रयुक्त 'छ' वाला क्रिया रूप इतना मिलता-जुलता है कि यह सादृश्य हमें राजपूताना तथा हिमालय की बोलियों के 'छ' से प्रारंभ होने वाले रूपों को √ अच्छ से उद्भूत मानने के लिए प्रेरित करता है।

[3] गुजराती में भी ये रूप प्रयुक्त होते हैं, देखिए, शापुर आदिल जी का व्याकरण, पृ० ७२-८१।

(४) धातु रूपावली से सम्बन्धित सूचियों से यह ज्ञात हो जाएगा कि पूरबी बोलियो के वर्त्तमान कालिक रूपों मे√स्था के स्थान पर √ रह का प्रयोग होता है। 'रह' वाले रूपों पर अधिक लिखने की अवश्यकता नही है।

(५) भोजपुरी के वर्त्तमान कालिक रूप बाटी, बटे और बा से बनते है। इस सहायक क्रिया का सम्बन्ध संस्कृत की 'वृत' धातु से है। संस्कृत में√वृत के वर्त्तमान कालिक एकवचन के आत्मनेपदी रूप हैं—

प्र० पु० वर्त्ते, द्वि० पु० वर्त्तसे, तृ० पु० वर्त्तते, अन्त्य 'र्त' 'ट' मे परिवर्त्तित हुआ। नियमानुसार लकार-के 'ते' 'से' आदि अन्त्य 'ए' का रूप धारण करते हैं।

(६) §६०३ (३) में 'लो' युक्त भविष्य कालिक रूप का उल्लेख हुआ है। गढवाली की अस्तित्व सूचक क्रिया के वर्त्तमान कालिक एकवचन के रूप 'लो' तथा बहुवचन के रूप 'ला' से इस बारे मे पर्याप्त सहायता मिलती है। स०√लग् के भूतकालिक कृदन्त रूप लग्न>प्रा० लग्गो से इस 'लो' वाले रूप का उद्भव हुआ है। हिन्दी मे √लग् का प्रयोग दूसरे ढग से होता है, अत. उसे सहायक क्रिया के रूप मे देख कर आश्चर्य ही होगा।

(७) मैथिली की अस्तित्व सूचक क्रिया के एकवचन के रूपो—प्र० पु० छूं, द्वि० पु० छे, तृ० पु० अछ पर विचार करते समय हमे पड़ोसी भाषा बगाली तथा उडिया पर ध्यान देना चाहिए। उडिया के अछि, अछु, अछी आदि और बगाली के आछि, आछिस, आछे आदि रूपों के साथ इनकी तुलना व्युत्पत्ति के लिए सहायक होगी। मैथिली के 'छ' वाले रूपो के साथ ही भोजपुरी के 'ख' वाले रूप का विवेचन होना चाहिए। सस्कृत की 'अस्' धातु के स्थान पर शौरसेनी प्राकृत मे 'अच्छ' धातु का प्रयोग होता था। मैथिली, बगाली और उडिया के 'छ' वाले रूप तथा भोजपुरी के 'ख' वाले रूप शौरसेनी की 'अच्छ' धातु से उद्भूत माने जाते हैं। शौरसेनी मे√अच्छ के रूप अन्य धातुओ के समान इस प्रकार चलते है—

वर्त्तमान काल—एकवचन प्र० पु० अच्छामि, द्वि० तथा तृ० पु० अच्छइ, बहुवचन—प्र० पु० अच्छामो, द्वि० पु० अच्छाथ, तृ० पु० अच्छन्ति।[1]

मारवाड़ी के वर्त्तमानकालिक रूपों की व्युत्पत्ति

§६०७ मारवाड़ी के वर्त्तमान कालिक रूप के सम्बन्ध मे ऊपर बताया जा चुका है कि इस भाषा मे मुख्य धातु के वर्त्तमान कालिक रूप के साथ सहायक क्रिया के वर्त्तमान कालिक रूप को जोडते हैं। यह इसलिए किया गया है कि क्रिया का वर्त्तमान कालिक रूप संभाव्य भविष्य के लिए भी प्रयुक्त होता है। इन दोनो कालो मे किसी प्रकार का भ्रम न हो इसीलिए इसके साथ अस्तित्व सूचक क्रिया के वर्त्तमान कालिक रूप भी जुड़ते हैं। मारवाड़ी ने ऐसा करते समय मुख्य धातु के पुराने कालिक रूप का परित्याग नही किया है, जब कि अधिकाश बोलियो में वर्त्तमानकाल की रचना करते समय अपूर्णता सूचक कृदन्त के साथ सहायक क्रिया के वर्त्तमान कालिक रूप जोड़ते हैं।

---

[1] देखिए-वररुचि का प्राकृत प्रकाश, ७.१९-२०; लैस्सेन, इन्स्ट० लिंग० प्राक०, पृ० ३४६। बीम्स ने भी √ अच्छ की विस्तृत चर्चा की है, बीम्स का विचार है प्राकृत की 'अच्छ' धातु संस्कृत की 'अक्ष' धातु से उद्भूत है।

विकारी पूर्णकाल तथा वर्त्तमानकाल के रूपों की व्युत्पत्ति

§६०८ (१) रामायण मे आंशिक रूप से विकारी पूर्णकाल के लिए एकवचन पुंल्लिग मे प्र० पु० इउ. द्वि० तथा तृ० पु० असि, एसि, एहि; स्त्रीलिग मे प्र० पु० इऊँ, द्वि० तथा तृ० पु० इसि, और बहुवचन द्वि० पु० एहु, इहु, तृ० पु० ए जोड़े गए है। इन सब में संस्कृत की अस्तित्व सूचक क्रिया 'अस्' के अस्मि, असि आदि के अवशेष विद्यमान हैं।[१] रामायण में 'इउँ' आदि का अर्थ समाप्त हो चुका है। रिवाई मे सहायक क्रिया का आधुनिक रूप जोडते है, जैसे—मारेस है। मारवाडी मे भी सस्कृतोद्भूत वर्त्तमानकालिक रूप के साथ सहायक क्रिया जोडते है, जैसे—मारे छै।

(२) वर्त्तमानकालिक कृदन्त के साथ इसी प्रकार के कुछ विकारी वर्ण गढ़वाली और पुरानी बैसवाड़ी मे भी जोडे जाते है; जैसे—खातेउं, जनित्यउं; अवतेहु आदि। रामायण मे इस प्रकार के पुराने ढंग के विकारी कालिक रूप पूर्ण संभाव्य भूत के लिए प्रयुक्त हुए है।[२]

प्रेरणार्थक रूपों की व्युत्पत्ति

§६०९. सस्कृत का प्रेरणार्थक प्रत्यय 'अय' प्राकृत मे 'ए' का रूप धारण कर चुका था। प्राकृत मे यह 'ए' कभी-कभी धातु के साथ जुडता रहा है। सस्कृत मे केवल स्वरान्त धातुओ के प्रेरणार्थक रूप मे ही 'प' प्रत्यय जुडता है, किन्तु प्राकृत मे यह 'प' 'आ' के साथ प्रेरणार्थक प्रत्यय के पूर्व सामान्य रूप से जोडा गया है। प्राकृत मे 'प' परिवर्त्तित हो गया था 'ब' अथवा 'व' मे। उदाहरण के लिए सस्कृत मे √ कृ का प्रेरणार्थक आधार रूप 'कारय' है। प्राकृत मे 'कारय' के स्थान पर दो वैकल्पिक रूप 'कारे' तथा करावे < 'कराये' का प्रयोग मिलता है। प्राकृत के इन वैकल्पिक रूपो से ब्रज० कराव, गढ० करौ, स्त० हि० करा का उद्भव हुआ। √भिगोना और इसी प्रकार की दो-तीन क्रियाओ का मध्यवर्त्ती 'ओ' पुराने 'आव' का सकुचित रूप है।

क संस्कृत √पा (=हि० पालना) के प्रेरणार्थक रूप मे प्रत्यय से पहले श्रुति के लिए 'ल' का आगम हुआ है। प्राकृत मे इस प्रकार के 'ल' का आगम बहुत व्यापक रूप से हुआ है। हिन्दी की अनेक प्रेरणार्थक क्रियाओ मे जो 'ल' (कुछ बोलियों में 'र') का प्रयोग होता है, वह प्राकृत की इसी प्रवृत्ति का परिचय देता है। हिन्दी मे 'ल' युक्त प्रेरणार्थक रूपो के उदाहरण है—पिलाना, बिठलाना, आदि।

(२) सस्कृत मे नियमित रूप से प्रयुक्त प्रेरणार्थक प्रत्यय 'अय' प्राकृत मे 'ए' बन कर प्रयुक्त हुआ। हिन्दी के द्वितीय प्रेरणार्थक रूपो की रचना में इस 'ए' से काम लिया जाता है, देखिए §४२१ (२)। यद्यपि बहुत से स्थलों पर यह सं० अय > प्रा० ए लुप्त हो चुका है फिर भी हिन्दी में वृद्धि अथवा गुण के रूप मे यह 'ए' सुरक्षित है। सं० की अकर्मक धातु 'स्फण्ट' (=हि० फटना) का प्रेरणार्थक आधार रूप 'स्फण्टय' (=प्रा० फाडे ?) है, इसी से हिन्दी का द्वितीय प्रेरणार्थक रूप 'फाडना' बना।

---

[१] संस्कृत के 'आदिष्टोऽस्मि' जैसे प्रयोगों से इन रूपों की तुलना कीजिए। देखिए मोनेर-विलियम्स संस्कृत ग्रामर, §८९५।

[२] देखिए, §५५७।

विकारी कर्मवाच्य की व्युत्पत्ति

§६१० संस्कृत के कर्मणि प्रयोग के 'य'[1] प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत मे 'इज्ज' का प्रयोग हुआ है। प्राकृत का यह 'इज्ज' प्रत्यय मारवाडी के कर्मणि प्रयोग मे 'ईजणो' बना, जैसे—'करीजणो'।[2] नेपाली के कर्मवाच्य प्रत्यय 'इनु', रामायण के 'यत' (देखिए §५६६, क) और कुछ बोलियों मे विशेष प्रकार के कर्मवाच्य प्रत्यय 'ये' की व्युत्पत्ति भी प्राकृत के 'इज्ज' अथवा 'ज' से माननी चाहिए। सं० श्लाघ्यते के लिए हि० सराहिये मे प्रा० इज्ज 'इय' मे परिवर्त्तित हुआ।

क सस्कृत का कर्मणि प्रत्यय 'य' प्राकृत मे कही-कही धातु के अन्त्य व्यजन के साथ समीकृत होता है, जैसे—स० दृश्यते>दिस्सइ।[3] हिन्दी की बहुत-सी ऐसी क्रियाएँ इसी रूप से उद्भूत है जो कर्मवाच्यता प्रकट करती है; जैसे—'सिच्छना' के लिए हि० √सिचना वास्तव मे स० √सिच (सिञ्च) के कर्मणि प्रयोग 'सिञ्च्य>प्रा० सिच्छ से विकसित हुआ है। हिन्दी का 'सिचना' कर्मवाच्य रूप है।

---

[1] मागधी प्राकृत इस नियम को नहीं मानती। देखिए, वररुचि : प्राकृत प्रकाश, ७.८-९ और लैस्सेन, इन्स्ट० लिंग० प्राक०, पृ० ४३४।

[2] मारवाड़ी की पड़ौसी भाषा सिन्धी में भी 'ज' और 'इज' के योग से कर्मवाच्य रूप बनता है; जैसे—करणु का कर्मणि प्रयोग 'करिजणु'।

[3] वररुचि, प्राकृत प्रकाश, ८.५७-५८।

दसवाँ अध्याय

व्युत्पत्ति

भाववाचक संज्ञा तथा विशेषण की रचना

§६११. तीसरे अध्याय मे हिन्दी शब्दो की व्युत्पत्ति से सम्बन्धित सामान्य सिद्धान्तो का उल्लेख हो चुका है। उस अध्याय मे इस बात की चर्चा भी की गई है कि सस्कृत के तत्सम शब्द किस ढग से हिन्दी मे प्रयुक्त होते है। यहाँ विभिन्न श्रेणियो के तद्भव शब्दो की रचना के बारे मे लिखना चाहता हूँ। चाहे ये तद्भव शब्द सीधे धातु से व्युत्पन्न हो, चाहे किसी अन्य प्रकार की रचना के द्वारा।

भाववाचक शब्दों की रचना

§६१२ भाव वाचक संज्ञाओ के अधिक प्रचलित रूप इस प्रकार है—

(१) अनेक धातुएँ भाव वाचक सज्ञा के रूप मे प्रयुक्त होती है; जैसे—मार (√मारना), बोल (√बोलना)। कही-कही इस प्रकार की धातुओ के ह्रस्व स्वर दीर्घ अथवा गुणित होते है, जैसे—चाल (√चलना), मेल (√मिलना) ।

क. धातु के साथ आव (आउ, आऊ, आऔ) के योग से भी भाववाचक सज्ञाएँ रची जाती है; जैसे—बचाव, बनाव, आदि।

स्मरणीय—१ 'आव' के योग से बनने वाली अनेक संज्ञाओ का अन्त्य 'व' सस्कृत के प्रेरणार्थक प्रत्यय 'प' का प्रतिनिधित्व करता है। स्तरीय हिन्दी की प्रेरणार्थक क्रिया से यह 'व' लुप्त हो चुका है, किन्तु अनेक बोलियो मे इस समय भी सुरक्षित है। क्रिया के 'व' युक्त प्रेरणार्थक रूप से बनने वाली भाव वाचक संज्ञा का उदाहरण है—'बचाव' (√बचाना), यहाँ 'व' के लोप के कारण 'बचा' रूप बनना चाहिए था। इस बात का उल्लेख करना भी आवश्यक है कि बहुत-सी संज्ञाओ का अन्त्य ओष्ठ्य वर्ण भाव वाचकता प्रकट करता है, किन्तु उसकी रचना धातु के साथ प्रेरणार्थक प्रत्यय के योग से नहीं हुई है। इस प्रकार की सज्ञाओ का विवेचन इसी सूत्र के तीसरे अनुच्छेद मे किया जाएगा।

स्मरणीय—२. यह नही समझ लेना चाहिए कि इस प्रकार की भाव वाचक संज्ञाएँ क्रिया के सामान्य रूप से रची जाती है। वास्तविकता यह है कि इस प्रकार की भाववाचक संज्ञाओं और क्रिया के सामान्य रूपों की रचना धातु के साथ कुछ प्रत्यय जोड़ कर की जाती है।

(२) धातु के साथ 'न' (नपुंसक लिंग का 'नम्') जोड़ कर भाववाचक संज्ञा रची जाती है, जैसे—चलन (√चलना), मरन (√मरना)।

(३) धातु के साथ 'आन' और 'आउ' के योग से भाव वाचक सज्ञा की रचना होती है; जैसे—'चढाउ' (√चढ़ना), 'उठान' (√उठना), 'लगान' (√लगना)। 'आउ' के अन्त्य 'उ' के स्थान पर 'उ', 'व' अथवा 'ओ' का प्रयोग भी होता है।

क. 'आउ' के स्थान पर समान अर्थ में 'आई' का उपयोग भी होता है; जैसे—चढाई (√चढना) =चढ़ाउ।

स्मरणीय—आउ, आव, आन आदि का उद्‌भव सस्कृत के 'त्वन्' प्रत्यय से हुआ है। सिन्धी में यह 'त्वन्' प्रत्यय आज भी सुरक्षित है, केवल 'त' 'ट' मे परिवर्त्तित हुआ है।

(४) 'वत्', 'वट', 'हत' और 'हट' के योग से बहुत-सी भाव वाचक सज्ञाएँ रची जाती है। इन प्रत्ययों का उपयोग प्रायः प्रेरणार्थक प्रत्यय युक्त धातु के साथ किया जाता है। जैसे—बनावट और बनावत (√बनाना), बुलाहट (√बुलाना)। विशेषणवाची शब्दो के साथ भी इन प्रत्ययो का उपयोग होता है; जैसे—कड़वाहट (कड़वा), चिकनाहट (चिकना)।

क धातु के साथ 'औती' अथवा 'औटी' (क्रमशः 'आवती' और 'आवटी' के अवकुचित रूप) के योग से भी भाव वाचक संज्ञाएँ रची जाती है; जैसे—कसौती अथवा कसौटी (√कसना) और छुड़ौती (√छड़ाना)।

स्मरणीत—इन प्रत्ययो मे से अधिकांश का उद्‌भव संस्कृत के 'वृत्ति' शब्द से हुआ है। कुछ शब्दों मे ये प्रत्यय सं० 'ति' का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(५) संज्ञा अथवा विशेषण के साथ 'ई'[1] के योग से भाव वाचक संज्ञाएँ रची जाती हैं, जैसे—उँचाई (ऊँचा), बुराई (बुरा), गोलाई (गोल); लड़काई (लड़का)।

क. जब यह 'ई' (वस्तुत 'आई'—अनुवादक) प्रेरणार्थक क्रिया के साथ जुड़ती है तो वस्तु के मूल्य अथवा कार्य के पारिश्रमिक का ज्ञान होता है। जैसे—धुलाई (√धुलाना), उतराई (√उतारना), ढुलाई (√ढोना) आदि।

(६) विशेषण तथा धातु के साथ भी 'आई' प्रत्यय जोड कर भाव वाचक संज्ञा रची जाती है; जैसे—चतुराई (चतुर), ठगाई (ठगना)।

(७) बहुत-सी स्त्री लिंगवाची तत्सम भाववाची संज्ञाएँ 'ति' अथवा 'नि' के योग से रची गई हैं; जैसे—मति, बुद्धि (बुध+ति), ग्लानि।

क. हिन्दी की भाववाचक तद्‌भव संज्ञाओं में भी इस 'ति' का उपयोग होता है। 'ति' का उपयोग करते समय अन्त्य 'इ' या तो दीर्घ बनती है, या लुप्त होती है। जैसे—बढ़ती (<बढ़तिका, बढतिया?); (√बढ़ना), चढती (√चढना)।

(८) संज्ञा अथवा विशेषण के साथ 'त्व' के योग से स्त्रीलिंग वाची तत्सम भाववाची सज्ञाएँ रची जाती है; जैसे—ईश्वरत्व (ईश्वर), गुरुत्व (गुरु)।

क. इस 'त्व' प्रत्यय ने प्राकृत के अनेक परिवर्तनों को स्वीकार करते हुए हिन्दी मे प, पा, पन और पना का रूप धारण किया है; जैसे—बुढापा (बूढा), लड़कपन (लड़का)। एकाकी 'प' कम स्थानो पर प्रयुक्त हुआ है; जैसे—स्यानप (स्याना), बुढाप (बूढा)। 'पना' के स्थान पर बहुत कम स्थलों पर 'पनी' प्रत्यय का उपयोग हुआ है; जैसे—लुच्चपनी (लुच्चा)।

(९) विशेषण वाची शब्द के साथ 'क' के योग से भाववाचक सज्ञा रची जाती है, जैसे—ठडक (ठंडा)।

---

[1] यह प्रत्यय वस्तुतः 'ई' न होकर 'आई' है।—अनुवादक

(१०) विशेषणवाची शब्द के साथ 'ता' जोड कर स्त्री लिगवाची तत्सम भाववाचक संज्ञाओ की रचना होती है, जैसे—'नम्र' से 'नम्रता', 'पवित्र' से 'पवित्रता'। धातु के साथ 'आ' तथा 'ना' के योग से भी कुछ भाववाचक सज्ञाएँ बनती है; जैसे—'इच्छ्' से 'इच्छा' और 'तृष्' से 'तृष्णा'।

क. कई स्थलो पर भाववाचक 'ता' के साथ दूसरा भाववाचक प्रत्यय 'आई' जुडता है, जैसे—'सुन्दरता' से 'सुन्दरताई'।

(११) सस्कृत की तत्सम सज्ञा और क्रिया के साथ 'इमा' (स० इमन्) के योग से पुल्लिगवाची तत्सम भाववाचक सज्ञाएँ बनती है; जैसे—लघिमा, महिमा आदि।

क तद्भव शब्दों मे यह 'इमा' प्रत्यय 'आँ' मे परिवर्त्तित होता है; जैसे—उचा, लबा'।

(१२) सज्ञा के साथ 'य' के योग से बने हुए सस्कृत के नपुंसकलिंगी तत्सम भाववाचक शब्द भी हिन्दी मे प्रयुक्त होते है, जैसे—राज्य, स्वाम्य, किन्तु हिन्दी मे सामान्यतया अन्त्य 'य' लुप्त हो जाता है; जैसे—'राज्य' से 'राज'।

कर्तृसूचक तथा व्यवसायसूचक संज्ञाओं की रचना

§६१३. कर्तृसूचक और व्यवसाय सूचक संज्ञाओ की रचना के लिए निम्न प्रत्यय जुड़ते हैं—

(१) क्रिया के विकारी सामान्य रूप के साथ जुड़ने वाले कर्तृसूचक प्रत्यय 'वाला' (सं० पालक) का उल्लेख पहले हो चुका है। कर्तृत्व के अतिरिक्त यह व्यवसाय सूचित करने के लिए भी प्रयुक्त होता है; जैसे—'दूधवाला'। धातु के साथ भी जुडता है; जैसे— रखना से 'रखवाल'।

क. हिन्दी मे कुछ ऐसे शब्द प्रयुक्त होते है जिनके अन्त मे 'वाला' विद्यमान है, किन्तु ऐसे शब्द संस्कृत के समासित शब्दों से बने हैं; जैसे—ग्वाला∠सं० गोपालक। बोलियों मे 'वाला' के 'वारौ', 'वार' आदि रूपान्तर प्रचलित है।

(२) पहले ही यह लिखा जा चुका है कि 'हारा' अथवा 'हार' के योग से भी कर्तृसूचक संज्ञा रची जाती है। 'हार' अथवा 'हारा' का उद्भव सस्कृत के 'कारक' शब्द से हुआ है। कही-कही संज्ञा के उपान्त्य स्वर को ह्रस्व बना कर 'हार' या 'हारा' प्रत्यय जोडते है; जैसे—पनहारा।

क. व्यवसाय सूचित करने के लिए कुछ सज्ञाओ के साथ 'आर' अथवा 'आरा' प्रत्यय जोडते हैं। 'आर' तथा 'आरा' मे 'हार' अथवा 'हारा' का 'ह' लुप्त हो गया है। इस 'आर' तथा 'आरा' का सम्बन्ध भी संस्कृत के 'कारक' शब्द से है। जैसे—'सोना' से 'सुनार' (∠सं० स्वर्णकार), 'बनज' से 'बनजारा' (∠स० वाणिज्यकार); सुआर (∠सूपकार)।

ख कुछ कर्तृसूचक सज्ञाएँ 'आरी' (<सं० कारिन्) के योग से बनती है; जैसें—पुजारी (<स० पूजाकारिन्)।

ग. कुछ कर्तृसूचक सज्ञाएँ 'एरी' अथवा 'एरू' के योग से बनती है; जैसे—पूजेरु=पुजारी; 'लूट' से 'लुटेरू'।

स्मरणीय—'एरी' आदि की उत्पत्ति प्राकृत की √ केर (<सं० √कृ) से उद्भूत है। 'एरी'<प्रा० केरिक, एरु<प्रा० केरुक।[1]

---

[1] हार्नली ने अन्तिम प्रत्यय का उद्भव सं० दृश से माना है। उनके विचार में इस प्रत्यय से बनने वाला शब्द मूलतः कर्तृसूचक संज्ञा न होकर अधिकार सूचक विशेषण है। कम्प० ग्राम०§ २५१।

(३) हिन्दी में 'अक' प्रत्यय से बनने वाली कर्तृसूचक तत्सम सज्ञा भी प्रयुक्त होती है, जैसे—पूजक, रक्षक।

क तद्भव शब्दो मे यह 'अक' 'आ' में परिवर्त्तित होता है।

ख. प्राकृत में कर्तृसूचक 'अक' प्रत्यय 'इया' मे रूपान्तरित हुआ। हिन्दी की बहुत-सी कर्तृसूचक सज्ञाएँ इस 'इया' प्रत्यय से बनी हैं, जैसे—√लखना से 'लखिया', गाडर से 'गडरिया'। कुछ शब्दो मे यह 'इया' प्रत्यय 'ई' मे परिवर्त्तित हुआ, जैसे—हलवाई, बढई।

ग. सस्कृत का कर्तृसूचक 'अक' पहले 'उक' मे और फिर 'उआ' अथवा 'ऊआ' मे परिवर्त्तित हुआ, जैसे—मछुआ। कुछ शब्दो मे यह 'उआ' 'ऊ' मे बदल गया, जैसे—बैठू, खाऊ।

(४) धातुओ के साथ कर्तृसूचक प्रत्यय 'वैया' (वाइया और 'वय्या' भी) (<स० तव्य)[1] जुड़ता है। जैसे—रखवैया, मरवैया। 'वैया' प्रत्यय के योग से पहले धातु का दीर्घ स्वर ह्रस्व बनता है; जैसे—√लेना से 'लिवैया', √गाना से 'गवैया'।

(५) कुछ कर्तृसूचक सज्ञाएँ 'हा' (<सं० क?) के योग से बनती हैं, जैसे—चरना से 'चरवाहा'। कुछ सज्ञाओं के साथ भी यह प्रत्यय जोड़ा जाता है, जैसे—कबीराहा' (कबीर का अनुयायी)।

(६) दो-तीन कर्तृसूचक सज्ञाएँ धातु के साथ 'वा' जोड़ने से बनी हैं, जैसे—देवा, लेवा।

स्मरणीय—संभवत· यह 'वा' प्रत्यय 'वैया' <स० 'तव्य' से सादृश्य रखता है।

(७) कुछ कर्तृसूचक संज्ञाएँ धातु के साथ 'आक' (<सं० आकु) के योग से बनी हैं; जैसे—पैराक।

(८) हिन्दी में 'तृ' प्रत्यय के योग से बनने वाली सस्कृत की तत्सम कर्तृसूचक सज्ञाओं का प्रयोग भी होता है, जैसे—कर्त्ता, दाता, पिता। दाता, पिता आदि 'तृ' प्रत्ययान्त पुल्लिगवाचक सज्ञा के कर्त्ता कारक के एकवचन का रूप है।

(९) कुछ कर्तृसूचक संज्ञाएँ 'अन' ('अण' भी) के योग से बनी है। इस प्रकार की संज्ञाएँ कविता मे समास के पर पद के रूप मे अधिक प्रयुक्त हुई है, जैसे—सागरशयन, दुखहरण।

(१०) सस्कृत मे कुछ कर्तृसूचक आकारान्त संज्ञाएँ धातुगत स्वर के गुण मात्र से बनती है। इस प्रकार की कर्तृसूचक सज्ञाएँ हिन्दी समासित शब्द के परपद मे प्रयुक्त होती है, जैसे—धरनीधर (धर= धरने वाला)।

उपकरणसूचक संज्ञाओं की रचना

§६१४. धातुओं के साथ निम्नलिखित प्रत्ययों के योग से उपकरण सूचक संज्ञाओ की रचना होती है—

(१) नी, ना अथवा न (<सं० अनीय?) से; जैसे—√धौंकना से 'धौंकनी', √बेलना से 'बेलन' = अथवा 'बेलना'।

(२) 'आ' (<सं० अक) के योग से; जैसे—घेरना से 'घेरा'।

स्वामित्वसूचक संज्ञाओं की रचना

§६१५. (१) अधिकांश स्वामित्व सूचक सज्ञाओं की रचना सज्ञा के साथ 'वाला' अथवा 'हारा' प्रत्यय के योग से होती है; जैसे—दाँतवाला, कपडेवाला। कई सज्ञाओं के एक साथ आने पर केवल अन्तिम

---

[1] देखिए, हार्नले—कम्प० ग्राम० ३१४।

संज्ञा के साथ 'वाला' अथवा 'हारा' प्रत्यय जुड़ता है और प्रत्येक संज्ञा विकारी अवस्था में प्रयुक्त होती है, जैसे—घोड़े गडे पट्टेवाला; अपनी सी आँखो वाली हरिणियो के संग।[1]

(२) कुछ स्वामित्व सूचक संज्ञाओ की रचना संज्ञा के साथ 'आल' अथवा 'आला' (<सं० आल>प्रा० आलक) के योग से होती है; जैसे—ल से 'लठियाल', जौ से 'जवाला'।

स्मरणीय—किन्तु स्थान वाची 'आल' प्रत्यय सं० के आलय शब्द से बना है; जैसे—ससुर से 'ससुराल' और घड़ो से 'घडियाल'।

(३) 'दार' के योग से बनने वाले बहुत से स्वामित्व सूचक फारसी शब्द हिन्दी में प्रयुक्त होते है; जैसे—जमीनदार, हवादार।

संज्ञा के उपेक्षार्थक रूप की रचना

§६१६ संस्कृत मे संज्ञा के उपेक्षार्थक अथवा अल्पार्थक रूप की रचना निम्नलिखित प्रत्ययो के योग से होती है—

(१) 'अक' अथवा 'इक' प्रत्यय से। हिन्दी के बहुत से तद्भव शब्दो मे इन दोनो प्रत्ययो का उपयोग मूल रूप मे हुआ है, जैसे—धोल से 'धोलक'। उपेक्षा के लिए संस्कृत मे स्त्रीलिंग वाची प्रत्यय 'का' है; जैसे—पशु से 'पशुका'। स्त्रीलिंग में 'इका' का प्रयोग भी होता है, जैसे—शकट से शकटिका। 'की' का प्रयोग हिन्दी मे हुआ है; जैसे—टमकी।

क. तद्भव शब्दो मे संस्कृत का उपेक्षार्थक प्रत्यय 'क' लुप्त होता है और प्राय. 'य' का आगम होता है। हिन्दी मे प्रयुक्त बहुत से उपेक्षार्थक शब्दो के अन्त में प्रयुक्त 'इया' की व्याख्या इसी प्रकार से की जा सकती है। जैसे—डिब्बा से 'डिबिया', फोडा से 'फुडिया'। प्रेम प्रकट करने के लिए भी उपेक्षार्थक प्रत्यय-का प्रयोग होता है; जैसे—बेटी से 'बिटिया'।

ख. यह तुच्छार्थक 'इया' प्रत्यय प्राय: 'ई' में रूपान्तरित होता है, इसीलिए हिन्दी में अधिकाश उपेक्षार्थक अथवा अल्पार्थक संज्ञाएँ ईकारान्त है, जैसे—'टोकरी' आदि।

ग. पूरब की बोलियों में सामान्यतया संस्कृत के तुच्छार्थक 'क' का लोप होता है तथा श्रुति के रूप मे 'व' का प्रयोग किया जाता है; जैसे—पुर से 'पुरवा', 'घुड़वा' (अपमान के साथ)। 'व' 'उ' मे परिवर्त्तित होता है, इसी परिवर्तन के कारण पूरब की बोलियों के बहुत से अपमानार्थक शब्दो के अन्त मे 'उआ' आता है, जैसे—बेटा से 'बेटुआ'।

(२) संस्कृत में बहुत-सी उपेक्षार्थक संज्ञाओं की रचना 'र' के योग से होती है। यह 'र' हिन्दी मे 'री' अथवा 'ड़ी' मे परिवर्त्तित हुआ हैं; जैसे—तितरी, टिकडी, पलगड़ी। 'ला' तथा 'ली' का उद्भव भी इसी उपेक्षार्थक 'र' से हुआ है; जैसे—तितरी और टिकड़ी के लिए तितली और टिकली; घंटा से 'घटाली'। 'ल' (र) के स्थान पर प्राय: 'इल' और 'उल' का प्रयोग होता है; जैसे—मुरेला, खटोला आदि।

(३) बहुत कम उपेक्षार्थक संज्ञाओं की रचना 'ना' से हुई है, जैसे—मूत से 'मूतना', मटका से 'मटकना।'

---

[1] 'वाला' तथा 'हारा' की व्युत्पत्ति के लिए देखिए §६१३ (१) तथा (२)।

निवास-भूमि तथा सम्बन्ध सूचित करनेवाली संज्ञाओं की रचना

§६१७ निवास-भूमि तथा सम्बन्ध को सूचित करने के लिए सज्ञा के साथ 'ई' (<स० ईय, इय) जोड़ते है; उदाहरण—मारवाड़ी, कबीरी (कबीर के अनुयायी)।

विभिन्न रूप

§६१८ अनेक प्रकार के सम्बन्धों को सूचित करने के लिए संज्ञा के साथ पुल्लिगवाची क, रा, डा तथा ला और स्त्रीलिंगवाची की, री, डी और ली प्रत्यय जुडते है। 'क' को छोड़ कर शेष सभी प्रत्ययो का उद्‌भव स० के 'र' प्रत्यय से हुआ है। इन अर्थो का वर्गीकरण करना संभव नही है। कही-कही इन प्रत्ययों से पहले 'इ' अथवा 'उ' का आगम होता है और शब्द के अन्त्य स्वर और इस 'इ' अथवा 'उ' की सधि होती है।

उदाहरण—मट्टी से 'मटका', स्त्री० 'मटकी', हाथ से 'हथेला', स्त्री० हथेली, हथौड़ा, स्त्री० हथौड़ी, हथरी तथा हीथली।

क. संज्ञा के साथ 'आ' (<सं० अक) तथा 'ई' (<सं० इक) जुड़ते है; जैसे—हाथ से 'हथा' अथवा 'हथी'।

विशेषणों की रचना

§६१९ हिन्दी के विशेषणों की रचना इस प्रकार हुई है—

(१) सस्कृत मे बहुत से विशेषणों की रचना अक, इक अथवा उक के योग से हुई है। इन प्रत्ययों के योग से पहले सज्ञा के मध्यवर्ती अथवा अन्त्य स्वर की वृद्धि और अन्य किसी स्वर को गुणित करते हैं। इस प्रकार के विशेषणों का प्रयोग हिन्दी मे भी होता है; जैसे—संसार से 'सांसारिक', तप से 'तापक'।

क. प्राकृत में विशेषणवाची प्रत्ययो के 'क' का लोप और श्रुति के रूप मे 'य' का प्रयोग हुआ। इस तरह 'इया' प्रत्यय का उद्‌भव हुआ। हिन्दी में भी 'इया' के योग से विशेषणो की रचना होती है; जैसे—दूध से दूधिया। अधिकांश स्थलो पर हिन्दी में 'य' का आगम नही होता और पड़ोसी स्वरो में सन्धि होती है। इस सन्धि के कारण हिन्दी में विशेषणवाची 'आ' प्रत्यय का उद्‌भव हुआ, जैसे—मैल से 'मैला', मुष्ट से मुष्टक>हि मोटा। इसी तरह 'इक' 'ई' मे परिवर्त्तित हुआ, जैसे—मार से 'मारी'; ऊन से 'ऊनी'। 'उक' 'ऊ' मे परिवर्त्तित हुआ—ढालू।

(२) सस्कृत के बहुत से विशेषणवाची शब्द ल, आलु, इल, उल तथा र, अर, इर और उर प्रत्ययों के योग से बनते हैं। हिन्दी के तद्‌भव शब्दों मे भी इन प्रत्ययो का उपयोग हुआ है; जैसे—दूध से 'दूधल', दया से 'दयाल' अथवा 'दयालु'; दाँत से 'दँतैल' या 'दँतेल'; बोझ से 'बोझल'; काम से 'कमेरा', नोक से 'नोकीला' रस से 'रसीला'। 'एर' प्रत्यय का कम प्रयोग हुआ है; जैसे—दंश से 'दशेर', दूध से 'दूधेर'। कही-कही 'र' 'ड़' मे परिवर्त्तित हुआ है, जैसे हँसना से 'हँसोड़'।

(३) सस्कृत के 'इत' प्रत्यय का प्रयोग भी विशेषणो की रचना मे किया गया है; जैसे—दंगा से 'दगैत', बर्छा से 'बर्छैत'।

(४) कही-कही निम्नलिखित प्रत्ययो के योग से भी विशेषणवाची शब्द रचे जाते हैं, 'ई' के योग से दंगई; 'इम' के योग से—तुन्दिम, 'हा' के योग से—कंपहा।

(५) स्वामित्व सूचित करने के लिए 'ई' (<स० इन्) का प्रयोग हुआ है; जैसे—धन से 'धनी' (>स० धनिन्)। 'वान' अथवा 'वन्त' (<सं० वत्) का प्रयोग भी मिलता है; जैसे धन से धनवान, बल से बलवान, कृपा से कृपावन्त।

(६) 'त' और वान् (वत्) प्रत्यय से बनने वाले संस्कृत के कृदन्तो का उपयोग हिन्दी मे विशेषणवाची शब्दो के रूप में होता है, जैसे—क्रोध से 'क्रोधित', शुभ से 'शोभायमान'।

(७) 'मय' प्रत्यय युक्त तत्सम विशेषणवाची शब्दों का प्रयोग होता है; जैसे—दयामय, पावकमय।

(८) सादृश्य सूचित करने वाले 'वत्' प्रत्यय के योग से बनने वाले तत्सम विशेषणो का प्रयोग कम सख्या मे हुआ है; जैसे—विधि से 'विधिवत्'।

(९) संस्कृत के 'स+आ' प्रत्यय का प्रयोग कुछ विशेषणो में हुआ है। प्रचलित उदाहरण है—पियासा<स० पिपासित. ; रोना से रुआसा।

अनुकरणात्मक शब्द

§६२०. हिन्दी मे अनुकरणात्मक शब्दो की बहुत बडी सख्या है। इनकी उत्पत्ति ध्वनि के अनुकरण अथवा ध्वनि के द्वारा क्रिया की अभिव्यक्ति से हुई है। इस प्रकार के शब्दो मे प्राय· द्वित्व पाया जाता है।

उदाहरण—खटखट, झनझन, चट्टा बट्टा, किंकणी, सुनसुनाना आदि। इन अनुकरणात्मक शब्दो में से अनेक के साथ प्रेरणार्थक प्रत्यय जोड कर क्रिया बनाई जाती है, जैसे—खटखटाना, झनझनाना आदि।

ग्यारहवाँ अध्याय

समास

§६२१ हिन्दी मे समासों का प्रयोग बहुत अधिक होता है। यदि समास की दृष्टि से उर्दू के साथ हिन्दी की तुलना की जाये तो समासों की रचना-विधि तथा इनकी लम्बाई हिन्दी की अपनी विशेषता मानी जाएगी। अरबी मे भी लम्बे-लम्बे समासित शब्दो का प्रयोग होता है; किन्तु उर्दू ने उनको अधिक सख्या मे स्वीकार नही किया है। उर्दू मे फारसी के समासित शब्द प्रयुक्त हुए है, किन्तु उनकी सख्या भी हिन्दी मे प्रयुक्त समासित शब्दो की अपेक्षा बहुत कम है।

स्मरणीय—लम्बे-लम्बे और मिश्रित ढग के समास मुख्य रूप से कविता मे प्रयुक्त होते है, किन्तु सामान्य बातचीत और गद्य मे भी छोटे-छोटे समासित शब्दो की कमी नही है। गद्य और सामान्य बोलचाल मे कुछ परसर्गहीन शब्दो का इस तरह प्रयोग होता है कि उन्हे समासित कहना सर्वथा उचित प्रतीत नही होता। हिन्दी की कविता को समझने के लिए समासो की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है।

समासों का वर्गीकरण

§६२२ हिन्दी और सस्कृत के समासो मे अन्तर नही है, इसीलिए संस्कृत के आधार पर हिन्दी के समासों का वर्गीकरण किया जा सकता है। मोनेर-विलियम्स ने अपने सस्कृत व्याकरण मे समासो की व्याख्या के लिए जो प्रणाली अपनाई है, उसके अतिरिक्त किसी दूसरे उपाय से इन्हे समझाना ठीक नही होगा। भारतीय वैयाकरणो की अपेक्षा मोनेर-विलियम्स का मार्ग अधिक सुबोध है। समासो के पाँच मुख्य भेद है—(१) तत्पुरुष, इस समास मे प्रयुक्त संज्ञाओं का सम्बन्ध विभिन्न कारको से व्यक्त होता है, (२) द्वन्द्व तत्पुरुष—इसमें दो या दो से अधिक पदो का सम्बन्ध सयोजक अव्यय से स्थापित होता है, (३) कर्मधारय—इसमें एक विशेष्य तथा एक विशेषण का समास होता है; (४) द्विगु—इसमे प्रथम पद मे संख्यावाचक शब्द आता है, (५) अव्ययी भाव—इसमे प्रथम पद मे कोई अव्यय (क्रिया विशेषण) आता है।

तत्पुरुष

§६२३ छहो कारको के आधार पर तत्पुरुष समास के छह भेद हैं। प्रथम पद की संज्ञा जिस कारक में होती है, उसी कारक पर तत्पुरुष का नामकरण किया जाता है।

(१) **कर्म तत्पुरुष**—यह समास बहुत प्रयुक्त होता है। इसके द्वितीय पद मे या तो कोई धातु आती है या कोई कर्तृ सूचक सज्ञा। प्रथम पद मे उसके कर्म को व्यक्त करने वाली सज्ञा आती है। प्रथम पद मे आने वाले तद्भव शब्द का दीर्घ स्वर ह्रस्व और सयुक्त स्वर अपने सवर्णी ह्रस्व स्वर मे परिवर्त्तित होता है।

तद्भव शब्दो से बने कर्म तत्पुरुष समास के उदाहरण निम्न प्रकार है—तिलचट्टा (तिल को चाटने वाला), कठफोड़ा (काठ को फोड़ने वाला), चिड़ीमार (चिड़िया को मारने वाला), मक्खनचोर (मक्खन को

चुराने वाला) । तत्सम शब्दो से बने कर्म तत्पुरुष समास के उदाहरण निम्न प्रकार है—जगतार, गुणज्ञाता, जीवनदाता, पतितपावन, त्राहिकार, मनोहर (मनस्+हर, देखिए—§५९) ।

क. इस प्रकार के कर्म तत्पुरुष के द्वितीय पद मे प्रयुक्त होने वाली धातु या तो एकाक्षरी होती है या सयुक्ताक्षर वाली; जैसे—'प' (स० √पा), जैसे भूप, अथवा 'द' (सं० √दा); जैसे—सुखद, अथवा 'ज्ञ' (सं० √ज्ञा); जैसे—सर्वज्ञ; आदि।

ख. कुछ कर्म तत्पुरुषो के द्वितीय पद मे 'गत' शब्द का प्रयोग होता है, किन्तु इस प्रकार के समासो मे 'गत' शब्द का गति वाला अर्थ नष्ट हो जाता है और वह 'सामीप्य' अथवा 'सम्पर्क' का बोध कराता है। रामायण के इस उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है—सुरसरि-**गत** सलिल, करतल**गत** पुष्प।

ग. कर्मकारक की संज्ञा कहीं-कही प्रथम पद के स्थान पर द्वितीय पद मे आती है, जैसे—मर्दनमयन।

(२) **सम्प्रदान तत्पुरुष**—इसमे प्रथम पद सम्प्रदान कारक का आशय व्यक्त करता हैं, इस समास का प्रयोग अधिक नही मिलता। प्रचलित उदाहरण है—शरणागत।

(३) **करण तत्पुरुष**—इसका प्रथम पद द्वितीय पद के कर्त्ता के रूप मे आता है। इस समास के द्वितीय पद मे सदैव सस्कृत का पूर्णता सूचक कृदन्त प्रयुक्त होता है। इस समास का प्रयोग अपेक्षाकृत कम होता है। इनमें केवल तत्सम शब्द समासित हुए है। करण तत्पुरुष के प्रचलित उदाहरणों के द्वितीय पद में 'कृत' (स० √कृ का पूर्णता सूचक कृदन्त) का प्रयोग होता है। इस समास का प्रयोग पुस्तक के नामकरण मे बहुत हुआ है, जैसे तुलसीदास कृत रामायण।

(४) **अपादान तत्पुरुष**—परपद के लिए पूर्व पद अपादान कारक में आता है; उदाहरण—तद्भव: देश निकाला; तत्सम: मोहजनित, रत्नजटित, बुद्धिहीन, पचरचित।

उल्लेखनीय—यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि सस्कृत मे करणकारक मे प्रयुक्त अनेक शब्द हिन्दी की दृष्टि से अपादान कारक मे प्रयुक्त माने जाते है। यही कारण है, संस्कृत के बहुत से करण तत्पुरुष हिन्दी में अपादान तत्पुरुष माने जाएँगे।

(५) **सम्बन्ध तत्पुरुष**—जहाँ परपद के लिए पूर्वपद सम्बन्ध कारक मे प्रयुक्त होता है। सम्बन्ध तत्पुरुष पद्य तथा गद्य दोनो में बहुत प्रयुक्त हुआ हैं। तद्भव शब्दों का दीर्घ स्वर ह्रस्व स्वर मे और संयुक्त स्वर अपने सवर्णी ह्रस्व स्वर मे परिवर्त्तित होता है। तद्भव शब्दो के सम्बन्ध-तत्पुरुष समास मे सन्धि की उपेक्षा की जाती है। उदाहरण—तद्भव · लखपति (लाखो का पति), पनचक्की (पानी की चक्की), घुडसाल (घोड़ो की शाला)। तत्सम : जगदीश, जलविहग, दारुनारी, रामकथा, आदि।

क सम्बन्ध तत्पुरुष के द्वितीय पद मे प्रयुक्त 'अर्थ' शब्द का तात्पर्य है—'के लिए', जैसे—मयार्थ, स्नेहार्थ।

ख. उपाधि अथवा विरद के लिए सम्बन्ध तत्पुरुष का प्रयोग बहुत होता है; जैसे—धर्मावतार, गोपीनाथ। व्यक्तिवाचक संज्ञाओं मे भी इस समास का उपयोग होता है; जैसे—रामचरन, देवीदास, प्रेमसागर, ब्रजविलास।

ग. सम्बन्ध तत्पुरुष के अन्तर्गत ऐसे समासित शब्दों की भी गिनती होती है, जिनके परपद में कोई संख्यावाची शब्द आता है; जैसे—कालकोटि, तापत्रय, नरसहस्र। समासित शब्दों के द्वितीय पद मे आने वाले 'अनेक' शब्द की व्याख्या भी सम्बन्ध तत्पुरुष मे प्रयुक्त परपद के समान होनी चाहिए; जैसे—काम अनेक छवि।

घ. षष्ठी तत्पुरुष के द्वितीय पद मे श्रेष्ठता अथवा प्रमुखता सूचित करने के लिए 'राज' अथवा 'राउ' (राऊ भी) प्रयुक्त होता है; जैसे—मुनिराउ, तीरथराज, ऋतुराज।

ङ आवश्यकता पड़ने पर सम्बन्ध तत्पुरुष के परपद मे कोई विशेषण, विशेष रूप से 'योग्य' या 'जोग' शब्द प्रयुक्त होता है; जैसे—ब्याहन योग्य।

च अधिकार तथा निवास-स्थान को सूचित करने के लिए क्षेत्रीय बोलियो के अनुकरण पर दूसरे पद मे 'वाला' (सं० पालक) का प्रयोग होता है, जैसे—दिल्लीवाला, दूधवाला; आदि।

(६) **अधिकरण तत्पुरुष**—परपद के लिए पूर्वपद की सज्ञा अधिकरण कारक मे प्रयुक्त होती है; जैसे—घुड़सवार, स्वर्गवासी, आनन्दमग्न, धनुपाणि। यहाँ उन तत्सम समासित शब्दो का उल्लेख करना चाहता हूँ जिनके परपद मे 'ज' आता है, जैसे—जलज। परपद में 'चर' शब्द भी आता है; जैसे—जलचर, परपद मे 'ग' भी आता है; जैसे—नभग (नभ+ग)।

§६२४. तत्पुरुष समास का प्रथम पद कही-कही बहुवचन मे आता है; जैसे—भक्तनहित, दीननबन्धु।[1]

द्वन्द्व समास

§६२५. द्वन्द्व समास में दोनो सदस्यो का सम्बन्ध किसी सयोजक अव्यय से व्यक्त किया जाता है। इस समास के सम्बन्ध मे मै निम्न बातो का उल्लेख करना चाहता हूँ—

(१) **पूरक द्वन्द्व समास**—पूर्वपद परपद का पूरक होता है। इस समास का प्रयोग अधिक होता है। उदाहरण—मा बाप, अन्न जल, रामानुज (राम और उसका छोटा भाई)।

क. द्वन्द्व समास में विपरीत अर्थ के दो शब्द भी समासित होते है; जैसे—कमती बढती; चराचर।

ख. द्वन्द्व समास मे ऐसे दो शब्दों को भी समासित करते है जिनमे एक ही शब्द आरमिक अक्षर के परिवर्तन अथवा मध्यवर्त्ती स्वर के परिवर्त्तन के साथ दुहराया जाता है। इस प्रकार के समासित शब्दो का प्रयोग बड़ी मात्रा में होता है और उनसे अनिश्चय का बोध होता है। दोहराया जाने वाला परपद का शब्द संस्कृत के 'इत्यादि' का पर्यायवाची होता है। उदाहरण—डेरे ऐरे (डेरा तथा अन्य), घोड़े ओड़े, कोस कास।

(२) **अन्योन्य द्वन्द्व समास**—इसमे एक ही शब्द दो बार अथवा समान अर्थवाले दो शब्द समासित होते है। इस समास मे एक पद दूसरे पद का स्त्रीलिंगवाची रूप होता है; उदाहरण—कहाकही लाठालाठी। कहीं-कही पहला शब्द ही एक अक्षर के परिवर्तन के साथ समासित होता है; जैसे—अडोस पड़ोस, आम्हने साम्हने।

(३) द्वन्द्व समास में ऐसे समासित शब्दों की गिनती भी होती है, जिनका परपद किसी विशेष अर्थ का द्योतक नही होता, वह केवल अनुप्रास अथवा अनुध्वनि के लिए आता है। §६२५ के अनुच्छेद (१) तथा (२) के समासों की भाँति इस समास की रचना होती है। उदाहरण—भलाचंगा, टोआटोई, काना कानी, खोज खाज, चालचलन, पूछपाछ।

§६२६. समासो के सम्बन्ध मे यह बात उल्लेखनीय है कि परसर्ग केवल अन्तिम पद के साथ लगता है और विभक्ति सम्बन्धी विकार भी अन्तिम पद मे ही होते हैं; जैसे—भूतप्रेतों को; रूख पेड़ो और पशु-पक्षियों

---

[1] 'दीनबन्धु' रूप ही अधिक प्रचलित है।

ने भी. उदासी मानी है; लखन रामसीतहि। 'प्रेमसागर' के इस वाक्य में भी इसी प्रकार का प्रयोग मिलता है—सब लगे पगडी फेटें मिलाय . . उसे काटने। यह प्रयोग रामायण मे भी मिलता है—हठि अविवेकहि भजहि।

क. वाला, मय जैसे विभिन्न प्रत्यय भी अन्तिम पद के साथ जुड़ते है। इस अवस्था में प्रत्यय द्वन्द्व पुरुष के समासित शब्दो का अश माना जाता है; जैसे—वह तीन मुँह नौ पग छह कर वाला, सियाराममय सब जग जानी; जड चेतन गुन दोषमय विस्व कोन्ह करतार।

कर्मधारय समास

§६२७. कर्मधारय समास का एक सदस्य विशेष्य और एक सदस्य विशेषण होता है। उदाहरण—भलामानुस, कनफटा। ऐसे सब समासित शब्दो की गिनती भी कर्मधारय समास मे होती है, जिनके पूर्वपद मे 'महा' शब्द आता है; जैसे—महापाप, महाराज। अन्य उदाहरण है—अल्पबल, परमेश्वर, मध्यलोक, बहुमूल्य।

ख. ऐसे समासित शब्द भी 'कर्मधारय' समास की श्रेणी मे आते है जिनके पूर्वपद मे संज्ञा और परपद मे 'वर्य' या 'वर' शब्द आता है; जैसे—मुनिवर्य, स्त्रीवर। कही-कही विशेषणवाचक शब्द द्वितीय पद मे आता है, जैसे—मनमलीन। यह समास उपमा अथवा सादृश्य को सूचित करता है; जैसे—'सरोरुह स्याम'। कर्मधारय के अन्तर्गत उन समासित शब्दो की गिनतो भी होती है, जिनके परपद मे 'अन्तर' शब्द आता है; जैसे—जन्मान्तर।

ख. कहीं-कही अवियोज्य निपात, विशेष रूप से 'कु' (क, का, कद् अथवा कब भी) विशेषण का स्थान लेते है, जैसे—कुसपना, कपूत। इसी प्रकार 'सु' भी; जैसे—सुसगति; दुर् (दुष तथा दुस्) भी; जैसे—दुर्वचन, दुष्कर्म, दुस्तर। कही-कही 'सु' का अर्थ 'अधिक' होता है; जैसे—सुदूर।

स्मरणीय—इस प्रकार के निपातों का प्रयोग सस्कृत शब्दो मे बहुत होता है। हिन्दी की कविता मे इनका प्रयोग सामान्य रूप से किया जाता है। रामायण मे भी इस प्रकार के प्रयोग मिलते है—सुसाहेब, सुचारिउ भाई। मुझे कविता मे इस प्रकार का प्रयोग भी मिला है—'सुखोरिके' (सु खोरिके=खोलिके)।

ग. विशेषण के स्थान पर सज्ञा भी प्रयुक्त होती है; जैसे राजहस। इस समासित शब्द की व्याख्या भी इसी ढंग से की जानी चाहिए—'मथुरापुरी का आहुक नाम राजा' यहाँ 'आहुक नाम' मे कर्मधारय समास है, 'आहुक' विशेषण की भाँति प्रयुक्त हुआ है।

घ. कर्मधारय समास के द्वितीय पद मे 'आदि' शब्द का प्रयोग भी होता है; जैसे—ब्रह्मादि, सुधादि असन।

ङ. कही-कही सस्कृत और फारसी के दो पर्यायवाची शब्द समासित होते है; जैसे—तन बदन।

द्विगु

§६२८. द्विगु समास के पूर्वपद मे संख्यावाची संज्ञा का प्रयोग होता है; जैसे—द्विज, त्रिलोक, सहस्रमुख, चतुष्पथ, पंचप्राण, शतवर्ष।

अव्ययीभाव समास

§६२९. अव्ययी भाव समास के पूर्व पद मे कोई अवियोज्य क्रिया विशेषण, अव्यय अथवा उपसर्ग आता है; पूर्व पद में 'यथा' के योग से बनने वाले समासो के उदाहरण देखिये—यथाविधि, यथोक्त; 'सह'

संक्षिप्त रूप 'स' के योग से—सटीका, सानुज। अन्य उपसर्गों और अव्ययो से भी अव्ययीभाव समास बनता है—जैसे—प्रतिदिन, अधिकृत।

क. इस प्रसंग मे 'अन्' के योग से बनने वाले नञ् समास का भी उल्लेख होना चाहिए। स्वर से प्रारभ होने वाले सस्कृत के तत्सम शब्दों के आरभ मे नकारार्थक 'अ' 'अन्' मे परिवर्त्तित होता है। व्यजन से प्रारंभ होने वाले शब्दो के पूर्व यह 'अ' बना रहता है, किन्तु आधुनिक हिन्दी मे स्वर ही नही व्यजन से प्रारभ होने वाले शब्दो से पहले भी नकारार्थक 'अ' 'अन्' का रूप धारण करता है। तत्सम शब्दो के उदाहरण इस प्रकार हैं—अनन्त (अन्+अन्त) अप्रिय (अ+प्रिय), अनीश (अन्+ईश), अदेय (अ+देय = स० भविष्य-कालिक कृदन्त)। आधुनिक हिन्दी मे नञ् समास के उदाहरण निम्न प्रकार है—अनजान, अनगिनत, अनमल, अनइस (अन्+अइस)। पूर्णता सूचक कृदन्त के साथ भी इस 'अन्' का प्रयोग होता है; जैसे—अनभयउ. जागउ नृप अनभयउ विहाना।

ख. 'परस्पर' मे भी अव्ययी भाव समास है, यहाँ 'पर' शब्द दुहराया गया है, 'स्' के कारण दोनो मे सन्धि हुई।

§६३०. ऊपर जो उदाहरण दिए गए है, उनमे से अनेक विशेषणवाची शब्दो की भाँति प्रयुक्त होते है, अर्थ की दृष्टि से वे अपने मे पूर्ण नही हैं। बहुत से सज्ञावाची शब्द समासित हो कर विशेषण बन जाते है। इस प्रकार के समासित शब्दो के अन्त में विशेषणवाची 'ई' प्रत्यय जोडते है, जैसे—मृगनैनी, पिकबैनी। बहुत से स्थलों पर विशेषणवाची 'ई' लुप्त होती है, जैसे—मेघवरण, नररूप।

स्मरणीय—कविता में बहुत से समासित शब्द विशेषण के रूप मे इस तरह प्रयुक्त होते है कि वे विधेय के अंश मात्र प्रतीत होते हैं। यहाँ तक कि मुख्य रूप से द्वन्द्व समास और सामान्य रूप से सम्बन्ध तत्पुरुष का आशय भी उनसे प्रकट नही होता।[1] रामायण के प्रत्येक पृष्ठ मे इस प्रकार के विशेषणात्मक समास के उदाहरण मिल सकते हैं।

क. व्यक्ति, वस्तु अथवा स्थान आदि से सम्बन्धित व्यक्तिवाचक संज्ञा के साथ अभिधेयता सूचित करने के लिए 'नाम' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'नाम' शब्द वाले समासित पदो का हिन्दी मे बहुत प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के समासित शब्द मे तत्पुरुष समास होता है और उसका प्रयोग विशेषण की भाँति किया जाता है। हिन्दी में इस प्रकार के समास के पदो को पृथक्-पृथक् लिखा जाता है, जैसे—'हेमकूट नाम पर्वत'; इस समासित पद को संस्कृत मे इस तरह लिखा जाएगा—'हेमकूटनामा पर्वत'।

ख. समास के अन्तिम पद मे प्रयुक्त 'रूप' शब्द का तात्पर्य है 'का' अथवा 'युक्त', जैसे—मोहरूपी सागर। कही-कही यह 'रूप' शब्द अपने वास्तविक अर्थ मे भी प्रयुक्त हुआ है; जैसे—नररूप हरि।

§६३१. 'मात्र' अथवा 'अन्तर' के योग से भी कुछ समास बनते है, जैसे—अस्थिमात्र, देशान्तर। 'मात्र' से पहले तद्भव शब्द का अन्त्य 'आ' 'ए' मे परिवर्त्तित होता है, जैसे—इनके देखने मात्र से। 'ढग' अथवा 'युक्त' को प्रकट करने के लिए अन्तिम पद में 'पूर्वक' शब्द प्रयुक्त होता है— जैसे—बुद्धिपूर्वक वचन, स्नेहपूर्वक।

---

[1] संस्कृत के वैयाकरणों ने विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने वाले समासित शब्दों का एक नया वर्ग माना है। इसे 'बहुव्रीहि' समास के नाम से सम्बोधित किया गया है। हिन्दी के व्याकरणों में भी बहुव्रीहि समास का स्वतंत्र अस्तित्व माना गया है, किन्तु कैलाग ने छह के स्थान पर पाँच ही समास माने हैं और बहुव्रीहि समास का पृथक् अस्तित्व स्वीकार नहीं किया है—अनुवादक

मिश्रित समास

§६३२. समासित शब्द, दूसरे शब्दो तथा समासित पदो से मिल कर नया समासित पद बनाते है। इसे 'मिश्रित समास' कहा जा सकता है। उदाहरण—'षटरसभोजन', यहाँ 'षटरस' में द्विगु समास है, द्विगु समास के साथ 'भोजन' शब्द के योग से नया समासित पद बना। 'नभजलथलवासी' इसमे 'नभ, जल और थल' का समासित पद द्वन्द्व समास कहाएगा और पुन. नभजल थल के साथ वासी के समास को अधिकरण तत्पुरुष कहेंगे। भानुकरवारि; नानायुधधर मे कर्म तत्पुरुष समास है। यहाँ "नानायुध" में कर्मधारय समास माना जाएगा, यह 'नानायुध' समासित पद कर्मकारक का आशय व्यक्त करता है, अत· यहाँ कर्म तत्पुरुष माना जाएगा। 'प्रेमसागर' में इससे मिलते-जुलते समासित पदों का प्रयोग हुआ है; जैसे—मोह और चिन्तारूपी (मोहचिन्तारूपी)।

क रामायण तथा अन्य काव्यो मे लम्बे-लम्बे मिश्रित समासों का प्रयोग मिलता है; जैसे—जनमन-मंजुमुकुरमल हरनी, यहाँ मुख्यत· कर्मतत्पुरुष है, उसके साथ चार शब्द ऐसे हैं जो कर्मतत्पुरुष को व्यक्त करते है और एक शब्द कर्मधारय समास को; नखदसनसैल महाद्रुमायुध'।

स्मरणीय—इस प्रकार के लम्बे समासित पदों की व्याख्या करते समय पहले अन्तिम दो शब्दो का अर्थ कर लेना चाहिए। जब उनके बारे मे जानकारी प्राप्त हो जाये तो पुनः एक-एक कर के सब शब्दों का भाव जानना चाहिए। प्रथम शब्द तक पहुँचते-पहुँचते पूरा तात्पर्य ज्ञात हो जाता है। ये समासित पद सस्कृत के अनुकरण पर बनाए गए हैं। गद्य में लम्बे समासों का प्रयोग बहुत कम होता है, छोटे-छोटे वाक्यों में भी परसर्ग युक्त सज्ञा का प्रयोग पसन्द किया जाता है। फिर भी गद्य में जहाँ कहीं दो शब्दों के मिले-जुले आशय को व्यक्त करने की आवश्यकता होती है, छोटे-छोटे समासों का प्रयोग किया जाता है; जैसे—प्रभु-भक्त, ऊषाहरण की कथा, जितेन्द्री।

§६३३ पहले §६२३ (५) मे यह बता दिया गया है कि तद्भव शब्दो से बनने वाले समास मे सन्धि-नियमों की उपेक्षा की जाती है। कहीं-कहीं तत्सम शब्दो से बनने वाले समासित पद में भी नियमानुसार सन्धि नहीं की जाती; जैसे—'हरीच्छा' को विग्रह के साथ (हरि इच्छा) लिखते है। इसी प्रकार 'हिमोपल' के स्थान पर 'हिमउपल' और 'भयातुर' के लिए 'भय आतुर', आदि।

पदों का विपर्यय

§६३४. कविता मे कहीं-कहीं समासित शब्दो के पूर्वपद तथा परपद का विपर्यय पाया जाता है; जैसे—सं० 'विवेकयुक्त' के लिए हि० 'युतविवेक', 'मणिहीन' के स्थान पर 'हीनमनि', 'मयनमर्दन' के स्थान पर 'मर्दनमयन', 'प्रतिदिन' के लिए 'दिनप्रति', 'विवेकविगत' के लिए 'विगतविवेक'।

उपसर्ग से बनने वाले समासित पद

§६३५ इस अध्याय को समाप्त करने से पहले मै एक बात और लिखना चाहता हूँ। संस्कृत मे बहुत से समासित पद उपसर्ग के योग से बनते है। हिन्दी मे भी इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है, अत यहाँ प्रमुख उपसर्गो की सूची दी जा रही है—

(१) अति (=अधिक), जैसे—अत्यन्त।
(२) अधि (=ऊपर), जैसे—अधिपति।

(३) अनु (=पश्चात्); जैसे—अनुज। सज्ञा के साथ भी इस उपसर्ग का उपयोग किया जाता है; जैसे—अनुदिन।

(४) अन्तर (=अन्दर), जैसे—अन्त.करण।

(५) अप (=दूर) इस उपसर्ग का प्रयोग प्राय. अपकर्ष, अथवा निन्दा के लिए किया जाता है; जैसे—'अपवाद'।

(६) अभि (=ओर, तरफ); जैसे—अभिमत।

(७) अव (नीचे, असूया अथवा अपमान के लिए); जैसे—अवगाह, अवगुण (औगुन भी)।

(८) आ (ओर); जैसे—आदर्शक। √गम् के रूपों (और 'या' तथा 'इ') के साथ जब 'आ' उपसर्ग का प्रयोग होता है तो मुख्य क्रिया का अर्थ उल्टा हो जाता है; जैसे—गमन और आगमन, इसी प्रकार √आना के रूपो मे भी 'जाना' क्रिया से विपरीत अर्थ निकलता है।

(९) उद् (उत्, उच् आदि) का अर्थ है ऊपर। जैसे—उत्पन्न, उच्चारण, उठना (=स० उत्+स्था) का 'उ' भी यही अर्थ प्रकट करता है।

(१०) उप (=निकट, नीचे आदि); जैसे—उपस्थित। कही-कही 'उप' उपसर्ग अपकर्ष भी प्रकट करता है; जैसे—√हस् से उपहास।

(११) नि (=नीचे); इस उपसर्ग का प्रयोग 'उत्' के विपरीत अर्थ मे भी होता है; जैसे—निगमन, निग्रह।

(१२) निर् (निस्, नि, आदि भी) (=बाहर); यह उपसर्ग सामान्यत 'न' का पर्यायवाची बनता है; जैसे—निष्कलंक, निर्दोष।

(१३) परि (=चारों ओर); जैसे—परिचारक। इस उपसर्ग का प्रयोग उत्कर्ष प्रकट करने के लिए भी होता है, जैसे—परिपूरण।

(१४) प्र (=पहले), प्रमुखता भी प्रकट करता है; जैसे—प्रधान। बहुत मे स्थलो पर इस उपसर्ग के द्वारा अर्थ मे कोई परिवर्तन नही होता, जैसे—प्राप्त (प्र+आप्त)।

(१५) प्रति (=विरुद्ध, ओर, पुनः); जैसे—प्रतिवादी, प्रतिफल।

(१६) वि (=न, पृथकता, विशेषता, आदि); जैसे—वियोग, विवेक, व्यर्थ।

(१७) सम् (=साथ), यह उपसर्ग 'वि' से विपरीत अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे—सयोग, संग्राम। अधिकांश स्थलों पर इस उपसर्ग के कारण अर्थ मे भेद नहीं होता।

(१८) फारसी और अरबी के दो-तीन उपसर्ग हिन्दी संज्ञाओं के साथ प्रयुक्त होते हैं। फारसी तथा अरबी के एक-दो शब्द भी हिन्दी सज्ञाओ के साथ उपसर्ग की भाँति आते हैं; जैसे—बेकाम, गैर हाजिर, आदि।

बारहवाँ अध्याय

क्रिया विशेषण, उपसर्ग, शब्दयोगी, समुच्चय बोधक और उद्गार वाचक

सर्वनामों से बनने वाले क्रिया विशेषण

§६३६. आगे चल कर पाँच सर्वनामों से बनने वाले क्रिया विशेषणो की सूची दी जा रही है। सर्वनामो से बनने वाले इन क्रियाविशेषणो के सम्बन्ध मे §२५५ मे विस्तार से लिखा जा चुका है।

व्युत्पत्ति

§६३७ जिन स्थानों तथा कालवाची क्रिया विशेषणो में ओष्ठ्य स्वर अथवा ओष्ठ्य व्यजन आता है, उनकी उत्पत्ति इन पाँच सर्वनामो के मूल आधार के साथ सं० 'वेला' के योग से हुई है। भोजपुरी के रूपो से यह बात स्पष्ट हो जाती है। 'द' वाले रूपों का उद्भव संस्कृत की 'द' प्रत्यय युक्त रूपावली से हुआ है। यह बात सूची मे दिए गए रूपों से स्पष्ट हो जाती हैं। भोजपुरी की 'जू' वाली रूपावली में सं० के 'योनि' शब्द का विकारी रूप है। इससे जन्म के स्थान अथवा समय का बोध होता है और पुनर्जन्मवाद की ध्वनि निकलती है। मैथिली का 'खाति' वाला रूप सं० 'क्षण' के योग से उत्पन्न हुआ है। मागधी तथा मैथिली के कालवाचक क्रिया-विशेषणो के रूप एहिय, ओहिय, जहिया आदि का सम्बन्ध सस्कृत के परिमाणवाचक शब्दों—'इयत्' आदि से जोडना चाहता हूँ। प्राकृत मे 'इयत्' 'एत्तिओ' रूप धारण कर चुका था।[1] मारवाडी के रूपों मे 'ह' का प्रयोग श्रुति के लिए है, इस 'ह' के कारण वहाँ 'त्त' के लोप के पश्चात् स्वरो मे सन्धि नही हो सकी। अपभ्रश मे सर्वनामो से बनने वाले इन क्रिया विशेषणों का प्रयोग विकारी एकवचन की तरह स्थान तथा काल प्रकट करने के लिए होता रहा है। अपभ्रंश मे इन कालवाचक क्रिया विशेषणो का अर्थ वही है, जो हिन्दी मे 'इतने मे' आदि का है।

● **स्मरणीय**—हार्नली ने अब, तब आदि की उत्पत्ति अपभ्रंश के परिमाण वाचक सर्वनाम 'एम्व' आदि के अधिकरण कारक के एकवचन के रूप 'एम्वहि' आदि से मानी है। अपभ्रंश मे परिमाण वाचक सर्वनामों के रूपों का प्रयोग स्थान तथा कालवाची क्रिया विशेषणो के रूप में होता रहा है।[2] किन्तु मैं 'बेरा' वाले आधुनिक रूपों के कारण ऊपर की व्युत्पत्ति को ही उचित मानता हूँ।

---

[1] देखिए, हार्नली—कम्प० ग्राम० §§४३८ (७), ४६९।

[2] वही।

सूची २४. सर्वनामों से बननेवाले क्रियाविशेषण

समयवाचक

	निकटवर्ती संकेत वाचक	दूरवर्ती संकेतवाचक	सम्बन्ध सूचक	अन्योन्य सम्बन्धी	प्रश्नवाचक
सार्वनामिक आधार	अ, इ, ई, ए, य	उ, अ, ओ, व	ज, जि, (य)	त ति	क, कि
स्त० हि०	अब	नही[2] है	जब	तब	कब।
ब्रज	अबै, अबे[1]	नही	जबै, जौ, जद।	तबै, तौ,[1] तद।	कबै, कद।
मारवाड़ी	अबै, अमै	नही	जद, जिद। जदै, जदी।	सम्बन्ध सूचक का प्रयोग	कद, कदै, कदी।
मेरवाडी	अबै, अमै	नही	जदू, जदा, जधा।	,,	कदू, कदा, कधा।
नेपाली	ऐल्हे.	नही	जैल्हे।	तैल्हे।	कैल्हे।
भोजपुरी	एहबेरा, एबेर. एहजून.	ओहबेरा। ओहजून।	जेहबेरा, जेबेर। जेह जून।	तेहबेरा, जेबेर। तेह जून।	केहबेरा, कबे। केहजून।
मागधी	अखनी नही है	नही है न्ही है	जखनी। जहिया।	तखनी। तहिआ।	कखनी। कहिआ।
मैथिली	एखनि, एखन एहिया. अवे, अबै, आबै	ओखनि, ओखन। ओहिया। नही	जेखनि, जखन। जहिया। जबे, जबै।	तेखनि, तखन। तहिया। तबे, तबे।	केखनि, कखन कहिया। कबे, कबै।
सस्कृत	नही है	नही	यदा	तदा	कदा।

---

१. सहारनपुर जिले में 'यौब' भी।

२. जहाँ किसी दूरवर्त्ती संकेतवाचक की आवश्यकता होती है, उसके स्थान पर अन्योन्य सम्बन्ध सूचक सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है।

सूची २५. सर्वनामों से बननेवाले क्रियाविशेषण

	स्थान वाचक				
	निकटवर्ती संकेत वाचक	दूरवर्त्ती संकेत वाचक	सम्बन्ध सूचक	अन्योन्य सम्बन्धी	प्रश्न वाचक
सार्वनामिक	अ, इ, ई, ए, एँ, य	उ, ऊ, ओ	ज, जि (य)	त, कि	क, कि
स्तरीय हिन्दी	यहाँ	वहाँ	जहाँ	तहां	कहाँ
ब्रज	इत, इतै, ईनै यहाँ, याँ	उत वहा, वां	जित जहाँ, जा	तित तहा, तां	कित, कत। कहां, कां
मार०	अठै, अठी, ईंठै	उठै, उठी, ऊंठै	जठै, जठी	सम्बन्ध सूचक का प्रयोग	कहै, कठी, कैंठै, कोठै
मेरवाड़ी	अडै, अडी आडै, आडी	वठै, वठी, वडै, वडी वाडै, वाडी	जडै, जडी जाडै, जाडी	,,	कडै, कडी, काडै, काडी
बुंदेलखंडी	इतै, या, याञी	उतै, वा, वाञी	जितै, ज्यां, ज्याञी	तितै, त्या, त्याञी	कितै, क्या, क्याञी
कुमाऊंनी	या	वां	जां	ता	कां
नेपाली	याहां	वाहा	जाहा	ताहा, त्याहा	काहा
पुरानी बैस०	इहा, ईंहा	उहा, ऊहा	जह, जेहा, जहवा, जहिआ	तह, तहउ, तहवा, तहिआ	कहं
अव०	एठिया, एठियन हियां, ईआ	ओठिया, ओठियन हुआं	जेठिया. जेठियन	तेठियां, तंठियन	केठिया, केठियन
रेवा०	इहंवां	उहवा	जहवाँ	तहवा	कहवा
भोजपुरी	इहवाँ, एठेन एहिला, हियां एठां, एठाइँ	ऊहवा, ओठेन ओहिजा, हुआं ऊठा, ऊठाइँ	जंहवां, जेठेन, जेहिजा जेठां, जेठाइँ	तंहवां, तेठेन, तेहिजा तेठां, तेठाइँ	कहवा, केठेन, केहिजा केठा, केठाइँ
मागधी	ईठवां इठबां, हिआ	ऊटमा, उठमा ऊठवा, हुआं	जेठमा, जेठवां	तेटमा, तेठवा	केठमा केठवा
मैथिली	ऐंठियां,[1] इहां, हियां एतय, एते[1]	वैठियां, उहा, हुआ ओतय, ओते	जैठिया, जहा जतय, जते	तैठियां, तहाँ ततय, तते	कैंठया, कहाँ, कतय, कते
संस्कृत	अत्र, इह	नही	यत्र	तत्र	कुत्र

---

[1] तिरहुत में मुझे ये रूप भी मिले—येईठान, ओईठान, जेईठान, तेईठान, केईठान। इन रूपों का उल्लेख ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'मैथिली ग्रामर्' भी में नहीं किया है।

सूची २६ : सर्वनामों से बननेवाले क्रियाविशेषण

दिशासूचक

	निकटवर्ती संकेत वाचक	दूरवर्ती संकेत वाचक	सम्बन्ध सूचक	अन्योन्य सम्बन्धी	प्रश्न वाचक
सार्वनामिक तत्व	इ ई, ए, ऍ, य	उ, ऊ, ओॅ, व	ज, जि (य)	त, ति	क, कि
स्त० हिन्दी	इधर, इदर[1]	उधर, उदर।	जिधर।	तिधर	किधर।
मेरवाड़ी					खीये दखें[5]।
रेवाई	एहे कैत[2]	ओहो कैत।	जेहे कैत।	तेहे कैत।	केहे कैन।
भोजपुरी	एने[3], एहर।	ओने,[3] ओहन	जेने, जेहर।	तेने, तेहर।	केने, केहर।
मागधी	एन्ने, एहर।	उन्ने, उहर।	जेन्ने, जेहर।	तेन्ने, तेहर।	केन्नै, केहर।
मैथिली	इन्ने, इनें, एन्ने, एने इन्दे[3] इन्द०। ईम्हर[4]।	उन्ने, ओने, उनें। उन्दे[3], उन्द०। ऊम्हर।	जिन्ने, जिने। जिन्दे। जिन्द०। जेम्हर।	तिन्ने, तने। तिन्दे। तिन्द०। तेम्हर।	किन्ने, कने। किन्दे। किन्द०। केम्हर।

---

१. अधर भी सुना जाता है।

२. कयोत और कैती भी; कैत के लिए 'मुंह' शब्द का प्रयोग भी होता है।

३. विकल्प से 'ह' पहले जोड़ा जाता है।

४. फैलन ने 'इधर' के निम्नलिखित पूरबी रूप भी दिए है—एट्ठे, ओहोर, हुमर। इस वर्ग के अन्य रूपो के लिए भी पर्यायवाची शब्द है, किन्तु वे मुझे नहीं मिले। देखिए, हिन्दुस्तानी—इंग्लिश डिक्शनरी।

५. फैलन ने 'इधर' के निम्नलिखित पछाँही रूप दिए है—इंधें और ईमाई; उधर के उंधें या ऊँधे। देखिए, हिन्दुस्तानी इंग्लिश डिक्शनरी।

सूची २७ : सर्वनामों से बननेवाले क्रियाविशेषण

रीति सूचक

	निकटवर्त्ती सकेत वाची	दूरवर्ती सकेतवाचक	सम्बन्ध सूचक	अन्योन्य सम्बन्धी	प्रश्न वाचक
सार्वनामिक तत्व	अ, इ, ई, ए, ऍ, य	उ, ऊ, ओ, औ, व	ज, जि (य)	त, ति	क, कि
स्त० हिन्दी	यूं	×	ज्यूं	त्यूं	क्यूं
ब्रज	यौ, यो	वौ, वों, वूं।	ज्यौ, ज्यों, जौ। जों, जूं, जिय।	त्यौ, त्यो। तौं, तों।	क्यौ, क्यो।
मारवाड़ी	ऊं, इऊ	वूं	जिऊं	सम्बन्धवाची प्रयुक्त	किऊं
मेरवाडी	ईकर, ईगा	वोंकर, वींगा।	जीकर, जीगा।	,,	कीकर, कीगा।
नेपाली	यसोरि	उसोरि	जसोरि	तसोरि	कसोरि
पुरानी बैसवाड़ी	इमि	×	जिमि	तिमि	किमि[1]
मैथिली	एहनाइ, एहिना. एहन, एना[2].	ओहनाइ, ओहिना। ओहन, ओना।[2]	जेहनाई, जहिना। जेहन, जेना।	तेहनाइ, तहिना। तेहन, तेना।	केहनाइ, कहिना। केहन, केना[3]।
सस्कृत	इत्थम्	×	यथा	तथा	कथा

---

[1] चन्द ने इम और केम का प्रयोग किया है।

[2] विकल्प से 'ह' आरंभ में जोड़ा जाता है।

[3] भोजपुरी तथा मागधी में ढंग प्रदर्शित करने के लिए इन क्रिया-विशेषणों का एक अन्य वर्ग भी है।

§६३८ सर्वनामो से बनने वाले जिन स्थानवाची क्रियाविशेषणों में 'त' आता है, उनकी व्युत्पत्ति इस व्याकरण के प्रथम संस्करण में संस्कृत के 'त्र' से बनने वाले स्थानवाची क्रिया-विशेषणों से दी गई थी। हिन्दी सम्बन्धित बोलियों मे 'त' वाले क्रिया-विशेषण इस प्रकार हैं—इतइ, उत, जतय, आदि। किन्तु अब मै हार्नली के इस मत का समर्थक हूँ कि इन सब का उद्‌भव अपभ्रश के परिमाण वाचक सर्वनाम 'एत्तिओ' आदि के अधिकरण कारक के एकवचन के रूप 'एत्तहे' आदि से हुआ। अपभ्रश मे परिमाण वाचक सर्वनामो के अधिकरण कारक के एकवचन का रूप क्रिया-विशेषण की तरह प्रयुक्त हुआ भी है।[1] यह व्युत्पत्ति कण्ठ तालव्य संयुक्त स्वर वाले दीर्घ रूप पर भी लागू हो सकती है। मेरी पहली व्युत्पत्ति इन दीर्घ रूपो के सम्बन्ध मे उचित नहीं थी। सर्वनामों से बनने वाले जिन स्थानवाची क्रिया-विशेषणों मे 'हाँ' अथवा 'आ' आता है, उनकी व्युत्पत्ति सर्वनामों के आधार रूप के साथ 'स्थान' शब्द के योग से हुई है। हार्नली ने इन रूपो का उद्‌भव सर्वनामो के आधार के साथ 'प्राकृत' की विकारी विभक्ति 'ह' के योग से माना है। मैं हार्नली की इस व्युत्पत्ति की अपेक्षा 'स्थान' वाली व्युत्पत्ति को अधिक उचित मानता हूँ।[2] 'स्थान' से सम्बन्धित व्युत्पत्ति के प्रसंग मे मै मारवाड़ी के 'ठ' वाले 'अठई' आदि रूपों का उल्लेख करना चाहता हूँ। इन सब का विकास भी 'स्थान' से हुआ है, किन्तु मेवाड़ी के 'डै' वाले रूपो पर यह व्युत्पत्ति लागू नही होती। इस सम्बन्ध में बीम्स ने उड़िया के 'ए आड़े' और मराठी के 'इकडे' का उल्लेख किया है। 'इकडे' के सम्बन्ध मे बीम्स का विचार है कि सर्वनाम के आधार रूप 'इ' के साथ स० कट के अधिकरण कारक के एकवचन 'कटे' के विकसित रूप 'कड़े' के योग से यह रूप बना है। मेवाडी के 'डै' वाले स्थानवाची क्रियाविशेषणों पर भी यही बात लागू होती है।[3] अवधी के 'एँठिय', भोजपुरी के 'इहवां' जैसे दीर्घ रूपो की व्युत्पत्ति सर्वनामों के आधार रूप के साथ अधिकरण कारक के एकवचन मे प्रयुक्त 'ठिकाने' के योग से मानी जानी चाहिए। 'ठिकाना' शब्द स्थान से मिलता-जुलता है, किन्तु इसका उद्‌भव प्राकृत की √थिक (<स० √स्थ) से हुआ है। हिन्दी मे 'ठिकाना' का अर्थ है स्थान, आश्रय आदि। इस सादृश्य के कारण ही इन क्रिया-विशेषणों की व्युत्पत्ति 'ठिकाने' और 'स्थाने' के योग से माननी उचित होगी। प्राकृत प्रत्यय के योग से इन रूपो की व्युत्पत्ति मानना ठीक नहीं है। प्राकृत के प्रत्यय जुडने से भोजपुरी मे इन क्रिया-विशेषणो का एक अन्य वैकल्पिक रूप विकसित हुआ है—एँह्जिा, ओहिजा आदि। इन रूपों का विकास सर्वनामों के आधार रूप के साथ प्राकृत के प्रत्यय जुडने के पश्चात् फारसी के 'जा' से हुआ है।

§६३९. दिशा सूचक स्थानवाची क्रियाविशेषणों—इधर, उधर आदि तथा विभिन्न बोलियो में प्रयुक्त इनके पर्यायों की व्युत्पत्ति देना सरल नही है। हार्नली ने इनका विकास प्राकृत के परिमाणवाचक सर्वनाम एदह (√सं० ईदृश) से उद्‌भूत 'इदह' से माना है। हार्नली ने 'इदह' के साथ अधिकरण कारक की पुरानी विभक्ति 'र' जोड़ कर 'इधर' आदि की व्युत्पत्ति दी है। बीम्स ने इन रूपो का सम्बन्ध मराठी के 'म्होर' √सं० मुख से जोड़ा है। वर्ण विपर्यय तथा अन्य कारणो से म्होर>म्हर>न्हर>धर>हर। म्हर, धर आदि के योग से मैथिली मे 'तेम्हर' 'तेन्हर' और स्त० हि० 'इधर', भोज० 'एहर' आदि का उद्‌भव हुआ।[4]

---

[1] हार्नली—कम्प० ग्राम०, पृ० ३१३। [2] वही।

[3] बीम्स—कम्प० ग्राम०, पृ० ३१५।

[4] देखिए, बीम्स : कम्प० ग्राम०, खंड ३, पृ० ६१। हार्नली ने 'म्हर' 'न्हर' वाले रूपों की उत्पत्ति प्राकृत के परिमाणवाचक विशेषण 'एम्व'<वैदिक सं० ईवत् के विकारी रूप एव, एम, एव के साथ 'र' प्रत्यय के योग से मानी है। देखिए, उनकी कम्प० ग्राम०, पृ० ३०८।

वास्तविक बात यह है कि इन रूपों की व्युत्पत्ति अब तक ज्ञात नही है। मैथिली के एने, एँने, इने आदि की उत्पत्ति स्पष्टतया प्राकृत के परिमाणवाचक सर्वनाम 'एम्व' के अधिकरणवाची रूप 'एंवहिं' आदि से हुई है। प्राकृत मे 'एवहिं' आदि का उपयोग सर्वनामवाची विशेषण के अतिरिक्त क्रियाविशेषण के रूप में भी हुआ है। बंगाली मे इनके बीच का रूप 'एमने' (=यहाँ, इधर) प्रयुक्त होता है।

रीति सूचक

§६४०. मै इस विषय मे हार्नली का समर्थक हूँ कि प्राकृत के 'एम्व' सर्वनाम के अधिकरण कारक के रूप से हिन्दी की बोलियो मे रीति सूचित करने वाले सार्वनामिक क्रियाविशेषणों—इमि, यूं—आदि का विकास हुआ है। 'एम्व' के अधिकरण कारक के रूप 'एवइ' अथवा 'एवइं' से इनका सहज विकास हुआ। सब से पहले 'इमि', 'इन' आदि का वर्ग, फिर मारवाड़ी के 'इउँ, 'उ' आदि और स्त० हि० के 'यूं' आदि की उत्पत्ति हुई। मैथिली के एँहनाइ, एहना, एहन, एना आदि की उत्पत्ति के बारे मे मेरा विचार है गुणवाची सार्वनामिक विशेषण के अधिकरण कारक के एकवचन से इनकी उत्पत्ति हुई। निकटवर्ती सर्वनामवाची विशेषण के रूप उदाहरण के लिए दिए जा रहे हैं, जिससे इनका विकास-क्रम जाना जा सके—सं० ईदृश:>प्रा० अइसो अथवा प्राकृत के स्वार्थे 'ना' (ला) प्रत्यय के योग से 'अइसना', एहना, एहन, एना। 'एँहनइ' का अन्त्य 'इ' सम्मवत अधिकरण की विभक्ति है, किन्तु इस 'इ' के सम्बन्ध मे अधिक संभावना इस बात की है कि यह 'इ' अवधारणार्थक अव्यय 'हि' का अवशिष्ट अश है। एँहनाइ=स्त० हि० ऐसा ही। इस वर्ग के अन्य शब्दों की व्युत्पत्ति इसी ढंग से की जा सकती है। मारवाड़ी मे प्रयुक्त 'कर' और 'गा' प्रत्यय का विकास क्रमश. सं० √कृ और √गम् से हुआ है।

क्रियाविशेषणों के साथ अवधारणार्थक अव्यय

§६४१. सूचियों मे सर्वनामो से बनने वाले जो क्रिया-विशेषण दिए गए है, उन सभी के साथ अवधारणार्थक अव्यय 'ही' अथवा 'ई' जोड़ा जा सकता है। सामान्यतया 'ई' का प्रयोग उन रूपों के साथ होता है, जिनका अन्त्य स्वर 'आँ' है। उदाहरण—अभी (अब +ही), तभी (तब+ही), कभी (कब+ही) यहीं (बहुत कम स्थलों पर 'यहाँ ही') कही, यूही।

क. अवधारण के लिए बोलियों मे हू, ऊ अथवा ऊँ का प्रयोग भी होता है; जैसे—ब्र० अबहू=अभी, कहूँ=कही, क्यों हूँ=क्यों ही; 'कभी' तथा रामायण का 'काऊ'=कभी, कतहुँ=कही। अव० जौहू=जब ही, आदि। मारवाड़ी मे 'कभी' के स्थान पर 'कदे' आता है। नेपाली में अवधारणार्थक 'ही' अथवा 'हि' के 'ह' का लोप होता है और सन्धि के कारण अन्त्य 'ऐ' का प्रयोग किया जाता है; जैसे—कैल्हयै=कभी, नजिकै=नजीक ही, आदि।

क्रियाविशेषणों के साथ परसर्ग का प्रयोग

§६४२. क्रियाविशेषणों की रचना मूलत. संज्ञाओ के योग से हुई है, अतः उनके साथ परसर्ग का उपयोग होता है। परसर्ग के कारण उनसे भिन्न-भिन्न प्रकार के क्रियाविशेषणिक तात्पर्यों की अभिव्यक्ति होती है।

उदाहरण—'से' परसर्ग के साथ अब से, जब से, कब से, यहाँ से, वहाँ से, कहाँ से; **'को'** परसर्ग के साथ—कहाँ को, **'का'** परसर्ग के साथ—अब का, कहाँ का, **तक, तलक** और **लौं** आदि के साथ—अब

तक, जब तक, तब तक, कब तक, यहाँ तक, जहाँ तक, वहाँ तक। मारवाडी में 'अब तक' के स्थान पर 'हुतौं' का प्रयोग किया जाता है।

क. अवधारणार्थक रूपों के साथ भी परसर्ग जोड़े जाते हैं; जैसे—अभी से, यही का, वहीं से।

सर्वनामों से बनने वाले क्रियाविशेषणों का संयोजन

§६४३. कहीं एक ही क्रियाविशेषण दो बार दुहराया जाता है, और कही एक क्रिया के विशेषण के साथ दूसरे क्रियाविशेषण को समासित करते हैं। इस प्रकार के संयोजन से मूल अर्थ में अन्तर पड़ता है।

(१) कुछ को दोहरा कर समासित करने से सार्वभौमता, वितरण अथवा अनिश्चित काल तक चलने वाली पुनरावृत्ति का बोध होता है। अन्योन्य सम्बन्धी सर्वनामों से बने 'तब-तब' के साथ 'जब-जब' और 'जहाँ-जहाँ' के साथ 'तहाँ-तहाँ' आते हैं। अन्य रूप हैं—कभी-कभी; कही-कही।

(२) अनिश्चय व्यक्त करने के लिए अनिश्चयवाचक सर्वनाम से बनने वाले क्रियाविशेषण के साथ सम्बन्धवाची सर्वनाम से बनने वाला क्रियाविशेषण जोड़ते है; जैसे—जब कभी; जहाँ कही।

(३) विशेष प्रकार के अनिश्चय को व्यक्त करने के लिए दोहराये गए क्रियाविशेषणों के मध्य 'न' का प्रयोग किया जाता है। सवर्गीय दो क्रियाविशेषणों के मध्य भी समान अर्थ मे 'न' का प्रयोग होता है; जैसे—जब न तब, कभी न कभी, कहीं न कहीं।

(४) सम्बन्ध सूचक सर्वनाम से बने क्रियाविशेषण के साथ सम्बन्ध सूचक परसर्ग जोड़ कर अन्योन्य सम्बन्धवाचक सर्वनाम से बने क्रियाविशेषण का प्रयोग किया जाता है; जैसे—ज्यौ कै त्यौ।

§६४४. 'यूँ' के स्थान पर सम्बन्ध सूचक सर्वनाम से बने क्रियाविशेषण के विकारी रूप 'ऐसा' का प्रयोग होता है। देखिए १२ वी सूची।

क. सं० एवम् (=स्त० हि० यूँ) का प्रयोग संस्कृत वाक्यांशो मे होता है; जैसे—एवमस्तु।

ख. यदि सर्वनामों से बनने वाले क्रियाविशेषण के पूर्व 'चाहे' (√चाहना के संभाव्य भविष्य काल में तृतीय पुरुष के एकवचन का रूप) का प्रयोग हो तो उससे अनिश्चय प्रकट होता है; जैसे—चाहे जितना पड़ा हो।

अन्य क्रियाविशेषण

§६४५. ऊपर दिए गए क्रियाविशेषणों के अतिरिक्त भी बहुत से क्रियाविशेषण प्रयोग में लाए जाते हैं। इनमें से कुछ तो संज्ञा के अधिकरण कारक के एकवचन से बने हुए रूप हैं। नीचे जो सूची दी जा रही है, उससे प्रचलित क्रियाविशेषणों का बहुत कुछ परिचय मिल सकता है।

कालवाची क्रियाविशेषण

मुख्य कालवाची क्रियाविशेषण इस प्रकार हैं—

आगे (<सं० अग्रे), बोलियों में—अगार, अगारू, आगू; अगु, आगै, नेपाली—अघि।

आज (<सं० अद्य), बोलियों में—अज, अजु, आजु—अज्जबा।

कल (<सं० कल्य), बोलियों में—काल, कालि, काल्हि, काल्ह, कल्ह।

तड़के।

तुरन्त, तुरत (<सं० '√त्वर' का वर्तमान कालिक कृदन्त)।

जानो (√जानना; विधि, द्वितीय पु०, एक व०), ब्र० जानौ, जानहु; रामायण में—जनु, जानिबी।

झट (<स० झटति) बोलियो मे—चट। झटपट (<स० √झट + √पट का भूतकालिक कर्तृवाच्य कृदन्त 'पट्य'), भी।

ठीक (<सं० √स्था), अधिक निश्चय के साथ द्वित्व किया हुआ रूप—**ठीकठाक** भी।

दैवी (<सं० √दैव)।

धीरे (<सं० √धृ)।

निपट (√सं० नि + पद् ?)।

पैदल (<सं० पद)।

बहुत (<सं० बहु), बोलियो मे प्रचलित रूपान्तरों तथा पर्यायों के लिए देखिए, §३३८।

बेग (<सं० वेगे), बोलियों मे—बेगि।

मानो (√मानना, विधि, द्वि० पु०, एक व०), बोलियो मे—मानौ, मानहु, मानु।

लगातार (√स० लग)।

सच (√स० सत्यम्); अधिक बल देने के लिए—**सचमुच**।

सेंत, बोलियो मे—सेंति, अधिक बल देने के लिए—**सेंतमेंत**।

हौले, बोलियों में—हौरे।

क. नीचे लिखे क्रियाविशेषणों का प्रयोग केवल बोलियों मे होता है—

गढ० पण्डो अथवा पाण्डो (=जल्दी), मुआटे (=धीरे), सुठि (=सं० सुष्ठु); और रामायण मे—बरु (=स० वरम्)।

ख. √करना के यौगिक कृदन्त 'करि' का प्रयोग विशेषण के रूप मे किया जाता है। इस स्थिति मे 'करि' का अर्थ होता है 'ऐसा'; जैसे—निज जन्म सुफल **करि** लेखौ। ब्रज० में प्रयुक्त 'कै' भी इसी अर्थ मे प्रयुक्त होता है; जैसे—मनुष्य कृष्ण देव **कै** मानै।[1]

ग. रीति सूचित करने के लिए संस्कृत के निम्नलिखित तत्सम शब्द क्रियाविशेषण के रूप मे प्रयुक्त होते है, जैसे—अकस्मात् (=अ + कस्मात्), अति, अत्यन्त, अधिक, अर्थात्, आनन्देन (संस्कृत मे आनन्द शब्द का तृतीया के एकवचन का रूप, पुंल्लिंग), केवल, निरन्तर, परस्पर, यथा, तथा, वृथा, शीघ्र, सहज (शाब्दिक अर्थ—साथ उत्पन्न होने वाला, किन्तु प्रचलित अर्थ सरलता से)। 'धा' से बनने वाले संस्कृत क्रियाविशेषण प्रकार को प्रकट करते है; जैसे—रामायण मे प्रयुक्त 'नवधा' शब्द।

घ. संस्कृत के अव्यय 'इव' का उल्लेख यहाँ होना चाहिए। इसका प्रयोग प्रत्यय की भाँति भी होता है। इसका प्रयोग नित्य सम्बन्धित संज्ञा के पश्चात् होता है, जैसे—हरिजन इव।

स्वीकारात्मक तथा नकारात्मक क्रियाविशेषण

स्वीकारात्मक तथा नकारात्मक क्रियाविशेषण

हाँ, हौ और हौं, प्रचलित स्वीकारात्मक क्रियाविशेषण हैं। बुन्देलखंड के पूर्व मे 'तौ' (=हाँ) भी प्राय: सुनाई देता है। स्वीकृति के लिए 'सही' (फ़ा०) शब्द भी बहुत प्रचलित है। नकारात्मक क्रियाविशेषण

---

[1] इन दोनों उदाहरणों में 'कै' का प्रयोग यौगिक कृदन्त के रूप में ही हुआ है। यहाँ 'कै' का अर्थ है 'करके'।—अनुवादक

है—न, नही, मत, 'मत' का प्रयोग केवल क्रिया के विधिकालिक रूपो के साथ ही होता है। 'नही' का प्रयोग क्रिया के विधि रूप के साथ कभी नहीं होता। 'न' का प्रयोग क्रिया के सभी कालों में होता है।

क. स्वीकृति तथा नकारात्मक क्रिया विशेषण 'जी' तथा 'नहीं' के साथ आदर के लिए 'जी' का प्रयोग होता है;[१] जैसे—जी हाँ तथा हाँ जी; 'क्यों मित्र, विदूषक आये ? जी हाँ आये'।

ख. बोलियों में नकारात्मक क्रियाविशेषण के रूपान्तर हैं—

नही=ब्रज० नाहिं, नाहि, नांही, नाही, नांहिनैं; मारवाड़ी में—नैं; रामायण की बोली में—नहि, नहिं; पूरबी बोलियों के आधुनिक रूप—नाहिन०। अन्य रूपान्तर है—ना, नही, नांई और नाउं।[२]

मत=क० मति और मती, जिन और जिनि भी। पूरबी बोलियों मे स्तरीय हिन्दी की भाँति क्रिया के बिधि रूप के साथ ही जिन=मत का प्रयोग होता है। जिन के अन्य रूपान्तर हैं—जनि, जिनु।

ग. **तो**—बोलियों मे 'तो' के निम्न रूपान्तर प्रयुक्त होते है तौ, तउ, या तऊ। रामायण मे 'तो' के अतिरिक्त 'धौं' भी आता है। 'अब' के साथ 'तो' न आकर नियमित रूप से 'धौं' का प्रयोग होता है। कही-कही 'कि' के पश्चात् भी धौ आता है, जैसे—किधौ अथवा कीधौ।

घ संस्कृत की कुछ संज्ञाएँ और विशेषण भी स्वीकृति के लिए प्रयुक्त होते है; जैसे—अवश्य, रामायण मे—अवसि, निस्सन्देह; बोलियों में—निहचे, निहचै, निहचैं आदि।

अवतरण सूचक क्रियाविशेषण

§६४६. प्रसगानुसार 'अथ' और 'इति' इन दोनों अव्ययों का परिचय यहाँ दिया जा रहा है। हिन्दी-गद्य की पुस्तको के आरंभ में 'अथ' और अन्त मे 'इति' का प्रयोग होता है, उदाहरण के लिए प्रेमसागर के आरंभ में आता है—'अथ कथा आरभः'। प्रत्येक अध्याय के अन्त मे 'इति' का प्रयोग मिलता है। इन दोनों अव्ययों को अग्रेजी मे अनुवादित करना असंभव है। सस्कृत में उद्धरण अथवा अवतरण समाप्त करते समय सदैव 'इति' अव्यय लिखा जाता है। हिन्दी-कविता मे कही-कही इसी आशय में 'इति' का प्रयोग किया गया है; जैसे—रामायण मे—महिमा निगम नेति कहि गाई। 'नेति' का विग्रह होगा—न+इति। गद्य मे प्रयुक्त 'इत्यादि' का प्रथम पद 'इति' है; जैसे—ब्रह्मा, महेश इत्यादि।

फ़ारसी और अरबी के क्रियाविशेषण

§६४७. आधुनिक हिन्दी में यत्र-तत्र फारसी-अरबी के क्रियाविशेषणों का प्रयोग मिलता है। फ़ारसी के क्रियाविशेषण—जल्द या जल्दी; बारहा ('बार' का ब० व०), शायद और इसके तद्भव रूप-सायद अथवा साइद भी, हमेशा और इसके तद्भव हमेश तथा हमेस। (२) अरबी के क्रियाविशेषण–अलबत्ता और इसका तद्भव अलबत, फकत (फक्त), मेरठ के आसपास कली (=खाली), बिल्कुल और याने का प्रयोग होता है।

---

[१] कहावत है—'जी कहो, जी कहलाओ'।

[२] इनकी व्युत्पत्ति के लिए देखिए, §४७२।

§६४८. अव्यय, सज्ञा और क्रियाविशेषण के योग से कुछ वाक्याश बनते है; जैसे—और कही, कभी नही, धीरे-धीरे, नही तो। रामायण मे 'नही तो' के ये रूपान्तर भी मिलते हैं—नाहित, न तु, नत, नतरु, 'क्यो नही' के स्थान पर 'किन' भी प्रयुक्त होता है।

क्रियाविशेषण के रूप में कृदन्तों और विशेषणों का प्रयोग

§६४९. बहुत से विशेषण, विशेष रूप से परिमाणवाचक तथा गुणवाचक विशेषण बिना किसी विकार के क्रियाविशेषण के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं; जैसे—अच्छा, भला, थोड़ा, बडा और ऐसा भी। जैसे—मन ऐसा तडफता है। मारवाडी मे—इथा, इयाइँ=स्त० हि० ऐसे, ऐसे ही।

§६५०. यौगिक कृदन्तो और अग्रेजी के क्रियाविशेषणों में बहुत सादृश्य है, जैसे—जानके, मिलके आदि। संज्ञा, विशेषण और सख्यावाचक शब्दो के साथ√करना के यौगिक कृदन्त रूप 'करके' के योग से क्रियाविशेषणो की रचना होती है; जैसे—परिश्रम कर के, मुख्य कर के, एकएक कर के, नीचे मुँह करके। 'वाक्य रचना' सम्बन्धी अध्याय मे अन्य उदाहरण दिए जाएँगे।

अवधारणार्थक अव्यय

§६५१. अन्त मे अवधारणार्थक 'ही' अव्यय पर विचार किया जाता है, इसका प्रयोग किसी भी सज्ञा के साथ किया जा सकता है। अग्रेजी मे 'ही' का आशय जस्ट (Just) वेरी (Very), आदि शब्दो से व्यक्त किया जाता है। कभी-कभी स्वर पर बल देने से अवधारण व्यक्त होता है।

क. यह, वह, प्राय., जे, और 'सो' इन सर्वनामो के साथ 'ही' की 'ई' शेष रहती है और सर्वनाम का अंश बन कर प्रयुक्त होती है, जैसे—यही, वही। सर्वनाम के बहुवचन वाले रूप के साथ 'ही' के प्रयोग के सम्बन्ध मे देखिए §२६८। सर्वनामो से बनने वाले क्रियाविशेषणो के साथ अवधारणार्थक 'ही' के सम्बन्ध मे देखिए, §६४१। उदाहरण हैं—मैं यह कहता ही था, दो ही आये, मेरा एक ही घोड़ा है; उसने यही बात कही। 'सब ही' के स्थान पर सामान्य रूप से 'सभी' लिखा जाता है, जैसे—रूपवती को सभी सोहता है।

ब्रजभाषा मे 'ही' अथवा 'ई' के स्थान पर 'हू' अथवा 'ऊ' का प्रयोग भी होता है। अन्त्य 'ई' तथा 'ऊ' ह्रस्व 'इ' तथा 'उ' मे परिवर्त्तित होते हैं, अन्त्य स्वर के साथ इनकी सन्धि होती है। उदाहरण के लिए पुरानी बैसवाड़ी का 'एकौ' (<एकहु); पाली मे 'एकै' (<एकही)।

ग. बोलचाल की मारवाड़ी मे 'ही' के स्थान पर 'इज' और 'ज' प्रयुक्त होते हैं; जैसे—म्हूंज=मैं ही; बीज (उसी ने); ओज छो=वही था, आदि।

शब्दयोगी

शब्दयोगी : उनकी प्रकृति

§६५२. संज्ञा के कारको को व्यक्त करने वाले परसर्गों और कुछ अन्य शब्दो को छोड़ कर हिन्दी में वस्तुतः शब्दयोगी बच नही जाते। अंग्रेजी के पूर्वसर्गों का पर्यायवाची बता कर नीचे जो शब्द दिए जा रहे है, वे वस्तुतः शब्दयोगी अव्यय न होकर विकारी एकवचन मे प्रयुक्त सज्ञाएँ हैं। जब इन शब्दो का प्रयोग स्वतत्र रूप से विकारी एकवचन मे होता है तो इनके साथ मे, पर, आदि परसर्ग भी जोड़े जाते हैं। इस प्रकार के शब्दो मे सज्ञापन है, अतः ये जिन शब्दों से सम्बन्धित होकर प्रयुक्त होते हैं, उनके साथ प्रयुक्त होने

वाला सम्बन्ध कारक का परसर्ग भी विकारी बन कर प्रयुक्त होता है। शब्दयोगी की भाँति प्रयुक्त सामने, पीछे आदि प्राय: सब-के-सब पुल्लिगवाची है, अत: इनसे पहले सम्बन्ध कारक का परसर्ग 'के' प्रयुक्त होता है। इस प्रकार के कुछ शब्द स्त्रीलिगवाची है, अत. उनके पूर्व सम्बन्धकारक का परसर्ग 'का' 'की' मे परिवर्तित होता है। कुछ शब्दयोगी ऐसे है, जिन्हे क्रियाविशेषण माना गया है, किन्तु ये शब्दयोगी अव्यय की भाँति भी प्रयुक्त होते है, अत यहाँ उनका उल्लेख इसी रूप मे किया गया है।

शब्दयोगियों के साथ परसर्ग, विकारी रूप के एकवचन में

§६५३ नीचे जो शब्द दिए जा रहे है, वे परसर्ग सहित अथवा परसर्ग रहित दोनो भाँति से प्रयुक्त होते है—

तले (<स० तल), ब्र० तर, तरे।
पार
पास, रामायण मे—पइ, पाहि, पाहि।
पीछे, मार० पाछो, ने० पछि।
बिन या **बिना** (<स० विना), ब्र० बिनु, बिनू।
बीच (<स० और पश्चिमी हिन्दी विच्)।
लगि (<स० लगित्व), ब्र०, ने० लागि।
संग (=स० सम्+गम्)।
समेत।

क. सहित—यह सस्कृत का विशेषणवाची शब्द है। हिन्दी के समासित शब्दो से यह द्वितीय पद मे प्रयुक्त होता है, जैसे—प्रेम सहित। कहीं-कहीं 'सहित' का प्रयोग परसर्ग अथवा शब्दयोगी के रूप मे भी होता है, जैसे—गाड़ियो सहित।

ख पास—इसका प्रयोग सज्ञा की भाँति भी होता है; रामायण मे इसका प्रयोग देखा जा सकता है—सवारिहु चारिहु पासा।

सम्बन्ध कारक के परसर्ग के साथ प्रयुक्त शब्द-संयोगी

§६५४. निम्नलिखित शब्दयोगियों का प्रयोग पूर्ववर्ती सज्ञा के सम्बन्ध कारक के परसर्ग 'के' के साथ होता है—

आगे—बोलियो में प्रयुक्त 'आगे' के रूपान्तरो के लिए देखिये §६४५ (१)।
आस-पास
ऊपर (=स० उपरि), मार० ऊपरै (दे० §१७२)।
ढिग (=स० दिश)।
निकट
नीचे (√स० नीच), ब्र० नीचू, गढ़०-का 'निस्सो' वास्तविक परसर्ग की भाँति संज्ञा के अनुसार विकारी बनता है, जैसे—ईं ढाला निस्सो।
नेरे, नेपाली निर०।
पल्टे और **संतो**।

बाहर, बाहिर, ने० बाइरव।

भीतर, नेपाली भित्र०।

मारे (√मारना का पूर्णता सूचक कृदन्त)।

लिये (√लेना का पूर्णता सूचक कृदन्त), क० लये, ल्ये।

बघेलखंडी में—लाने, लिगा; मै० लैल, लेल।

साथ, नेपाली सित, सञ।

साम्हने, ब्र० साम्हने, साम्हू, समुहे, सोहे, सोहो, मार० हामो; ने० सामु और मुख्यांजी।

हां (<स० स्थाने), **तई** या **ताईं** ='पास' और कहीं-कहीं 'को'।

क नाई, नाईं का प्रयोग करते समय पूर्ववर्ती संज्ञा के साथ सम्बन्धकारक के स्त्रीलिंगवाची परसर्ग 'की' का प्रयोग होता है।

ख. समान, 'समान' का प्रयोग करते समय पूर्ववर्ती संज्ञा के साथ सम्बन्धकारक के परसर्ग 'के' का प्रयोग होता है। मैंने एक ऐसा वाक्य सुना जिसमें 'समान' का प्रयोग सम्बन्ध कारक के स्त्रीलिंगवाची परसर्ग 'की' के साथ किया गया था; जैसे—'स्त्री माता की समान'।[1]

बोलियों में प्रयुक्त शब्दयोगी अव्यय

§६५५. बोलियों में प्रयुक्त शब्दयोगी अव्यय इस प्रकार हैं—कन्नौजी तथा कुछ अन्य बोलियों मे—कने (<सं० कर्णे)=स्त० हि० पास, 'कने' से पहले परसर्ग का प्रयोग नहीं होता, सम्बन्धित शब्द विकार ग्रहण करता है; सुधा (<सं० सार्द्धम्) =स्त० हि० साथ; रामायण मे—सरिस (<स० सदृश); काजे= स्त० हि० कारण, मावै=स्त० हि० लिए। पूरबी हिन्दी में—वरे=स्त० हि० लिए; मारवाड़ी में—हेठौं= स्त० हि० नीचे; नेपाली में—मुनि, मनि (नीचे), थाजि (पास); तिरव, पट्टि (ओर); बाहिक (अतिरिक्त), माजि (मे); झै (जैसा), माथि, ऊभो (ऊपर); मयठौ, कां (निकट)।

§६५६ हिन्दी मे सम्बन्धकारक का परसर्ग परवर्ती शब्द के लिंग तथा वचन को स्वीकार करता है अर्थात् का, की अथवा के का प्रयोग परवर्ती शब्द के ऊपर निर्भर रहता है, किन्तु राजपूताना की बोलियो मे वाक्य के 'उद्देश्य' के अनुसार सम्बन्ध कारक मे प्रयुक्त शब्द के लिंग-वचन का निर्धारण होता है; जैसे—ऊ म्हां पाछो बैठ्यो है =स्त० हि० वह मेरे पीछे बैठा है, किन्तु—वा था पाछी बैठी है, इस दूसरे वाक्य के 'था पाछी' के लिए भी स्तरीय हिन्दी मे 'तेरे पीछे' ही आएगा। 'सुधो' के सम्बन्ध मे लिखी गई टिप्पणी से इसकी तुलना कीजिए (§१७२)।

संस्कृत, फ़ारसी और अरबी के शब्दयोगी अव्यय

§६५७. संस्कृत के निम्नलिखित शब्द हिन्दी मे शब्दयोगी अव्यय की भाँति भी प्रयुक्त होते हैं— अनन्तर, अनुसार, कारण, निमित्त, विरुद्ध (>बिरुद्ध भी), बिपरीत, विषय (>बिषय) (>बिखै भी), समीप, हेतु (हेत)। सस्कृत के कुछ अन्य शब्दों का प्रयोग भी शब्दयोगी अव्यय के समान होता है।

§६५८. आधुनिक हिंन्दी मे फारसी के निम्नलिखित शब्द शब्दयोगी अव्यय के रूप मे प्रयुक्त होते हैं—अन्दर, गिर्द, नज़दीक (>अन्तर्वेद मे नगीच, हिमालय की बोलियो मे—नजीक अथवा नजिक);

---

[1] मारवाड़ी में प्रयुक्त 'समान' के साथ इस वाक्यांश की तुलना कीजिए।

'**नगीच्**' का प्रयोग साहित्य में भी हुआ है, उदाहरण के लिए 'शकुन्तला' का यह वाक्य देखिए—बन के नगीच डेरा करूँगा। 'बाबत' का प्रयोग सम्बन्ध कारक के स्त्रीलिंगवाची परसर्ग 'की' के पश्चात् होता है।

§६५९ हिन्दी भाषी लोग निम्नलिखित अरबी शब्दों का प्रयोग शब्दयोगी अव्यय की भाँति करते है—ऐवज (ऐवज), खिलाफ (खिलाफ), बगैर (बग़ैर), बाद, मुवाफिक (मुआफिक), अन्तर्वेद मे बोलचाल के समय 'मुआफिक' के स्थान पर 'माफित' का प्रयोग करते हैं। अरबी के उपर्युक्त शब्दो के अतिरिक्त वास्ते, सबब, सिवा आदि का प्रयोग भी होता है।

क अरबी के निम्नलिखित शब्द स्त्रीलिंगवाची माने जाते है। इनका प्रयोग 'की' के पश्चात् होता है—खातिर (खातिर), तरफ (तरफ), तरह, निसबत आदि।

समुच्चय बोधक

संयोजक

§६६०. संयोगकारी समुच्चय बोधक के रूपान्तर निम्न प्रकार हैं—

और (<स० अपर), ब्र० औ, अरु, रु, वो।

नेपाली अनि, र; पु० बैं० अवर; बघे० बोर।

भी (स० अपिहि, प्रा० बिहि), मार० बी, ने० पानि।

फिर 'भी' के स्थान पर कही-कही फिर का प्रयोग होता है, पूरबी हिन्दी में 'फिर' के लिए पुन और पुनि (सं० पुनर्) का प्रयोग होता है, ने० फेरि।

विरोध-दर्शक

§६६१ विरोध-दर्शक समुच्चय बोधक है—

परन्तु (=स० परम्+तु), ने० तर।

पर (=सं० परम्), ब्र० पै।

बरन (=स० वरण)=किन्तु।

क उत्तर प्रदेश मे अधिकांश लोग 'परन्तु' के स्थान पर 'लेकिन' (अर०) और 'बरन्' के स्थान पर 'बल्कि' (अर०) का प्रयोग करते है। 'बल्कि' के बिगडे हुए रूप 'बल्किन' अथवा 'बलुक' भी प्रयुक्त होते हैं। कविता तथा वैज्ञानिक लेखो मे 'किन्तु' (=परन्तु) का प्रयोग मिलता है, किन्तु बातचीत में सामान्य जनता इसके स्थान पर 'लेकिन' का प्रयोग करती है। उर्दू जानने वाले हिन्दू 'किन्तु' के स्थान पर 'मगर' (फ़ा०) का प्रयोग करते हैं।

वियोजक

§६६२. 'वा' और '**अथवा**' वियोजक के रूप मे शब्दों अथवा वाक्यांशों का सयोजन करते है। उत्तर प्रदेश की सामान्य जनता 'वा' और 'अथवा' के स्थान पर अरबी के वियोजक 'या' को अधिक पसन्द करती है। अंग्रेजी के नेदर (neither), नार (nor) के लिए हिन्दी में दोनों सम्बन्धित वाक्यांशों में 'न', 'न' का प्रयोग होता है। इसी प्रकार अंग्रेजी के 'एल्स' (else) अथवा 'अदरवाइज' (otherwise) के स्थान पर हिन्दी में 'नही तो' प्रयुक्त होता है। 'नहीं तो' का 'नही' अप्रयुक्त शर्त वाले वाक्यांश का प्रतिनिधित्व करता है। नेपाली में 'नहीं तो' के स्थान पर 'नतरि' अथवा 'होइन भन्ने' वाक्यांशका प्रयोग मिलता है।

क. 'कि' का प्रयोग कहीं-कहीं, विशेष रूप से वैकल्पिक प्रश्नों में, वियोजक के रूप में होता है; जैसे—क्या तुम जाओगे कि नही ?; स० किवा (=किंवा) का प्रयोग साहित्य में वियोजक की तरह किया गया है। नेपाली में 'कि' का प्रयोग सदैव वियोजक अव्यय के रूप में हुआ है।

ख. अंग्रेजी के दो वाक्यों के वियोजक के रूप में जहाँ='व्हेदर' (whether) . . . 'आर' (or) का प्रयोग होता है, वहाँ हिन्दी में दोनो वाक्यांशों में 'चाहे' . . . 'चाहे' (√चाहना का संभाव्य भविष्य काल में तृतीय पुरुष, एकवचन का रूप) प्रयुक्त होता है—जैसे—**चाहे** आवे **चाहे** न आवे। इस उदाहरण के दूसरे 'चाहे' के स्थान पर 'अथवा' का प्रयोग हो सकता है।

ग. अंग्रेजी के वियोजक 'व्हेदर' (whether) . . . आर (or) का प्रयोग जहाँ दो संज्ञाओं के वियोजन के लिए होता है, वहाँ हिन्दी में 'क्या' . . ., 'क्या' का प्रयोग किया जाता है; जैसे—**क्या** स्त्री **क्या** पुरुष। नेपाली में 'क्या . . . क्या' के स्थान पर 'क्ये . . . क्ये' का प्रयोग मिलता है।

शर्त सूचक

§६६३. शर्तसूचक संयोजक **यदि, जदि** तथा **जो** हैं। 'जो' का प्रयोग अधिक होता है। बोलियों में 'जो' के रूपान्तर हैं—'जु' तथा 'जै'। उर्दू जानने वाले हिन्दू 'जो' के स्थान पर 'अगर' (फ़ा०) का प्रयोग करते हैं। नेपाली में 'भन्ये' (भन्या) स्त० हि० जो का प्रयोग सदैव शर्त्त वाले वाक्यांश के अन्त में होता है।

संकेतवाचक समुच्चय बोधक

§६६४. संकेतवाची समुच्चय बोधक है—**तो, यद्यपि, तथापि,** '**यदपि**' और 'तथापि' संस्कृत के तत्सम शब्द हैं। बोलचाल मे 'यद्यपि' के स्थान पर 'जो...भी' और 'तथापि' के लिए 'तो' अथवा 'तो भी' का प्रयोग होता है, जैसे—**जो** आप मुझे त्याग **भी** करें तो. . ।

क. बोलियों में इनके रूपान्तर हैं, तो के रूपान्तर—ब्र० तौ, रामायण मे—तउ, तो; यद्यपि के रूपान्तर रामायण मे—यदपि, जदपि, ब्र० जौइ, ने० भन्ये पनि (सदैव वाक्यांश के अन्त मे प्रयुक्त)। तथापि के रूपान्तर तदपि, ने० तपनि। तौ भी के रूपान्तर—ब्र० तौ हू, मार० तोही, तो पन।

ख पूर्व वाक्य में 'चाहे. .भी' और उत्तर वाक्य में 'पर' अथवा 'परन्तु' का उपयोग हो तो 'चाहे भी' 'यद्यपि' का पर्याय माना जाता है; जैसे—**चाहे** वह मुझे मार भी डाले. ; **चाहे** माल सब जाता भी रहे, पर धर्म रहे। 'चाहे' के स्थान पर 'चाहो' भी प्रयुक्त होता है।

ग. कहीं-कही इसी आशय के लिए 'फिर भी' का प्रयोग करते है। इस स्थिति मे 'फिर भी' अंग्रेजी के 'स्टिल' (Still) का पर्याय माना जाता है।

घ. इसी आशय के लिए उर्दू जानने वाले 'अगर चे' का प्रयोग भी करते हैं।

हेतुवाचक

§६६५. हेतुवाची संयोजक हैं—कि, क्यूकि, ब्र० क्यौंकि, क्योंकि, क्यौंहू; ने० क्यान, क्यान भन्या, किन भन्ये। इस आशय के लिए संस्कृत का 'कारण' शब्द भी प्रयुक्त होता है।

आनुषंगिक

§६६६. प्रचलित आनुषंगिक संयोजक '**तो**' है। नेपाली में 'तो' के स्थान पर 'त' का प्रयोग होता है। पूर्व मे 'जो' तथा परिणामसूचक उत्तर वाक्य में 'सो' अथवा 'तो' भी आनुषंगिकता को व्यक्त करते हैं,

जैसे—वह **जो** आया **तो** मुझे जाना पड़ेगा। कहीं-कही संकेतवाची सर्वनाम 'यह' के विकारी रूप 'इस' के साथ 'से' परसर्ग जोड़ कर आनुषंगिकता व्यक्त की जाती है।

परिणाम-वाचक

§६६७. परिणामवाची समुच्चय बोधक '**कि**' है। अधिक बल देने के लिए सम्बन्ध सूचक सर्वनाम 'जो' के विकारी एकवचन के रूप 'जिस' के साथ अपादान कारक का परसर्ग 'तें' जोड़ते है और इस तरह 'जिसते' का प्रयोग भी परिणामवाचक सयोजक के रूप मे होता है।

क. निषेध सूचक संयोजक केवल नेपाली मे 'कोनिं' है। हिन्दी मे निषेध सूचक सयोजक के स्थान पर 'न' के साथ √होना के सभाव्य भविष्य कालिक तृतीय पुरुष के एकवचन के रूप 'हो' को जोड़ते है और फिर इस 'न हो' के पश्चात् 'कि' का उपयोग किया जाता है; जैसे—'न हो कि..' अथवा 'ऐसा न हो कि ..'। फारसी का 'ताकि' =जिसते का प्रयोग उर्दू मे होता है।

उद्गारवाची अव्यय

सम्बोधन-सूचक

§६६८. सम्बोधन सूचक उद्गारवाची अव्यय हैं—**हे, अहो, ओ**, अथवा **हो, होत, अजी, अबे, अरे, रे**। इनमे से 'हे' आदर सूचक है और अपने से बड़ों के लिए प्रयुक्त होता है। ओ, हो, होत, अहो तथा अजी का प्रयोग समान और कम स्थिति के लोगों के लिए होता है। इनमे से कोई भी सम्बोधनसूचक अव्यय अप्रसन्नता व्यक्त नही करता। अबे, अरे अथवा रे का प्रयोग अप्रसन्नता अथवा अनादर व्यक्त करने के लिए होता है। इन तीनों का अन्त्य 'ए' स्त्रीलिंग में 'ई' बनता है। ओ, हो और रे संज्ञा के पश्चात् तथा शेष सम्बोधन सूचक अव्यय संज्ञा से पहले प्रयुक्त होते है।

भाव - सूचक

§६६९ विभिन्न प्रकार के भावों को निम्नलिखित उद्गारवाची अव्ययो से व्यक्त किया जाता है—

दया के लिए—**अ**; विषाद अथवा खेद के लिए—**आ**, प्रशसा और आश्चर्य व्यक्त करने के लिए—वाह; प्रशंसा के लिए—धन्य; वेदना अथवा दुःख प्रकट करने के लिए—**हाए-हाए, हा-हा**, अहह, **दुहाई, त्राहि** (त्राह भी), **ऊह, ओह**; अधिक प्रशंसा के लिए—**जय जय**, खेद अथवा घृणा प्रकट करने के लिए—धिक्, धिक्कार, दूर, चुप, छी, फिश; कल्याण कामना के लिए—स्वस्ति (सु+अस्ति)। 'स्वस्ति' का प्रयोग सज्ञा के साथ विशेषण के रूप मे भी होता है—स्वस्तिवाचन।

अभिवादन सूचक

§६७०. बड़ो और छोटों दोनो का अभिवादन '**राम-राम**' से किया जाता है। ब्राह्मणों के लिए '**नमस्कार**', मुसलमानों के लोगो के लिए '**सलाम**' और अधिक आदर व्यक्त करने के लिए '**बंदगी**' का प्रयोग होता है।

§६७१. बातचीत के समय कहीं-कही निम्नलिखित उद्गारवाची अव्ययो का प्रयोग किया जाता है। अरुचि प्रदर्शित करने के लिए—**थू-थू, थडी**; प्रशंसा के लिए—**शाबास**, ध्यान आकर्षित करने के लिए—**ल्यो**; आश्चर्य व्यक्त करने के लिए—**उडन छू, हत्तेरी**; वेदना प्रकट करने के लिए—**हाय दैया, हाय मैया**, रामायण से—'**आहि दइय**' भी, उदाहरण के लिए कुब्जा कहती है—**आहि दइय** मैं काह नसावा। 'आहि दइय' का प्रयोग 'शकुन्तला' मे भी हुआ है।

तेरहवाँ अध्याय

वाक्य-विन्यास

§६७२. सर्वप्रथम भाषा के विभिन्न अंगो मे वचन, कारक, लिंग, काल आदि के कारण होने वाले परिवर्तनो का उल्लेख किया जाएगा, फिर प्रस्तुत सामग्री के आधार पर वाक्य रचना की जानकारी दी जाएगी। पहले अश को 'पदव्याख्या' तथा दूसरे अंश को 'वाक्य रचना' का नाम दिया जा सकता है।

प्रथम खंड :-पद व्याख्या

लिग और वचन

लिंग

§६७३. यहाँ लिंग के सम्बन्ध में अधिक लिखने की आवश्यकता नही है। यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि जब किसी सज्ञा का अभिप्रेत उससे भिन्न लिंग मे प्रयुक्त हो रहा है तो उस संज्ञा का प्रयोग वाक्य में अभिप्रेत के लिग के अनुसार होगा। जैसे—'मूल' शब्द पुल्लिगवाची है, किन्तु 'मेरी जीवनमूल' इस शब्द का अभिप्रेत 'शकुन्तला नाटक' मे शकुन्तला है, इसीलिए 'मूल' शब्द स्त्रीलिंग में प्रयुक्त हुआ है।

वचन

§६७४ एकवचन से एक का और बहुवचन से अनेक का बोध होता है। इस सामान्य नियम के तीन अपवाद है—(१) पूरे वर्ग को सूचित करने के लिए साधारणीकरण की दृष्टि से बहुवचन के स्थान पर एकवचन का प्रयोग होता है; जैसे—तजती हैं **पति** को अकुलीनी **नारी**; **सुर नर मुनि** को अति आनन्द हुआ।

क पूरे वर्ग को व्यक्त करने वाले अथवा साधारणीकरण को सूचित करने वाले एकवचन को उस बहुवचन मे पृथक् मानना चाहिए, जो बहुवचन के विकारों की उपेक्षा करता है। यद्यपि शब्द बहुवचन मे होता है, किन्तु उसका रूप एकवचन के समान रहता है, अर्थात् वह बहुवचन का विकार ग्रहण नही करता, जैसे—**मनुष्य** आता है, **मनुष्य** आते हैं। जहाँ बहुवचन की सूचना विशेषण से मिलती है, वहाँ भी संज्ञा बहुवचन के विकार को ग्रहण नही करती, जैसे—थोड़े **दिन** में; ये दोनों **बात** असत्य दिखाई देती हैं; अठारह **पटरानी**।

कही-कही बहुवचन का पता विधेय से भी चलता है, जैसे—**सखी** सेवा में खड़ी हैं। ऊपर साधारणीकरण के लिए जिस बहुवचन के स्थान पर एकवचन के प्रयोग का उल्लेख किया गया है, वह इस प्रकार के एकवचन वाले प्रयोग से सर्वथा भिन्न है।

स्मरणीय—बहुवचन के स्थान पर एकवचन के प्रयोग की प्रवृत्ति स्त्रीलिंगवाची सामान्य शब्दों के अविकारी कर्त्ताकारक मे अधिक पाई जाती है। इन दिनों इस प्रकार की प्रवृत्ति व्यापक होती जा रही है।

किन्तु जहाँ बहुवचनता पर बल देना होता है, वहाँ बहुवचन के विकार शेष रहते है, जैसे—अपनी दो **बेटियाँ** ब्याह ही दी।

आदर के लिए बहुवचन

(२) आदर व्यक्त करने के लिए एकवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग होता है; जैसे—हमारे नैन के **तारे** श्रीकृष्णचन्द्र।

मुहावरों में बहुवचन

(३) मुहावरों में कुछ सज्ञाओं का प्रयोग बहुवचन में होता है। इस प्रकार के प्रयोगों को अंग्रेजी में अनुवादित करते समय बहुवचन में प्रयुक्त संज्ञा को भी आवश्यकतानुसार एकवचन मे प्रस्तुत किया जाता है; भूख, प्यास और जाड़ा शब्दो के साथ √मरना के योग से बनने वाले मुहावरों में इन तीनों शब्दों को बहुवचन मे प्रयुक्त करते है; जैसे—भूखों मरना, पियासो मरना और जाड़ों मरना। दाम, भाग (भाग्य), दर्शन और समाचार इन चारों शब्दो का प्रयोग सामान्यतया बहुवचन मे होता है। इसी प्रकार 'कल्याण' और 'प्राण' (पाँच प्राणों को व्यक्त करने के लिए) शब्द का प्रयोग भी कहीं-कही बहुवचन में होता है।

अविकारी कारक

§६७५. अविकारी कारक का प्रयोग निम्नलिखित बातों मे होता है—

(१) क्रिया के व्याकरण सम्बन्धी उद्देश्य के लिए; जैसे—ऋषि के **वचन** सत्य होंगे।

(२) अनेक अकर्मक क्रियाओ के कारण इसका प्रयोग विधेय में भी मिलता है; जैसे—बुढापा मनुष्य को कैसी आपदा है; यही छड़ी...मेरे चलने का **सहारा** है; **गोपीनाथ** कहावेगा; वह **अपराधी** ठहरा।

(३) सम्बोधन में भी प्रयुक्त होता है; जैसे—बानासुर ने बुलाय के कहा कि बेटा।

(४) स्वतत्र प्रयोग भी मिलता है : जैसे—**महाराज** वे बैठे है; **शस्त्र-विद्या** और **शास्त्र विद्या** ये दोऊ उच्च पद को दैनेवारी हैं।

(५) सम्बन्ध कारक के परसर्ग के साथ प्रयुक्त होने वाले क्रिया के सामान्य रूप के पश्चात् भी प्रयुक्त होता है; जैसे—धनुष टूटने का **शब्द** . ।

कर्मकारक

§६७६· कर्मकारक का प्रयोग निम्नलिखित स्थानों पर होता है—

(१) सकर्मक क्रिया के मुख्य कर्म के रूप मे। (२) स्थान अथवा सम्बन्ध को व्यक्त करने के लिए।

§६७७ सकर्मक क्रिया के मुख्य कर्म के साथ या तो 'को' परसर्ग जोड़ा जाता है, या इसका प्रयोग अविकारी कारक के समान होता है। इसी प्रकार सकर्मक क्रियाओ के पूर्णता सूचक कालों के साथ कर्म या तो 'को' परसर्ग के साथ सम्प्रदान कारक में आता है, या फिर उसका प्रयोग अविकारी कारक में किया जाता है। किन्तु कर्मकारक की रचना के इन दो प्रकारों के कारण अर्थ मे किसी प्रकार का अन्तर नही पड़ता।

स्मरणीय—कर्मकारक के इन दोनों वैकल्पिक रूपों की रचना तथा प्रयोग हिन्दी भाषा की बहुत कठिन समस्या है। भारतीयों द्वारा लिखी गई हिन्दी पुस्तकों के गहरे और निरन्तर अध्ययन तथा कोशों से

बातचीत के द्वारा ही एक विदेशी व्यक्ति कर्मकारक के दोनो रूपों का ठीक-ठीक प्रयोग जान सकता है। नीचे जो नियम दिए जा रहे है, आशा है, उनके कारण कर्मकारक के उचित प्रयोग मे बहुत सहायता मिलेगी।

कर्मकारक के साथ 'को' परसर्ग का उपयोग

§६७८ इन दोनो रूपो की रचना और प्रयोग के सम्बन्ध मे सामान्य नियम इस प्रकार है—जब निश्चित व्यक्ति पर बल देना होता है तो 'को' परसर्ग अवश्य प्रयुक्त होता है, अन्य स्थिति मे अविकारी कारक का रूप अधिक पसन्द किया जाता है।

इस सामान्य नियम के सम्बन्ध मे यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि 'को' परसर्ग सामान्यतया निम्नलिखित स्थितियो में प्रयुक्त होता है—

(क) व्यापक कथन के लिए, (ख) सम्बन्ध सूचित करने के लिए, (ग) व्यक्तिवाचक सज्ञा के लिए।

क. इन तीनों के उदाहरण इस प्रकार हैं : (अ) व्यापक कथन के लिए—**साथियों को** साथ लिया; ऐसे कायर को क्यों मानो, (आ) सम्बन्ध के लिए—हरि **माँ को** देखते ही कहने लगा, मत्री **हरि-भक्तों** को ढूढ ढूढ मारने लगे, (इ) व्यक्तिवाचक संज्ञा के साथ—बसुदेव ने गर्ग मुनि **को** बुलाया, कंस ने **बकासुर** को भेंजा, सब गोपी **कन्हैया को** लिए जसोदा पास चलीं। √बुलाना का प्रयोग निश्चित व्यक्ति के लिए होता है, इसीलिए इस क्रिया के कर्म के साथ अनिवार्य रूप से 'को' का प्रयोग होता है।

कर्मकारक : अविकारी रूप

(२) जब सज्ञा (क) मनुष्येतर प्राणियों को व्यक्त करती है, (ख) निर्जीव वस्तु को व्यक्त करती है, (ग) किसी भाव को व्यक्त करती है तो कर्म का प्रयोग अविकारी रूप मे होता है। इसी प्रकार से सकर्मक क्रिया के पूर्ण कालो में भी कर्म का प्रयोग अविकारी रूप में अधिक पसन्द किया जाता है।

क. उदाहरण : (१) मनुष्येतर प्राणियों के लिए—**गायें** चराने लगे, **बछड़े** चरने को हाँक दिये; (२) जड़ पदार्थों के लिए—श्रीकृष्ण ने अपना शरीर बढाया; यही **छाकें** खाँय, (३) भाव के लिए—मेरे **दोष** चित मे न लीजे, जिस पर मै **अनुग्रह** करता हूँ उसका सब धन खोता हूँ।

(३) ऊपर जो नियम दिए गए हैं, उनके कारण कर्मकारक के दोनों रूपो के सम्बन्ध मे पर्याप्त जानकारी मिलती है; फिर भी कुछ स्थितियो मे, विशेष रूप से बोलचाल मे इन नियमो के या तो अपवाद मिलते है, या इन नियमो का पालन कुछ स्थानो पर किया जाता है।

(क) जब क्रिया का कर्म किसी निश्चित व्यक्ति का बोध नही कराता तब मनुष्य सम्बन्धी सज्ञाएँ भी अविकारी कारक में प्रयुक्त होती हैं; जैसे-प्रेमसागर मे कस कहता है: 'जीती **लड़की** न दूगा तुझे'; यहाँ '**लड़की**' शब्द से किसी निश्चित लड़की का पता नही चलता। इसीलिए परसर्ग 'को' का प्रयोग नही किया गया। 'को' की उपेक्षा के कारण 'लडकी' का तात्पर्य किसी निश्चित लड़की से नही है। यह वाक्य भी इसी तरह का है—'आपने मारे हैं **बालक**', यहाँ बालक शब्द से किसी निश्चित बालक का बोध नहीं होता अपितु कंस द्वारा की गई बहुत से बालको की हत्या का पता चलता है।

(ख) इसके विपरीत जब कर्मकारक की सज्ञा को निश्चय के साथ व्यक्त किया जाता है तो मानवेतर प्राणी, जड़ पदार्थ अथवा भाव को व्यक्त कराने वाली संज्ञा के साथ भी 'को' परसर्ग जोडते है; जैसे—किन दोनों तरवर के बीच **उखल को** आड़ा डाल। इसी तरह इस वाक्य में भी 'को' का प्रयोग देखिए—

सोई इस **माया को** जीतता है। यहाँ 'को' उस माया को अवधारण के साथ प्रकट करता है जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि सामान्य रूप से यह वाक्य इस प्रकार रचा जाता है—अपनी **माया** दूर करो।

ग बहुवचन मे प्रयुक्त संज्ञा से जब सम्पूर्ण समूह अथवा श्रेणी का बोध होता है तो कर्मकारक के साथ 'को' जुडता है। इसके विपरीत बहुवचन द्वारा सूचित वस्तुओ आदि को पृथक्-पृथक् व्यक्त करना हो तो उस संज्ञा को अविकारी कारक मे अधिक पसन्द करते है; उदाहरण—हम पढ़ते है: "सोलह सहस्र एक सौ **आठ स्त्रियों को** साथ ले", यहाँ 'को' से कर्मकारक मे प्रयुक्त संज्ञा द्वारा समूह की अभिव्यक्ति अपेक्षित है। "उसने ज्योतिषियो को बुलाया" यहाँ 'को' ज्योतिषियो के वर्ग को व्यक्त करता है। किन्तु निम्नलिखित उदाहरण मे बहुवचनवाची 'चिह्न' सामूहिकता का बोध नही कराता; जैसे—'आपने क्या चिह्न देखे।'

घ कर्म के इन दोनों रूपो मे से किसी एक के प्रयोग का विकल्प सुश्राव्यता पर भी निर्भर है। विशेष रूप से जिस वाक्य मे कर्म और सम्प्रदान कारक के रूप साथ-साथ आते है, वहाँ मुख्य कर्म को अविकारी कारक मे इसलिए रखते है कि 'को' की पुनरुक्ति बच जाये। यदि दोनो स्थानो पर 'को' का प्रयोग हो तो सुनने मे भी ठीक न लगे और अर्थ के समझने मे भी कठिनाई हो, जैसे—मैंने तुम्हारा **पुत्र** रोहिनी को दिया है;' 'मै चारुमती को जो कृतवर्मा को मागी है, **विसे** न दूगा।'

ङ इन दोनो रूपो मे से किसी एक को लय और वाक्यांश के सन्तुलन के लिए भी चुनते है। कविता ही नही, गद्य मे भी लय तथा सन्तुलन का ध्यान रखा जाता है। लय को दृष्टि मे रख कर कर्मकारक के किसी एक रूप का प्रयोग होता है, जैसे—कही किसी ने देखा मेरा कुँवर **कन्हाई**; यहाँ नियमानुसार कन्हाई 'को' आना चाहिए था किन्तु 'माई' के अनुप्रास के कारण 'को' अप्रयुक्त रह गया। इस प्रकार की कृत्रिम लय के लिए 'को' लोप के उदाहरण 'प्रेमसागर' के प्रत्येक पृष्ठ पर मिलेंगे।

च. यदि बिना 'को' के अर्थ स्पष्ट नही हो रहा है, तो अर्थ की स्पष्टता के लिए भी 'को' का प्रयोग किया जाता है।

समान धातु से बनी क्रिया तथा कर्म

§६७९ समान धातु से बनने वाले कर्म के साथ सकर्मक और अकर्मक दोनो प्रकार की क्रियाएँ प्रयुक्त हो सकती हैं।

क यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि समान धातु से बने कर्म, तथा क्रिया के प्रयोग मे 'कर्म' सदैव अविकारी कारक मे आता है और बहुत कम स्थलो पर क्रिया के साथ कालसूचक सहायक क्रिया का प्रयोग नही होता, जैसे—तुम कैसी **चाल चलते** हो? 'कोकिल मनभावन **बोलियाँ बोल रहे**'; 'वह बडा **बोल बोलता है**'; 'सिपाही ने उसको बडी **मार मारी**।'

दो कर्मों के साथ क्रिया

§६८०. कुछ क्रियाएँ दो कर्मों के साथ प्रयुक्त होती है। हम यहाँ दो प्रकार के प्रयोगों पर विचार करते हैं—

(१) क्रिया, सामान्यतया प्रेरणार्थक क्रिया के साथ 'कर्म' में एक व्यक्तिवाचक संज्ञा तथा दूसरी व्यक्तिबोधक अथवा वस्तु बोधक संज्ञा का प्रयोग होता है। प्रथम कर्म के साथ 'को' का प्रयोग होता है

और दूसरा कर्म अविकारी कारक मे आता है। अनिवार्य रूप से तो नही, किन्तु सामान्यतया 'को' वाला कर्म दूसरे कर्म से पहले आता है।

(२) √सोचना, √विचारना √बनाना, √नाम रखना, √नियुक्त करना आदि क्रियाओं के साथ दूसरा कर्म पहले कर्म की विशेषता बताता है। इस प्रकार की क्रियाओ के साथ पहले कर्म को 'उद्देश्य सम्बन्धी कर्म' और दूसरे को 'विधेय सम्बन्धी कर्म' कह सकते है। इस प्रकार की क्रियाओं के साथ अनिवार्य रूप से तो नही, सामान्यतया उद्देश्य सम्बन्धी कर्म 'को' परसर्ग के साथ और विधेय सम्बन्धी कर्म अविकारी कारक मे आता है।

उदाहरण हैं—(१) वह **सबको बागे** पहराय देगा, मैं **सबको मिठाई** खिलाऊँगा। (२) **इसको** तुम **क्या** कहते हो? (तूने) **मिस यह** बनाया है, मैं **इसको दुःख** जानता हूँ।

समय तथा स्थानसूचक कर्म

§६८१ गतिसूचक क्रिया के साथ कर्म स्थान सूचित करता है; उदाहरण—'**हस्तिनापुर को** चलिए'।

§६८२ यह समय भी सूचित करता है; जैसे—कार्त्तिक बदी **चौदस को**; कोई **रात** को न्हाने न पावे।

विशेष—स्थान तथा समय सूचित करने वाले कर्म के साथ प्राय· परसर्ग 'को' का प्रयोग नही होता।

कविता में कर्म

§६८३ आधुनिक तथा पुरानी कविता मे ऊपर दिए गए नियमो के अनुसार जहाँ कर्मकारक के परसर्ग का प्रयोग होना चाहिए, वहाँ 'को' तथा उसके रूपान्तर 'कौ', 'कह' आदि का प्रयोग 'कर्म' के साथ होता रहा है। पुरानी कविता मे 'को' के स्थान पर 'हिं' का प्रयोग भी मिलता है। दोनो प्रकार के उदाहरण इस प्रकार है—जे निज मित्र **भानु** कौ माने; राखु **राम कहं** जेहि तेहि भाँती, कहु केहि **रंकहिं** करौं नरेसू, मुनि **रघुबरहि** प्रसस।

§ ६८४ हिन्दी कविता मे छन्द के कारण व्याकरण के नियमो की उपेक्षा होती रहा है। यहाँ तक कि छन्द के कारण वचन तथा लिंग-सम्बन्धी नियमो का उल्लंघन भी किया जाता है और कही-कही एकवचन के स्थान पर बहुवचन, बहुवचन के स्थान पर एकवचन, पुल्लिग के स्थान पर स्त्रीलिंग और स्त्रीलिंग के स्थान पर पुल्लिग का प्रयोग भी पाया जाता है। पुरानी कविता मे आधुनिक अविकारी कारक का कर्म प्रयुक्त होने लगा था। धीरे-धीरे उसका प्रयोग बढ़ता गया। यहाँ तक कि ऐसे प्रयोग होने लगे जो गद्य और बोलचाल की भाषा मे नियमानुसार नही कहे जा सकते। निम्नलिखित दो पक्तियों में गद्य की दृष्टि से 'वसिष्ठ को' और 'पुरुष को' प्रयुक्त होना चाहिए—आदि **पुरुष** हम मानुष जान्यौ;[1] तब नरनाह वसिष्ठ बुलाये।[2]

विकारी कर्मकारक

§६८५. आधुनिक हिन्दी के वाक्यो मे क्रिया का विकारी कर्म अकेला प्रयुक्त नहीं होता, किन्तु यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि अनुमतिसूचक और प्राप्तिसूचक संयुक्त क्रिया के साथ सामान्यतया और इच्छासूचक संयुक्त क्रिया के साथ कही-कहीं कर्म का विकारी एकारान्त रूप प्रयुक्त होता है। इसी तरह

---

[1] प्रेमसागर। [2] रामायण।

रामायण और पूरबी हिन्दी की अन्य रचनाओं मे कर्मकारक मे क्रियार्थक संज्ञा का विकारी ऐकारान्त रूप प्रयुक्त हुआ है, जैसे—'**चलै** लागे'। यहाँ 'चलै'+√ लागना क्रिया का कर्म है। ब्रजभाषा तथा कन्नौजी के क्षेत्रीय प्रयोगो मे कर्मकारक की क्रियार्थक सज्ञा के विकारी रूप की व्याख्या भी इसी तरह की जानी चाहिए; जैसे—वह **खैवे** न करे। यहाँ क्रियार्थक सज्ञा का विकारी रूप 'खैवे'√ करना के कर्म के रूप मे प्रयुक्त हुआ है।

सम्प्रदान कारक

§६८६ हम सम्प्रदान कारक के प्रयोगो का वर्गीकरण इस प्रकार कर सकते हैं—

कर्म सम्बन्धी सम्प्रदान कारक

(१) सकर्मक क्रिया के गौण कर्म को सूचित करने के लिए सम्प्रदान कारक का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण—बलरामजी **सब को** आसा भरोसा देते थे; श्रीकृष्णचन्द्र अपनी **माया को** आज्ञा की; यह मूसा **मोहि** दुख देतु है। कहीं-कहीं कहना क्रिया के साथ सम्बोधित व्यक्ति को सम्प्रदानकारक में प्रयुक्त करते है; जैसे—श्रीकृष्णचन्द्र ने **बलदेव जी को** सैन से कहा।

स्मरणीय—१. √कहना के विधि रूप के साथ सम्बोधित व्यक्ति सम्प्रदान कारक मे आता है, अन्य रूपों के साथ उसे अपादान कारक मे रखा जाता है, जैसे—'उसने **मुझे** बैठने को कहा', किन्तु 'उसने **मुझसे** यह बात कही।'

स्मरणीय—२ प्रेरणार्थक क्रिया से पहले 'को' युक्त सज्ञा का अंग्रेजी अनुवाद सम्प्रदान कारक मे किया जाता है, वास्तविक बात यह कि ऐसी सज्ञा कर्मकारक मे रहती है। यह उस समय स्पष्ट होता है जब प्रेरणार्थक क्रिया के पर्याय के लिए 'प्रेरणा' का प्रयोग क्रिया के सामान्य रूप के साथ किया जाये। जैसे 'वह घोड़े को घास खिलाता है' का अंग्रेजी अनुवाद—हि फीड्स ग्रास टु द हार्स के स्थान पर होगा—हि काज द हार्स टु ईट ग्रास।[1]

आवश्यकता व्यक्त करने वाला सम्प्रदान कारक

(२) √होना अथवा √पडना के पूर्व क्रिया के सामान्य रूप के साथ व्यक्ति को सूचित करने वाली सज्ञा को सम्प्रदान कारक मे रखा जाता है। इस प्रकार के प्रयोग से व्यक्ति के निर्धारित कर्त्तव्य किसी कार्य की आवश्यकता अथवा निश्चित कार्य की अभिव्यक्ति होती है। अंग्रेजी मे इस आशय को व्यक्त करने के लिए 'मस्ट', 'हैव टु' आदि का प्रयोग किया जाता है। कर्त्तव्य का निर्देश करने के लिए क्रिया के सामान्य रूप अथवा क्रिया के पूर्णकालिक रूप के साथ प्रायः 'चाहिये' जोडते है।

उदाहरण—'कल **हमें तुम्हें** यमदग्नि के यहाँ जाना है'; '**पर्व को** पहुँचा चाहिए'; '**हमें** मरना पड़ेगा।'

स्वामित्वसूचक सम्प्रदान

(३) स्वामित्व सूचित करने के लिए सम्प्रदान कारक का प्रयोग होता है।

क. स्वामित्व सूचक सम्प्रदान कारक प्रायः अस्तित्व-सूचक क्रिया के साथ आता है; जैसे—'**उनको** तन मन की भी सुध न थी'; **सब को** त्रास भयो।

---

[1] **हिन्दी के इस प्रयोग के साथ संस्कृत प्रेरणार्थक क्रिया की तुलना कीजिए। देखिए, मोनेर विलियम्स—संस्कृत ग्राम०. §८४७।**

ख. प्राय: सहायक क्रिया की उपेक्षा की जाती है, जैसे—**हमें** इतना ज्ञान कहाँ; **तिनको** जैसो सुख है, तैसो **असंतोषी** को नाहि।

ग. या कोई अकर्मक क्रिया मुख्य क्रिया तथा सहायक क्रिया का स्थान लेती है; जैसे—दुख **नाम को** न रहा।

घ. √मिलना क्रिया के कुछ प्रयोगो का यहाँ उल्लेख होना चाहिए, जा चीज मिलती है उसे अविकारी कारक में रखा जाता है और ढूंढने वाले को सम्प्रदान कारक मे प्रयुक्त करते हैं; जैसे—**उनको** चारो पदार्थ मिलते हैं; **मुझे** कुछ नही मिला। √लगना के साथ बनने वाले प्रयोगो की व्याख्या भी इसी तरह की जा सकती है; जैसे—**मुझे** जाड़ा लगता है; यह बात तो मुझे बड़ी प्यारी लगी।

योग्यतासूचक सम्प्रदान कारक

(४) उचित, योग्य, भला और कठिन जैसे विशेषणों के साथ योग्यतासूचक सम्प्रदान कारक का प्रयोग होता है। उदाहरण—ऐसा साहस करना **नारी को** उचित नहीं; स्वामी बिन **स्त्री को** मरना ही भला है, **मनुष्य को** परमेश्वर का सत्य ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। इस प्रकार के प्रयोगों मे उचित, योग्य आदि का प्रयोग विपरीत अर्थ या शब्दो के साथ किया जाता है।

स्मरणीय—इस आशय को व्यक्त करने के लिए सम्प्रदान कारक के साथ प्राय: 'योग्य' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'योग्य' शब्द के कारण अर्थ मे थोड़ा-सा अन्तर उत्पन्न होता है, देखिए, § ६९५ (१६)।

उद्देश्यसूचक सम्प्रदान

(५) ध्येय, उद्देश्य अथवा कारण सूचित करने के लिए संज्ञा को सम्प्रदान कारक में रखते हैं। जिस अभिप्राय से चीज बनाई गई उसे भी सम्प्रदान कारक मे प्रयुक्त करते है; जैसे—पुरी की **चौकसी को** कौन रहेगा; हम अभी आश्रम के दर्शन को जाते हैं।

क. क्रियार्थक शब्द के रूप मे प्रयुक्त होने वाले क्रिया के सामान्य रूप को उद्देश्य प्रकट करने के लिए प्राय सम्प्रदान कारक में रखते है, जैसे—कुछ फूल फल **भेंट को** ले आ; **देखिबे कौं** तौ द्वै आँखि हीं; कही **रहने को** ठौर बताइए। क्रियार्थक संज्ञा के सम्प्रदान कारक के साथ प्राय: परसर्ग नही आता, जैसे—वह **पढ़ने** आता है।

स्मरणीय—उद्देश्यसूचक सम्प्रदान कारक को व्यक्त करने के लिए आधुनिक हिन्दी मे 'लिए' अथवा 'वास्ते' और पूरब में 'वरे' अथवा 'खातिर' शब्द का प्रयोग होता है।

ख. यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि अस्तित्वसूचक क्रिया के साथ इस प्रकार क्रिया के सामान्य रूप को, सम्प्रदान कारक में प्रयुक्त करने से यह आशय व्यक्त होता है कि क्रिया निकट भविष्य मे होने वाली है; जैसे—वह **चढ़ने को** हुई; वह **जाने को** था।

उल्लेखात्मक सम्प्रदान

(६) विभिन्न प्रकार के शब्द उल्लेखसूचक सम्प्रदान कारक में प्रयुक्त होते हैं। इस प्रयोग से आदर के साथ उस बात को प्रकट किया जाता है, जिसके लिए पहले से स्वीकृति दी गई है।

बहुत-सी अकर्मक क्रियाओ के साथ उल्लेखात्मक सम्प्रदान कारक का प्रयोग होता है—बान **मोर को** लगा; दरिद्री कौ संसार सूनौ लागत है; वही कहिये जो **जिसे** सुहाये; अनिरुद्ध जी को बाँधे-बाँधे चार महीने

हुए। सकर्मक क्रिया के साथ भी इस उल्लेखात्मक सम्प्रदान कारक का प्रयोग होता है—**'स्त्री' को कहा है** कि कैसा ही पति होय।

क. उल्लेखात्मक सम्प्रदान कारक अन्य प्रकार की क्रियाओं के साथ भी प्रयुक्त होता है। सज्ञा से बनने वाली सयुक्त क्रियाओ, √दिखाई देना, √सुनाई देना—के साथ (देखिए, §४६३)। इसके प्रयोग के उदाहरण हैं—क्या **तुमको** चिह्न नही दिखाई देते है ।

ख. सकर्मक क्रियाओं के पूर्णकाल मे बनने वाले भाववाच्य रूप (देखिए, § ४१२) के साथ प्रयुक्त होने वाले सम्प्रदान कारक से क्रिया का उद्देश्य प्रकट होता है; जैसे—उसने **लड़कों को** देखा।

ग. कुछ विशेषणो के साथ भी सम्प्रदान कारक का प्रयोग होता है, जैसे—**पियहि** पियारी। उलाहना अथवा प्रशसासूचक सज्ञा भी इस सम्प्रदान कारक मे प्रयुक्त होती है, जैसे—धन्य तेरे **साहस को**; धिक्कार मेरे **जीतब** को।

§६८७. इन नियमो के अनुसार कविता मे भी सम्प्रदान कारक का प्रयोग को, कौ, कह आदि परसर्गो के साथ हुआ है। उदाहरण—**सज्जन कौं** दुख हू दिये; **तुम कहूं** बिपति बीज बिधि बयउ। रामायण मे कई स्थलो पर 'हि', 'हिं०' आदि के साथ सम्प्रदान कारक का विकारी रूप प्रयुक्त हुआ है, जैसे **मातु पितहि** पुनि। यह मत भावा, बहु विधि **चेरिहि** आदर देई, **राजहि** तुम पर प्रीति विशेषी।

स्मरणीय—प्रायः परसर्ग का प्रयोग नही होता, जैसे—**पर अकाज** भट सहसबाहु से।

कर्त्ता कारक (विकारी)

§६८८ कर्त्ता को सूचित करने के लिए आधुनिक स्तरीय हिन्दी और पछाँह की बोलियो मे सकर्मक क्रिया के पूर्णतासूचक कृदन्त के साथ कर्त्ता कारक (विकारी) का प्रयोग होता है। पूर्णतासूचक कालो के सम्बन्ध मे विचार करते समय इस सम्बन्ध मे अधिक उदाहरण प्रस्तुत किए जाएँगे।

क. 'भागवत पुराण' के हिन्दी अनुवाद मे मैने क्रिया के सामान्य रूप के साथ भी कर्त्ताकारक (विकारी) के अनेक प्रयोग देखे है। अध्यायो के नामकरण मे कर्त्ताकारक (विकारी) का ऐसा प्रयोग अधिक पाया जाता है। उदाहरण के लिए आठवें स्कन्ध का शीर्षक इस प्रकार है—'हरि अवतार ले कर **बचाना** प्राण दासी का **परमेश्वर ने**।' इसी स्कन्ध के द्वितीय अध्याय का शीर्षक है—'**कहना शुकदेव जी ने** कथा गजेन्द्र वो ग्राह की।' पिन्काट ने अपने 'हिन्दी मेन्युअल' मे बहुत से उदाहरण दिए है—'**जा रे** उस पाँच पांडवो ने मेरा क्या करने का है।' पिन्काट का विचार है कि कर्त्ताकारक (विकार) का ऐसा प्रयोग बहुत होता है। मेरा विचार है कर्त्ताकारक का यह प्रयोग सीमित रूप मे हुआ है, बोलचाल मे तो यह प्रयोग और भी कम सुनाई देता है ।

ख. नेपाली मे कर्त्ताकारक का जो विशेष रूप प्रचलित है, उसके कारण इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि इस बोली के पूर्णतासूचक कालो मे कर्त्ताकारक का प्रयोग हिन्दी की अपेक्षा अधिक होता है। जैसे—"कोहि योहन कोहि इलियास अरुले पुराना भविष्य वक्ता मा एक फेरि उद्यो भनि **भन्द० छन**" (स्तरीय हि० कोई कह रहा है जान, कोई कह रहा है इलियास, अन्य कोई कह रहा है कि यह तो पुराना पैगंबर ही फिर से प्रकट हुआ है)। यहाँ कर्त्ताकारक (विकारी) का प्रयोग अपूर्ण वर्त्तमानकाल के साथ हुआ है। निम्नलिखित उदाहरण में कर्त्ताकारक का प्रयोग क्रिया के भविष्यकालिक रूप के साथ हुआ है—'उन्हेरु ले **मन फिराउनन**' (वे पछताएँगे)। इन प्रयोगो के विपरीत कई स्थलो पर कर्त्ताकारक (विकारी) का **परसर्ग 'ले' अप्रयुक्त रहता है, यहाँ तक कि पूर्णतासूचक कालो मे भी इस परसर्ग का प्रयोग नहीं होता**—

जैसे—'**दूत** उन लाइ बल दिदा दर्शन दियो (स्तरीय हि० उसे बल देने के लिए देवदूत ने दर्शन दिया)। **मैंने** इस प्रकार पूर्णकाल के साथ परसर्ग रहित कर्त्ताकारक का प्रयोग केवल 'दर्शन दिनु' क्रिया के साथ ही देखा है।

कर्त्ताकारक के परसर्ग का लोप

§६८९ ब्रजभाषा के पद्य तथा गद्य मे कर्त्ताकारक के परसर्ग 'ने' का प्रयोग प्राय नही होता। जैसे—**सन्यासियन** मेरे बिल ते सब धन काढि लियौ, ब्राह्मन कही; मोही **सों तुम** प्रीति बढाई।

§६९०. रामायण मे कर्त्ताकारक (विकारी) के साथ 'ने' परसर्ग का प्रयोग कही नही हुआ है। एकवचन मे कर्त्ता अविकारी कारक मे प्रयुक्त होता है। बहुवचन मे कर्त्ताकारक का विकारी रूप काम मे लाया जाता है; जैसे—सीतहि चितइ कही **प्रभु** बाता, हरिचरित सुहाये भाँति अनेक **मनीसन** गाये। पहले यह बात लिखी जा चुकी है कि रामायण मे कर्तृवाच्य क्रिया के साथ कर्त्ता अविकारा रूप मे आता है, जब कि स्तरीय हिन्दी मे कर्त्ताकारक (विकारी) का प्रयोग कर्मवाच्य क्रिया के साथ होता है।

अपादान कारक

§ ६९१. अधिकांश प्रयोगो मे अपादान कारक पृथकता सूचित करता है। अपादान कारक के प्रयोगों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

स्थानवाची अपादान

(१) अपादान कारक का प्रयोग सामान्यतया गतिसूचक क्रिया के साथ होता है। अपादान कारक में प्रयुक्त सज्ञा से ज्ञात होता है कि गति यहाँ से प्रारंभ हुई है, जैसे—**बन से** घर को आते थे, **मथुरा से** चल दिये, **सिंहासन से** उठे। गतिसूचक क्रियाओ के अतिरिक्त अन्य क्रियाओ के साथ भी इस कारक का प्रयोग मिलता है—**दूर से** उसने श्रीकृष्णचन्द्र से कहा।

कालवाची अपादान

(२) अपादान कारक काल को भी सूचित करता है, आशय होता है 'जिस काल से'। उदाहरण है—**आज से** चौथे दिन, कुछ **दिन से**, तब से; यह रीति **परम्परा से** चली आती थी।

पृथकतावाची अपादान

(३) स्थान सम्बन्धी अथवा विचार सम्बन्धी पृथकता सूचित करने के लिए सभी प्रकार के विशेषणो, क्रियाओ और अन्य प्रकार के शब्दों से पूर्व अपादान कारक का प्रयोग होता है। उदाहरण निम्न प्रकार है—

विशेषण से पूर्व—मैंने उनको सब **भय से** निर्भय किया। इस नियम के अनुसार अनेक प्रकार की क्रियाओं के पूर्व अपादान कारक का प्रयोग किया जाता है, √पूछना, √अस्वीकार करना, √मना करना, √चाहना, √बचना क्रिया के पूर्व इसका प्रयोग विशेष रूप से होता है, जैसे—तुम अपने **पिता से** जा पूछो; **हम से** चाहता है अपनी मीच; तुमने हमको आग औ **जल से** किसलिए बचाया. जिसके देने से तू नष्ट हुई। क्रियार्थक सज्ञा 'बर्जन' से पूर्व भी अपादान कारक प्रयुक्त होता है—'का बर्जन ऋषिवरो को हरिभजन **करने से**'।

साधन तथा कारणसूचक अपादान

(४) साधन, उद्गम और कारण सूचित करने के लिए अपादान कारक का प्रयोग होता है । उदाहरण—इन्द्र के **मानने से** कुछ नही होता; **दुख से** अति घबराय; तू किस **पाप से** अजगर हुआ था; **नन्दजी से** इतनी बात सुन। √डरना से पहले आने वाले अपादान कारक की व्याख्या भी इसी ढग से की जा सकती है। इस प्रकार के वाक्यो मे अपादान कारक से डर का कारण ज्ञात होता है; जैसे—मै **अपजस से** डरता हूँ। बहुत ही कम स्थानो पर √ डरना का प्रयोग कर्मकारक के पश्चात् हुआ है, जैसे—उधर **जाने को** जी डरता है।

उपकरणसूचक अपादान

(५) अपादान कारक से ऐसे साधन अथवा उपकरण का ज्ञान होता है, जिससे क्रिया अग्रसर होती है।

उदाहरण—तू हाथी से चिरवा डालियो; खुर सो खोदे नदी करारे। इसी सिलसिले मे **भरना** के पूर्व आने वाले अपादान कारक का उल्लेख होता है; जैसे—सरोवर निर्मल **जल से** भरे है।

कर्तृ सम्बन्धी अपादान

(६) कही-कहो अपादान कारक कर्त्ता को सूचित करता है।

स्मरणीय—यह बात उल्लेखनीय है कि अपादान कारक मे कर्त्ता का प्रयोग केवल अकर्मक क्रिया अथवा क्रिया के कर्मवाच्य रूप के साथ होता है; जैसे—**हमसे** नही बचेगा; उनका बल **भुज से** नही सँभाला जाता।

तुलनात्मक अपादान

(७) तुलना करने के लिए अपादान कारक का प्रयोग होता है; विशेषणो के साथ तुलना करने के लिए . जैसे—**मुझसे** बड़ा, ऐसे **पूत होने से** वह अपूत क्यो न हुआ; वह **सब से** पहले जा मिली। क्रिया के साथ तुलना करने के लिए : कोई **मुझसे** न जीते, बालहत्या से बढ कर तो कोई पाप ही नही। कुछ क्रिया-विशेषणो से पूर्व—**इससे** आगे; **घर से** बाहर।

मूल्य सम्बन्धी अपादान

(८) मूल्य सूचित करने के लिए अपादान कारक का प्रयोग होता है। हम यह अच्छी तरह जानते हैं, मूल्य एक प्रकार का उपकरण है, जिसके द्वारा वस्तु क्रय की जाती है।

उदाहरण—यह पुस्तक मुझे एक **रुपये से** मिली; दो **आने से** कमी बिकता है।

रीतिसूचक अपादान

(९) क्रिया की रीति को सूचित करने के लिए सामान्यतया अपादान कारक का प्रयोग होता है।

उदाहरण—उल्टे बेद **मंत्रों से** यज्ञ कर; **नख सिख** से सिगार कर; उसने अति **प्यार से** कहा। प्रकार, भाँति, रीति, विधि जैसे शब्दों के साथ अपादान कारक का प्रयोग बहुत होता है। जैसे—इस **रीति से; उस भाँति से**। यहाँ इस प्रकार के वाक्य भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं—इस **पंथ से** छलो ।

प्रयोगसूचक अपादान

(१०) आवश्यकता अथवा प्रयोग सूचित करने के लिए अपादान कारक का उपयोग किया जाता है। उदाहरण—मुझे **औषधि से** प्रयोजन है, **इससे** क्या काम।

अपादान कारक के अन्य प्रयोग

(११) अंग्रेजी के 'विथ' 'बाइ' और कहीं-कहीं 'इन', 'टु' या 'फार' के आशय को व्यक्त करने के लिए भी अपादान कारक का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण—मुझसे सग्राम कर, **किसी से** कलह न करवाओ, **जिससे** विधना ने सम्बन्ध किया, **मुंह से** मुह, **इससे** लता लिपट रही है, **छूने से** ठडी लगती है, यह **बातों से** न मानेगा, उसे कृष्ण **भेस से** देखा, आपकी **कृपा से**, मैने यह **हँसी से** नही कहा।

क. √कहना के साथ सम्बोधित व्यक्ति को अपादान कारक मे रखते है **और** उसके साथ 'से' परसर्ग जोडा जाता है। इस प्रकार के प्रयोगो मे सम्बोधित व्यक्ति को कर्म अथवा सम्प्रदान कारक मे भी रखते हैं, किन्तु ऐसा करने पर अर्थ बदल जाता है, जैसे—मै इस **मुदरी** को कुछ बुरा कहा करता चाहता हूँ, किन्तु **मुझसे** कहो, **किससे** कहूँ, **मुझसे** भी माता पुत्र कह कर बोली है। रामायण मे एक स्थान पर कहना के कर्म के साथ पाहि (पाहि) का प्रयोग मिलता है, जैसे—तब रघुबीर कहा मुनि पाही।[1]

ख. √कहना के अन्य पर्यायवाची शब्दो तथा वाक्याशो के साथ भी अपादान कारक का प्रयोग होता है, जैसे—**जसोदा से** तुमने यह बचन किया था, अनसूया **मुझसे** बकती है।

स्मरणीय—यदि हम अपादान कारक को शाब्दिक अर्थ तक सीमित रखे तो (१०) तथा (११) मे दिए गए बहुत से शब्दो को अपादान कारक मे नही माना जाएगा। किन्तु ससार मे कोई ऐसी भाषा नही है जिसमे शब्दो का प्रयोग सर्वथा नियमानुसार होता हो अथवा परिभाषाओ को बहुत सीमित ढग से प्रयुक्त किया जाये। प्राकृत और आधुनिक हिन्दी मे ऐसे असख्य उदाहरण मिलेगे जहाँ एक कारक के स्थान पर दूसरा कारक प्रयुक्त हुआ है। यह बहुत सभव है कि अंग्रेजी का 'विथ'-हिन्दी के 'से' का पर्यायवाची हो।

कविता में अपादान कारक

§६९२ गद्य के समान कविता मे भी अपादान कारक का प्रयोग होता है। दो-तीन उदाहरण पर्याप्त होंगे—पद **नख तें** भू खोदत भई, यौ **दृग सों छुटी** जलधारा, जासु **कृपा सु दयालु**, **प्राण ते** अधिक राम प्रिय मोरे।

अपादान कारक के परसर्ग की उपेक्षा

§६९३ कविता ही नही, गद्य मे भी अपादान कारक का परसर्ग प्राय: प्रयुक्त नही होता। परसर्ग-हीन अपादान कारक का प्रयोग सभी स्थितियो मे होता है। रीति अथवा कारणवाचक अपादान कारक मे 'से' का प्राय लोप होता है। स्थानवाची अपादान कारक मे भी 'से' का प्रयोग नही होता। जैसे—**इस रीति** या इस **प्रकार**, सब कुशल-**क्षेम** है, गोपी चारो **ओर** घिर आई।

---

[1] व्याख्या तथा अधिक उदाहरणों के लिए देखिए, §६८६, स्मरणीय (१)।

क. कविता मे 'से' परसर्ग की उपेक्षा बहुत होती है, जैसे—पूछि **लोगन्ह** काह उछाहू आदि।

अपादान के परसर्ग के रूप में 'करके'

§६९४ पहले §१७३ **क.** मे बताया जा चुका है कि यौगिक कृदन्त 'कर के' कही-कही 'से' के स्थान पर प्रयुक्त होता है। ऐसे स्थलो पर 'से' और 'कर के' के अर्थ मे कोई भेद नही रहता। जैसे— '**पाप से** रहित' अथवा '**पाप कर के** रहित' दोनो वाक्याशो का एक अर्थ है। कही-कही 'से' और 'कर के' मे अर्थभेद पाया जाता है, ऐसे स्थलों पर 'से' से साधन और 'कर के' से माध्यम तथा उपकरण का पता चलता है, उदाहरण—**जिससे** और **जिस कर के** शुभ-अशुभ अपना कर्म होता है।

सम्बन्ध कारक

§ ६९५ विभिन्न प्रकार के सम्बन्धो को सूचित करने के लिए सम्बन्ध कारक का प्रयोग होता है। इन सम्बन्धों का वर्गीकरण नीचे किया जा रहा है। उदाहरण यथास्थान दिए गए है—

स्वामित्वसूचक सम्बन्ध कारक

(१) स्वामित्व सूचित करने के लिए स्वामित्वसूचक सम्बन्ध कारक का प्रयोग होता है; जैसे—**राजा** का मन्दिर, मै **कंस की** दासी हूँ, यह सब **मेरे** घोडे है। निम्न वाक्य मे 'क्या' से सम्बन्धित सम्बन्ध कारक की व्याख्या भी इसी आधार पर की जा सकती है—'**इसका** क्या बिगडा ?'

सम्बन्धसूचक सम्बन्ध कारक

(२) सम्बन्ध सूचित करने के लिए सम्बन्ध कारक का प्रयोग होता है, जैसे—**मेरा** पिता, **उनकी** माएँ, ये भानजे कंस के दोऊ।

वस्तुसूचक सम्बन्ध कारक

(३) वस्तुसूचक सम्बन्ध कारक के उदाहरण—**कंचन के** मन्दिर, **स्फटिक** के चार फाटक, **मधुमक्खियों** का झुंड; यहाँ मै यह वाक्य भी प्रस्तुत करना चाहता हूँ—**दिन की** रात हो गई। सम्बन्ध कारक के साथ संज्ञा की पुनरुक्ति भी उल्लेखनीय है—'दूध का दूध'।

उद्भवसूचक सम्बन्ध कारक

(४) सम्बन्ध कारक उद्भव अथवा साधन भी सूचित करता है, जैसे—**धूप की** सुगन्ध, धनुष टूटने का शब्द; जन्म के भिखारी।

कारणसूचक सम्बन्ध कारक

(५) सम्बन्ध कारक से कारण भी प्रकट होता है, जैसे—**पथ का** हारा-थका; कपटी के **मारने का** कुछ दोष नही; **ताप का** सताया शरीर।

स्थानसूचक सम्बन्ध कारक

(६) सम्बन्ध कारक स्थान सूचित करता है; जैसे—**मथुरा** की नारियाँ, **देस-देस** के राजा।

आयु सूचक सम्बन्ध कारक

(७) आयु भी सूचित करता है; जैसे—'जब ऊषा सात **बरस की** भई'। इस वाक्य मे सम्बन्ध कारक विधेय मे आया है।

गुण सूचक सम्बन्ध कारक

(८) गुण अथवा प्रकार सूचित होता है, जैसे—अनेक **प्रकार की** बाते, बड़े अचभे की बात है; दस **पंसेरी का** बोझ।

क क्रिया के सामान्य रूप अथवा क्रियार्थक शब्द के सम्बन्ध कारक के प्रयोग का उल्लेख यहाँ होना चाहिए। इस प्रकार के प्रयोग से कर्त्ता के दृढ निश्चय का पता चलता है। जैसे—मै **जाने का** नही, ऐसी बात नही **होने की**।

स्मरणीय—इस प्रकार के प्रयोग मे क्रिया के सामान्य रूप का सम्बन्ध कारक वाक्य के उद्देश्य का अनुबन्ध होता है और उसका प्रयोग विधेय मे किया जाता है। इसीलिए वह वाक्य के उद्देश्य के वचन तथा लिग को स्वीकार करता है। ऊपर के दोनो उदाहरणो से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

उपयोग सूचक सम्बन्ध कारक

(९) सम्बन्ध कारक से उपयोग का ज्ञान भी होता है; जैसे—खाने का पदार्थ; पीने का पानी, यह देह किसी **काम की** नही।

विधेय सम्बंन्धी सम्बन्ध कारक

(१०) सम्बन्ध कारक से वाक्य के विधेय का ज्ञान भी होता है, जैसे—बानासुर के **भागने का** समाचार, उसके **जाने का** कारण; **बिलांव का** ग्रसा चूहा।

कर्मसूचक सम्बन्ध कारक

(११) क्रिया के मुख्य अथवा गौण कर्म की सूचना भी मिलती है—जैसे—मै **तुम्हारे** भरोसे पर रहा; मुझे डर **किसका** है, **मेरे** उबटन न मलना; उसका बेटा **महादेव जी** की अति कठिन तपस्या करने लगा; अक्रूर ने प्रभु के **चरन का** ध्यान धर कहा; इस अनूठे चरित के **सुनने की** अभी और अभिलाषा है; **परमेश्वर** का पापी।

स्मरणीय—कर्त्ता सम्बन्धी अथवा कर्म सम्बन्धी सम्बन्ध कारकों के साथ और कहीं-कहीं दोनों के साथ एक ही शब्द का प्रयोग होता है। जैसे—**उनको मेरी** दया नही आई।

मूल्य तथा कालवाची सम्बन्ध कारक

(१२) सम्बन्ध कारक से मूल्य का ज्ञान भी होता है; जैसे—मुझे दस **आने का** आटा दो, यह **कितने** का घोड़ा है।

(१३) समय का ज्ञान भी होता है; जैसे—आठ **दिन की** बात है; किसी **समय की** बात है।

अंश सम्बन्धी सम्बन्ध कारक

(१४) जब किसी पूर्ण वस्तु से लिए गए अंश को सूचित करना होता है, तो सम्पूर्ण वस्तु को सम्बन्ध कारक मे प्रयुक्त किया जाता है; जैसे—**सृष्टि का** आरभ, **जमीन की** चौथाई।

क यहाँ सम्बन्ध कारक के साथ पुनरुक्त सज्ञाओ का उल्लेख करना चाहता हूँ। इस प्रकार के प्रयोग से समग्रता अथवा आधिक्य सूचित होता है, जैसे—यह **सच का** सच है, **मीठे का** मीठा, **सभा की** सभा; **झुंड के** झुड।

ख. परिमाण अथवा गुणसूचक शब्द के साथ जब कोई समग्रता सूचक शब्द आता है तब आंशिकता सूचित करने के लिए समग्र वस्तु को सम्बन्ध कारक मे प्रयुक्त नही किया जाता—जैसे दो बीघा जमीन, तीन सेर दूध; एक कटोरा पानी; दो जोडे कपडे।

सम्बन्ध कारक के अन्य प्रयोग

(१५) अन्य स्थलों पर भी सम्बन्ध कारक का प्रयोग होता है; शपथ के लिए—**गंगा जी की** कसम, उद्गार सूचित करने के लिए—गंगा माई की जय। अन्दर रखी हुई चीज के लिए—**पानी का** घडा। सम्बन्ध कारक का ऐसा प्रयोग बहुत कम स्थलो पर रूढ ढग से होता है।

विशेषण के लिए सम्बन्ध कारक

(१६) कुछ विशेषणो का प्रयोग सम्बन्ध कारक के साथ होता है; जैसे—योग्य (जोग), लाइक (लायक-अर०)।

उदाहरण—सिखाने के योग्य, **पानी के** जोग है, **चलने के** लाइक। रामायण मे इन विशेषणो का प्रयोग इस प्रकार हुआ है—तोरिबे लायक। अन्य उदाहरण है—**स्वभाव की** संकोचिनी; (वह) **शरीर की** तौ कोमल है, केवल **तप के** धनी।

अध्याहार सूचक सम्बन्ध कारक

§६९६ बहुत-से प्रचलित वाक्यो मे सम्बन्ध कारक के पश्चात् ऐसी सज्ञा का लोप होता है, जिसका अध्याहार सरलता से किया जा सकता है। जो संज्ञा लुप्त रहती है, उसी के अनुसार सम्बन्ध कारक के परसर्ग मे वचन तथा लिंग सम्ब्रन्धी परिवर्त्तन होते है। सम्बन्ध कारक के पश्चात् 'बात' शब्द का लोप बहुत प्रचलित है। √सुनना और√मानना के साथ इस प्रकार का अध्याहार बहुत होता है; जैसे—मै **तेरी** न सुनूँगा (यहाँ 'तेरी' से सम्बन्धित 'बात' शब्द का लोप हुआ है); तुम **मेरा** क्यों नही मानते हो (यहाँ मेरा से सम्बन्धित 'वचन' शब्द का अध्याहार किया जाता है)। इसी प्रकार के उदाहरण है—क्या आपके मन में कुछ कहने को है ? (यहाँ 'कुछ' के पश्चात् 'बात' शब्द का अध्याहार है); दूसरे की तो क्या चलाई (यहाँ 'दूसरे की' के पश्चात् 'सुख' शब्द का अध्याहार है) और बहुत प्रचलित प्रयोग है—'घर को' (यहाँ 'पत्नी' का अध्याहार होता है)।

इस वाक्य की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है—'आप मेरे कहने का कुछ बुरा न माने' (यहाँ 'मेरे' के पश्चात् 'बचन' का अध्याहार होना चाहिए)।

क. इस प्रकार के अध्याहार में सम्बन्ध कारक के परसर्ग सहित शब्द को आकारान्त मान लिया जाता है। विकारी कारक में उसका ओकारान्त रूप प्रयुक्त होता है; जैसे—एक बार सब **घरकों** ने महाभारत की कथा सुनी थी।

अधिकारसूचक विकारी सम्बन्ध कारक

§६९७. अधिकार सूचित करने के लिए जहाँ संज्ञा के साथ सम्बन्ध कारक का परसर्ग 'का' और सर्वनाम के साथ परसर्ग 'र' का प्रयोग होता है, वहाँ भी क्रमशः 'के' तथा 'रे' का प्रयोग किया जाता है; जैसे—**उसके** बहिन न हुई; **मेरे** एक पुत्र जन्मा; **टट्टू** के भी जीव है।

क इस नियम के व्यवहार के लिए यह बात सुझाई जाती है कि जहाँ अंग्रेजी मे क्रिया द्वारा स्वामित्व प्रकट होता है (जैसे टु हैव) वहाँ हिन्दी मे सम्बन्ध कारक मे 'रे' अथवा 'के' का प्रयोग होता है; चाहे सम्बन्धित सज्ञा का लिंग या वचन कोई भी हो। जहाँ अंग्रेजी मे संज्ञा के साथ सम्बन्ध कारक के पूर्वसर्ग का प्रयोग होता है, वहाँ हिन्दी मे सम्बन्धित शब्द के लिंग और वचन के अनुसार का, के, की अथवा रा, रे, री का प्रयोग होता है (देखिए—§६९५ (१)। उदाहरण—आई हैव वन सन=हि० मेरे पुत्र हैं; किन्तु आई हैव वन सन हि० मेरा एक पुत्र है (दो या दो से अधिक पुत्र नही है)। इसी प्रकार हि० **टट्टू** के जीव है=अं० ए पोनी हैज ए सोल; किन्तु—हि० **टट्टू** का जीव है=अ० इट इज द सोल आफ ए पोनी। रामायण का ऐसा ही उदाहरण है—नाथ एक ससय बड़ **मोरे**।

ख. हिन्दू वैयाकरणों का कथन है कि जहाँ 'एक' पर जोर देना होता है, वहाँ सम्बन्ध कारक के परसर्ग 'रा' अथवा 'का' का प्रयोग होता है, जैसे—आई हैव ए सन=हि० **मेरे** पुत्र है; किन्तु आई हैव वन सन= हि० (अर्थात् एक ही पुत्र है, एक से अधिक पुत्र नही है) हि० **मेरा** एक पुत्र है।

स्मरणीय—इस 'के' के साथ सामान्यतया 'पास' अथवा 'यहाँ' शब्द का अध्याहार होना चाहिए। भारतीय वैयाकरण इस स्थान पर किसी शब्द का अध्याहार नही मानते। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि मारवाडी मे सम्बन्ध कारक के परसर्ग 'रो' अथवा 'को' पुल्लिगवाची विकारी रूपो मे 'रा' और 'का' तथा स्त्रीलिंगवाची विकारी रूपो मे 'री' तथा 'की' बनते है; फिर स्वामित्व का बोध कराने के लिए ये परसर्ग तीसरा विकार धारण करते है, इस तीसरे विकार मे स्त्रीलिग तथा पुल्लिग दोनो मे 'रे' तथा 'के' का प्रयोग होता है। इसीलिए मेरा विचार है कि केवल अधिकारसूचक 'के' ही पुल्लिग का विकार ग्रहण किए हुए है, और वास्तव मे सस्कृत के कृदन्त 'कृत' से विकसित हुआ है।

सम्बन्ध कारक के परसर्ग की उपेक्षा

§६९८. गद्य मे भी बहुत स्थलो पर सम्बन्ध कारक के परसर्ग का प्रयोग नही होता और सम्बन्धित शब्द वैसे ही प्रयुक्त होता है। ऐसे स्थलो पर दोनों सज्ञाएँ सम्बन्ध तत्पुरुष मे समासित होती है (देखिए—§६२३ (५)। बातचीत मे सम्बन्ध कारक की उपेक्षा प्रायः नही होती।

क. रूढि के कारण इस प्रकार के वाक्यों मे सम्बन्ध कारक का परसर्ग लुप्त रहता है; 'सो **मुंह** माँगा धन पावेगा; **हाथ** लगी वस्तु।

ख. तिथि सम्बन्धी वाक्यांश में सम्बन्ध कारक का परसर्ग प्रयुक्त नही होता; जैसे—जेठ सुदी पचमा। अग्रेजी के तिथि सम्बन्धी वाक्याश में सम्बन्धसूचक परसर्ग प्रयुक्त होता है।

वाक्यों में सम्बन्ध कारक

§६९९ कहीं-कहीं क्रिया अथवा वाक्य के साथ सम्बन्ध कारक के परसर्ग का प्रयोग होता है। इस स्थिति मे पूरा वाक्य अथवा क्रिया का उपयोग सज्ञा की भाँति किया जाता है। 'मदनमजरी नाटक' का यह वाक्य उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत है—'पकड़ो पकडो **मारो मारो का** शब्द', यहाँ शब्द से पूर्व सम्बन्ध कारक के परसर्ग 'का' का प्रयोग 'मारो' को सज्ञा का रूप प्रदान करता है।

कविता और सम्बन्ध कारक

§७०० ऊपर दिए गए नियमो के अनुसार कविता मे भी सम्बन्ध कारक के परसर्ग का, के, कर, क, कौ, केरे, केरा, केरी अथवा केर का प्रयोग होता है; जैसे—**देवन हू कौ** देव मुरारी, **सुरपति की** पूजा तजी, **तीन लोक कौ** बोझ ले, चरन कमल बदौ **सब केरे**, मिटहि दोष दुख **भव रजनी** के; न आज लगि अनभल **काहुक** कीन्हि।

क रामायण की इस पक्ति मे मारवाड़ी के परसर्ग 'रे' का प्रयोग हुआ है—**सियरे** बदन सूख गौ।

अधिकरण कारक

§७०१ (१) मे, (२) पर, (३) तक, तलक, लग, लौ आदि अधिकरण कारक के परसर्ग है। इन परसर्गों का प्रयोग समान अर्थ मे नही होता, इसीलिए यहाँ प्रत्येक वर्ग के परसर्ग पर पृथक्-पृथक् विचार किया जाता है।

स्थान के लिए अधिकरण कारक : 'ले' परसर्ग

§७०२ (१) 'मे' परसर्ग के साथ अधिकरण कारक किसी स्थान मे 'रहने' को सूचित करता है, उदाहरण—उसने **ब्रज में** जन्म लिया, इस **संसार में** ।

क. गतिसूचक क्रिया के साथ अधिकरण कारक के परसर्ग 'मे' का अर्थ है—'को', 'अदर'। उदाहरण—वह **सभा में** गए, हस्तिनापुर मे **राजसु यज्ञ में** आइए।

ख ऐसे स्थलो पर अधिकरण का आशय होता है—'बीच में', उदाहरण—**स्त्रियों में** इतनी दमक कहाँ पाइये, **हमों में** कौन है।

ग कहीं-कही 'मे' परसर्ग 'पर' का अर्थ देता है, जैसे—**पैरों में** गिर पडा, आपके **चरनों** मे प्रणाम करती हूँ।

'में' के पश्चात् आनेवाली क्रियाएँ

घ बाँधने सख्त करने पहनने आदि को सूचित करने वाली सभी क्रियाओ के पहले 'में' परसर्ग युक्त अधिकरण कारक का प्रयोग होता है, उदाहरण—**इसमें** गाँठ बाँधो, गदे कठले **गले में** डाले खेलते थे। प्रसग मे लगना का उल्लेख भी होना चाहिए, जैसे—न तो प्रजा के **उपकार में** चित्त लगता है।

ङ. मरना क्रिया के पहले भी 'मे' का प्रयोग होता है, जैसे—इस **समुद्र में** चिन्ता औ मोहरूपी जल भरा है।

समयसूचक 'में' युक्त अधिकरण कारक

(२) 'में' परसर्ग युक्त अधिकरण कारक घटना के समय को सूचित करता है; उदाहरण—उन **दिनों में**, कितने एक **दिनों में** पहुँचे।

'में' युक्त अधिकरण कारक के विभिन्न प्रयोग

(३) 'में' परसर्ग युक्त अधिकरण कारक के विभिन्न प्रयोगों का परिचय इस प्रकार है—

क विरोध प्रदर्शित करने के लिए—**हम तुम में** कुछ भेद नहीं; लड़ाई सूचित करने वाली क्रियाओं से पहले—उन **दोनों में** युद्ध रहा।

सन्धि अथवा मेल सूचित करने के लिए—**उनमें** मेल हुआ।

ख क्रिया की सामर्थ्य सूचित करने के लिए—**इसमें** मेरा कुछ श्रम नहीं, हाथ-पैर तौ कहने ही में नहीं है।

ग. चर्चा के विषय को व्यक्त करने के लिए 'उनकी **स्तुति** मे मै क्या कहूँ ?' कार्य सूचित करने के लिए 'वह अपने पति की **सेवा में** रही।'

घ. स्थिति सूचित करने के लिए—'पति के **ध्यान में** सो गई।'

ङ कारण सूचित करने के लिए—'अल्प ही **अपराध में** क्रोध कर।'

च. उपकरण सूचित करने के लिए—'उसने एक ही **तीर में** इस अजगर का काम तमाम किया।'

छ 'में' युक्त अधिकरण कारक का प्रयोग अपादान कारक के स्थान पर तुलना के लिए होता है—'इन तीनो देवताओ मे शीघ्र वरदाता कौन है ?'

ज कुछ क्रियाओ से पहले अधिकरण कारक का प्रयोग मूल्य सूचित करने के लिए होता है, जैसे—**चार आने** मे कितनी घास मिलेगी ?; यह गाय मैंने तीस **रुपये में** मोल ली।

झ. स्नेह प्रकट करने के लिए भी इस कारक का प्रयोग होता है; जैसे—'मेरा भी इन **वृक्षों में** सहोदर का-सा स्नेह हो गया है।

स्मरणीय—मूल्य सूचित करने के लिए कर्मकारक, सम्बन्ध कारक और अधिकरणकारक तीनो का प्रयोग होता है। इन तीनो का अन्तर इस प्रकार है—सम्बन्ध कारक आरोपित मूल्य को प्रकट करता है; जैसे—'यह **कितने का** हीरा।' कर्मकारक से वस्तु की खरीदी का निश्चित मूल्य ज्ञात होता है—'यह तुमने **कितने को** लिया।' अधिकरण कारक के द्वारा कुछ भिन्न प्रकार के मूल्य का ज्ञान होता है, उससे मूल्य की सीमा ज्ञात होती है; जैसे—'यह मुझे एक **रुपये में** मिला।'

ञ अंश को व्यक्त करने के लिए समग्रतावाची संज्ञा के साथ अधिकरण कारक का प्रयोग होता है, जैसे—नव महि एकौ जिन्ह के होई।

'पर' सहित स्थानवाचक अधिकरण कारक

§७०३ 'पर' सहित स्थानवाचक अधिकरण (१) बाहरी सम्पर्क को प्रकट करता है। इसके निम्न भेद है—

क. किसी चीज के आधार को प्रकट करने के लिए; जैसे—वह कोठी पर बैठा हुआ था। आधार सूचित करने के लिए 'पर' युक्त अधिकरण कारक का प्रयोग कुछ विशेष क्रियाओ के साथ होता है, जैसे—

घोड़े पर चढ़ो। क्रिया के अनुसार अंग्रेजी मे 'पर' का अनुवाद 'अट' (at) अथवा 'टु' (to) होता है। जैसे—वह **द्वार पर** खड़ा है; उस अंधे **कुएं पर** गिर गये।

ख दूरी प्रकट करने के लिए; जैसे—काशी से कुछ **दूर पर**, एक कोस पर।

ग. अधिकता सूचित करने के लिए; जैसे—**दिन पर** दिन तू दुबली होती जाती है।

(२) क्रिया के समय को सूचित करता है; जैसे—वह ठीक **समय पर** आया; पाँचवें **दिन पर।**

'पर' सहित अधिकरण कारक के विभिन्न प्रयोग

(३) 'पर' परसर्ग सहित अधिकरण कारक का प्रयोग कई अर्थों मे होता है—

क ऐसा कर्म जिसकी ओर भावना अथवा क्रिया अग्रसर हो रही है, उस कर्म को अधिकरण कारक मे परसर्ग के साथ प्रयुक्त करते हैं, जैसे—**हम पर** दया कीजे; इस **बात पर** मन लगाओ; सिहनी **तुझ पर** दौडेगी।

ख चर्चा के विषय को प्रकट करता है; जैसे—षड्दर्शनो के **मत पर** सहस्रो ग्रन्थकर्त्ता हुए हैं; **इस पर** यदि तुम कहो।

ग नियम तथा रूढिपालन व्यक्त करता है; जैसे—हम अपने **धर्म पर** रहेगे।

घ श्रेष्ठता सूचित करने के लिए, जैसे—इन्द्र का कुछ **तुम पर** न बस आया।

ङ किसी कार्य का कारण तथा आधार सूचित करने के लिए, जैसे—मेरी इस **बात पर** वह जल गया।

च यदि 'पर' के पश्चात् 'भी' का प्रयोग हो तो अधिकरण कारक का आशय होगा, अन्यथा; होते हुए भी; उदाहरण—इस **दुर्बलता पर** भी शरीर कैसा रमणीय है।

छ. कर्मवाच्य रूप के साथ बहुत कम स्थलों पर अधिकरण कारक का प्रयोग कर्मकारक के स्थान पर हुआ है, जैसे—**मो पै** चल्यौ नही जातु ("राजनीति")।

सीमा सूचित करने वाला अधिकरण कारक

§७०४. तक, तलक, लग अथवा लों के साथ अधिकरण कारक लाक्षणिक अथवा वास्तविक रूप से क्रिया की सीमा को व्यक्त करता है। इस वर्ग के परसर्गों मे अर्थ सम्बन्धी भेद नही होता। उदाहरण हैं—**नाक तक** पानी आया; लड़के से ले बूढ़े तक।

क. इस पक्ति में अधिकरण कारक का विशेष प्रयोग दिखाई देता है: **हम लौं** तू निज पियहि सम्हारे।

अधिकरण कारक के परसर्ग का लोप

§७०५. गद्य तथा बोलचाल में अधिकरण कारक के परसर्ग 'मे' तथा 'पर' का प्राय: प्रयोग नही होता। कालवाची तथा स्थानवाची क्रियाविशेषणों के साथ अधिकरण कारक के परसर्ग का लोप विशेष रूप से होता है, उदाहरण—'उस **समय में**' अथवा 'उस समय पर' के स्थान पर 'उस समय'; **पाँओं** पडि, **पूरे दिनों** लड़का हुआ; वह घर गया; मेरा मन इसके **बस** हुआ; उसका पिता **घर** नही है; मेरे **जान** यह हेतु होगा; इसी प्रकार से—मेरे जाने।

क. सज्ञा और क्रिया के योग से बननेवाली क्रिया के साथ 'मे' का प्रयोग अनिवार्य नही है; जैसे—**काम** आना ('काम में आना'); ब्याह करना; ब्याह देना, दृष्टि आना। गद्य में अधिकरण कारक के परसर्ग 'तक' तथा उसके पर्यायों का लोप नही होता।

कविता में अधिकरण कारक

§७०६ कविता में अधिकरणकारक के परसर्गों का प्रयोग सम्बन्धित शब्द के साथ होता है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे है—

(१) उपजहि एक सग **जल माहीं**; ते उबरे तेहि काल महँ; की तुम तीन **देव महं** कोऊ; राम-प्रताप प्रगट **इहि माही**; सुमिरन **कर में** सुरत न **हर में**।

(२) कपि **डार पर**, भले **भलाईयं** लहहिं, जो तुमहि **सुता पर** नेहू।

(३) कहउँ **कहाँ लगि** नाम बडाई।

क गद्य की अपेक्षा कविता में इन परसर्गों की अधिक उपेक्षा होती है; किन्तु किसी अधिकरण कारक का विशेषण यदि विकारी बन सकता है तो वह अवश्य विकार ग्रहण करता है; निम्न पक्तियो मे माहिं (मे) का प्रयोग नही हुआ है—इहि कर नाम सुमिरि **संसारा**; है तुम्हरे **सेवा** बस राऊ। इन दोनों पक्तियो को गद्य मे लिखा जाता तो अधिकरण कारक की सज्ञा के साथ 'पर' परसर्ग का उपयोग अवश्य होगा—मयिउ **सरोज विपिन** हिम रानी; पठइय नाथ **काज**। और इन पक्तियो को गद्य मे लिखते समय 'तक' परसर्ग का प्रयोग अवश्य किया जाएगा—तीनि सहस्र **संवत** सो खाई, **गगन** चढै रज।

दो परसर्गों का प्रयोग

§७०७ चाहे कविता हो, चाहे गद्य हो, चाहे बोलचाल की भाषा, अधिकरण कारक की सज्ञा अपने कारक के परसर्ग के साथ दूसरे किसी कारक का परसर्ग भी स्वीकार करती है। दोनो परसर्गों का अपना-अपना अर्थ बना रहता है, उदाहरण—**हम में से** कौन है; **पुर में** का एक मनुष्य, कोई **राजसभा में तें** निकलयौ, दिल्ली की गद्दी पर से अहमदशाह को उठाया; अँगूठी मिल **जाने तक का** वृत्तान्त, अपने **शिष्यों तक को** न सिखाया।√गिरना क्रिया से पहले अधिकरण कारक के परसर्ग के साथ प्राय. किसी अन्य कारक का परसर्ग भी जुडता है, जैसे—उस **डाली पर से** गिरा।

क इसी तरह मारवाडी के अधिकरण कारक के परसर्ग 'माहै' (स्त० हि० मे) के साथ कर्म-कारक का परसर्ग 'नै' (स्त० हि० को) जुडता है। दोनो परसर्गों का अर्थ होता है—अन्दर। 'डूगरसिह' का वाक्य है—कूद पडो किल्लाक माही नै।

अनेक संज्ञाओं के साथ एक परसर्ग

§७०८ परसर्गों से बनने वाले कारको के सम्बन्ध मे जानकारी देने के पश्चात् यहाँ इतना उल्लेख और करना चाहता हूँ कि ये परसर्ग कारकों की विभक्ति नही हैं। ये एक प्रकार से सहयोगी अव्यय अथवा वर्ण है। कई बार बिना परसर्ग के बहुत-सी सज्ञाएँ लगातार एक साथ प्रयुक्त होती है। इस स्थिति मे परसर्ग अन्तिम सज्ञा के साथ जुडता है, जैसे—राजा भीमसेन **की** कन्या दमयन्ती **का** रूप, फल फूल कद मूल **से** गुजारा करने लगा। जब अनेक सज्ञाओं से अनेकता का बोध अपेक्षित हो तो प्रत्येक सज्ञा के साथ परसर्ग का प्रयोग होता है, जैसे—नन्द जसोदा ने **हमने तुमने** यह वचन किया था।

सम्बोधन

सम्बोधन का प्रयोग

§७०९ किसी को बुलाने अथवा सम्बोधित करने के लिए सम्बन्ध कारक का प्रयोग किया जाता है। सम्बोधन कारक मे शब्द के पूर्व उद्गारवाची अव्ययो का प्रयोग होता भी है और नही भी होता, उदाहरण— **हे बेटे** पक्षियो सुनो, **पुत्री** ऐसी विकल मत हो, **सारथी** रथ को हाँको।

क जिन शब्दो के अन्त मे आई आता है उनके सम्बोधन कारक मे यह अन्त्य 'आई' 'इया' मे परिवर्तित होती है, जैसे 'भाई' और 'माई' के सम्बोधन कारक का रूप है—भइया, मइया। इस स्थिति मे दवालो मे सज्ञा के साथ प्राय: 'ओ' जोडते है, जैसे—हे पचमो, आदि।

ख कविता मे कवि लोग अपने नाम को स्वयं सम्बोधित करते है, जैसे—मंगलकरनी कलमलहरनी **तुलसी** कथा रघुनाथ की, **तुलसी** ऐसे पतित को बार बार धिरकार।

विशेषण

विशेष्य-विशेषण और विधेय विशेषण

§७१० वाक्य मे विशेषण की रचना के सम्बन्ध मे अधिक लिखने की आवश्यकता नही है। ये किसी सज्ञा की विशेषता या तो (१) विशेष्य-विशेषण के रूप मे, या (२) विधेय विशेषण के रूप मे बताते हैं।

(१) विशेष्य-विशेषण के उदाहरण है—**बड़ा** नगर, **मीठी** वाणी; **बड़े** घोडे। (२) विधेय विशेषण के उदाहरण है—वह अति **सुन्दर** थी, यह जल **ठंडा** है, मैंने उसको **व्याकुल** देखा, यह लाठी **सीधी** बनी है।

क संज्ञा के साथ विशेष्य-विशेषण अथवा विधेय विशेषण का क्या सम्बन्ध है, इस बारे में आगे चल कर लिखा जाएगा।

संज्ञा की भाँति विशेषणों का प्रयोग

§७११ विशेषणो का प्रयोग सज्ञा की भाँति भी होता है। जब उनका प्रयोग सज्ञा की भाँति होता है तो वे समान अन्त्य वर्ण वाली सज्ञा की भाँति विकार ग्रहण करते है; जैसे—उस **सरीखे** को मत मानो।

क जब दो विशेषण सज्ञा की भाँति एक ही कारक के बहुवचन मे प्रयुक्त होते है और दोनो को कोई समुच्चयबोधक संयोजक जोडता है तो पहला विशेषण एकवचन मे तथा दूसरा बहुवचन मे प्रयुक्त होता है, उदाहरण—**छोटे** को **बड़ों** ने कहा।

क्रियाविशेषण की भाँति विशेषणों का प्रयोग

§७१२ कुछ विशेषण क्रियाविशेषण की भाँति प्रयुक्त होते है। जब विशेषण क्रियाविशेषण के रूप मे प्रयुक्त होता है तो वह विकार ग्रहण नही करता।

'बड़ा' और 'बहुत' ये दोनों विशेषणवाची शब्द हैं, किन्तु इनका प्रयोग क्रियाविशेषण के रूप मे भी होता है; जैसे—यह **बड़ा** कठोर है; वह तो **बहुत** सुन्दर पद है।

विशेषणों का तुलनात्मक रूप

§७१३. विशेषणों के तुलनात्मक रूपो की सोदाहरण व्याख्या §२०७, §२१०. मे की गई है। यहाँ इतना और जोड़ना चाहता हूँ कि जब किसी गुण की अत्यधिक मात्रा बतानी हो तो पुनरुक्त विशेषण के द्वारा ऐसा किया जाता है, जैसे—काला काला; मीठे मीठे फल।

क श्रेष्ठता पर अधिक बल देने के लिए पुनरुक्त विशेषणो मे से प्रथम को सज्ञा की भाँति अपादान कारक अथवा सम्बन्ध कारक मे प्रयुक्त करते हैं; जैसे— **भारी से** भारी पाप, **अच्छे** के अच्छे काम।

ख. विशेषणों का यह प्रयोग उल्लेखनीय है—दोनों पापो मे **कौन-सा** बड़ा है ?

§७१४. सभी तुलनात्मक विशेषणों के लिए (देखिये §६९१ (७)) संज्ञा की आवश्यकता पड़ती है। जिसके साथ तुलना की जाती है, उसे अपादान कारक मे प्रयुक्त करते है; जैसे— **पत्थर** से भारी; **राजा** से धनी; सब **जीवों से श्रेष्ठ**, यह **उससे** उत्तम है।

§७१५. कुछ विशेषणो के लिए परसर्गयुक्त सज्ञा की आवश्यकता पड़ती है। विशेष रूप से—

(१) जो विशेषण सामर्थ्य अथवा पात्रता, असामर्थ्य और अयोग्यता को प्रकट करते है, वे कर्म-कारक मे प्रयुक्त सज्ञा के साथ आते हैं; जैसे—**स्त्री** को उचित है; **हमको** योग्य है (देखिये—§६८६. (४)। किन्तु कहीं-कहीं 'योग्य' का प्रयोग सम्बन्धकारक की सज्ञा के साथ भी होता है; जैसे—**पानी के** योग्य है।

(२) जिन विशेषणो से सादृश्य, पुष्टि और योग्यता का भान होता है अथवा इनके विपरीत तथ्यों की जानकारी मिलती है, उनका प्रयोग सम्बन्ध कारक के विकारी परसर्ग 'के' के साथ होता है; जैसे—बादल के गरज के समान,[1] इसके तुल्य। इसी भाँति 'योग्य' (= क०-लायक) का प्रयोग होता है; जैसे—यह पडित के योग्य है।

क. इस प्रकार के विशेषणों से पहले क्रियार्थक सज्ञा अथवा धातु आती है तो गद्य मे सामान्यतया और कविता मे विशेषरूप से विशेषण से पहले परसर्ग का प्रयोग नही होता; जैसे—तुम मेरे **पुत्रनि कौं** पडित करबे जोग हौ; मैं तव **दसन** तोरिबे लायक।

(३) क्रियाओं से कुछ ऐसे विशेषण बनते हैं, जिनसे इच्छा अथवा प्रेम का भाव प्रकट होता है। इन विशेषणो से पूर्व सम्बन्धकारक का प्रयोग किया जाता है (देखिये §६९५. (११); जैसे—रुपयो का लोभी, वह धन का लालची है।

विशेषणवाची शब्द

§७१६ विशेषण के लिए प्रयुक्त 'भर' शब्द अकेला कभी प्रयुक्त नही होता। इस प्रकार के प्रयोगों में 'भर' शब्द अव्यय की स्थिति रखता है। हम अंग्रेजी के 'फुल' (full) शब्द की तुलना इस शब्द से कर सकते हैं; जैसे—स्पूनफुल, हाउस फुल। अन्तर इतना ही है कि अँग्रेजी के फुल (full) की अपेक्षा 'भर' का प्रयोग अधिक व्यापक अर्थ मे होता है। 'भर' के पूर्व सज्ञा नियमानुसार उसी प्रकार विकार ग्रहण करती है, जिस तरह कि किसी परसर्ग के पूर्व। उदाहरण निम्न प्रकार है—हाँडी भर, पियाले भर। दूरी सूचित करनेवाली सज्ञाओ के साथ भी 'भर' शब्द का प्रयोग किया जाता है; जैसे—कोस भर। समय सूचित करनेवाली सज्ञाओ के साथ भी; जैसे—दिन भर; मेरे जीवन भर;

---

[1] 'गरज' शब्द के कारण इस वाक्य की रचना होगी—'बादल की गरज के समान'।

सर्वनामो से बनने वाले विशेषणो के साथ इतना भर, उतना भर। सर्वनामो से बननेवाले विशेषणो के साथ 'भर' का प्रयोग अवधारण के लिए किया जाता है, जैसे—जितना उसने मुझे दिया **उतना भर** मै उसे फिर दे आऊँगा।

क स्त्रीलिंगवाची शब्द जब 'भर' के साथ आता है तो उसके रूप पुल्लिंग की तरह चलते है; जैसे—उसे **रात भर** जागते बीता है।

स्मरणीय—'जीवनभर' और 'उतना भर' आदि मे 'भर' के पूर्व सज्ञा ने किसी प्रकार का विकार ग्रहण नही किया। इस प्रकार के प्रयोगो मे 'भर' शब्द √ भरना के यौगिक कृदन्त के रूप मे प्रयुक्त हुआ है।

§७१७ 'सा' और 'सरीखा' के योग से बननेवाले विशेषणो की चर्चा §§२०१, २०२ मे की गई है। वहाँ ऐसे अनेक विशेषणों के उदाहरण' देखे जा सकते है।

§७१८. सज्ञा के साथ 'नाम' शब्द के योग से बनने वाले विशेषणो का उल्लेख भी यहाँ होना चाहिए। उदाहरण निम्नप्रकार है—वह गधर्वो का **हेमकूट नाम** पर्वत है, कल्यान कटक नगर मे **भैरव नाम** व्याधी। इस प्रकार के प्रयोगो मे सज्ञा और 'नाम' शब्द तत्पुरुष समास के नियमो से समासित हुए है[1]।

संख्यावाची विशेषण

संख्यावाची शब्दों का प्रयोग

§७१९ अग्रेजी मे कुछ स्थलो पर अनिश्चय सूचक पूर्वाव्यय 'वन' (one) का प्रयोग 'निश्चित' के लिए होता है। हिन्दी मे 'एक' शब्द का प्रयोग इसी प्रकार के पूर्वाव्यय के स्थान पर किया जाता है। उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

एक पुरुष ने मुझसे कहा; **एक** दिन की बात है।

स्मरणीय—यह देखा गया है कि अधिकांश यूरोपीय लोग अनिश्चय सूचक पूर्वाव्यय के स्थान पर 'एक' शब्द का प्रयोग बहुत करते है; किन्तु यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि अँग्रेजी का अनिश्चय सूचक पूर्वाव्यय हिन्दी मे अनुवादित नही किया जा सकता।

§७२०. जब वाक्य मे 'एक' शब्द दुहराया जाता है तो उसका अर्थ होता है 'प्रत्येक' अथवा 'सब' अथवा 'एक दूसरे'। किन्तु जब पहला 'एक' कर्तृसम्बन्धी वाक्याश मे और दूसरा 'एक' कर्मसम्बन्धी वाक्याश मे प्रयुक्त होता है तो प्रथम 'एक' का अर्थ होगा 'एक' और दूसरे एक का अर्थ होगा 'अन्य' अथवा 'दूसरा'। दोनों प्रकार के उदाहरण निम्न प्रकार है—एक एक चला गया, उसने एक एक को वहाँ पहुँचा दिया; एक एक से लड़ा; एक एक से जुट गया। जब 'एक' शब्द का प्रयोग लगातार दो वाक्यांशो मे होता है तो प्रथम 'एक' का अर्थ होगा—एक, और द्वितीय 'एक' का अर्थ होगा अन्य अथवा दूसरा। जैसे—**एक** आता **एक** जाता था।

§७२१. कही-कहीं वाक्य के आरंभ मे प्रयुक्त 'एक' के साथ किसी न किसी शब्द का अध्याहार करना पड़ता है; जैसे—'**एक** तुम्हारे ही दुख से हम दुखी है' इस वाक्य मे 'एक' शब्द के साथ 'बात' का अध्याहार करना पड़ता है। यदि गिनना समाप्त न हो तो 'दूसरा' शब्द आगामी वाक्य के साथ प्रयुक्त

---

[1] देखिए, §६३०, क।

होता है। 'दूसरा' के स्थान पर 'फिर' अथवा 'पुनि' का प्रयोग भी देखा जाता है; जैसे—**एक** मैं मन्दमति, **पुनि** प्रभु मोहि बिसारेउ।

§७२२. 'एक संग' अथवा 'एक साथ' का अर्थ है 'मिलकर', जैसे—जनमे **एक संग** सब भाई; सिंह गाय एक साथ रहते। इस प्रकार के प्रयोगो मे 'संग' अथवा 'साथ' शब्द का प्रयोग अविकरण कारक मे मानना चाहिए। इनके साथ 'मे' अथवा 'पर' परसर्ग का उपयोग नही होता।

§७२३. संख्यावाची शब्दों के एकवचन अथवा बहुवचन सम्बन्धी प्रयोगों के लिए देखिये §६७४ (१) क, स्मरणीय।

§७२४. बोलचाल मे 'तक' परसर्ग के साथ संख्यावाची शब्द का प्रयोग अँग्रेजी के 'ऐज मेनी ऐज' (as many as) अथवा ऐज़ मच ऐज' के पर्याय के रूप मे होता है; जैसे—दस तक आए; मैने चार हाथी तक देखे।

समूहवाचक का प्रयोग

§७२५. संख्यावाची शब्द का समूहवाची 'ओं' वाला रूप (देखिये- §२२३) सम्बन्धित संज्ञा की समग्रता को सूचित करता है; जैसे—आठो पहर; चहुँदिस, तीनों लोक; सो छओ बसुदेव को ब्याह दीं।

सर्वनाम

सर्वनामवाची शब्दों की उपेक्षा

§७२६. सामान्यतया क्रिया के कर्त्ता के रूप मे प्रयुक्त व्यक्तिवाचक सर्वनाम की उपेक्षा की जाती है।

क. इस प्रकार सर्वनाम का अप्रयोग उस समय होता है, जब सर्वनाम से व्यक्त होने वाली संज्ञा पर बल देना अभीष्ट न हो। उदाहरण के लिए सम्बोधन के साथ व्यक्तिवाचक सर्वनाम का प्रयोग प्रायः नही होता; जैसे—जाओ (यहाँ 'तुम' का प्रयोग नही हुआ) बोलूँ? (यहाँ मैं का प्रयोग नही हुआ)।

सर्वनामों की अन्विति

§७२७. सर्वनाम के लिंग तथा वचन का निश्चय उस संज्ञा के आधार पर होता है, जिसके स्थान पर उस सर्वनाम का प्रयोग हुआ है; जैसे—राजकन्या **जो** भौमासुर ने घेर रखी थी; वह **हमारी** भक्ति का प्रभाव महर्षि से कहेगी।

क. जब किसी के प्रति आदर व्यक्त करना होता है तो सर्वनामवाची शब्द का प्रयोग बहुवचन में किया जाता है। इस स्थिति मे बहुवचन का प्रयोग उस स्थल पर भी होता है, जहाँ नियमानुसार एकवचन का प्रयोग होना चाहिए; जैसे—'तहाँ के राजा... **इन्हें** ले जाते थे' यहाँ 'इन्हे' का प्रयोग बलराम के लिए हुआ है; 'हम **उन्हीं का** ध्यान किये रहते है' इस वाक्य मे 'उन्ही' का प्रयोग कृष्ण के लिए हुआ है।

ख द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम के बहुवचन का प्रयोग एकवचन के स्थान पर होता है। इस सम्बन्ध मे §२५९ मे बहुत कुछ लिखा गया है।

ग. पूरबी हिन्दी में प्रथम पुरुषवाची सर्वनाम के एक वचन 'मैं' के स्थान पर बहुवचन 'हम' प्रयुक्त होता है। उच्च हिन्दी मे 'मैं' के स्थान पर 'हम' का प्रयोग ठीक नही माना जाता, इसीलिए वक्ता को इस

प्रकार के प्रयोग से बचना चाहिए और सदैव अपने लिए 'मैं' का प्रयोग करना चाहिए। साहित्यिक पुस्तको मे भी 'मैं' के स्थान पर 'हम' का प्रयोग मिलता है। इस सम्बन्ध मे किसी नियम का उल्लेख करना हमारे लिए सभव नही है। 'शकुन्तला' के प्रत्येक पृष्ठ पर 'मैं' के स्थान पर 'हम' का प्रयोग देखा जा सकता है।

§७२८. जब किसी सर्वनामवाची शब्द का प्रयोग 'दोनो' के साथ होता है, तो सर्वनामवाची सदैव बहुवचन में प्रयुक्त होता है और विकारी कारक मे परसर्ग का प्रयोग 'दोनो' के पश्चात किया जाता है; जैसे—हम दोनों का, तुम दोनो से। सम्बन्धकारक मे 'दोनों' के पूर्व सर्वनाम का विभक्ति सहित रूप प्रयुक्त होता है; जैसे—तुम्हारी दोनो की परस्पर प्रीति।

आदरार्थक सर्वनाम

§७२९ द्वितीय पुरुष के लिए आदरार्थक सर्वनाम 'आप' प्रयुक्त होता है। इस सम्बन्ध मे २७७ मे बहुत कुछ कहा जा चुका है।

§७३०. ऊपर जिन सर्वनामों को उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया गया है, यदि उन्हे अन्य प्रसगों मे प्रयुक्त किया जाये तो उनकी स्थिति भिन्न प्रकार की होगी। 'शकुन्तला' मे राजा दुष्यन्त जब शकुन्तला की प्रतारणा करता है तो शकुन्तला उसके लिए तुरन्त 'आप' के स्थान पर 'तू' का प्रयोग करती है, जैसे—'तू अपना-सा कुटिल हृदय सबका जानता है।' 'प्रेमसागर' मे एक लड़की अपनी सहेली से कहती है—'सखी तू कुछ चिन्ता मत करे', इस वाक्य मे 'तू' घनिष्ठता तथा स्नेह का परिचायक है। इसी प्रकार से 'शकुन्तला' नाटक का विदूषक माधव्य जब राजा दुष्यन्त से कहता है—'अहो मित्र तू यही है' तो यहाँ 'तू' से अपमान प्रकट नही होता। यहाँ 'तू' न से यह ध्वनि निकलती है कि राजा तथा विदूषक में समानता का व्यवहार था। विदूषक स्वतंत्रता और मैत्री का लाभ उठाकर आदरार्थक 'आप' के स्थान पर द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम का प्रयोग करता है—'रानी **तुम्हारे** सुनाने को अभ्यास कर रही है।' छोटा भाई बड़े भाई के लिए द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम का प्रयोग करता है—'**तुम्हारे** साथ पासा खेले।' किन्तु पुत्र पिता से कहता है—'आप इतना बतला दीजिए।' बलराम तथा अन्य लोग कृष्ण से कहते है—'**आपकी** आज्ञा ले।

§७३१. यदि 'आप' का प्रयोग कर्त्ताकारक मे हुआ है तो क्रिया का प्रयोग सर्वत्र तृतीय पुरुष के बहुवचन में होता है। आपके साथ विधि के रूपो मे 'इये' अथवा 'इयेगा' जोड़ा जाता है। यदि कही इस नियम का अपवाद पाया जाय तो उसका अनुकरण नही करना चाहिए। इन उदाहरणो पर ध्यान दीजिए—

आप कहाँ जाते हैं; महाराज ऐसे आपने क्या चिन्ह देखे; आप सिधारिये।

'आप' के साथ क्रिया सदैव बहुवचन में आती है; जैसे—कण्व इसके पिता **कहाते** हैं।

क. 'शकुन्तला' के अनुवाद में राजा लक्ष्मण सिंह ने अधिकांश स्थलो पर 'आप' के साथ क्रिया के द्वितीय पुरुषवाची बहुवचन का प्रयोग किया है; जैसे—आप अगलों की रीति पर **चलते हो**। विदेशी लोगो को इस प्रकार के उदाहरणों का अनुकरण नही करना चाहिए।

स्मरणीय—हिन्दू लोग आदरार्थक सर्वनाम और द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम के अन्तर को बहुत महत्व देते है। दूसरी ओर विदेशी लोग सामान्य जनता की बातचीत मे इस अन्तर को हृदयंगम नही कर सकते, अतः वे सहज भाव से 'आप' के स्थान पर 'तुम' का प्रयोग कर बैठते है। फल यह होता है कि हिन्दू लोग विदेशियों के प्रति बुरी भावना बना लेते हैं।

सर्वनामों का कर्म तथा सम्प्रदानकारक

§७३२. सम्प्रदान तथा कर्मकारक के दोनो वचनों मे सर्वनामो के दो-दो रूप मिलते हैं। इन रूपों का प्रयोग बहुत कुछ ध्वनि सम्बन्धी सुविधा पर निर्भर है। किन्तु §६७८ (१) के अनुसार 'को' वाला रूप कर्मकारक मे व्यक्ति के लिए अधिक पसन्द किया जाता है।

क यदि एक ही वाक्य मे कर्म और सम्प्रदानकारक का प्रयोग हुआ है तो 'को' वाला रूप कर्मकारक के लिए और 'ए' (बहुवचन-एँ) वाला रूप सम्प्रदान कारक के लिए अधिक अच्छा समझा जाता है।

संकेतवाचक सर्वनाम का प्रयोग

§७३३. निकटवर्ती सकेतवाचक सर्वनाम के अपादानकारक का प्रयोग परिणाम अथवा निर्णय सूचित करने के लिए होता है, जैसे—**इससे** अब तुम तीरथ न्हाय आओ।

§७३४. जब 'यह' और 'वह' का प्रयोग विरोधसूचक वाक्याशो मे होता है तो 'यह' का तात्पर्य 'एक' और 'वह' का तात्पर्य 'अन्य' अथवा 'दूसरा' होता है। जैसे—'ये घरे बनमाल वे मुंडमाल।'

सर्वनामों का वैशेषणिक प्रयोग

§७३५. सकेतवाचक, सम्बन्धवाचक और प्रश्नवाचक सर्वनामो का प्रयोग केवल किसी एक सज्ञा से पूर्व ही नही समूचे वाक्य से पहले भी विशेषण के रूप मे किया जाता है। जैसे—**यह** हमे बड़ा पाप भुगतना पड़ा; तै ने **यह** क्या किया **जो** छोरी लोक लाज कान आपनी ?; हे समुद्र तू **जो** लम्बी साँस लेता है सो **क्या** तुझे किसी का वियोग है ?

क. कारण तथा शर्त्त सूचित करने के लिए वाक्यो मे शर्त्त तथा कारण सम्बन्धी वाक्यांश के साथ जो' और 'सो' का प्रयोग (कही कही) परिणाम सूचक वाक्यांश में किया जाता है। इसी प्रकार सम्बन्धवाची सर्वनाम 'जो' के अधिकरण कारक का रूप 'जिसमे' तथा अपादान कारक का रूप 'जिसते' अथवा 'जिससे' का प्रयोग क्रिया के उद्देश्य को सूचित करने के लिए अन्तिम वाक्यांश में होता है। विशेषण तथा कारणवाची क्रियाविशेषणो से सम्बन्धित अनुच्छेदो मे इसके उदाहरण देखे जा सकते हैं।

अतिरिक्त प्रयोग

§७३६. अन्योन्य सम्बन्धी सर्वनाम तथा संज्ञा के साथ सकेतवाचक सर्वनामो का प्रयोग कही-कही अतिरिक्त ढंग से किया जाता है; जैसे—सो हे प्राणप्यारो, यह तेरे मिलने को तरसता है; कोतवालजी तो वे आते है। इन प्रयोगों मे अतिरिक्त सर्वनाम कही-कही अवधारण के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

§७३७. सम्बन्धवाचक और प्रश्नवाचक सर्वनाम का प्रयोग अनिश्चयवाचक सर्वनाम के स्थान पर भी किया जाता है; जैसे—जो कोई इससे जाकर **जो** माँगता है; क्या जानिये कि किस समय **क्या** करे !

क. कविता में इस प्रकार का प्रयोग विस्तार के साथ मिलता है; जैसे—मीत कीरति गति भूति भलाई—जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई।

§७३८. विशेष रूप से बोलचाल मे 'जो' का प्रयोग अतिरिक्त ढग से किया जाता है; जैसे—परमेश्वर जो है सो सर्वशक्तिमान है, अंग्रेजी मे इस वाक्य को सरलता के साथ इस तरह व्यक्त किया जा सकता है—God is almighty

प्रश्नवाचक सर्वनाम का प्रयोग

§७३९ दोनो प्रश्नवाचक सर्वनामो—कौन और क्या—तथा दोनो अनिश्चयवाचक सर्वनामो—कोई और कुछ—का अन्तर §§२७४, २७५ मे समझाया गया है।

क. अस्तित्वसूचक क्रिया के साथ विकारी एकवचन के रूप 'किस' के स्थान पर अविकारी रूप 'कौन' का प्रयोग होता है, जैसे—**कौन** से राजवंश के भूषण हो।

ख. 'कौन' का यह प्रयोग ध्यान देने योग्य है—हम छुटानेवाले **कौन** है ?

§७४०. 'कौन' का प्रयोग बहुवचन मे कई तरह से होता है। उर्दू मे 'कौन' के विकारी बहुवचन में 'किन' का प्रयोग किया जाता है, जैसे—किन लोगो का। सामान्य जनता विकारी बहुवचन मे सामान्यतया अविकारी एकवचन का प्रयोग करती है, जैसे—कौन लोग से ?

§७४१. विभक्तिरहित कर्त्ता तथा कर्मकारक मे 'क्या' का प्रयोग होता है। सम्प्रदान कारक मे 'क्या' के विकारी रूप 'काहे' के साथ परसर्ग 'को' का उपयोग किया जाता है, जैसे—तुम **क्या** बोलते हो ? किन्तु तुम **काहे को** बोलते हो ?

क 'क्यो' के स्थान पर 'क्या' का विकारी रूप सम्प्रदानकारक के परसर्ग के साथ प्रयुक्त होता है। इस प्रकार वाक्य मे 'क्या' का अर्थ होगा—किस कारण से। उदाहरण—सत्य है **काहे से** कि इन नेत्रो को नित्य महाराज का दर्शन मिलता है।

ख. आश्चर्य व्यक्त करने के लिए भी 'क्या' का प्रयोग होता है; जैसे—देखती **क्या** है कि एक पुरुष सम्मुख आय खडा हुआ; घोड़े दौडे **क्या** है उड आये है।

ग. कही-कही 'क्या' का प्रयोग बिना विभक्ति के कर्मकारक मे होता है; जैसे—इसके मारने से परलोक क्या बिगड़ेगा ? 'क्या' का प्रयोग प्राय प्रश्न के लिए किया जाता है, जैसे—क्या तू ने अब तक नही सुना ? बोलियों मे 'कि' का प्रयोग प्रश्न के लिए किया जाता है। (देखिए §२९८)।

घ क्या का प्रयोग संयोजक की भाँति भी होता है (देखिए §६६२.ग)।

ङ. कही-कही 'काहे' के साथ परसर्ग का प्रयोग नही होता; जैसे—तू **काहे** रोवति हैं ?

अनिश्चयवाची सर्वनामों का प्रयोग

§७४२. अनिश्चयवाची सर्वनामो—'कोई' और 'कुछ' (देखिए §२७५) का अन्तर समझने के लिए निम्न बातों पर ध्यान दीजिये—

क. 'कोई' का बहुवचन प्राय कुछ होता है, जैसे—(किसी पुस्तक के लिए) **कोई** पुस्तक गिरी है। किन्तु अधिक पुस्तकों के लिए कुछ पुस्तकें गिरी है। अन्य उदाहरण है—**कुछ** दिन इस आश्रम की रक्षा करो; **कुछ** स्त्रियों का-सा बोल।

ख. जब 'कोई' का प्रयोग संज्ञा के स्थान पर होता है तो कर्मकारक मे इसका विकारी रूप 'किसी को' का उपयोग किया जाता है किन्तु जब विशेषण के रूप मे प्रयुक्त होता है तो सम्बन्धित सज्ञा के कर्मकारक मे प्रयुक्त होने पर भी 'कोई' अविकारी बना रहता है, जैसे—अपने रहने को **कोई** ठौर रखोगे ?

ग. संख्यावाची शब्द के साथ 'कोई' का प्रयोग 'लगभग' के अर्थ मे होता है। इस प्रकार के प्रयोगों में 'कोई' के लिए अंग्रेजी मे 'सम' (some) प्रयुक्त होता है। उदाहरण—**कोई** दस आदमी आये।

घ. यदि व्यक्तिवाचक संज्ञा के साथ 'कोई' का प्रयोग हुआ है तो अंग्रेजी मे उसके लिए सर्टेन (Certain) शब्द प्रयुक्त होना चाहिए। उदाहरण—**कोई** ऊधो आया।

ङ संज्ञा चाहे एकवचन मे हो, चाहे बहुवचन मे दोनों के साथ विशेषण के रूप मे 'कुछ' का प्रयोग होता है, जैसे—**कुछ** दूर पर, **कुछ** गाँवो मे।

च. एक के पश्चात दूसरे वाक्य मे 'कोई' और 'कुछ' दोनो सर्वनामो का प्रयोग हो तो पहले कोई-का तात्पर्य है 'कोई' और दूसरे 'कोई' का तात्पर्य है—अन्य अथवा दूसरा; जैसे—**कोई कुछ** कहता था कोई कुछ; **किसी** को पानी बरसाय बहाया **किसी को** आग बरसाय जलाया।

छ सम्बन्ध सूचक सर्वनाम के सादृश्य सूचक रूप 'जैसा' के साथ 'कुछ' का प्रयोग अनिश्चय प्रकट करता है; जैसे—जैसा कुछ हो।

ज. 'कुछ' का प्रयोग ऐसे स्थान पर भी होता है जहाँ अंग्रेजी मे क्रिया वैशेषणिक वाक्यांश की आवश्यकता पडती है; जैसे—प्रसन्न होने का **कुछ** यह भी कारण है।

निजवाचक सर्वनाम

§७४३. निजवाचक सर्वनाम 'आप' का प्रयोग विशेषण तथा संज्ञा दोनों के साथ होता है। इस प्रकार के प्रयोगों मे 'आप' का आशय वही है जो अंग्रेजी के सेल्फ (self) शब्द का है। प्रसंगानुसार 'आप' का अर्थ है 'मैं स्वयं', 'तुम स्वयं' अथवा 'वह स्वयं'। जैसे—मैं **अपने** को खिला सकता हूँ; वह **आप** कहता है। अपादान कारक में आप से; कुत्ता **आप से** चला गया; इसी प्रकार 'आप से आप' का प्रयोग भी 'स्वयं' के स्थान पर किया जाता है; जैसे—तुम्हारे हृदय मे आप से आप उत्पन्न हुआ है।

क. बहुवचन में 'आपस में' का तात्पर्य उन सभी लोगो से है, जो चर्चा के समय उपस्थित है; जैसे—**आपस में** दुख की चर्चा चली।

ख कर्मकारक के एकवचन में 'अपन' का प्रयोग देखिये-हेतु **अपन** पुनि जानि।

ग निजवाचक सर्वनाम का दुहरा प्रयोग किया जाता है; जैसे—अपने आप। इस प्रकार के प्रयोग का अर्थ होता है—मैं स्वयं; वह स्वयं; तुम स्वयं। उदाहरण—क्या यह **अपने आप** झुका है। रूढ प्रयोग 'अपने आप मे' का तात्पर्य है—चेत में रहना, सुध में रहना, जैसे—जिस समय यह शाप हुआ मैं **अपने आप** मे न हूँगा।

घ. 'आप ही आप' और अँग्रेजी का वाक्यांश to one's self समान अर्थ रखते है; जैसे—तू क्या **आप ही आप** कह रही है? 'नाटक' मे 'अपने आप' 'आपही आप से कहता है', वाक्य का संक्षिप्त रूप है।

§७४४. जब किसी सर्वनाम का प्रयोग सम्बन्ध कारक मे हुआ हो और सम्बन्धकारक व्याकरण की दृष्टि से वाक्य के उद्देश्य अथवा कर्मवाच्य या भाववाच्य प्रयोग में (दे० §४१२) कर्त्ता का द्योतक हो तो ऐसे सभी सर्वनामों के स्थान पर निजवाचक सर्वनाम का सम्बन्ध कारक वाला रूप 'अपना' प्रयुक्त होता है, उदाहरण—तुम अपनी बड़ाई चाहते हो; राजा अपने देश को गये, उसने अपनी जान दी।

क. 'अपना' का प्रयोग उस समय भी होता है जब उसका सम्बन्ध व्याकरण के 'उद्देश्य' से न होकर बातचीत के 'विषय' से रहता है; जैसे—**अपनी** बडाई सभी को आती है; इसे अपनी भी कुछ सुध नहीं है; जिसमें **अपनी** कुशल होय सो कीजै।

ख. कहीं-कहीं 'अपना' का प्रयोग वक्ता के लिए भी होता है; जैसे—'अवध **अपना** देश है।' वक्ता से सम्बन्धित अन्य वस्तुओं के लिए भी 'अपना' का प्रयोग होता है; जैसे—यह सब **अपने** दिनों का फेर है।

वाक्य रचना में क्रिया का स्थान

क्रिया का सामान्य रूप

क्रिया का सामान्य रूप क्रियार्थक संज्ञा के रूप में

§७५३. क्रिया के सामान्य रूप का प्रयोग तीन प्रकार से होता है—

(१) इसका प्रयोग क्रियार्थक संज्ञा की भाँति होता है। इसके प्रयोग के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए।

क. कर्त्ताकारक के रूप मे इसका प्रयोग क्रिया के उद्देश्य को सूचित करता है; जैसे—हमे यहाँ **रहना** भला नही; मैंने तुम्हारा **कहना** मान लिया था। रूढ़ प्रयोगों मे क्रियार्थक सज्ञा का प्रयोग विधेय मे भी किया जाता है, इस प्रकार के प्रयोगो मे क्रियार्थक सज्ञा एक प्रकार के भविष्य को सूचित करती है, जैसे—इस अच्छे सगुन का **क्या** फल होना है।

ख. हम यह जानते है कि हिन्दी की क्रियार्थक सज्ञा का उद्भव सस्कृत के भविष्यकालिक कर्मवाच्य कृदन्त से हुआ है। सस्कृत के प्रयोग के अनुसार हिन्दी मे भी यह कृदन्त विधेय मे सहायक क्रिया के साथ आता है। इस स्थिति मे क्रियार्थक सज्ञा आवश्यकता अथवा कृतज्ञता व्यक्त करती है; जैसे—मनुष्य को **मरना** है; तपस्वियों के आश्रम मे नम्रता से **जाना** कहा है।[1] आवश्यकता पर अधिक बल देने के लिए क्रियार्थक संज्ञा √ पड़ना के साथ आती है, जैसे—अब इनके पास **जाना पड़ा**।

ग. ऊपर बताया जा चुका है कि क्रियार्थक सज्ञा जब विधेय मे आती है तो उससे एक विशेष प्रकार के भविष्य काल का बोध भी होता है, जैसे—इस अच्छे सगुन से क्या फल **होना** है?

घ. कर्मकारक मे क्रिया का सामान्य रूप साधारणतया अविकारी रूप में प्रयुक्त होता है; जैसे—तुम राम नाम **कहना** छोड़ दो।

स्मरणीय—किन्तु अनुमतिसूचक, प्राप्तिसूचक और कही-कही आकाक्षासूचक सयुक्त क्रिया के रूपों मे क्रिया का सामान्य रूप कर्मकारक मे विकारी ढंग से प्रयुक्त होता है, किन्तु उसके साथ कर्मकारक का परसर्ग नही जुडता। इस प्रयोग के उदाहरण § ४३६, ४३९, ४४० मे और देखे जा सकते है। आगे चलकर संयुक्त क्रियाओं से सम्बन्धित वाक्य रचना वाले अनुच्छेदो मे इस बात पर अधिक प्रकाश डाला जाएगा।

ङ. अन्तिम कारण के रूप मे (देखिये, §६८६, (५) जब सम्प्रदान कारक प्रयुक्त होता है तो उसके परसर्ग 'को' की सामान्यतया उपेक्षा की जाती है; जैसे—हम आप से कुछ **माँगने** आये हैं; स्त्रियाँ न्हान आईं। इसी प्रकार से कुछ विशेषणा से पहले क्रिया के सामान्य रूप के साथ सम्बन्ध कारक के परसर्ग का प्रयोग नही होता। ये विशेषण है—लाइक, योग्य आदि। बोलचाल मे सम्बन्ध कारक के परसर्ग की उपेक्षा अधिक दिखाई देती है; जैसे—राजा हिरन्यगर्भ के गुन प्रीति **करिबे** जोग है; मै तव दसन **तोरिबे** लायक।

च. पहले इस बात का उल्लेख हो चुका है (§६८६. (५) (ख) कि रूढ प्रयोगों मे, क्रिया का सामान्य रूप अस्तित्वसूचक क्रिया के साथ सम्प्रदान कारक में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार का प्रयोग क्रिया की आसन्नता को व्यक्त करता है। जैसे—जब वह **चलने** को हुआ था; वह **गहिबे कौं** भई। इस

---

[1] भोजपुरी, मागधी और मैथिली में क्रियार्थक संज्ञा का यह नकारान्त रूप केवल इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। ग्रिअर्सन—सेवन ग्रामर्स, भाग १, पृ० ५७।

अपूर्णकालिक और पूर्णकालिक कृदन्त

§७५४. अपूर्णकालिक और पूर्णकालिक कृदन्तो का अन्तर §३८३ में बताया जा चुका है। अगले अनुच्छेदो मे भी उदाहरणों के द्वारा इस अन्तर पर प्रकाश डाला जाएगा। सुविधा के लिए यहाँ दोनो के सम्बन्ध मे साथ-साथ विचार किया जा रहा है।

विशेषण के रूप में कृदन्त का प्रयोग

(१) संज्ञा अथवा सर्वनाम के साथ कृदन्त का प्रयोग दोनो प्रकार के विशेषणो की भाँति होता है। इस स्थिति मे अस्तित्वसूचक क्रिया के भूतकालिक रूप 'हुआ' अथवा 'गया' का प्रयोग कृदन्त के साथ किया जाता है। आवश्यकतानुसार 'हुआ' अथवा 'गया' का प्रयोग विकार के साथ भी होता है। यदि अर्थ मे किसी प्रकार के भ्रम की आशंका न हो तो 'हुआ' अथवा 'गया' की उपेक्षा भी की जाती है।

क विशेष्य-विशेषण के रूप मे कृदन्तो का प्रयोग इस प्रकार हुआ है—आपको **गई** प्रतीति मुझपर आई, कोई दुष्ट **मरा हुआ** काला नाग तुम्हारे पिता के कठ पर डाल गया है; तुमने दान **की हुई** गाएँ फिर दान की।

ख. विधेय विशेषण के रूप मे कृदन्तों का प्रयोग इन उदाहरणो मे देखा जा सकता है—तिनके पीछे एक शूद्र **मारता** आता है; जरासन्ध भी यो **कहता हुआ** उनके पीछे दौड़ा; जो मैं **जोती** जाऊँगी; क्या तैंने अर्जुन को **दूर गया** जाना। रूढ प्रयोगों मे 'फूला' शब्द का प्रयोग भी इसी ढंग से हुआ है; जैसे—मै अपने तन मे **फूला** नही समाता हूँ। रामायण के उदाहरण—यह मोहि **माँगे** देहु; सो मख कोटिहिं न परै कह्यौ; चर **परत** नृप राम निहारे।

ग. विशेष्य के साथ नियमित रूप से 'को' परसर्ग आता है, चाहे विशेष्य एकवचनवाची हो चाहे बहुवचनवाची। विधेय में प्रयुक्त विशेषणवाची कृदन्त अविकृत रहता है, चाहे संज्ञा किसी लिंग और वचन में प्रयुक्त हो; जैसे—उन दोनो को **लड़ता** देखि।

घ इस अनुच्छेद से सम्बन्धित विशेषणवाची कृदन्त की व्याख्या सातत्यसूचक सक्युत क्रियाओं के सिलसिले में की जा चुकी है (देखिए §४४२); जैसे—'वह स्त्री गाती रही, मे यह स्पष्ट है कि अपूर्णकालिक 'गाती' शब्द स्त्री के विशेषण के रूप मे विधेय मे 'रही' शब्द के साथ प्रयुक्त हुआ है। यही बात पूर्णकालिक कृदन्तों पर लागू होती है, जैसे—'वह **भागा** जाता था' मे 'भागा' 'वह' का विशेषण है और विधेय मे प्रयुक्त हुआ है।

ङ. इस प्रसंग में प्रचलित प्रयोग 'होता चला आना' का उल्लेख होना चाहिए, इस वाक्य मे दोनो विधेय विशेषण के रूप मे प्रयुक्त हुए हैं, जैसे—यह परम्परा से **होता चला** आया है। इन वाक्यो मे तथा 'होता चला जाना' जैसे वाक्यो मे 'होता' कृदन्त यह प्रकट करता है कि उल्लिखित काल मे क्रिया चलती रही, रुकी नही।

कृदन्तों का एकाकी प्रयोग

(२) विकारी पुल्लिगवाची संज्ञा की भाँति दोनो प्रकार के कृदन्तो का प्रयोग बहुत कम होता है। जहाँ कही इस प्रकार का प्रयोग मिलता है, पूर्णकालिक अथवा अपूर्णकालिक कृदन्त मुख्य क्रिया के समय, रीति आदि का बोध कराते हैं। उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

अरुण को सारथी किये उदय **हुआ** चाहता है; सिर **झुकाये** रथ को फिर फिर **देखता चौकड़ भरता** है, दर्शन **पीछे** हुए मनोरथ पहले ही हो गया ।

क. कुछ लोगो ने 'क्रिया विशेषणवाची कृदन्त' का उल्लेख किया है, वास्तव में कृदन्त का यह तथाकथित भेद स्वतत्र अस्तित्व नही रखता । अपूर्णकालिक कृदन्त के साथ अवधारणार्थक अव्यय 'ही' के योग से यह रूप बनता है; जैसे—तेरी मां तुझे **जनते ही** मरी थी। पूर्णकालिक कृदन्त के साथ अवधारणार्थक 'ही' का प्रयोग बहुत कम होता है; जैसे—रूप **देखे ही** बन आवे; **गएहु** मज्जन न पावा। जहाँ वाक्य मे अन्यत्र 'ही' का प्रयोग होता है, वहाँ कृदन्त के साथ आनेवाला अवधारणार्थक 'ही' लुप्त हो जाता है; जैसे—विरह का गीत ही सुनते; यह मुझे **निगले** जाता है, कृष्ण साथ **रहते** हम क्या डरे ?

ख. √ लेना का पूर्णकालिक कृदन्त रूप 'लिये' का प्रयोग अँग्रेजी के पूर्वसर्ग 'विथ' (with) के स्थान पर होता है; जैसे—कोई ब्राह्मण काँख में पोथी **लिये** आता है; मेरे धनुषबाण को **लिये** रहो ।

ग. अकेला पूर्णकालिक कृदन्त प्रायः बीते हुए समय को व्यक्त करता है, जैसे—पाँच बरस **हुए** वह चला गया, कितने एक दिन **बीते** राजा फिर **गये**। एक प्रचलित प्रयोग देखिये—तुमको देस से **आये** कितने बरस हुए ।

घ. पूरबी बोलियो मे अकेले कृदन्तों के इस प्रकार के प्रयोग मे 'होते' के स्थान पर 'सन्ते'[1] का प्रयोग मिलता है । जैसे—इस देह को त्याग करत **सन्ते**; विधवा भये **संते** पुत्रों के अधीन रहे ।

ङ. कृदन्तो का एकाकी प्रयोग गद्य की अपेक्षा कविता में अधिक मिलता है; जैसे—**जिअत** न करब सवति सेवकाई; **कटत** सीस नृप पौत्रिक तयौं; तासु वचन **सुनितै** सब डरी; तुमतौ.. **धरे** देह जनु राम सनेहू ।

च. पुरानी कविता मे पूर्णकालिक कृदन्त अकेले ऐसे स्थान पर प्रयुक्त हुआ है, जहाँ आजकल की कविता मे यौगिक कृदन्त आता है; जैसे—**गये** भवन पूछहि पितमाता, यथा नवहिं बुध विद्या **पाये**। बीम्स ने चन्दबरदायी का ऐसा ही प्रयोग उद्धृत किया है—बसि **किये** भूमियाँ धूनि षग्ग ।

स्मरणीय—कृदन्त विधेय और एकाकी कृदन्त के आशय को अँग्रेजी मे व्यक्त करना असंभव है। अभ्यास से ही इनका अन्तर जाना जा सकता है, फिर भी यहाँ इन दोनो का अन्तर बताया जाता है। विधेय मे प्रयुक्त होने वाला कृदन्त क्रिया के उद्देश्य के सम्बन्ध मे जानकारी देता है और एकाकी अवस्था मे क्रिया-विशेषण की भाँति क्रिया के सम्बन्ध मे ही किसी बात का निर्देश करता है। इन दोनो स्थितियो को इस उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है—'वह **रोता** हुआ चला जाता था,' 'किन्तु वह **रोते** हुए चला जाता था।'

संयुक्त रूप में अवधारणार्थक कृदन्त

(३) उत्कर्षसूचक संयुक्त क्रिया के प्रथम पद की धातु के स्थान पर पूर्णकालिक कृदन्त का विकारी रूप प्रयुक्त होता है। इस प्रकार के प्रयोगों मे मुख्य धातु मे अधिक अवधारण उत्पन्न होता है। शकुन्तला मे इस प्रकार के अवधारणार्थक प्रयोगो की कमी नही है, जैसे—इस लता को क्यों **छोड़े** जाती है; इस सगुण के भरोसे पर मैं कहे देती हूँ ।

---

[1] अस् के वर्तमान कालिक कृदन्त रूप 'सत्' के अधिकरण कारक रूप 'सति' के लिए। देखिए, मोनेर विलियम्स—संस्कृत ग्रामर, §८४० ।

स्मरणीय—१. इस प्रकार के प्रयोगों में जब विकारी एकवचन मे पूर्णकालिक कृदन्त प्रथम पद में प्रयुक्त होता है तो यह सन्देह होता है कि इस प्रकार का प्रयोग केवल संयोग मात्र है अथवा और कुछ। सभवतः यह रूप कृदन्त के विकाररहित रूप के साथ अवधारणार्थक अव्यय 'ही' के योग से व्युत्पन्न हुआ है; 'ह' का लोप तथा पूर्वस्वर के साथ अवशिष्ट 'ई' की सन्धि। यह भी सभव दिखाई देता है कि पूर्व पद की धातु के साथ ही अवधारणार्थक 'ही' का प्रयोग हुआ है। जैसे—'कहे देता हूँ' मे 'कहे'+कहा ही देता हूँ अथवा कहा+ही देता हूँ।

स्मरणीय—२. ऊपर के उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि तथाकथित स्थितिसूचक सयुक्त क्रिया (§४४५) में मुख्य क्रिया के साथ अपूर्णकालिक एकाकी कृदन्त प्रयुक्त नही हुआ है।

संज्ञा के रूप में कृदन्त का प्रयोग

(४) कृदन्त की चौथी स्थिति वह है, जब उसका प्रयोग सज्ञा की भाँति होता है। अपूर्णकालिक और पूर्णकालिक दोनों प्रकार के कृदन्त संज्ञा की भाँति प्रयुक्त होते हैं। इस स्थिति मे उनके साथ परसर्ग का प्रयोग होता भी है और नही भी होता। उदाहरण निम्न प्रकार है—

उस **सोते का** पलंग उठाय, मेरे **गये का** सोग; मेरा **कहा** मानिये; सूरज **डूबते** समय; उसके **पूछे तें** क्या प्रयोजन, (तू) अपनी विवाहिता को **छोड़ते** नही लजाता; (राते) सेज पर करवटे **लेते** कटती हैं; अपने त्याग **हुए पर** भी।

क. इस स्थिति मे कृदन्त का प्रयोग प्रायः पूर्वसर्ग के साथ होता है; जैसे—ऐसे पहुने को **बिना** सत्कार **किये** छोड़कर, तुम्हारे **बिना** सोचे; बैरी के **आए पीछे**।

ख. कविता में भी कृदन्तो का प्रयोग सज्ञा की भाँति हुआ है, जैसे—सुकृत जाय अस **कहत** तुम्हारे; रहत न प्रभु चित चूक **किये की**; देह **धरे** यह फल। रूढ़ प्रयोगो में बनना के कृदन्त रूप **'बने'** की व्याख्या भी इसी ढंग से की जा सकती है; जैसे—भरत मुख **बने** न उत्तर देते।

स्मरणीय—अधिकांश प्रयोगों मे संज्ञात्मक कृदन्त और कृदन्त का अन्तर समझना बहुत कठिन है। निम्नलिखित उदाहरण मे 'मुयै' की व्याख्या दोनो प्रकार से की जा सकती है—'**मुयै** करै का सुधा तड़ागा।' कुछ स्थलो पर इन कृदन्तो की व्याख्या आकारान्त क्रियार्थक सज्ञा के रूप में करनी चाहिए (देखिए— §३८६ ख.)।

यौगिक कृदन्त

प्राथमिक यौगिक कृदन्त

§७५५. यौगिक कृदन्त के प्रयोगो का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

(१) मुख्य क्रिया के लिए पूर्व क्रिया अथवा परिचायिका क्रिया के रूप मे इसका प्रयोग मिलता है।

क. अँग्रेजी में जहाँ सामान्यतया सयोजक अव्यय का प्रयोग होता है वहाँ हिन्दी मे कृदन्त का यह रूप आता है। जहाँ दोनों वाक्य समान महत्त्व रखते है ऐसे सयुक्त वाक्यो के अतिरिक्त अन्यत्र कृदन्त का यह रूप संयोजक के नाते अधिक पसन्द किया जाता है। हम कह सकते है—पाठशाला को **जाकर** पढा **करता है**; यहाँ √ जाना √ पढने की पूर्व क्रिया है। इसके विपरीत इस प्रकार के वाक्यों मे संयोजक अव्यय का प्रयोग

हुआ है—वह पढ़ता और लिखता है; इस वाक्य मे √पढ़ना और √लिखना दोनों का समान महत्त्व है। पूर्व-क्रिया के रूप मे कृदन्त का प्रयोग इन उदाहरणो मे भी देखा जा सकता है—वहाँ **जाकर** उससे कहो, कोई भोजन **बनाय** जिमाये, वह राजर्षि यज्ञ पूरा **करा कर** हस्तिनापुर को बिदा हुआ है, यह **कह कर** अन्तर्धान हो गये।

ख. अँग्रेजी के go and see, did you go and call him जैसे वाक्यो मे मुख्य क्रिया पूर्वक्रिया के पश्चात् आई है। हिन्दी मे कही-कही इससे विपरीत प्रयोग मिलते हैं। जैसे go and see को हिन्दी मे 'जाके देखो' अनुवादित किया जा सकता है और 'देखि आओ'[1] भी; इसी प्रकार—वह **ब्राह्मण** को **बुलाय** आया।

स्मरणीय—'कर' अथवा 'के' के साथ बनने वाले यौगिक कृदन्तो को धातु के साथ 'इ' अथवा 'या' को जोड कर बनने वाले पूर्वकालिक कृदन्तो की अपेक्षा अधिक पसन्द किया जाता है।

ग. यौगिक कृदन्त और एकाकी रूप मे प्रयुक्त होने वाले पूर्णतासूचक तथा अपूर्णतासूचक कृदन्तो का भेद जानना आवश्यक है। यौगिक कृदन्त प्रगतिहीन क्रिया को व्यक्त करता है किन्तु पूर्णतासूचक अथवा अपूर्णतासूचक कृदन्त विशेष आशय के साथ क्रिया की प्रगति अथवा पूर्त्ति को इगित करते है; जैसे—वह कपड़े **पहिन के** बाहर आया; कपडे **पहने** बाहर आया, कपड़े **पहनते** बाहर आया। अग्रेजी मे यौगिक कृदन्त और एकाकी रूप मे प्रयुक्त पूर्णकालिक कृदन्त का अन्तर व्यक्त नही किया जा सकता। §७५४ (२) मे बताया जा चुका है कि पुरानी हिन्दी मे पूर्णतासूचक कृदन्त प्रायः यौगिक कृदन्त की भाँति प्रयुक्त हुआ है।

कारण सूचित करने के लिए यौगिक कृदन्त का प्रयोग

(२) मुख्य क्रिया के लिए पूर्व क्रिया की भाँति प्रयुक्त होने वाला यौगिक कृदन्त स्वभावतः मुख्य क्रिया के कारण को भी व्यक्त करता है, उदाहरण—बानासुर अति **भय खाय** भाग गया, नगर को **जलता देख** सब यदुबंसी भय खाय पुकारे।

क. यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि यद्यपि यौगिक कृदन्त के द्वारा क्रिया का कारण व्यक्त किया जाता है, फिर भी जहाँ कही कारण को अधिक महत्त्व दिया जाता है, वहाँ आश्रित वाक्य मे उसे क्रिया के कालिक रूप से व्यक्त करते है। हम बिना किसी अवधारण के इस प्रकार कह सकते है—'यह मनुष्य अति अपवित्र हो नष्ट हो जायगा' किन्तु यदि हम कारण को अधिक महत्त्व देना चाहे तो कहेगे—'यह मनुष्य जो अति अपवित्र है नष्ट हो जायगा' अथवा इसी बात को यो भी कहा जा सकता है—यह मनुष्य नष्ट हो जायगा क्योंकि अति अपवित्र है।

साधन व्यक्त करने के लिए कृदन्त का उपयोग

(३) क्रिया का साधन सूचित करने के लिए भी यौगिक कृदन्त का उपयोग किया जाता है। साधन सूचित करने के लिए 'करके' रूप का बहुत उपयोग किया जाता है; जैसे—इस पवित्र आश्रम के दर्शन **करके** हम अपना जन्म सुफल करें।

---

[1] वास्तव मे 'देखि आओ' का अंग्रेजी अनुवाद होगा See and Come। अंग्रेजी प्रयोग से हिन्दी प्रयोग मूलतः भिन्न नहीं है—अनुवादक।

सुविधासूचक कृदन्त

(४) सुविधा सूचित करने के लिए भी यौगिक कृदन्त प्रयुक्त होता है। इस आशय के लिए √ होना— का कृदन्त रूप 'होकर' प्रयुक्त होता है—जैसे—तिसको देख-सुन बड़े बड़े मुनीश **होकर** उठे; ऐसे सूर हो स्त्री पर शस्त्र करो।

स्थितिसूचक कृदन्त

(५) मुख्य क्रिया की विभिन्न स्थितियो को सूचित करने के लिए भी यौगिक कृदन्त का प्रयोग किया जाता है। अंग्रेजी मे इस स्थितिसूचक कृदन्त को या तो रीतिवाचक क्रियाविशेषण के द्वारा अथवा पर्यायवाची वाक्याशो के द्वारा व्यक्त करते है. उदाहरण निम्न प्रकार है: उसने **हँसकर** कहा; चित दे सुनो; वह **क्रोधकर** बोल उठा; तुमने महा अधर्म **जान कै** कियौ।

क स्थिति की सूचना के लिए करना के यौगिक कृदन्त 'करके' आदि का प्रयोग अधिक किया जाता है, जैसे—वे दोनों ब्राह्मण मेरी मेरी **कर** झगडने लगे, तुम हरि को पुत्र कर मत जानौ; संज्ञा के साथ 'कर' अथवा 'करके' जोड़ते है, इस प्रकार के प्रयोग मे सज्ञा क्रियाविशेषण बन जाती है, जैसे—**कृपा करके** यह तौ कहो। 'कर' अथवा 'करके' का प्रयोग सार्वनामिक के साथ भी होता है। जैसे—रात की बात **सब कर** सुनाती हूँ। सख्यावाची शब्द के पुनरुक्त रूप के साथ भी इस यौगिक कृदन्त का उपयोग किया जाता है, जैसे—एक-एक कर गिनियो।

ख. √होना क्रिया का यौगिक कृदन्त रूप कही-कही 'जैसे' का पर्यायवाची बनता है; जैसे—'मै ब्रह्मा **हो** बनाता हूँ, विष्णु **हो** पालता हूँ, शिव **हो** सहारता हूँ। 'ऐसे' के साथ इस यौगिक कृदन्त के जुड़ने से दोनो का आशय होता है—यहाँ से, यहाँ होकर, आदि। जैसे—मेरी जीवनमूल यही **होकर** गई है।

यौगिक कृदन्त के विशेष प्रयोग

§७५६. यौगिक कृदन्त 'बढकर' का प्रयोग कही-कही विशेषण की तरह होता है; जैसे—'इससे **बढ़कर** नही है।'

§७५७. कुछ यौगिक कृदन्त विशेष स्थलों पर पूर्वसर्ग की भाँति प्रयुक्त होते है; 'आगे' के साथ 'बढके' के योग में यह बात देखी जा सकती है, जैसे—वह गाँव इससे थोड़ा आगे **बढ़ के** है। होके, छोडके तथा इसी तरह के अनेक कृदन्त इसी अर्थ मे प्रयुक्त होते हैं; जैसे—वह पुरवा सड़क से कुछ **हट के है**; इसको **छोड़के** और कोई नही है, जिस-जिस देश मे ही प्रभु जाते थे; वह गाय रुपये **ले** नही दी जाती है; उसने पिय़ाला **भर के** दिया।

क. √करना का यौगिक कृदन्त रूप 'कर' अथवा 'करके' पूर्वसर्ग की भाँति बहुत प्रयुक्त होते है, जैसे—बल **करि** हीन · जिस **करके** आदि। इस वाक्य मे 'करके' का प्रयोग रूढ ढग से हुआ है—'एक पाँच तत्व **करके** मृत्यु है।'[1]

ख. कुछ स्थलों पर यौगिक कृदन्त 'मिलके' का आशय है 'साथ' अथवा 'सहित' जैसे—**ज्ञान ध्यान मिलकै** बिसरायौ, दोनो **मिल के** गये।

---

[1] हिन्दू लोग शरीर की रचना पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश से मानते हैं। मृत्यु है इन पाँचों तत्त्वों का पृथक् हो जाना।

यौगिक कृदन्त

§७५८. ऊपर के अधिकाश उदाहरणो से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यौगिक कृदन्त मुख्य क्रिया के उद्देश्य से सम्बन्धित रहता है अथवा कर्मवाच्य पूर्णकालिक क्रिय. (§४१२) के साथ यह कर्त्ता (विभक्ति सहित) के सम्बन्ध मे विधान करता है। जैसे—राणी को कुछ **सोच समझ कर** धीरज आया। इस प्रकार का प्रयोग कविता मे बहुत मिलता है; जैसे—बन्धु निधन सुन उपजा क्रोधा कही यौगिक कृदन्त कर्मवाच्य क्रिया के नामहीन कर्ता (विभक्ति सहित) से सम्बन्धित रहता है; जैसे—**मारके तू** निकाला गया; वह **खोद** के जीती निकाली गई। इसी प्रकार का प्रयोग क्षेत्रीय बोलियो मे भी पाया जाता है।

यौगिक कृदन्त के विभिन्न रूप

§७५९. यौगिक कृदन्त के विभिन्न रूपान्तरो के कारण अर्थभेद नही होता। 'कर' तथा 'के' अपेक्षाकृत आधुनिक रूप है, इनका प्रयोग विशेष रूप से स्तरीय हिन्दी मे होता है। किन्तु जहाँ लगातार अनेक कृदन्त आते है और जहाँ पुनरुक्ति अभीष्ट नही है वहाँ प्राय. धातु वाला रूप प्रयुक्त होता है। किंतु जहाँ बिना किसी व्यवधान के समानार्थी दो कृदन्त आते है वहाँ अन्तिम कृदन्त के साथ ही, कर, अथवा 'के' जोडते है; जैसे—जान बूझ **कर**, सोच समझ **कर**; खा पी **कर**। जब मुख्य क्रिया से पहले कृदन्त सयुक्त क्रिया जैसे रूप (§४३१) की रचना करता है वहाँ भी यौगिक कृदन्त धातु रूप मे प्रयुक्त होता है; जैसे—वह उठ **धाया**; काशी **हो** आया है।

§७६०· कई यौगिक कृदन्तो के प्रयुक्त होने से वाक्य बहुत लम्बा हो जाता है, किन्तु इस प्रकार के वाक्य मे अर्थ की भ्राति नहीं होती; जैसे—वहाँ से **उठ** उग्रसेन के पास **जाय सब** समाचार सुनाय उनसे बिदा हो बाहर **आय** बरात की सब सामा **मँगवाय मँगवाय** इकट्ठी करने लगे।

कर्तृसूचक संज्ञा

कर्तृसूचक संज्ञा की रचना

§७६१. 'वाला' तथा 'हारा' से बनने वाली कर्तृसूचक संज्ञा के पूर्व क्रिया का कर्म, सम्बन्ध कारक में आता है। कही-कही वह कर्मकारक परसर्ग 'को' के साथ अथवा बिना परसर्ग के प्रयुक्त होता है।

उदाहरण—ऐसे **काम का** करने वाला, पापी लोगो का तारनहारा; **प्रजा को** दुख देने वाला; वह गीत गानेवाला है, **मुझे** कौन रोकनेवाला है; ये ही बात मेरे **मन** को बढानेवाली है।

स्मरणीय—भारतीय वैयाकरण इस बात को स्वीकार नही करते कि ऊपर तीसरे, चौथे और पाँचवें वाक्य में कोई सज्ञा कर्मकारक मे प्रयुक्त हुई है। वे लोग इन वाक्यो मे सज्ञा तथा क्रिया का सयोजन मानते है। उनका कहना है कि इन वाक्यो मे क्रिया का कर्म तथा कर्तृसूचक सज्ञा दोनो का सयोजन षष्ठी तत्पुरुष मे हुआ है। किन्तु यह कथन अन्तिम तीनो उदाहरणो पर लागू नही होता।

ख. बहुत से वाक्यों मे कर्तृसूचक सज्ञा का प्रयोग रूढ़ हो गया है; जैसे—जाने की आज्ञा **देने वाली** तुम **कौन** हो?

कर्तृसूचक संज्ञा का प्रयोग भविष्यकालिक कृदन्त की भाँति

§७६२. वाक्य के विधेय में अस्तित्वसूचक क्रिया के साथ कर्तृसूचक सज्ञा लगभग भविष्यकालिक कृदन्त का आशय व्यक्त करती है, जैसे—वह यहाँ से **जानेवाला** है। अन्य वाक्यो मे भी यह बात देखी जा सकती है; जैसे—पिता कन्व हस्तिनापुर के **जानेवालों** को आज्ञा दे रहे है।

कालिक रूप

कालों का वर्गीकरण

§७६३. पहले §३९५, ३९६ मे यह बताया जा चुका है कि हिन्दी क्रिया के कालो को निम्नलिखित तीन कालों मे विभाजित किया जा सकता है—(१) जो काल क्रिया के भविष्य मे घटित होने की सूचना देते हैं; (२) ऐसे काल जिनसे क्रिया की असमाप्ति अथवा उसके अपूर्ण रहने की जानकारी मिलती है; (३) ऐसे काल जिनसे क्रिया की समाप्ति अथवा पूर्ण होना ज्ञात होता है। प्रत्येक वर्ग के अन्तर्गत कई काल आते है, इन कालों का सक्षिप्त परिचय पाने के लिए छात्र को §§३९७-४०८ पर ध्यान देना चाहिए। इन अनुच्छेदो मे ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे जिनके कारण आगे के अनुच्छेदो को समझने मे सहायता मिलेगी। भविष्य सम्बन्धी कालो से प्रारंभ किया जाता है।

संभाव्य भविष्य

§७६४. संभाव्य भविष्य काल के रूपों से क्रिया के भविष्य मे घटित होने की समावना अथवा हेतु ज्ञात होता है। समाव्य भविष्य काल के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातो पर ध्यान देना चाहिए—

संभाव्य भविष्य के रूपों का प्रयोग विधि में

(१) सरल वाक्यो में संभाव्य भविष्य काल के रूपो का प्रयोग विधि के लिए होता है; जैसे—कोई **कहे**; तुम सहित गिरि तें **गिरौं**।

संभाव्य भविष्य का प्रयोग शर्त के रूप में

(२) शर्त अथवा अनुमति व्यक्त करने के लिए भी संभावना भविष्य काल का प्रयोग होता है; जैसे—आज्ञा **हो** तो हम घर जायँ; मार तो **डालूँ**। प्रश्न के लिए भी इस काल के रूपों का प्रयोग किया जाता है; जैसे—मै **जाऊँ**? हम यहाँ **रहें**?

(३) जब शर्त केवल संभाव्य व्यक्त करे तो संभाव्य भविष्यकाल के रूप, हेतु वाले वाक्य में प्रयुक्त होते है; जैसे—जो तुम उसको एक बेर **देखो** तो फिर ऐसा न कहोगी। कई बार कुछ स्थलो पर शर्त और संभावना सूचित करने वाले दोनो वाक्यांशो मे इस काल का प्रयोग मिलता है; जैसे—इसी के समान वर **मिले** तो **दें**।

(४) जहाँ शर्त केवल कल्पित हो वहाँ भी इस काल का प्रयोग होता है; जैसे—मन क्रम बचन कपट तजि जो **कर** भूसर सेव।

संभाव्य भविष्य का प्रयोग द्वितीय वाक्यांश में

(५) समाव्य भविष्य का प्रयोग निम्न रूपो में भी होता है—

क. उद्देश्य प्रकट करने के लिए द्वितीय वाक्यांश मे तथा—

ख. ऐसे परिणाम को व्यक्त करने के लिए जिसकी संभावना भविष्य में की जाती हो। जैसे— (क) इस बात की चर्चा हमने इसलिए की है कि ..उसकी शंका दूर हो **जाय**। (ख) मुझ ऐसा बली कीजे कि कोई मुझे न जीत **सके**; ऐसा उपाय करो जिससे वह राजर्षि फिर **मिले**।

यौगिक कृदन्त

§७५८. ऊपर के अधिकाश उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यौगिक कृदन्त मुख्य क्रिया के उद्देश्य से सम्बन्धित रहता है अथवा कर्मवाच्य पूर्णकालिक क्रिय. (§४१२) के साथ यह कर्त्ता (विभक्ति सहित) के सम्बन्ध मे विधान करता है। जैसे—राणी को कुछ **सोच समझ कर** धीरज आया। इस प्रकार का प्रयोग कविता मे बहुत मिलता है; जैसे—बन्धु निधन सुन उपजा क्रोधा कही यौगिक कृदन्त कर्मवाच्य क्रिया के नामहीन कर्ता (विभक्ति सहित) से सम्बन्धित रहता है; जैसे—**मारके तू** निकाला गया, वह **खोद** के जीती निकाली गई। इसी प्रकार का प्रयोग क्षेत्रीय बोलियो मे भी पाया जाता है।

यौगिक कृदन्त के विभिन्न रूप

§७५९. यौगिक कृदन्त के विभिन्न रूपान्तरो के **कारण** अर्थभेद नही होता। 'कर' तथा 'के' अपेक्षाकृत आधुनिक रूप है, इनका प्रयोग विशेष रूप से स्तरीय हिन्दी मे होता है। किन्तु जहाॅ लगातार अनेक कृदन्त आते है और, जहाॅ पुनरुक्ति अभोष्ट नही है वहाँ प्राय. धातु वाला रूप प्रयुक्त होता है। किंतु जहाॅ बिना किसी व्यवधान के समानार्थी दो कृदन्त आते है वहाॅ अन्तिम कृदन्त के साथ ही, कर, अथवा 'के' जोड़ते है; जैसे—जान बूझ **कर**; सोच समझ **कर**, खा पी **कर**। जब मुख्य क्रिया से पहले कृदन्त सयुक्त क्रिया जैसे रूप (§४३१) की रचना करता है वहाॅ भी यौगिक कृदन्त धातु रूप मे प्रयुक्त होता है, जैसे—वह उठ **धाया**; काशी **हो** आया है।

§७६०· कई यौगिक कृदन्तो के प्रयुक्त होने से वाक्य बहुत लम्बा हो जाता है, किन्तु इस प्रकार के वाक्य मे अर्थ की भ्राति नही होती; जैसे—वहाॅ से **उठ** उग्रसेन के पास **जाय** सब समाचार सुनाय उनसे बिदा हो बाहर **आय** बरात की सब सामा **मँगवाय मँगवाय** इकट्ठी करने लगे।

कर्तृसूचक संज्ञा

कर्तृसूचक संज्ञा की रचना

§७६१. 'वाला' तथा 'हारा' से बनने वाली कर्तृसूचक सज्ञा के पूर्व क्रिया का कर्म, सम्बन्ध कारक में आता है। कही-कही वह कर्मकारक परसर्ग 'को' के साथ अथवा बिना परसर्ग के प्रयुक्त होता है।

उदाहरण—ऐसे **काम का** करने वाला, पापी लोगो का तारनहारा; **प्रजा को** दुख देने वाला, वह गीत गानेवाला है, **मुझे** कौन रोकनेवाला है; ये ही बात मेरे **मन को** बढानेवाली है।

स्मरणीय—भारतीय वैयाकरण इस बात को स्वीकार नही करते कि ऊपर तीसरे, चौथे और पाँचवें वाक्य में कोई सज्ञा कर्मकारक मे प्रयुक्त हुई है। वे लोग इन वाक्यो मे सज्ञा तथा क्रिया का सयोजन मानते हैं। उनका कहना है कि इन वाक्यो मे क्रिया का कर्म तथा कर्तृसूचक संज्ञा दोनो का सयोजन षष्ठी तत्पुरुष मे हुआ है। किन्तु यह कथन अन्तिम तीनो उदाहरणो पर लागू नही होता।

ख. बहुत से वाक्यो मे कर्तृसूचक सज्ञा का प्रयोग रूढ़ हो गया है; जैसे—जाने की आज्ञा **देने वाली तुम कौन हो?**

कर्तृसूचक संज्ञा का प्रयोग भविष्यकालिक कृदन्त की भाँति

§७६२. वाक्य के विधेय में अस्तित्वसूचक क्रिया के साथ कर्तृसूचक संज्ञा लगभग भविष्यकालिक कृदन्त का आशय व्यक्त करती है; जैसे—वह यहाँ से **जानेवाला** है। अन्य वाक्यो मे भी यह बात देखी जा सकती है; जैसे—पिता कन्व हस्तिनापुर के **जानेवालों** को आज्ञा दे रहे है।

कालिक रूप

कालों का वर्गीकरण

§७६३. पहले §३९५, ३९६ मे यह बताया जा चुका है कि हिन्दी क्रिया के कालो को निम्नलिखित तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है—(१) जो काल क्रिया के भविष्य मे घटित होने की सूचना देते हैं; (२) ऐसे काल जिनसे क्रिया की असमाप्ति अथवा उसके अपूर्ण रहने की जानकारी मिलती है; (३) ऐसे काल जिनसे क्रिया की समाप्ति अथवा पूर्ण होना ज्ञात होता है। प्रत्येक वर्ग के अन्तर्गत कई काल आते है, इन कालो का सक्षिप्त परिचय पाने के लिए छात्र को §§३९७-४०८ पर ध्यान देना चाहिए। इन अनुच्छेदो मे ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे जिनके कारण आगे के अनुच्छेदो को समझने मे सहायता मिलेगी। भविष्य सम्बन्धी कालो से प्रारंभ किया जाता है।

संभाव्य भविष्य

§७६४. सभाव्य भविष्य काल के रूपों से क्रिया के भविष्य मे घटित होने की सभावना अथवा हेतु ज्ञात होता है। सभाव्य भविष्य काल के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातो पर ध्यान देना चाहिए—

संभाव्य भविष्य के रूपों का प्रयोग विधि में

(१) सरल वाक्यो मे संभाव्य भविष्य काल के रूपो का प्रयोग विधि के लिए होता है; जैसे—कोई **कहे**; तुम सहित गिरि तें **गिरौं**।

संभाव्य भविष्य का प्रयोग शर्त के रूप में

(२) शर्त अथवा अनुमति व्यक्त करने के लिए भी संभावना भविष्य काल का प्रयोग होता है; जैसे—आज्ञा **हो** तो हम घर जायँ; मार तो **डालूँ**। प्रश्न के लिए भी इस काल के रूपो का प्रयोग किया जाता है; जैसे—मैं **जाऊँ**? हम यहाँ **रहें**?

(३) जब शर्त केवल संभाव्य व्यक्त करे तो संभाव्य भविष्यकाल के रूप, हेतु वाले वाक्य में प्रयुक्त होते है; जैसे—जो तुम उसको एक बेर **देखो** तो फिर ऐसा न कहोगी। कई बार कुछ स्थलों पर शर्त और सभावना सूचित करने वाले दोनो वाक्यांशो मे इस काल का प्रयोग मिलता है; जैसे—इसी के समान वर **मिले** तो **दें**।

(४) जहाँ शर्त केवल कल्पित हो वहाँ भी इस काल का प्रयोग होता है; जैसे—मन क्रम बचन कपट तजि जो **कर** भूसर सेव।

संभाव्य भविष्य का प्रयोग द्वितीय वाक्यांश में

(५) सभाव्य भविष्य का प्रयोग निम्न रूपो मे भी होता है—

क. उद्देश्य प्रकट करने के लिए द्वितीय वाक्यांश मे तथा—

ख. ऐसे परिणाम को व्यक्त करने के लिए जिसकी संभावना भविष्य में की जाती हो। जैसे— (क) इस बात की चर्चा हमने इसलिए की है कि...उसकी शंका दूर हो **जाय**। (ख) मुझ ऐसा बली कीजे कि कोई मुझे न जीत **सके**; ऐसा उपाय करो जिससे वह राजर्षि फिर **मिले**।

(६) संकल्प सूचित करने के लिए भी इस काल का प्रयोग किया जाता है; जैसे—जो मैं आज आप से न मिलूँ तो आग मे जल मरूँ; जो हम हारें तो तुम्हारे दास होकर रहें; मैं तुझे क्या मारूँ?

अनिश्चय व्यक्त करने के लिए

(७) अनिश्चय अथवा सन्देह व्यक्त करने के लिए प्रश्नवाचक वाक्य मे इस काल का प्रयोग होता है; जैसे—हम इस लड़की को किसको **दें**? हम क्या **करें**?

(८) जब क्रिया का घटित होना अथवा जारी रहना अनिश्चित हो तब भी इस काल का प्रयोग होता है; जैसे—जब यह ध्वजा आप से गिरे तब मेरे पास आइयो; जब हम **पुकारें** तब उत्तर दो; जब तक मैं यहाँ **रहूँ**..।

अभिलाषा व्यक्त करने के लिए भविष्य का प्रयोग

(९) इस काल का प्रयोग अभिलाषा व्यक्त करने के लिए भी होता है; जैसे—किसी दिन मै अपने को न भूल जाऊँ; **पावऊँ** मै तिन्ह करि गति घोरा; मोहि संकर **तेऊ**।

(१०) विधि काल के द्वितीय पुरुष के एकवचन मे भी इस काल का प्रयोग होता है; जैसे—तू हमारे चरन मत **परस**; मो सों कपट **करैं** जनि प्यारी।

संभाव्य भविष्य का तुलनात्मक प्रयोग

(११) जब तुलना की केवल कल्पना की जाती है, तब भी संभाव्य भविष्य काल का प्रयोग होता है—

उदाहरण—बलदेवजी का क्रोध यो बढ़ा जैसे पून्यों को समुद्र की तरंग **बढ़ें**; यों चीर डाला कि जैसे कोई दाँत न चीर **डाले**।

क्षमता व्यक्त करने के लिए संभाव्य भविष्य

(१२) क्षमता व्यक्त करने के लिए भी इस काल का प्रयोग होता है; जैसे—स्त्री अपने पति से जितना कष्ट **पावे**; कवि न **होउँ** नहिं चतुर **कहाऊँ**।

कर्त्तव्य का विधान करने के लिए संभाव्य भविष्य

(१३) औचित्य, उपयोगिता अथवा कर्त्तव्य के विधान के लिए भी इस काल का प्रयोग किया जाता है और वाक्यांशों के पश्चात् वह उपयुक्तता अथवा अनुपयुक्तता को प्रकट करता है; जैसे—फिर उसको यह भी **दिखाये**; तुम को कब योग्य है कि बन में **बसो**।

अध्याहार के लिए संभाव्य भविष्य

(१४) कुछ क्रियाओं के संभाव्य भविष्यकालिक तृतीय पुरुष के एकवचन का प्रयोग अपने ही अध्याहार के लिए होता है। √जानना और √चाहना से बननेवाले वाक्यों मे इस प्रकार का प्रयोग अधिक पाया जाता है; जैसे—तुम्हारे मन में **जाने** क्या सोच है? बातचीत मे इस पूरे वाक्य के स्थान पर 'क्या

जाने' इतना ही वाक्यांश प्रयुक्त होता है। कहीं-कहीं √चाहना के द्वितीय पुरुषवाची बहुवचन का प्रयोग इसी ढग से होता है; जैसे—अब **चाहो** सो हो।

§७६५. यह बात महत्त्वपूर्ण है कि केवल संभाव्य भविष्य के लिए ही इस काल का प्रयोग बहुत आधुनिक है। रामायण की भाँति पुरानी हिन्दी में सभाव्य भविष्य काल का प्रयोग विशेष प्रकार के भविष्यकाल का बोध कराता है। पहले ही यह लिखा जा चुका है कि पुरानी हिन्दी मे सामान्य भविष्यकाल का प्रयोग वर्त्तमान काल के लिए भी होता था। वर्त्तमान काल मे संभाव्य भविष्य का प्रयोग भाषा की कहावतें अच्छी तरह व्यक्त करती है (देखिये—§६०१)। जैसे—हाथ को हाथ **पहचाने**।

स्तरीय हिन्दी में इस काल के प्रयोग के सम्बन्ध मे अपूर्ण वर्त्तमानकालिक अनुच्छेद से जानकारी मिल सकेगी।

विधि

§७६६. विधि के सम्बन्ध में अधिक लिखना आवश्यक नहीं है।

(१) हमे इतनी बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि आदेश अथवा निषेध के लिए विधि का प्रयोग किया जाता है।

विशेष—विधि के स्थान पर भविष्यकाल का प्रयोग नही हो सकता। जैसे—'तू चोरी न **कर**' और 'तू चोरी न करेगा' में अन्तर है।

विधि का नकारार्थ प्रयोग

(२) विधि के नकारार्थ प्रयोग में 'न' अथवा 'मत' का प्रयोग समानरूप से होता है किन्तु जहाँ केवल विधि अथवा निषेध का विधान हो वहाँ 'न' के स्थान पर 'मत' अधिक पसन्द किया जाता है; जैसे—मत जाओ; मत दौड़ियो। 'नही' मे अस्तित्व सूचक क्रिया का वर्त्तमानकालिक रूप भी सम्मिलित है (देखिये §४७२) अतः इसका प्रयोग विधि मे नही होता।

(३) विधि के एकवचन और बहुवचन का बोध दो तरह से होता है—

(क) सर्वनाम से।

(ख) आदर के स्तर से।

साधारणतया अपने से छोटों के लिए द्वितीय पुरुष के बहुवचन में आदेश देते है; जैसे—सारथी घोडों को **रोको**। विधि के एकवचन से अपमान प्रकट होता है।

अनुमति प्राप्त करने के लिए विधि का प्रयोग

(४) अनुमति प्राप्त करने के लिए विधि के प्रथम तथा तृतीय पुरुष के रूपो का प्रयोग होता है।

(क) यहाँ यह बात उल्लेख नही है कि अग्रेजी मे √लेट (let) विधि को सूचित नही करती। अंग्रेजी मे जहाँ कही √लेट का प्रयोग हुआ है, हिन्दी मे वहाँ अनुमतिसूचक संयुक्त क्रिया आनी चाहिए। उदाहरण के लिए अँग्रेजी के वाक्य-let us go को लीजिये, इसका हिन्दी अनुवाद होगा—'हम जांय' या जायें; किन्तु अँग्रेजी के वाक्य permit us to go का अनुवाद होगा—'हम को जाने दो।'

विधि के अन्य उदाहरण इस प्रकार है—शकुन्तला से भी **पूछ**; तुम तो यादवों को **मारो**; हम भी **बैठें**; अब थोडे से और बीन **लें**; तेरे मन कौ दुख **परिहरौं**। कविता मे विधि के उदाहरण इस प्रकार हैं—पावक महँ **करहु** निवासू; सो **जानब** सतसंग प्रमाऊ; ताहि **बोइ** तू फूल।

विधि के आदरार्थक रूप

प्रार्थना के लिए विधि के आदरार्थक रूपों का प्रयोग

§७६७. प्रार्थना अथवा आदर व्यक्त करने के विधि के रूपों के साथ 'यो' अथवा '**ये**' **जोड़ते** है। अधिक आदर प्रकट करना हो तो 'ये' वाला रूप प्रयुक्त किया जाता है। 'यो' वाला रूप समान स्थित के लोगों के लिए या अपने से छोटो के लिए प्रयुक्त होता है और समान स्थिति अथवा अपने से बड़ी स्थिति के लोगों के लिए 'ये' वाला रूप आता है।' '**येगा**' के योग से बनने वाला रूप अर्थ की दृष्टि से 'ये' वाले रूप से भिन्न नही है। 'येगा' वाला रूप अधिक प्रयुक्त नही होता। उदाहरण—'प्रेम सागर' मे सत्राजीत अपनी पत्नी से कहता है—'तू किसू के सोंही मत **कहियो**।' कृष्ण अपने साथियो से कहते है—'तुम दस दिन तक यहाँ **रहियो**।' सूर्य देवता सत्राजीत से कहते है—'इसको मेरे समान **जानियो**'; किन्तु कृष्ण से ग्वाले कहते है—इस महाभयावनी गुफा मे आप भी न **जाइयो**। ग्वाले का ही कथन है—'मुझे दास समझ कर कृपा **रखियेगा**; **करिय** न ससय अस उर आनी। 'शकुन्तला' मे शकुन्तला पिता कण्व के लिए 'यो' वाले रूप का प्रयोग करती है—जैसे—पिता इस लता को मेरे ही समान **गिनियो**।

क. इस पंक्ति मे आदरसहित आदेश के लिए प्रथम पुरुष का बहुवचन प्रयुक्त हुआ है—'**देखिय** कपि कहाँ कर आही।

अन्य कालों के ऐसे ही रूप

§७६८. वाह्य रूप से विधि के इन आदरार्थक रूपो से सादृश्य रखनेवाले रूप संभाव्य भविष्य और वर्त्तमान काल मे भी प्रयुक्त होते है। कविता मे इस प्रकार के प्रयोग विशेषरूप से देखे जा सकते है। उदाहरण—जो मर **जाइये** तो ससार के दुख से छूटिये, वायस **पालिय** अति अनुरागा; **जाइय** बिनु बोलेहु न सन्देहा। इस वाक्य मे सभाव्य भविष्य काल के प्रथम पुरुष, एकवचन मे 'जे' वाला विधि रूप प्रयुक्त हुआ है—इसलिये मै आया हूँ कि अपने भाइयों को ले जाय माता को **दीजे**।

क. इस वाक्य मे सामान्य भविष्य मे 'येगा' वाला रूप प्रयुक्त हुआ है—जब आप **कोपियेगा** तभी भाग जांयगे।

§७६९. विधि के रूपो मे प्रयुक्त होने वाले अन्त्य या, ये अथवा इनके रूपान्तरों का विकास प्राकृत के प्रत्यय 'ज्ज' से मानना चाहिए। प्राकृत मे 'ज्ज' का प्रयोग केवल विधि मे ही नही होता, वर्त्तमानकाल तथा भविष्यकाल के रूपो के लिए भी धातु के साथ यह 'ज्ज' जोडा जाता था[1]। इसीलिए अनेक वैयाकरणों का यह विचार ठीक नही है कि विधि तथा सामान्य काल के ये आदरार्थक वर्त्तमान तथा भविष्यकाल मे भी प्रयुक्त होते है। ये आदरार्थक विधि के अतिरिक्त वर्त्तमान तथा भविष्यकाल के रूप भी है।

विधि के लिए कर्मणि प्रयोग

§७७०. बहुत से उदाहरणों मे 'इये' और 'इय' वाले रूप प्राकृत के पुराने 'इज्ज' प्रत्यय युक्त कर्मणि प्रयोग (§६१०) का प्रतिनिधित्व करते हैं। अब इस कर्मणि प्रयोग का पूरी तरह लोप हो चुका है। मैं यहाँ कर्त्तव्य अथवा कृतज्ञता को व्यक्त करने वाले दो-तीन उदाहरण देता हूँ। ये उदाहरण 'चाहिये'

---

[1] देखिए, § ६०२, ६०५।

के साथ रचे गये है; जैसे—'हमें वहाँ जाना चाहिये' इस वाक्य मे 'जाना' 'चाहिए...का परसर्ग रहित कर्त्तकारक है। एक उदाहरण शकुन्तला का देखिए—'तपोवन वासियों का अपमान न होना चाहिए।' निम्न-लिखित वाक्यो मे क्रिया का 'य' वाला रूप कर्मणि प्रयोग का परिचायक है—

न **जानियै** यह क्योकर जिया, मनुष्य जाति की स्त्रियो मे इतनी दमक कहाँ **पाइये**; जितने फूल पूजा के लिए **चाहिये** उतने बीन चुकी; बवा सो **लुनिय चाहिय** जो दीन्हा; **सुधा सराहिय** अमरता गरल **सराहिय** मीच।

क. इस प्रकार के प्रयोगों मे भूतकाल का बोध कराना हो तो 'चाहिये' के साथ अस्तित्वसूचक क्रिया का भूतकालिक रूप जोडते है; जैसे—तेरे इस सुन्दर अंग को तौ अच्छे वस्त्राभरण **चाहिये थे**।

सामान्य भविष्य

निश्चित भविष्य

§७७१. पहले §३९६ मे बताया जा चुका है कि सामान्य भविष्यकाल के रूप भविष्य मे होने वाली क्रिया अथवा स्थिति का बोध दो प्रकार से कराते है—(१) जिसका होना भविष्य मे निश्चित हो अथवा (२) जिसका भविष्य मे होना निश्चित मान लिया गया हो। उदाहरण—

(१) ऐसा बर-घर और कही न **मिलेगा**, मैं कल **आऊँगा**, अबहुँ याकौ **मारिहौं**, भली-भाँति **पछताव** पिता हूँ; हँसी **करैहहु** पर पुर जाई; अब क्यौ **जीवहिंगे**, जहाँ तुम **जावगे** तहाँ हम हूँ **जाहिंगे**।

(२) जो कृष्ण को **देंगे** तो लोग **कहेंगे**, ये भाट अब न **पावेंगे** तो अपकीर्ति **करेंगे**।

अनुमान सूचित करने के लिए सामान्य भविष्य का प्रयोग

§७७२. रूढ प्रयोगो मे अनुभाव व्यक्त करने के लिए अस्तित्वसूचक क्रिया के सामान्य भविष्य कालिक रूप काम मे लाया जाता है। इस आशय के लिए अस्तित्वसूचक क्रिया सहायक अथवा स्वतत्र दोनो रूपो मे प्रयुक्त होती है; जैसे—पिता कन्व को ये तुझ से भी अधिक पियारे **होंगे**। इस प्रकार के अनुमान सूचित करने वाले काल को अग्रेजी मे 'मस्ट' (must) के द्वारा व्यक्त किया जाता है। जैसे—'उस ऋषि का हृदय बडा कठोर होगा, इस वाक्य का अँग्रेजी अनुवाद होगा–the heart of that saint must be very haıd.

क उत्तर देते समय √होना के तृतीय पुरुष के एकवचन का रूप 'होगा' का प्रयोग क्रियाविशेषण 'सभवत.' के स्थान पर होता है, जैसे—'क्या यह नगर बहुत पुराना है?—**होगा**।'

ख. सामान्य भविष्य का प्रयोग कुछ स्थानो पर अनुमान व्यक्त करनेवाले पूर्णतासूचक काल के स्थान पर होता है; जैसे—मेरा चित्त किसी बडे भ्रम मे **होगा**। इस वाक्य मे 'होगा' का प्रयोग 'हुआ होगा' के स्थान पर हुआ है।

आकांक्षा व्यक्त करने के लिए सामान्य भविष्य का प्रयोग

§७७३. रामायण मे हौ, हहि आदि के योग से बननेवाले भविष्यकालिक रूपो से कही-कही आकाक्षा व्यक्त होती है; जैसे—**होइहहु** संतत पियहि पियारी; मोसे सठ पर **करिहहिं** दाया।

अपूर्णतासूचक कृदन्त के काल

§७७४. अपूर्णता सूचक कृदन्त से बननेवाले कालिक रूपो की विशेषता यह है कि उनसे विभिन्न कालों से सम्बन्धित परिवर्त्तनशील क्रिया की असमाप्ति अथवा उसका अधूरा रहना ज्ञात होता है। सर्वप्रथम अपूर्ण अनिश्चित काल के सम्बन्ध मे विचार किया जाता है।

अपूर्ण अनिश्चित काल

§७७५. यह काल मूलत. क्रिया का अधूरा रहना सूचित करता है। इस काल से समय की जानकारी नही मिलती; भूत, भविष्य अथवा वर्त्तमान मे से किसी एक का बोध हो सकता है।

आवृत्तिमूलक अपूर्ण अनिश्चित

(१) आवृत्तिमूलक भूतकाल मे इस काल के रूपो का प्रयोग होता है, जैसे—जब कभी घात पा **जाते** उसको बिना छेड़े न **छोड़ते**; कोई उसके राज भर मे भूखा न **सोता**।

एक कार्य को सूचित करने वाला अपूर्ण अनिश्चित

(२) भूतकाल की किसी विशेष क्रिया को सूचित करने के लिए इस काल का उपयोग होता है, जैसे—अर्जुन की क्या सामर्थ्य थी जो हमारी बहन को **ले जाता**।

अपूर्ण अनिश्चित अथवा वर्त्तमान

(३) वर्त्तमानकाल मे अधूरी रहनेवाली क्रिया के लिए कही-कही अपूर्ण अनिश्चित काल का प्रयोग होता है।

स्मरणीय—इस प्रकार के प्रयोगों मे काल का बोध सहायक-क्रिया अथवा किसी शब्द से होता है; जैसे—देखते ही तुम्हारी गोद मे आ **बैठती**।

क. जहाँ समय का विशेषरूप से उल्लेख नही किया जाता, ऐसें स्थलो पर भी वर्त्तमानकाल के लिए अपूर्ण अनिश्चित काल का प्रयोग किया जाता है; जैसे—मुझ से कुछ नही हो **सकता**; मैं नही **जानता** क्या उत्तर देओगे। इस प्रकार के प्रयोगो मे सामान्यतया सहायक-क्रिया का प्रयोग नही होता, जहाँ होता है, वहाँ सहायक-क्रिया अनावश्यक रूप मे ही आती है, जैसे—बहुविधि **करति** विलाप जानकी।

स्मरणीय—उल्लेखनीय बात यह है कि 'नही' के साथ बननेवाले निषेधात्मक वाक्यों मे सहायक क्रिया का प्रयोग बहुत कम होता है। हम यह जानते है कि 'नही' 'न' के साथ अस्तित्व सूचक क्रिया 'अहि' पहले से विद्यमान है[1]। उदाहरण निम्न प्रकार है—मुझसे कुछ नही हो सकता; मै नही जानता क्या उत्तर देओगे। इस प्रकार के निषेधात्मक वाक्यों में जहाँ कही सहायक-क्रिया आती है, अनावश्यक बनी रहती है।

---

[1] देखिए, सूची १८।

सार्वत्रिक सत्य के लिए अपूर्ण अनिश्चित काल का प्रयोग

(४) जहाँ समय की अभिव्यक्ति आवश्यक नही होती ऐसे सार्वत्रिक कथनो में भी इस काल का प्रयोग होता है; जैसे—चॉद बिन यामिनी शोभा नही **पाती**। होनहार कही नही रुकती; कोई नही **जानता** इसका भेद।

क. यह देखा गया है कि सार्वत्रिक सत्य को प्रायः निषेधात्मक वाक्य द्वारा व्यक्त करते है। इस बात का उल्लेख हो चुका है कि 'नही' में पहले ही अस्तित्वसूचक क्रिया विद्यमान है।

शर्तवाले वाक्यांश में अपूर्ण अनिश्चित काल का प्रयोग

(५) शर्त्त सूचित करने वाले हेतुमान अथवा परिणामसूचक दोनों प्रकार के वाक्यांशों मे इस काल का प्रयोग किया जाता है। शर्तवाले वाक्यो मे इस काल से भूतकाल का बोध होता है। हेतुमान वाक्य मे यह काल अधूरे रहने का भाव और परिणामसूचक वाक्यांश मे शर्त्त की पूर्णता को प्रकट करता है। उदाहरण—जो मै उसका नॉव गॉव ही **जानता** तो मै कुछ उपाय **करता**; नही तो एक भी जीता न **रहता**।

क. शर्त्त की अभिव्यक्ति के लिए इस काल का प्रयोग सरल वाक्य मे भी होता है; जैसे—मैं इसे क्यो न **सींचती** ?

आकांक्षा व्यक्त करने के लिए अपूर्ण अनिश्चित काल का प्रयोग

(६) इस काल का प्रयोग ऐसी आकाक्षा की अभिव्यक्ति के लिए होता है, जो अपूर्ण रह जाती है। इस प्रकार के वाक्यों मे परिणामसूचक अंश नही आता; जैसे—'कदाचित् आज कन्व घर होते।'[1] अनसूया की इस अभिलाषा के उत्तर में शकुन्तला प्रश्न करती है—'तो क्या होता ?'

§७७६. यह नही समझना चाहिए कि अपूर्ण अनिश्चितकाल का प्रयोग हेतु वाले भूतकाल में भी होता है; इन दोनों कालों के रूप मूलतः भिन्न है। यह सयोग की बात है कि ये रूप सादृश्य रखते है। पूरब की हिन्दी में हेतुमान विकारी भूतकाल विद्यमान है जो अपूर्णकालिक कृदन्त से रचा जाता है। पूरबी बोलियों के इस विकारी रूप के कारण यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हमारे पास दो प्रकार कालिक रूप हैं। एककालिक रूप तो अपूर्णतासूचक कृदन्त से बनते हैं और केवल संकेत करते हैं तथा दूसरे कालिक रूप सामान्य रूप से विधान करते है। ये रूप भी अपूर्णतासूचक कृदन्त से बनते हैं। ध्वनि सम्बन्धी परिवर्त्तनों के कारण स्तरीय हिन्दी मे ये दोनों कालिक रूप अपनी भिन्नता खो बैठे और आज समानरूप ही दोनो कालों मे प्रयुक्त होते है।

विकारी संभाव्य-भूत

§७७७. रामायण तथा पूरब की बोलियो मे प्रयुक्त विकारी संभाव्य भूतकाल के सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है (दे० §५४८)। यहाँ अपूर्ण अनिश्चित सभाव्य काल को समझाने के लिए दो-तीन उदाहरण पर्याप्त होंगे—बूढ भयउ न तो **करतेउँ** कछुक सहाय तुम्हार, जौं **जनत्यौ** बन बधु बिछोहू—पिता बचन भनत्यों नहि ओहू; नाहित ..लै **जातेउँ** सीतहि बर जोरे।

---

[1] शकुन्तला, अंक १, पृ० १०।

अपूर्ण वर्त्तमानकाल

§७७८. इस काल से ज्ञात होता है—(१) ऐसा कार्य जो चालू है अथवा ऐसी स्थिति जो वर्त्तमान काल में बनी हुई है; उदाहरण—तुम तपस्वी की कन्या को **चाहते हो**; तू क्यूँ **डरता है?**; मोरि **करतहहिं** निन्दा।

आवृत्तिसूचक अपूर्ण वर्त्तमान

क यह काल ऐसी आवृत्तिमूलक क्रिया को सूचित करता है, जो वर्त्तमानकाल तक होती रही। उदाहरण—ये दोनो...जहाँ जाते है, तहाँ ही उत्पात **मचाते हैं**, निराकार ब्रह्म की स्तुति वेद किस भाँति **करते हैं**; देव जपत हहु जेही।

सार्वत्रिक सत्य की अभिव्यक्ति के लिए अपूर्ण वर्त्तमानकाल

ख. इस काल का प्रयोग भी अनिश्चित काल की भाँति सार्वत्रिक सत्य को प्रकट करने के लिए होता है, अन्तर इतना ही है कि इस काल का प्रयोग विशेषरूप से वर्त्तमान से सम्बन्धित बातो के लिए होता है, जैसे—जो नर तीरथ...**करता है**, सो परम गति **पाता है**; जो कर्म मे **लिखा है** सोई **होता है**।

ग. सादृश्य बताते समय साधारण घटनाओं के लिए भी इस काल का प्रयोग किया जाता है; जैसे—वह सारे फल जैसे आसमान से ओले गिरते है घर पर गिर पड़े; जैसे सूरज का तेज मेह बरसा कर सुखकारी होता है।

आसन्न वर्त्तमान

(२) निकट भविष्य के लिए भी इस काल का प्रयोग किया जाता है; जैसे—मैं गुफा मे **जाता हूँ**, मै तुझे अभी मारता हूँ; हम भी अपने कार्य को जाते हैं। यद्यपि इस काल का प्रयोग निकट भविष्य के लिए किया जाता है, किन्तु इससे यह पता चलता है कि क्रिया वर्त्तमानकाल मे प्रारंभ हुई है।

भूतकालिक क्रिया के लिए अपूर्ण वर्त्तमान

(३) इस काल का प्रयोग भूतकाल के लिए भी होता है—

(क) इस काल का प्रयोग ऐतिहासिक घटनाओ के लिए होता है, विशेषरूप से ऐसे अवसर पर जब वक्ता मारे उल्लास के अपने को अतीत मे अनुभव करता है; जैसे—मारू बाजते है, कडरवैत कड़खा गाते हैं। इस काल का प्रयोग भूतकाल मे रूढ़ वाक्यों मे होता है, जैसे—'क्या देखता हूँ' आदि। उदाहरण—ऊषा क्या देखती है कि चहुँ ओर बिजली चमकने लगी।

(ख) ऐसी क्रिया के लिए भी यह काल प्रयुक्त होता है, जिसका आरंभ भूतकाल में हुआ हो, लेकिन जो वर्त्तमानकाल में भी जारी रही; जैसे—जिस दिन से माँगी उसी दिन से मैं दुःख उठाती हूँ; मै कई दिन से देखता हूँ।

(ग) इस काल का प्रयोग ऐसी क्रिया के लिए भी होता है जो भूतकाल मे किसी कारण से रुक गई थी और इसीलिए वर्त्तमानकाल मे जो पूर्ण नही हुई। उदाहरण—'प्रेमसागर' मे शतधन्वा की बात अक्रूर

ने काटी, उसने कहा—'तू' बडा मूर्ख है जो हमसे ऐसी बात कहता है।' शतधन्वा से अक्रूर ने कहा—'क्या हम तेरी जाति-पाँति पूछते है।'

विकारी वर्त्तमानकाल का प्रयोग

§७७९. विकारी वर्त्तमानकाल का प्रयोग भूत, वर्त्तमान अथवा भविष्य तीनो कालों के लिए होता है। §§४९०, ५०६ (क) में इस काल के अनेक उदाहरण दिये गये हे। यहाँ कुछ और प्रयोग दिये जा रहे है।

(१) वास्तविक वर्त्तमान काल मे विकारी वर्त्तमान काल का प्रयोग—न **जानूं** यह अनसूँघा फूल विधाता किस बड़भागी के हाथ लगावेगा; **सकौं** तोरि अरि अमरहु मारी; केहि अवराधहु का तुम **चहहु।**

(२) सामान्य वर्त्तमान काल मे—जासु भजन बिनु जरनि न **जाही**; सतत संत **प्रसंसहिं** तेही; ये मुरली **बजावें** वे सीगी।

(३) आसन्न वर्त्तमान के लिए—**बरनौ** रघुवर विमल जस।

(४) ऐतिहासिक वर्तमान के लिए—देखि शिवहि सुरतिय **मुसुकाहीं**; गये भवन **पूछहि** पितु माता।

क. विकारी वर्त्तमानकाल मे प्रायः सामान्य वर्त्तमान तथा ऐतिहासिक वर्त्तमान का समावेश होता है; जैसे—कोई मुख **धुलावै** कोई **जिमावै**, किन्ही का गुण गाया करे।

ख. निम्नलिखित उदाहरण मे विकारी वर्त्तमानकाल का प्रयोग आनुमानिक अपूर्णकाल के लिए हुआ है (§७८३)—'**जानहि** सानुज रामहि मारो'[1]। आधुनिक हिन्दी मे 'जानहि' के स्थान पर 'जानते होगे' का प्रयोग होता है।

ग. निम्नलिखित पक्ति मे विकारी वर्त्तमान का एक रूप दो स्थानो पर आया है, पहले स्थान पर वह सामान्य भविष्यकाल के लिए है और दूसरे स्थान पर वर्त्तमानकाल के लिए—जे **देखहि देखहि** जिन्ह देखे।

§७८० विकारी वर्त्तमानकाल का प्रयोग 'हूँ' आदि के साथ भी होता है। (दे० §§ ४९० (क), ५०६.)। प्रेमसागर मे इस प्रकार के रूप कई स्थलो पर प्रयुक्त हुए है, जैसे—तू हमे नही जानती मै **पहचानू हूँ**; एक दुख मुझे जब न तब **साले है**; तहाँ कुछ न कुछ उपद्रव **मचावै** है।

अपूर्ण भूत

भूतकाल में चालू रहनेवाली क्रिया के लिए अपूर्ण भूतकाल का प्रयोग

§७८१. अपूर्ण भूतकाल का प्रयोग निम्नलिखित स्थानो पर होता है—(१) भूतकाल मे चालू रहने वाली क्रिया को सूचित करने के लिए, जैसे—मैं श्री महादेव के पास **पढ़ता था**, ठौर ठौर दुंदुभी **बाजते थे**; एक नारी **रोवति हो**।

आवृत्तिमूलक भूत के लिए अपूर्ण भूत का प्रयोग

(२) क्रिया की आवृत्ति को व्यक्त करने वाले भूतकाल मे कही-कही अपूर्ण भूत का प्रयोग होता

---

[1] रामायण, अयोध्याकाण्ड।

है; जैसे—जिस नगर में **जाते थे** तहाँ के राजा अति शिष्टाचार कर उन्हें **ले जाते थे**; जितने अस्त्र-शस्त्र **चलाते थे** एक भी न **लगता था**।

संभाव्य अपूर्ण

संभाव्य अपूर्ण का प्रयोग

§७८२. यह काल ऐसी क्रिया के लिए प्रयुक्त होता है, जो वस्तुतः चालू न हो, किन्तु जिसके चालू रहने की संभावना की जा रही है; जैसे—कदाचित् कोई मन मे **कहता हो**; जिसमें हरिणो के झुंड **चरते हों**,

क. कल्पित सादृश्य के लिए भी इस काल का प्रयोग किया जाता है; जैसे—तीनो ऐसे चले जैसे तीनो काल देह धरि **जाते होंय**; ऐसा शब्द हो रहा था कि जैसे मेघ **गरजता हो**।

आनुमानिक अपूर्णकाल

§७८३ आनुमानिक अपूर्ण संभाव्य काल अपूर्ण काल से उतना ही भिन्न है जितना संभाव्य भविष्य से सामान्य भविष्य। संभाव्य भविष्य से क्रिया की प्रगति के बारे मे केवल सभावना प्रकट की जाती है, जबकि आनुमानिक अपूर्ण काल क्रिया के लगभग चालू रूप को व्यक्त करता है (देखिए § ४०७)। सहायक क्रिया का संभाव्य भविष्यकाल यथार्थ का द्योतक न होकर कल्पना को व्यक्त करता है; जैसे—वे हमारी सुरत **करते होंगे**; तेरे लिए गौतमी **अकुलाती होगी**।

अपूर्ण संभाव्य भूत

अपूर्ण संभाव्य भूत

§७८४ किसी निश्चित भूतकाल में शर्त के साथ चालू रहने वाली क्रिया के लिए अपूर्ण संभाव्य भूतकाल का प्रयोग होता है। इस काल का प्रयोग अनिवार्य रूप से शर्त्त के सम्बन्ध मे निषेध व्यक्त करता है। इस काल का अधिक प्रयोग नही होता। केवल एक उदाहरण पर्याप्त रहेगा—'जो तुम उस काल अपना **काम करते होते** तो तुम मार न **खाते**।

पूर्णतासूचक कृदन्तों से बनने वाले काल

§७८५. पूर्णतासूचक कृदन्त से बनने वाले सकर्मक क्रिया के दो कालो का उल्लेख पहले किया जा चुका है (§४१२)। अब फिर इस सम्बन्ध में लिखना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। पूर्णतासूचक कृदन्तों को समझने में निम्नलिखित उदाहरण सहायक होंगे।

पूर्णतासूचक कृदन्त का कर्मणि प्रयोग

(१) यहाँ कर्मणि प्रयोग दिये जा रहे है; इन उदाहरणों मे क्रिया के लिंग तथा वचन का निर्धारण कर्म के अनुसार हुआ है; जैसे नंद जसोदा ने बडा तप **किया था**; श्रीकृष्ण ने **बाँसुरी** बजाई; उसने सहस्र ब्राह्मण जिमाये; जसोदा ने रस्सियाँ मँगाई।

क. यदि क्रिया सर्वनामवाची शब्द के साथ प्रयुक्त हुई है तो क्रिया के लिंग-वचन का निर्धारण उस संज्ञा के अनुसार होता है, जिसके स्थान पर सर्वनाम का प्रयोग हुआ है; जैसे—यह हमने **क्या किया** (कामदेव ने कहा); सीताजी कहती हैं केहि अपराध नाथ हौं **त्यागी**।

(२) नीचे भावे प्रयोग दिये जा रहे है। भावे प्रयोग मे क्रिया सदैव पुल्लिगवाची एकवचन में प्रयुक्त होती है। भाववाच्य क्रिया कर्त्ता तथा कर्म के लिंग और वचन को स्वीकार नही करती; जैसे—प्रभु ने जरासंध को छुडवाय **दिया**; कंस ने वसुदेव-देवकी को एक कोठरी मे मूंद **दिया**; मैंने उस गाय को **देखा**; उसने अपनी बेटियों को **बुलाया**।

क. यदि कर्मकारक में किसी सर्वनाम का प्रयोग हुआ है और उसके साथ कर्मकारक का परसर्ग 'को' प्रयुक्त नहीं हुआ है, तब भी सर्वनामों के 'ए' अथवा 'एँ' वाले रूप के साथ भी भाववाच्य क्रिया उसी प्रकार पुल्लिगवाची एकवचन में प्रयुक्त होती है, जैसे—'को' परसर्ग युक्त संज्ञा अथवा सर्वनाम के साथ उसका प्रयोग किया जाता है—उसने इन्हें रखा; उसने उन्हे पकड़ बाँधा।

कर्तृवाच्य क्रिया के लिए पूर्णकालों का प्रयोग

§७८६. पहले बताया जा चुका है कि रामायण मे सकर्मक क्रियाओ के पूर्णकालो का प्रयोग कर्तृवाच्य क्रिया की भाँति हुआ है। §५५५. मे इस प्रकार के प्रयोग देखे जा सकते है, यहाँ केवल एक उदाहरण और दिया जा रहा है—तुम्ह देखे दयाल रघुराई।

विकारी पूर्णकाल

क. रामायण मे अकर्मक अथवा सकर्मक दोनों प्रकार की क्रियाएँ पूर्णतासूचक विकारी कालों मे कर्तृवाच्य बनी रहती है। §५५७. में अनेक उदाहरण दिये गये है, यहाँ भी कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं—जनमत काहे न मारसि मोही, कहेन्हि करिय उत्पात आरंभ; हरि आनेहु सीता जगदम्बा। इलाहाबाद के आसपास की आधुनिक बोली मे लोग कहते है—तुम का कहिन (स्तरीय हि० तुमने क्या कहा?) आदि।

ख. इसी तरह ऐसे पूर्णकालिक रूपों का प्रयोग सामान्यत. कर्तृवाच्य की भाँति होता है, जिनके अन्त में 'न' अथवा 'ना' आता है (दे० §५६० (ख)); साथ ही हमे यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि 'न' अथवा 'ना' प्रत्यय ऐसे धातुओं के साथ जुड़ता है, जो देखने में प्रेरणार्थक प्रतीत होती हैं किन्तु आशय की दृष्टि से इसका प्रयोग भाववाच्य की तरह होता है; जैसे—उर आनन्द; कपि सकल पराने; पाछिल पछिताना।

अनिश्चित पूर्णकाल

सामान्य अनिश्चित पूर्णकाल

§७८७. अनिश्चित पूर्णकाल का प्रयोग निम्न अर्थों मे होता है—

(१) जो क्रिया समाप्त हो चुकी है, किन्तु जिससे किसी समय का बोध नही होता; जैसे—उसने यह बात कही; यह भेद किसी ने नही पाया; अभय भई; सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति।

अनिश्चित पूर्णकाल का प्रयोग वर्त्तमानकाल में

(२) इसका प्रयोग पूर्ण वर्त्तमानकाल के लिए होता है। समय का बोध प्रसंग से होता है; जैसे—तुम बहुत दिन जीते बचे।

क्रिया की पूर्णता बताने के लिए

(३) क्रिया की पूर्त्ति सूचित करने के लिए भी इस काल का प्रयोग किया जाता है; जैसे—किसी ने न जाना कि वह किधर गये, जब असुरो की बहुत-सी सेना कट गई।

सार्वत्रिक सत्य की अभिव्यक्ति के लिए

(४) भूतकाल के अनुभव पर आधारित सार्वत्रिक सत्य को व्यक्त करने के लिए भी इस काल का प्रयोग होता है, जैसे—जिसने ससार में आय तुम्हारा नाम न लिया तिसने अमृत छोड़ विष पिया।

क. इस काल का प्रयोग जहाँ वर्त्तमान के लिए होता है, अँग्रेजी मे उसे वर्त्तमानकाल में ही अनुवादित किया जाता है; जैसे—अब मैने भी तपोवन के चिह्न देखे (now I too see the marks of a sacred grove); मै जान्यौ जिय कर निर्मान (meaning (you) in (my) mind, I know (that you are not Brahmans) । स्तरीय हिन्दी में भी रहना के साथ इसी प्रकार का प्रयोग मिलता है; जैसे—अब यहाँ कोई मक्खी भी नही रही।

नाटक में अनिश्चित अपूर्ण काल

ख. नाटको मे इस काल का रूढ प्रयोग पात्रों के आने-जाने की घोषणा में किया जाता है। अँग्रेजी में ऐसे स्थलो पर वर्त्तमानकाल का प्रयोग ही होता है; जैसे—दो ढाड़ी गाते हुए आए। 'शकुन्तला' में इस प्रकार का प्रयोग कई स्थलों पर मिलता है, किन्तु अन्य लेखको ने इस रूप का प्रयोग वर्त्तमानकाल मे किया है।

अनिश्चित अपूर्ण का प्रयोग भविष्यकाल के लिए

(५) इस काल का प्रयोग क्षेत्रीय बोलियो में भविष्यकाल के लिए होता है, विशेषरूप से जब क्रिया निश्चित समय पर तुरन्त होने वाली हो। कोई व्यक्ति अपने सेवक को आदेश देता है—'पानी लाओ' और सेवक उत्तर देता है—'**लाया**'; इस 'लाया' का तात्पर्य है नौकर तुरन्त पानी लाने वाला है। इसी प्रकार का उदाहरण 'शकुन्तला' मे मिलता है, जब माढव्य राजा के आदेश के सम्बन्ध मे कहता है—'सन्देसा दिया।'

रामायण में पूर्णकाल का प्रयोग

§७८८. वर्त्तमान हिन्दी गद्य मे पूर्णकाल के विभिन्न भेदो के लिए विभिन्न रूपो का प्रयोग होता है। किन्तु रामायण तथा अन्य पुराने काव्यो मे पूर्णता सूचक सभी कालों का आशय एक ही काल से व्यक्त किया जाता है; जैसे—सती जन्मी जाई हिमाचल। इसके उदाहरण §§५५१, ५५८ में देखे जा सकते है।

वर्तमान पूर्णकाल

पूर्ण वर्त्तमान

§७८९. पूर्ण वर्त्तमानकाल वर्त्तमान में क्रिया की समाप्ति को सूचित करता है; जैसे—हम यही तुमसे माँगने **आए हैं**, जब से मैंने आपका नाम **सुना है**; तुम्हारे पिता ने...मूँद रखा है।

वर्तमानकाल के लिए पूर्ण वर्तमानकाल का प्रयोग

क. अँग्रेजी के प्रयोगों मे जहाँ वर्त्तमानकाल के रूपों की आवश्यकता होती है, वहाँ हिन्दी मे पूर्ण वर्त्तमान का प्रयोग किया जाता है; जैसे—तुम निश्चिन्त क्यो **बैठे हो** ?; बार-बार मे तोरन बन्दनवार **बँधी है**।

पूर्णभूत के लिए पूर्ण वर्त्तमान

ख. जहाँ पूर्ण भूतकाल का प्रयोग अपेक्षित है, वहाँ पूर्ण वर्त्तमान का प्रयोग बहुत कम होता है; जैसे—किसी समय राजा हरिश्चन्द्र बडा दानी **हो गया है**।

अनिश्चित पूर्णकाल के लिए पूर्ण वर्त्तमान

ग. निम्नलिखित वाक्य में अनिश्चित पूर्णकाल के स्थान पर पूर्ण वर्त्तमानकाल का प्रयोग हुआ है। 'मुझे कल राजा के यहाँ से गाय **मिली है**।

स्मरणीय—ऊपर के उदाहरण मे यह प्रकट किया गया है कि क्रिया वर्त्तमानकाल तक जारी रही। इसीलिए इस वाक्य मे सहायक-क्रिया वर्त्तमानकाल मे प्रयुक्त हुई है।

पूर्णभूत

§७९०. हिन्दी में पूर्ण भूतकाल का प्रयोग वहाँ होता है; जहाँ घटना के घटित होने के पश्चात् कुछ समय—वह समय निश्चित हो या अनिश्चित—व्यतीत हो गया है।

यह आवश्यक है कि अधिकाश स्थलों पर हम हिन्दी के पूर्ण भूतकाल को अनिश्चित भूतकाल से प्रकट करें। जैसे—मैं तुम्हे सावधान करने **आया था**; जिस समय यह **जन्मा था**; जब इसका नाल भी नही कटा था तब उनको वन में पड़ी **मिलीं थीं**; तुम तो अमर हे भये (हे भये-हुए थे)।

संभाव्य पूर्णकाल

§७९१. संभाव्य पूर्णकाल क्रिया के कल्पित अथवा अनुमित कार्य की समाप्ति को सूचित करता है। इसका प्रयोग निम्न स्थानो पर होता है—

संभाव्य पूर्ण—अनुमान के लिए

(१) अनुमित अथवा कल्पित शर्त्त के वाक्यांश में इस काल का प्रयोग होता है; जैसे—जो नल ने कोई निर्दयता का काम भी किया हो।

संदेह प्रकट करने के लिए

(२) इस काल के द्वारा सन्देह व्यक्त किया जाता है; जैसे—हँसी से न **कही हो**।

क्षमता व्यक्त करने के लिए

(३) क्षमता व्यक्त करने के लिए इस काल का प्रयोग किया जाता है; जैसे—जो जो कुछ उसने सीखा होगा।

संभाव्य भूत के लिए

(४) इस काल का प्रयोग संभाव्य भूत के लिए भी होता है; जैसे—यदुकुल में ऐसी नही कोय—तज कै खेत जो भाग्यौ होय।

सादृश्य के लिए

(५) भूतकाल में किये गये कल्पित सादृश्य के लिए भी इस काल का प्रयोग होता है; जैसे—जैसे...बरण बरण के घटा घिर आई होंय ।

क. रामायण में बहुत कम स्थलों पर इस काल का प्रयोग हुआ है; जैसे—जौ परिहास कीन्ह कछु होई।

आनुमानिक पूर्णकाल

आनुमानिक पूर्णकाल

§७९२ आनुमानिक पूर्णकाल के द्वारा क्रिया की समाप्ति का अनुमान अथवा संभावना प्रकट की जाती है । आनुमानिक पूर्णकाल के आशय को अंग्रेजी में क्रियाविशेषण के द्वारा व्यक्त करते है । जैसे—बालक की क्या-क्या मति हुई **होगी** ; आपने यह दोहा सुना **होगा** ; नदी के प्रवाह से झुका **होगा**।

क. इस काल का प्रयोग अधीरता व्यक्त करनेवाले प्रश्न के लिए भी होता है; जैसे—कन्व मुनि ने क्या संदेशा भेजा होगा।

संभाव्य पूर्णभूत

शर्तवाले वाक्य में संभाव्य पूर्णभूत का प्रयोग

§७९३. संभाव्य पूर्णभूत का प्रयोग केवल शर्तवाले वाक्य मे होता है। इस काल के द्वारा भूतकाल मे किसी ऐसे कार्य की संभावना व्यक्त की जाती है, जो वास्तव में सम्पन्न नही हो सका। उदाहरण—जो उठी भी होती तौ क्या करती ? अपनी लड़की अपने हात से न मारी होती, मैंने रामायण मे इस काल के प्रयोग का एक उदाहरण देखा है—जौ न होति सीता सुधि पाई।

क. शर्त्तवाले वाक्यों में अनिश्चित अपूर्णकाल का प्रयोग भी होता है। संभाव्य पूर्णभूत और अनिश्चित अपूर्णकाल में अन्तर यह है कि सभाव्य पूर्णभूत से क्रिया की समाप्ति सूचित होती है। जहाँ दोनों कालों में भ्रम उत्पन्न हो, यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि संभाव्य पूर्णभूत से क्रिया की समाप्ति और अनिश्चित अपूर्ण काल से क्रिया की असमाप्ति का अनुमान लगाया जाता है।

कर्मवाच्य रूप

§७९४. हिन्दी में निम्नलिखित स्थानों पर कर्मवाच्य रूपों का प्रयोग होता है—

कर्मवाच्य रूप का प्रयोग

(१) जहाँ कर्त्ता का उल्लेख न किया गया हो या उसका उल्लेख निश्चित रूप से न हुआ हो।

(२) कर्मवाच्य का ठीक-ठीक उपयोग असंभवता व्यक्त करने के लिए निषेध सूचक अव्यय के साथ होता है। ऐसे प्रयोगो मे निषेधसूचक अव्यय नियमित रूप से मुख्य क्रिया और सहायक क्रिया के मध्य में आता है। (१) प्रथम प्रकार के प्रयोग के उदाहरण—इसका भेद **कुछ जाना नहीं जाता; न तु मारे जैहैं** सब राजा।

(३) द्वितीय प्रकार के उदाहरण—उनका बल अब मुज से सँभाला नही जाता।

अकर्मक क्रिया का भाववाच्य रूप

§७९५. अकर्मक-क्रिया का भी कर्मवाच्य रूप प्रयुक्त होता है; जैसे—हम से **आया नहीं जाता;** राम कृपा बिना **आइ न जाए।**

कर्मवाच्य क्रिया के साथ कर्त्ता का प्रयोग

§७९६. कर्मवाच्य क्रिया का कर्त्ता सदैव अपादान कारक मे आता है। ऊपर जो उदाहरण दिया गया है, उससे यह बात पुष्ट होती है। 'राजनीति' मे कर्मवाच्य क्रिया के कर्त्ता को अधिकरण कारक में रखा गया है और उसके साथ 'पै' परसर्ग का प्रयोग हुआ है, जैसे—**मोपै** चल्यो नहिं जाए। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि कर्मवाच्य क्रिया के साथ, कर्त्ताकारक 'ने' परसर्ग के साथ प्रयुक्त नही होता।

§७९७ जब एक ही वाक्य मे एक कर्मवाच्य क्रिया लगातार आती है और भिन्न-भिन्न कालों मे आती है तो केवल मुख्य क्रिया का कृदन्त रूप सहायक-क्रिया के साथ प्रयुक्त होता है; जैसे—लोग मारे गये, औ जाते हैं औ जाएँगे।

§७९८ यह बात विशेषरूप से ध्यान देने योग्य है कि अधिकाश स्थलो पर अंग्रेजी के कर्मणि प्रयोग हिन्दी मे अनुवादित करते समय कर्मवाच्य नही रहते। उन्हे अकर्मक क्रिया के द्वारा व्यक्त किया जाता है, जैसे—these fields are being irrigated को मुहावरेदार हिन्दी में इस प्रकार कहा जाएगा—ये खेत सिच रहे है, इसी प्रकार से *the king will be hindered from going to rest* का हिन्दी अनुवाद होगा— 'राजा विश्राम को जाने से रुक जाँयगे।'

स्मरणीय—यह बात ध्यान देने योग्य है कि बहुत-सी तथाकथित अकर्मक क्रियाएँ प्राकृत **तथा संस्कृत की** सकर्मक क्रियाओं से उद्भूत है। (देखिए-§६१० क)।

विकारी कर्मवाच्य

§७९९ पुरानी हिन्दी के विकारी कर्मवाच्य का उल्लेख §§४९३, क, ५६६, क. मे हो चुका है। विकारी कर्मवाच्य का प्रयोग भी आधुनिक कर्मणि प्रयोगों की भाँति होता है।

प्रेरणार्थक क्रिया

प्रेरणार्थक क्रिया का प्रयोग

§८०० प्रेरणार्थक क्रिया के प्रयोग के सम्बन्ध मे अधिक लिखने की आवश्यकता नही है। यहाँ इतना बता देना पर्याप्त होगा कि प्रेरणार्थक क्रिया के साथ नियमित रूप से दो कर्मों का प्रयोग होता है। उदाहरण §४२१-४२४ मे देखे जा सकते है।

§८०१. कही-कही प्रेरणार्थंक क्रिया सें प्रेरणा प्रकट नही होती अपितु उससे ज्ञात होता है—(१) क्रिया का होने देना, (२) क्रिया के चालू रहने या होने का भाव। जैसे—नख केश बढाये.....सब राजा खडे हो बिन्ती कर **रहे थे**; मारे मरिय जियाये जीजे।

संयुक्त क्रिया

§८०२. सयुक्त क्रिया के प्रयोग के सम्बन्ध में निम्नलिखित बात उल्लेखनीय है—

उत्कर्षसूचक संयुक्त क्रिया

(१) उत्कर्षसूचक क्रिया के पर पद मे जुड़नेवाली क्रिया अकर्मक हो तो पूर्णतासूचक कालों में पूरी संयुक्त क्रिया कर्तृवाच्य रहती है, चाहे पूर्वपद की क्रिया सकर्मक हो चाहे अकर्मक। नीचे कुछ ऐसे उदाहरण दिये जा रहे है जिनमे असंयुक्त सकर्मक क्रिया पूर्णतासूचक कालो मे कर्त्ताकारक (विकारी) के साथ प्रयुक्त हुई हैं, फिर भी उनका सयुक्त रूप कर्तृवाच्य की भाँति प्रयुक्त होता है, जैसे—उसने रोटी **खाई,** किन्तु वह रोटी **खा गया** ; मैने उसको **देखा,**किन्तु वह देख पडा; उसने **सुना,** किन्तु वह सुन रहा है।

क. √ रहना के योग से बननेवाली समासित क्रियाओं के सम्बन्ध मे उल्लेखनीय बात यह है कि इनका प्रयोग सदैव पूर्णतासूचक कृदन्तो के प्रथम तीन कालों मे होता है, किन्तु अर्थ की दृष्टि से इस प्रकार की सभी संयुक्त कियाएँ अपूर्णता प्रकट करती हैं। इनसे क्रिया के जारी रहने पर बल दिया जाता है। जैसे—सुन रहा है, सुन रहा था।

अनुक्रमसूचक तथा प्राप्तिसूचक संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग

(२) अनुक्रम तथा प्राप्तिसूचक सयुक्त क्रियाओ के द्वितीय पद मे प्रयुक्त क्रिया यदि स्वतत्र रूप से प्रयुक्त होती है तो सदैव कर्मवाच्य रहती है किन्तु सयुक्त क्रिया कर्तृवाच्य मानी जाती है। यह नियम उन संयुक्त क्रियाओ पर भी लागू होता है, जो √ देना, √ लेना अथवा √ पाना के योग से रची जाती है, जैसे—चल देना, हो लेना, देख पाना आदि।

विशेष प्रकार की सांज्ञिक संयुक्त क्रिया

क. अनुभूति को व्यक्त करने वाली निम्नलिखित साज्ञिक संयुक्त क्रियाओं की रचना सकर्मक √ देना के योग से हुई है, फिर भी वे समस्त कालों मे कर्तृवाच्य बनी रहती है : जैसे–दिखाई देना; सुनाई देना; सुँघाई देना, छुलाई देना; इस ढग से बँधाई देना।

इन रूपो का प्रयोग निम्न उदाहरणों मे देखा जा सकता है—वह फिरा किया; मै नही देखने पाया, वे चल दिये; वह मेरे पीछे हो लिया, कोई नही देख पाया; दो गाँव दिखाई दिये, मुझे कुछ नही सुनाई दिया; कोई फूल सुँघाई दिया; वह क्या मुझे छुलाई दिया।

(३) √ लेना के योग से बननेवाली संयुक्त क्रिया के सम्बन्ध मे पहले लिखा जा चुका है। यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा—लटो मे पंछियों ने घोंसले बना लिये।

(४) सांज्ञिक सयुक्त क्रिया की कुछ क्रियाएँ जब स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होती है तो उनका वाच्य बदल जाता है; जैसे हम कहते हैं—उसने मुझसे कहा; किन्तु मुझे कह दिया।

अनुमतिसूचक

(५) अनुमतिसूचक संयुक्त क्रिया सदैव सम्प्रदान कारक के साथ आती है, जैसे—तू मुझे यहाँ ठहरने न देगा।

पूर्त्तिसूचक तथा सामर्थ्यसूचक

(६) सामर्थ्य तथा पूर्तिसूचक √सकना तथा √चुकना का स्वतन्त्र प्रयोग साहित्य मे बहुत कम होता है। वैसे कुछ क्षेत्रों की बोलचाल में इनका स्वतंत्र प्रयोग मिलता है; विशेष रूप से जहाँ क्रिया का तुरन्त बोध आवश्यक हो। रामायण में √सकना का स्वतंत्र प्रयोग मिलता है—**सकहु** तो मेटहु कठिन कलेस।

क "सकना" क्रिया सदैव धातु अथवा नकारान्त सामान्य रूप के साथ जुड़ती है। कही-कही बकारान्त रूप के साथ भी प्रयुक्त हुई है; जैसे—राम तोरब सक नाहीं।

ख. √चुकना का प्रयोग प्राय· अन्य क्रियाओं के साथ होता है। कहीं-कहीं स्वतंत्र रूप से भी प्रयुक्त हुई है, जैसे—तुम्हारे कहने ही से ऋण चुक गया। √चुकना का प्रेरणार्थक रूप 'चुकाना' स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होता है।

उत्कण्ठासूचक

(७) 'चाहिए' के योग से बननेवाली उत्कण्ठासूचक सयुक्त क्रिया 'कर्त्तव्य' अथवा आवश्यकता का बोध कराती है। इस सयुक्त क्रिया के सम्बन्ध मे पहले लिखा जा चुका है (दे० §४३७)।

स्थितिसूचक

§८०३. कुछ वैयाकरणों ने स्थितिसूचक संयुक्त क्रिया का पृथक् अस्तित्व स्वीकार किया है 'शकुन्तला' का यह उदाहरण देखिये—घडे उठाते-उठाते तुम्हारी सखी **थक गई है**। यहाँ कृदन्त रूप 'थक' को सज्ञा माना जा सकता है।

§८०४. बोलचाल में क्रियाएँ अपने आप संयुक्त होती हैं—साहिब लोग अभी चलने लग रहे; नही सक जायगी; सब खाने लग गये।

क्रियाविशेषण

§८०५ पहले §६४२ में इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि अनेक क्रियाविशेषणों का प्रयोग सज्ञा की भाँति होता है। नीचे अधिक जानकारी दी जा रही है।

§८०६. सर्वनामो से बननेवाले क्रियाविशेषणो के साथ सम्बन्ध कारक का परसर्ग अतिरिक्त रूप मे प्रयुक्त होता है, जैसे—**अब के** बरस, **अब का** हमारा अपराध क्षमा हो, तुम **कहाँ के** हो। यदि निषेधसूचक अव्यय के साथ 'जब तक' का प्रयोग होता है, तो अँग्रेजी में उसके लिए 'अन्टिल' (until) अथवा इसका कोई पर्यायवाची शब्द आता है; किन्तु बिना निषेधसूचक अव्यय के 'जब तक' का अंग्रेजी (as long as) अनुवाद होगा।

उदाहरण निम्न प्रकार हैं—**जब तक मैं** न आऊँ, किन्तु—**जब तक मैं** रहूँ, **जब तक** मर्म न जाने वैद्य औषधि भी नही कर सकता है। इसी प्रकार—**जब तक मैं** फिर आऊँ तब तक घोड़ों की पीठ ठंडी·

कर लो। 'शकुन्तला' के इस वाक्य मे 'जब तक' का आशय है—'उस समय तक', **जब तक** इसके पुत्र का जन्म हो; किन्तु **जौ लौं** जियौ तौ लौं जनि कछु कहेसि बहोरी।

§८०७. 'तब तक' के लिए अग्रेजी मे 'hether to' अथवा 'thus for' आता है। इस क्रियाविशेषण का उदाहरण है—'ये दुख तौ थे ही **तब तक** एक नया घाव और हुआ। इस वाक्य मे 'जब तक' के बिना 'तब तक' का प्रयोग किया गया है—'तब तक तुमने आ थामा।'

§८०८. सम्बन्धसूचक क्रियाविशेषण सम्बन्ध कारक में सज्ञा की भाँति प्रयुक्त होता है। यदि सम्बन्धसूचक क्रियाविशेषण अन्योन्य सम्बन्धी क्रियाविशेषण के साथ प्रयुक्त हो तो वह रीति, स्थान आदि का बोध कराता है। उन पर लिंग-वचन आदि का प्रभाव नही पड़ता, जैसे—ज्यों-का-त्यो; जहॉ-का-तहाँ।

§८०९ 'जहॉ तक' से परिमाण अथवा दूरी का बोध होता है; जैसे—जहाँ तक तुमसे हो सके। 'कहॉ तक' का तात्पर्य है 'अनिश्चित लम्बाई' जैसे—'जो दान दिया मैं कहाँ तक कहूँ?' इस वाक्य का शाब्दिक अनुवाद नही किया जा सकता।

पुनरुक्त प्रश्नसूचक स्थानवाची विशेषण

§८१० दो वाक्याशों मे 'कहाँ' के दुहराने से 'अन्तर' अथवा अनुपयुक्तता का बोध होता है। उदाहरण—**कहाँ** ये बालक रूप निधान **कहाँ** ये सबल मल्ल?; **कहँ** कुंभज **कहँ** सिन्धु अपारा।

सम्बन्धसूचक तथा अन्योन्य सम्बन्धसूचक क्रियाविशेषणों का संयोजन

§८११. सार्वत्रिकता के बोध के लिए सम्बन्धवाची और अन्योन्य सम्बन्धवाची क्रियाविशेषणो को समासित किया जाता है; उदाहरण—**जहँ तहँ** देखौ दोउ भाई; **जिधर तिधर** नगरवासी लोग प्रभु के चरित्र बखानें।

§८१२. यद्यपि '**कत**' का उद्भव सं० 'कुत्र' से हुआ है, फिर भी इसका प्रयोग 'कैसे' अथवा 'क्यो' के स्थान पर होता है; जैसे—जगतार **कत** हम गावे, केकयि **कत** जनमी जग माझा।

अनिश्चयसूचक स्थानवाची क्रियाविशेषण

§८१३. अनिश्चयसूचक स्थानवाची क्रियाविशेषण 'कही' का प्रयोग अधिकता को अनिश्चयपूर्वक व्यक्त करने के लिए होता है। इससे सादृश्य भी प्रकट होता है। रूढ प्रयोगों मे 'कही' का आशय होता है—'समवत:' 'किसी तरह से'। उदाहरण—वह घर इससे **कहीं** ऊँचा है; सखी ने ब्याह की बात **कहीं** हँसी से न कही हो। रामायण मे 'कही' के स्थान पर 'कतहुँ' का प्रयोग हुआ है—'कतहुँ तम नही'।

दिशा तथा रीतिसूचक क्रियाविशेषण

§८१४. दो वाक्यांशों में प्रयुक्त 'इधर' तथा 'उधर' और बोलियों मे प्रयुक्त 'इत' तथा 'उत' विपर्यय सूचित करते है; जैसे—**इधर** तो अनिरुद्ध जी महाशोक करते थे, **उधर** राजकन्या योग करने लगी; **इत** हित मित छूटें **उतहि** बिलोके परम हुलासा।

§८१५. रामायण मे 'यूँ' के स्थान पर इसका संस्कृत मूल 'इत्थं' 'इदम्' के साथ प्रयुक्त हुआ है; जैसे—इदमित्थम् कहि न जाये।

§८१६. रामायण तथा अन्य काव्यो मे निषेधसूचक अव्यय के साथ प्रयुक्त होनेवाले 'क्यों' के स्थान पर 'किन' का प्रयोग मिलता है, जैसे—कह लंकेस कहसि **किन** बाता।

§८१७ 'बरु' (चाहे) का प्रयोग केवल कविता मे हुआ है; जैसे—जियै मीन **बरु** वारि बिहीना।

§८१८ आदेशात्मक वाक्यो मे 'दूर' के स्थान पर 'परे' का प्रयोग होता है; जैसे—परे हो; परे हट।

संयोजक 'कि'

§८१९. द्वितीय वाक्यांश में घटित घटना और प्रथम वाक्यांश की घटना के घटित होने का एक ही समय सूचित करने के लिए संयोजक **'कि'** का प्रयोग होता है, जैसे—मैं सपने मे तुझे देख रहा था **कि** ...कोई मुझे उठाय वहाँ से ले आया; वह गाय रही **कि** शिवजी ने कहा...।

उद्धरणसूचक क्रियाविशेषण

§८२०. 'अथ' और 'इति' के बारे मे सोदाहरण लिखा जा चुका है (दे०§६४६)। आधुनिक हिन्दी में कथन की समाप्ति सूचित करने के लिए वाक्य के अन्त मे 'ऐसा'=सं० इति का प्रयोग होता है; जैसे—बिना प्रयोजन क्या यह हुआ **ऐसा** जानने की इच्छा न करे; मृत्यु ने हमारे केश को पकडा है **ऐसा** समझ धर्म का आचरण करो। इन दोनों वाक्यों में 'ऐसा' का प्रयोग सं० इति के स्थान पर हुआ है। 'इति' से पहला वाक्यांश उद्धृत प्रतीत होता है।

अवधारणार्थक अव्यय

§८२१. अवधारणार्थक अव्यय हि (ही) के सम्बन्ध में पहले (दे० §६५१) लिखा जा चुका है। इस 'ही' को अँग्रेजी मे कई तरह से व्यक्त करते हैं। यहाँ कुछ और उदाहरण दिये जा रहे हैं—

बकले का वस्त्र इस मोहिनी के गात को शोभा देता ही है; इस वाक्य के पहले अंश मे जो विचार व्यक्त हुआ है उसके विरुद्ध द्वितीय अंश में कहा गया है। 'ही' के द्वारा वाक्यांश के अन्तिम भाग में व्यक्त भाव पर बल दिया गया है। अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं—हम **ही** तुम **ही** जानें; वह पथ का हारा थका तो था **ही**; बालक बच रहा सकट **ही** टूट गया; दुःख-सुख **ही** जानौ; ये सिद्धान्त क्या **ही** अद्भुत हैं; मैंने तुम **ही** को बुलाया; जाइय बिन बोलेहु; एक अविनाशी कदम तट पर था सोई था।

विशेष—अवधारणार्थक अव्यय 'हि' तथा रामायण और अन्य पुराने काव्यों मे प्रयुक्त 'हि' पृथक्-पृथक् हैं। रामायण तथा अन्य पुराने काव्यों मे प्रयुक्त 'हि' सम्प्रदान तथा कर्मकारक की विभक्ति है। रामायण मे अवधारणार्थक अव्यय के रूप मे हु, हुँ अथवा औ का प्रयोग हुआ है (दे० §§१७८, ६५१ (ख)।

पूर्वसर्ग के समान प्रयुक्त होने वाले अव्यय

सम्बन्ध तथा अपादान कारक में

§८२२. पूर्वसर्ग के समान प्रयुक्त होने वाले अव्ययो के सम्बन्ध में यहाँ अधिक लिखना आवश्यक नहीं है। इनकी रचना तथा प्रवृत्ति के सम्बन्ध मे §§६५२-६५९ में बहुत कुछ लिखा जा चुका है।

§८२३ **बाहर, भीतर** तथा **आगे** का प्रयोग सम्बन्ध और अपादान कारक के पश्चात् होता है। इन अव्ययों के अपादान कारक के प्रयोग से 'सादृश्य' प्रकट किया जाता है। दोनो प्रकार के प्रयोगों मे अर्थ का सूक्ष्म-सा भेद दिखाई देता है; जैसे—इसके बाहर, किन्तु—इससे बाहर; मेरे आगे चलो, किन्तु वह मुझसे आगे दौडा।

क. **'समेत'** का प्रयोग परसर्ग (यदि परसर्ग का प्रयोग होता है) के पश्चात् होता है। रामायण मे एक उदाहरण ऐसा मिला है, जहाँ कर्मकारक की विभक्ति 'हि' के पश्चात् 'समेत' अव्यय प्रयुक्त हुआ है, बैठे आसन **ऋषिहि समेता**।

परसर्ग का लोप

ख. पूर्वसर्ग की भाँति प्रयुक्त होने वाले अव्ययो से पहले सम्बन्ध कारक का परसर्ग प्रयुक्त नही होता। इस प्रकार के प्रयोग से अर्थ मे अन्तर नही पड़ता। उदाहरण—प्रिया के दर्शन **बिना**। सम्बन्ध कारक के अतिरिक्त अन्य कारको के परसर्ग के प्रयोग अथवा अप्रयोग से अर्थ में अन्तर पड़ता है; जैसे—'किसके लिए' और 'किस लिए'।

§८२४ बहुत से शब्द ऐसे हैं जो यदि सम्बन्ध कारक के पश्चात् प्रयुक्त हो तो अंग्रेजी में उन्हे पूर्वसर्ग के रूप मे व्यक्त किया जाता है। यदि उनका प्रयोग सम्बन्ध कारक के पश्चात् नही हुआ है तो उन्हे संज्ञा माना जायगा। उनका अनुवाद भी संज्ञा की तरह होगा; जैसे—मेरे जाने के कारण; किन्तु-इस कारण। इस वाक्य मे 'लिए' का प्रयोग भी इसी तरह हुआ है—तुम किसके लिए आए, किन्तु निम्नलिखित वाक्य मे 'लिए' का प्रयोग संज्ञा की भाँति हुआ है और उससे उद्देश्य का बोध होता है—तुम किस लिए आए।

अवियोज्य अव्यय

§८२५. अवियोज्य अव्यय 'स' संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ आता है; बोलचाल की हिन्दी मे इस 'स' का प्रयोग बहुत कम होता है। कविता मे इसका प्रयोग अधिक मिलता है, जैसे—सानुज, सप्रेम, सपरिवार।

समुच्चय-बोधक

संयोजक

§८२६. अंग्रेजी मे संयोजक 'ऐंड' (and) का जितना प्रयोग होता है, उतना हिन्दी के सयोजक 'और' का प्रयोग नही होता। संयोजक से पहले आनेवाली क्रिया का यौगिक रूप अधिक पसंद किया जाता है और इस तरह यौगिक क्रिया के पश्चात संयोजक अव्यय की आवश्यकता नही रहती (दे० §७५५ (१) क.)।

उदाहरण के लिए अंग्रेजी के वाक्य **he went** and saw the town का अनुवाद एक हिन्दू 'वह गया और नगर को देखा' के स्थान पर 'उसने जाकर नगर को देखा' करेगा।

क. हिन्दी के रूढ़ प्रयोगों के अनुसार प्रयुक्त होने वाले जोड़े के शब्दों में संयोजक का प्रयोग नही होता। अंग्रेजी में ऐसे स्थलों पर संयोजक का प्रयोग अवश्य किया जाता है।

उदाहरण—**भले बुरे** की पहचान, **दुख सुख** का देनेवाला; **चलो देखो** ; **कृष्ण बलदेव**; मेरे **हाथ-पाँव** नही चलते है।

स्मरणीय—साधारण व्यक्ति इस प्रकार के प्रयोगो मे असन्दिग्ध रूप से द्वन्द्व समास मान लेता है।

§८२७ यदि विवरण का भाव अपेक्षित है तो 'भी' के स्थान पर अग्रेजी मे 'आलसो' (also) आता है किन्तु अन्य स्थिति मे इसके लिए ईवन (even) शब्द प्रयुक्त होता है, जैसे—श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी **भी** द्वारिका गए, किन्तु श्रीकृष्णचन्द्र **भी** किसी को कुछ नही देते है।

क कई स्थलों पर 'भी' द्वारा व्यक्त आशय को अग्रेजी मे व्यक्त नही किया जा सकता। ऐसे स्थलों पर केवल अवधारण व्यक्त किया जाता है, जैसे—यह कार्य कैसा **भी** लघु क्यौ न हो।

§८२८. बोलचाल मे संस्कृत 'अपि' (=भी) का प्रयोग नही होता। कविता मे कही-कही इसका योग हुआ है ; जैसे—अति **गोप्यमपि** सज्जन करहिं प्रकास।

§८२९ संयोजक के स्थान पर वाक्यांश 'तिस पर भी' प्रयुक्त होता है। अग्रेजी मे इसका पर्याय 'मोरेवर' (more over) माना जा सकता है। जैसे--'**तिस पर भी** यह कहता है।' अँग्रेजी मे 'तिस पर भी' के लिए not with standing और neverthless शब्दों का प्रयोग भी होता है। जैसे—इस पर भी तू मुझे प्यारा लगता है neverthless thou art deer to me

वियोजक

§८३०. वियोजक के रूप मे 'वा', 'अथवा', और 'या' (अर-) का प्रयोग अधिक होता है। 'कै' तथा 'कैतौ' का प्रयोग केवल बोलियों में मिलता हैं। 'कि' का प्रयोग भी प्राय: वियोजक के रूप मे किया जाता है।

क. 'कि' और 'कै' का प्रयोग प्राय छोटे-छोटे वाक्याशो के वियोजन के लिए होता है, जैसे—भला हो **कै** बुरा। कुछ स्थलो पर साथ आने वाले वाक्यांशो मे इन्हे दोहराते है, जैसे—**कै** हरि ने मेरी प्रीति की प्रतीति न करी **कै** जरासध का आना सुन प्रभु न आए।

ख. वियोजक के रूप में 'किंवा' का प्रयोग अधिक नही हुआ। रामायण मे यत्र-तत्र इसका प्रयोग मिलता है; जैसे—अभिमान मोह बस **किंवा**।

§८३१. छोटे-छोटे वाक्यों में वियोजन अपने आप ज्ञात होता है, अत. वहाँ वियोजक का प्रयोग नही होता; जैसे—संपति प्रभुताई जाइ रही पाई बिनु पाई।

शर्तसूचक संयोजक

८३२ बोलियो में शर्त सूचित करने के लिए सामान्यतया 'जो' संयोजक प्रयुक्त होता है। संस्कृत के 'यदि' का विकृत रूप 'जद' बोलचाल में प्रयुक्त होता है और कुछ लोग लिखने मे भी इसका प्रयोग करते हैं। तत्सम 'यदि' का प्रयोग पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए किया जाता है।

क. शर्त सूचित करने के लिए बोलियों मे 'जो पै' का प्रयोग होता है, जैसे—**जो पै** जिय न होति कुटिलाई।

आनुषंगिक संयोजक

§८३३. आनुषंगिक अव्यय 'तो' अथवा 'तौ' को अग्रेजी मे दो तरह से व्यक्त करते है। यह देखा जाता है कि यह अव्यय आनुषंगिकता पर अधिक बल देता है अथवा अवधारण पर।

(१) आनुषगिकता व्यक्त करने के लिए 'तो' अथवा 'तौ' का प्रयोग शर्त सूचित करने वाले वाक्याश मे होता है, जैसे—जो मै नही जाऊँ **तो** वह नही आवेगा।

(२) अवधारण के लिए प्रयुक्त 'तो' को अँग्रेजी मे कई तरह से व्यक्त करते हैं; जैसे—हमारी **तो** सुनो; अपने वचन निबाहे **तो**, देखो **तो**।

क आनुषगिकता सूचित करनेवाला 'तो' परिणामसूचक वाक्यांश मे भी प्रयुक्त होता है, जैसे—यह समाचार सुनाय नारदजी **तो** चले गये, इस वाक्य मे 'तो' यह व्यक्त करता है कि नारदजी का आगमन समाचार सुनाने के लिए हुआ था। वे अपने कार्य मे सफल हुए और जैसे ही काम पूरा हुआ, वे चले गये।

ख कुछ उदाहरणों मे 'तो' से अवधारण का भाव व्यक्त होता है। ऐसे स्थलों पर अंग्रेजी मे इसे केवल ध्वनि परिवर्तन से सूचित करते है, जैसे—त्रिभुवनपति जगत का कर्त्ता **तो** मैं हूँ। विशेषताओ को गिनाने मे भी इसका प्रयोग किया जाता है, जैसे—एक **तौ** मेरे पाँव में दाभ की पैनी अणी लगी है दूसरे कुरे की डार मे अंचल उलझा है।

ग निम्नलिखित वाक्य में 'तो' का प्रयोग आनुषंगिकता तथा अवधारण दोनो के लिए हुआ है—जो उससे कुछ माँगता तो वे देते **तो** सही।

क्षमतासूचक संयोजक

§८३४. यद्यपि (यदि+अपि) क्षमतासूचक अव्यय है। इसके लिए मुख्य वाक्यांश मे 'तदपि' अथवा 'तथापि' का प्रयोग मिलता है। यद्यपि, तदपि और तथापि तीनों संस्कृत के अव्यय है और पंडित लोगो के द्वारा ही इनका प्रयोग होता है। बोलचाल मे इन अव्ययों का प्रयोग नही मिलता। रामायण मे 'यद्यपि' का विकृत रूप 'यदपि' का प्रयोग हुआ है। बोलचाल मे 'यद्यपि' अथवा 'यदपि' के स्थान पर 'जो भी' और 'तथापि' के स्थान पर 'तौ भी' खूब प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार 'यद्यपि' के स्थान पर 'चाहे' और 'तथापि' के स्थान पर 'परन्तु' का प्रयोग भी मिलता है।

संभावनासूचक अव्यय

§८३५ अन्य तत्सम सयोजकों की भाँति 'कदाचित्' और 'कदापि' का प्रयोग पण्डित लोग करते हैं। इनके स्थान पर सामान्य जन फारसी के 'शायद' (>सायद तथा साइद भी) का प्रयोग करते हैं। संभावनासूचक अव्यय क्रिया के संभाव्य भविष्य काल के साथ प्रयुक्त होता है। बोलचाल मे 'कदाचित्' अथवा 'शायद' आदि के स्थान पर 'जाने' अथवा 'क्या जाने' प्रयुक्त होता है।

व्याख्या करनेवाला संयोजक

§८३६. 'कि' मूलत. व्याख्या करनेवाला संयोजक है। वाक्य के अन्त मे प्रयुक्त 'कि' अग्रेजी के 'दैट' का पर्यायवाची है।

उदाहरण—'वह इस कारण से गया **कि** देखे' इस वाक्य मे 'कि' अव्यय कारण शब्द के सम्बन्ध में प्रकाश डालता है। जहाँ मुख्य वाक्य में इस प्रकार का कोई शब्द नही होता वहाँ उस शब्द को वैसे ही समझ लिया जाता है।

क. 'कि' का प्रयोग प्रायः 'कहते है' के अर्थ मे भी होता है; जैसे—वह यही मानता था **कि** वह पुरुष कब प्रगटे।

ख. सम्बन्धसूचक सर्वनाम अथवा क्रियाविशेषण के साथ 'कि' का प्रयोग कहीं-कही अतिरिक्त ढंग से होता है; जैसे—जो बात **कि** तुमने कही; विष्णु का दूसरा पैंड था जब **कि** हरि ने अहंकारी बलि छला था।

ग. यदि 'कि' का प्रयोग 'जब' के साथ हो तो अग्रेजी मे उसके लिए सिन्स (since) शब्द का प्रयोग किया जाता है; जैसे—जब **कि** परमात्मा क्षण भर भी ऐसा नहीं हो सकता। आगे चलकर मिश्रित वाक्यो के सम्बन्ध मे संयोजक अव्ययो के अधिक उदाहरण दिये जायेगे।

उद्गारवाची अव्यय

उद्गारवाची अव्ययों का प्रयोग सम्प्रदान कारक के साथ

§८३७. उद्गारवाची अव्ययों के सम्बन्ध मे अधिक लिखने की आवश्यकता नही है। निम्नलिखित उद्गारवाची अव्यय सम्प्रदान कारक मे प्रयुक्त संज्ञा के साथ आते हैं—

धन्य, धिक्, धिक्कार अथवा धिर्‌कार।

जैसे—परमेश्वर को धन्य, धिक्कार मेरे जीतब को।

§८३८ सम्बोधनबाची 'रे' अथवा 'अरे' स्त्रीलिंगवाची संज्ञाओ के साथ 'री' अथवा 'अरी' मे परिवर्त्तित होते है; जैसे—कृपायतन कर दास मैं सुनु मातु **री**; सुनता है **रे**।

पुनरुक्त शब्द

§८३९ शब्दों की पुनरुक्ति हिन्दी की अपनी विशेषता है। परसर्ग अथवा सयोजक को छोड़ कर शेष सभी शब्द दोहराये जाते है। शब्द के दोहराने से द्वित्व, विभाजन, प्रकार, आधिक्य अथवा सातत्य का बोध होता है।

पुनरुक्त संज्ञा

§८४०. संज्ञा की पुनरुक्ति निम्नलिखित कारणों से की जाती है—

(१) विभाजन की अभिव्यक्ति के लिए।

उदाहरण—घर घर मंगलाचार हो रहे थे।

कही-कहीं पुनरुक्त संज्ञा क्रियाविशेषण का रूप धारण करती है, जैसे—पाँति पाँति।

क. इस प्रकार की पुनरुक्त संज्ञा से पहले सम्बन्ध कारक का प्रयोग होता है। कही-कहीं विशेषण बहुवचन मे आता है; जैसे—**मेरे** रोम-रोम प्रसन्न हो गये हैं।

(२) संज्ञा की पुनरुक्ति से विभिन्नता का बोध होता है, जैसे—**देश देश** के राजा।

(३) अधिकता अथवा अवधारण के लिए अवधारणवाची अव्यय 'ही' सामान्यतया पुनरुक्त संज्ञा के मध्य में आता है; जैसे—मन **ही** मन मे कहने लगा, बातो **ही** बातों मे, रनवास की स्त्रियों को शकुन्तला **ही** शकुन्तला कह कर; दोनों कार्य **दूर-दूर** पर हैं।

क पुनरुक्त सज्ञा मे से पहली सज्ञा यदि बहुवचन मे प्रयुक्त हुई है तो दोनो के मध्य प्राय. 'ही' का प्रयोग नही होता; जैसे—हाथों हाथ, मारों मार।

ख. पुनरुक्त संज्ञा मे से पहली सज्ञा का प्रयोग कही-कही सम्बन्ध कारक मे किया जाता है, जैसे—**मूर्खों का** मूर्ख; भंवरो के **झुंड के** झुड।

ग सज्ञा की ऐसी पुनरुक्ति भी मैने सुनी है—दूधा दूध ।

घ. कही पुनरुक्त सज्ञा सातत्य का बोध कराती है, जैसे—सडक के किनारे किनारे चलो।

§८४१ पुनरुक्त शब्दो मे कही-कही वर्ण-विपर्यय भी होता है; देखिये—§६२५ (१) ख.।

विशेषणों की पुनरुक्ति

§८४२. विशेषणों की पुनरुक्ति से भी पुनरुक्त संज्ञा का आशय निकलता है—

(१) पुनरुक्त विशेषण विभाजन प्रकट करता है, जैसे—सब बड़े बड़े यदुबंसी।

(२) पुनरुक्त विशेषण से कही-कही विविधता अथवा विभिन्नता का बोध होता है, जैसे—नये नये सुख; अनूठे अनूठे खेल खेलने लगे।

(३) पुनरुक्त विशेषण से अधिकता प्रकट होती है; जैसे—मीठी मीठी पवन चल रही है; सुथरे-सुथरे वस्त्र। पुनरुक्त विशेषणों मे से पहला विशेषण कही-कही सम्बन्ध कारक के परसर्ग के साथ आता है, जैसे—**भूखे** का भूखा।

संख्यावाची शब्दों की पुनरुक्ति

§८४३ संख्यावाची शब्दों की पुनरुक्ति विभाजन व्यक्त करती है, जैसे—उनके **दस दस** पुत्र भए। पुनरुक्त संख्यावाची शब्दो के साथ यौगिक कृदन्त का प्रयोग भी होता है (देखिये §६५०), जैसे—दो दो **करके** निकल गये, एक एक **करके** आये।

क समासित संख्यावाची शब्दों मे केवल अन्तिम संख्या ही दोहराई जाती है; जैसे—एक रुपिया **चार चार** आना।

सर्वनामों की पुनरुक्ति

§८४४ पुनरुक्त सर्वनाम विभाजन, विभिन्नता अथवा विविधता व्यक्त करता है। जैसे—उन्होने **अपने-अपने** घर जाय जाय कहा; **जो जो जिस जिस** वस्तु की इच्छा करें, **सो सो** ला दीजो; हम **क्या क्या** दुख पाते है।

क. किन्तु पुनरुक्त 'कोई' का तात्पर्य 'थोड़े' होता है, जैसे—तुम्हारी कृपा पावे **कोई कोई**।

§८४५. सर्वनाम से बनने वाला क्रियाविशेषण सम्बन्ध कारक के परसर्ग के साथ आता है। ऐसा रूढ़ प्रयोगों में ही होता है; जैसे—**जैसे का** तैसा; यदि विशेष्य स्त्रीलिंगवाची हो तो 'जैसा' के साथ स्त्रीलिंगवाची परसर्ग 'की' प्रयुक्त होता है यथा—**जैसी की** तैसी उसकी दशा रही।

कृदन्तों की पुनरुक्ति

§८४६. क्रियावाची शब्दों मे केवल कृदन्त ही दोहराये जाते है। कृदन्तों की पुनरुक्ति से निम्नलिखित बातों का पता चलता है—

(१) क्रिया का दोहराना।

उदाहरण—छिलके बह-बह कर आते है; सब गोपी पशु-पक्षी द्रुम-बेलि से **पूछती पूछती** ढूंढने लगी; मुख पास भँवर **आय आय** बैठते थे।

(२) अधिकता व्यक्त करने के लिये—

उदाहरण—इन्द्र **पछताय पछताय रो रो** कहने लगा।

(३) दीर्घकाल तक क्रिया का चालू रहना अथवा क्रिया का सातत्य ज्ञात होता है। इस पुनरुक्ति को अँग्रेजी मे अनुवादित करना सभव नही है।

उदाहरण—**चलते चलते** घर को पहुँचे, इसी रीति से **चले चले** राजमंदिर मे जा बिराजे; श्रीकृष्ण को **बँधे बँधे** पूर्वजन्म की सुधि आई।

क. वाक्य मे 'होते होते' का तात्पर्य है—धीरे धीरे, ढंग से। यह वाक्य विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है—हमारे न पहुँचते न पहुँचते।

ख. पुनरुक्त कृदन्तो मे से कही-कही पहला कृदन्त स्त्रीलिग मे और दूसरा कृदन्त पुल्लिग मे प्रयुक्त होता है; जैसे—**छिपा छिपी**; कही कही-इससे विपरीत प्रयोग भी मिलता है, जैसे—उनकी **देखा देखी** सब .... गोपी प्रणाम कर। कही-कही पुनरुक्त कृदन्त अन्योन्याश्रित रहते है, जैसे—मारा मारी।

ग अकर्मक क्रिया का पूर्णतासूचक कृदन्त अथवा उसके कर्तृवाच्य या प्रेरणार्थक रूप परस्पर समासित होते है। इस प्रकार के सयोजन से प्राय अवधारण का भाव व्यक्त होता है, जैसे—यह उपाधि **बैठे** बिठाए मे कहाँ से आई।

घ रूढ प्रयोगो मे कही-कही कर्तृवाच्य अथवा प्रेरणार्थक कृदन्त अकर्मक क्रिया से पहले जुड़ता है। इन दोनो के मध्य निषेधवाची अव्यय अवधारण के लिए प्रयुक्त होता है; जैसे—सो किसी भाँति **मेटे न मिटेंगे**। कही-कही अकर्मक क्रिया पहले और कृदन्त बाद मे आता है; जैसे—दनुज महाबल **मरै न मारै**; तनु टर्यो न टार्यो।

क्रियाविशेषण की पुनरुक्ति

§८४७. पुनरुक्त क्रियाविशेषण के सम्बन्ध मे पहले लिखा जा चुका है (देखिए- §६४३, (१) यहाँ कुछ उदाहरण और दिये जा रहे है—जब जब होइ धर्म की हानी, तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा, **ज्यौं** ज्यौ वह कन्या बढने लगी **त्यौं त्यौं** उसे अति प्यार करने लगा।

क पुनरुक्त क्रियाविशेषणों के मध्य में अवधारण के लिए सम्बन्ध कारक का परसर्ग आता है; जैसे–निर्मल होती मूर्ति **ज्यों** की **त्यों** दिखाई देती है। कही-कही अन्तिम शब्द के साथ अवधारण-सूचक अव्यय जोडते है; जैसे—सो (दल) यहाँ का **यहाँ** ऐसे बिलाय जाएगा, **जब का** तब।

स्मरणीय—ध्यान दीजिये, ऊपर के उदाहरण मे सम्बन्ध कारक का परसर्ग सम्बन्धित संज्ञा के अनुसार विकार ग्रहण करता है।

परसर्ग की भाँति प्रयुक्त होने वाले अव्ययों की पुनरुक्ति

§८४८. परसर्ग की भाँति प्रयुक्त होने वाले अव्यय भी दोहराये जाते है। इनकी पुनरुक्ति का आशय भी वही होता है, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है; जैसे-—उनके बीच बीच चारन जस गाते थे; उन्ही चरण चिह्नो के **पास पास**; मेरे **पीछे पीछे** चले आओ; हम तुम **साथ** ही **साथ** हाट को चलै।

अनुप्रास

§८४९. हिन्दुओ की अनुप्रास तथा अनुरणन प्रियता का उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस रुचि का प्रभाव वाक्य-रचना पर भी पडा है। इस प्रवृत्ति के कारण रचना मे बहुत सन्तुलन रहता है। अनुप्रासप्रियता के कारण सभी प्रकार के वाक्य सम्बन्धसूचक अथवा अन्योन्य सम्बन्धसूचक वाक्य की भाँति प्रयुक्त होते है। शब्दों की पुनरुक्ति से क्रिया के दोहराने का भाव भी व्यक्त किया जाता है। अनुप्रास-प्रियता केवल कविता मे ही नही गद्य मे भी दिखाई देती है।

(क) रामायण से कुछ उदाहरण दिये जाते है। रामायण मे रावण के विरुद्ध लड़नेवाले वानरों का वर्णन किया गया है—'मर्कट विकट भट जुटत न लटत तनु जर्जर भये। रामायण में भालुओं के युद्ध का वर्णन भी इसी प्रकार हुआ है—जंबु निकर कटक्कट कट्टहि खाहि हुंहांहि अघाइ दपट्टहि।

भाग २—वाक्य रचना

१. सरल वाक्य

वाक्यांग

§८५०. अन्य भाषाओ की भाँति हिन्दी वाक्य के दो मुख्य अग है—

(१) उद्देश्य, (२) विधेय। कुछ लोगो ने (अस्तित्वसूचक क्रिया को वाक्य का तीसरा अंग माना है, किन्तु इसे तीसरा अग मानना आवश्यक प्रतीत नही होता।

उद्देश्य

§८५१. हिन्दी वाक्य का उद्देश्य निम्नलिखित तत्वो मे से कोई एक हो सकता है—

(१) अविकारी कर्त्ताकारक मे प्रयुक्त कोई सज्ञा अथवा सर्वनाम,

(२) अविकारी कर्त्ताकारक मे प्रयुक्त दो अथवा दो से अधिक संज्ञाए अथवा सर्वनाम।

(३) अविकारी कर्त्ताकारक मे संज्ञा की भाँति प्रयुक्त कोई विशेषण अथवा सख्यावाचक शब्द;

(४) क्रिया का कोई सामान्य रूप,

(५) कोई वाक्य अथवा वाक्यांश।

पाँचो प्रकार के उदाहरण क्रमशः इस प्रकार हैं—

(१) तुलसीदास आया है।
ये भले मनुष्य के लक्षण है।

(२) तपस्वी और गौतमी दूसरी ओर गये।
मैं और तुम जाओगे।

(३) दो वहाँ है।
कोई ज्ञानी नही कहेगा।

(४) तुम को जाना है।

(५) उन्हे बार बार जनम और मरण रूपी इस संसार-चक्र मे भ्रमना पडता है।

क जहाँ 'कि' के साथ आने वाला वाक्य क्रिया के उद्देश्य को व्यक्त करता है, उसके बा' मे आगे चल कर संयुक्त वाक्य सम्बन्धी अनुच्छेदों में लिखा जाएगा।

ख. क्षेत्रीय बोलियों में 'तक', 'लौ' आदि के योग से बनने वाला अधिकरण कारक वाक्य का उद्देश्य बनता है; उदाहरण—एक मनई[1] तक नही आया; दो सौ तक इकट्ठे हुए।

उद्देश्य का लोप

§८५२. निम्नलिखित स्थलों पर उद्देश्य की उपेक्षा की जाती है—

(१) प्रश्न अथवा सम्बोधन मे यदि उद्देश्य का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।

(२) यदि उद्देश्य के रूप मे क्रिया का प्रयोग हुआ है; (३) कहावतो मे—जहाँ सक्षेप मे बात कही जाती है।

तीनो प्रकार के उदाहरण इस प्रकार है—

(१) क्या वह आता है? हाँ आता है।
बेटा, यह क्या चाल निकालते हो?

(२) ब्राह्मण हूँ।

(३) कमा तब खा।

क. 'बरसता है' इस वाक्य मे 'पानी' अथवा 'मेह' का अध्याहार किया जाता है। इस वाक्य के साथ 'पानी' अथवा 'मेह' शब्द का प्रयोग भी किया जा सकता है।

§८५३. कही-कही अविकारी कर्त्ताकारक अथवा विभक्तिसहित कर्त्ताकारक बिना क्रिया के प्रयुक्त होता है; जैसे—इस वाक्य मे 'गोपी' शब्द का प्रयोग हुआ है—गोपी जो जल भरने को निकली थी सो रथ दूर से आते देख कहने लगी।

विधेय

§८५४. वाक्य के विधेय मे निम्नलिखित तत्वों मे से कोई एक प्रयुक्त हो सकता है—

(१) कोई क्रिया;
(२) अविकारी अथवा विकारी कारण मे कोई संज्ञा अथवा सर्वनाम;
(३) कोई विशेषण;
(४) कोई संख्यावाची शब्द;
(५) संज्ञा की भाँति प्रयुक्त कोई शब्द अथवा वाक्यांश।

उदाहरण क्रमशः इस प्रकार है—

(१) वह जायगा।

(२) उसका नाम आहुक है।
यह राजा का है।
वह कोठी पर है।
यह पुस्तक किसकी है।
ऐसा सामर्थ्य किसी में नही है।
जो पुत्र मेरे होगा।

---

[1] अन्तर्वेद में 'मनई' एक बहु प्रचलित शब्द है, किन्तु पढ़े-लिखे लोग इसे ग्राम्य मानते हैं।

(३) राजा सिसुपाल बडा बली औ प्रतापी है।
(४) मेरे चरण सोलह थे।
(५) मैं राजा भीष्मक का पठाया हूँ।

विधेय की उपेक्षा

§८५५. जहाँ प्रसंग से विधेय का पता चलता हो, वहाँ विधेय की उपेक्षा की जाती है; जैसे—दोनों वीरों ने प्रणाम किया, एक ने गुरु जान कर दूसरे ने बन्धु मान कर।

अस्तित्व सूचक क्रिया

§८५६. अस्तित्वसूचक क्रिया चाहे स्वतंत्र रूप से आये, चाहे सहायक क्रिया के रूप मे वह वाक्य के उद्देश्य तथा विधेय दोनो से सम्बन्धित रहती है। अंग्रेजी मे ही नही उर्दू मे भी अस्तित्वसूचक क्रिया आवश्यक मानी जाती है, किन्तु हिन्दी मे वह अप्रयुक्त रहती है। सहायक क्रिया की यह उपेक्षा गद्य मे भी देखी जाती है।

क. साधारणतया जहाँ अस्तित्वसूचक क्रिया आवश्यक है, स्तरीय हिन्दी मे उसके प्रति उपेक्षा बरती जाती है; जैसे—मथुरापुरी का आहुक नाम राजा तिनके दो बेटे एक का नाम देवक दूसरा उग्रसेन; अब नगर का लौटना कैसा? (यहाँ 'होय' अथवा 'हो' का प्रयोग होना चाहिए); इस वाक्य में 'कैसा' के स्थान पर 'कैसे' का प्रयोग उचित जान पड़ता है।

ख. सादृश्य व्यक्त करने के लिए भी अस्तित्वसूचक क्रिया की उपेक्षा की जाती है; जैसे—भूमि ऐसी सुहावनी लगती थी कि जैसे सिंगार किये कामिनी।

ग निषेधसूचक वाक्यो मे भी अस्तित्वसूचक क्रिया लुप्त रहती है; जैसे—इसको किसी बात का ज्ञान नही।

स्मरणीय—निषेध सूचक वाक्यो मे अस्तित्वसूचक क्रिया का लोप बाहरी रूप से दिखाई देता है। §४७२. मे यह बात लिखी जा चुकी है कि 'नही' मे 'न' निषेधार्थक है और 'आही' अस्तित्वसूचक क्रिया का पुराना वर्त्तमानकालिक रूप है।

घ. कहावतो मे अस्तित्वसूचक क्रिया प्राय. प्रयुक्त नही होती, जैसे—चोरी का गुड़ मीठा; छुछूदर के सिर में चँबेली का तेल।

ङ यदि वर्त्तमान, भूत अथवा भविष्य मे से किसी एक काल पर बल देना अभीष्ट हो तो अस्तित्वसूचक क्रिया का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

§८५७. कविता मे अस्तित्वसूचक क्रिया का लोप साधारण बात है। यह स्थिति यहाँ तक पहुँची है कि 'रामायण' मे अस्तित्व सूचक क्रिया का प्रयोग अपवाद के रूप मे ही हुआ है। अस्तित्वसूचक क्रिया का लोप 'रामायण' के प्रत्येक पृष्ठ पर मिलता है, जैसे—सब बिधि सब पुर लोग सुखारी; सतसंगति मुद-मंगल मूला।

क. रामायण मे दो कारणों से अस्तित्वसूचक क्रिया का प्रयोग हुआ है—(१) अवधारण के लिए, (२) छन्द की आवश्यकता से; जैसे—दुराराध्य पै अहहिं महेशा।

ख. प्राय: सभी भाषाओ मे अस्तित्वसूचक क्रिया के साथ सहायक शब्द का प्रयोग होता है। ऐसे स्थलों पर हमें यह भेद जान लेना चाहिए कि वह शब्द सहायक के रूप में प्रयुक्त हुआ है अथवा

आवश्यक स्वतंत्र शब्द के रूप मे, जैसे—वे लोग मानते है कि ईश्वर है; भये जे अहहिं जो होइहै आगे।

§८५८. अन्य शब्दो की तुलना मे विधेय उद्देश्य के साथ कम अथवा अधिक मात्रा मे सम्बन्धित रह सकता है। इस स्थिति मे विशेषणों के उदाहरण के लिए देखिये §§२०७-२१०। क्रिया के कम अथवा अधिक सम्बन्ध को व्यक्त करने के लिए क्रियाविशेषण से सहायता ली जाती है।

उद्देश्य का विस्तार

§८५९. उद्देश्य और विधेय दोनो विस्तार पा सकते है। अन्य भाषाओ की भाँति हिन्दी मे भी व्याकरण के नियमानुसार जो शब्द उद्देश्य अथवा विधेय पर आश्रित होते है उनका प्रयोग उद्देश्य अथवा विधेय के साथ किया जाता है। इसीलिए इन दोनों का विस्तार होता है।

(१) एक या एक से अधिक शब्दो का प्रयोग उद्देश्य के विवरण के लिए किया जा सकता है।

उदा०—हस्तिनापुर के रहने वाले राजा भीष्मक आए है, कार्त्तिक महीना आया।

क. 'क्या' सर्वनाम से बनने वाले रूढप्रयोग का उल्लेख इसी प्रसग मे किया जाता है। उदा०—सब नगर निवासी क्या स्त्री क्या पुरुष आपस मे यो कहते थे।

ख. इस प्रकार के वाक्यो मे भी उद्देश्य का विवरण देखा जा सकता है—'मुझे दो जोड़े कपडे मिले।'

ग. प्रेम सागर के इस वाक्य मे 'बालक' शब्द 'मै' सर्वनाम का विधेयगत अनुबन्ध है—मैं बालक हूँ बैरी तेरो'।

घ. जब सज्ञा अथवा विशेष्य के रूप मे प्रयुक्त कोई शब्द अपने अर्थ को व्यक्त न करते हुए केवल शब्द के नाते प्रयुक्त होता है तो उस शब्द के पश्चात कोई संकेतवाची सर्वनाम आता है। उदाहरण के लिए इस वाक्य में 'ने' का प्रयोग देखिये—"अकर्मक धातु के कर्त्ता मे ने यह नही लगता।" इसी तरह इस वाक्य मे 'को' का प्रयोग हुआ है—'जहाँ कर्म मे' 'को' यह चिह्न रहता है।' जहाँ अन्य कारक का प्रयोग अविकारी कर्त्ता कारक की भाँति होता है, वहाँ भी ऐसा ही वाक्य बनता है; जैसे—'यहाँ उसका यही ठीक है।' यदि अर्थ मे किसी प्रकार की गडबड न हो तो द्वितीय सर्वनाम का प्रयोग नही होता, जैसे—यहाँ उस पर ठीक है, "करना' इसके साथ कही को और कही का रहता है।"

ङ. इस वाक्य मे 'सो' के उत्तर मे 'यह' का प्रयोग अवधारण के लिए किया गया है—'सो हे प्राणप्यारी यह तेरे मिलने को तरसता है।'

(२) विशेषण के द्वारा या तो उद्देश्य की विशेषता प्रकट होती है अथवा विशेषण के द्वारा उद्देश्य का विस्तार होता है। विशेषण के दो भेद हैं—(१) विशेष्य विशेषण, (२) विधेय विशेषण।

क. विशेष्य विशेषण विशेष्य (सज्ञा) से पहले आता है और विशेष्य तथा विशेषण के अर्थ मे अन्तर नही रहता। दोनो का मिला-जुला अर्थ निकलता है, जैसे—यह डरावनी मूरत कलियुग है।

ख. विधेय विशेषण विशेष्य (सज्ञा) के पश्चात आता है और अर्थ की दृष्टि से वह संज्ञा से पृथक दिखाई देता है, मानो वह सम्बन्धसूचक किसी संक्षिप्त वाक्याश का विधेय हो; जैसे—इसको मारूँ तो निर्भय राज करूँ। निम्नलिखित वाक्य मे दोनो प्रकार के विशेषण प्रयुक्त हुए है—उस बल का ज्येष्ठ पुत्र महापराक्रमी बडा तेजस्वी बानासुर था।

(३) उद्देश्य की व्याख्या विशेषणवाची सर्वनाम से भी की जाती है, जैसे-यह कन्या है मांजी तेरी; जो बात तुमने कही।

ङ. अथवा विशेषता व्यक्त करनेवाली सज्ञा अविकारी कर्त्ताकारक में विधेय मे प्रयुक्त हीती है; जैसे षड्दर्शनो के नाम ये है—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त।

। निम्नलिखित वाक्य मे विधेय की विशेषता व्यक्त करने वाला अविकारी कर्त्ता कारक उद्देश्य के उत्तर मे प्रयुक्त हुआ है, जैसे—तिसका आठवाँ लडका तेरा काल है।

(२) विधेय का विस्तार विशेषण से भी होता है। यदि विधेय मे सज्ञा प्रयुक्त हुई है तो संख्यावाची शब्द भी विधेय का विस्तार करते है; उदाहरण—हमारा घर पवित्र कीजे; ये राजा के चार पुत्र हैं। वह पर्वत ग्यारह योजन ऊँचा था।

(३) यौगिक कृदन्त के द्वारा भी विधेय का विस्तार होता है।

क उल्लेखनीय बात यह है कि यौगिक कृदन्त क्रियाविशेषण की भाँति समय, स्थान, रीति आदि का निर्देश भी करता है और इस रूप मे विधेय का अंग बनकर प्रयुक्त होता है (देखिये-§७५५.)। यहाँ कुछ और उदाहरण दिये जा रहे है—नंदजी अति उदास हो लम्बी साँसे लेने लगे, राज ले ढँढोरा, दे अपना थाना बैठाया।

(४) विशेषणवाची एकाकी कृदन्त (दे० §७५४ (२) के द्वारा विधेय का विस्तार होता है, जैसे—कितने एक दिन मथुरा में रहते गये, श्रीकृष्णचंद एक सुन्दरी नारी सग लिये आये है।

स्मरणीय—वाक्य के विधेय मे प्रयुक्त क्रिया के कालिक रूपो की भाँति यौगिक और विशेषणवाची कृदन्तों की व्याख्या भी की जा सकती हैं। उदाहरणो के लिए देखिये §§७५४-७५७।

(५) कारक के साथ प्रयुक्त पूर्व सर्ग के द्वारा भी विधेय का विस्तार होता है; जैसे—उसने बिन श्रीकृष्णचंद कोई घर न देखा, सब गोपी यसोदा के पास चली।

(६) क्रिया विशेषण के द्वारा भी विधेय का विस्तार होता है, जैसे—वह अति प्रसन्न हुआ; शीघ्र आओ।

अन्विति

§८६१. अन्विति तीन प्रकार की है—(१) विशेष्य विशेषण की अन्विति विशेष्य (संज्ञा) के साथ, (२) विधेय विशेषण की अन्विति विशेष्य (संज्ञा) के साथ, (३) वाक्य के विधेय (चाहे वह क्रिया हो, चाहे विशेषण) की अन्विति उद्देश्य के साथ।

विशेषण सम्बन्धी अन्विति

§८६२ विशेष्य विशेषण और विशेष्य (सज्ञा) की अनुरूपता के साधारण नियमों का उल्लेख §१९९ मे किया जा चुका है। वे नियम सम्बन्ध कारक के विशेष्य विशेषण और विशेष्य की अन्विति पर भी लागू होते है।

§८६३. किन्तु जहाँ सम्बन्ध कारक मे प्रयुक्त सज्ञा अथवा विशेषण भिन्न-भिन्न लिग की बहुत-सी संज्ञाओं की विशेषता बताये तो अन्विति भिन्न प्रकार की होगी।

(१) लिग के सम्बन्ध मे विशेषण निकटतम विशेष्य का अनुसरण करता है। उदाहरण—उसकी बहू और लडके, तुम्हारी स्त्री और चार पुत्र।

(२) निकटतम संज्ञा के स्त्रीलिगवाची रहते हुए भी विशेषण अधिक महत्वपूर्ण लिंग-पुल्लिग—में प्रयुक्त होता हैं। उदाहरण—तुम्हारा स्त्रीपुत्रादि, परुसरामजी ने अपने माता औ भाइयो को बुलाया, अपने स्त्री बालक समेत।

विधेय विशेषण की अन्विति

§८६४. जब विशेष्य विशेषण अथवा विधय विशेषण का प्रयोग विधेय मे हो तो उसका लिंग निर्धारण विशेष्य (सज्ञा) के आधार पर होता है, किन्तु यदि विशेष्य 'को' परसर्ग के साथ प्रयुक्त हुआ है तो विशेषण अथवा विशेषणवाची कृदन्त सदैव पुल्लिगवाची एकवचन मे प्रयुक्त होता है, फिर चाहे विशेष्य किसी भी लिंग अथवा वचन मे प्रयुक्त क्यों न हुआ हो। उदाहरण—मै त्रिभुवन मे ऐसा पराक्रमी किसू को नही देखता हूँ, नगर को जलता देख।

क. कही-कही कर्मकारक मे प्रयुक्त 'को' परसर्ग वाले विशेष्य के पश्चात् भी विधेय विशेषण अथवा विशेषणवाची कृदन्त विशेष्य के अनुसार स्त्रीलिग अथवा पुल्लिग मे प्रयुक्त होता है; जैसे—'मुझ दासी को तुमने जगल में अकेली छोड़ा' ('दमयन्ती')।

स्मरणीय—'दमयन्ती' का उपर्युक्त वाक्य उचित नही है। 'को' परसर्ग के पश्चात् भी यदि विशेषण विशेष्य का लिग धारण कर ले तो भी क्रिया पुल्लिग मे ही प्रयुक्त होनी चाहिए।

ख. ध्यान दीजिये, 'को' परसर्ग के पश्चात भी यदि कोई कृदन्त लिग के कारण विकारी बनता है तो उसे विधेय विशेषण न मानकर सामान्य कृदन्त ही मानना चाहिए (§७५४. (२)); जैसे—जहाँ मुनि ऋषि देवताओ को बैठे पाता था।

§८६५. अन्विति का जो नियम 'को' परसर्ग युक्त सज्ञा पर लागू होता है वही नियम सर्वनामो के एकारान्त और ऐकारान्त कर्मकारक पर भी लागू होता है,. जैसे—'हम किसे सच्चा जाने ?'

क. कर्मकारक मे प्रयुक्त सर्वनाम का इससे विपरीत प्रयोग भी मिलता है; जैसे—'वन में इन्हे अकेले मत छोड़िये' इस वाक्य मे 'इन्हे' का प्रयोग कृष्ण के लिए हुआ है।

§८६६. यदि सज्ञा अविकारी कर्त्ताकारक मे हो अथवा कर्मकारक का प्रयोग अविकारी कर्मकारक की भाँति हुआ हो तो विशेष्य विशेषण की भाँति, विधेय विशेषण या विशेषणवाची कृदन्त, लिंग तथा वचन के बारे मे अविकारी कर्त्ता कारक मे प्रयुक्त सज्ञा का अनुकरण करता है; जैसे—मन की आस क्यो नही पूरी करती; गाये राँभती हौकती फिरती है, अपनी गोद मैली करते हैं।

क. निम्नलिखित वाक्य मे प्रथम पुरुषवाची सर्वनाम 'मुझे' भी प्रयुक्त होना चाहिए—तुमने इस बन मे तजी अकेली।

विधेय का विकार

§८६७. विधेय मे प्रयुक्त क्रिया, विशेषण तथा सज्ञा वचन, लिंग और पुरुष के मामले में जहाँ तक समव हो उद्देश्य का अनुकरण करते है, जैसे—रत्न ही को सब ढूँढते हैं; लिखने की सामग्री नही है; शास्त्र विद्या और शस्त्र विद्या ये दोउ उच्च पद की देनवारी है।

क. स्मरण रखने की बात यह है कि 'ने' के साथ प्रयुक्त होने वाला सकर्मक क्रिया का पूर्णकाल इस नियम का अपवाद नही है; जहाँ तक अँग्रेजी का प्रश्न है, इस प्रकार की कर्मवाच्य क्रिया का कर्म क्रिया का उद्देश्य बनता है और फिर पूरा वाक्य लिंग तथा वचन के सम्बन्ध मे उपर्युक्त नियम का पालन करता है, जैसे—(बिहारी ने) कै पिछली प्रीति सब बिसारी (=or the old love all forgotten (by Bihari); सो छओं वसुदेव को ब्याह दी (=the six (daughters) were given in marriage to Basudeva)।

§८६८. जब किसी क्रिया का उद्देश्य एक वाक्य हो तो विधेय को सदैव तृतीय पुरुष, पुल्लिग, एकवचन मे प्रयुक्त करते है; जैसे—एक गोपी ने कहा सुनो आली।

आदरार्थक सर्वनाम की अन्विति

§८६९. जब उद्देश्य मे कोई आदरार्थक सर्वनाम अथवा आदर के लिए बहुवचन अथवा आदर-सूचक उपाधि का प्रयोग हुआ हो, और जिसके प्रति आदर व्यक्त किया जा रहा है, वह चाहे एक व्यक्ति ही क्यो न हो, तब विधेय तथा विधेय से सम्बन्धित विशेषण भी बहुवचन मे प्रयुक्त होते है।

क. प्राय यह देखा जाता है कि विधेय मे प्रयुक्त अविकारी कर्त्ताकारक की सज्ञा अथवा विशेषण के बहुवचन का रूप एकवचन से भिन्न नही होता। यदि विधेय का कोई विकारशील अनुबन्ध प्रयुक्त हुआ है तो वह बहुवचन का विकार अवश्य धारण करता है। नीचे के उदाहरणो से यह बात स्पष्ट हो जाती है—

उदाहरण—ये विधाता है, यही जग के कर्त्ता है, आप कब तक लौट आएँगे, हमारे गुरु कण्व ऋषि यहाँ नही है।

§८७०. जब अविकारी कर्त्ताकारक मे प्रयुक्त कोई सार्वनामिक स्त्रीलिंग तथा पुल्लिगवाची दोनो प्रकार के शब्दो के लिए प्रयुक्त हुआ हो तो विधेय पुल्लिग में आता है, जैसे, सुदामा की स्त्री बोली—अब हम महादुख पाते है।

दो लिंगों में अन्विति

§८७१. जहाँ उद्देश्य मे विभिन्न लिंगो की दो अथवा दो से अधिक सज्ञाएँ अथवा सर्वनाम प्रयुक्त हो तो विधेय और अस्तित्वसूचक क्रिया निकटस्थ सज्ञा का लिंग स्वीकार करते है। वैशेषणिक अनुबन्धो पर भी यह नियम लागू होता है।

उदाहरण—इसके तीन नेत्र और चार भुजा थी; तरुणापन, धन, प्रभुता, अविवेकता ये चारो एक एक अनर्थ को करनहारी है; आँधी और मेह आया।

क. कुछ लोगों का कथन है कि कही-कही विशेष्य विशेषण और विधेय लिंग के सम्बन्ध मे निकटस्थ संज्ञा का अनुसरण न करके सदैव पुल्लिग मे प्रयुक्त होते है। इस कथन को स्वीकार करने के लिए उचित प्रमाण उपलब्ध नही है। इस कथन की पुष्टि के लिए साहित्य मे मुझे एक.उदाहरण मिला है—न पुरुष न स्त्री आया।

दो पुरुषों की अन्विति

§८७२. यदि उद्देश्य मे विभिन्न पुरुषों से सम्बन्धित दो अथवा दो से अधिक शब्द प्रयुक्त हो तो क्रिया द्वितीय अथवा तृतीय पुरुष के लिए प्रथम पुरुष में प्रयुक्त होती है। इसी प्रकार से क्रिया तृतीय पुरुष के स्थान पर द्वितीय पुरुष मे आती है।

क. पुरुष यदि एक वचन में प्रयुक्त हुआ है तो अन्य शब्दों के रहते हुए भी क्रिया एकवचन मे आती है; जैसे—वह तुम्हारा कल्पित आत्मा हम तुम नही है; आज मैं और तू वहाँ चलूँगा जहाँ तू और वह बैठा था; वहाँ तू और वह न जाने पायगा।

स्मरणीय—बोलचाल मे भी विभिन्न पुरुषों और लिंगो की अनुरूपता के लिए इन्ही नियमो का पालन किया जाता है। क्रिया निकटस्थ पुरुष के अनुसार प्रयुक्त होती है; जैसे—मै और तू चलेगा, तू और वे चलेगे।

सामान्य शब्दों की अन्विति

§८७३. जब उद्देश्य किसी विशेष व्यक्ति के स्थान पर किसी वर्ग को व्यक्त करता है तो समूह को व्यक्त करते हुए भी विधेय एकवचन मे प्रयुक्त होता है।

उदाहरण—दल चला जाता था।

निम्नलिखित वाक्य मे उद्देश्य वर्ग से सम्बन्धित है—ये छः कर्म ब्राह्मण के लिए स्थापन किया, तीन दिन रात बीत गया।

क. इसी नियम के अनुसार 'सब' शब्द का प्रयोग एकवचन मे होता है; जैसे—सब की सब घबराई, यह सब मित्र का दूषण है।

§८७४. अन्त मे यह बात उल्लेखनीय है कि साधारण जनता अन्विति के सम्बन्ध में असावधान रहती है। अन्वय के नियमो का उल्लघन कही-कही साहित्य मे भी मिलता है। उदाहरण के लिए ईस्टविक द्वारा सम्पादित प्रेमसागर मे यह वाक्य लीजिये—अपने[1] बहन को नौतने आई।

कविता में अन्विति की उपेक्षा

§८७५. कविता मे छन्द की आवश्यकता के अनुसार अन्वय की प्रायः उपेक्षा होती है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पक्ति मे बहुवचन का 'जे' पहले एकवचनवाची क्रिया और फिर बहुवचनवाची क्रिया के साथ प्रयुक्त हुआ है—'जे यह कथा कपट तजि गावा कहहि सुनहि. . .।'

नेपाली में विशेषणवाची कृदन्त

§८७६. नेपाली के विशेषणवाची कृदन्तो के साथ प्रयुक्त होने वाला 'को' विधेय के रूप मे प्रयुक्त होने वाले वाक्याशों के साथ भी जुडता है। इससे उन वाक्याशो का विधेयत्व बहुत स्पष्ट हो जाता है; जैसे—त्यौ काहाँ बाट को थियो हामेरु भनन सकतौ नꣳ (=हम नही कह सकते कब तक वह था)। नेपाली का यह 'को' उपर्युक्त नियम के अनुसार विकार ग्रहण करता है।

२. संयुक्त वाक्य

क. सहयोगी वाक्य

§८७७. दो अथवा दो से अधिक वाक्य जब व्याकरण की दृष्टि से एक-दूसरे से स्वतंत्र हों तो वे सहयोगी वाक्य कहाते है। जहाँ एक वाक्य दूसरे वाक्य पर निर्भर हो तो निर्भर रहनेवाला वाक्य अधीनस्थ वाक्य माना जाता है।

---

[1] निश्चित रूप से यह छापे की असावधानी से छपा होगा—अनुवादक।

§८७८. अन्य भाषाओ की भाँति हिन्दी के संयुक्त वाक्यो को भी चार भागो मे बाँटा जाता है—संयोगसूचक, वियोजनसूचक, विरोधसूचक और हेतुसूचक।

संयोगसूचक वाक्य

संयोगसूचक वाक्यों का संयोजक

§८७९. संयोगसूचक वाक्यो का संयोजन 'और' तथा 'भी' के द्वारा होता है। एक-दूसरे से स्वतंत्र तथा समान महत्त्व रखने वाले वाक्यो का संयोजन 'और' के द्वारा होता है। 'और. .भी' का प्रयोग ऐसे वाक्यों मे होता है जहाँ प्रथम वाक्य की पुष्टि या तो (क) उद्देश्य मे हो, या (ख) विधेय मे।

उदाहरण—वह चला गया **और** फिर नही आया, श्रीकृष्णजी पधारे **और** बलरामजी **भी** उनके सग चले गये; यह पुरुष धर्मी है **और** वह बहुत विद्यमान **भी** है।

क. संयुक्त वाक्यो के प्रथम अथवा द्वितीय सदस्य के साथ प्रयुक्त होने वाली अस्तित्वसूचक क्रिया अथवा सामान्य क्रिया का लोप होता है। जैसे—यह पुरुष धर्मी औ बहुत विद्यमान भी है। साहित्य की अपेक्षा बोलचाल की भाषा मे द्वितीय सदस्य की क्रिया का लोप अधिक होता है।

ख प्रत्याहार के लिए संयोजक के स्थान पर प्राय 'फिर' अथवा 'पुनि' का प्रयोग होता है; जैसे—उसने ऊषा को उठा लिया फिर अनिरुद्ध को भी बाँध लिया।

ग. अधिकता सूचित करने के लिए संयोजक के रूप मे सार्वनामिक वाक्याश 'तिस पर भी' का प्रयोग होता है, जैसे—तिस पर भी मनुष्य अधर्म्म करेगे।

विरोधदर्शक संयुक्त वाक्य

वियोज्य वाक्यों का संयोजन

§८८०. स्वीकृतिसूचक वियोज्य वाक्यों के संयोजन के लिए वा, अथवा, या, किवा, कै और कि में से किसी एक का प्रयोग होता है। अग्रेजी मे जहाँ प्रथम वाक्य मे 'ऐदर' (either) और दूसरे वाक्य मे आर (or) आता है, वहाँ हिन्दी मे दोनों वाक्यों मे एक ही वियोजक दुहराया जाता है। 'वा' तथा 'अथवा' के अर्थ मे अन्तर नही होता। एकाकी शब्दों के संयोजन मे 'अथवा' की अपेक्षा 'वा' पसन्द किया जाता है। वाक्यो अथवा वाक्यांशो के संयोजन मे 'अथवा' अधिक प्रयुक्त होता है। 'अथवा' तथा 'वा' के स्थान पर अरबी का वियोजक 'या' भी प्रयुक्त किया जाता है। यदि सयुक्त वाक्य निषेध के लिए प्रयुक्त होता है तो प्रत्येक सदस्य का प्रयोग निषेधार्थक अव्यय के साथ किया जाता है, प्रथम सदस्य के आरंभ मे 'न' अथवा 'नही' और द्वितीय तथा अन्य सदस्य के प्रारंभ मे 'न' आता है।

उदाहरण—हम इनको लेके कुत्ते को हाँक सकते है **अथवा** खूँटी बना सकते है; इन्हे पछाड़ मारो **कै** मेरे आगे से टालो; धूप लगी है **या** जैसा मैं समझा हूँ; **न** वह ठाँव है **न** वह टूटी मढ़ैया, धूप **नहीं** व्यापती **न** पसीना आता है।

क. वियोज्य संयुक्त वाक्य के द्वितीय वाक्य के आरंभ में 'नही तौ' भी आता है, जैसे—अब तू या छूट ही जायगा नही तौ कुत्तो गिद्धो का भक्षण बनेगा।

ख. वियोज्य संयुक्त वाक्य का संयोजन कही-कही चाहे. . .चाहे, के द्वारा होता है; जैसे—**चाहे** आवे **चाहे** न आवे।

ग. प्रथम सदस्य का निषेधार्थक अव्यय लुप्त भी रहता है; जैसे—इन्हें पाने का हर्ष न जाने का शोक। कही-कही द्वितीय सदस्य के साथ भी निषेधार्थक अव्यय का प्रयोग नही होता; जैसे—साँच बरोबर तप नही झूठ बरोबर पाप।

विरोधदर्शक संयुक्त वाक्य

विरोधदर्शक संयुक्त वाक्य का संयोजन

§८८१. विरोधदर्शक संयुक्त वाक्य मे दो परस्पर विरोधी तथ्यो का प्रयोग होता है। विरोधी-दर्शक वाक्य तीन प्रकार के है, (१) द्वितीय वाक्य प्रथम वाक्य का विरोधी अथवा निषेधक हो सकता है, (२) द्वितीय वाक्य प्रथम वाक्य का केवल प्रतिबन्धक होता है, (३) प्रथम तथ्य पर अधिक बल देने के लिए द्वितीय वाक्य का प्रयोग होता है।

क. मुझे इस बात मे सन्देह है कि हिन्दी मे ठीक-ठीक कोई ऐसा विरोधदर्शक अव्यय है जो विरोध-दर्शकवाक्यो को खडनात्मक तथा विपरीततासूचक वाक्यो तथा वाक्याशो से पृथक् करे। फिर भी खंडनात्मक विपरीततासूचक वाक्यो को 'परन्तु' (बहुत कम 'किन्तु') अथवा इसके अरबी पर्याय 'लेकिन' के द्वारा व्यक्त करते है, जबकि एक वाक्य के आशय को प्रतिबन्धित करने के लिए सामान्यतया 'पर' का प्रयोग होता है। उत्कर्षता सूचित करने वाले विरोधदर्शक संयुक्त वाक्य मे 'बरन' अथवा अरबी का 'बल्कि' प्रयुक्त होता है।

ख निम्नलिखित उदाहरणो मे 'परन्तु', 'किन्तु' और 'पर' का उपयोग ऊपर दिये गये नियमो के अनुसार किया गया है।

(१) जीव का बनाने वाला कोई नही **परन्तु** वह आप से आप सदा काल से बना है।
दुरात्मा को शास्त्र के पढने से कुछ नही होता किन्तु इस विषय मे स्वभाव ही बलवान है।

(२) तूने तो बडे बडे बली मारे है **पर** अब मेरे हाथ से जीता न बचेगा।
मन से तो चाहा कि भाग जाऊँ **पर** मारे लाज के भाग न सका।

ग. ऊपर दिये गये उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न प्रकार के विरोधसूचक संयुक्त वाक्यों के लिये नियमानुसार उचित अव्ययो का प्रयोग किया जाता है, किन्तु साथ ही यह भी देखा जाता है कि अच्छे लेखक भी विरोधसूचक संयुक्त वाक्यो के अन्तर को सूचित करने के लिए उपयुक्त समुच्चय-बोधक का प्रयोग नही करते। 'प्रेमसागर' के इस वाक्य मे 'परन्तु' का प्रयोग प्रतिबन्ध के लिए हुआ है—"मै तेरे आगे कहता हूँ **परन्तु** तू किसी के सोंही मत कहियो। 'षड्दर्शन' के इस वाक्य मे समुच्चयबोधक, 'पर' खंडन करने वाले वाक्याश से पहले आया है—'वेद किसी का बनाया हुआ नही है **पर** आपसें आप अनादिकाल से बना हुआ है।'

घ. उत्कर्षता सूचित करने वाले विरोधदर्शक संयुक्त वाक्य के उदाहरण इस प्रकार है—वे इनके कहने को कुछ ध्यान मे न लाये **बरन** इनकी ओर से मुह फेरा; ईश्वर के स्थापन करने के लिए नही **बरन** खंडन करने के लिए हैं।

हेतुसूचक संयुक्त वाक्य

§८८२. हेतुसूचक संयुक्त वाक्य मैं एक वाक्य दूसरे वाक्य के हेतु, परिणाम अथवा प्रभाव को सूचित करता है। कारण अथवा हेतु सूचित करने वाला वाक्य सदैव समुच्चयबोधक 'क्योंकि' अथवा संज्ञा होते हुए भी समुच्चयबोधक की भाँति प्रयुक्त 'कारण' शब्द के साथ आता है। संयुक्त वाक्य मे जो वाक्य परिणाम अथवा प्रभाव का बोध कराता है उसे 'इसलिए कि' अथवा 'किसलिए कि' अथवा इसी प्रकार के किसी वाक्यांश के साथ प्रयुक्त करते हैं । समुच्चयबोधक 'पस' का प्रयोग केवल उर्दू मे होता है।

उदाहरण—हम उन्हें सुख देंगे **क्योंकि** जिन्होंने हमारे लिये बड़ा दुख सहा है।

ऐसा काम न करना ईश्वर के साम्हने अपराध ठहरेगा **इसलिए** मैं इस आशा का अवलम्ब करता हूँ।

क. हेतुसूचक संयुक्त वाक्यो मे 'इसलिए' आदि के स्थान पर कही-कही इससे, या सो; ताते आदि का प्रयोग होता है। उदा०—यह पाछै दौरि मारैगौ **या सों** या के पास गये ही बने।

ख. कही-कही सयोजक अथवा सयोजन के लिए प्रयुक्त होने वाला वाक्यांश प्रयुक्त नही होता। ऐसे स्थलो पर हेतुसूचक सयुक्त वाक्य की पहचान केवल प्रसग से होती है; जैसे—मेरे भक्तो को भीर पडी है इस समय चलकर उनकी चिन्ता मेटा चाहिए।

ख. अधीनस्थ वाक्य

अधीनस्थ वाक्यों का वर्गीकरण

§८८३. अधीनस्थ वाक्य तीन प्रकार के हैं—(१) सज्ञात्मक, (२) विशेषणात्मक अथवा सम्बन्ध सूचक, (३) क्रियाविशेषणात्मक। नीचे तीनों की परिभाषा तथा व्याख्या दी जा रही है।

§८८४. अधीनस्थ वाक्याशो के सम्बन्ध मे विचार करने से पहले हिन्दी की क्रिया के काल-विभाजन को स्मरण करना सुविधाजनक होगा। इन कालों से तीन बातो का ज्ञान होता है। संभव, असभव और यथार्थ। (१) निम्नलिखित चार कालो से क्रिया के होने की सभावना व्यक्त की जाती है—संभाव्य भविष्य, विधि, संभाव्य अपूर्ण और संभाव्य पूर्ण। (२) निम्नलिखित कालो से क्रिया की केवल कल्पना की जाती है किन्तु क्रिया का होना प्रकट नही होता—अनिश्चित अपूर्ण, सभाव्य अपूर्णभूत और संभाव्य पूर्ण भूत। (३) शेष काल सकेतवाचक हैं, या तो इन कालों से क्रिया की यथार्थता ज्ञात होती है या उनके होने को यथार्थ मान लिया जाता है। अधीनस्थ वाक्यो के लिए निर्धारित सभी वाक्यो के सम्बन्ध मे यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि प्रथम श्रेणी के काल उसी स्थिति मे प्रयुक्त होते है जब क्रिया अथवा स्थिति की संभावना हो, द्वितीय श्रेणी के कालो का प्रयोग उस समय होता है जब भूतकाल मे तो क्रिया के होने की सभावना थी किन्तु अब उसका घटित होना संभव नही है,[1] तृतीय श्रेणी के काल क्रिया की वास्तविकता अथवा यथार्थता सूचित करते है। आगे चलकर सम्बन्धित अनुच्छेदों मे तीनो श्रेणियो के कालों के सम्बन्ध मे अधिक उदाहरण दिये जाएँगे।

संज्ञात्मक वाक्यांश

§८८५. सज्ञात्मक वाक्यांश वाक्य मे सज्ञा की भाँति प्रयुक्त होता है।

क. उदाहरण—'परमेश्वर एक है यह धर्म की मुख्य बात है' इस वाक्य मे 'परमेश्वर एक है' यह वाक्यांश स्पष्टत: संज्ञा की भाँति प्रयुक्त हुआ है और 'परमेश्वर का एकत्व' का पर्यायवाची है। इसी प्रकार 'कहते है कि वह आवेगा' इस वाक्य का वाक्यांश 'वह आवेगा' 'कहते है' के कर्म कारक के समान है।

§८८६. संज्ञात्मक वाक्यांश दो प्रकार के है—(१) उद्देश्य सम्बन्धी; (२) विधेय सम्बन्धी। उद्देश्य सम्बन्धी संज्ञात्मक वाक्याश या तो मुख्य क्रिया के उद्देश्य से सम्बन्ध रखता है अथवा उद्देश्य के

---

[1] यह बात उल्लेखनीय है कि अनिश्चित अपूर्ण काल अपने दुहरे गुण के कारण प्रथम तथा द्वितीय दोनों श्रेणियों के कालों से सम्बन्धित हैं। देखिए, §७७५।

उत्तर पक्ष में प्रयुक्त होता है। विधेय सम्बन्धी संज्ञात्मक वाक्याश मुख्य वाक्य के विधेय की व्याख्या करता है अथवा उसे सीमित करता है। विधेय सम्बन्धी संज्ञात्मक वाक्यांश विधेय का अंग बन कर प्रयुक्त होता है।

उद्देश्य सम्बन्धी संज्ञात्मक वाक्यांश

§८८७. उद्देश्य सम्बन्धी संज्ञात्मक वाक्याश वाक्य के साथ 'कि' सयोजक के द्वारा सम्बन्ध स्थापित करता है।

उदाहरण—खुल जायगा कि मै राजा हूँ। सामान्यतया 'यह' मुख्य वाक्यांश के उद्देश्य के रूप मे प्रयुक्त होता है और आगे आनेवाला संज्ञात्मक वाक्याश इस 'यह' के उत्तर मे आता है, जैसे—'यह सिद्ध होता है कि मनुष्य को अपनी बुद्धि से परमेश्वर का सत्य ज्ञान प्राप्त करना कठिन है।' इस वाक्य मे उत्तर पक्ष का वाक्य संज्ञात्मक वाक्याश है जो मुख्य क्रिया के उद्देश्य के रूप मे प्रयुक्त 'सोभा' की व्याख्या करता है—'उस समय की सोभा कुछ बरनी नही जाती कि सब के आगे बड़े बडे दँतीले मतवाले हाथियो की पाँति. . .।'

क. कही-कही सयोजक 'कि' का प्रयोग नही होता । उदाहरण के लिए यह वाक्य लीजिये, 'ऐसा ध्यान बँधता है मानो शिवजी शूकर के पीछे जाते हैं।'

ख. पात्रता, कर्त्तव्य अथवा कृतज्ञता व्यक्त करने वाले मुख्य वाक्याश के साथ प्रयुक्त संज्ञात्मक वाक्याश की क्रिया नियमित रूप से संभाव्य भविष्य काल अथवा विधि के आदरार्थक रूप मे प्रयुक्त होती है, जैसे—उचित है किसी को वहाँ से भेज दीजे, तुमको अवश्य है कि वहाँ जाओ।

स्मरणीय—कहीं-कही सरल वाक्य मे सभाव्य भविष्य काल के स्थान पर क्रिया के अविकारी कर्त्ता की भाँति क्रिया का सामान्य रूप आता है। इस प्रकार का प्रयोग उस समय अधिक पसन्द किया जाता है, जब क्रिया काल्पनिक न होकर यथार्थ हो।

विधेय सम्बन्धी संज्ञात्मक वाक्यांश

§८८८. विधेय सम्बन्धी संज्ञात्मक वाक्याश के कई भेद है। यह वाक्यांश या तो मुख्य वाक्यांश की क्रिया के कर्म की भाँति आता है अथवा, मुख्य वाक्यांश के अनुबन्धित कृदन्त की तरह प्रयुक्त होता है। इस स्थिति मे विधेय सम्बन्धी संज्ञात्मक वाक्यांश का संयोजन नियमित रूप से 'कि' के द्वारा होता है।

उदाहरण—नारद मुनि अनिरुद्ध जी को जाय समझाता था कि तुम किसी बात की चिन्ता मत करो; राजकुमारी मन ही मन यूँ कहती फिरती है कि मै किसे बरूँ?, तुम देखि आओ कि कौन राजा चढ़ा आता है।

क. संज्ञात्मक वाक्यांश का प्रयोग कही-कही 'कि' के स्थान पर 'जो' के साथ होता है; जैसे—यही बिचारो जो मथुरा और बृन्दाबन मे अन्तर ही क्या है?

ख. कही-कहीं, विशेष रूप से छोटे वाक्यों मे सयोजक का प्रयोग नहीं होता; जैसे—चित्ररेखा बोली सखी इधर आओ।

ग. प्राय. संज्ञात्मक वाक्यांश पहले आता है और उसके पश्चात् क्रिया के मुख्य कर्म के रूप मे सर्वनामवाची शब्द प्रयुक्त होता है। इस सर्वनामवाची शब्द के उत्तर वाक्य के रूप मे ही संज्ञात्मक वाक्यांश

प्रयुक्त होता है; जैसे—यह मृग आया वह वराह गया उधर शार्दूल जाता है यह कहते; चलो बन को चलो बन को यह चिल्ला चिल्ला कर कान फोड़ते है।

नेपाली में संज्ञात्मक वाक्यांश

§८८९. मुझे नेपाली बाइबिल मे 'कि' के साथ संयोजित होने वाला संज्ञात्मक वाक्यांश दिखाई नही दिया। 'कि' के स्थान पर नियमित रूप से √भनन् का यौगिक कृदन्त 'भनि' प्रयुक्त हुआ है। इस 'भनि' का प्रयोग संज्ञात्मक वाक्यांश के अन्त मे कर्म की भाँति होता है, इस स्थिति मे 'भनि' का अँग्रेजी अनुवाद 'दैट' (That) किया है, किन्तु अन्य स्थिति मे इसे यो ही छोड देते है। उददाहरण— ईश्वर को राज्य नजिकैछ भनि जाननु (=भगवान का राज्य निकट है कि जानो); उन लाइ कुन पाठ ले मारौ भनि मत गरया (=उन्होंने परामर्श किया कि किस ढंग से उसे मारे)।

कथन सम्बन्धी संकेत की उपेक्षा

§८९०. यह उल्लेखनीय बात है कि अँग्रेजी मे √कहना, √सोचना और √चाहना आदि के साथ कथन सम्बन्धी संकेत का प्रयोग किया जाता है, किन्तु हिन्दी मे इस प्रकार का कोई संकेत प्रयुक्त नही होता। इसके विपरीत रूढ़ि इस बात की आशा रखती है कि वक्ता के मस्तिष्क मे जैसे जैसे विचार अथवा शब्द आते जाएँ उन्हें उसी क्रम से व्यक्त किया जाये।

इस नियम के अनुसार अंग्रेजी वाक्यो को हिन्दी मे अनुवादित करते समय क्रिया के पुरुष तथा काल बदल देने चाहिएँ। उदाहरण—तू जा हमारी ओर से कह दे कि रानी हम तेरी चितावनी को समझे (=Go thou, and say from me, "Queen, I (have) understood your admonition); अँग्रेजी की रूढ़ि के अनुसार उपर्युक्त वाक्य का अनुवाद होगा—'tell the queen that I have understood' आदि।

'जौ चाहा कि बलदेव को मारूँ' (=as he wished (was about to) kill Baldeva अँग्रेजी की रूढ़ि के अनुसार इस वाक्य का अनुवाद होगा—'wished, may I kill Baldeva'।

क. रामायण की यह पंक्ति पढिये—भूपति मन माही भई गलानी मोरे सुत नाही;[1] इस पंक्ति में यौगिक कृदन्त 'सोचि' का प्रयोग नही हुआ, 'मोरे सुत नहीं' एक संज्ञात्मक वाक्य है जो यौगिक कृदन्त 'सोचि' के कर्म के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। इस वाक्याश को इस तरह व्यक्त किया गया है, जैसे—यह 'भाव राजा के मन मे आ रहा हो। हम अग्रेजी की रूढ़ि के अनुसार इस पक्ति को इस तरह अनुवादित करेंगे—sadness entered the heart of the king as he thought how he had no son.

ध्येय को व्यक्त करनेवाला विधेय सम्बन्धी वाक्यांश

§८९१. विधेय सम्बन्धी संज्ञात्मक वाक्याश मुख्य क्रिया के ध्येय अथवा कारण को प्रकट करता है।

क. इस स्थिति मे संज्ञात्मक वाक्यांश के रूप मे 'कारण' अथवा 'हेतु' शब्द उत्तर वाक्य मे आते हैं। कही-कहीं अधिक स्पष्टता के लिए 'कारण' अथवा 'हेतु' जैसे शब्दो का प्रयोग भी होता है। ध्येय अथवा कारण

---

[1] बालकांड।

व्यक्त करने वाला वाक्याश संयोजक 'कि' अथवा सयोजक की भाँति प्रयुक्त 'जो' के साथ आता है। संज्ञात्मक वाक्याश मे ध्येय व्यक्त करनेवाली क्रिया संभाव्य भविष्य काल मे आती है। जैसे—हम तुम्हे बृन्दाबन मे भेजा चाहते है कि तुम उनका समाधान कर आओ; वेग चली आ जिससे सब एक संग क्षेम कृपा से कुटी मे पहुँचे, शकुन्तला मुझे बहुत प्यारी है काहे से कि वह मेरी सहेली की बेटी है, तू बाबा से समझाय कर कहो जो मुझे ग्वालो के सग पठाय दे, इससे तेरा नाम प्रियंवदा हुआ कि तू बात बहुत प्यारी कहती है।

§८९२. उद्देश्य सूचित करने वाला निषेधार्थक वाक्याश 'ऐसा हो न हो कि' वाक्याश के साथ आता है। इस वाक्याश की क्रिया संभाव्य भविष्य काल मे रहती है, जैसे—'वहाँ न जाइयो ऐसा न हो कि तुम गिरो।' इस प्रकार के प्रयोग मे प्राय: 'ऐसा' लुप्त रहता है।

क. कही-कही प्रसंग से संयोजक का बोध होता है, जैसे—नाहिन डर बिगरहिं परलोकू।

परिणामसूचक विधेयी वाक्यांश

§८९३. सज्ञात्मक वाक्य जब क्रिया का परिणाम सूचित करता है और वह परिणाम व्यक्त किया जाता है—(१) इच्छा अथवा संभावना के रूप मे तो उसकी क्रिया संभाव्य भविष्य काल में आती है, (२) यदि उसका प्रयोग वास्तविक कर्म की भाँति हो रहा है तो क्रिया किसी सकेत काल मे प्रयुक्त होती है; (३) यदि अप्राप्त हो तो क्रिया अनिश्चित अपूर्णकाल मे आनी चाहिये। तीनों स्थितियों के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

(१) ऐसी-ऐसी सुन्दर रगभूमि बनवाये कि जिसकी सोभा सुनते ही गाँव गाँव के लोग उठ धावें।

(२) क्या हुआ है जो तू ऐसी बाते कहता है ?; वह बन मे इस भाँति रो रही थी अकेली कि जिसके रोने की धुन सुन रोते थे पशु पंछी।

(३) अर्जुन की क्या सामर्थ थी जो बहन को ले जाता।

स्मरणीय—हिन्दी मे क्रिया के परिणाम को सम्बन्ध वाचक सर्वनाम अथवा सर्वनाम से बने किसी विशेषणवाची रूप के साथ विशेषणवाची वाक्याश मे व्यक्त करते है। इसका उदाहरण अगले अनुच्छेद मे दिया गया है।

विशेषणवाची वाक्यांश

§८९४. मुख्य वाक्य के किसी शब्द अथवा वाक्यांश की विशेषता प्रकट करने वाले विशेषण अथवा विशेषण के समान प्रयुक्त वाक्यांश को विशेषणवाची वाक्याश कहते है।

क. उदाहरण के लिए यह मिश्र वाक्य लीजिये—'श्रीकृष्ण ने उन लकीरों को गिना जो उसनें खैंची थी।' यहाँ 'जो' शब्द के साथ आनेवाले वाक्यांश 'लकीरों को' की विशेषता एक विशेषण की भाँति प्रकट करता है। यह विशेषणवाची वाक्यांश 'अपनी खींची हुई लकीरों को' के समान है।

विशेषणवाची वाक्यांश की रचना

§८९५. सभी विशेषणवाची वाक्यांश नियमित रूप से सम्बन्धवाची सर्वनाम अथवा सर्वनाम से बननेवाले किसी विशेषण के साथ प्रयुक्त होते है। विशेषणवाची वाक्यांश के उत्तर मे कोई सकेतवाचक अथवा अन्योन्य सम्बन्धी सर्वनाम मुख्य वाक्यांश मे प्रयुक्त होता है। सम्बन्धसूचक वाक्यांश अन्योन्य सम्ब-

न्धी सर्वनाम का विस्तार मात्र है। मुख्य वाक्याश में अन्योन्य सम्बन्धी सर्वनाम के स्थान पर कोई संकेतवाची सर्वनाम (यह, वह, ऐसा अथवा सर्वनाम से सम्बन्ध रखनेवाला 'सब') प्रयुक्त होता है।

उदाहरण—जैसी तेरी दशा हो रही है वैसा ही कोई छन्द भी बना दे, जिस ऋषि ने अपनी कन्या ऐसे भेज दी है उसका अपमान मत करो।

क जहाँ विशेष अन्तर बताने की आवश्यकता हो वहाँ विशेष्य को मुख्य तथा आश्रित दोनो वाक्यांशो मे दुहराते है, जैसे—राक्षसो का दल जो घिर आया था सो दल बादल सा छाया था, जा घट प्रेम ना बसे ता घट जानौ मसान।

ख किन्तु हिन्दी मे इस तरह की रूढि पाई जाती है कि पहले सम्बन्ध सूचक वाक्याश विशेष्य के साथ रखा जाता है और उसके पश्चात् मुख्य वाक्याश प्रयुक्त होता है। मुख्य वाक्याश मे विशेष्य का प्रयोग नही होता; जैसे—जितने शस्त्र हरि पर घाले तितने प्रभु ने सहज ही काट डाले; बारह योजन का नगर जैसा श्रीकृष्ण ने कहा था तैसा ही रात भर मे बनाया।

ग. हिन्दी मे जब मुख्य वाक्याश पहले आता है तो अग्रेजी की भाँति कही-कही सम्बन्धसूचक वाक्याश मे विशेष्य का उल्लेख नही किया जाता; जैसे—राजा दुष्यन्त छुटावेगा जो सब तपोबन का रखवाला है।

घ. जब कोई विशेष व्यक्ति अभिप्रेत हो अथवा उद्देश्य (व्याकरण का) सुपरिचित हो तो मुख्य तथा आश्रित दोनों वाक्याशो मे विशेष्य का प्रयोग नही होता, जैसे—जो तेरे योग्य था उसी से आँख-लगी, जिसने सारे ससार को सृजा हम सब उसी के बस है।

ङ. गद्य मे कही-कही, किन्तु कविता मे विशेषरूप से मुख्य वाक्यांश मे अन्योन्य सम्बन्धी सर्वनाम का प्रयोग नही होता, जैसे—'मेरे मन का सूल जो खटकता है निकालो, जे अनिरुद्ध पर परे हथयार-अधवर कटे सिला की धार। अधीनस्थ लोगो के द्वारा प्रयुक्त स्वीकृतिसूचक वाक्याश—'जो हुक्म' अथवा 'जो आज्ञा' से मुख्य वाक्याश (=हाँ, सो मै करूँगा) लुप्त हो गया है।

च. आश्रित वाक्य मे सम्बन्धवाची सर्वनाम का प्रयोग नही भी होता है, जैसे—बचे सो मागे, मीठै बोले ताहि कौन परायौ, उत्तर था सो सुन लिया। 'शकुन्तला' के इस वाक्य के पीछे आने वाले वाक्याशों मे सम्बन्धवाची सर्वनाम का प्रयोग नही हुआ—'शकुन्तला के अधर है सोई लता के नवीन पल्लव है भुजा है सोई बेलि है और यौवन है सोई विकसित फूल है।' इस प्रकार के सक्षिप्त वाक्यो मे सम्बन्धवाचक सर्वनाम सामान्य रूप से अप्रयुक्त रहता है, जैसे—कुछ हो, हो सो हो। विशेषरूप से बातचीत मे सम्बन्ध की उपेक्षा देखी जाती है; जैसे—तुम करोगी सो अच्छा ही करोगी। कविता मे इस प्रकार की प्रवृत्ति सामान्य रूप से पाई जाती है, जैसे—गुरु पद रज मृदु मजुल अंजन—नयन अमिय दृग दोष विभजन—तेहि करि विमल विवेक विवेचन।

छ. जहाँ वाक्याशो का संयोजन स्पष्ट होता है, सम्बन्धसूचक तथा अन्योन्य सम्बन्धसूचक दोनो सर्वनाम प्रयुक्त नही होते, जैसे—भला किया कस को मारा।

ज. मुख्य वाक्याश मे अन्योन्य सम्बन्धवाचक अथवा संकेतवाचक सर्वनाम के स्थान पर प्रश्नवाचक सर्वनाम का प्रयोग होता है, जैसे—कौन ऐसा है जो इन ऋषि कन्याओं को सताता है।

विशेषणवाची वाक्यांशों की क्रिया

§८९६. विशेषणवाची वाक्याशो की क्रिया सकेत कालो (श्रेणी ३ के काल, §८८४) मे प्रयुक्त होती है। इस प्रकार के प्रयोग के लिए यह आवश्यक है कि विशेषता यथार्थ हो अथवा यथार्थ मान ली

गई हो। पहले कुछ उदाहरण दिये गये है। एक उदाहरण यहाँ और दिया जाता है—'जितने सुरूप के लक्षण है विधाता ने सब उसी मोहिनी मे इकट्ठे किये है।

§८९७. यदि वाक्याश द्वारा व्यक्त विशेषता यथार्थ न हो तो वाक्याश की क्रिया किसी सभाव्य काल मे प्रयुक्त होती है।

क. विशेष रूप से ऐसा दो स्थितियो मे होता है—(१) जहाँ विशेषणवाची वाक्याश मे क्रिया का ध्येय अथवा परिणाम व्यक्त हो और (२) जहाँ सख्या, परिमाण अथवा गुण का निश्चित निर्देश न हो और कोई विशेष व्यक्ति अभिप्रेत न हो।

दूसरी स्थिति मे ऐसा, इतना अथवा इत्ता का प्रयोग सामान्यतया मुख्य वाक्याश मे होता है, और आश्रित वाक्य सर्वनाम-सम्बन्धी विस्तार होता है। कही-कही विशेषणवाची वाक्याश 'जो' के साथ न आकर 'कि' के साथ आता है। उदाहरण इस प्रकार है—

(१) यह ब्राह्मण की बेटी नही है जो मेरे ब्याहने योग्य न हो, भाँति तेहि राखब राऊ—सोच मोर जेहि करहिं न काऊ।

(२) जिस शास्त्र मे परमेश्वर का शुद्ध वर्णन हो, जितने लोग आए हो सब को नेओता दो; ऐसा आनन्द उपजा कि दुख नाम को न रहा, एसा उपाय करो जो फलदायक हो, किसे इतनी सामर्थ है जो उसे बखाने?

ख 'कि मानो' अथवा 'मानो' के साथ प्रयुक्त होने वाले वाक्यो का उल्लेख भी इसी अनुच्छेद मे होना चाहिए; जैसे—'वह भी ऐसा दुर्बल और पीला पड़ गया है मानो. .उसे रात रात भर जागते बीता है।' 'मानो' के पश्चात् आनेवाला वाक्याश 'मानो' पर आश्रित संज्ञात्मक वाक्यांश है।

ग कही-कहीं मुख्य वाक्याश मे 'ऐसा' के स्थान पर 'कैसा' आता है। इस प्रकार परिवर्तन विशेष रूप से आश्चर्य प्रकट करने के लिए होता है, जैसे—'कैसी छलॉग भरी है कि धरती से ऊपर ही दिखाई देता है।'

घ. निम्नलिखित वाक्य के मुख्य वाक्यांश मे एक ऐसी शर्त का उल्लेख है जो पूरी नही हो सकती। इसीलिए कर्म सम्बन्धी वाक्यांश मे § ७७५ (५) के अनुसार अनिश्चित अपूर्णकाल का प्रयोग हुआ है—'अर्जुन की क्या सामर्थ थी जो हमारी बहन को ले जाता।' किन्तु इस वाक्य मे संभाव्य भविष्य काल का प्रयोग हुआ है—'नही तो उनकी क्या सामर्थ थी जो कौरवों से लडे।'

ङ कही-कही मुख्य वाक्याश मे प्रयुक्त एक से अधिक अन्योन्य सम्बन्धवाची सर्वनामो के उत्तर मे विशेषणवाची वाक्याश मे दो अथवा दो से अधिक सम्बन्धसूचक सर्वनाम आते है। अंग्रेजी की रूढि के अनुसार अनुवाद करते समय सम्बन्धवाची मुख्य सर्वनाम के अतिरिक्त सब के लिए अनिश्चयवाचक सर्वनाम का प्रयोग करना चाहिए।

उदाहरण—जो जेहि भाव नीक तेहि सोई; जिनके रही भावना जैसी—प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।

स्मरणीय—सम्बन्धवाची क्रियाविशेषणो से भी इस प्रकार के वाक्य रचे जाते है।

च. कही-कहीं 'जैसे' का प्रयोग क्रियाविशेषण के रूप मे होता है। अन्तिम वाक्याश मे लालित्य के लिए सम्बन्धसूचक सर्वनाम के स्थान पर 'जैसे' का प्रयोग होता है, इसीलिए वह वाक्याश क्रिया विशेषण-वाची वाक्याश माना जाता है, यथा—'जैसे जाय मोह भ्रम भारी करहु सो जतन।'

छ. इसी प्रकार विशेषणवाची वाक्यांश में प्रयुक्त संज्ञा और सम्बन्धवाची सर्वनाम के स्थान पर 'जहाँ' का प्रयोग होता है, 'धन्य सो नगर जहाँ तें आये।'

क्रियाविशेषणवाची वाक्यांश

क्रियाविशेषणवाची वाक्यांश की परिभाषा

§८९८. क्रियाविशेषणवाची वाक्याश क्रिया विशेषण का विस्तार है। यह मुख्य वाक्यांश के समय, स्थान, रीति, कारण अथवा क्रियाविशेषण द्वारा व्यक्त किसी अन्य भाव को व्यक्त करता है।

कालवाची क्रियाविशेषण से बननेवाला वाक्यांश

§८९९ काल सम्बन्धी क्रियाविशेषणवाची वाक्यांश नियमित रूप से 'जब' ('जद' अथवा 'जौ' भी) के साथ आता है। इस 'जब' के उत्तर मे 'तब' ('तद' अथवा 'तौ') मुख्य वाक्यांश मे प्रयुक्त होता है। पहले §६४२ में इस बात का उल्लेख कर दिया गया है कि सम्बन्धित क्रिया-विशेषण का आशय कालवाची क्रियाविशेषण के साथ 'से', 'तक' आदि परसर्गो के योग से प्रकट किया जाता है।

उदाहरण इस प्रकार है—जब वहाँ न पाया तब आपस मे बोली; भोर जब उठता है तो सीधी कोई बात मुख से नही निकलती है, जब तक साँसा तब तक आसा।

क ऊपर के क्रियाविशेषणो के स्थान पर समय सूचित करनेवाली संज्ञाएँ—समय, काल, दिन आदि—प्रयुक्त होती है। आश्रित वाक्य मे इन समयवाची संज्ञाओ का प्रयोग अन्योन्य सम्बन्धवाची सर्वनाम और मुख्य वाक्याश मे सकेतवाची सर्वनाम के साथ होता है; जैसे—जिस समय अनिरुद्धजी को बाना सुर ले गया उस काल अनिरुद्ध जी विचारते थे।

ख कही-कही कालवाची वाक्यांश लालित्य के लिए 'कि' के साथ आता है; जैसे—'वह भूखा बैठा था कि इसमे विस्वामित्र ने यह वचन कहा।' जहाँ 'कि' का प्रयोग 'जब' के साथ होता है तो वहाँ वाक्याश चाहे कालवाची ही क्यो न हो, आशय की दृष्टि से वह हेतुसूचक वाक्यांश माना जाएगा। जैसे—जब कि तू सुख भोगने जाती है रोना उचित नही है।

ग विशेषणवाची वाक्यांश की भाँति क्रियाविशेषणवाची वाक्यांश मे भी सम्बन्धवाची सर्वनाम की उपेक्षा की जाती है, जैसे—सब गोपियाँ चारो ओर से घेर कर खडी भईं तब श्री कृष्ण उन्हें साथ लिये वहाँ आए; चलेहु प्रसंग दुरायहु तबहुँ।

स्थानसूचक क्रियाविशेषणवाची वाक्यांश

§९००. स्थानसूचक क्रियाविशेषणवाची वाक्यांश नियमित रूप से सम्बन्धवाची क्रियाविशेषण 'जहाँ' अथवा 'जिधर' अथवा इनके पर्याय के साथ प्रयुक्त होता है। आवश्यकतानुसार 'जहाँ' 'जिधर' आदि के साथ परसर्गो का उपयोग भी किया जाता है। क्रिया विशेषणवाची वाक्याश के पश्चात् मुख्य वाक्यांश मे अन्योन्य सम्बन्धवाची अथवा सकेतवाची सर्वनामो मे से किसी उपयुक्त सर्वनाम का प्रयोग होता है।

जैसे—जहाँ लोमस ऋषि थे तहाँ कितने एक लडके खेलते हुए जा निकले; जहाँ कंस गया है तहाँई तुम्हे भी भेजूंगा।

क. जब मुख्य वाक्यांश गौण वाक्यांश से पहले आता है तो अन्योन्य सम्बन्धवाची 'तहाँ' के स्थान पर 'वहाँ' का प्रयोग अधिक अच्छा माना जाता है; जैसे—रानियाँ वहाँ गईं जहाँ...दोनो वीर मृतक लिये बैठे थे; वही गया जहाँ बसुदेव देवकी थे।

ख. कहीं-कही किसी एक अथवा दोनो स्थानवाची क्रियाविशेषणो के स्थान पर कालवाची वाक्याश की भाँति कोई स्थानवाची सज्ञा, सम्बन्धवाची अथवा अन्योन्य सम्बन्धवाची सर्वनाम के साथ प्रयुक्त होती हैं, जसे—धन्य यह ठौर जहाँ आकर प्रभु ने दर्शन दिया।

आदर्शसूचक क्रियाविशेषणवाची वाक्यांश

§९०१. आदर्शसूचक क्रियाविशेषणवाची वाक्याश नियमित रूप से आदर्शसूचक क्रियाविशेषण 'ज्यूँ' अथवा इसके किसी पर्याय के साथ प्रयुक्त होता है। इस 'ज्यूँ' के उत्तर मे 'त्यूँ' मुख्य वाक्यांश मे आता है।

उदाहरण—ज्यौ रथ निकट आया त्यौ गोपियाँ कहने लगी। अथवा बहुत कम स्थलो पर मुख्य वाक्य मे प्रयुक्त 'यो' की विवृत्ति के रूप मे क्रियाविशेषणवाची वाक्यांश 'कि' के साथ आता है; जैसे—यो कह देवकी को बचाऊँ कि जो पुत्र मेरे होगा सो तुम्हे दूँगा।

स्मरणीय—अन्तिम वाक्यांश स्वरूप की दृष्टि से कर्म सम्बन्धी संज्ञात्मक वाक्यांश से सादृश्य रखता है; किन्तु अन्तर यह है कि वाक्य मे ऐसा शब्द नही है जो इसे 'कह' क्रिया के कर्मकारक का रूप दे सके।

क आदर्शसूचक वाक्यांश को प्रस्तुत करने के लिए उपर्युक्त अव्ययो के क्रियाविशेषणो की अपेक्षा क्रियाविशेषण की भाँति प्रयुक्त होनेवाला 'जैसे' अथवा इसका कोई पर्यायवाची शब्द अधिक प्रयुक्त होता है। तुलना करने के लिए इस प्रकार का प्रयोग लगभग अनिवार्य ही है, यथा –जैसे आपने कस को मार भक्तो को सुख दिया तैसे ही मधुपुरी का राज कर प्रजा पालन कीजै; जैसे बने तैसे ही ले आते है। इस प्रकार के प्रयोगों मे आसन्न भविष्य के लिए वर्तमान काल का प्रयोग हुआ हैं।

ख. जब अन्य वाक्यांशो से पहले मुख्य वाक्याश आता है तो सामान्यतया अन्योन्य सम्बन्धवाची सर्वनाम से बनने वाले विशेषण के स्थान पर सकेतवाची सर्वनाम का प्रयोग होता है; जैसे—'ऐसा सुख माना कि जैसे तपी तप कर अपने तप का फल प्राप्त कर सुख माने।'

ग. मुख्य वाक्याश मे अन्योन्य सम्बन्तधवाची सर्वनाम की उपेक्षा भी की जाती हैं, यथा—'जैसे खाल लुहार की साँस लेत बिन प्रान।'

घ. रूढि के अनुसार 'ऐसे' के उत्तर मे प्रयुक्त होने वाले 'जैसे' के स्थान पर 'मानो' शब्द का प्रयोग किया जाता है; जैसे—ऐसे दीप्तिमान हैं मानो सान का चढा हीरा।

ङ. रामायण मे 'जैसे' तथा 'तैसे' के स्थान पर प्राय: 'जिमि' और 'तिमि' का प्रयोग मिलता है। प्राय. अन्योन्य सम्बन्धवाची शब्द का प्रयोग नहीं होता; उदा०—जिमि यह कथा सुनायउ मोही—तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहू, सहित दोष दुख दास दुरासा—दलइ नाम जिमि रवि निस नासा।

च. क्रियाविशेषणवाची अन्य वाक्यांशों की भाँति प्रयुक्त सज्ञा सम्बन्धवाची अथवा अन्योन्य सम्बन्धवाची सर्वनाम के साथ आदर्शसूचक क्रियाविशेषण का स्थान लेती है, जैसे—'जिहि विधि भा आगे कहब।'

क्रियाविशेषणवाची वाक्यांश की क्रिया के काल

§९०२. कालवाची, स्थानवाची और आदर्शवाची क्रियाविशेषण सम्बन्धी वाक्याशो की क्रिया समान रूप से या तो सकेतकाल मे प्रयुक्त होती है या संभाव्य कालो में। जब क्रियाविशेषण सम्बन्धी वाक्यांश

यथार्थता का परिचय न देकर केवल संभावना व्यक्त करता है तो उसकी क्रिया संभाव्य भविष्य; संभाव्य अपूर्ण अथवा सभाव्य पूर्ण इन तीन कालों मे से किसी काल मे प्रयुक्त होती हैं। किन्तु जहाँ क्रियाविशेषण सम्बन्धी वाक्याश से यथार्थता का पता चलता है तो उसकी क्रिया किसी सकेत काल मे प्रयुक्त होती है।

क. उदाहरण के लिए समय अथवा स्थान के सम्बन्ध मे अनिश्चित स्थिति को व्यक्त करने के लिए संभाव्य भविष्य काल का प्रयोग किया जाता है; जैसे—जब वह आवे मुझे खबर दीजे; जहाँ मिले उसे वहाँ पकड लाइयो।

ख. इसी प्रकार से जिस प्राणी अथवा वस्तु के साथ तुलना की जाय वह काल्पनिक हो तो तुलनात्मक वाक्याश मे किसी सभाव्य काल का प्रयोग होता है, जैसे—'दोनो बीर ऐसे टूटे जैसे हाथियो के यूथ पर सिंह टूटे।' जिससे तुलना की जाती है, यदि वह काल्पनिक न होकर यथार्थ वस्तु अथवा प्राणी हो तो किसी सकेत काल का प्रयोग होता है, जैसे—'श्रीकृष्ण बलराम ऐसे सोभायमान लगते थे जैसे सघन घन मे दामिनी लगती है।'

स्मरणीय—तुलनात्मक वाक्याश की क्रिया के काल का निर्धारण इस बात पर निर्भर है कि वक्ता अथवा लेखक उस पदार्थ या प्राणी के बारे मे क्या विचार रखता है, जिसके साथ तुलना की जा रही है।

ग. कविता में अस्तित्वसूचक क्रिया का प्रयोग नही होता। जैसे—जो गुन रहित सगुन सो कैसे जल हिम उपल।

हेतुसूचक क्रियाविशेषणवाची वाक्यांश

§९०३. हेतुसूचक क्रियाविशेषणवाची वाक्याश से निम्नलिखित बातो का पता चलता है—

(१) मुख्य वाक्याश का कारण, आधार अथवा परिणाम। इस वाक्याश से पहले सामान्यतया 'जो' का प्रयोग संयोजक की भाँति होता है। इस 'जो' का अर्थ होता है—'तब से' अथवा 'जैसा कि'। मुख्य वाक्यांश 'सो' अथवा 'तो' के साथ प्रयुक्त किया जाता है।

उदाहरण—हम जो ऐसे दुख मे हैं हमे कोई छुडानेवाला चाहिए, जो इस जीव को दुख ही बदा है तौ कुछ बस नही है।

कही-कही आश्रित वाक्य ठीक ढंग से नही आता, जैसे—'सो ज्ञानी पुरुष मरने के अनन्तर पाषाण के समान हो रहता है।'

शर्त्त सम्बन्धी वाक्यांश

(२) हेतुसूचक क्रियाविशेषण वाची वाक्यांश शर्त्त प्रकट करता है, इस शर्त्त के कारण ही मुख्य क्रिया घटित होती है। शर्त्त प्रकट करने वाला वाक्याश नियमित रूप से 'जो' अथवा 'यदि' के साथ आता है। 'जो' अथवा 'यदि' के स्थान पर फारसी का 'अगर' भी प्रयुक्त होता है। द्वितीय वाक्य 'तो' कही-कही 'तौ भी' के साथ आता है।

नेपाली में शर्त्तवाला वाक्य

§९०४. नेपाली मे शर्त्तवाला वाक्य जो, यदि और अगर के स्थान पर√भननु के पूर्णतासूचक विकारी कृदन्त 'भन्या' प्रयुक्त होता है। यह 'भन्या' नियमित रूप से शर्त्तवाले वाक्य के अन्त मे आता है; जैसे—कोहि म॰ थाजि आउं छ भन्या (यदि कोई मेरे पास आया), तं लाइ कसै ले बिह्या मा डाक्यो भन्या (यदि कोई तुम्हे भोजन के लिये बुलावे)। रूढ़ि के रूप मे यह 'भन्या' उस समय वाक्याश के अन्त मे

प्रयुक्त होता है, जब वह वाक्याश वास्तविक बात के स्थान पर काल्पनिक विचार व्यक्त करता है, जैसे—कुन छ जस गधाहा खाडल मा पर्यौं भन्या (वहाॅ कौन है जिसका घोडा गढ़े मे पड सकता है?)। नेपाली मे इस 'भन्या' का प्रयोग वहाँ भी होता है जहाॅ स्तरीय हिन्दी मे मुख्य क्रिया के आधार, कारण अथवा परिणाम को सूचित करने के लिये 'जबकि' का प्रयोग होता है, जैसे—उन्हेरु ले देखतै न देखुन भन्या (=वहाॅ देखते हुए नही देखते)।

शर्त्तसूचक वाक्यांश के काल

§९०५. शर्त व्यक्त करने वाले मिश्र वाक्यो की क्रिया के लिए प्रयुक्त कालो पर ध्यान देना चाहिए। निम्नलिखित नियम उल्लेखनीय है—क्रिया के घटित होने की तीन स्थितियाँ होती है—(१) सभव, (२) यथार्थ, और (३) असम्भव।

(१) शर्त्त के बारे मे संभावना व्यक्त की जा सकती है; जो पूरी हो सकती है और नही भी हो सकती है। इस स्थिति मे शर्त्तवाले वाक्याश की क्रिया तीन संभाव्य कालो मे से किसी एक मे, अथवा भविष्य काल मे और पूर्णतासूचक काल मे आती है। जब (क) शर्त के पूरा होने पर परिणाम निकलना आवश्यक हो तो मुख्य वाक्यांश की क्रिया सकेत काल मे आती है किन्तु जब शर्त (ख) केवल संभावना पर निर्भर हो तो उस समय क्रिया किसी सभाव्य काल मे ही आनी चाहिए।

उदाहरण क. कल जो जुरासिध चढ आवे तो प्रजा दुख पावेगी; 'यह तुम्हारे ही घर रहे तौ भी भली है'—इस वाक्य मे 'भली' के पश्चात् 'बात' शब्द का अध्याहार करना चाहिए; जौ तेहि आजु बध बिन आवौ—तौ रघुपति सेवक न कहावौ।

ख. जो इसी को मारूँ तो निर्भय राज करूँ। इसका प्रयोग संभाव्य भविष्य के आदरार्थक रूप में भी होता है। जैसे—जो आप इसे खोया चाहिये तो मै एक उपाय बताऊँ। सरलता से आशय समझने के लिए शर्तवाले वाक्य तथा अन्य वाक्य मे सभाव्य भविष्य काल का प्रयोग होता है। जैसे—जौ दिन प्रति अहार करु सोई—विस्व बेगि चौपट होई।

ग. शर्तवाले वाक्य मे सभाव्य भविष्यकाल के स्थान पर विधि का प्रयोग भी होता है, जैसे—सो कृपा कर कहो तो हमारे मन का सन्देह जाय।

स्मरणीय—(१) यह बात उल्लेखनीय है कि आधुनिक हिन्दी मे शर्त्तसूचक वाक्याश की क्रिया के कालों पर विशेष ध्यान नही दिया जाता। विशेष रूप से कविता मे एक काल के स्थान पर दूसरा काल प्रयुक्त होता है। नीचे जो उदाहरण दिया जा रहा है उसकी क्रिया सामान्य भविष्य काल मे आनी चाहिए किन्तु संभाव्य भविष्य काल का प्रयोग किया गया है—'जो इहि बरैं अमर सो होई' यहाँ 'होई' के स्थान पर आधुनिक प्रयोग के अनुसार 'होगा' का प्रयोग होना चाहिए।

(२) जहाँ शर्त के पूरा होने का विश्वास हो, फिर चाहे वह तीनो मे से किसी भी काल मे पूरी हो, या उसके पूरा होने मे सन्देह न हो तो आश्रित वाक्याश की क्रिया सामान्य भविष्यकाल अथवा सकेत-काल मे प्रयुक्त होती है। द्वितीय वाक्य मे भी उपर्युक्त स्थिति मे क्रिया सभाव्य अथवा सकेतकाल मे आती है।

उदाहरण—जो मै सहारा दूँगी तो भेट के फल मे से आधा लूँगी; जब मैं अब क्रोध करता हूँ तो काज बिगडेगा; जो तू ने नहीं लिया तो और कौन ले गया।

(३) तीसरी स्थिति मे शर्त्त और परिणाम एक-दूसरे के विरुद्ध होते है। इस स्थिति मे शर्त का पूरा होना असंभव रहता है। पूर्व वाक्य मे ऐसी शर्त का उल्लेख होता है जो क्रियान्वित नही होती और द्वितीय वाक्य मे ऐसा परिणाम आता है, जो क्रिया के क्रियान्वित होने पर निकल सकता था। प्रथम वाक्य की क्रिया सामान्यतया अनिश्चित अपूर्णकाल मे आती है, कही-कही सभाव्य पूर्णकाल मे भी प्रयुक्त होती है, सभाव्य अपूर्णकाल मे तो बहुत ही कम प्रयुक्त होती है। द्वितीय वाक्य की क्रिया सामान्यतया अनिश्चित अपूर्ण काल मे रहती है।

उदाहरण—जो मै उनसे कुछ माँगता तो वह देते; जो यह प्रसग चलता तो मै भी सुनता। निम्नलिखित शर्त्तसूचक मिश्र वाक्य मे 'कदाचित' से पहले 'जो' का प्रयोग नही हुआ है—'कदाचित किसी ने बतलाया न होता तौ भी हम जान लेते'।

क. कही-कही परिणामसूचक वाक्याश की क्रिया अपूर्ण काल मे आती है; जैसे—जो चाहता तो ला सकता था। परिणामसूचक वाक्याश मे कही-कही अस्तित्वसूचक क्रिया का भूतकालिक रूप 'था' अकेले प्रयुक्त होता है, जैसे—जो तुम मेरी सुनते तो अच्छा था, जो इस बात की भनक मेरे कान तक न पहुँची होती तौ मुझको इस पचायती से क्या काम था।

ख. कही-कही परिणामसूचक वाक्याश की क्रिया संभाव्य पूर्णभूत काल मे आती है; जैसे—जौ तू एक बार भी जी से पुकारा होता तौ तेरी वह पुकार तारो से पार पहुँची होती।

§९०६. सभी प्रकार के शर्त्तसूचक वाक्याशो मे शर्त प्रकट करने वाला सयोजक प्रायः लुप्त रहता है; जैसे—इसके समान वर मिले तो दे।

निम्नलिखित वाक्य मे परिणामसूचक वाक्याश 'तौ भी' के साथ आया है—'मैं रत्नो के ढेर उठा डालूँ तौ भी उचित हो। यहाँ मै एक रूढ वाक्य का उल्लेख करना चाहता हूँ जिसमे 'तो' के साथ क्रिया की पुनरुक्ति हुई है—'यह कारण हो तौ हो।'

क 'नही तो' अथवा इसके किसी पर्यायवाची नकारात्मक शब्द के साथ आने वाले वाक्य का पूरा परिणामसूचक वाक्य ही लुप्त हो जाता है, केवल निषेधवाची शब्द शेष रहता है। जैसे—'इसी समय जताया चाहिए नही तो क्या जानिये पीछे क्या दुख दे? रामायण की इस पंक्ति मे भी यह प्रयोग देखा जा सकता है—'सोइ रघुनाथ तुमहि करनीया न तरु .मैं न जियब; सुमुखि हो नत जीवन हानी, सहेउ कटोर बचन सठ तोरे-नाहित लै जातेउ सीतहि बरजोरे।

ख. कही-कही मुख्य वाक्याश मे आनुषगिक अव्यय 'तो' प्रयुक्त नही होता, शर्त सम्बन्धी संयोजक के साथ आनुषगिक अव्यय भी लुप्त रहता है। उदाहरण—'काम पडे अपना बल दिखाते है।' कविता मे इस प्रकार के प्रयोग बहुत मिलते है, जैसे—एक बार कैसेहुँ सुधि जानौ-कालहू जीति निमिष महँ आनौ।

§९०७. कही एक ही वाक्यांश समयवाची और शर्तसूचक दोनो प्रकार के वाक्यांशों का आशय देता है। इस स्थिति मे आश्रित वाक्य 'जब' के साथ आता है और मुख्य वाक्याश आनुषगिक 'तो' के साथ, जैसे—'जब वह आवे तो मैं कहूँ' इस वाक्य के प्रथमांश मे 'कहने की' शर्त्त व्यक्त की गई है और 'तो' कहने को व्यक्त करता है।

क. कई स्थलो पर कालवाची क्रियाविशेषण अकेला आता है और केवल 'तो' परिणामसूचक वाक्याश मे रहते हुए भी शर्त्त को व्यक्त करता है, जैसे—'उसका ध्यान छूटा तो उन्होने ध्यान कर जाना; एक दिन राजा परीक्षित आखेट को गये तो वहाँ देखा।'

सुविधा सूचित करनेवाला शर्त्त सम्बन्धी वाक्यांश

§९०८ सुविधासूचक वाक्याश भी शर्तसूचक वाक्याश का एक भेद है। शर्त्तसूचक वाक्यांश की क्रिया पर जो नियम लागू होता है, वही सुविधासूचक वाक्याश पर भी लागू होना चाहिए। आश्रित वाक्य 'यद्यपि' अथवा 'यदपि', 'जो भी' और केवल 'जो' के साथ आता है और इनके उत्तर मे 'तौ भी' 'परन्तु' अथवा 'पर' का प्रयोग मुख्य वाक्याश मे होता है। उदाहरण—यद्यपि वे पुरुष ज्ञानस्वरूप मानते है'तथापि उसकी ज्ञानस्वरूपता केवल नाममात्र की है, यद्यपि तपस्वी लोगो मे क्षमा बहुत होती है परन्तु जब उनको क्रोध आता है, यद्यपि असमजस भारी—तदपि बात इक सुनहु हमारी, जो अनेक जन्म अवतार ले बहुतेरा कुछ दीजिये तौ भी विद्या का पलटा न दिया जाए; कोई इस देह को पोषे पर यह कभी अपनी न होयगी।

क. कही-कही सुविधासूचक वाक्य मे 'चाहे' संयोजक के रूप मे आता है। इस चाहे के पश्चात् परिणामसूचक वाक्याश मे 'परन्तु' अथवा 'परन्तु' का कोई पर्यायवाची आता है; जैसे—चाहे अपनी सखियो की ओर ही देखा हो परन्तु मैंने यही जाना।

ख दोनों वाक्यो मे से सयोजक का लोप भी हो सकता है; जैसे—क्या हुआ जो अबकी लडाई मे हारे; यद्यपि इसके फूलने के दिन अभी नही आये है कैसी कलियो से लद रही है।

प्रश्नार्थक वाक्य

प्रश्नार्थक वाक्य की रचना

§९०९. प्रश्नार्थक वाक्य के सम्बन्ध मे अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। किसी प्रश्नार्थक शब्द के अभाव मे प्राय. प्रश्नवाची सर्वनाम—'क्या' (कविता मे 'कि' (की) अथवा 'किं') का प्रयोग होता है। इस प्रकार के प्रश्नवाची सर्वनाम का अनुवाद अँग्रेजी मे नही किया जा सकता। जहाँ कोई प्रश्न केवल उत्सुकता व्यक्त करता है और उस प्रश्न के सीधे उत्तर की संभावना न हो वहाँ क्रिया संभाव्य भविष्य काल मे प्रयुक्त होती है।

उदाहरण—अब इस गोकुल मे रहना कैसे बने, ऐसे लोग क्या कुछ भला कहाते है ?; यह अपमान कैसे सहा जायगा ? जहाँ प्रश्नवाचक का प्रयोग दृढ नकार की भाँति प्रयुक्त होता है, ऐसे वाक्यो का उदाहरण लीजिये—'मै तुझे क्या मारूँ', 'रामजननि हठ करब कि काऊ'; 'को तुम्ह हरिदासन्ह महँ कोई।'

§९१०. हिन्दी मे नकारार्थक वाक्यों के प्रति विशेष रुचि दिखाई देती है। उल्लासपूर्ण बातचीत मे सीधे कथन की अपेक्षा प्रश्नार्थक वाक्य अधिक पसन्द किया जाता है। ऊपर दिये गये विभिन्न मिश्र वाक्यों मे, विशेष रूप से जहाँ आश्चर्य व्यक्त किया जाता है, प्रश्नवाचक सर्वनाम के स्थान पर प्राय सकेत-वाचक सर्वनाम, अथवा अन्योन्य सम्बन्धी सर्वनाम, अथवा क्रियाविशेषण प्रयुक्त होता है। जैसे—जो तू यह न कहती क्या आधा फल न मिलता, जो वह स्नेह ही न रहा तो अब सुध दिलावे क्या होता है; उभय मध्य सिय सोहति कैसी—ब्रह्म जीव बिच माया जैसी, राजा युधिष्ठिर कहाँ आते है कि जहाँ मय दैत्य ने मन्दिर बनाये थे।

§९११. जहाँ स्वीकृतिसूचक उत्तर की अपेक्षा अथवा किसी प्रश्न की इच्छा की गई हो तो वाक्य के अन्त मे निषेधवाची अव्यय 'न' ('नही', कदापि नही) का प्रयोग होता है और बोलते समय ध्वनि को विशेष रूप से ऊँचा करते है। इस प्रकार का प्रयोग बोलचाल मे प्राय. होता है। जैसे—कहु राजापुत्र तो कुशल से है न ? अब तो प्रसन्न हुई न ?

नेपाली में प्रश्नार्थक वाक्य

§९१२. नेपाली मे भी उच्च हिन्दी की भाँति 'क्या' के प्रयोग से प्रश्नार्थक वाक्य बनाया जाता है। वैसे वाक्य के अन्त मे 'कि' जोडकर प्रश्नार्थक वाक्य अधिक बनते है। जिस प्रश्न का उत्तर स्वीकृति मे मिले उसके अन्त मे 'कि' से पहले 'न' आता है। जैसे—तूं मसीह होस कि (=क्या तुम मसीह हो ?); यो गालील को मानिस हो कि (=क्या यह गालील का बेटा है ?), तिम्हेरु चरा मन्दा बढ़िआ हो न कि (=आपका मूल्य अधिक नही है चटक पक्षी के मूल्य की अपेक्षा); खर्च्च को लेखा गरदे न कि (=क्या उसने व्यय का लेखो तैयार नही किया ?)। बाइबिल मे अधिकाश वाक्यो की भाँति इन वाक्यो मे भी 'न' सम्बन्धित क्रिया के साथ मिलाकर लिखा गया है।

शब्द विन्यास

शब्दों का सामान्य क्रम

§९१३. हिन्दी के सरल वाक्य मे अवयवो का क्रम इस प्रकार है (१) उद्देश्य, (२) विधेय, (३) अस्तित्व सूचक क्रिया, जैसे—मनुष्य पापी है, रामदास बुद्धिमान है। किन्तु सकर्मक क्रिया के कर्मवाच्य प्रयोग मे क्रिया का विकारी कर्त्ता सबसे पहले आता है, उसके पश्चात उद्देश्यवाची अविकारी कर्त्ताकारक अथवा कर्मकारक द्वितीय स्थान पर और अन्त मे विधेय की क्रिया, जैसे—उसने रस्सियाँ मँगाई।

नियमित क्रम का परित्याग

§९१४. अवधारण, छन्द तथा लय के कारण हिन्दी मे शब्द विन्यास के क्रम का उल्लघन किया जाता है। यहाँ तक कि लय के कारण गद्य मे भी अपेक्षित क्रम की उपेक्षा पाई जाती है। सामान्यतया वाक्य मे जब कोई शब्द अपने उपयुक्त स्थान से हट कर अन्यत्र प्रयुक्त होता है तो अवधारण उत्पन्न होता है, जैसे—तजती है पति को अकुलीनी नारी। धन्य, धिक्कार जैसे विधेयो पर भी यह नियम लागू होता है, जैसे धन्य है यह दिन, धिक्कार है मुझे। वाक्य के अन्त मे अस्तित्व सूचक क्रिया के पश्चात आनेवाली क्रिया भी यही अर्थ देती है, जैसे—तुम्हारा पुण्य है बहुत और पाप है थोडा, ये है ब्रह्मा रुद्र इन्द्र के ईस। अवधारणात्मक विधेय वाक्य के प्रारंभ मे आता है, जैसे—समर्थी वई है जो मा बाप की सेवा करते है, यहाँ सतानेवाला मनुष्य तौ कोई नही है। इसी प्रकार कृदन्त से बनने वाले कालो मे अवधारण के लिए कृदन्त को सहायक क्रिया से अलग प्रयुक्त करते है, इस वाक्य मे अवधारण के लिए कृदन्त वाक्य के आरंभ मे रखा गया है, जबकि सहायक क्रिया वाक्य के अन्त मे प्रयुक्त हुई है—आये तौ मृग के पीछे थे।

अस्तित्व सूचक क्रिया का स्थान

§९१५. वाक्य के आरभ मे प्रयुक्त अस्तित्व सूचक क्रिया अवधारण पर बहुत बल देती है, जैसे—है तो अच्छा। प्रथम वाक्यांश को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए ऐसा प्रयोग अधिक पाया जाता है; जैसे—है तो गरीब पर बुद्धिमान; है तो कुशल क्षेम ऐ पर...निपट भावित हो रहे है।

कर्म का स्थान

§९१६. सकर्मक क्रियाओं का कर्म नियमित रूप से क्रिया के पहले प्रयुक्त होता है, जैसे—वह हमको मारता है, यदि कर्म वाक्य के आरंभ मे प्रयुक्त होता है तो अवधारण का भाव उत्पन्न करता है;

जैसे—इस अजीत को मै कैसे जीतूगा। यदि कर्म वाक्य के पश्चात् आता है तो आरभ की अपेक्षा कम अवधारण प्रकट होता है, जैसे—जो ब्याहेगा इसे सो मारेगा मुझे। सकर्मक अथवा अकर्मक दोनो प्रकार की क्रियाएँ वाक्य के आरभ मे प्रयुक्त होकर अवधारण का भाव उत्पन्न करती हैं; जैसे—मारें कहा तोहि हम; सो देते क्यो नही ?

क यदि किसी क्रिया का गौण कर्म भी वाक्य मे आ रहा है तो उसे मुख्य कर्म से पहले प्रयुक्त करते है; जैसे—मैं तुमको यह किताब देता हूँ। किन्तु क्रिया का ध्येय बतानेवाला शब्द क्रिया के तुरन्त पहले प्रयुक्त होता है, जैसे—'वह हमको बचाने आया, किन्तु अवधारण के लिए यह क्रिया के पश्चात आता है; जैसे—यह असुर आया है प्रजा को दुख देने।

खंडन सूचित करने वाले वाक्यांश का क्रम

§९१७. खंडनात्मक वाक्य मे अवधारणार्थक एक शब्द प्रथम वाक्यांश के आरंभ मे और दूसरा द्वितीय वाक्यांश के अन्त मे आता है, जैसे—दुख सहा उसने हमको दिया सुख।

उद्‌गार वाची वाक्यांश का क्रम

§९१८. उद्‌गारवाची वाक्य का क्रम इस वाक्य के समान रहता है—'धन्य है परमेश्वर को।' कही कही अस्तित्वसूचक क्रिया लुप्त रहती है और क्रम बदल जाताहै , जैसे—तुलसी ऐसे पतित को बार-बार धिरकार।

९१९. सम्बोधन का शब्द नियमित रूप से वाक्य के आरभ मे आता है, किन्तु अवधारण के लिए वाक्य के अन्त मे भी प्रयुक्त होता है, जैसे—तैने यह क्या किया पापिनी।

सर्वनामवाची शब्दों का क्रम

§९२०. यदि एक ही वाक्य मे विभिन्न पुरुषवाची सर्वनाम सिलसिले से प्रयुक्त होते है तो उनका क्रम अंग्रेजी से भिन्न रहता है। प्रथम पुरुष, सदैव द्वितीय तथा तृतीय पुरुष से पहले आता है; जैसे—'हम तुमने क्या फल पाया', 'गुरुपत्नी ने हमे तुम्हे ईंधन लेने भेजा।'

विशेषण का स्थान

§९२१. विशेषण नियमित रूप से विशेष्य से पहले प्रयुक्त होता है। फिर चाहे यह विशेषणवाची शब्द विशेषण, कृदन्त अथवा सम्बन्धसूचक शब्द से ही क्यो न रचा गया हो। यदि उसका प्रयोग विशेष्य के पश्चात होता है तो वह विधेय का अंग बनता है और अवधारण का भाव उत्पन्न करता है। केवल सम्बन्ध सूचक विशेषण इस नियम का अपवाद माना जा सकता है जो फारसी के प्रभाव के कारण संज्ञा के पश्चात् भी प्रयुक्त होता है।

उदाहरण—वह बड़ी पुस्तक है, यह मेरी पुस्तक है; मैंने वहाँ **मरे हुए** सिंह को देखा। यदि इन विशेषणो का क्रम बदल दिया जाये तो ये उद्देश्य के स्थान पर विधेय के अवयव बनेंगे;- जैसे—वह बस्ती बडी है; यह पुस्तक **मेरी** है; मैंने वहाँ एक सिंह **मरा हुआ** देखा। इस वाक्य मे सम्बन्ध सूचक शब्द विधेय का अवयव बनकर प्रयुक्त हुआ है—'हमारा विचार नगर से चले जाने का है।'

§९२२. उत्तर वाक्य में आनेवाला सम्बन्धित शब्द विशेषण की भाँति प्रयुक्त होता है; जैसे—दशरथ का पुत्र राम; भवानी सुनार।

स्थिति और अवधारण

§९२३. विशेषण चाहे विशेष्य विशेषण के रूप मे प्रयुक्त हो चाहे विधेय विशेषण के रूप मे, जब वह विशेष्य से पृथक रहता है तो अवधारण प्रकट करता है।

उदाहरण—विधाता का भी कुछ तुम पर बस न चलेगा; कलियुग मे राजा उपजे है अभिमानी; हाथ मे धनुष बाण तौ है परन्तु सिर पर बन के फूलो की माला धरी है।

क्रियाविशेषण के अनुबन्धों की स्थिति

§९२४. शब्द अथवा वाक्याश के रूप मे प्रयुक्त क्रियाविशेषण और यौगिक कृदन्त विशेष्य के पहले प्रयुक्त होते है। इनका प्रयोग क्रिया और क्रिया के कर्म के मध्य भी हो सकता है। विशेष्य से जितनी दूर प्रयुक्त होते है, उसी अनुपात से उनमे अवधारण का भाव उत्पन्न होता है। विशेष्य के पश्चात अथवा सहायक क्रियाओ के योग से बनने वाले कालो मे दो क्रियाओं के मध्य इनका प्रयोग अवधारण के लिए होता है।

उदाहरण—शीघ्र जाओ, वह काशी मे रहता था, वह हमसे हर दिन कहता; तुम चलकर देखो, हर दिन वह हमसे कहता, तुम आओगे कब?; उसका स्वभाव कोमल बहुत है, इस गडे को छूना मत, यह कहो कि तुमने मुझे रोका क्यो था। इसी प्रकार सम्बन्धवाची क्रिया विशेषण अवधारण के लिए वाक्य के आरभ मे न आकर अन्त मे आता है। 'खयालो' मे इस प्रकार के वाक्य बहुत देखे जा सकते है, जैसे—कोई बात निश्चै न हो जब तक।

क आवश्यकता पड़ने पर अवधारणार्थक अव्यय 'ही' सामान्य भविष्य काल के प्रत्यय गा, गी आदि से पहले प्रयुक्त होता है। इस प्रकार के प्रयोग से यह ज्ञात नही होता कि क्रिया भविष्यकाल में होने वाली है, अपितु उस पर केवल जोर देना ही आवश्यक समझा जाता है। 'शकुन्तला' मे इस प्रयोग के अनेक उदाहरण मिलते है। जैसे—इनसे बाते तौ करूँ ही गा, राजा की आज्ञा तौ माने ही गी।

ख. अवधारण के लिए 'ही' अव्यय यौगिक कृदन्त के साथ जुडता है। कही कही यौगिक कृदन्त के प्रत्यय 'के' 'कर' आदि के साथ भी आता है। जैसे—मैं तो सम्हाल कर ही लाता था।

नकारार्थक अव्यय का स्थान

§९२५. जब सयुक्त क्रिया के साथ नकारार्थक अव्यय आता है तो उसका प्रभाव उस पद पर पड़ता है, जिसके साथ उपसर्ग की भाँति यह अव्यय जुडा हो, जैसे—मै नही लिख सकता हूँ, मैं लिख नही सकता हूँ। यदि प्रसग के कारण निषेध का ज्ञान हो तो यह प्रभाव कुछ कम हो जाता है, फिर भी इस तरह के वाक्यो में उसका कुछ न कुछ महत्व रहता ही है—'श्रीकृष्णचन्द्रजी मुख से तो कुछ न बोल सके, पर आखे डबडबाय ..देख रहे; यहाँ 'बोलने' पर बल दिया गया है, किन्तु अगले वाक्य मे 'सकना' पर बल पड़ता है, उसी पर निषेधार्थक अव्यय का प्रभाव पड़ा है—'मेरे चरण बीस बिस्वे थे अब कलियुग मे चार बिस्वे रहे इसलिये कलि के बीच मैं चल नहीं सकता।' इस वाक्य मे प्रतिबन्ध का भाव प्रसंग

से ज्ञात होता है, तुम अपनी बहन को .निकलने न दो, कुछ भिन्न प्रकार का अवधारण इस वाक्य मे मिलता है—'ऊषा को मन्दिर मे उठाय लाया और फिर न जाने दिया।'

क यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि कर्मवाच्य रूपों मे जब निषेध पर अधिक बल देना हो तो उपर्युक्त नियम के अनुसार निषेधवाचक अव्यय अनिवार्य रूप से सहायक क्रिया के पहले रखना चाहिए, जैसे—उस समय की सोभा कुछ बरनी नही जाती, मो पै चल्यौ नाहि जातु।

ख. नकारार्थक अव्यय ही नही एक अथवा एकाधिक शब्दो से संयुक्त क्रिया का विग्रह अवधारण के लिए किया जाता है, जैसे—हो तौ ऐसा ही गया हूँ।

समुच्चय बोधकों का स्थान

§९२६ समुच्चय बोधको के स्थान के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातो पर ध्यान दीजिये—

'भी' का प्रयोग सम्बन्धित शब्द के साथ होता है, जैसे—मेरा भी एक बेटा था; किन्तु—मेरा एक पुत्र **भी** पढता था, इन दोनो से भिन्न आशय को व्यक्त करने वाले 'भी' का प्रयोग देखिये—'मेरा एक पुत्र पढता भी था।

तो—अवधारण के लिए 'तो' का प्रयोग भी सम्बन्धित शब्द के तुरन्त पश्चात होता है; जैसे—मै तो जरूर आऊँगा। आनुषगिक अव्यय के रूप मे 'तो' का प्रयोग वाक्य के आरभ मे किया जाता है, जैसे—'जो आप आज्ञा करे तो हम जन्मभूमि देखि आवें।'

क. और (अरु, ओ, औ, वो), कि, परन्तु, किन्तु, वा, अथवा और या का प्रयोग दो ढग से होता है; (१) जो वाक्य इन अव्ययो के द्वारा उपस्थित किये जाते है, ये उनके आरभ मे प्रयुक्त होते है। (२) अथवा अनुबद्ध वाक्य के आरंभ मे इनका प्रयोग किया जाता है।

जो, या यदि, यद्यपि और तथापि नियमित रूप से वाक्य के आरभ मे प्रयुक्त होते है, केवल अवधारणार्थक शब्द इन समुच्चय बोधको से पहले आता है। उदाहरण—यह आदमी जो आवे भी तौ भी उससे क्या काम हो सके ?; वह राजा यद्यपि बहुत ही धनवान है तथापि किसी को भी कुछ देता नही।

§९२७. मिश्र वाक्य के विभिन्न सदस्यो के क्रम के सम्बन्ध मे ये बाते ध्यान मे रखनी चाहिएँ—

(१) अन्तिम सज्ञात्मक वाक्याश 'कि' और हेतुसूचक वाक्याश 'क्योकि' के साथ आता है। यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि 'क्योकि' का अँग्रेजी पर्याय 'बिकाज' (be cause) वाक्य के आरभ में प्रयुक्त नही होता। उदाहरण—मै इसलिये आया हूँ कि आपसे भेट होय; मुझसे इस युग मे रहा नही जाता क्योंकि शूद्र राजा हो अधिक अधर्म मेरे पर करेंगे।

क. किन्तु सम्बन्ध सूचक सर्वनाम के साथ प्रयुक्त अन्तिम और हेतु सूचक वाक्याश अवधारण के लिए मुख्य वाक्याश के पहले आता है। जैसे—तुम ऐसा उपाय करो जिससे जन्म सुफल होय।

ख. सम्बन्ध सूचक सर्वनाम 'जो' के साथ प्रयुक्त होनेवाला विशेषणवाची वाक्यांश अन्योन्य सम्बन्धी वाक्यांश से पहले आता है, किन्तु अवधारण के लिए वह अन्त मे प्रयुक्त होता है। जैसे—वह गुरु काम है जो दुख दूर कर सके; उस पुष्प विमान मे बैठें जो लका से आया था। अथवा अवधारण के लिए क्रम बदलने के कारण यह अन्योन्य सम्बन्धी वाक्य बनता है, इस उदाहरण से यह बात स्पष्ट होती है—'उस ऋषि का हृदय बड़ा कठोर होगा जिसने ऐसी सुकुमारी को ऐसा कठिन काम सौंपा है।

§९२८. क्रिया के स्थान, समय, रीति अथवा स्थिति सूचित करने वाले क्रियावैशेषणिक वाक्यांश मुख्य वाक्यांश के पीछे न आकर पहले आते हैं। किन्तु जहाँ मुख्य वाक्याश पर बल दिया जाता है वहाँ आश्रित वाक्य बाद मे और मुख्य वाक्याश पहले प्रयुक्त होता है।

क यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि शर्त्त सूचक वाक्याश अँग्रेजी की भाँति सदैव मुख्य वाक्याश. के पश्चात प्रयुक्त नही होता। विद्यार्थी को अग्रेजी के इस प्रकार के वाक्याशो के अनुवादो मे सावधान रहना चाहिए—he will go if you will अग्रेजी का यह क्रम हिन्दी के लिए उचित नही होगा। हिन्दी के मिश्र वाक्यो मे शर्तसूचक वाक्याश बहुत कम स्थलो पर अपवाद के रूप में ही द्वितीय सदस्य के रूप मे प्रयुक्त होता है।

ख. इस उदाहरण में मुख्य वाक्यांश अवधारण के लिए क्रियाविशेषण आश्रित वाक्यांश से पहले प्रयुक्त हुआ है—'हमने तो यह तभी जाना था जब श्री कृष्णचद्र ने. .ब्रह्म की रक्षा करी; 'प्यारे मनुष्यो को **पहुँचाने वहीं तक जाना चाहिए** जहाँ तक जलाशय न मिले।'

मिश्र वाक्यों का क्रम

§९२९. यह बात उल्लेखनीय है कि कविता मे छन्द के लिए उन सभी नियमों का उल्लघन किया जाता है; जो वाक्य के विभिन्न अवयवों के स्थान का निर्धारण करते है। स्थिति यह है कि समासित सज्ञाओ का क्रम भी बदल जाता है, पहली पंक्ति मे प्रयुक्त 'सयन' शब्द के साथ अन्त्यानुप्रास के लिए 'मयनमर्दन' के स्थान पर 'मर्दनमयन' का प्रयोग हुआ है। §१६४. मे उल्लिखित बहुवचन सूचित करने-वाले शब्द सम्बन्धित शब्द से पहले प्रयुक्त हुए हैं, जैसे 'देहिं गुन गारी' मे बहुवचन सूचक 'गुन' (गुण) शब्द 'गारी' से पहले आया है। कही कही परसर्ग भी सम्बन्धित सज्ञा से पहले आता है, जैसे 'त्रिवेणी माँझ' के स्थान पर 'माँझ त्रिवेनी'। विशेषणवाची शब्द भी विशेष्य से बहुत दूर प्रयुक्त हुए है; जैसे—रेनु भवसागर जिन कीन्ह यह। शर्त्तसूचक सयोजक सम्बन्धित वाक्याश के अन्त मे आया है, जैसे—'कोटि सिन्धु शोषक तव सायक यदपि'। और सयुक्तक्रिया की क्रियाएँ कवि की इच्छानुसार विग्रह के साथ दूर दूर प्रयुक्त होती है। विग्रह की गई सयुक्त क्रिया के उदाहरण देखिये §५६८' मे।

अध्याय १३

छन्दशास्त्र

छन्द शास्त्र का महत्व

§९३०. हिन्दी का छन्दशास्त्र आधारभूत बातो मे सस्कृत की छन्द प्रणाली से मेल रखता है। किसी आधुनिक भाषा मे हिन्दी के समान छन्दशास्त्र का विकास नही हुआ है। हिन्दी मे पद्य का इतना अधिक प्रचलन रहा है कि गद्य को अपवाद ही कहा जा सकता है। हिन्दी का गद्य विदेशी शासन के प्रोत्साहन और ईसाई प्रचारको के श्रम का ऋणी है। यह बात स्पष्ट है कि विदेशी लोग पराई भाषा मे पद्य नही लिख सकते थे। दूसरी ओर मातृभाषा के रूप मे हिन्दी बोलने वाले लेखक बिना अपवाद के पद्य लिखते थे। इन लोगो के परिश्रम के फलस्वरूप छन्द रचना की ऐसी प्रणाली विकसित हुई, जो विविधता ही नही आन्तरिक सौन्दर्य के कारण भी अनुपम है।

स्मरणीय—हिन्दी कविता को समझने तथा समझकर उसकी व्याख्या करने के लिए छन्दशास्त्र का सामान्य ज्ञान बहुत आवश्यक है। छन्दशास्त्र के सामान्य ज्ञान के बिना विद्यार्थी हिन्दी को समझने की बात तो दूर हिन्दी की सरल से सरल कविता को पढ भी नही सकता। छन्दशास्त्र का ज्ञान पाये बिना यदि कोई व्यक्ति लोगो के सामने कविता पढना चाहे तो वह उपहास का पात्र अवश्य बनेगा।

मात्रा और तुक

§९३१. अँग्रेजी कविता की स्वराघात प्रणाली के आधार पर हिन्दी की रचना को नही समझा जा सकता। ईसाई प्रचारको ने अंग्रेजी कविता के अनुकरण पर हिन्दी मे कविता लिखी है, किन्तु इस प्रकार की कविता स्वदेशी नही हो सकती। इस बात पर भरोसा करने का कोई कारण दिखाई नही देता कि भारतवासी अपनी प्रशसनीय छन्द प्रणाली के स्थान पर अग्रेजी की कठोर और लोचहीन प्रणाली स्वीकार कर लेगे। हिन्दी मे अँग्रेजी पिंगल के अनुसार जो कविता लिखी गई है वह क्षणजीवी सिद्ध होगी।

§९३२. शास्त्रीय ग्रीक तथा लेटिनभाषा की भाँति हिन्दी कविता का आधार भी 'मात्रा' है। मात्रा दो प्रकार की है—ह्रस्व और दीर्घ। शास्त्रीय ग्रीक, लेटिन तथा संस्कृत के विपरीत हिन्दी कविता मे 'तुक' अथवा अन्त्यानुप्रास का उपयोग होता है। अन्त्यानुप्रास दो पक्तियो को सम्बद्ध करता है। पक्ति के अन्तिम दो वर्णों की समानता को 'तुक' कहते है।

विशेष—मात्रा को ठीक ठीक समझने के लिए यह बात याद रखनी चाहिए कि जिन व्यंजनों मे कोई अन्य स्वर नही होता उनमें 'अ' अन्तर्भुक्त रहता है। गद्य मे यह अन्तर्भुक्त 'अ' अन्त्य व्यंजन मे सर्वत्र और मध्य व्यजन मे कही कही अनुच्चारित रहता है। कविता मे यह अन्तर्भुक्त 'अ' सर्वत्र उच्चारित होता है और छन्द मे इसकी मात्रा गिनी जाती है। उदाहरण के लिए गद्य मे 'बात' शब्द का उच्चारण 'बात्' होता है, किन्तु कविता मे इसका उच्चारण 'बात' ही होगा।[1]

---

[1] **देखिए, १४ (४)।**

§९३३. मात्रा दो प्रकार की है—ह्रस्व और गुरु। कविता मे दीर्घ मात्रा को 'ऽ' (गुरु) और ह्रस्व मात्रा को '।' (लघु) चिन्ह् से चिन्हित करते हैं। अंग्रेजी मे ह्रस्व स्वर और दीर्घ स्वर को क्रमश.'–' तथा '˘' चिन्ह् से अकित करते है। ह्रस्व तथा दीर्घ मात्रा के निर्धारण के लिए निम्नलिखित नियम है।

मात्रा के नियम

§९३४. नियम १. अ, इ, उ और ऋ स्वाभाविक रूप ऐ ह्रस्व और अवशिष्ट स्वर—आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ तथा औ दीर्घ स्वर है।

क. उल्लेखनीय बात यह है कि 'ए' मूलत. संयुक्त और दीर्घ स्वर है, किन्तु हम इस बात से परिचित है कि प्राकृत मे ह्रस्व 'एॅ' का प्रचलन था। प्राकृत के ह्रस्व 'एॅ' का प्रयोग बोलचाल के समय हिन्दी मे भी होता है। हिन्दी की कविता मे कई स्थलो पर 'ए' को ह्रस्व मानते है।

ख. 'ए' को ह्रस्व तथा दीर्घ मानने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए। निम्न स्थितियो मे 'ए' अनिवार्य रूप से दीर्घ रहता है—

(क) मूल रूप मे प्रयुक्त 'ए'; जैसे—बेटा।

(ख) प्रेरणार्थक रूप मे 'इ' का गुणीकृत रूप 'ए' जैसे √ फिरना के प्रेरणार्थक रूप √ फेरना मे।

(ग) दो पडौसी स्वरों की सन्धि से प्राप्त 'ए', जैसे—करहि > करइ > करे, घोड़हि > घोडे।

निम्नलिखित स्थिति मे 'ए' अनिवार्य रूप से ह्रस्व माना जाता है—

(क) जहाँ वह मूल ह्रस्व स्वर 'अ' अथवा 'इ' का प्रतिनिधित्व करता है; जैसे—जिहि के स्थान पर 'जेहि', 'रहउ' के स्थान पर 'रहेउँ।

(ख) आवश्यकतानुसार ह्रस्व माना जाता है, रामायण के सोरठे की यह पक्ति छन्द की दृष्टि से 'ए' के ह्रस्वत्व का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है—जेहि राखेउ रघुवीर ते उबरे तेहि काल महँ, छन्द के लिए इस पक्ति के 'जेहि' 'राखेउ' तथा 'तेहि' के 'ए' को ह्रस्व और शेष शब्दो का 'ए' दीर्घ माना जाएगा अन्यथा सोरठा के लिए निर्धारित २४ मात्राओ के स्थान पर २७ मात्राएँ होगी। इस चौपाई के 'जेहि' का 'ए' ह्रस्व और 'तेहि' का एकार दीर्घ माना जाएगा—'समय हृदय बिनवति जेहि तेही।' प्राकृत का बहु प्रचलित ह्रस्व 'ए' सर्वनामो के विकारी कारक के रूपों और क्रिया के कालिक प्रत्ययों के पूर्व प्रयुक्त होने वाले संयोगी स्वर के रूप मे मिलता है, जैसे—तेहि, चलेउ, करेसु, आदि।[1]

§९३५. नियम २. सयुक्ताक्षर से पहले आनेवाला ह्रस्व स्वर दीर्घ माना जाता है। इस नियम के अनुसार 'बुद्धि' का 'उ' और 'प्रत्यक्ष' शब्द के 'प्र' तथा 'त्य' मे स्थित 'अ' दीर्घ माने जाएँगे।

अपवाद १. बहुवचन के प्रत्यय 'न्ह' अथवा 'न्हि', और कही कही 'म्ह' और 'ह्म' से पहले का ह्रस्व स्वर दीर्घ नही माना जाता; जैसे—मुनिन्ह, तुम्ह, और ब्रह्म के सभी ह्रस्व स्वर ह्रस्व ही माने जाएँगे।

अपवाद—२. जिस संयुक्ताक्षर का द्वितीय व्यजन 'र' हो, उसके पहले का स्वर आवश्यकतानुसार 'दीर्घ' अथवा 'ह्रस्व' माना जाता है; जैसे—'सप्रेम' के 'स' का 'अ' आवश्यकतानुसार दीर्घ अथवा ह्रस्व माना जाएगा। स्मरणीय—सस्कृत मे शब्द का अन्त्य स्वर उस समय भी दीर्घ माना जाता है, जबकि उसके पश्चात आने वाले शब्द का प्रारंभ सयुक्ताक्षर से होता है; किन्तु हिन्दी के कवि सामान्यतया ऐसा नहीं करते।

---

[1] कुछ क्षेत्रीय बोलियों में प्रयुक्त हृस्व 'एॅ' (दे०, §३, ख-घ) से इस 'एॅ' की तुलना कीजिए।

§९३६ नियम—३. अनुस्वार तथा विसर्ग से युक्त ऐसा ह्रस्व स्वर दीर्घ मान लिया जाता है, जो पूर्ववर्ती व्यंजन मे सम्मिलित रहता है। उदाहरण के लिए दु ख, सग और लिंग इन तीनो शब्दों मे विसर्ग तथा अनुस्वार से पूर्ववर्ती उ, अ तथा इ दीर्घ माने जाते है। इस प्रकार चरणान्त मे आनेवाले अनुस्वार के कारण पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ माना जाता है, जैसे—अय, नमामय।

अपवाद—जैसा कि अनेक स्थानो पर देखा जाता है, जब अनुस्वार अनुनासिक के स्थान पर आता है तो पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ नही होता; जैसे—भवर, करहिंगे, मुह इन तीनो शब्दो मे अनुस्वार का प्रयोग अनुनासिक के स्थान पर हुआ है, अत. इन तीनो शब्दो मे अनुस्वार से पहले अ, इ तथा उ ह्रस्व ही माने जाते है।

मात्रा

§९३७. छन्द की ध्वनि सम्बन्धी इकाई को मात्रा कहते है। मात्रा ह्रस्व स्वर के उच्चारण मे लगने वाले काल को व्यक्त करती है, जैसे अ, इ, उ एकमात्रिक स्वर है। सभी दीर्घ स्वर तथा सयुक्त स्वर द्विमात्रिक स्वर है। स्वरो के एकमात्रिक तथा द्विमात्रिक स्वरूप को सावधानी से समझ लेना चाहिए। उदाहरण के लिए तप, ताप तथा तपस्वी शब्द क्रमश, ऽ+ऽ - २; ऽ+। – ३, और ।+ऽ+ऽ=५ मात्राएँ रखते है। इसी प्रकार—'काम क्रोध मद लोभ की' इस अश मे १३ मात्राएँ है।

स्मरणीय—कुछ पुस्तकों मे 'मात्रा' के लिए 'मत्त' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। 'कल' शब्द का प्रयोग भी इसी अर्थ मे होता है।

छन्द सम्बन्धी सुविधा

§९३८. हिन्दी पिंगल व्याकरण की दृष्टि से बहुत-सी सुविधाएँ प्रदान करता है। पिंगल के कारण मिलनेवाली सुविधाओ का उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

(१) दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व और ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ स्वर का प्रयोग हो सकता है।

क. यह सुविधा अन्त्यानुप्रास अथवा चरण की अपेक्षित मात्राओ की पूर्ति के लिए सामान्यतया पदान्त के स्वर पर लागू होती है; जैसे—'हनुमान' के स्थान पर हनुमाना (ऊपर के पादान्त में प्रयुक्त 'जाना' के तुक के लिये), 'हानि' के स्थान पर 'हानी' (ऊपर के चरण के अन्त मे प्रयुक्त 'पहचानी' शब्द के अन्त्यानुप्रास के लिए, इसी प्रकार अपेक्षित मात्राओ की पूर्ति के लिए 'बहुत' के स्थान पर 'बहूता', 'दूत' के स्थान पर 'दूता', और 'छोह' के स्थान पर 'छोहू' का प्रयोग मिलता है।

ख. शब्द का आरभिक अथवा मध्यवर्ती स्वर भी कहीं कही ह्रस्व बनता है। ह्रस्वीकरण की यह प्रवृत्ति चरण के मध्यवर्त्ती शब्द में भी पाई जाती है, जैसे—'ठाकुर' के स्थान पर 'ठकुर', 'परोसन' के स्थान पर 'परुसन', 'आनन्द' के लिए 'अनन्द', 'सूखिगौ' के स्थान पर 'सुखिगौ', 'जानहिं' के स्थान पर 'जनहिं', 'कामनीय' के स्थान पर 'कमनीय' का प्रयोग हुआ है।

(२) अन्त्यानुप्रास के लिए अनुस्वार का आगम अथवा लोप होता है; जैसे—'बायें' के अनुप्रास के लिए बराये, 'सीव' के अनुप्रास के लिए 'सुग्रीवं' और 'काऊ' के अनुप्रास के लिए 'दांव' के स्थान पर 'दाऊ'।

(३) शब्द के मध्यवर्त्ती अथवा अन्य दीर्घ तथा सयुक्त स्वर विग्रहित होकर मूल स्वरो में परिवर्त्तित होते है, जैसे—'भयातुर', के लिए 'भयआतुर'; 'कहे' के लिए 'कहइ', 'मिले' के स्थान पर 'मिलइ'; 'करे' के स्थान पर 'करइ', 'पैठिहौ' के लिए 'पइठिहौ' आदि। दीर्घ अथवा संयुक्त स्वर के विग्रहित होने

पर दूसरा स्वर प्राय दीर्घ बनता है, जैसे—करई, परई। कही कही पहला स्वर दीर्घ बनता है, इस पंक्ति मे 'खाउ' के अनुप्रास के लिए 'उडौ' के स्थान पर 'उडाउँ' का प्रयोग हुआ है—लरिकाई जहं जह फिरहि तह तह सग उडाउ। बहुत कम स्थलो पर विग्रहित दोनो स्वर दीर्घ बनते है, उदाहरण के लिए चौपाई की इस पक्ति मे 'उपाई' के तुक के लिए 'सके' के स्थान पर 'सकाई' आया है, 'जिम थल बिनु रहि न सकाई।'

(४) एक स्थान मे उच्चारित स्वर दूसरे से उच्चारित स्वर मे भी बदलता है; जैसे इस पंक्ति मे 'देय' के स्थान पर 'देयी' शब्द आया है—'काहि कहै केहि दूषन देयी।'

(५) पक्तिपूर्त्ति अथवा अनुप्रास के लिए सामान्य रूप से 'रे' अथवा कोई अन्य वर्ण प्रयुक्त होता है, जैसे—'बडे' और 'कर्त्ता' के स्थान पर 'बड़ेरे' तथा 'करतार'।

(६) पूर्ववर्ती स्वर के द्विमात्रिक उच्चारण के लिए कही कही व्यजन का द्वित्व होता है; जैसे—दमकहि, चमकहि आदि के स्थान पर दमक्कही, चमक्कही, कट्टहि, दपट्टहि।

(७) पूर्ववर्त्ती स्वर के दीर्घ उच्चारण के लिए प्राय अनुस्वार का आगम भी होता है; बीम्स ने इसके लिए चन्दबरदायी के पृथ्वीराज रासो से यह उदाहरण दिया है—'प्रथम भुजगी सुधारी ग्रहन', इस पक्ति मे तृतीय अनुस्वार को छोड कर अन्य अनुस्वार छन्द के लिए प्रयुक्त हुए है।

स्मरणीय—ऊपर जो उदाहरण दिये गये है, उनमे से अधिकांश पुरानी भाषा से सम्बन्धित है। यहाँ छन्द के लिये उद्धृत किये गये है।

(८) तुक तथा अपेक्षित मात्राओ के लिए अन्विति के नियमो का प्राय. उल्लघन होता है, जैसे स्त्रीलिंग के स्थान पर पुल्लिग और पुल्लिग के स्थान पर स्त्रीलिग, एक वचन के स्थान पर बहुवचन और बहुवचन के स्थान पर एकवचन का प्रयोग मिलता है, जैसे—'किया' के स्थान पर 'किये', 'गाई' के स्थान पर 'गावा'। 'पाओ' के स्थान पर 'पाई' आदि।[1]

यति

§९३९. यति दो प्रकार की है—भाव से सम्बन्धित और लय से सम्बन्धित। अर्द्धयति के लिए '।' तथा पूर्ण यति के लिए '।।' चिन्ह प्रयोग मे लाया जाता है। लय सम्बन्धी यति विभिन्न छन्दो मे पृथक पृथक स्थान पर आती है। उसके लिए कोई चिन्ह नही है।

§९४०. हिन्दी कविता मे प्रयुक्त 'पद' तीन प्रकार के है—एकवर्णी, द्विवर्णी तथा त्रिवर्णी। आवश्यकतानुसार तीन से अधिक वर्णवाले समासित पद भी प्रयुक्त होते है। उपर्युक्त तीनों प्रकार के पदों में से प्रत्येक के अनेक भेद है। इन भेदों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है।[2]

---

[1] देखिए § ८७५।

[2] मैंने यह उचित समझा कि विभिन्न प्रकार के पदों के लिए हिन्दी नामों का प्रयोग ही किया जाए। जब तक छात्र इन नामों से अच्छी तरह परिचित न हो जाय तब तक इन हिन्दी नामों का प्रयोग आवश्यक है। इन नामों को स्मरण रखे बिना पिंगल की किसी भारतीय पुस्तक का एक पृष्ठ समझना भी कठिन है।

		नाम	सकेते	प्रतीक	अग्रेजी नाम	चिन्ह
एकवर्णी	१	गुरु	ग	S	Long,	–
	२.	लघु	ल	I	Short,	˘
द्विवर्णी	१.	करण	गग	SS	Spondee,	– –
	२	ताल	गल	SI	Trochee,	– ˘
	३	ध्वज	लग	IS	Iambus,	˘ –
	४	सुप्रिय	लल	II	periambus,	˘ ˘
त्रिवर्णी	१.	मगण	म	SSS	Molussus,	– – –
	२.	नगण	न	III	Tribrach,	˘ ˘ ˘
	३	भगण	भ	SII	Dactyl,	– ˘ ˘
	४.	यगण	य	ISS	Bacchic,	˘ – –
	५.	जगण	ज	ISI	Amphibrach,	˘ – ˘
	६	रगण	र	SIS	Cretic,	– ˘ –
	७.	सगण	स	IIS	Anapest,	˘ ˘ –
	८.	तगण	त	SSI	Antibaochic,	– – ˘

क. दीर्घ स्वर हिन्दी में 'गुरु' ('हारु' भी) और ह्रस्व स्वर 'लघु' ('मेरु' भी) कहाता है।

ख. त्रिवर्णी पद के आठो भेद सामूहिक रूप से 'गण' कहाते है।

पदों का उल्लेख

§९४१ यह बात उल्लेखनीय है कि छन्द सम्बन्धी हिन्दी पुस्तको मे 'पद' को व्यक्त करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है; उदाहरण के लिए 'भजन' से तीन गणो का तात्पर्य चलता है—भगण, जगण और नगण; इस प्रकार 'सरम' का तात्पर्य है—सगण, रगण, मगण।

§९४२. तीन से अधिक वर्ण वाले पद मुख्यत जातिछन्द मे प्रयुक्त होते हैं।[1] इन अनेक वर्णी पदो की मात्राओं को भी ऊपर दिये गये एकवर्णी, द्विवर्णी और त्रिवर्णी पदो मे विभक्त किया जाता है, अत इनके लिए किसी स्वतत्र नाम की आवश्यकता नही है।

§९४३. छन्द के दो भेद है—वृत्त छन्द और जाति छन्द।

§९४४. (१) वृत्त छन्द में प्रत्येक चरण अथवा पक्ति की मात्राएँ ही निश्चित नही होती, उनका क्रम भी निर्धारित रहता है। इसीलिए इस छन्द को वार्णिक छन्द भी कहते है।

(२) जाति छन्द मे प्रत्येक चरण अथवा पंक्ति की मात्राएँ निर्धारित रहती है।

---

[1] देखिए § ९४४

(१) वृत्त छन्द

वृत्त छन्द का क्रम

§९४५. प्रत्येक वृत्त छन्द मे चार चरण अथवा पाद होते है। इस छन्द के तीन भेद है—(१) सम, (२) अर्द्ध सम, (३) विषम। इन तीनो भेदो की परिभाषा इस प्रकार है—

(१) समवृत्त के प्रत्येक चरण मे समान मात्राएँ होती है।
(२) अर्द्धसमवृत्त के प्रथम तथा तृतीय और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण मे समान मात्राएँ होती है।
(३) विषम वृत्त के प्रत्येक चरण मे भिन्न सख्या की मात्राएँ होती है।

स्मरणीय—वृत्त छन्द के प्रत्येक चरण की मात्राएँ गिनी जाती है, अधिकांश छन्दों मे मात्राएँ भिन्न प्रकार से प्रयुक्त नही होती। फिर भी इस छन्द की विविध जातियाँ पदो की भिन्नता पर निर्भर है।

§९४६. भारतीय छन्द शास्त्रियो ने प्रत्येक चरण की मात्राओ के आधार पर समवृत्त के अनेक वर्ग बताये है। समवृत्त का प्रथम वर्ग २६ भेदों मे विभक्त है। प्रत्येक भेद का अपना स्वतंत्र नाम है।

उदाहरण के लिए समवृत्त छन्द का तृतीय वर्ग 'मध्या' कहाता है, इसका प्रत्येक चरण त्रिवर्णी रहता है। इसका २५वाँ वर्ग 'अति शर्करी' है, जिसके प्रत्येक चरण मे १५ वर्ण है।

§९४७. प्रत्येक वर्ग की निर्धारित मात्राओ के ह्रस्व दीर्घ के क्रम मे परिवर्त्तन के कारण अनेक छन्दो की रचना होती है। इस दृष्टि से समवृत्त के द्वितीय वर्ग मे चार प्रकार के छन्द है—(१) – –; (२) ˘ ˘ ; (३) ˘ , (४) – ˘ ; इसी प्रकार समवृत्त छन्द के तीसरे वर्ग में ८ प्रकार के छन्द मिलते है—

(१) – – – ; (२) ˘ ˘ ˘ ; (३) – ˘ ˘ ; (४) ˘ – – ;
(५) ˘ – ˘; (६) – ˘ – ; (७) ˘ ˘ – ; (८) – – ˘ ।

स्मरणीय—अधिक वर्ण वाले लम्बे छन्दो मे मात्राओ का संभावित क्रम कई ढग से हो सकता है। प्रत्येक वर्ग के अन्तर्गत भारतीय छन्दशास्त्रियो ने प्रस्तार मे मात्राओं के संभावित क्रम से बनने वाले छन्दों का युक्तियुक्त निर्देश किया है। इसी तरह भारतीय छन्द शास्त्रियो के प्रयत्न के फलस्वरूप मात्राओं के किसी क्रम से बनने वाले अपेक्षित 'नष्ट' का निश्चय भी प्रस्तार से किया जा सकता है, किन्तु प्रस्तार, नष्ट आदि के सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी व्यावहारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नही है। जो विद्यार्थी इस सम्बन्ध मे अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते है, उन्हे भारतीय लेखको द्वारा लिखी गई पुस्तको का अध्ययन करना चाहिए।

§९४८. जिन समवृत्त छन्दो मे २६ से अधिक मात्राएँ होती है, उन सबको 'दंडक' नामक २७वे वर्ग मे रखा गया है। दंडक छन्द के ९९९ भेद बताये गये है।

§९४९. अन्त मे मै इस बात का उल्लेख करना चाहता हूँ कि समवृत्तो मे प्रथम तथा द्वितीय, और तृतीय तथा चतुर्थ पक्तिहें मे तुक मिलता है।

समवृत्त छन्द के उदाहरण

§९५०. नीचे प्रत्येक वर्ग के महत्वपूर्ण छन्दो के उदाहरण दिये जा रहे हैं। तीसरा और चौथा चरण प्रथम तथा द्वितीय चरण के समान होता है, अत. स्थान की कमी के कारण पाँचवें वर्ग के पश्चात उदाहरण मे केवल प्रथम तथा द्वितीय चरण ही दिये गये है।

वृत्त अथवा वर्णं छन्द

१. समवृत्त

वर्ग १. उक्था

छन्द	प्रत्येक चरण	उदाहरण
श्री	गग	जै।।हैं।।श्री।।की।।

वर्ग २. अत्युक्था

मधु	लल	तिय।।जिय।।बधु।।मधु।।
मही	लग	रमा।।समा।।नही।।मही।।
सारु	गल	ऐनि।।नैनि।।चारु।।सारु।।

वर्ग ३. मध्या

ताली (नारी)	म	हे स्वामी।।हौ कामी।।तू दाता।।है त्राता।।
कमल	न	चरन।।वरन।।अमल।।कमल।।
मदर	भ	धावत।।ल्यावत।।चदर।।मदर।।
शशी	य	भवानी।।सुवानी।।सुने जो।।कहे सो।।
नरिंद	ज	सम्हारु।।सवारु।।परिंद।।नरिंद।।
मृगी या प्रिया	र	है खरो।।पत्थरो।।तो हिया।।री प्रिया।।
रमण	स	धरनी।।बरनी।।रमनी।।रमनी।।
पंचाल	त	नाचन्त।।गावन्त।।दै ताल।।पंचाल।।

वर्ग ४. प्रतिष्ठा

कन्या अथवा तीर्न्ना	मग	हे कर्त्तारा।।मेरे भारा।।तू ही टालै।।मोही पालै।।
समुही अथवा कला	भग	भामिनी जो।।कामिनी सो।।हानि करे।।प्रान हरे।।
मुद्रा	थल	भाजै राम।।सरै काम।।न छापाहि।।न मुद्राहि।।
कुमारिका	जग	करो कृपा।।दया मया।।न छोडिये।। न मारिये।।
राम	सग	जग माही।।सुख नाही।।तजि कामै।।भजि रामै।।
बुद्धि	जल	भ्रमै तजि।।प्रभू भजि।।टरे दुख।।मिले सुर।।
धारी अथवा वार	रल	नाम तोर।।मुक्ति मोर।।मोर भार।।तू उतार।।
बीर	सल	हरु पीरा।।अरु भीरा।।वर बीर।।रघुबीर।।

वर्ग ५. सुप्रतिष्ठा

सम्मोहा	मगग	काधा की बानी।।राधाजू मानी।। मानी तो मानी।। मेरी का हानी।।

छन्द	प्रत्येक चरण	उदाहरण
जमक	नलल	श्रुति कहहि।।हरिजनहि।।छुवत नहि।।जमक वहि।।
हँसी अथवा पंक्ति	भगग	तारक ईसा।।देत असीसा।।भारत द्रोही।।पालतमोही।।
विष्णु	भलल	दास जगत।।झूठ लगत।।याहि तजहि।।ईश भजहि।।
विलास	जगग	कृपा अपानो।।मुही दिखानो।।कुचाल म्हारो।। तुही सिधारो।।
प्रिया	सलग	करहु दाया।।करुणामया।।मनरंजना।। दुखभंजना।।
हारित	तगग	तो मानुभारी ।। ठाने पियारी ।। सौते सुखारी होते हमारी ।।

वर्ग ६. गायत्री

शेषराज	मम	क्यौरे जाने दो तो।।राधा माधो हो तो।।
सोमकुल	मस	क्यौ रे मानत है।।आली जानत है।।
शशिभृता	नम	कहत राधा जू।।सुनहु काधा जू।।
शशिवदना	नय	शरण तिहारी।।चरण निहारी।।
कामलता	भय	भावत न तोरी।।बात सुन गोरी।।
शशिवदना	नय	शरण तिहारी ।। चरण निहारी ।।
कामलता	भय	भावत न तोरी।। बात सुनि गोरी।।
मालती	जज	करो मत मान।। तजो यह बान।।
विमोहा	रर	जाउंगी जान ले।।स्याम हे मान ले।।
तिलक	सस	प्रभु के चरणा।। जग के शरणा।।
तनुमध्या	तय	देखो छवि भारी।।सो है अति सारी।।
वसुमति	तस	आई शुभ घरी।।जन्मे प्रभु हरी।।

वर्ग ७. उष्णिक

सुभग	मभग	मानो मानो हिय से।।जानो जानो जिय सो।।
मधुमति	ननग	जग जनम लियो।।नहि भजन कियो।।
शीर्षं रूप	भभग	मारग है भ्रमणा।।क्यौ न भजो चरणा।।
कुमार ललिता	जसग	कहाँ लगि तिहारी।।करो प्रभु बिचारी।।
मभानिका	रयग	स्याम आज आए हो।।ग्वाल बाल धाये हो।।
समानिका	रजग	भक्ति मुक्ति बुद्धि दा।।ज्ञान देहु सारदा।।
हसमाला	सरग	अब की कलोल ही ।। तब की भई सही ।।
चूडामणि	तभग	जाना हमैं अब है।।लेखा उहाँ सब है।।

वर्ग ८. अनुष्टप्

छन्द	प्रत्येक चरण	उदाहरण
हसरुत	मनगग	देखो आवत बिहारी।।कैसो देखत निहारी।।
स्वंजा	मभगग	जानी जानी मठुराई।।देखी देखी चतुराई।।
तुगा	ननगग	चरण शरण तेरे।।रहत न मन मेरे।।
विद्युन्माला	भभगग	आवत देखो री प्यारी।।लावत माला औ सारी।।
चित्रपदा	भभगग	मानत क्यो न कन्हाई।।आवत है नियराई।।
नारच	भरलग	क्यो प्रभु छोडतो मुझे।।क्यौ रिसि भावतो तुझे।।
माणवक	भतलग	प्रीति करो तो सबसे।।भक्ति करो तो लब से।।
प्रमाणिक	जरलग	परेश तोहि मानिके।।नमो सुचित्त ठानिके।।
मल्लिका	रजगल	जान देहु मोहि आज।।लाय देउंगी वियाज।।

वर्ग ९. बृहती

तोमर	सजज	प्रभु ईश हे प्रियनाथ।।जग मे रहो मम साथ।।
मणिबन्ध	भमस	चेत करो प्यारे अब ही ..बेगि तजो साधो सबही।।
रूप माली	ममम	मानो मानो मानो री प्यारी।। जानो जानो जानो री सारी।।
सारगिक	नयस	भजन करो तू हिय मे।। मद न करो हे जिय मे।।

वर्ग १०. पंक्ति

मत्ता	मभसग	देखो देखो कहन न मानी।। आवो आवो हम नहि जानी।।
मनोरमा	नरजग	धरहु जेहि हेतु साधना।। करहु तेहि हेतु याचना।।
हंसी	मभनग	देखो देखो जसमति चली।। पीछे पीछे सब सखि भली।।

वर्ग ११. त्रिष्टुप

भ्रमर विलसिता	मभन लग	बंशी की शब्द सुनि सब चली।। गोपी गोपी सब निकरि मिली।।
मालती	इम+गग	कान्हा की बानी राधा साँची जानी।। जानी तो जानी मेरी नाही हानी।।
रथोद्धता	रनरलग	पूछि लेहु अब राधिका अली।। स्याम आवत चलो चलो भली।।

छन्द	प्रत्येक चरण	उदाहरण
इन्द्रवज्रा	तत जगग	राधे तिहारो अब तोरि डारी।। माला बिथारी वह आज रारी।।
चपला	भभजलग	कुजन मे सखि अबै चलियो।। बेणु बजावत जहाँ चलियो।।
दोधक	भभभगग	आवत आज निहाल बिहारी।। देखत साज निकारि सुधारी।।

वर्ग १२. जगती

छन्द	प्रत्येक चरण	उदाहरण
जगधर माला	मभसम	आली राधे करत बिहारी रारी।। देखो देखो सब सखि देती गारी।।
तोटक	सससस	भुजदड प्रचंड प्रताप बलं खलबृन्द निकन्द महाकुशल
प्रभा	ननरर	भजन करहु आज साधो तजो।। रहहु मगन साथ प्यारे सजो।।
प्रियंवदा	नभजर	तिय सरोजनयनी प्रियबदा।। रहति सो नयन मे अली सदा।।
भुजग प्रयात	४य	चलो आज देखो भले कान्ह आयो।। लसे मोर पखी छबीलो सुहायो।।
मोदक	४भ	देखहु आज रमापति आवत।। बालन को सब खेल सिखावत।।
मेनावली	४त	प्यारी तजो मान आवो करो गार।। आली धरो ध्यान पावो बडो दान।।

वर्ग १३. अति जगती

छन्द	प्रत्येक चरण	उदाहरण
एकावली	भन जजल	देखहु समय निहाल भजो अब।। तारक शरण निहारत जो सब ।।
कलिहंस	सजससग	अब देहु कान्ह सब चीज हमारी।। हम लीन नाहि वह वेणु तुमारी ।।
प्रभावती	तभसजग	कैसो सुहात सबन को बिसारनो।। देखो न भावत नर को बिचारनो।।
मजुभाषिणी	सज सजग	तबको तुमै मुरलिया दई दई।। अब हो कहा करहुगे लई लई।।
माया	मतयसग	देखो देखो जात कन्हाई ब्रज मे रे।। छोडो छोडो तो चतुराई मग मे रे।।

वर्ग १४. शर्करी

छन्द	प्रत्येक चरण	उदाहरण
अपराजिता	ननरसलग	चरण शरण केहि कारण त्यागिहौ।। जग जनमत सोई मारन भागिहौ।।
इदुबदना	भजसनगग	भक्ति बिनु युक्त नर नाहक पधारो।। शक्ति नहि भक्ति बिनु ज्ञान नहि भारो।।
बसंततिलका	तभजजगग	मानो सखी कहत स्याम चलो चलो री।। देखो चली बचन मान गली गली री।।

वर्ग १५. अतिशर्करी

छन्द	प्रत्येक चरण	उदाहरण
चन्द्रलेखा	मरमयय	देखो देखो हमारी बनी सखी ने न मानी।। जाओ जाओ कुमारी राधा करी बेइमानी।।
भमरावली	ससससस	रघुनाथ रमापति देहु हमे शरणा।। सब छाडि गहो मधुसूदन चरणा।।
मालती	ननमयय	करहु अब बिहारी नाथ मेरी बिचारी।। सुनहु मम मुरारी पाप सारो बिसारी।।

वर्ग १६. अष्टि

छन्द	प्रत्येक चरण	उदाहरण
चंचला	रजरजरल	छोडि देहु मोहि कान्ह बार बार मै पुकारि।। जायके कही अवश्य कंस राज से विचारि ।।
नाराच	जरजरजग	गली गली छिपी फिरै लला अली नहीं मिली।। रहो रहो इहाँ सखी कहाँ गयो भली छली।।
वाणिनी	नजभजरग	चलत निहारि माधव तिहारि बात मानी।। समुझ गई सबै कहत आज नाहिं जानी।।

वर्ग १७. अत्यष्टि

छन्द	प्रत्येक चरण	उदाहरण
पृथ्वी	जभजसयलग	चलो सकल गोपिका लखन आज आई अली।। करो जवन काम छोड़ि सब साथ आओ चली।।
मन्दाक्रान्ता	मभनततगग	ब्रह्मा ध्यावै चरण दिन राती कहाँ का बिचारी। ध्यावै जा के पद कमल योगी यती सो पुरारी।।
मोहन	यरसरसलग	पुकारी टेरिकै सबरी खाइले नहिं बाघं है।। बिमारो काम को जब सों मारने अब जात है।।
हरिणी	नसमरसलग	करहु अब स्वामी दीनानाथ मारग शोधिये।। तजहु अब मोकौ नाही प्राणनाथ सुहेरिये।।

वर्ग १८. धृति

छन्द	चरण	उदाहरण
चर्चरी	रसजजभर	फाग खेलत आज माधव बाग मे सब साथ ले।। गोपिका सब रंग छोडत कुंकुमागुरु हाथ ले।।
नाराच	ननरररर	करहु कवन मैं बिहारी मुरारी बुराई कहो।। कहहु तुम सप्रेम मेरी सदा लो भलाई चहो।।
मंजीरा	ममभमसम	सोहै कैसौ राधा माधव आली आवत टेरो टेरो।। आगे आगे कान्हा झूमत पीछे राजकुमारी मेरो।।

वर्ग १९. अतिधृति

शार्दूल विक्रीडित	मसजसततग	रानी श्री यसुदा पुकारत अरी राधा कहाँ तू गई।। राधा हेरत कुंज मे सुनुं अली काहू न वाको लखी।।
झूलना	सजजभरसल	करुणानिधान कृपाल माधव देखिये मम रीत।। जगजीवना लखि पाद पकज सेइ गावत गीत।।

वर्ग २०. कृति

गीत	सजजभरसलग	जग छेम-कारण भक्तपालन साधु वृन्द सदा रमै।। प्रभु देहिंगे अब छेम मारग भक्ति मुक्ति सुधी हमै।।

वर्ग २१. प्रकृति

स्रग्धरा	मरभनयथय	देखो देखो सखी जावत अब असुरारी यशोदा बिगारी।। जाने दे तू न मानै अब कहन हमारी भई तू दुलारी।।

वर्ग २२. आकृति

मदिरा	भभभभभभभग	झूमक भूमि झुमावत ककण घूमि घुमावत आज सही।। बीन बजावत टेरि पुकारत भाव बुझावत ताल लही।।
हंसी	ममतननननसग	जाके जी मे जोई भावै करत और मन अति अकुलाई।। भावै जी मे नाही वाको करत नर सुपथ मन बिसराई।।

वर्ग २३. विकृति

कालिका	रनरनरनरलग	देखिये छिपत कुज मे लखत राधिका न पथ मे अभी रही।। देखि कै भजत साथ छोडिके मग मे खडी कहत-घूमिके गही।।

छन्द	चरण	उदाहरण
मालती	७भ+गग	नाहक रारि करो ब्रजमोहन नाहक गागरि तू अब तोडी।। नाहक मारग रोकत चंचल नाहक तूं दधि भाजन फोड़ी।।
ललित	नजभजभजभलग	करहु कृपा सदा प्रभु सहाय आप अब हौ अपन जनके।। तजहु नही अनाथ जन की सनाथ करिये पुकार मनके।।

वर्ग २४. सत्कृति अथवा संकृति

दुरमिला अथवा माधवी	८स	कबहूँ यह बात न मानत री सखि मै उपकारक आज भई।। समुझावत हौ अब मानु अली लखि हाल भली बिसराय दली।।

वर्ग २५. अति कृति अथवा अभिकृति

चारु	८भ+ग	कुजन से अब माधव आवत बालन कों सब खेल दिखावत री।। मारग मे सब झूमि झुमावत ताल मृदंग बजाय नचावत री।।
सुन्दरी	८स+ग	बिनु पंकज सोह तडाग नही बिनु चन्द्र निशा जिमि भावत नाही।। बिनु पडित ग्रथ प्रकाश नही तिमि ज्ञान नही सक धूरि मिलाही।।

वर्ग २६. उत्कृपि

किशोर	८स+लल	समुझावहु आज अली यदुराज कुमार नहीं वह मानत बातन।। अब फेरि बुलाय कहो ब्रजभामिनि तोहि बताय दई हम साधन।।
विलास	८भ+लल	साधहु काज हमार महाप्रभु मांगत हौ कर जोरि सदा गति सत।। मानहु मोर कहावत तारक देहु हमैं अब भक्ति सुधी विलसत।।

वर्ग २७. दण्डक

छन्द	चरण	उदाहरण
महीधर	४ (जर)+जन	कहा करौ अली गई भली भई नही लई चली गई कहा भई अरी अली।। मना कियो नही तबै रही बडी खुसी हँसी सुना दियो जबै भई दुखी चली।।
शख	नन+१४र	चरण शरण ह्यौ सदा ताहि के जो दयासिन्धु- गोपाल गोविंद दामोदरो विष्णु जू माधवो- स्यामजू औ स्वभू सर्वदा सरण है दास को।। सदय हृदय है हमैं पालि है आपनो जानिकै सोइ- बिश्वेश विश्वंभरो विष्णूजू राघवो रामजू- औ प्रभू दुःख हा हरण है त्रास को।।

§९५१. 'पिंगलादर्श' में इस वर्ग के अन्य छन्दो मे निम्नलिखित छदों की गिनती कवित्त छन्द मे की गई है।

(१) **घनाक्षरी छन्द**—इस छन्द मे ३१ मात्राएँ होती है। पदो का क्रम इच्छानुसार रखा जा सकता हैं। यति ८, १६ और २४ मात्रा पर होती है। प्रत्येक पंक्ति के अन्तिम दो अथवा तीन वर्णों का तुक रहता है।

उदाहरण—

कबहु तो नाथ मेरी सुधि न लई है तुम अबहूँ तो आप कीजै दृष्टि अब जानिकै।।
बिनती तो दीनानाथ सुनहु अब याचनो रहहु मन मे सदा मेरी बात मानिकै।।

(२) **रूपक घनाक्षरी छन्द**—इस छन्द मे ३२ मात्राएँ होती है, ८,१६ और २४ मात्रा पर रुकना पडता है। मात्राओ के क्रम का बन्धन नही है।

उदाहरण—

मनाये से न मानूगी बुलाये से न बोलूगी दिखाये से न देखूगी सखी आज ठानी यही।।
कहाँ लौ सहौ रोज की रार ये री अली देखु भयो जो भयो जानिकै रही हार मानी सही।।

श्रेणी १. क्रम २. अर्द्धसमवृत्त

§९५२ इस श्रेणी के छन्दो को वर्णो मे विभक्त करना संभव नही है। अर्द्ध समवृत्त छन्दो मे भी समवृत्त छन्दो की भाँति प्रथम तथा द्वितीय पंक्ति मे और तृतीय तथा चतुर्थ पंक्ति मे तुक रहता है। गणों की दृष्टि से प्रथम औ तृतीय तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण समान है, अत उदाहरण—के लिए पहले दो चरण ही दिये जा रहे हैं।

पुष्पिताग्रा छन्द

लक्षण—प्रथम तथा तृतीय चरण मे—ननरयग।
तृतीय तथा चतुर्थ चरण मे—नजजरग।

	तृतीय चरण : ६ न+गग		जगत जनमि कुछ सुफल करत नहि अघ कीन्हो।।
	चतुर्थ चरण : २ न+नग		जनक नहक लीन्हो।।

ललिता छन्द

लक्षण—	प्रथम चरण : सजसल	उदाहरण—	करुणानिधान रघुराई।।
	द्वितीय चरण : नसजग		शरण अब नाथ मै भई।।
	तृतीय चरण : ननसस		सकल विषय तजि चित्त दई।।
	चतुर्थ चरण : २ (सज) +ग		महिमा अपार हम जानि ना लई।।

प्रवर्द्धमान छन्द

लक्षण—	प्रथम चरण : मसजभगग	उदाहरण—	मेरी जाति अहीर है अली किन जानी।।
	द्वितीय चरण : सनजरग		चलना पड़ते अरी अली न मानी।।
	तृतीय चरण : २ (ननस)		रहत मगन निसु बासर करत न करनी।।
	चतुर्थ चरण : ३न+जय		चितवत नहि अब सखि हे मनमानी।।

सौरभ छन्द

लक्षण—	प्रथम चरण : सजसल	उदाहरण—	करुणानिधान रघुवंश।।
	द्वितीय चरण : नसजग		तिलक हरि दीनानाथ हो।।
	तृतीय चरण : रनभग		देहु मोहि पद भक्ति सदा।।
	चतुर्थ चरण : २(सज) +ग		हित जानि मोर बिसराय पाप हो।।

श्रेणी २. जाति छन्द. क्रम १. गण छन्द

§९५४. भारतीय लेखकों ने जाति छन्द के दो भेद किये हैं—गण छन्द, मात्रा छन्द।

जाति छन्द : लक्षण

§९५५. 'गण छन्द' की प्रत्येक पंक्ति मे निर्धारित मात्राएँ आती है, साथ ही प्रत्येक पंक्ति मे कुछ सीमा तक पदो का क्रम भी निश्चित रहता है। 'मात्रा छन्द' मे प्रत्येक पक्ति की मात्राएँ निर्धारित रहती हैं, किन्तु पदो का क्रम कवि की इच्छा पर निर्भर रहता है।

क. भारत के छन्द शास्त्रियो ने गण छन्द और मात्रा छन्द के जो लक्षण दिये है, उनका ठीक ठीक पालन नही हो सकता। बहुत से मात्रा-छन्द ऐसे है, जिन पर गण छन्द का लक्षण लागू होता है और इसी तरह कुछ गण छन्द है जिनके पदों का क्रम कवि की इच्छा पर छोड दिया गया है।

गण छन्द

§९५६. भारतीय लेखको ने गण छन्द के छह भेद बताये है। प्रत्येक का लक्षण उदाहरणसहित नीचे दिया जा रहा है। पंक्ति मे पदो के क्रम के अनुसार प्रत्येक गणछन्द के अनेक उपभेद भी है। कुछ उपभेदो के उदाहरण भी साथ मे दिये गये है।

§९६६. **बैंतालीय छन्द**—इस छन्द की दोनो पंक्तियो मे ३०-३० मात्राएँ रहती हैं। मात्राओं का विभाजन इस प्रकार है—६+र+लग+८+र+लग। प्रथम तथा चतुर्थ पद बहुवर्णी होते हैं और उनमे दीर्घ तथा लघु स्वरो का मेल वैकल्पिक रूप से रहता है। १४वी मात्रा पर यति रहती है।

उदाहरण—

मधुसूदन को लखी अली तुम देखो कैसी छिपी नली॥
अब माधव राधिका अली सबरी जैहै ही चली भली॥

§९६७. **चारुहासिनी छन्द**—प्रत्येक पंक्ति मे २८ मात्राएँ रहती है, चतुर्थ पद मे ८ के स्थान पर ६ मात्राएँ रहती है। इसीलिए दोनो पंक्तियो के पद समान ढग से प्रयुक्त होते है।

उदाहरण—

चलो चलो बाल साथ री भलो भलो साज माथ री॥
लखो लखो जात कान्ह री कहो कहो साँस बाँध री॥

शिखादि छन्द

§९६८ शिखादि छन्द की विशेषता यह है कि इसके अन्तिम दो वर्णों को छोड़कर शेष सभी वर्ण समानकाल मे उच्चारित होते है। मात्राओ की सख्या २८ से ३२ तक रहती है। इस वर्ग के कुछ प्रचलित छन्द इस प्रकार है—

§९६९. अनग क्रीड़ा छन्द—इसमे ३२-३२ मात्राओ की दो पक्तियाँ होती है। प्रथम पंक्ति के सभी वर्ण दीर्घ और द्वितीय पक्ति के सारे वर्ण ह्रस्व रहते है। इस छन्द की विशेषता यह है कि इसमे अन्त्यानुप्रास नहीं रहता। उसका रहना सभव भी नही है। प्रथम पंक्ति के आठवे वर्ण पर और द्वितीय पक्ति के ८वें तथा १६वे वर्ण पर यति होती है।

उदाहरण—

आओ आओ जी आओ हो मेरे द्वारे राधा माधो॥
निस दिन लखत न कहत और कुछ शरण चरण तजि भजत और कुछ॥

§९७० अतिरुचिरा छन्द—प्रत्येक पंक्ति मे २७ल - ग = २९ मात्राएँ होती है। आठवी, सोलहवी और चौबीसवी मात्रा पर यति रहती है।

उदाहरण—

भजहु मन चरण रहहु हरिशरण तजहु सब विषयन रमना॥
चलहु पथ सुगम करहु तुम जनम सुफल नियर अबहि मरना॥

वक्त्रादि छन्द

§९७१. वक्त्रादि छन्दो मे दो पक्तिया होती है, प्रत्येक पक्ति दो चरणों मे विभक्त रहती है, प्रत्येक चरण मे आठ वर्ण रहते है। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थवर्ण नगण (˘˘˘) अथवा सगण (˘˘-) से सम्बन्धित नही होता। नीचे इस छन्द के दो प्रचलित छंद जिये जा रहे हैं।

§९७२. चपलवक्ता छन्द—वक्त्रादिछन्द के उपर्युक्त नियमो के अतिरिक्त इस छन्द के पॉचवे वर्ण से नगण (˘˘˘) प्रारभ होता है।

उदाहरण—

घूमि देखो मगन मैं कैसो सोहत री आज ॥
कान्हा आज मथुरा मे देहै री सबरो साज ॥

§९७३ युग्म विपुला छन्द—वक्त्रादि छन्द का लक्षण इस छन्द पर भी लागू होता है, अन्तर इतना ही है कि इस छन्द के प्रत्येक चरण के पॉचवे वर्ण से जगण (˘-˘) प्रारभ होता है।

उदाहरण—

कहना मानु मेरो री आली चलहु आज हो ॥
मान ले बहुरी राधे देखो कस न माज हो ॥

अचल धृत्यादि छन्द

§९७४ अचल धृत्यादि छन्दो मे १६-१६ मात्राओ की चार पक्तिया रहती है। प्रथम और द्वितीय पक्ति मे तथा तृतीय और चतुर्थ पक्ति मे अन्त्यानुप्रास होता है। इस छन्द के प्रमुख भेद नीचे दिये जा रहे है। उदाहरण के लिए केवल पहली तथा दूसरी पक्ति ही पर्याप्त है।

§९७५ विश्लोक छन्द—इस छन्द की पाचवी मात्रा से जगण (˘-˘) अथवा नगण (˘˘˘) प्रारभ होता है और अन्तिम वर्ण सदैव दीर्घ रहता है।

उदाहरण—

माधो करो सहाय लोक की ॥
साधो सदा सुचेत योग की ॥

§९७६ चित्रा छन्द—पॉचवी, आठवी और नवी मात्रा ह्रस्व होती है और अन्त्य वर्ण दीर्घ रहता है।

उदाहरण—

आज चलहु पगन बिहारी जू ॥
देखहु अब झलक तिहारी जू ॥

§९७७ उपचित्रा छन्द—नवी तथा दसवी मात्रा दीर्घ और उसके पश्चात दो ह्रस्व वर्ण आते है।

उदाहरण—

बिना परीक्षा तत्व न प्रगटे ॥
वेष धरे सो नाम नहिं घटे ॥

श्रेणी २. जाति छन्द

क्रम २. मात्रा छन्द

मात्रा छन्द के नियम

§९७८ मात्रा छन्द के प्रत्येक चरण अथवा दल मे निर्धारित मात्राएँ प्रयुक्त होती है, चरण प्राय निश्चित मात्राओ के पदो मे विभक्त रहता है। पदो का क्रम भी निश्चित रहता है। बहुत से पदो मे

दीर्घ-ह्रस्व मात्राओ का क्रम कवि की इच्छा पर निर्भर है। मात्रा छन्द के नियमो मे इस बात का उल्लेख रहता है कि चरण अथवा पद मे इतनी मात्राएँ रहनी चाहिएँ। उदाहरण के लिए दोहा के प्रथम पद मे छह मात्राएँ रहती है, किन्तु इन छहो मात्राओ का क्रम निश्चित नही रहता, दो नगण (˘˘˘˘˘˘) अथवा एक मगण (---) अथवा छहो मात्राओ का कोई अन्य क्रम रह सकता है।

§९७९ यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि केवल चरण अथवा दल की मात्राएँ ही निश्चित नही रहती, पद की मात्राएँ भी निश्चित है।

उदाहरण के लिए निम्नलिखित पक्ति मे चौपाई के नियम के अनुसार १६ मात्राएँ है किन्तु पदो मे मात्राओ की सख्या उचित रूप मे नही आई है—

भिन्न कुम्हार माटी ताता।।

इस पक्ति के चार पदो मे मात्राओ की सख्या इस प्रकार है—

७ + ३ + ४ । २ जबकि चौपाई के नियम के अनुसार अक इस प्रकार रहने चाहिएँ—६ + ४ + ४ । २।

विशेष—इस बात पर ध्यान दीजिए कि नीचे जो योजना दी गई है उसके प्रत्येक अक से छन्द के किसी पद अथवा अन्य अवयव की मात्राओ का पता चलता है। यही बात ऊपर दिये गये लक्षणो से ज्ञात होती है। जब किसी अक के पश्चात गुणन का चिन्ह (×) आता है तो उसका अर्थ है सख्या के गुणन से जो राशि उपलब्ध हो उस राशि के अनुमार पद की मात्राएँ होनी चाहिएँ। जैसे (४×३) का अर्थ है ४ मात्राओ का पद तीन बार आना चाहिए। यही बात इस राशि के बारे मे समझनी चाहिए ४×३=४+४+४। अको के पश्चात् आन वाला अर्द्ध विराम यति की सूचना देता है, इस राशिक्रम पर ध्यान दीजिये—१०+८+८+६=३२, इस राशिक्रम का अर्थ है—३२ मात्राओ की एक पक्ति १०, ८, ८ और ६ मात्राओ के चार चरणो मे विभक्त है। दसवी, अठारहवी तथा छब्बीसवी मात्रा पर यति है।

§९८०. सुविधा के लिए मात्रा छन्दो को तीन भागो मे बाँटा जाता है—

(१) **द्विपाद**—जिन छन्दो मे केवल दो दल अथवा पक्तियाँ आती है,

(२) **चतुष्पाद**—जिन छन्दो मे चार पक्तियो का प्रयोग होता हे,

(३) **बहुपाद**—जिनमे चार से अधिक पक्तियाँ आती है।

क थोडे ऐसे छन्द है जिन्हे कुछ छन्दशास्त्रियो ने द्विपादी छन्द माना है जबकि कुछ ने चतुष्पादी। इस प्रकार के छन्दो के बारे मे चतुष्पादी अथवा द्विपादी होने का विवाद विशेष महत्व नही रखता।

मात्रा छन्द के उदाहरण

§९८१. हिन्दू छन्द शास्त्रियो ने वर्ण छन्द की भाँति मात्रा छन्दो को भी कई वर्गो मे बाँटा है। यहाँ अधिक प्रचलित छन्दो का उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा। प्रत्येक वर्ग के छन्दो को देते समय इस क्रम पर ध्यान रखा गया है कि सबसे पहले कम मात्राओ का छन्द और उसके पश्चात उससे अधिक मात्राओ से बनने वाला छन्द रखा जाय।

१. द्विपाद छन्द

§९८२. **दोहा** अथवा **दोहरा**। इस छन्द मे दो पक्तियाँ और प्रत्येक पक्ति मे २४ मात्राएँ रहती हैं। प्रत्येक पक्ति में दो चरण तथा छह पदो का क्रम इस प्रकार होना चाहिए—६+४+३, ६+४+१।

प्रथम चरण के अन्तिम पद (स० ३) मे ताल (-˘) का प्रयोग वर्जित है। प्रथम चरण के अन्तिम पद मे या तो नगण (˘˘˘) अथवा ध्वज (˘-) आवश्यक है। प्रत्येक पक्ति का अन्त्य वर्ण ह्रस्व रहना चाहिए।

उदाहरण—

माला फेरत युग गया गया न मन का फेर॥
कर का मनका छाडिकै मन का मनका फेर॥

स्मरणीय—दोहा इस समय सबसे अधिक प्रचलित और प्रिय छन्द है। दाहे का प्रयोग तुलसीदास, कबीरदास तथा हिन्दी के सभी बडे कवियो ने किया है।

§९८३. **सोरठा**—दोहे के उलटने से सोरठा बनता है, दोहे का द्वितीय और चतुर्थ चरण सोरठे का प्रथम तथा तृतीय चरण और दोहे का प्रथम तथा तृतीय चरण सोरठे का द्वितीय तथा चतुर्थ चरण बनता है। कम मात्राओ के चरण का अन्तिम वर्ण ह्रस्व और अधिक मात्राओ के चरण के अन्तिम वर्ण गुरु लघु होने चाहिएँ। सोरठे का तुक अन्त मे न रह कर कम मात्राओं के चरण के अन्त मे रहता है। इसका तात्पर्य यह है कि सोरठा का तुक मध्य भाग मे आता है। मात्राओ की योजना इस प्रकार है—

६+४+१, ६+४+३। तुलसीदास के निम्नलिखित सोरठा मे अधिक मात्राओ वाले चरण मे प्रयुक्त तुक अपवाद माना जाएगा।

कुन्द इन्दु सम देह उमारमन करुणा अयन।
जाहि दीन पर नेह करो कृपा मर्दन मयन॥

§९८४ **उल्लाल छन्द**—इस छन्द मे दो पक्तियाँ होती है, प्रत्येक पक्ति मे दो चरण, दोनो चरणो मे २८-२८ मात्राएँ। प्रथम तथा तृतीय चरण (४×३)+३=१५ मात्राओ के होते है। इसी प्रकार दूसरे और चौथे चरण के तीन पदो का क्रम ६+४+३=१३ मात्राओ का रहता है।

उदाहरण—

को प्रभु कहे गुन अमित तोर बुद्धि शक्ति प्रेम अपार।
जब दिवधाम तजि अवतरियो कीन्ह तबहि नर निस्तार॥

§९८५ **ललित** अथवा **हरिपद** छन्द। इस छन्द मे दो पंक्तियाँ होती है। प्रत्येक पक्ति मे २८ मात्राएँ, १६ और १२ मात्राओ के दो चरण। पक्ति के अतिम दो वर्ण दीर्घ।

उदाहरण—

कहा मानु अब बात हमारी चलो सखी तू आजू।
सुनो हाल हम आज तुमारो प्रिया सिधारो काजु॥

§९८६ **महीषरी** अथवा **हरिगीति छन्द**—प्रत्येक पंक्तिमे सात पद, मात्राओ का क्रम ४×५+६+२=२८ रहता है। गौण यति नवी मात्रा पर और मुख्य यति सोलहवी मात्रा पर। प्रत्येक चरण का अन्त्य वर्ण दीर्घ होना चाहिए।

उदाहरण—

बिनु दाम आवत काम जो नित ताहि नही भजे नरा।
जगदीश एकहि छाडि सेवत देवगण सशय भरा॥

९८७ **चूड़ियाला छन्द**—दोहा और चूडियाला का अन्तर यह है कि चूडियाला मे **पाँच मात्राओ** का एक चरण दोहे की दोनो पक्तियो के साथ जुड़ता है। प्रत्येक पंक्ति मे मात्राओ का क्रम इस प्रकार रहता है—

६ + ४ + ३; ६ + ४ + १, + ३ + २ = २९।

उदाहरण—

मैं अब मिलन चहो सखी जसुमति सुत जहं होय कता बहु।
झपटि झपटि सब दौरिके यशुदानंदन को लखवा बहु॥

§९८८. **चौपदी छन्द**—प्रत्येक पंक्ति मे ३० मात्राएँ, मात्राओ का क्रम १०+८ + १२=३० रहता है। अन्त्य वर्ण अनिवार्य रूप से दीर्घ होता है। १०वी तथा १८वी मात्रा पर यति होनी चाहिए।

उदाहरण—

अति क्रूर आकार रूप न चीन्हे परम चतुर पद पावे।
सब देखि जगत मे आप भली है बाहर सुमति बतावे॥

§८८९. **चौबोला छन्द**—प्रत्येक पंक्ति मे ३० मात्राएँ, १६वी मात्रा पर यति, क्रम—(४×४), +(४×३)+२=३० मात्राएँ।

उदाहरण—

अमर हित बिचारि धरो तनु जो भूपति बलि सी कपट करी।

उल्लेखनीय—'छन्दोदीपक' मे पंक्ति की मात्राओं का विभाजन इस प्रकार किया गया है—(४×३)+३=१५, (४×३)+३=१५। मैने 'पिंगलादर्श' का अनुसरण किया है।

§९९०. **घत्ता** अथवा **घत्तानन्द छन्द**—दो पंक्तियाँ, प्रत्येक पंक्ति मे ३१ मात्राएँ और ९ चरण, १०वी तथा १८वी मात्रा पर यति, क्रम—(४×२)+२, ४+४, (४ ×३)+१।

उदाहरण—

मोहन मुख आगे अति अनुरागे मैं जुरही मसि छबि निदरि।
दुख देत सुआली बिनु बनमाली घत्ता लहि चूक तन अरि॥

२. चतुष्पाद छन्द

§९९१. इस अनुच्छेद मे जो छन्द दिये गये हैं उनमे से त्रिभंगी, दुर्मिला, दंडकला, लीलावती, पद्मावती, मदनघर आदि को कुछ छन्द शास्त्रियो ने द्विपाद माना है। पद की दृष्टि से दूसरी जोडी पहली जोडी को दुहराती भर है। दोनों में तुक भी नही है। अत इस प्रकार के छन्दों को द्विपद छन्दो का समासित रूप मानना पड़ेगा। इस बात को ध्यान मे रख कर इन्हे चतुष्पाद के रूप मे स्वतंत्र रूप से प्रस्तुत करते हुए भी मैंने दो पंक्तियाँ देना ही पर्याप्त समझा है।

§९९२. **गमक छन्द**—इस छन्द की प्रत्येक पक्ति मे पाँच ह्रस्व वर्ण रहते है।

उदाहरण—

श्रम सकल। बल विकल॥ सुर अमृत। असुर मृत॥

§९९३. दीपक छन्द—प्रत्येक पंक्ति मे दस मात्राएँ होती है।

उदाहरण—

तुम रहहु प्रियनाथ । निसि समय मम साथ ॥
जग के सुखदायक । प्रेम करै लायक ॥

§९९४. नीचे दिये गये छन्दों की प्रत्येक पंक्ति मे १४ मात्राएँ हैं। अन्तर यति और पदो की मात्रा मे है।

(१) गजल छन्द—श्रय ७, + ७, = १४, अन्तिम पद गुरु लघु (-˘)।

उदाहरण—

अब तो होतु प्रीय सचेत । मग मे पड़ि न रहो अचेत ॥
नयन खोलहु शत्रुन समीप । जागत रहो तू सजि दीप ॥

(२) **चम्पक छन्द**, क्रम ८, + ६, = १४। अन्तिम पद मे गग (--) का आना आवश्यक।

उदाहरण—

मुरली की धुनि सुनि धाईं । सगरी सखियाँ उठि आईं ॥
मनमोहन की सुनि बानी । रहि रहि सारी मुसकानी ॥

(३) **बज्र छन्द**—क्रम-६ + ८, = १४। प्रथम पद नगण (˘˘˘) तथा अन्तिम पद जगण (˘-˘)।

उदाहरण—

रहहु सदा रघुबंश नाथ । करहु कृपा अब आज साथ ॥
जतन करहु अब दीननाथ । धरहु अबै मम काँध हाथ ॥

§९९५ **चौपई छन्द**—८ + ७, = १५। अन्त्यवर्ण ह्रस्व।

उदाहरण—

करहु कृपानिधि धर्म विकाश । मेरे हिय मे ज्ञान प्रकाश ॥
रहहु सदा प्रभु चित मे आय । कलिमल राघव पल मे जाय ॥

§९९५ नीचे के दोनो छन्दो मे १६ मात्राएँ है। यति के कारण अन्तर पड़ता है।

(१) **अडिल्ल** अथवा **अलीला छन्द**—८, + ८, = १६।

जगण (˘-˘) का प्रयोग नही होता, अन्तिम पद भगण (-˘˘) मे होना चाहिए। चारो पंक्तियो मे तुक आवश्यक है।

उदाहरण—

अब वह आवत बेणु बजावत।
ग्वाल बाल को नाच नचावत ॥
लखु अति राजत छवि वह छावत।
झमकि झमकि सब खेल खिलावत ॥

(२) **चौपाई**—इसे 'पादा कुलक' अथवा 'कुलपाई' छन्द भी कहते है। क्रम—६ + ४ + ४ + २ = १६। अनिवार्य तो नही, किन्तु सामान्यतया अन्तिम पद का क्रम गग (--) रहता है।

उदाहरण—

उघरहि विमल विलोचन हीके । मिटहि दोष दुष भव रजनी के ।।
सूझहि रामचरित मनि मानिक । गुप्त प्रकट जो जो जेहि खानिक ।।

स्मरणीय—प्रसिद्धि की दृष्टि से दोहा के पश्चात चौपाई का नाम लिया जा सकता है। तुलसीदास की रामायण का अधिकाश भाग चौपाइयों मे ही लिखा गया है। रामायण मे चार-चार चौपाइयो के पश्चात एक या दो दोहे आते है।

§९९७. **हंसगति छन्द**—५ + ५, + ५ + ५, = २०। दसवी मात्रा पर यति।

उदाहरण—

यशोदा लाल तू रारि काहे करो।
कहूँगी आज मै जार नाहि टरो।।
सुनौगी यशोदा बतावैगि तेरो।
डीठ तो भयो है देखियो तु मेरो।।

§९९८ **रासा छन्द**—१२, + ९, = २१ मात्राएँ।

उदाहरण—

करहु कृपा जग स्वामी मेरे साथ हो।
रहिहु सदा अभिलाषी तेरे हाथ हो।।

§९९९. **लीला छन्द**—११, + ११, = २२ मात्राएँ। अन्तिम वर्ण दीर्घ।

उदाहरण—

धन्य भयौ मै आज हरि के काज आयो।।
लखो सखी सब साज कस हरि रूप भायो।।

§१०००. **रोला छन्द**—इसे **रसावली छन्द** भी कहते है, ६+(४×४)+२=२४। अन्तिम वर्ण दीर्घ, ११वी मात्रा पर यति।

उदाहरण—

रवि छवि देखत घुसत घूघू जहँ तहँ भागही।।
चक्रवाक लखि अधिक हिय रवि को अनुरागही।।

§१००१. काव्य छन्द—६ + (४×३) + ६, - २४, ग्यारहवी मात्रा पर यति ।

उदाहरण—

माधव आज निहारि जात बालन सग कुंजन।।
देखि देखि कै आप चलत मानहु दल गंजन।।
आवै अब जो आज धरु मिलि 'री नंदनदन।।
करत बडो अनरीत चलत जिमि सिंधुर विभंजन।।

§१००२. **दुविया छन्द**—१६, + १२ + २८ मात्राएँ।

उदाहरण—

आयो आज यहाँ रघुनन्दन लीन्हे कर पट सारी।
देखु देखु सखि सोहत कैसो मानो घन घट कारी।।

§१००३ **चौपैया छन्द**—१०, + ८, + १२ = ३० मात्राएँ। अन्तिम पद मे करण (--) १०वी और १८ वी मात्रा पर गौण यति।

उदाहरण—

तल वितल रसातल गगन भुवन तल सृष्टि जिती जग माही।।
पुर ग्राम सुथल मे कानन जल मे वाहि रहित कहु नाही।
पिय मिलहि न रामहि तजि सिय बामहि नहि बचाउ कहुँ भागे.।
सुरपति सुत कॉचो सब जग नाचो वॉ चौपैया लागे।।

§१००४. **सवाया छन्द**—१६, + १५, = ३१ मात्राएँ। अन्तिम पद मे गल (-˘)।

उदाहरण—

ऐसो राम नाम को सौदा तोहि न भावत मूढ अयान।
निसि दिन जात मोह बस दौरत करत सबै आज नम सिरान।।

§१००५ नीचे दिये गये चारो छदो की पक्तियो मे ३२-३२ मात्राएँ है, अन्तर यति तथा पदो के क्रम मे है।

(१) **त्रिभंगी छन्द**—१०, + ८, + ८, + ६=३२ मात्राएँ। इस छन्द में जगण नही आता प्रत्येक यति मे गौण अन्त्यानुप्रास।

उदाहरण—

समुझिय जगु जन मे को फलु मनु मे हरि सुमिरन मे दिन भरिये।
झगडो बहुतेरौ घेरु घनेरो मेरो तेरो परिहरिये।।
मोहन बनवारी गिरवर धारी कुज बिहारी पगु परिये।
गोपिन को संगी प्रभु बहुरगी लाल त्रिभगी उर धरिये।।

(२) **पदमावती छन्द**—त्रिभगी और पदमावती छन्द मे केवल इतना ही अन्तर है कि त्रिभगी की प्रत्येक पक्ति मे तीन स्थानो पर यति न होकर दो स्थानो पर यति होती है। क्रम—१०,+८,+१४,=३२। कुछ लेखको ने तीन यतियो का उल्लेख करके क्रम इस प्रकार रखा है—१०,+८,+६,+८,=३२। अन्तिम वर्ण दीर्घ रहता है। शेष त्रिभगी के समान।

उदाहरण—

व्यालिन सी वेनी लषि छवि सेनी तज तन आसा मोरै जू।
ससि सो मुष सोभित लषि ह्यौ लोभित लावत टकी चकोरै जू।।
निकसत मुष स्वासै पाइ सुबासै सग न छोडत भोरै जू।
बाहिर आवत जब पदमावति तब भीर जुरहि चहुँ ओरै जू।।

(३) **दुरमिला छन्द**—१०,+८,+८,+६=३२। त्रिभंगी और दुरमिला छन्द का अन्तर इतना ही है कि दुरमिला के अन्तिम पद की मात्रा गग(--) होती है। गौण यति प्रत्येक पक्ति के उपविभाजन पर रहती है।

उदाहरण—

इक त्रिय व्रतधारी पर उपकारी नित गुरु आज्ञा अनुसारी।
निरसंचय दाता सब रस ज्ञाता सदा साधु संगति धारी॥

क **दंडकला छन्द**—दंडकला छन्द दुरमिला केवल इस बात मे भिन्न है कि इसके अन्तिम पद की मात्रा लग (˘-) है।

(४) **लीलावती छन्द**—१८,+१४,=३२ मात्राएँ। ऊपर के तीन छन्दो से लीलावती छन्द इस बात मे भिन्न है कि इसमे केवल एक यति होती है।

उदाहरण—

पीताम्बर की चटक मटक भ्रू की लटक कटक अरु कुटिल की।
मुसुकान विलोकन निरखि निरखि के हरषित हीय भानुकुल की॥

§१००६ **हिंडोला छन्द**—१०,+१०,+१०,+१०=४० मात्राएँ—अन्तिम पद मे लग (˘।)। प्रत्येक यति मे तुक।

उदाहरण—

प्राण के अयन मे नैन मे बैन मे चित्त अरु कर्ण मे सदा बसो जमुना।
शयन मे चलत मे कहत मे सुनत मे खान अरु पान मे करो पाप मना॥

§१००७. **मदनहर छन्द**—१०,+८,+८,+६,+८=४० मात्राएँ। प्रत्येक पक्ति का अन्तिम वर्ण दीर्घ। अन्तिम तीनो वर्णो मे रगण का प्रयोग नही होता। पहली दो पक्तियाँ और अन्त की दो पक्तियो मे अन्त्यानुप्रास, यति मे गौण अन्त्यानुप्रास।

उदाहरण—

सखि लखि यदुराई छबि अधिकाई
भाग भलाई जानि परे फल सुकृति फरे।
अति रूप सदन मुख होत सबन सुख दास हिये
दुख दूरि करे सुख भूरि भरे॥

३. बहुपद छन्द

§१००८. **कुण्डलिया छन्द**—एक दोहा और दो काव्यछन्दों का समासित रूप कुण्डलिया कहाता है। इसमे छह पक्तियाँ होती है। दोहे का अन्तिम चरण काव्य छन्द के आरभ मे दुहराया जाता है और काव्य छन्द के अन्तिम दो वर्ण दोहे के आरंभिक दो वर्णों से सादृश्य रखते है। जनता इस छन्द को बहुत पसन्द करती है। गिरधारीदास की लिखी कुंडलिया बहुत प्रसिद्ध है।

उदाहरण—

बीती ताहि बिसार दे आगे की सुध लेय।।
जो बनि आवे सहज मे ताही मे चित देय।।
ताही मे चित देय बात जो ही बनि आवै।।
दुरजन हँसे न कोइ चित्त मे खेद न पावै।।
कह गिरधर कविराय यहै कर मन परतीती।।
आगे की सुख होय समुझ बीती सो बीती।।

स्मरणीय—कही कही दोहा छन्द के साथ काव्य छन्द के स्थान पर रोला का प्रयोग हुआ है। रोला और काव्य छद की पंक्तियो मे मात्राएँ समान रहती है, केवल पदो का क्रम भिन्न रहता है।

§१००९ **छप्पै छन्द**—काव्य छन्द और उल्लाला छन्द के योग से छप्पै छन्द की रचना होती है। उदाहरण—

भाल नैन मुख अधर चिबुक तिय तुम विलोकि अति।।
निर्मल चपल प्रसन्न चाल सुभ वृत्ति थकी मति।।
उपमा कह शशि पज कज बिबिध गुलाब वर।।
खड थान तिथि प्रात पक्क प्रफुल्लित सुशोभ धर।।
सादर किशोर सुभ गध मृदु नवल हास आवत न चित।।
जु कलंक रहित युग सरल हित डार गहित षटपद सहित।।

§१०१० **रसिक छन्द**—इस छन्द मे छह पक्तियाँ रहती है, प्रत्येक पक्ति मे ११ मात्राएँ, अन्तिम वर्ण ह्रस्व। उदाहरण—

हँसत चखत दधि मुदित। झुकत भजत मुख रुदित।।
त्रसित तियनि मिलि रहत। रिसियुत विरतिहि गहत।।
अगनित छबि मुख ससिक। सिसु तवन बरस रसिक।।

भजनों में प्रयुक्त छन्द

भजनो में प्रयुक्त छन्दों की विशेषता

§१०११. ऊपर के बहुत से वर्णवृत्त और मात्रावृत्त गाने के लिए भजनो अथवा गीतो मे प्रयुक्त होते हैं। अन्तर इतना ही है कि भजन की सभी पक्तियो मे एक ही तुक आती है। एक अथवा आधी पक्ति टेक के रूप मे दोहराते है। गीतो के लिए प्रयुक्त कुछ प्रचलित छन्दो के सम्बन्ध मे नीचे जानकारी दी जा रही है।

§१०१२. **तोटक सवैया**—८स + ग। चौथे पद मे यति।

उदाहरण—

जप जोग करे तन साधि मरे नर कोटि उपाय रचे भरमाए।।
श्रुति चारि पुरान कुरान पढे नहि भेद मिले तन झूठि सताए।।
गुर पडित पीर फकीर फिरे बहु भाति क रूप विरूप बनाए।। आदि

§१०१३ **धुपद गीत**—प्रत्येक छन्द ये ३२ ह्रस्व वर्ण, ८वीं, १६वीं और २४वी मात्रा पर यति तथा तुक दोनो।

उदाहरण—

लह असन बसन गह सरग सदन।
दह अघ घन बन कह धरम बचन॥

§१०१४ **पूर्वी गीत**—दो पक्तियाँ—६+६, ६+४=२२मात्राएँ। १२वी मात्रा पर यति, अन्त के दोनो वर्ण दीर्घ।

उदाहरण—

काम लहर उठत तुद क्रोध पवन जोरे।
लोभ भौर घुमत ठौर मोह सघन घोरे॥

§१०१५ **ललिता गीत**—प्रत्येक पक्ति मे ६+६+२,+६+४=२४ मात्राएँ, १४वी मात्रा पर यति।

उदाहरण—

भव भय भंजन जनरजन गजन सकल हरन॥
विपति निवारक सुखदायक लायक पडन चरन॥

§१०१६. **भैरव गीत**—६+४+४+२,+६+४+२=२८ मात्राएँ। १६वी मात्रा पर यति। दो पक्तियाँ।

उदाहरण—

भजन करो मन लाई भाई भजन करो मन लाई।
प्रेम सुधा रस चाखो निरमल रसना रस अपनाई॥

§१०१७. **ठुमरी गीत**—यह भी दो पक्तियो का गय छन्द है। क्रम इस 'प्रकार है—६+४+४+२, +४+४+४- २८ मात्राएं अथवा—६+४+४+२,+६+४+४+२=३२ मात्राएँ। दोनो पंक्तियो मे १६वी मात्रा पर यति।

उदाहरण—

(१) अमरित भोजन छाड़ि विमूढ़े कर नित गरल अहारी।
कठहि उतरत तन मन ग्रास्यो कोउ न करे पुछारी॥

(२) जोति घट गई दो नैनन की नाहि सुने स्वर नीके काना।
सूधि सके नहि फूलन बासा रसना भूले रस रुचि नाना॥